Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

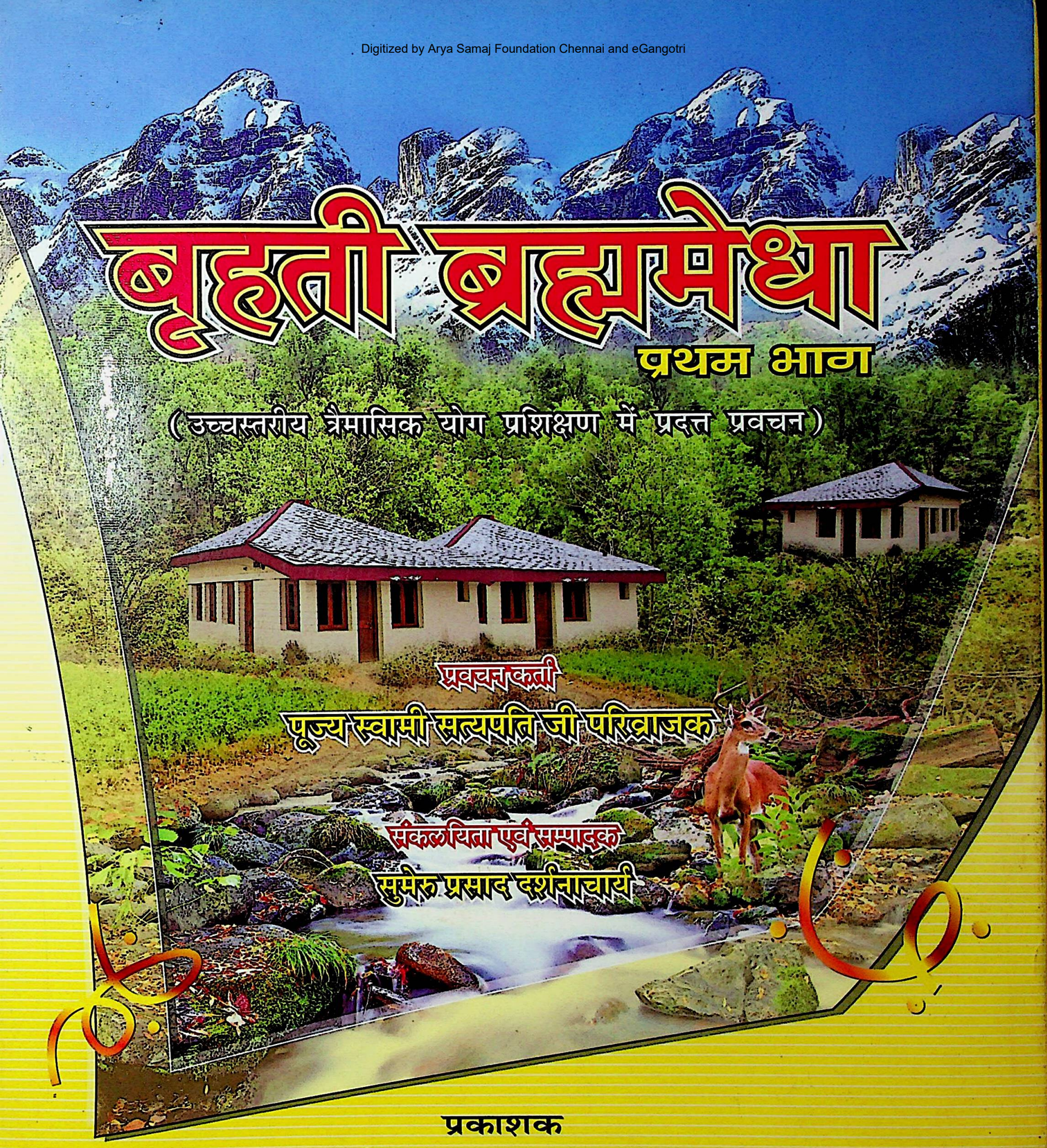

बृहती ब्रह्ममेधा

प्रथम भाग

(उच्चस्तरीय त्रैमासिक योग प्रशिक्षण में प्रदत्त प्रवचन)

प्रवचनकर्ता

पूज्य स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक

संकलयिता एवं सम्पादक

सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य

प्रकाशक

दर्शन योग महाविद्यालय

आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, ता. तलोद, जि. साबरकांठा (गुजरात) ३८३३०७

CC-0. MP Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पूज्य स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक

दर्शन योग महाविद्यालय

आर्य वन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, ता. तलोद,
जि. साबरकांठा, (गुजरात) ३८३३०७
Tel: +91(02770)287418, 287518,
Mob. : +91-94094 15011, 94094 15017
E mail : darshanyog@gmail.com
website : www.darshanyog.org

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहती ब्रह्ममेधा

(उच्चस्तरीय त्रैमासिक योग प्रशिक्षण में प्रदत्त प्रवचन)

प्रथम भाग

प्रवचन कर्ता

पूज्य स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक

संकलयिता एवं सम्पादक

सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य

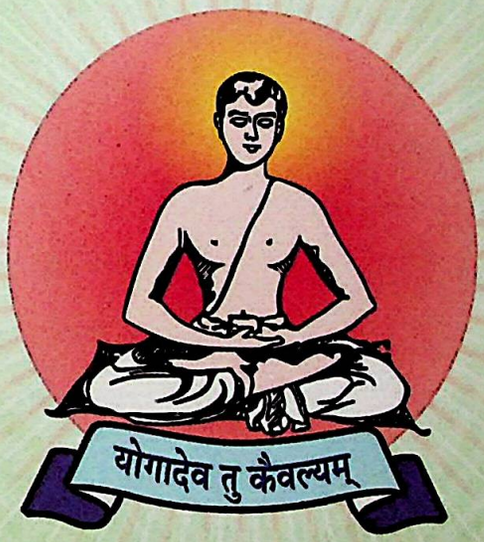

प्रकाशक

दर्शन योग महाविद्यालय

आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, ता. तलोद, जि. साबरकांठा (गुजरात) ३८३३०७

दूरभाष : (०२७७०) २८७४१८, २८७५१८ • चलभाष : ९४०९४ १५०११, ९४०९४ १५०१७

Email : darshanyog@gmail.com • **Website :** www.darshanyog.org

Facebook : darshanyog • **Youtube :** darshanyog2009

Orkut : darshanyog • **Skype :** darshanyog

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Panini Kanya Maha Vidyalaya, Ujjain.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बृहती ब्रह्ममेधा

प्रथम भाग

प्रकाशन तिथि : — ज्येष्ठ सुदी दशमी, विक्रम संवत् - २०६९,

दिनांक : ३१ मई २०१२, गुरुवार

सृष्टि संवत् -१,९६,०८,५३,११३

संस्करण : प्रथम

पृष्ठ संख्या : १२ + ५६८ = ५८०

(तीनों भागों की कुल पृष्ठ संख्या : ५८० + ६५६ + ६६४ = १९००)

प्राप्तिस्थान

वानप्रस्थ साधक आश्रम : आर्यवन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, जि. साबरकांठा (गुजरात) ३८३३०७

आर्यसमाज मंदिर : महर्षि दयानन्द मार्ग, रायपुर दरवाजा बाहर, अहमदाबाद. (गुजरात)

विजयकुमार गोविन्दराम हासानन्द : ४४०८, नई सड़क, दिल्ली-६

आर्य प्रकाशन : ८१४, कुण्डेवालान, अजमेरी गेट, दिल्ली-६

ऋषि उद्यान : आना सागर, पुष्कर रोड, अजमेर (राजस्थान)

आर्य प्रतिनिधि सभा : १५, हनुमान रोड, दिल्ली

श्रुति न्यास : सी-७३, सै.-१५, राउरकेला (उडीसा)

गुरुकुल आश्रम आमसेना : खरियार रोड, जि. नवापारा, उडीसा-७६६१०९

आर्य गुरुकुल महाविद्यालय : खर्राघाट, नर्मदापुरम्, होशंगाबाद (म.प्र.) ४६१००१

सर्वोदय साहित्य मंदिर : रेलवे प्लेटफार्म नं. १, अहमदाबाद. (गुजरात)

श्री चंद्रेश आर्य : ३१०, वार्ड नं. ११ बी, साधु वासवाणी सोसा., गोपालपुरी, गाँधीधाम, कच्छ (गुज.)

वैदिक संस्थान : एफ एफ-५, आदर्श कॉम्पलेक्स, मुरलीधर सो. सामने, ओढव, अहमदाबाद-१५

विजय वस्त्र भंडार : निलंगा, ४१३५२१ (महाराष्ट्र)

आर्य समाज मन्दिर : पोरबंदर, राजकोट, भरुच, मोरबी, टंकारा, जूनागढ़, गांधीनगर, आणंद, जामनगर आदि

मूल्य : ८००/— रुपये (तीनों भाग)

ग्राफिक्स/लेसर टाईप सेटिंग : विनायक ग्राफिक्स डिझाइन, अहमदाबाद, फोन : ९२२७२००२३२

मुद्रक : प्रिन्टकॉन, नारोल, अहमदाबाद, फोन : ०७९-२५७३५४९३

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ ओ३म् ॥

वानप्रस्थ साधक आश्रम

Vaanprasth Saadhak Aashram

(साधना, स्वाध्याय, सेवा तथा वैदिक विद्वान, वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों के निर्माण हेतु भव्य परियोजना)

आर्य वन, रोजड़, पत्रा. : सागपुर, जि. साबरकांठा-३८३ ३०७, गुजरात, भारत
Aaryavan, Rojad, Po. : Sagapur, Dist. : Sabarkantha-383 307, Gujarat, India

ट्रस्ट रजिस्ट्रेशन क्रमांक ई-२७३२/सा.कां.

आशीर्वचन

मैंने ऊँची योग्यता वाले दर्शनों के विद्वान्, व्याकरण के विद्वान् और योगविद्या में रुचि, श्रद्धा रखने वाले योग-जिज्ञासु सज्जनों के लिए लगभग तीन मास आषाढ़ शुक्ला द्वादशी वैक्रमाब्द २०६० से आश्विन शुक्ला त्रयोदशी २०६० तक तदनुसार ११ जुलाई २००३ ई. से ८ अक्टूबर २००३ पर्यन्त एक **त्रैमासिक उच्चस्तरीय क्रियात्मक योग प्रशिक्षण शिविर** का आयोजन किया था। शिविर का प्रयोजन था शिविरार्थी स्वयं विशुद्ध वैदिक-योग के विद्वान् बनें और क्रियारूप में अभ्यास करते हुए समाधि के द्वारा ईश्वर-साक्षात्कार तक पहुँचें तथा अन्यों को अपने समान बनाने का प्रयास करें।

इस शिविर में वेद, वैदिक-दर्शन, उपनिषद्, सत्यार्थप्रकाश आदि ग्रन्थों का क्रियारूप में किये अपने योग-संबंधी अनुभवों, योग से संबंधित यम-नियम आदि आठ अंगों का व्यवहार के रूप में पालन, ईश्वर-प्रणिधान, स्व-स्वामि-सम्बन्ध, विवेक-वैराग्य उनका अभ्यास, ईश्वर की उपासना, सम्प्रज्ञात और असम्प्रज्ञात समाधि के भिन्न-भिन्न स्तर, प्रलयावस्था-सम्पादन, समाधिप्राप्त योगी की अनुभूतियाँ और उनसे होने वाले लाभ, लोक में योग के नाम से प्रचलित अनेक भ्रान्तियों का स्वरूप और उनका निवारण तथा आत्मनिरीक्षण आदि अनेक विषयों का विशेषरूप से प्रशिक्षण दिया गया था।

इस शिविर में भाग लेने वाले दर्शनाचार्य श्री सुमेरु प्रसाद जी ने इस प्रशिक्षण शिविर के विषयों को महान् पुरुषार्थ से लेखबद्ध तथा यन्त्रों के माध्यम से संगृहीत करते रहे। उसी संग्रह में से छाँटकर इन्होंने प्रथम संक्षिप्त रूप में **ब्रह्ममेधा** के नाम से एक पुस्तक का आकार दिया और दर्शन योग महाविद्यालय से उसका प्रकाशन हो चुका है। अब उस सम्पूर्ण संग्रह को विस्तृत रूप में **बृहती ब्रह्ममेधा** के नाम से विशालकाय ग्रन्थ के रूप में प्रकाशित किया जा रहा है। इस पुस्तकों के प्रकाशित होने से और अध्ययन-अध्यापन से समाज-राष्ट्र और विश्व का बहुत बड़ा उपकार होगा। इसलिये मैं आशा रखता हूँ कि धार्मिक योग-जिज्ञासु-सज्जन इन पुस्तकों का श्रद्धा और रुचि से विशेष अध्ययन करेंगे जिससे योग के वास्तविक स्वरूप को जान सकें।

इसके साथ मैं श्री सुमेरु प्रसाद जी 'दर्शनाचार्य' को आशीर्वाद देता हूँ कि वे ईश्वर की कृपा से स्वस्थ हों, दीर्घायु हों और योगमार्ग पर चलते हुए शिविर के मूल उद्देश्य ईश्वर-साक्षात्कार तक पहुँचे तथा अन्यों को भी ईश्वर-साक्षात्कार करवाने का प्रयास करते रहें।

स्वामीसत्यपति

वैशाख कृष्णा ४/२०६९
८ अप्रैल २०१२

स्वामी सत्यपति परिव्राजक

TEL : +91(02770) 287417, 291498, 291555, 291717 • EMAIL : vaanaprastharojad@gmail.com • WEBSITE : www.vaanaprastharojad.org

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

॥ओ३म्॥

वानप्रस्थ साधक आश्रम

Vaanprasth Saadhak Aashram

(साधना, स्वाध्याय, सेवा तथा वैदिक विद्वान, वानप्रस्थियों एवं संन्यासियों के निर्माण हेतु भव्य परियोजना)

आर्य वन, रोजड़, पत्रा. : सागपुर, जि. सावरकांठा-३८३ ३०७, गुजरात, भारत
Aaryavan, Rojad, Po. : Sagapur, Dist. : Sabarkantha-383 307, Gujarat, India

ट्रस्ट रजिस्ट्रेशन क्रमांक ई-२७३२/सा.कां.

शुभेच्छा सन्देश

शास्त्रकारों ने मानव जीवन का मुख्य लक्ष्य समस्त दुःखों से छूटकर पूर्ण आनन्द को प्राप्त करना बताया है। दुःख की उत्पत्ति अविद्या के कारण होती है और अविद्या का समूल नाश तत्त्वज्ञान अर्थात् विशेष आध्यात्मिक ज्ञान-विज्ञान से होता है। यह तत्त्वज्ञान समाधि अवस्था में ईश्वर के साक्षात्कार से उपलब्ध होता है। परन्तु श्रेयमार्ग के पथिक आध्यात्मिक जिज्ञासुओं के लिए समाधि की प्राप्ति व मुक्ति के परमानन्द की अनुभूति कराने वाली इस ब्रह्मविद्या का प्रथम सैद्धान्तिक रूप में परिज्ञान गुरुमुख से अवश्य करना चाहिए क्योंकि इस पराविद्या के व्यावहारिक जानकार किसी त्यागी, तपस्वी, ब्रह्मनिष्ठ, तत्ववेत्ता के मुखारविन्द से श्रवण किया हुआ ज्ञान असन्दिग्ध तथा शीघ्र फलदायी होता है।

वर्त्तमान के मनुष्य समाज में इस अलौकिक आनन्द देने वाली पराविद्या का पठन-पाठन लुप्त-सा हो गया है अथवा यह कहना चाहिए कि लोगों ने इस विद्या-प्राप्ति को अपनी जीवनचर्या में से निकाल कर फेंक दिया। परिणाम स्वरूप आज का मानव-समाज स्वछन्द होकर मात्र उद्याम भोगों को भोगने में ही सर्वथा प्रवृत्त हो गया है। आज इस पराविद्या के न तो कुशल उपदेशक सुलभ हैं और न ही योग्य श्रोता। यदि कहीं कोई उपलब्ध भी है, तो दोनों का समायोजन नहीं हो पा रहा है। उनके समक्ष स्थान, साधन, जलवायु, स्वतन्त्रता आदि से सम्बद्ध विविध बाधायें उपस्थित हो जाती हैं।

पुनरपि एक संयोग वा हमारा सौभाग्य रहा कि इस परिस्थिति में योगनिष्ठ पूज्य स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक ने अपने इस वानप्रस्थ साधक आश्रम में अध्यात्म जिज्ञासुओं के लिए सन् 2003 में एक त्रैमासिक शिविर का आयोजन किया। उसी शिविर में आचार्य सुमेरु प्रसाद जी दर्शनाचार्य ने गुरुमुख से श्रवित विषयों को संक्षेप में लिपिबद्ध किया था और उससे 'ब्रह्ममेधा' नामक पुस्तक का सर्जन हुआ। यद्यपि इस ब्रह्ममेधा में पराविद्या से सम्बन्धित महत्त्वपूर्ण विषयों का उल्लेख हो चुका है, पुनरपि जैसा कि प्रायः अध्येताओं की जिज्ञासा होती है कि मै प्रस्तुत विषयों को और अधिक स्पष्टता तथा विस्तार से जानूँ, तो उनके लिए विस्तृत व्याख्यान की अपेक्षा हो जाती है। इसी परिप्रेक्ष्य में लम्बे काल से अनेक जिज्ञासुओं की माँग थी कि इन विषयों से सम्बन्धित विस्तृत ग्रन्थ का प्रकाशन हो। तो अब अब सम्पन्न हो गया।

आचार्य जी ने वर्षो तक, शान्त-एकान्त स्थल पर गम्भीरता पूर्वक मनन, चिन्तन, निदिध्यासन करके, परम पुरुषार्थ के साथ स्वामी जी द्वारा उपदिष्ट ब्रह्मविद्या के गूढ़ विषयों का विस्तार और अधिक सरल बनाने का प्रयास किया है, जो वस्तुतः स्तुत्य, प्रशंसनीय और प्रभावशाली है। निश्चित् ही इस 'बृहती ब्रह्ममेधा' ग्रन्थ से देवयान पथिकों का मार्ग प्रशस्त होगा, उनकी अनेक भ्रान्तियाँ दूर होंगी और वे संशयरहित होकर जीवन के परम लक्ष्य को त्वरित गति से प्राप्त करने में समर्थ हो सकेंगे, इसी आशा तथा विश्वास के साथ.....

शुभेच्छुक

दिनांक : १९/०४/२०१२

ज्ञानेश्वरार्य

ज्ञानेश्वरार्य

अधिष्ठाता, वानप्रस्थ साधक आश्रम

TEL : +91(02770) 287417, 291496, 291555, 291717 • EMAIL : vaanaprastharojad@gmail.com • WEBSITE : www.vaanaprastharojad.org

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन योग महाविद्यालय

(वैदिक दर्शन अध्यापन एवं ध्यान योग प्रशिक्षण का आदर्श संस्थान)
आर्यवन, रोजड़, पत्रालय-सागपुर, जिला-साबरकांठा (गुजरात) ३८३३०७
दूरभाष : (०२७७०)२८७४१८, (०२७७४)२७७२१७

Darshan Yog Mahavidyalaya

(Unique & Ideal Educational Institution for Vedic Darshan & Meditation)
Aryavan, Rojad, Post- Sagpur, Dist- Sabarkantha, (Gujarat) PIN : 383 307
Phone : +91-2770-287418, +91-2774-277217

प्रकाशकीयम्

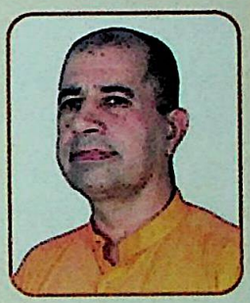

आज पूरे संसार पर भौतिकता का आधिपत्य निरन्तर बढ़ता जा रहा है। इस वातावरण का इतना अधिक प्रभाव हो रहा है कि व्यक्ति खुले रूप में नास्तिक बनकर जीने में अपना अहोभाग्य समझ रहा है। मानव जीवन के अन्तिम लक्ष्य मोक्ष को भुलाकर केवल अधिकाधिक लौकिक सुख को पा लेने में ही स्वयं को कृतकृत्य समझने लगा है। यद्यपि परिणाम विपरीत आ रहे हैं। व्यक्ति राग-द्वेष, लोभ-मोह के जाल में फंसता हुआ दिनोंदिन दुःख को प्राप्त होता जा रहा है। अतः इससे यही सिद्ध होता है कि व्यक्ति सन्मार्ग से भटकता जा रहा है। वस्तुतः ऋषियों ने बताया

अथ त्रिविधदुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः। सांख्य १/१।

आधिदैविक, आधिभौतिक और आध्यात्मिक दुखों की पूर्ण निवृत्ति तथा ईश्वर के आनन्द की प्राप्ति में ही जीवन की कृतकृत्यता है।

प्रणतिब्रह्मचर्योपसर्पणानि कृत्वा सिद्धिर्बहुकालात्। सांख्य ४/१९।

विनम्रता पूर्वक लम्बे काल तक गुरु के अनुशासन में रहते हुए योगाभ्यास के माध्यम से इसमें सफलता प्राप्त होती है।

आज से नौ वर्ष पूर्व इन्हीं उद्देश्यों को लेकर पूज्य गुरुवर स्वामी सत्यपति जी महाराज ने दर्शन योग महाविद्यालय के कुछ वरिष्ठ स्नातकों एवं अध्यात्म में रुचि रखने वाले बाहर के कुछ बड़ी आयु के ब्रह्मचारियों को तीन महीने तक योगाभ्यास का प्रशिक्षण दिया था। विद्यालय में अध्यापन तथा प्रचार कार्य में संलग्न होने के कारण मैं पूर्ण रूप से उस शिविर में तो भाग नहीं ले पाया था। पुनरपि यथावसर यज्ञीयोपदेश आदि कुछ-कुछ कक्षाओं में भाग लिया था। आचार्य सुमेरु प्रसाद जी उस शिविर में नियमित रूप से पूरे काल तक भाग लेते रहे और गुरुजी के द्वारा प्रस्तुत पूरे विषयों का मनोयोग से संग्रह करते रहे।

उन्हीं विषयों को संकलित कर इन्होनें एक बृहदाकार ग्रन्थ का रूप दिया है जो बृहतीब्रह्ममेधा के नाम से प्रकाशित होने जा रहा है। प्रशिक्षण के अन्तराल में गुरु जी के द्वारा योगाभ्यास के विषय में जो विस्तार से चर्चा की गई थी उसे प्रायशः उन्हीं की भाषा और शैली में प्रस्तुत किया गया है जिससे सर्वसाधारण के लिए भी यह ग्रन्थ हृदयग्राही एवं श्रद्धास्पद रहेगा।

मैं विद्यालय की ओर से इस पुस्तक के प्रकाशन हेतु अपनी सहर्ष अनुमति तथा शुभकामना प्रकट करता हूँ तथा आशा करता हूँ कि इस प्रकाशन से जहाँ गुरुजी की आध्यात्मिक निधि की सुरक्षा होगी वहाँ जन साधारण को भी विशेष लाभ होगा। विशेषकर योगाभ्यास के क्षेत्र में प्रयत्नशील अभ्यासियों को मार्गदर्शन व प्रेरणा प्राप्त होगी।

भवदीय

दिनांक : १९/०४/२०१२

स्वामी विवेकानन्द परिव्राजक
निदेशक, दर्शन योग महाविद्यालय

E mail : darshanyog@gmail.com • website : www.darshanyog.org

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुभूमिका

पुस्तक की भूमिका के रूप में प्रायः बातें 'ब्रह्ममेधा' की भूमिका में आ चुकी है। पाठक उनको वहीं देख लेंगे। कुछ विशेष आवश्यक बातें यहाँ प्रस्तुत की जा रही है।

शिविर को सम्पन्न हुए ९ वर्ष बीत गए। 'बृहती ब्रह्ममेधा' के प्रकाशन के रूप में आज हमारी एक चिराभिलषित कामना पूर्ण होने जा रही है। यद्यपि दर्शन योग महाविद्यालय में पढ़ी- सुनी बातों को संचित करने की मेरी स्वाभाविक प्रवृत्ति रही, परन्तु उसमें संचय को अपने पास तक ही सुरक्षित रखने की सोच थी। कालान्तर में अध्यात्म सरोवर के प्रकाशन से उस मनोवृत्ति में अन्तर आया। ज्ञान-विज्ञान को जितना अधिक प्रसारित किया जाए उतना ही उत्तम है, यह भाव पुनः मन में आ गया। इसी भाव को लेकर मैं इस कार्य में प्रवृत्त हुआ । इस पुस्तक के प्रकाशन से यह भी लाभ दिखाई दिया कि पूज्य स्वामी सत्यपति जी महाराज की अनुभूत अध्यात्मिक निधि की बहुत अंशों में सुरक्षा हो सकेगी।

यद्यपि ब्रह्ममेधा के नाम से प्रायः सारभूत बातें प्रकाशित हो चुकी हैं परन्तु उसमें सभी बातें नहीं आ पाई थीं। जैसे कि साधक को उस काल में किस रूप में प्रशिक्षण दिया जा रहा था। बताते समय गुरु और शिष्यों के मध्य न चाहते हुए भी कैसी-कैसी स्थितियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा कैसे उसका निराकरण होता है। आरम्भिक काल में शिविरार्थियों का क्या स्तर होता है और अन्त तक उनमें क्या-क्या परिवर्त्तन आ जाते हैं आदि।

विशेष रूप से जिन साधकों या श्रोताओं ने उस शिविर में भाग लिया था, शिविर के समापन तक उनको क्या-क्या उपलब्धियाँ हुईं, इसमें वे उनके ही शब्दों में अक्षरशः सुरक्षित हो गई हैं। इनको पढ़कर उनकी वे अनुभूतियाँ आज भी सक्रिय हो जाएँगी अथवा उनके आश्रय से वे साधक अपने वर्त्तमान स्तर की तुलना भी कर सकते हैं। पू. स्वामी जी के द्वारा तब जो संकेत या सावधानियाँ व्यक्त की गई थीं, उनको कितना चरितार्थ किया या नहीं, पुनः उससे क्या लाभ हुआ या क्या हानि हुई, इनका अवश्य तुलनात्मक अनुभव होगा। इसके आधार पर वे अपना अगला जीवन भी संचालित कर सकते हैं तथा अन्यों को प्रेरित कर सकते हैं, उनका मार्गदर्शन कर सकते हैं। विशेषकर वैदिक आर्ष सिद्धान्तों के आधार पर साधनारत साधकों के लिए यह संस्करण मेरी दृष्टि से अत्यन्त सहायक रहेगा। पग-पग पर उन्हें मार्गदर्शन मिलेगा। यदि कहा जाए कि यह संग्रह उन्हीं साधकों के लिए है तो कोई अतिशयोक्ति नहीं होगी।

उस त्रैमासिक शिविर में सामान्य रूप से रविवार को दो और अन्य दिनों में चार-चार कक्षाएँ होती थीं। उनका नामकरण हमने इस रूप में किया है -

प्रथम - यज्ञीयोपदेश। यह कक्षा प्रातःकाल दैनिक यज्ञ के उपरान्त होती थी। यज्ञकाल में उपदिष्ट होने से इन प्रवचनों का नाम यज्ञीयोपदेश रखा है। इसमें भिन्न-भिन्न दिनों के जो- जो विषय थे, उनका तिथि व दिनांक के साथ संकेत कर दिया है।

द्वितीय - क्रियात्मक योगाभ्यास। यह कक्षा पूर्वाह्न में होती थी। इसमें प्रायः किसी वेदमन्त्र को लेकर अर्थसहित जप और ध्यान व मनोनियन्त्रण के प्रयोगों का अभ्यास करवाया जाता था। मनोनियन्त्रण आदि का क्रियात्मक स्वरूप इसमें विशेष रूप से बताया जाता था। अतः इसका नाम क्रियात्मक योगाभ्यास रखा है। साधकों को स्वाध्याय में सुविधा हो, इस दृष्टि से इन मन्त्रोंसहित सभी कक्षाओं में प्रयुक्त मन्त्रों का संकलन परिशिष्ट के रूप में तृतीय भाग में दिया गया है। इनके अतिरिक्त पुस्तक में प्रमाण के रूप में बहुत से सूत्र, वाक्य आदि दिए गए हैं जिनमें प्रायः के पते दे दिए हैं। किन्तु अनुलब्ध होने से सबके नहीं दे पाए हैं। उनका अन्वेषण भी समय की अपेक्षा रखता है। अतः उपलब्ध हो जाने पर उनके पते यथावसर ही संग्रहीत हो पाएँगे। इस धृष्टता के क्षमाप्रार्थी रहूँगा।

तीसरी कक्षा का नाम ज्ञानखण्ड है। इसमें विवेक-वैराग्य व सिद्धान्त से सम्बन्धित बातें होती थीं, जो कि योगाभ्यासी के लिए अत्यन्त आवश्यक हैं। इसमें स्वामी जी ने योगदर्शन के अनित्याशुचि ...सूत्र के आधार पर विद्या-अविद्या और अपने वैराग्य के प्रमुख उपाय प्रलयावस्था का विशेष वर्णन किया है। साधक की मानसिक तथा व्यावहारिक अवस्था कैसी होनी चाहिए आदि विषयों को विशेष रूप से स्पष्ट किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस शिविर में अहमदाबाद विश्वविद्यालय के अन्तरिक्ष विज्ञान विभाग के विभागाध्यक्ष पद से सेवानिवृत्त वैज्ञानिक डॉ. सत्यदेव जी वर्मा भी श्रोता के रूप में पूरे समय तक भाग लेते रहे। अहमदाबाद आने से पूर्व वर्मा जी मुम्बई में डॉ. भाभा के साथ भी काम कर चुके हैं तथा अमेरिका के अन्तरिक्ष केन्द्र नासा में अनुसन्धान कार्य करते रहे हैं। वैदिक दर्शनों में उनकी गहरी रुचि है तथा स्वामी जी के प्रति उनमें अत्यधिक श्रद्धा है। इस कक्षा में प्रायः इनको समय दिया जाता था और वे ईश्वर को जानने में विज्ञान कैसे उपकारी है, इस विषय में व्याख्यान किया करते थे। उनकी भाषा में अंग्रेजी की बहुलता थी और मेरी अंग्रेजी की अनभिज्ञता के कारण वह विषय पूरी तरह संगृहीत नहीं हो पाया। हमसे जिस रूप में ग्रहण हो पाया, उस रूप में हमने प्रस्तुत कर दिया है। पुनरपि इस पुस्तक में वर्मा जी के व्याख्यानों से सम्बन्धित जो भी बातें हैं, उनके विषय में वे या अन्य विज्ञानविद् ही प्रमाण होंगे। मैं उनका दायित्व लेने में सर्वथा असमर्थ हूँ। हमने केवल उपलक्षणमात्र यहाँ दे दिया है। अतः किसी को कोई आपत्ति या सन्देह हो अथवा विशेष जानकारी की अपेक्षा हो तो कृपया वे उन महानुभावों से सम्पर्क करें।

चौथी कक्षा का नाम आत्मनिरीक्षण है। इस कक्षा में साधक की दिनभर की गतिविधियों को पूछने के उपरान्त जो भी प्रसंगानुकूल बातें होती थीं, उन्हें स्वामी जी बता दिया करते थे। साधक द्वारा बताई गई दैनिक बातों का संग्रह इसमें नहीं किया गया है क्योंकि वे उनकी व्यक्तिगत दिनचर्या से सम्बद्ध थीं तथा अन्यों के लिए कोई आवश्यक नहीं हैं। जो कोई प्रासंगिक लगी, उसका संकलन कर दिया है।

इन चारों कक्षाओं का आरम्भ मन्त्रोच्चारण के साथ होता था। जिसमें यज्ञीयोपदेश में जप करवाए जाने के कारण मन्त्र बदलते रहते थे। शेष क्रियात्मक योगाभ्यास में गायत्री मन्त्र, ज्ञानखण्ड में गायत्री मन्त्र और सह नाववतु तथा आत्मनिरीक्षण में विश्वानि देव से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना की जाती थी। समानता के कारण आरम्भ में हमने ये मन्त्र दे दिए हैं किन्तु आगे नहीं दिए हैं। आगे पाठक कृपया अध्याहार कर लेंगे।

इस पुस्तक में अन्य बहुत से प्रसंग ऐसे हैं, जो पुनःपुनः आए हैं। उनके विषय में किसी- किसी पाठक को ऐसा लग सकता है कि इतनी बड़ी पुस्तक है, परन्तु पुनरुक्तियों से भरी पड़ी है तो उनकी बात मेरे लिए सहन करने योग्य है। यद्यपि मैंने उन्हें इसलिए नहीं हटाया कि उनके बिना प्रवाह टूटता है। दूसरा कारण यह है कि उनकी आवृत्ति साधक के लिए अत्यावश्यक है क्योंकि उससे कई नवीन बातें स्पष्ट रूप से समझ में आती हैं। वैसे भी शास्त्र के द्वारा 'आवृत्तिरसकृदुपदेशात्' का विधान किया ही गया है।

इनके अतिरिक्त इस पुस्तक में ऐसे अनेक ऐसे स्थल या प्रसंग हैं जिनकी पूरी स्पष्टता अभी मुझे भी नहीं है। पुनरपि पूज्य स्वामी जी के द्वारा उनका उपदेश हुआ है। अतः संग्रह की दृष्टि से उनका संकलन अनिवार्य था। रही बात स्पष्ट करने की, तो वह कभी हो जाएगी। क्योंकि सत्य तो शाश्वत् होता है, वह कभी न कभी किसी के द्वारा तो प्रकट होगा ही। जैसा कि इन नौ वर्षों के अन्तराल में अब इतना अन्तर तो दिखाई देता कि शिविर काल में जो विषय सर्वथा अनवगम्य थे आज ज्ञात हो गए, बहुत से अस्पष्ट स्पष्ट हो गए। कतिपय मान्यताओं में भी भेद दिखाई दे रहा है। अतः उन कुछ प्रसंगों को आगम मानकर ही मैं भी चल रहा हूँ। कुछ विचाराधीन हैं, जो आज नहीं तो कल स्पष्ट हो जाएँगे। मैं समझता हूँ पाठकों के समक्ष जब ऐसी स्थिति आए तो स्पष्टता के लिए धैर्य पूर्वक प्रतीक्षा करेंगे।

पुस्तक में प्रमाण के रूप में बहुत से मन्त्र, सूत्र, वाक्य आदि दिए गए हैं जिनमें प्रायः के पते दे दिए हैं। किन्तु अनुलब्ध होने से सबके नहीं दे पाए है। उनका अन्वेषण भी समय की अपेक्षा रखता है। अतः उपलब्ध हो जाने पर उनके पते यथावसर ही संगृहीत हो पाएँगे। इस न्यूनता के लिए क्षमाप्रार्थी रहूँगा।

पाठक महानुभाव ! इस बात का विशेष ध्यान रखेंगे कि आपको इस पुस्तक में ऐसी बहुत-सी बातें पढ़ने को मिलेंगी जिनमें ऐसा लगेगा कि स्वामी जी ने यहाँ किसी को अच्छा और किसी को बुरा कहा है। परन्तु यथार्थ में वैसा नहीं है। वह अनर्थ आपका अपना होगा, राग-द्वेष कारक होगा, मानापमान का कारण बनेगा। अतः उसे कृपया उस रूप में ग्रहण नहीं करेंगे। वस्तुतः गुरु के द्वारा जो कोई सार्वजनिक बात शिष्य या सत्संगी के निमित्त से कही जाती है वह केवल उसी के लिए हो, व्यक्तिगत हो, ऐसा नहीं होता। वह गुरुवचन उपदेश होता है, सार्वभौम होता है। स्वयं को तोलने के लिए होता है। अतः इसी दृष्टि से उसका ग्रहण करेंगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशन में विलम्ब का मुख्य कारण तो कलेवर की बृहत्ता ही रही। उसके साथ दो-तीन बार स्वयं तथा अन्यों के द्वारा पाण्डुलिपि का निर्माण करना-कराना पड़ा। उसी कारण से लेख-संशोधन में समय का अतिक्रमण हुआ। पूरा एक वर्ष तो मीमांसा अध्ययन के कारण कार्य स्थगित रहा। पुनरपि ईशकृपा से तीन भागों में यह संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है।

अब मैं उस परम कृपालु, अपार दयासिन्धु परमात्मा का कोटिशः धन्यवाद करता हूँ जिनके कृपाकटाक्ष से पठनपाठन, चिन्तनमनन, योगाभ्यास आदि करते हुए तथा छिटपुट बाधाओं को पार करते हुए इस सत्कार्य में लगा रहा।

इसके अन्तर पूज्य गुरुवर स्वामी सत्यपति जी महाराज, जिनके मुखारवृन्द से यह वाणी प्रकट हुई और मैंने उसे एक पुस्तक का रूप दिया। अब मैं इसे पूज्य स्वामी जी महाराज को ही समर्पित कर रहा हूँ तथा उनके प्रति अत्यन्त कृतज्ञ हूँ। मुझे इस बात से अत्यन्त हर्ष है कि जिन्होंने अपने सान्निध्य के साथ-साथ यह पावनी विद्या प्रदान की। इस शिविर से विशेषकर मैं अपनी कायापलट का साक्षी हूँ। अतः मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस ग्रन्थ के माध्यम से अन्यों का भी अति उपकार होगा, जिसे कृतार्थ होने वाले ही जान सकेंगे।

इसके पश्चात् दर्शन योग महाविद्यालय के तत्कालीन आचार्य, देश-विदेश में आर्य जगत् में लब्ध-प्रतिष्ठ श्री आचार्य ज्ञानेश्वर जी का धन्यवाद करता हूँ, जिनकी उदारता व अथक पुरुषार्थ से वानप्रस्थ साधक आश्रम, आर्यवन, रोजड़ में सुव्यवस्थित व निर्बाध रूप में विद्यालय की ओर से यह शिविर सम्पन्न हो सका। साथ ही दर्शन योग महाविद्यालय के वर्त्तमान सर्वेसर्वा व निदेशक स्वामी विवेकानन्द जी परिव्राजक का धन्यवाद करता हूँ जिनकी छत्रछाया में विद्यालय की ओर से यह प्रकाशन सम्भव हो पाया।

इस पुस्तक के तृतीय भाग में वाक्यों की संरचना व अस्पष्ट स्थलों के परिष्कार में आचार्य सत्यजित् जी का पर्याप्त सहयोग मिला। उनके बिना यह कार्य अधूरा था। अतः मैं उनका हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

कई कारणों से तृतीय भाग का सम्पादन तो पहले हो गया किन्तु प्रथम भाग तथा द्वितीय भाग का सम्पादन पश्चात् हो पाया और इसमें वर्षों का अन्तराल रहा। इन दोनों भागों की पाण्डुलिपियाँ भी तीसरी बार करानी पड़ी, जिससे यह कार्य बहुत श्रमसाध्य हो गया। परन्तु इसके लिए आर्थिक सहयोग के साथ-साथ अपने व्यक्तियों को देकर डॉ. राधावल्लभ जी चौधरी, जबलपुर ने इसे सरलता से सम्पन्न करवा दिया। इसके लिए मैं उनका बहुत ही कृतज्ञ हूँ।

इन दोनों भागों में यदि प्रिय उमाशंकर जी का सहयोग नहीं मिला होता तो यह कार्य सम्भवतः निरस्त हो गया होता, नहीं तो कम से कम और तीन-चार वर्ष आगे चला जाता। उन्होंने अति प्रतिकूल परिस्थिति में रहते हुए, अपने स्वास्थ्य की चिन्ता न करके, दिनरात एक करके, आरम्भ से अन्त तक स्वामी जी के प्रवचनों को सुन-सुनकर, प्रायः अक्षरशः वाक्य-पदों का समायोजन किया। तब जाकर यह कार्य सम्भव हो पाया। अतः मैं उमाशंकर जी के प्रति कृतज्ञता प्रकट करता हूँ तथा ईश्वर से उनके चिरायुष्य व कल्याण की कामना करता हूँ।

इनके उपरान्त मैं अपने विद्यालय के व्यवस्थापक श्री दिनेश कुमार जी का अत्यन्त आभारी हूँ जिन्होंने मुझे विद्यालय की सारी व्यवस्थाओं से निश्चिन्त रखा। इनके साथ ब्र. प्रियेश जी जिनके अथक प्रयास से यह प्रकाशन सम्भव हो पाया का भी अतिशय धन्यवाद करता हूँ। संशोधन कार्य में विशेष सहयोगी ब्र. चन्द्रगुप्त जी के मंगल भविष्य की कामना करता हूँ।

तन-मन-धन से विशेष सहयोग देने वाले अन्यान्य महामना, जिनमें से कुछ नहीं रहे तथा शेष सकुशल हैं। परन्तु उन्होंने अपने सहयोग के प्रकाशन का प्रतिषेध किया है। पुनरपि मैं कुछ सांकेतिक धृष्टता के साथ उनका भूरिशः धन्यवाद करता हूँ। अब विराम॥

विद्वद्-विधेय

सुमेरु प्रसाद दर्शनाचार्य,

आचार्य, दर्शन योग महाविद्यालय, आर्यवन,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषय सूची बृहती ब्रह्मामेधा

प्रवचन सं.	कक्षा	विषय	तिथि	दिनांक	पृष्ठ संख्या
००१.	शिविर गतिविधि	जीवन लक्ष्यबोध	आषाढ़ शु.१०	०९/०७/०३	०१
००२.	शिविर गतिविधि	लक्ष्य-प्रधानता	आषाढ़ शु.१०	०९/०७/०३	०७
००३.	शिविर गतिविधि	यम-नियम	आषाढ़ शु.१०	०९/०७/०३	१९
००४.	यज्ञीयोपदेश	निर्णय परीक्षण	आषाढ़ शु.११	१०/०७/०३	२२
००५.	क्रिया. योग	निर्णय परीक्षण	आषाढ़ शु.११	१०/०७/०३	२९
००६.	यज्ञीयोपदेश	मंगलाचरण	आषाढ़ शु.१२	११/०७/०३	४३
००७.	क्रिया. योग	निर्विषयता	आषाढ़ शु.१२	११/०७/०३	४७
००८.	ज्ञानखण्ड	ज्ञान	आषाढ़ शु.१२	११/०७/०३	५१
००९.	आत्मनिरीक्षण	परिभाषा व स्वरूप	आषाढ़ शु.१२	११/०७/०३	६०
०१०.	यज्ञीयोपदेश	कर्म	आषाढ़ शु.१४	१२/०७/०३	६३
०११.	क्रिया. योग	योग्य आत्मादि-निर्माण	आषाढ़ शु.१४	१२/०७/०३	६९
०१२.	ज्ञानखण्ड	विद्याग्रहणपद्धति	आषाढ़ शु.१४	१२/०७/०३	७७
०१३.	आत्मनिरीक्षण	अनुशासन	आषाढ़ शु.१४	१२/०७/०३	८३
०१४.	यज्ञीयोपदेश	विधिपूर्वानुष्ठान	आषाढ़ पूर्णिमा	१३/०७/०३	९०
०१५.	क्रिया. योग	उपायसंचय	आषाढ़ पूर्णिमा	१३/०७/०३	९५
०१६.	ज्ञानखण्ड	मृत्युनिश्चय	आषाढ़ पूर्णिमा	१३/०७/०३	९९
०१७.	आत्मनिरीक्षण	मनोनिग्रह	आषाढ़ पूर्णिमा	१३/०७/०३	११०
०१८.	यज्ञीयोपदेश	व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध	आषाढ़ कृ.१	१४/०७/०३	११५
०१९.	क्रिया. योग	वृत्तिनिरोध	आषाढ़ कृ.१	१४/०७/०३	१२२
०२०.	ज्ञानखण्ड	उत्पत्ति-विनाश	आषाढ़ कृ.१	१४/०७/०३	१३५
०२१.	आत्मनिरीक्षण	दिनचर्या	आषाढ़ कृ.१	१४/०७/०३	१४५
०२२.	यज्ञीयोपदेश	प्रयोग	आषाढ़ कृ.२	१५/०७/०३	१५१
०२३.	क्रिया. योग	मनोनियन्त्रण	आषाढ़ कृ.२	१५/०७/०३	१५७
०२४.	ज्ञानखण्ड	विनाश प्रक्रिया	आषाढ़ कृ.२	१५/०७/०३	१६६
०२५.	आत्मनिरीक्षण	रसना-अविरति	आषाढ़ कृ.२	१५/०७/०३	१७३
०२६.	यज्ञीयोपदेश	साध्य-साधन-साधक	आषाढ़ कृ.३	१६/०७/०३	१७९
०२७.	क्रिया. योग	पुरुषार्थ,स्वानुभव	आषाढ़ कृ.३	१६/०७/०३	१८६
०२८.	ज्ञानखण्ड	नाशवान् प्रेक्षण	आषाढ़ कृ.३	१६/०७/०३	१९०
०२९.	आत्मनिरीक्षण	दण्ड	आषाढ़ कृ.३	१६/०७/०३	१९८

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवचन सं.	कक्षा	विषय	तिथि	दिनांक	पृष्ठ संख्या
०३०.	यज्ञीयोपदेश	पुरुषार्थ प्रयोग	आषाढ़ कृ.४	१७/०७/०३	२०२
०३१.	क्रिया. योग	साधन-संग्रह	आषाढ़ कृ.४	१७/०७/०३	२०६
०३२.	ज्ञानखण्ड	नश्वरता	आषाढ़ कृ.४	१७/०७/०३	२१२
०३३.	आत्मनिरीक्षण	अभ्यास	आषाढ़ कृ.४	१७/०७/०३	२१९
०३४.	यज्ञीयोपदेश	विधि	आषाढ़ कृ.५	१८/०७/०३	२२३
०३५.	क्रिया. योग	प्रयोग	आषाढ़ कृ.५	१८/०७/०३	२२८
०३६.	ज्ञानखण्ड	शरीरनाश विधि	आषाढ़ कृ.५	१८/०७/०३	२३४
०३७.	आत्मनिरीक्षण	शरीरविषयक प्रयोग	आषाढ़ कृ.५	१८/०७/०३	२३९
०३८.	यज्ञीयोपदेश	उपासना विधि	आषाढ़ कृ.६	१९/०७/०३	२४३
०३९.	क्रिया. योग	आत्मविषयकप्रयोग	आषाढ़ कृ.६	१९/०७/०३	२४६
०४०.	ज्ञानखण्ड	आसन, प्रलय	आषाढ़ कृ.६	१९/०७/०३	२५५
०४१.	आत्मनिरीक्षण	ज्ञानसंशोधन, स्वानुभव	आषाढ़ कृ.६	१९/०७/०३	२६२
०४२.	यज्ञीयोपदेश	ईश्वरीय-सम्बन्ध	आषाढ़ कृ.७	२०/०७/०३	२६७
०४३.	आत्मनिरीक्षण	प्रश्नोत्तर	आषाढ़ कृ.७	२०/०७/०३	२७०
०४४.	यज्ञीयोपदेश	ईश्वर सव्यवहार	आषाढ़ कृ.८	२१/०७/०३	२७५
०४५.	क्रिया. योग	विक्षेपनिवारण	आषाढ़ कृ.८	२१/०७/०३	२७७
०४६.	ज्ञानखण्ड	प्रलयोपलब्धि	आषाढ़ कृ.८	२१/०७/०३	२८६
०४७.	आत्मनिरीक्षण	चित्तस्थिति	आषाढ़ कृ.८	२१/०७/०३	२९५
०४८.	यज्ञीयोपदेश	उपासना विधि	आषाढ़ कृ.९	२२/०७/०३	३०१
०४९.	क्रिया. योग	पापविनाश	आषाढ़ कृ.९	२२/०७/०३	३०५
०५०.	ज्ञानखण्ड	प्रलयावस्था	आषाढ़ कृ.९	२२/०७/०३	३११
०५१.	आत्मनिरीक्षण	बाधा	आषाढ़ कृ.९	२२/०७/०३	३१८
०५२.	यज्ञीयोपदेश	विधिसज्जा	आषाढ़ कृ.१०	२३/०७/०३	३२४
०५३.	क्रिया. योग	सन्ध्याप्रशिक्षण	आषाढ़ कृ.१०	२३/०७/०३	३२७
०५४.	ज्ञानखण्ड	ईश्वरानुभूति	आषाढ़ कृ.१०	२३/०७/०३	३३८
०५५.	आत्मनिरीक्षण	वचनबाधा	आषाढ़ कृ.१०	२३/०७/०३	३४९
०५६.	यज्ञीयोपदेश	उपासनासज्जा	आषाढ़ कृ.११	२४/०७/०३	३५५
०५७.	क्रिया. योग	पुरुषार्थ	आषाढ़ कृ.११	२४/०७/०३	३६१
०५८.	ज्ञानखण्ड	संस्कार	आषाढ़ कृ.११	२४/०७/०३	३७२
०५९.	आत्मनिरीक्षण	विषयनिर्धारण	आषाढ़ कृ.११	२४/०७/०३	३७९

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रवचन सं.	कक्षा	विषय	तिथि	दिनांक	पृष्ठ संख्या
०६०.	यज्ञीयोपदेश	उपासनानिवार्यता	आषाढ़ कृ.११	२५/०७/०३	३८७
०६१.	क्रिया. योग	सन्ध्या	आषाढ़ कृ.११	२५/०७/०३	३९४
०६२.	ज्ञानखण्ड	जप	आषाढ़ कृ.११	२५/०७/०३	४०४
०६३.	आत्मनिरीक्षण	चित्तस्थिति	आषाढ़ कृ.११	२५/०७/०३	४१३
०६४.	यज्ञीयोपदेश	ईश्वर ही सर्वस्व	आषाढ़ कृ.१२	२६/०७/०३	४१९
०६५.	क्रिया. योग.	व्याप्यव्यापकभाव	आषाढ़ कृ.१२	२६/०७/०३	४२४
०६६.	ज्ञानखण्ड	विनाश-प्रयास	आषाढ़ कृ.१२	२६/०७/०३	४३२
०६७.	आत्मनिरीक्षण	वृत्तिनिरीक्षण	आषाढ़ कृ.१२	२६/०७/०३	४४०
०६८.	यज्ञीयोपदेश	त्रिकर्मविधि	आषाढ़ कृ.१३	२७/०७/०३	४४६
०६९.	आत्मनिरीक्षण	स्वामित्व	आषाढ़ कृ.१३	२७/०७/०३	४५३
०७०.	यज्ञीयोपदेश	जीवात्मा	आषाढ़ कृ.१४	२८/०७/०३	४६०
०७१.	क्रिया. योग	स्तुति-प्रार्थनोपासना	आषाढ़ कृ.१४	२८/०७/०३	४६५
०७२.	ज्ञानखण्ड	निर्विषयता	आषाढ़ कृ.१४	२८/०७/०३	४७४
०७३.	आत्मनिरीक्षण	सम्मानभय	आषाढ़ कृ.१४	२८/०७/०३	४८२
०७४.	यज्ञीयोपदेश	योगाभ्यास	आषाढ़ अमावश्या	२९/०७/०३	४८७
०७५.	क्रिया. योग	सिद्धान्तनिर्णय	आषाढ़ अमावश्या	२९/०७/०३	४९२
०७६.	ज्ञानखण्ड	प्रलय-प्रयोग	आषाढ़ अमावश्या	२९/०७/०३	५००
०७७.	आत्मनिरीक्षण	बाहर-भीतर एकता	आषाढ़ अमावश्या	२९/०७/०३	५०५
०७८.	यज्ञीयोपदेश	उपासनाविधि	श्रावण शु.१	३०/०७/०३	५११
०७९.	क्रिया. योग	उपाय	श्रावण शु.१	३०/०७/०३	५१५
०८०.	ज्ञानखण्ड	सज्जा	श्रावण शु.१	३०/०७/०३	५२३
०८१.	आत्मनिरीक्षण	मनोविकारोद्भव	श्रावण शु.१	३०/०७/०३	५३२
०८२.	यज्ञीयोपदेश	अनुष्ठानदोष	श्रावण शु.२	३१/०७/०३	५४१
०८३.	क्रिया. योग	सहभाव	श्रावण शु.२	३१/०७/०३	५४६
०८४.	ज्ञानखण्ड	शिविरोपलब्धि	श्रावण शु.२	३१/०७/०३	५५४
०८५.	आत्मनिरीक्षण	स्थिति-प्रेक्षण	श्रावण शु.२	३१/०७/०३	५६०

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओ३म्

बृहती ब्रह्ममेधा

१ शिविर-गतिविधि

निज जीवन का लक्ष्य-बोध : आषाढ़ शुक्ल १०/२०६०-०९/०७/२००३

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ऋ१/१६४/३९।

अभी हम जो आप लोगों को ऊँचे स्तर पर योग विद्या को सिखाने हेतु तीन माह का एक कार्यक्रम करने जा रहे हैं, उसमें प्रशिक्षण की क्या गतिविधि होगी तथा उनसे सम्बन्धित और क्या-क्या आवश्यक बातें होती हैं, वे सब आपको अब भूमिका के रूप में बताई जाएँगी। अतः उन सब बातों को ध्यान से श्रवण करना, समझना, पुनः अच्छे प्रकार से लेखबद्ध कर लेना तथा व्यवहार में ले आना, ये सारे कार्य आपको करने पड़ेंगे।

यद्यपि ऋषिकृत ग्रंथो में अनेकत्र संकेत आया है कि मानव-जीवन का लक्ष्य मोक्ष-प्राप्त करना है पुनरपि 'करना और करवाना' इस सिद्धान्त पर हम विशेष बल देते हैं क्योंकि कभी किसी को यह संशय हो सकता है कि केवल स्वयं ही ईश्वर-प्राप्ति कर लेवें, अन्यों को न करवाएँ तो कोई दोष नहीं। वस्तुतः केवल स्वयं ही ईश्वर-प्राप्ति कर लेना, अन्यों को न करवाना उचित नहीं है। अतः स्वयं की तरह अन्यों की मुक्ति के लिए भी प्रयास करना, यही उचित है। इसकी पुष्टि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा कथित आर्यसमाज के छठे तथा नौवें नियम से भी होती है जिनमें उन्होंने कहा कि 'संसार का उपकार करना इस समाज का मुख्य उद्देश्य है' तथा 'अपनी उन्नति में ही सन्तुष्ट न रहना चाहिए किन्तु सबकी उन्नति में अपनी उन्नति समझनी चाहिए'।

वैसे तो ये सारी बातें प्रमाणों से सिद्ध हैं पर कभी-कभी गंभीरता से विचार न करने के कारण व्यक्ति ऐसा समझता है कि के वल मैं ही मोक्ष प्राप्त कर लूँ (अन्यों का हो या न हो, मेरा कोई कर्त्तव्य नहीं)। जबकि समाज, राष्ट्र या विश्व की स्थिति को बिना देखे-सम्भाले या अपनी बराबरी में रखे बिना, परिणाम यही होगा कि वह व्यक्ति स्वयं भी ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर पाएगा।

आपको आ गई बात समझ में या पुनः पुनः पूछना-बताना पड़ेगा? कई ऐसे विद्यार्थी होते हैं जिनको एक बार बता देने पर वे समझ लेते हैं किन्तु किसी को तीन बार बताओ तब समझ में आएगा। आप कौन से हैं? पहले का एक उदाहरण देता हूँ - जब तपोवन में लगभग एक मास का हमारा प्रथम शिविर लगा था। उसमें योग दर्शन का पाठ चलता था तो एक शिविरार्थी सतीश जी (अमेरिका वाले) थे, जो बताते थे कि मैं पहले पाठ को दोहराता हूँ, पुनः विचारता हूँ। उसके पश्चात् जो समझ में नहीं आता, उसको पूछ लेता हूँ। तो ऐसे को बार-बार बताने की आवश्यकता नहीं है किन्तु आप यदि ऐसा नहीं करते हैं तब आपको भी समझ में नहीं आएगा या बार-बार पूछना पड़ेगा। तो पहले बता दो आप किस स्तर वाले हैं? उत्तर क्यों नहीं दे रहे हैं?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी – अब तक जो बातें बताई हैं वे समझ में आई हैं। आगे जो आप बताएँगे तो हो सकता है, मुझे पूछना पड़े।

स्वामी जी – जैसे कि अभी जो बात कही इसमें कितनी सूक्ष्मता है, कितना रहस्य है, इसकी कल्पना करना अत्यन्त बुद्धिमान् का कार्य है। अर्थात् हम जिस स्तर पर अपनी मुक्ति चाहते हैं, तो क्या उसी स्तर पर तन-मन-धन से दूसरे को करवाना चाहते हैं या नहीं? अथवा मान लो कि आप जब अच्छा-अच्छा फल, घी-दूध, मिठाई, हलवा खा रहे हैं और आपके आस-पास अन्य ब्रह्मचारी बैठे हैं, तब आप सोचते हैं कि जैसे मुझे मिल रहे हैं ऐसे ही इनको भी मिलने चाहिएँ? या केवल अपना विशेष ध्यान रहता है, अन्यों का नहीं। चलो! आपका परीक्षण करते हैं, क्या सोचते हो आप बताओ? अच्छा! इसका ध्यान रखना कि यहाँ सिद्धान्त नहीं रखना है अपितु जो अन्दर है वही बताना है।

ब्रह्मचारी १ – समानता रखते हैं।

स्वामी जी – कहीं इस डर से तो नहीं कह रहे कि समाज कहेगा यह तो बहुत दुष्ट ब्रह्मचारी है, केवल अपना ही सोचता है। ऐसा तो नहीं है? इस मार्ग पर यह नहीं चलता। यहाँ तो जो अन्दर है वही बाहर बताना है।

ब्रह्मचारी २ – जितना अच्छा फल हमको मिलता है उतना अन्यों को भी मिले, यही भावना रखते हैं।

स्वामी जी – हाँ! ऐसी तुलना होती रहनी चाहिए और सतत यह भावना बनी रहे। इस बात पर ध्यान देना कि जो व्यक्ति बाहर-भीतर मन-वाणी-शरीर से एक होकर रहता है (व्यवहार करता है) वही इस विद्या को सीखता है। उसे तो यह विद्या पूरी समझ में आएगी, शेष को सामान्यरूप में आएगी, विशेष नहीं आएगी। महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने कहा है कि सत्य को ग्रहण करने और असत्य को छोड़ने में सर्वदा उद्यत रहना चाहिए। यह परिभाषा एड़ी से चोटी तक लागू होनी चाहिए। इससे एक और संकेत आता है कि सत्य को जानना और जनाना व्यक्ति का लक्ष्य होना चाहिए। किन्तु समाज में इस नियम का पालन बहुत कम होता है। प्रायः प्रवचन-उपदेश या आवृत्ति तक सीमित बना रहता है, व्यवहार में नहीं उतारा जाता। स्वयं को कसौटी पर कसकर देखो तो पता चलेगा कि बड़ी से बड़ी या छोटी से छोटी बुराई भी सामने आते ही हमारी क्या स्थिति होती है? जैसे कि आपने चोरी की है और हजारों लोगों के सामने स्वीकार करना कि हाँ! मैंने चोरी की है, आगे नहीं करूँगा; ऐसा कर सकते हैं? तो ऐसा करने वाला हजारों, लाखों में कोई एक मिलता है। आप बताइए, आपका क्या अनुभव है? या अभी भी आप बताना नहीं चाहते। आपको लग रहा होगा कि हाँ कहेंगे तो कठिनाई, न कहेंगे तो कठिनाई है। यह भी एक भय है, यदि ऐसा है तो यहाँ नहीं चलेगा। यहाँ तो जैसा है वैसा बताकर चलना पड़ेगा।

योग सीखने वालों में इसके कुछ अंश मिलते हैं जैसा कि हमने देखा। कई लोग कुछ बातें तो सब के बीच में बता देते हैं परन्तु आगे कहते हैं और नहीं बताऊँगा। तो यह व्यक्ति भी यहाँ नहीं चल सकता है। अब आप बताइये कि सबके बीच में अपना सब कुछ बताने के लिए तैयार हैं या नहीं?

साधक २,३ – तैयार हैं।

स्वामी जी – आपका पता नहीं पर कुछ बातें ऐसी होती हैं जिनके लिए व्यक्ति कहता है कि इसको तो मैं केवल आचार्य जी या स्वामी जी के सामने बता सकता हूँ, सबके सामने नहीं। तो यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी संकुचित विचारधारा है और योग के ऊँचे क्षेत्र में साधक को प्रवेश नहीं करने देती। आजकल सर्वत्र यही तो हो रहा है। कल्पना करते हैं कि एक व्यक्ति ने पहले कभी झूठ बोला, चोरी की, सारी आचारहीनताएँ कीं और अब वह चाहता है कि मैं सत्य की खोज करूँ, तीन काल में जो सत्य है उसको जानूँ अथवा योगी बनूँ, तो इस व्यक्ति के लिए कोई ऐसी सीमा नहीं होगी जहाँ वह कह सके कि मैं यहाँ सत्य नहीं बोलूँगा। यह पृथक् बात है कि लम्बे काल के पश्चात् जब व्यक्ति पुराना हो जाता है (पीछे सब कुछ बता चुका होता है) तब वह इतना विचार करने लगता है कि मेरे सत्य बोलने से सामने वाला लाभ नहीं उठा पाएगा। अतः मौन रहना ही उचित है, तो वह ऐसा कर लेता है। किन्तु ऐसा कहीं-कहीं होता है, सर्वत्र नहीं। पुनरपि नया व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। वह यदि ऐसा करने लगे तो उलझ जाएगा और कालान्तर में सर्वत्र संकुचित व्यवहार करने लगेगा। इसलिए जो नया-नया वैरागी होता है अथवा सत्य की खोज कर रहा होता है वह यह मर्यादा नहीं बना पाता है कि मैं यहाँ इतना बोलूँगा, इतना बचाऊँगा। आपको अभिप्राय समझ में आ रहा है या पुनः दोहराऊँ? क्या समझ में आया? कौन बताएगा?

ब्रह्मचारी १ – नये व्यक्ति के लिए यह नियम है कि वह कहीं कुछ न छिपाये।

स्वामी जी – योगाभ्यास के क्षेत्र में जब व्यक्ति नया-नया अग्रसर होता है या वैराग्य को प्राप्त करता है अथवा त्रिकाल सत्य की खोज आरम्भ करता है तब वह ऐसी कोई मर्यादा नहीं बनाता कि मैं यहाँ तो इतना सत्य बोलूँगा, इतना बचा लूँगा। यदि वह ऐसा करता है तो पुनः सांसारिक स्तर पर उतर जाएगा। (हाँ जी! सत्यनारायण जी! नींद तो नहीं आ रही? थकान तो नहीं हो गई? हम आपको सावधान करते रहेंगे तो अधिक ध्यान से सुनेंगे।)

तो आपने न्याय दर्शन का उन्नीसवां सूत्र पढ़ा है, उसके भाष्य का ध्यान होगा। वहाँ भाष्यकार ने एक बात कही कि यदि मुक्ति में भी राग उत्पन्न हो जाए तो वह भी प्राप्त नहीं होगी। अर्थात् साधक यदि रागात्मक रुचि रखते हुए ऐसा सोचने लगे कि मुक्ति पाकर मैं आनन्दित हो जाऊँगा जैसे लौकिक लोग हलुए-खीर से हो जाते हैं तो वह मुक्ति को प्राप्त नहीं हो पाएगा। क्योंकि लौकिक सुख जैसा राग यदि मुक्ति में होगा तब जो कोई थोड़ा-सा भी विरोध करेगा उसी से द्वेष हो जाएगा और तब सफल नहीं होगा।

यही नियम मानापमान पक्ष में भी लागू होगा वहाँ भी यदि अपमान का भय रहा तो मुक्ति नहीं होगी। मान लो साधक सोचने लगा कि यदि मैंने जनता को ज्यों का त्यों सत्य सुना दिया तब तो मेरा अपमान हो जाएगा तथा उसका कुप्रभाव पड़ेगा। लोग कहेंगे - अच्छा! यह चोरी-डकैती करने वाला व्यक्ति योग की बातें करता है! ऐसे वह डर जाता है। आई बात समझ में? सांसारिक बुद्धि को हटाकर सोचो तो ये बातें शीघ्र समझ में आ जाएँगी।

पुनः दोहराता हूँ ध्यान से सुनेंगे – इसको पिछले प्रसंग से जोड़ते हैं अर्थात् साधक पहले कभी झूठ बोलता था, चोरी करता था, आचारहीनता करता था और अब चाहता है कि मैं मुक्ति के मार्ग पर चलूँ अथवा योगी बनूँ और कोई उससे सीधा प्रश्न करे या कोई प्रसंग आ जाए कि आप पहले ऐसा करते थे, तो सत्य स्वीकार करना होगा। उसे ज्यों का त्यों बताते हुए चलना होगा। कोई डर नहीं, कोई राग नहीं, कोई द्वेष नहीं होना चाहिए। मुक्तिप्राप्ति हेतु यथार्थ को स्वीकार करना आवश्यक है। इतना ही नहीं, मुक्ति में भी राग नहीं होना चाहिए क्योंकि राग द्वेष को उत्पन्न करता है। जो कोई मुक्ति का विरोध करेगा, उसी से द्वेष हो जाएगा। इस स्थिति में आप गति नहीं कर पाएँगे। अतः कहा – मुझे सुख मिले या न मिले, मेरा दुःख हटना चाहिए। **अथ त्रिविध**

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दुःखात्यन्तनिवृत्तिरत्यन्तपुरुषार्थः । सांख्य. १/१/१ । अब आपको समझ में आ गया होगा। क्यों जी ?

साधक ३ – हाँ जी! आ रहा है।

आचार्य नैष्ठिक जी – इसका यह अभिप्राय निकला कि मुक्ति में रागयुक्त प्रयत्न करते समय जो कोई उसका बाधक होगा, उसी से द्वेष हो जाएगा।

स्वामी जी – हाँ। इसलिए जब दुःख से छूटने पर बल लगेगा तब मुक्ति में राग नहीं होगा। यदि राग नहीं होगा तो द्वेष भी नहीं होगा। ऐसा किये बिना व्यक्ति वैराग्य की स्थिति में नहीं जा पाता। आपने वहाँ जो पढ़ा है **दृष्टानुश्रविकविषयवितृष्णस्य वशीकारसंज्ञा वैराग्यम्** यो.द. १/१५। और भाष्य में कहा **हेयोपादेयशून्या**। अर्थात् राग की स्थिति में कहता है – यह बड़ा अच्छा है और द्वेष की स्थिति में कहता है – यह बड़ा गन्दा है। तो ये राग-द्वेष दोनों ही नहीं होने चाहिएँ तब तो वैराग्य आएगा, अन्यथा नहीं आएगा और वैराग्य नहीं आएगा तो समाधि नहीं लगेगी।

माताओं को भी तो बात समझ में आ रही होगी ! कुछ लाभ तो हो रहा होगा, क्योंकि सुनने से संस्कार बनते हैं। सारी बात एक बार में समझ में नहीं आएगी किन्तु एक आएगी, दो आएँगी, तीन आएँगी। इस प्रकार लाभ अवश्य होगा।

तो एक बात से दूसरी बात कैसे जुड़ी ? हमने एक बात उठाई थी कि जो व्यक्ति सर्वथा, सर्वदा बाहर-भीतर से एक होकर चलेगा और सोचेगा कि मुझे सत्यासत्य को जानना है, मेरा जीवन इसी के लिए है तब वही व्यक्ति उच्च स्तर का योगी बन पाएगा, दूसरा नहीं बन पाएगा। सिद्धान्त समझ में आ गया ? शंका हो तो पूछो ? अन्यथा पुनः सुनो ! जो व्यक्ति सर्वस्व की आहुति इसलिए दे रहा है कि 'तीनों कालों में सत्य क्या है' इसको मुझे जानना है, वही व्यक्ति उच्च स्तर का योगी बन पाएगा। उदाहरण के लिए कोई कहे कि यह मेरा शरीर है। माता जी कहती हैं – मैं इसकी माँ हूँ, यह मेरा बेटा है। तो यह जो 'मैं और मेरा' का स्वरूप लोक में देखा जाता है, इसमें सत्य क्या है ? एक ओर तो कह रहे हैं 'मैं और मेरा' और दूसरी ओर देखा जाता है कि न तो कोई कुछ लेकर आया, न लेकर जाता है। अब वह खोज करता है कि यहाँ वास्तविकता क्या है ? यह मेरा शरीर है या नहीं ? तो अन्त में वह इस निर्णय पर पहुँचता है कि वास्तव में यह शरीर मेरा नहीं है। मैंने यों ही अपने को इसका स्वामी मान रखा है क्योंकि न तो मैंने यह शरीर बनाया है, न तो यह मेरे कारण जीवित है। न माता-पिता ने बनाया है, न उनके कारण रक्षित है। जो माता-पिता या हमारे द्वारा रक्षित है, वह भी ईश्वर के द्वारा दी हुई शक्ति के कारण सुरक्षित है।

अब बोलो समझ में आया या नहीं आया ? आप भी इसका परीक्षण कर लो ! कल्पना करो, सारी जीवात्माओं को शरीर से पृथक् कर इकट्ठा कर लो और कहो कि सब मिलकर नीम का एक पत्ता बना दो। तो क्या बना देंगे ?

साधक २ – नहीं।

स्वामी जी – तो कौन स्वामी हुआ इसका ? यहाँ एक शंका हो सकती है कि यह शरीर हमारे पास है, हम इसको चलाते हैं तो स्वामी क्यों नहीं ? तो इसका समाधान है कि हम गौण स्वामी हैं। ईश्वर ने दिया है, इसकी रक्षा करते हैं, इससे धर्म-अर्थ-काम व मुक्ति की सिद्धि करेंगे। समझ में आया या नहीं ? नहीं आया हो तो पुनः पूछो ?

अब साधक और आगे क्या करता है ? जैसे इस एक विषय में सत्यासत्य का निर्णय किया, वैसे प्रत्येक विषय में सत्यासत्य का निर्णय करता है और जो-जो सत्य सिद्ध होता जाता है, उसको ग्रहण करता जाता है तथा जो-जो असत्य सिद्ध होता जाता है, उस-उस को छोड़ता जाता है। यद्यपि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कुछ असत्य तत्काल छूट जाते हैं, कुछ महीनों में और कुछ ऐसे दोष होते हैं जिनको छोड़ने में वर्षों तक प्रयत्न करना पड़ता है। पचास वर्ष तक भी जूझता रहता है किन्तु पीछे हटने की बात नहीं आती। जो ऐसा करता है, उसको इस कार्य से रोकने वाला कोई नहीं होता। संसार का क्या हो रहा है, कौन क्या कह रहा है? इस ओर कोई ध्यान नहीं देता, केवल अपना कार्य करता चला जाता है। हाँ! और याद रखो कि ऐसा व्यक्ति ही आत्मा-परमात्मा को जान सकता है, समाधि की स्थिति को प्राप्त कर पाता है, दूसरा नहीं।

अब आपका दृष्टान्त दूँ। आपने दर्शन पढ़े, वेद पढ़े, बहुत कुछ पढ़ा और उनमें एक सत्य यह निकला कि भाई! समाज का हम जो भी काम करेंगे जैसे कि गुरुकुल चलायेंगे, प्रवचन-उपदेश करेंगे, वे सब साधन होंगे। उन्हें निष्काम भाव से करेंगे, परन्तु ईश्वर-प्राप्ति करना-करवाना ही हमारा एक मात्र लक्ष्य होगा। किन्तु यदि आपने यह स्वीकार नहीं किया, ईश्वर-प्राप्ति करना-करवाना प्रमुख लक्ष्य नहीं बना तो सत्यग्राही नहीं हुए। आंशिक सत्यग्राही हैं आप, पूर्ण सत्यग्राही नहीं। जो पूर्ण सत्यग्राही होगा उसका लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति करना-करवाना ही होगा और ऐसा नहीं करते तो ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर सकते तथा दोषी माने जायेंगे। समझ में नहीं आया हो तो पूछ लो? शिक्षा की बातें हैं ये, केवल भाषण की नहीं। इस विषय में केन-उपनिषद् का प्रमाण ले सकते हैं, वहाँ यह प्रसंग आया है -

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महति विनष्टिः। केन. २/५।

हे व्यक्ति! यदि इसी जीवन में ईश्वर को प्राप्त कर लिया तो तू सफल है, उचित है। यदि ईश्वर को इस जीवन में नहीं जाना तो तेरा विनाश हो गया। यह शब्दावली क्या बताती है? कोई ऐसा जीवन नहीं, कोई ऐसा आश्रम नहीं है जिसमें ईश्वर को छोड़ दिया जाए अथवा ईश्वर को गौण मानकर चला जाए। गौण मानना भी हानिकारक है, छोड़ने की तो बात ही क्या।

आचार्य नैष्ठिक जी – यदि ऐसा है, ब्रह्मचर्य आश्रम में ईश्वर-प्राप्ति गौण नहीं होती तो वहाँ ईश्वर-प्राप्ति को छोड़कर गृहस्थ आश्रम में जाने का विधान क्यों है?

स्वामी जी – (इससे ब्रह्मचर्य आश्रम में ईश्वर-प्राप्ति गौण है, यह बात सिद्ध नहीं होती।) इसमें कारण है व्यक्ति की अक्षमता। व्यक्ति अपनी दुर्बलता के कारण ऊपर नहीं जा सकता (ईश्वर-प्राप्ति नहीं कर सकता) है, तो गृहस्थ आश्रम में चला जाता है। किन्तु वहाँ जाकर चुप नहीं रहेगा, वहाँ विशेष बल लगाएगा। गृहस्थ आश्रम में भी लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति ही मानेगा, अन्य नहीं। यहाँ आकर भी उसका लक्ष्य यही बना रहेगा, यद्यपि यहाँ भी कितना सफल होगा यह पृथक् बात है, किन्तु लक्ष्य वही रहेगा, अन्य कार्य साधन होंगे। यदि यह आदर्श नहीं रखा तो व्यक्ति दोषी ही माना जाएगा और यदि लक्ष्य बना हुआ है तथा अपनी शक्ति के अनुसार कर रहा है तो यह भी ठीक है। इस प्रकार जूझते हुए वैराग्य नहीं प्राप्त हुआ तो आगे वानप्रस्थ की तैयारी करेगा। वहाँ जाकर पूरा करेगा।

तो समय होने को है। एक अन्य बात का ध्यान रहे - यह सारा प्रयास इन विषयों को समझने (हमारा जो प्रशिक्षण आगे होना है उस) के लिए है। पहले व्यक्ति को समझ में आना चाहिए, पुनः श्रवण-मनन-निदिध्यासन-साक्षात्कार की बात आती है। अन्यथा पहले ही समझ में नहीं आए या शंकाओं का ढेर लगा हो, तो अगला प्रयास या उस कार्य में उत्साह नहीं होता है।

दूसरी बात व्यवस्था से सम्बन्धित - इसको करते हुए आज भी एक समय हम अपने दैनिक कार्य करेंगे तथा अन्य भी बहुत से व्यवस्था के कार्य करने होंगे। अर्थात् पूर्णरूप से पहले के कार्यों

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को करते हुए भूमिका के रूप में समझने-समझाने का कार्य करते रहेंगे। आगे समय नियत कर सकते हैं जैसे कि साढ़े १० से ११ बजे तक आधा घंटा रख सकते हैं। अभी से पूरा-पूरा समय नहीं चला सकेंगे। आगे चलकर भूमिकादि के रूप में सोच-समझकर, प्रबन्ध-व्यवस्था देखकर विधि-विधान से प्रशिक्षण आरम्भ करेंगे।

ब्रह्मचारी ४ – इसको मध्याह्नोत्तर कर लें तो कैसा रहेगा? प्रातःकाल विद्यालय में पठन- पाठन का कार्य चलता है।

स्वामी जी – मध्याह्नोत्तर रखो तो एक घण्टा या पौन घण्टा रख सकते हैं।

आचार्य नैष्ठिक जी – जी हाँ! मध्याह्न के पीछे एक घण्टा या पौन घण्टा रख सकते हैं।

ब्रह्मचारी ४ – जैसा आप बताएँ।

स्वामी जी – तो ठीक है मध्याह्नोत्तर तीन से चार बजे तक इसको कर लेते हैं। विद्यालय में पढ़ने वाले ब्रह्मचारी ध्यान दें। आप के लिए भी यह विद्या सीखने योग्य है, जैसी कि अन्यों के लिए है। ऐसा मत समझना कि विद्यालय में पढ़ रहे हैं तो सब हो गया है।

अब ऋषियों का संकेत - गुरुकुल में जब ब्रह्मचारी प्रवेश करता है तब कहा जाता है कि आचार्य उसको तीन दिन गर्भ में रखता है। तो इस वाक्य का क्या अभिप्राय है? इसका अभिप्राय है कि पठन-पाठन की तीन रीतियाँ हैं। इनमें से एक है - आचार्य द्वारा ब्रह्मचारी को अपने पास सुरक्षित रखना और पठन-पाठन कराना। दूसरी रीति - पूरा व्यवहार सिखाना और तीसरी रीति है - योगाभ्यास-उपासना सिखाना। ये तीनों गुण यहाँ लागू होते हैं। इन तीन में सब कुछ आ जाता है या इसी को इस रूप में कह दो कि ज्ञान-कर्म और उपासना को सीखने का काल ही तीन रात्रियाँ है। वस्तुतः यह प्रतिपादन की एक रीति है कि पठन-पाठन, योगाभ्यास ऐसे करना है। आचार्य, माता-पिता, छोटे-बड़े के साथ व्यवहार ऐसे करना है। यदि आपको ये तीनों रीतियाँ नहीं आती हैं तो आप प्रगतिशील नहीं हो सकते। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२ शिविर-गतिविधि

लक्ष्य-प्रधानता : आषाढ़ शु. १०/२०६०-०९/०७/२००३

अब हम गायत्री मन्त्र का पाठ करेंगे –

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु. ३६/३।

आप में से कौन-कौन ऐसे ब्रह्मचारी हैं जिनको गायत्री मन्त्र के एक-एक शब्द का अर्थ स्मरण है और वे कौन-कौन हैं जिनको स्मरण नहीं है? ..... नहीं सुनाई दिया?

साधक ४ – जी, स्मरण है।

स्वामी जी – स्मरण है तो हाथ खड़े करो। वही तो है जो संस्कारविधि में है?

साधक ४ – जी हाँ!

स्वामी जी – अच्छा! अब दूसरा प्रश्न। आपमें से ऐसे कितने ब्रह्मचारी हैं जिनका लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति करना व करवाना मुख्य हो चुका है? नहीं समझ में आया हो तो कहो हमें समझ नहीं आया! और एक बात – किसी प्रश्न का उत्तर देते समय यह ध्यान रखो कि वह उत्तर पहले से परीक्षित हो।

साधक २ – स्थूल दृष्टि से देखें तो निर्णय ले लिया है पर सूक्ष्म दृष्टि से देखने पर लगता है कि निर्णय नहीं हुआ है।

स्वामी जी – अच्छा! इनका तो स्थूल दृष्टि से निर्णय हो गया है पर सूक्ष्म दृष्टि से नहीं हुआ है। अब आप अपना-अपना बतायेंगे कि निर्णय हो गया है या नहीं हुआ है अथवा हो गया तो सूक्ष्म दृष्टि से हुआ है? हाँ जी! पहले आप बतायेंगे।

साधक ३ – जितना मेरा ज्ञान काम करता है उस आधार से निर्णय हो चुका है। यह पृथक् बात है कि पुरुषार्थ में कमी है, परन्तु मेरा पूर्ण निर्णय तो हो चुका है।

स्वामी जी – अच्छा! निर्णय के भी दो भिन्न-भिन्न स्तर हैं। एक तो मन्थन करके परीक्षा-पूर्वक सिद्धान्त रूप में निर्णय होना और उसके लिए कुछ प्रयास भी करना और दूसरा व्यावहारिक रूप में ईश्वर-प्राप्ति ही उसके जीवन का लक्ष्य बन चुका है और इसके समान कोई कार्य इस संसार में नहीं है। अब समझ में आया!

साधक ८ – समझ में आ गया है।

स्वामी जी – यदि समझ में आ गया है तो अब इसका ठीक-ठीक उत्तर दो। लक्ष्य का सिद्धान्त रूप में निर्णय हो जाना, यह तो ठीक है, किन्तु यह भी एक मोटा रूप है। इसका सूक्ष्म रूप है मन-वचन-कर्म से कार्य आरम्भ कर दिया, पूरा बल लगा दिया तथा इसके अतिरिक्त संसार में उसका अन्य कोई प्रयोजन नहीं रहा। अब देखो कितना समझ में आया?

साधक १ – स्वामी जी! सिद्धान्त रूप में हमें अनुभव में आता है लेकिन मन-वचन-कर्म से सदैव वही बुद्धि बनी रहे; ऐसा नहीं रहता है।

स्वामी जी – इनका अभिप्राय दिखता है कि कभी-कभी तो स्तर बनता है, पुनः हट जाता है। अब आप अपना-अपना बताओ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी १ – मन-वचन-कर्म से बुद्धि में २० प्रतिशत स्तर तो बनता है पर ८० प्रतिशत हट जाता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आपका ?

साधक ४– कभी-कभी सिद्धान्त रूप में स्तर कुछ स्तर बनता है, व्यवहार रूप में प्रायः नहीं रहता।

ब्रह्मचारी ५ – सिद्धान्त रूप में स्तर बना रहता है किन्तु कुसंस्कारों को हटाने में अधिक बल लगाना होता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आपका ?

ब्रह्मचारी ६– लगभग १० प्रतिशत बना रहता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आपका ?

ब्रह्मचारी ३– प्रातःकाल और सायंकाल प्रायः स्थिति बनती है और जप-चिन्तन के छूट जाने पर अन्यत्र भी नहीं रहता।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलो ?

ब्रह्मचारी ७– कुछ क्षणों में तो व्यवहारिक स्तर पर रहता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आपका ?

ब्रह्मचारी ८– व्यवहारिक स्तर पर कुछ कमी दिखती है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आगे बोलिए ?

ब्रह्मचारी ८– शाब्दिक है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आपका ?

साधक ८– सिद्धान्त रूप में स्थिति बन जाती है पर पूरे दिन नहीं रहती।

स्वामी जी – अच्छा ! आपके परीक्षण से यह पता चला कि किसी का कुछ, किसी का कुछ प्रतिशत बनता है और पुनः हट जाता है और सिद्धान्त रूप में प्रायः अधिकों का स्तर बन जाता है।

अब एक बात ध्यान देने की है कि हम जो सिद्धान्त रूप में भी शब्दादि प्रमाणों के आधार पर कोई निर्णय स्वीकार करते हैं तो वह लगभग ५ प्रतिशत हमको स्वीकार होता है, ९५ प्रतिशत नहीं। और बढ़ा लें तो मान लीजिए १० प्रतिशत स्वीकार हो जाएगा। किन्तु यहाँ यह एक भूल होती है कि हमें यह शत-प्रतिशत स्वीकार है, ऐसा मान लेते हैं। अब बताइए, क्या समझ में आया ?

आचार्य नैष्ठिक जी - पूरी बात समझ में नहीं आयी।

स्वामी जी – मान लीजिए हमने वेद, ऋषियों के ग्रन्थ, आर्य समाज के सिद्धान्त आदि को कसौटी पर कसा और ५/१०/१५ प्रतिशत समझ में आया किन्तु हमने मान लिया कि शत- प्रतिशत समझ गया हूँ तो यह भूल हुई। अब आप अध्ययन करो कि ऐसा होता है या नहीं ? अब स्पष्ट हुआ ?

साधक ५– आ गया स्वामी जी !

स्वामी जी – क्या समझ में आया बोलो ! आप यह कहेंगे कि हम शब्द-प्रमाण वेद व ऋषियों के ग्रन्थों को शत-प्रतिशत मानते हैं जबकि व्यवहार से पता चलता है कि वास्तव में आप ५/१०/१५ प्रतिशत मान रहे हैं। तो अभिप्राय है कि यहाँ पर पूर्ण रूप से मानने वाली स्थिति नहीं बन पाती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य नैष्ठिक जी - ऐसा कम-अधिक प्रतिशत मानने में अन्तर क्या पड़ता है ?

स्वामी जी – मैं बताता हूँ। मान लीजिए कोई व्यक्ति कहता है मैं सर्वदा, सर्वथा सत्य का पालन करता हूँ। यम आदि को सार्वभौम महाव्रत मानता हूँ। परन्तु वही व्यक्ति कहीं ५ प्रतिशत, कहीं १०/१५ प्रतिशत पालन कर पाता है, ५० प्रतिशत तक भी नहीं पहुँचता और कहीं-कहीं तो जान-बूझकर भंग करता हुआ मिलता है, पर कहता है कि मैं इन सिद्धान्तों को पूर्णतः सही मानता हूँ। अब आया समझ में ? आपने ऐसे कई परिवार देखे होंगे, कई विद्वान् देखे होंगे, कई ब्रह्मचारी देखे होंगे, जो यह कहते हुए मिलेंगे कि हमारे दादा जी से हमारे पुत्र पर्यन्त सभी वैदिक धर्म को पूरे विशुद्ध रूप में मानते आ रहे हैं जब कि उनमें से कोई ही दोनों समय सन्ध्या करता हो, प्रायः दैनिक सन्ध्या या साप्ताहिक हवन भी नहीं करते।

और गहराई में चलो। अब वैदिक-परम्परा में माना जाता है, जैसा कि हम बोलते-सुनते रहते हैं कि मानव-जीवन का लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति करना व करवाना है और कोई मुख्य प्रयोजन नहीं है। अब वही व्यक्ति इसी बात को सोचता भी है, लिखता भी है, प्रवचन-अध्यापन भी करता है किन्तु वास्तव में यह बात उसके जीवन में नहीं है। उसका मन और बुद्धि एक रूप होकर काम नहीं करते हैं। अब आया समझ में ?

साधक ८ – स्वामी जी ! यह व्यावहारिक दुर्बलता है ?

स्वामी जी – हाँ ! हम यही तो कहते हैं कि व्यवहार में ऐसा क्यों करता है वह ? कहते तो हैं पूरा शत-प्रतिशत और पालन करते हैं पाँच प्रतिशत। ऐसा क्यों करते हैं ? अब बोलो, क्या कारण है ?

साधक ८ – क्या ऐसा नहीं है कि सिद्धान्त रूप में मानना पृथक् स्थिति है तथा व्यावहारिक रूप देना पृथक् स्थिति है ?

स्वामी जी – हाँ ! पृथक् स्थिति है मान लीजिए, पर बुद्धिपूर्वक भंग क्यों करता है ?

साधक ८ – जहाँ बुद्धिपूर्वक भंग न होता हो वहाँ तो मान सकते हैं ?

स्वामी जी – एक स्थिति है अज्ञानता से, असावधानी से, असमर्थता से भंग होना, परन्तु ज्ञानपूर्वक भंग होना, यह दूसरी स्थिति है। अब देखो, आप मानते हैं कि **जातिदेशकालसमयानवच्छिन्नाः सार्वभौमा महाव्रतम्**। यो.द. २/३१। यम-नियमों का पालन सब स्थितियों में करना चाहिए, ऐसा मानते हैं। अब यहाँ एक व्यापार शरीर का है, एक वाणी का है, एक मन का है। इनसे दिनभर ज्ञानपूर्वक विरुद्ध आचरण होता रहता है। यहाँ कुछ तो संस्कार के प्रभाव से भंग होता है और कुछ प्रयत्न करते-करते भंग होता है। दोहराओ !

आचार्य नैष्ठिक जी – संस्कार के बल पर भंग हो जाता है।

स्वामी जी – कहीं अज्ञानता से, असावधानी से भंग होता है और देखा जाता है कि कभी-कभी न चाहते हुए भी भंग होता है। शारीरिक छोड़ो, मानसिक स्तर को लेते हैं। मन के स्तर पर कैसे होता है ? कई जगह परस्पर विचार नहीं मिले, तनाव हो गया। अब क्या होगा ? यह तो व्यक्ति मानता है, कहता है कि मन-वचन-कर्म से हिंसा नहीं करनी चाहिए, अहिंसा का पालन करना चाहिए, पर वही द्वेष करने लगता है। यद्यपि प्रयत्न भी करता है द्वेष रोकने का, किन्तु तब भी रोक नहीं पाता। इसका भी अध्ययन करो आप। यह सब होता है या नहीं ?

साधक १ – होता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य नैष्ठिक जी – होता है।

स्वामी जी – अनुभव करो। व्यवहार का पता तब चलता है जब पहले अनुभव होता है। और जिसको अनुभव ही नहीं, उसको पता क्या चलेगा और पता ही नहीं तो वह सीखेगा क्या? इसलिए यह पता होना चाहिए कि हमारे मन में भी ऐसी-ऐसी घटनाएँ होती हैं और हम देखते हैं कि प्रयत्न करते हुए भी उन्हें नहीं रोक पाते हैं।

अन्य उदाहरण लेते हैं। कहीं अति तीव्र, कहीं मन्द, मान-प्राप्ति की इच्छा होती है, जो नहीं होनी चाहिए। आपका ही उदाहरण लेते हैं जैसे कि आप बहुत बड़े विद्वान् हैं, ५ या ६ दर्शनों के विद्वान् हैं, अच्छे वक्ता हैं, अच्छे लेखक हैं, संस्था चलाते हैं। अब आप सोचते हैं कि लोग मुझे कम से कम इतना तो मान ही लें। इसको बुरा नहीं माना जाता। अब बताइए यह क्या हुआ? समझ में आया? हाँ कहो, न कहो या पूछो?

साधक ३ – अन्याय पूर्वक इच्छा नहीं कर रहा है।

स्वामी जी – अन्याय की परिभाषा तो सूक्ष्म है, उसको यहाँ लागू नहीं करेंगे, अन्यथा गड़बड़ हो जाएगी। यहाँ इतना लेना है कि एक तो ईश्वर-प्राप्ति की कामना और दूसरी ओर मान की कामना; यह विरुद्ध स्थिति है, अन्याय है। यद्यपि वैसा अन्याय नहीं है जो अति उग्र रूप में होता है, जिसमें दूसरे को धक्का देकर, छीनकर धन-मान प्राप्त किया जाता है। यहाँ सामान्यतः सूक्ष्म अन्याय है जिसमें व्यक्ति मानसिक रूप में इतनी इच्छा कर रहा है कि लोग मुझे इतना (बड़ा) विद्वान् मान लें। यहाँ तथ्य क्या है? यहाँ ईश्वर की उपेक्षा की जा रही है, अतः यह दोष है; परन्तु वह दोष नहीं मान रहा है। अच्छा! आप में यह दोष है या नहीं, यह बताओ? हाँ, न में उत्तर देना है।

साधक गण – हाँ जी, है।

स्वामी जी – है। चलो, यह तो अनुभव हो गया। अब इसमें दोष क्या है, इस पर विचार कर लेते हैं। तो यह जो (स्वयं को मनवाने या इनके माध्यम से सम्मान प्राप्ति की) इच्छा है यह ईश्वर-प्राप्ति के ठीक विरोधिनी है। इसमें अन्याय भी है। हमारे पास यह जो विद्या आई, अवस्थित है, जिससे पढ़ते-पढ़ाते हैं, लेखन करते हैं, उपदेश भी देते हैं और इनसे जो सुख मिला, ये सब विद्या के उत्कर्ष हैं। इसी प्रकार अन्य उत्कर्ष हैं जैसे धार्मिकता अथवा शरीर बलवान् है या जो उपार्जित सम्पत्ति है, ये सब उत्कर्ष हैं और हमारे कारण से नहीं हैं। इनका मुख्य कारण ईश्वर है। तो जब इनका मुख्य कारण ईश्वर है तब ये सम्मान भी ईश्वर को मिलने चाहिएँ, ईश्वर के साथ जुड़ने चाहिएँ। हमको क्यों मिलें, हमारे साथ क्यों जुड़ें? अब बोलो! क्या समझ में आया?

साधक ३ – एक प्रश्न उठता है कि यदि हम पुरुषार्थ नहीं करें तब तो कुछ भी नहीं मिलेगा हमें?

स्वामी जी – ऐं!! क्या बोल दिया? ऐसी भाषा मत बोलो आप। आपने कोमल भाषा बोलनी है। उग्र रूप में या खण्डनात्मक भाषा नहीं बोलनी है। उग्र आदि रूप में बोलना भाषा के दोष हैं। आप ऐसे विनम्रतापूर्वक, जिज्ञासु भाव से बोल सकते हैं - अच्छा! यहाँ एक शंका उभरती है कि उत्कर्ष के लिए हम यदि प्रयास करना छोड़ दें तो कुछ उपलब्ध नहीं हो सकता। अभी आपने जैसा बोला वह उग्र है, तीव्र है। आपने बोलने का अपना स्वभाव बिगाड़ रखा है, इसलिए ऐसा बोल देते हैं। स्मरण रखना, यदि आप ऐसी भाषा बोलते जाएँ और विवेक-वैराग्य को प्राप्त कर लें; यह नहीं हो सकता। समझ लीजिए यह वही क्षेत्र है जहाँ दोष होते हुए भी व्यक्ति दोष नहीं मानता। बोलो! समझ में आया या नहीं?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य नैष्ठिक जी – उग्रता तो समझ में आई।

स्वामी जी – ऐसे अनेक दोष हैं। उग्रता के साथ-साथ अभिमान पूर्वक बोलना, खण्डनात्मक बोलना, दूसरे को नीचा दिखाने के लिए बोलना, व्यंग्यात्मक बोलना आदि। हम जो भाषा बोलते हैं उसका अन्दर से सम्बन्ध होता है। जो अन्दर है वही भाव बाहर व्यवहार में दिखाई देता है। अच्छा ! जो साधक इसको जानता नहीं या पकड़ भी नहीं पाता, वह इसको बुरा भी नहीं मानता। जैसे कि आपने बोल दिया कि 'यदि हम ऐसा न करें तो कुछ भी नहीं हो सकता' इसमें अभिमान या खण्डन का अंश छिपा है। यही आपके सामने वैराग्य में बाधक बनकर खड़ा है। एक और दोष आता है कि जो खण्डनात्मक बोलेगा वह दूसरे की बात समझने का भी प्रयास नहीं करेगा, खण्डनमात्र करेगा। क्यों? क्योंकि पहले से ही उसने आक्रमण आरम्भ कर दिया। खण्डन तो कर देगा किन्तु जिज्ञासु बनकर समझने का प्रयास नहीं कर पाएगा। एक और दोष आएगा कि कुसंस्कार बनेंगे, क्योंकि अभिमानपूर्ण भाषा बोलकर स्वीकार कर लिया तो मन में बैठ गया और अब पुनः उसकी आवृत्ति करेगा। नहीं समझे आप? जो भाषा बोली थी, उससे जो हावभाव उत्पन्न हो रहे थे, वे पुनः अज्ञान उत्पन्न करेंगे। एक तो पहले के संस्कार थे, अब और बन गए। इससे तीव्र हो गए और इनको थोड़े से काल (परिश्रम) से नहीं रोक सकेंगे। (मन में इकट्ठे हो गए तो अब वही बाहर आयेंगे।) अब आया समझ में?

साधक ३ – हाँ जी ! समझ रहा हूँ।

स्वामी जी – अन्य उदाहरण लेते हैं। मान लीजिए किसी के साथ आपका तनाव हो गया और उसने आपको एक दो उग्र वाक्य बोल दिये। अब आपका उसके प्रति जो तिरस्कारात्मक भाव बना वह पुनः पुनः उसको देखते ही उभरेगा। ऐसा इसलिए होता है कि हमने उसके संस्कार बना लिए हैं। कल्पना कीजिए आप ध्यान में बैठे हैं और वह घटना याद आ गई तो उभरेगा, क्योंकि मन में भाव विद्यमान हैं।

(अब दूसरा पक्ष –) यद्यपि मैं कभी कठोर भाषा का प्रयोग करता हूँ परन्तु वह आपको समझाने की दृष्टि से, अनुशासन की दृष्टि से बोलता हूँ। अब मैं चाहे जैसी (मीठी) भाषा बोल सकता हूँ, मुझे कोई बाधा नहीं पड़ने वाली है किन्तु उससे आप ऐसे ही अनुशासन में रह जाएँगे, इतना सीख पाएँगे, इसकी संभावना बहुत कम हो जाती है। समझ में आया? जैसे कि आपने कई महात्माओं के प्रवचन सुने होंगे, बस ! अपना शान्ति से, मधुर-मधुर बोलते जाते हैं, कोई सुने या न सुने। ऐसा लगता है कि जैसे (प्रेममूर्ति हैं) सबसे बहुत प्रेम करते हैं। किसी के प्रति कोई कठोरता नहीं, अनुशासन नहीं। (मानो उनके सारे श्रोताओं का अन्तःकरण निर्मल हो चुका है।) अच्छा ! सुनने वाले भी इसी को अच्छा मानते हैं। जो कोई उनको सदैव प्यार से बोले, न कोई अनुशासन की बात करे, न उनके दोषों को बताए, न दण्ड दे, तो कहेंगे – हाँ ! बहुत बड़े महापुरुष हैं। अच्छा ! कहीं-कहीं ठीक इसके विपरीत देखा जाता है जो भक्तों को धमकाता हो, कठोर दण्ड देता हो वह सिद्ध पुरुष है। यह भी एक अभिमानपूर्ण शैली है। ऐसे आचार्य, साधु-संन्यासी देखे हैं या नहीं?

साधक १ – देखे हैं, किन्तु पहले पक्ष में क्या दोष है?

स्वामी जी – वहाँ मान की इच्छा, लोकैषणा अन्दर भरी हुई होती है। वह सर्वप्रिय बनने का प्रयास करता है। यदि किसी दोषी को दण्ड देना या कठोर बातें कहनी पड़ें तो सबका अप्रिय बनता है। इसलिए मीठी-मीठी बातें करता रहता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दूसरे पक्ष में) – अच्छा ! (यही दोष आप में भी है जैसे कि) यदि आपके ऊपर एक-एक बात को लेकर कठोर से कठोर अनुशासन चलाया जाए, तो आप कितने दिन चल पाएँगे ?

साधक १ – एक बार कठोर अनुशासन की रूप-रेखा सामने आए तो कुछ विचार किया जा सकता है।

स्वामी जी – कभी ऐसा न हो कि इधर रूप-रेखा सामने आए और उधर भाग जाओ (मृदुल हँसी)।

साधक ८ – स्वामी जी ! पहले तो थोड़ा-सा क्षोभ उत्पन्न होता है किन्तु विचार करने पर लगता है कि यह तो हमारे भले के लिए ही किया जा रहा है।

स्वामी जी – हाँ ! किन्तु जैसा आप बता रहे हैं, ऐसा विचारने वाले बहुत कम लोग होते हैं। प्राय: दोष सुनकर यही कहने वाले होते हैं कि बहुत कठोर हो आप, बहुत कड़वा बोलते हो। अच्छा ! जिसे अनुशासन पूर्वक दोष बताने वाला व्यक्ति बहुत प्रिय लगे जैसे कि ये कितने अच्छे हैं, सदैव ऐसे ही डाँट लगाते रहें तो बहुत अच्छा है; यह कहने वाला कोई-कोई मिलेगा। श्रोताओं का अध्ययन करने पर उनके भिन्न-भिन्न स्तरों का ज्ञान होता है। तो हमारा क्या प्रसंग चल रहा था ?

साधक ३ – ईश्वर-प्राप्ति करना व करवाना मुख्य लक्ष्य हो चुका या नहीं।

स्वामी जी – उससे थोड़ा आगे चले थे कि ईश्वर के समान गुण स्तर पर जाना (ईश्वर के स्थान में स्वयं को मनवाने या तत्प्रदत्त साधनों को अपना मानना) न्याय है या अन्याय ? हमने कहा वह अन्याय ही है। कारण यह है कि जीवात्मा का उसमें बहुत कम अंश है। मैं शरीर से स्वस्थ, बलवान् बन गया हूँ, वैदिक विद्वान्, अध्यापक, उपदेशक, बहुत अच्छा व्यक्ति बन गया हूँ आदि। ये जो भी गुण व्यक्ति में परिश्रमपूर्वक प्राप्त दिखाई देते हैं, इनमें ईश्वर का अंश बहुत अधिक है। जीवात्मा का अंश बहुत कम है जबकि ऐसा मानता है – मेरा अंश इनमें अधिक है। ईश्वर का उतना नहीं मानता। अब देखो तुलना करके, क्या दिखता है, न्याय या अन्याय ?

साधक ३ – इसमें ईश्वर का सहयोग अधिक है।

आचार्य नैष्ठिक जी – ईश्वर का ही अधिक दिखता है, हमारा तो बहुत कम ही दिखता है।

स्वामी जी – हाँ ! हमारा जो विकास हुआ है विद्वान् बनने में, गुणवान् बनने में, वह ईश्वर के अधिक अंश से ही संभव है।

आचार्य नैष्ठिक जी – हमारा अंश उसमें कितना रहता है ?

स्वामी जी – हमारा अंश उसमें बहुत कम, नाममात्र रहता है। हमारे साथ जब ईश्वर की सहायता सम्मिलित होती है, हमारी शक्ति के साथ जब ईश्वर के दिये सारे साधन जुड़ जाते हैं, तब हम अपनी उन्नति करने में समर्थ होते हैं या कोई प्रयत्न आरम्भ कर पाते हैं। अब आपको समझ में आ गया होगा ?

आचार्य नैष्ठिक जी – बिना ईश्वर की सहायता के कुछ भी नहीं हो सकता।

स्वामी जी – नहीं हो सकता। तब भी, ईश्वर की सहायता के बिना कुछ भी नहीं कर सकते, इस बात को नहीं मानता। आप यदि मन-वचन-कर्म से इस बात को मानते हैं तो अपना अनुभव बताओ –

साधक १ – सदैव नहीं मान पाते हैं।

स्वामी जी – कभी-कभी व्यक्ति प्रयत्न करता है इसको बनाने का, किन्तु थोड़ा करके

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ देता है, दिनभर नहीं रखता, जब कि सिद्धान्त है कि दिनभर रहना चाहिए। अपने स्व-स्वामि-सम्बन्ध का परित्याग और ईश्वर के स्व-स्वामि-सम्बन्ध का स्वीकार, यह दिनभर रहना चाहिए। जैसे आप गुरुकुल या वानप्रस्थ के कमरों में यही तो मानकर रहते हैं कि ये गुरुकुल या वानप्रस्थ के हैं। हम इनका प्रयोग कर रहे हैं, इनसे लाभ ले रहे हैं। अब यदि कोई भूल से मान ले कि ये कमरे मेरे हैं या सोचे ही नहीं कि उनके हैं, तो क्या होगा? ऐसा ही शरीर आदि के विषय में है।

आचार्य नैष्ठिक जी – गुरुकुल या वानप्रस्थ के कमरे हैं, ऐसा तो लगता है पर शरीर आदि के विषय में ऐसा नहीं लगता है।

स्वामी जी – नहीं लगता है, तो इसके लिए आपने सुना होगा, ईश्वर-प्रणिधान के प्रकरण में यह बात आई होगी और महर्षि दयानन्द जी सरस्वती ने आर्याभिविनय आदि में कितना लिखा है, वह भी पढ़ा होगा। शास्त्रों में भरा पड़ा है, सिद्धान्त यही है किन्तु व्यक्ति इसको व्यवहार में नहीं लाता है। इसी से कोई प्रगति नहीं होती, विवेक-वैराग्य नहीं होता है। आगे बढ़ो तो ईश्वर की जो विशेष सहायता मिलनी चाहिए, वह नहीं मिलती। परिणाम यह होता है कि अपनी समाधि की प्राप्ति में स्वयं बाधक बनकर खड़ा है। इसी को गीता के शब्दों में कहो तो **आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः** ॥ गी.६/५। आत्मा ही आत्मा का बन्धु है और आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। कैसे? यदि यह ईश्वर का सब मान ले तो अपना बन्धु बन जाएगा और अपना मानकर ईश्वर का नहीं मानेगा, तो वह अपना शत्रु हो जाएगा। इसलिए पहले इस बात को सिद्धान्त रूप में सिद्ध करना, पुनः व्यवहार में लाना अर्थात् मन-वाणी-शरीर से उसे खाते-पीते, उठते-बैठते सतत प्रयोग करना चाहिए।

तो आपको इतना तो समझ में आ गया कि शरीरादि को ईश्वर का न मानना अन्याय है और न्याय यह है कि ईश्वर ने हमको इन्द्रियाँ आदि साधन दिये, जल-वायु, सृष्टि बना कर दी और तब हमने इस सहायता से ज्ञान-कर्म-उपासना रूपी कार्य किये, पुनः बल मिल गया, विद्या मिल गई, योग में प्रवेश कर गए। इसलिए मानना चाहिए कि मैं जीवात्मा उन साधनों को लेकर प्रयत्न करता हूँ, इसमें मेरा अंश तो नाममात्र रहता है। यह सब ईश्वर का ही है। जब यह प्रयोग होने लगेगा तब यह वास्तव में न्याय रूप कहलाएगा।

साधक ८ – स्वामी जी! अन्याय की मार तो हमको पड़ती रहती है।

स्वामी जी – ऊँ !!

साधक ८ – ईश्वर-समर्पित न रहने पर अन्याय की मार तो हमको पड़ती रहती है।

स्वामी जी – हाँ, यह अन्याय है। अन्याय का अभिप्राय है अनुचित, हमारे लिए जिसका फल दुःख होता है। अन्याय कहो, अधर्म कहो, ये सब पर्याय हैं। जैसे को तैसा जानना-मानना (व करना) न्याय और उसके विपरीत जानना-मानना (व करना) अन्याय है। उदाहरण के लिए देखिए जैसे कि ईश्वर से हमारा जितना (सर्वाधिक) प्यार होना चाहिए, उतना है, तो यह न्याय की बात है और उतना प्यार नहीं है, तो यह अन्याय की बात है।

आचार्य नैष्ठिक जी – अन्याय का अर्थ अनुचित भी है स्वामी जी!

स्वामी जी – एक ही बात है चाहे अन्याय कह दो, अनुचित कह दो, अधर्म कह दो।

आचार्य नैष्ठिक जी – अधर्म और अन्याय तो भिन्न हैं?

स्वामी जी – यह कहो कि जो ईश्वर की आज्ञा के अनुरूप है, वह न्याय और जो उसकी आज्ञा के विरुद्ध है, वह अन्याय है। उसको धर्म-अधर्म कह सकते हैं और कोई बात नहीं, शब्दों का अन्तर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। सत्य कह दो, धर्म कह दो, न्याय कह दो, कोई भेद नहीं है। जैसे कि आप दिन भर उठते-बैठते, खाते-पीते हैं और अन्य अनेक कार्य करते हैं तो उस समय ईश्वर की उपासना में रहना, यह न्याय की बात है तथा संसार की उपासना करना व ईश्वर से सम्बन्ध तोड़कर रखना, यह अन्याय की बात है। अब देख लो, कितना अन्याय करते हो आप? सभी समझ रहे हैं या नहीं?

साधक १ – समझ रहे हैं।

स्वामी जी – ठीक है। तो व्यवहार में ये सारे अंश कैसे उतारें, यह व्यक्ति को जानना पड़ेगा। पहले तो यही समझना है कि जो समझा रहे हैं वह समझ में आ रहा है या नहीं, अन्यथा व्यक्ति न समझता हुआ भी मान लेता है कि मैं समझ रहा हूँ। आगे मान लो शब्दों से समझ भी गया तो व्यवहार में नाममात्र प्रयत्न करता है।

देखो! आप शब्द-प्रमाण की दृष्टि से समझ गए कि हम दिनभर ईश्वर की उपासना में रहें। अब देखेंगे कि सन्ध्योपासनकाल में तो भले आप ईश्वरोपासना कर लेते होंगे, वह भी आप में से कोई-कोई ही करता होगा और उसका भी उतने काल तक ईश्वर से सतत सम्बन्ध नहीं रहता होगा पुनः दिनभर की तो बात ही क्या? प्रायः व्यक्ति दिनभर ईश्वर की उपासना में रह नहीं पाता। ऐसा है या नहीं, आपका क्या अनुभव है? यहाँ जानना यह है कि दिनभर व्यक्ति ईश्वर की उपासना में रहेगा या पुनः लौकिक वस्तुओं या जीवों की उपासना में रहेगा। बीच में खड़ा नहीं रह सकता। अब आप अपना अध्ययन करो।

साधक ३ – एक स्थिति ऐसी होती है जहाँ कि व्यक्ति न तो ईश्वर की उपासना कर रहा होता है, न संसार की, न जीवों की उपासना कर रहा होता है, केवल विवेचन कर रहा होता है, लगातार खोज चल रही होती है।

स्वामी जी – न न। वह ऐसा है, जब वह विचारमग्न होता है तब भी उसका प्यार किसी न किसी से जुड़ा होता है। इसलिए स्वामी दयाननद सरस्वती जी ने यह बात कही कि कोई भी जीवात्मा क्षणभर भी ज्ञान-कर्म-उपासना से रहित नहीं होता।

साधक ३ – जब वह ईश्वर की उपासना करेगा तब कर्म कैसे करेगा?

स्वामी जी – मन बिजली की भांति काम करता है, उससे करेगा। जैसे कि देखो! भोजन की घण्टी बजी और यह जानते हैं कि खीर-हलुआ बना है। अब जाते समय यह ज्ञान काम करता है कि खीर-हलुआ बहुत स्वादिष्ट होता है। तो यह स्वादिष्ट मानना भोजन की उपासना है। यहाँ खीर-हलुए के प्रति जो प्यार है, आकर्षण है, वह उपासना का भाग है। ज्ञान हो रहा है तब ही तो पाकशाला में जाएगा। घण्टी लगी भोजन की, हलुआ-खीर मिलेंगे (जल्दी चलो) आदि ज्ञान हो गया। हम यह नहीं कह रहें हैं कि एक साथ होते हैं किन्तु तीनों बिजली की भांति बदलते हैं। ज्ञान-कर्म-उपासना, ज्ञान-कर्म-उपासना, ज्ञान-कर्म-उपासना, इतनी जल्दी- जल्दी बदलते हैं कि कोई पकड़ ही नहीं सकता। यह पृथक् बात है क्षणान्तर में किसी का मन्द होना, किसी का तीव्र होना, हो सकता है।

आचार्य नैष्ठिक जी – सदा तीनों बने रहते हैं?

स्वामी जी – हाँ। कोई न कोई तो बना रहेगा।

सम्पादकीय – अर्थात् एक ही क्षण में ज्ञान-कर्म-उपासना ये तीनों बने रहें, यह अनिवार्य नहीं, अपितु प्रत्येक क्षण इन तीनों में से कोई न कोई रहेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – जीवात्मा स्वभाव से ज्ञानी है तो कोई न कोई ज्ञान तो काम करेगा ही।

आचार्य नैष्ठिक जी – तीनों प्रबल-निर्बल होते रहते हैं।

स्वामी जी – हाँ, जैसे क्लेशों के विषय में कहा प्रसुप्त-तनु-विच्छिन्नादि, वैसे ये भी होते रहते हैं। कभी ज्ञान प्रधान हो जाएगा, कभी प्यार प्रधान हो जाएगा। कभी ज्ञान तीव्र हो गया तो कर्म या उपासना मन्द हो गई, कभी कर्म तीव्र हो गया तो ज्ञान या उपासना मन्द हो गई, कभी उपासना तीव्र हो गई तो ज्ञान या कर्म मन्द हो गया। कभी बराबर में आ जाते हैं, ऐसा चलता रहता है। आप अध्ययन करना चाहें तो उपासना में कर सकते हैं। उस समय आपको दिखेगा कि ईश्वर की उपासना में प्यार नहीं है, लौकिक सुख-साधनों के प्रति मानसिक स्तर पर उग्रता आएगी। वहाँ लौकिक सुख-साधनों की उपासना तीव्र हो चुकी है।

कहीं-कहीं ज्ञान-विज्ञान के विषय में ऐसा होता है। वह ज्ञान भौतिक वस्तुओं अथवा आत्मा-परमात्मा का भी हो सकता है। आप ईश्वर से सम्बन्धित ज्ञान की खोज कर रहे हैं और वह उत्पन्न हो गया, तब आप देखेंगे कि वहाँ ज्ञान से तो प्यार रहेगा परन्तु उसी ज्ञान के विषय ईश्वर से प्यार नहीं रहेगा। ईश्वर का ज्ञान हुआ, एक नई बात सामने आई; यही प्रसन्नता रहेगी। यहाँ भी ईश्वर की उपासना मन्द तथा साधन की उपासना तीव्र है।

कभी क्रिया की प्रधानता होती है। वैसे तो मानसिक स्तर पर कितनी ही क्रियाएँ होती रहती हैं, हमको कोई पता नहीं चलता। जैसे कि देखो ! इस हाथ को उठाना है, तो कैसे उठेगा? बिना क्रिया के तो उठेगा नहीं। और यदि भीतर ही भीतर क्रिया चल रही हो, दिखाई भी नहीं देगी, पर होती तो है। वही स्थिति यहाँ पर है। यहाँ भी बाह्य क्रिया के साथ-साथ आन्तरिक क्रियायें भी हुईं, पर बाह्य दिखाई दे रही है और आन्तरिक नहीं। तो ऐसी अनेक क्रियाएँ होती हैं जो समझ में नहीं आतीं। योगदर्शन-व्यासभाष्य के अनुसार कहो तो ये चित्त के अदृष्ट धर्म हैं और ऐसे अनेक धर्म हैं जो कब, क्या कार्य करते हैं, वे हमारी पकड़में नहीं आते।

इसलिए आत्मा के इस प्रकार के सूक्ष्म इच्छा-प्रयत्न जब ईश्वर के प्रेम के साथ सम्बद्ध होते हैं, तब वह अवस्था ईश्वर की उपासना कहलाती है। ऐसे ही जब हम हलुआ-खीर, लड्डू-पूड़ी खा रहे होते हैं और बहुत अच्छा लगता है, उसमें प्रेम उत्पन्न होता है। तो जो वह प्रेम है, वह लड्डू की उपासना है। अब उसी समय जब लड्डू की उपासना चल रही है, तब आपने इधर-उधर देखना आरम्भ किया। पड़ोसी को देखने लगे कि उसके पास पानी है या नहीं, तो यह ज्ञान आरम्भ हो गया। मान लो उसके पास पानी नहीं था और आपने अपना पानी देते हुए कहा - लो ! आचमन कर लो, तो यह क्रिया हो गई। उपासना आप लड्डू की कर रहे हैं और ज्ञान भी कर लिया, क्रिया भी कर ली। अब आप समझ गए, ये ज्ञान-कर्म-उपासना क्या हैं?

ज्ञान-कर्म-उपासना को इस रूप में जानकर व्यक्ति अनुभव कर सकता है कि मेरा प्रेम ईश्वर के साथ है या जीवों के साथ है अथवा सांसारिक वस्तुओं के साथ है? मैं किससे सम्बद्ध हूँ, ईश्वर से या लोक से? इसी प्रकार लोकैषणा आदि से युक्त हूँ या रहित हूँ?

आगे बढ़ो, इससे यह लाभ होगा कि जब यह पता चला कि पहले ईश्वर से प्रेम था, अब नहीं रहा तो तत्काल सावधान हो जाएगा और पुनः ईश्वर से जुड़ जाएगा। यहाँ यह भी ध्यान रखने योग्य है कि जब ईश्वर से प्यार करने लगते हैं तो कठिनाई होने लगती है। उसका कारण होता है लौकिक सुख-साधनों के आकर्षण, संस्कार जागरित रहते हैं, जो बाधित करते हैं।

एक अन्य दृष्टान्त लेते हैं। मान लीजिए, एक बहुत ही सुन्दर रूपवान् व्यक्ति सामने आ गया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और हम उसको देखने लगे। इतना सुन्दर लगा कि देखते रहे, देखते रहे, बहुत देर तक देखते ही रह गए। ध्यान देंगे, यहाँ जितने काल तक रूप में आसक्त रहे, उसका रस लेते रहे, उतने काल तक उसके सँस्कार पड़ते गए। ये ही संस्कार कालान्तर में ईश्वर की ओर जाने पर बाधक के रूप में खड़े हो जाएँगे। यह परिणाम निकलेगा।

अब इससे अपने को कैसे हटायेंगे? वहाँ इस प्रकार विचार आरम्भ करेंगे कि यह क्या है? मैं तो इस रूप के पीछे पागल हो गया हूँ। पहले तो इतना पढ़ा है, सुना है, इतने दोष हैं इसमें? मैं तो ईश्वर से विमुख हो गया हूँ, उसको प्रेम करना छोड़ चुका हूँ। अब मैं पुनः उसी को प्रेम करूँगा। जब इस प्रकार प्रयास करेंगे तो ईश्वर से पुनः सम्बद्ध हो जाएँगे और लौकिक प्रेम अवरुद्ध हो जाएगा। यह परिणाम निकलेगा।

साधक ३– यहाँ एक प्रश्न उपस्थित होता है कि जिस व्यक्ति की अभी ईश्वर से जुड़ने की स्थिति नहीं है, किन्तु वह वैज्ञानिक रूप से इन सांसारिक पदार्थों के गहराई से दोष देख-देखकर उनके स्वरूप को जान रहा है, उनकी अच्छी प्रकार से चीड़-फाड़कर सार निकालने में लगा रहता है, तो यह भी कोई अच्छी स्थिति है?

स्वामी जी – ठीक है, इस काल में इन पदार्थों के दोषों व गुणों का ज्ञान कर रहा है, यह ज्ञानप्रधान स्थिति है, परन्तु अब भी उसका प्रेम ईश्वर से नहीं छूटना चाहिए।

साधक ३– इनका स्वरूपबोध ही तो कर रहा है।

स्वामी जी – ध्यान दीजिए, इस व्यक्ति की वास्तविक अवस्था यह है कि वह अन्दर से मान रहा है कि इन पदार्थों के परिज्ञान होने पर मुझे सुख मिलेगा। उसका वहाँ पर आकर्षण है।

साधक ३– वह तो दोषदर्शन की स्थिति के लिए इनके स्वरूप को समझना चाह रहा है। इससे आगे उचित रूप में ईश्वर से प्यार हो पाएगा।

स्वामी जी – आगे होगा, उसका निषेध हम नहीं कर रहे हैं। हम यह कह रहे हैं उस समय भी व्यक्ति का प्रेम ईश्वर से न होकर, लौकिक पदार्थों से तीव्र न सही, पर मन्द रूप में होता है। जैसे कि वैज्ञानिक खोज करते हैं, तल्लीन रहते हैं, पर आप यह नहीं कह सकते कि उनमें लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणा नहीं रहती। ऐसा नहीं होता कि एषणा से रहित हों।

साधक ३– कालान्तर में एषणा होगी परन्तु उस खोज के काल में तो नहीं होती।

स्वामी जी – खोज के काल में तीव्र नहीं हो, मन्द हो, यह पृथक् बात है, किन्तु रहित कैसे हो जाएँगे? कभी राग की तीव्रता से द्वेष मन्द पड़ जाता है, तो कभी द्वेष की तीव्रता से राग मन्द पड़जाता है। ऐसा होता रहता है पर यह नहीं कह सकते कि सर्वथा हट जाता है। इसको कहते हैं विच्छिन्नावस्था। इसमें वस्तु छिपी रहती है और एकाएक आक्रमण कर देती है। मान लीजिए आप शरीर की खोज कर रहे हैं, मन्थन कर रहे हैं, शरीर में एड़ी से चोटी तक मलमूत्र भरा है, अपवित्र है आदि दोष देख रहे हैं। अब ध्यान देंगे, थोड़ी सी ढील देते ही तत्काल राग का आक्रमण हो जाएगा। वही शरीर सुन्दर, ग्राह्य लगने लगेगा, क्योंकि पहले के संस्कार जो सूक्ष्म रूप में काम कर रहे थे, अब उग्र रूप में उभर आए।

साधक २– ऐसा देखने में आता है कि लोक में किसी व्यक्ति से हमको कोई लाभ मिला तो उसके प्रति प्रेम उत्पन्न होता है और जिससे कोई लाभ नहीं मिला, उसके प्रति हमारी उपेक्षा भावना ही रहती है। किन्तु वह लाभ अनुभव का विषय होता है। ईश्वर के साथ भी हमारी यही स्थिति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। संसार में जो कुछ भी हमें अपेक्षित है वह सब लौकिक पदार्थों से हमें मिलता है, ऐसी हमें स्पष्ट अनुभूति होती है परन्तु ईश्वर से हमें कुछ मिला हो, ऐसी अनुभूति हमारी नहीं है। ऐसी स्थिति में लौकिक वस्तुओं की अपेक्षा ईश्वर से कैसे प्रेम होगा?

स्वामी जी – उसमें ऐसा होगा कि लौकिक वस्तुओं से जो हमको विविध लाभ हुए, उसके मूल में जाते-जाते, जहाँ से उनकी उत्पत्ति हुई, सत्त्व-रज-तम से लेकर यहाँ स्थूल भूतों तक; सब ईश्वरकृत दिखाई देंगे।

साधक २ – हमें तो अभी दिख ही नहीं रहा है तो अन्वेषण के प्रति प्रेम कैसे बनेगा?

स्वामी जी – इसके लिए लौकिक पदार्थों से जो लाभ हो रहा है, उसके कारण तक आपको जाना पड़ेगा। जिससे हम जीवित हैं, इन सब का उत्पादक, रक्षक ईश्वर है; इसको सिद्ध करना पड़ेगा।

साधक २ – अभी तो वह सिद्ध ही नहीं है।

स्वामी जी – सिद्ध नहीं है तो शब्द-प्रमाण से मान लो, अनुमान-प्रमाण से मानो। आगे चलो तो समाधि से सिद्ध करो। किसी न किसी प्रमाण से सिद्ध होगा ही।

साधक २ – शब्द-प्रमाण तो इतना प्रभावशाली नहीं होता है।

स्वामी जी – ऐसा नहीं है। यह अपने-अपने स्तर पर निर्भर करता है। किसी पर शब्द-प्रमाण का बहुत अधिक प्रभाव होता है। किसी पर कम होता है। आपने पढ़ा है **यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः**। जड़ या चेतन जो कोई देवत्व को प्राप्त हो रहे हैं, सब ईश्वर के कारण हो रहे हैं। इन्हीं से हमारा भला हो रहा है। आगे वहाँ चलो – **को ह्येवान्यात् कः प्राण्यात् यदेष आकाश आनन्दो न स्यात्** ॥ तै.उ.२/७। कौन व्यक्ति जीवित रह सकता है और कौन है जो प्राण ले सकता है यदि आकाशवत् व्यापक आनन्दस्वरूप ईश्वर न हो तो। ऋषि तो यह कहना चाहता है। न तो कोई व्यक्ति जीवित रह सकता है और न ही कोई व्यक्ति श्वास ले सकता है। ईश्वर का मूल्य समझा रहे हैं यहाँ। उसने यह देखा – चेतन और जड़ देवता जैसे कि माता-पिता, गुरु-आचार्य, पशु-पक्षी और सूर्य-चन्द्र आदि जो मेरा भला कर रहे हैं, सब ईश्वर की सहायता से कर रहे हैं। ये स्वतन्त्र रूप से तिलभर भी भला नहीं कर सकते। यहाँ तक पहुँचेंगे, तब ईश्वर के प्रति प्रेम होगा, उसका मूल्य समझ में आएगा।

शब्द-प्रमाण से समझ में आना, एक भाग है। अपनी बुद्धि के अनुसार मन्थन करके अनुमान-प्रमाण से समझना, यह दूसरा भाग है। शब्द-प्रमाण कहता है **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति**। सारे भूतों की उत्पत्ति जिसके द्वारा होती है। जो सारे विश्व को बनाता है, सब उसी से जीवित रहते हैं और उसी में लीन हो जाते हैं। **तद्विजिज्ञासस्व तद् ब्रह्म**। तैतिरीय उप. ३/१। उसको जानने की इच्छा करो, वह ब्रह्म है। ब्रह्म को समझाने के लिए यह शब्द-प्रमाण है।

यदि इससे सिद्ध नहीं हुआ तो अनुमान को लेकर चलो। प्रश्न उठाओ कि जो जड़-चेतन संसार बना हुआ दिख रहा है, यह बिना ईश्वर की सहायता के हमारा उपकार कर रहा है या इसके मूल में ईश्वर की सहायता जुड़ी हुई है? पुनः अनुमान-प्रमाण से सिद्ध हो जाएगा कि यह जड़-चेतन संसार बिना ईश्वर की सहायता के हमारा तिलभर भी भला नहीं कर सकता।

साधक २ – यह जड़-चेतन संसार बिना ईश्वर की सहायता के हमारा तिलभर भी भला नहीं कर सकता; इसमें उदाहरण क्या है?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – कोई मर गया हो, वह शरीर को छोड़कर हमारा उपकार कर दे, ऐसा उदाहरण नहीं मिलेगा।

साधक २ – ईश्वर के कारण ये हमारी सहायता कर रहे हैं, इसका उदाहरण चाहिए।

स्वामी जी – यह तो बताया कि शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण से सिद्ध होगा। आप उसका प्रयोग करो! अनुमान को लेकर आप महत्तत्त्व तक पहुँच जाइए। शरीर से पृथ्वी, उससे पीछे तन्मात्र आदि पीछे हटते-हटते वहाँ तक जाइए। अब देखिए, यदि ईश्वर महत्तत्त्व, अहंकार, मन-इन्द्रिय आदि की रचना नहीं करता है तब कोई भी जड़-चेतन किसी का भला नहीं कर सकते हैं। तिलभर भी नहीं कर सकता। करता हो तो दिखा दो ! और यह उदाहरण बन जाएगा कि मरने के पश्चात् शरीर रहित जीवात्मा किसी का उपकार नहीं कर पाएगा।

साधक २ – जड़ के कारण ही करता है। ऐसा पृथक् चेतन तो उपलब्ध नहीं होता है।

स्वामी जी – चेतन अर्थात् जो मनुष्य, पशु आदि के रूप में हैं। पत्थर, लोहा, सोना-चाँदी, वायु आदि जड़के रूप हो गए। इन पृथ्वी-जल आदि को आप सत्त्व-रज-तम तक ले जाओ तो इनमें से कोई भी अपने-आप जीवात्मा का कुछ भी उपकार नहीं कर सकते हैं। जब ईश्वर ने महत्तत्त्व से पृथ्वी, शरीर तक बना डाला है, तब ये हमारा भला कर रहे हैं। ज्ञानेन्द्रियाँ जब बना दी गईं तब हमको ज्ञान होता है, कर्मेन्द्रियाँ बना दी गईं तब हम कुछ कर पाते हैं। ये भवन आदि स्थूल भूत से बन जाने पर इनसे लाभ उठा रहे हैं। जब इसका बनाने वाला है, इनको बनाया है, तब ये बन पाए। स्वयं ईंट-पत्थर भवन बन गए हमारे लिए और हम रहने लग गए, ऐसा तो नहीं हुआ ? आप अपने शरीर की रचना देख लो ! त्वग् इन्द्रिय से शीतोष्ण का ज्ञान करते हैं। क्या आपके पास जो ज्ञान-विज्ञान है, उसके आधार पर बता सकते हैं कि यह त्वग् इन्द्रिय कैसे बनी या इसमें कितने परमाणु हैं अथवा पूरे शरीर में यह कैसे काम करती है ? विकासवाद के आधार पर सिद्ध करो कि क्या यह अपने-आप बन गई ?

समय आपका पूरा होने वाला है। अन्त में सुन लो! यदि आप पूरे सत्यग्राही बनकर चलते हैं तो यह पूरा ज्ञान-विज्ञान उपलब्ध हो जाएगा, अन्यथा जितने अंश में सत्यग्राही बनेंगे उतना तो होगा ही। पूरा बनेंगे तो पूरा हो जाएगा, आधा बनेंगे तो आधा हो जाएगा, किन्तु होगा।

सम्पादक – अर्थात् जिसने हमारे रहने के लिए यह विश्व बनाया है और इसे चला रहा है उससे प्रेम करना उसकी उपासना करना हमारा परम कर्त्तव्य है। अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३ शिविर-गतिविधि-२

यम-नियम : आषाढ़ शु. १०/२०६०-०९/०७/२००३

योगाभ्यास करने वालों को इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि ये जो यम-नियम आदि उपासना (समाधि) के आठ अंग हैं, इनका उपयोग ईश्वर का साक्षात्कार होने में भी होता है। अतः आप कभी ऐसा न मान लेवें कि यम-नियम तो छोटी-सी वस्तु है; इसके ऊपर क्या ध्यान देना है, वैसे भी हम पालन कर ही रहे हैं। तो ऐसी मान्यता आप न बनाएँ। वस्तुतः अपने जीवन में मन-वाणी-शरीर के स्तर पर निरीक्षण-परीक्षण करें तो पता चलेगा कि यम-नियमों के पालन में सतत सावधान न रहा जाए तो व्यक्ति योग के क्षेत्र में प्रवेश या विकास नहीं कर सकता। इसलिए व्यवहार और उपासना काल में ये प्रयोग में आते रहते हैं। इसी को ध्यान में रखते हुए योग दर्शनकार ने कहा - **योगाङ्गानुष्ठानादशुद्धिक्षये ज्ञानदीप्तिराविवेकख्यातेः**। यो.द.२/२८। इन आठ अंगो का पालन करने से अशुद्धि का नाश होने पर विवेक की उत्कर्षता, ज्ञान की प्राप्ति विवेकख्याति पर्यन्त होती है। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि आपको जो समाधि की प्राप्ति नहीं हो रही है, उसका कारण है कि आप यम-नियम आदि अष्टांग योग का पालन ठीक-ठीक नहीं कर रहे हैं।

अब हम वेदमन्त्र के माध्यम से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। मन्त्र लेंगे - **योगे योगे तवस्तरं वाजे वाजे हवामहे। सखायऽइन्द्रमूतये॥** ऋ.१/३०/७।

हाँ जी! आपको मन्त्र का अर्थ याद हो तो पहले सुनाओ।

साधक ४ – पूरा याद नहीं है, स्वामी जी!

स्वामी जी – चलो, आपको याद हो तो सुनाओ!

साधक ६ – जी! **योगे योगे** अर्थात बार-बार योगाभ्यास करते हुए **तवस्तरं** बलवान् ईश्वर को, **वाजे वाजे** अविद्या आदि क्लेशों के नाश के लिए **सखाय** मित्रभाव या मित्रवत् व्यवहार से **इन्द्रम्** ईश्वर को **ऊतये** आत्मरक्षा के लिए **हवामहे** उपास्य रूप से बुलाते हैं, प्रार्थना करते हैं।

स्वामी जी – इससे एक बात तो यह सिद्ध हुई कि हम मिलकर इस काम को कर सकते हैं। **सखायः** हम सब मिल कर चलें तो योग में प्रवेश-विकास कर सकते हैं और यदि मिलकर नहीं चल सकते तो नहीं कर सकते। दूसरी बात यह सिद्ध हुई कि बार-बार योगाभ्यास करते समय ईश्वर की सहायता मांगते रहना, ईश्वर का स्मरण करते रहना चाहिए, अन्यथा योग में सफलता नहीं मिलेगी। तीसरी बात यह आई कि **वाजे वाजे** वाज कहते हैं युद्ध को। एक शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थ होते हैं। इसलिए प्रकरणानुसार यहाँ जब हम युद्ध अर्थ लेते है तो अज्ञान-अन्याय- काम-क्रोध-लोभ-मोह-अहंकार आदि से टकराना अभिप्राय निकलता है। हम इस युद्ध में इन विरोधी तत्त्वों को हटाने में, नाश करने में ईश्वर की सहायता मांगते हैं। जब ईश्वर की सहायता अनिवार्य रूप में यहाँ पर होती है तब हम जीत पाते हैं। स्मरण रखिये **ईश्वर-प्रणिधानाद्वा**। यो.द. १/२३। इस सूत्र पर भाष्यकार ने ईश्वर की सहायता के विषय में जो संकेत दिया है, उसको आप सुनायेंगे -

साधक २ – **भक्तिविशेषादावर्जित ईश्वरस्तमनुगृहणात्यभिध्यानमात्रेण**। यो.द.व्या.भा. १/२३। भक्तिविशेष से अनुकूल बनाया हुआ ईश्वर योगी को अभिध्यानमात्र से अनुगृहीत करता है, समाधि लगवा देता है।

स्वामी जी – भक्तिविशेष से अनुकूल बनाया हुआ ईश्वर, यह मुख्य बात है। ईश्वर को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनुकूल बना लो आप, तो समाधि में कोई बाधा नहीं पड़ेगी और यदि प्रतिकूल रहा तो समाधि सिद्ध नहीं होगी। **भक्तिविशेषात्** अर्थात् वह भक्ति कैसी है? वह ऐसी है कि उस उपासक को ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता। वही केवल चाहिए उसको और व्यवहार में ईश्वर के आदेशों का पालन करना, यम-नियमों का पालन करना, निष्काम भावना से अन्यों की सेवा करना, ईश्वर की ही उपासना करना इत्यादि बातों से ईश्वर अनुकूल हो जाता है। **तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण।** हाँ जी! आप बतायेंगे कि यह **अभिध्यानमात्रेण** क्या है?

साधक ५ – संकल्प मात्र से।

स्वामी जी – उसका क्या अर्थ करेंगे आप? उदाहरण क्या बनाएँगे? नहीं है याद। हाँ जी! आप सुनाओ।

साधक १ – .....।

स्वामी जी – और कोई ?

साधक ५ – जैसे हम मन में संकल्प करते हैं कि इस व्यक्ति को इतने रुपए दूँगा तो वैसे ही ईश्वर संकल्प करता है और उस संकल्प मात्र से उसे अपना लेता है।

स्वामी जी – प्रश्न है संकल्पमात्रेण क्यों कहा? इसको स्पष्ट करने का प्रयत्न करें। सुनो! हम जो किसी का भला करते हैं, किसी को वस्त्र देते हैं या किसी रोगी की सेवा करते हैं तो उसके लिए हमको क्रिया करनी पड़ती है। इधर से यह लाओ, उधर से वह लाओ; ऐसा करना पड़ता है किन्तु ईश्वर को ऐसी क्रिया नहीं करनी पड़ती है। उसको कहीं आना-जाना नहीं पड़ता है। इसलिए यह कहा कि **अभिध्यानमात्रेण अनुगृह्णाति।** कहीं-कहीं इसकी व्याख्या थोड़ी भिन्न कर दी गई है जिसमें अभिध्यानमात्रेण को योगी के साथ जोड़ दिया अर्थात् योगी के अभिध्यानमात्र करने से। अन्तर हुआ एक तो ईश्वर के साथ जोड़ने पर अर्थ हुआ ईश्वर के अभिध्यान-मात्र करने से और दूसरा अर्थ हुआ योगाभ्यासी के अभिध्यानमात्र करने से ईश्वर उसके ऊपर कृपा करता है। आपको कौन सा अर्थ ठीक लगता है?

साधक ५ – पहले वाला पक्ष ठीक लगता है।

स्वामी जी – अब पाठ करेंगे –

ओं ऽऽ योगे योगे तवस्तरं ऽ वाजे वाजे हवामहे ऽऽ। सखायऽ इन्द्रम् ऽ ऊतये ऽऽ॥

प्रयोग आरम्भ.....। समय लगभग एक मिनट।

अब मन-मन में इसका पाठ करते हुए, ईश्वर को संबोधित करने का प्रयत्न करें और **भक्तिविशेषात्** ईश्वर के प्रति अतिप्रेम अर्थात् सबको भूल जाएँ, छोड़ दें। **योगे योगे तवस्तरम्** बार-बार योगाभ्यास के द्वारा हम अत्यन्त बलवान्, अनन्त ज्ञानवान् ईश्वर को अपनी सहायता के लिए अपने साथ सम्बद्ध करना चाहते हैं। ऐसी प्रार्थना करते हैं। वृत्तियों को न उठायें, असावधानी से उठा ली जाएँ, तो तत्काल रोक दें और साथ-साथ यह समझते रहें कि उनको मैं ही उठाता हूँ। अपने-आप विचार नहीं उठते, मन अपने-आप नहीं चलता।

अपना धारणा केन्द्र बनाकर रखो। जब हलचल मचती दिखाई दे तो तत्काल वहाँ उपस्थित हो जाएँ और अपने-आपको पुनः जमाएँ। पुनः ध्यान-जप आरम्भ करें। पुनः उखड़ जाए तो फिर वहीं उपस्थित होकर जमाएँ। इसको देखते रहें कि वृत्तियाँ कैसे उठती हैं? आप मन में सोचेंगे कि वृत्तियाँ कहीं से नहीं उठती हैं, इनको तो मैं ही उठाता हूँ। अब ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करूँगा। यदि संसार को अनित्य देखने की क्षमता हो, तो उसको अनित्य बनाते हुए, आप ईश्वर से सम्बन्ध जोड़ सकते हैं। अपने शरीर सहित पूरी सृष्टि को प्रलयवत् स्थिति में ले जाना और पुनः ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना। इससे वृत्तियाँ पर्याप्त मात्रा में शान्त हो जाएँगी। मन पर अधिकार बना रहेगा। विशेष बाधा उपस्थित नहीं होगी।

स्वामी दयानन्द सरस्वती जी का संकेत है कि जैसे समुद्र में गोता लगाते हैं वैसे ईश्वर में गोता लगाना चाहिए। तो आप भी ईश्वर में गोता लगाएँ और गोता लगाते समय यदि संसार की वस्तुएँ आपके साथ रहीं, तो गोता नहीं लगा पाएँगे आप। अतः मानसिक स्तर पर स्व-स्वामि-सम्बन्ध का परित्याग कर दें। ईश्वर को स्वामी मान लें तो गोता लगाने में सरलता हो जाएगी।

ध्यान में बैठे-बैठे आप परीक्षण कर सकते हैं कि वास्तव में मेरा स्व-स्वामि-सम्बन्ध हट गया या नहीं? शरीर, इन्द्रियाँ, नस-नाड़ियाँ, बाहर के समस्त पदार्थ, विद्या, धर्म, बल आदि सब हटे या नहीं; इसको देखो। अब आप रुकेंगे और अपना-अपना अनुभव सुनाएँगे, कैसा रहा? हाँ जी!

साधक १ – एक बार बाह्यध्वनि की ओर मन को ले गया। एक स्मृति-वृत्ति उठाई। सम्बोधन की स्थिति लगभग तीन बार टूटी, उसको पुनः पुनः बनाया। स्वस्वामि-सम्बन्ध को जब छोड़ने का प्रयास किया, तब उसमें सफलता मिली किन्तु उस समय मन्त्र का जप नहीं कर सका। उस समय मन्त्र का मन्थन छूट गया।

स्वामी जी – जब स्व-स्वामि-सम्बन्ध को तोड़ने का प्रयत्न किया तब जप रुक गया। उसमें ऐसा करते हैं कि स्व-स्वामि-सम्बन्ध को हटाए रखते हुए, पुनः उसी मन्त्र से जप आरम्भ कर देते हैं।

अब हम एक अन्य प्रयोग करेंगे। ऋषियों ने अपनी-अपनी व्याख्यान-पुस्तकों में विविध प्रकार से ईश्वर को समझाने का प्रयास किया है जैसे कि कहा – **ओं सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म ॥** तैतिरीय. ब्रह्मा. प्रथम अनु.। हे ईश्वर! आप सत्यस्वरूप हैं, नाश रहित हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, अनन्त ज्ञान आपमें विद्यमान है, आपकी कोई सीमा नहीं है, आप महान् हैं। तो इन शब्दों का प्रयोग करेंगे। एक बार ओम् के साथ पूरे शब्दों को बोलेंगे तथा आगे ओम् के साथ एक-एक को बोलने का प्रयत्न करेंगे।

प्रयोग आरम्भ.....। समय लगभग एक मिनट।

ओऽऽम् सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म ॥ हे ईश्वर! आप सत्यस्वरूप हैं, नाश रहित हैं, ज्ञानस्वरूप हैं, अनन्त ज्ञान आपमें विद्यमान है, आपकी कोई सीमा नहीं है, आप महान् हैं।

ओऽऽम् सत्यम्, ओऽऽम् ज्ञानम्, ओऽऽम् अनन्तम्, ओऽऽम् ब्रह्म ॥ हे ईश्वर! आप सत्यस्वरूप हैं, नाश रहित हैं। हे ईश्वर! आप ज्ञानस्वरूप हैं। हे ईश्वर! आप अनन्त हैं, आपकी कोई सीमा नहीं है। हे ईश्वर! आप महान् हैं।

अब आप रुकेंगे और ध्यान देंगे। प्रयोग करते रहने से पता चलता है कि सभी वृत्तियों को हम उठाते हैं। ध्यान काल से अतिरिक्त व्यवहार काल में भी इन प्रयोगों को करते रहना चाहिए। व्यवहार काल में भी ये वृत्तियाँ विद्युत् की भांति चलती रहती हैं। इसलिए व्यक्ति यदि मन-इन्द्रियों को अधिकार में नहीं रखे तो अविद्या, अधर्म, अन्याय और उलटी उपासना का ढेर लगा लेता है। सब की यही स्थिति होती है। इसलिए साधक इनको नियन्त्रण में रखते हुए, किस ज्ञान को पकड़ना है किसको नहीं, किस आचरण को करना है किसको नहीं, किसकी उपासना करनी है किसकी नही; चलते-फिरते, खाते-पीते भी यह विवेचन करता रहता है। अब विराम ॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ यज्ञीयोपदेश

निर्णय-परीक्षण : आषाढ़ शु. ११/२०६०-१०/०७/२००३

अब हम मन्त्र के माध्यम से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे -

ऋचो अक्षरे परमे व्योमन् यस्मिन्देवा अधि विश्वे निषेदुः ।
यस्तन्न वेद किमृचा करिष्यति य इत् तद्विदुस्त इमे समासते ॥ ऋ.१/१६४/३९ ॥

ईश्वर-साक्षात्कार करने और करवाने वाले व्यक्ति को सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य का प्रमाणों के द्वारा परीक्षण कर निर्धारण कर लेना चाहिए कि यह यथार्थ है, अर्थात् सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य को प्रमाणों के द्वारा परीक्षा करके अन्तिमरूप में निश्चित कर लेना चाहिए। क्या समझ में आया ?

साधक २ – ईश्वर-प्राप्ति करने वाले को सत्य, असत्य, धर्म, अधर्म, उचित, अनुचित आदि विषयों का प्रमाणों के द्वारा पूर्ण निर्णय कर लेना चाहिए।

स्वामी जी – यद्यपि केवल योग ही नहीं, अपितु पूरे विश्व स्तर पर प्रमाणों के द्वारा निर्णय करना आवश्यक रहता है। योग का क्षेत्र तो केवल संकेत है, इस पर बल दिया है, किन्तु सभी विषयों में ही प्रमाणों के द्वारा सत्यासत्य का परीक्षापूर्वक निर्णय कर लेना चाहिए। इस निर्णय-परीक्षण के बिना कोई भी व्यक्ति ईश्वर-साक्षात्कार करने और करवाने में सफल नहीं हो सकता।

दूसरी बात - इन सत्यासत्य, धर्माधर्म, कर्त्तव्याकर्त्तव्य को जानने की कसौटियाँ = प्रमाण कौन-कौन से हैं, जिनके आधार पर हम इनका परीक्षापूर्वक निर्णय कर सकें ? इनका भी निर्धारण कर लेना चाहिये। दोहराइये !

साधक २/३ – सत्यासत्य, धर्माधर्म, उचितानुचित के निर्णय की कसौटियाँ कौन-सी हैं, इनका निर्णय कर लेना चाहिए।

स्वामी जी – यदि सत्यासत्य आदि के निर्णय की कसौटियाँ अपने-आप में सिद्ध व सत्य नहीं हैं, तो व्यक्ति उनके द्वारा सत्य-असत्य को नहीं जान सकता तथा अपना मुख्य लक्ष्य पूरा नहीं कर सकता। अब दोहराइए क्या समझ में आया ? एक व्यक्ति बोलेगा, अन्य सुनेंगे -

साधक ३ – यदि धर्म-अधर्म, उचित-अनुचित को जानने के प्रमाण व कसौटियाँ उचित (सिद्ध) नहीं हैं तो व्यक्ति सत्य को नहीं जान सकता। यह सार है।

स्वामी जी – आ गया समझ में ? सत्य और असत्य के प्रमाणों व कसौटियों को जान लेने के पश्चात् व्यक्ति को प्रमाणों के माध्यम से सत्यासत्य की परीक्षा करनी भी आनी चाहिए, अन्यथा सफलता नहीं मिलेगी। दोहराओ, याद करो।

साधक २ – सत्यासत्य की कसौटियों को सिद्ध करने के पश्चात् व्यक्ति को उनसे विषयों का परीक्षण करना भी आना चाहिए।

स्वामी जी – यदि परीक्षण करना आता है तो सफलता मिलेगी, यदि नहीं आता है तो सफलता नहीं मिलेगी। आगे प्रमाणों के द्वारा परीक्षण करना आ गया और वह अच्छी प्रकार प्रमाणों से सत्यासत्य, धर्माधर्म आदि का परीक्षण कर लेता है; यहाँ तक पहुँचने के पश्चात् यदि वही व्यक्ति अन्तिम परिणाम तक पहुँचने के लिए जितनी शक्ति उसमें उत्पन्न हो सकती है और जितनी बाहर से प्राप्त हो सकती है,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
उसके लिए भी पूर्ण बल नहीं लगाता है, तब भी सफल नहीं हो सकता है। दोहराइये, विचारिये, लिखिये।

साधक २ – सत्यासत्य तथा उसकी कसौटियों को जान लेने के उपरान्त भी व्यक्ति यदि पूर्ण पुरुषार्थ नहीं करता है, तो भी सफलता नहीं मिलेगी।

स्वामी जी – यहाँ इतना और जोड़ना चाहिए कि अपनी शक्ति जितनी आज है, इसको और बढ़ाया जा सकता है, क्योंकि ईश्वर, आचार्य, धार्मिक ग्रंथ और सृष्टि में ऐसे अनेक पदार्थ हैं, जिनकी सहायता मिलने पर हमारी शक्ति बढ़ जाती है। तो हम अपनी शक्ति को और बढ़ा सकते हैं किन्तु यह भी बढ़ाना आना चाहिए। ईश्वर से हमको सामर्थ्य की प्राप्ति होती है। सृष्टि के विविध पदार्थों, पशु-पक्षियों से जो हमको सहायता मिलती है, उसको भी ले लेना चाहिए। इस प्रकार जिन-जिन क्षेत्रों में शक्ति-सहायता विद्यमान है, वहाँ-वहाँ से प्रयत्नपूर्वक उपार्जन करके अपने सामर्थ्य को बढ़ाना चाहिए। समझ में आ गया? नहीं तो और पूछिये।

शक्ति का उपार्जन कहाँ-कहाँ से करना चाहिए, इसके कुछ संकेत आपको दिये गये। किन्तु इसके साथ बहुत से अंश जुड़े रहते हैं, उनको भी जानना चाहिए। उनमें से एक अंश है कि व्यक्ति इनके स्रोतों के साथ उचित व्यवहार नहीं करे, तो शक्ति का उपार्जन नहीं होगा। जैसे कि हमको व्यायाम करके बल बढ़ाना है, उचित खान-पान से स्वास्थ्य बनाना है या ऋषियों के ग्रन्थों का स्वाध्याय करके विद्या बढ़ानी है। तो कैसे व्यायाम करें, क्या खायें-पीयें, गुरुओं-आचार्यों से कैसा व्यवहार करें? अर्थात् जिनसे हमको विद्या मिलेगी, धन मिलेगा, बल मिलेगा, धार्मिक शिक्षा मिलेगी, उनके साथ कौन-सा व्यवहार करें; यह हमको आना चाहिए। ईश्वर के साथ हम कैसा व्यवहार करें, उसकी आज्ञा-पालन कैसे करें, उसकी उपासना कैसे करें, जिससे ईश्वर हमको पात्र समझकर विद्या दे सके, समाधि लगवा सके; ये सब आने चाहिएँ। समझ में आ रहा है? इसी प्रकार पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश, पशु-पक्षी आदि से सम्बन्धित व्यवहार हमें ज्ञात होने चाहिएँ।

सबको तो गिनाया नहीं जा सकता, दो-तीन का नाम गिना दिया, आगे इसी से समझ लेना। यद्यपि एकाध उदाहरण तो दिए जा सकते हैं, किन्तु सबमें तो बहुत समय लगेगा। यदि सूक्ष्म उदाहरण लेना हो तो इसको ले सकते हैं, जैसे कि आप दिनभर ईश्वर के साथ सम्बद्ध रहकर ईश्वर से सतत विद्या का उपार्जन करते रहें, यह ईश्वर के साथ उचित व्यवहार है। आपको विद्या मिलती रहेगी और अविद्या का नाश होता रहेगा।

साधक १ – ईश्वर से विद्या किस रूप में मिलती रहती है?

स्वामी जी – ईश्वर से विद्या इस रूप में मिलती है जैसे कि हमको अग्नि के सान्निध्य से उष्णता और प्रकाश मिलता है।

साधक १ – उसका स्वरूप क्या है?

स्वामी जी – इसका स्वरूप यह है कि जैसे आप विद्युद्दीप के पास गए, तो उसके प्रकाश का पता चला। ऐसे ही ईश्वर के पास जाएँगे तो सत्यासत्य का पता चलेगा कि ईश्वर मुझसे पृथक् और सर्वव्यापक है। मैं जीवात्मा एकदेशी, शरीर से पूर्णतः पृथक् हूँ, मैं शरीर नहीं हूँ, मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ, मैं मन-बुद्धि नहीं हूँ। मैं सत्त्व-रजस्-तमस् आदि चौबीस तत्त्वों में से कोई नहीं हूँ और मैं ईश्वर भी नहीं हूँ; यह परिज्ञान हो जाएगा। उसके पास जाने पर ये उपलब्धियाँ होंगी। और सुनो! उसके पास जाने पर वैसे ही आनन्द मिलेगा जैसे खीर खाने से भूखे व्यक्ति को आनन्द मिलता है। यह आनन्द की प्राप्ति उसके स्वरूप की प्राप्ति है।

साधक २ – ईश्वर के पास जाने का अभिप्राय क्या है?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – ईश्वर में लीन हो जाना। उपासना में उससे आबद्ध हो जाना। जिसको हम कहते हैं ईश्वर के स्वरूप में तल्लीन हो जाना।

साधक २– वहाँ हम यदि ईश्वर में तल्लीन हैं और शरीर आदि बाह्य विषयों का ज्ञान करना है, तब यह विषयान्तर ज्ञान कैसे हो पाएगा?

स्वामी जी – नहीं, स्पष्ट नहीं हो पाया?

साधक २– जैसे कि हम उपासना कर रहे हैं किन्तु हमारा प्रयोजन है कि शरीर को जानें, अपनी आत्मा के बारे में जानें, तब कैसे होगा?

स्वामी जी – यह एक अलग विषय है, जिसको आप बोल रहे हैं। शरीर के विषय में जानना, न जानना; इसको अलग रखेंगे। यहाँ तो यह प्रश्न था कि ईश्वर से उपलब्धियाँ कैसे होती हैं?

साधक २– इसी के अन्तर्गत प्रश्न था कि किसी विषय में हमें ईश्वर से ज्ञान प्राप्त करना है तो कैसे करेंगे?

स्वामी जी – हाँ! तो उसके लिए हम उपासना में जाएँगे क्योंकि एक नियम तो यह है कि ईश्वर उपासना में हमको ज्ञान देता है। उस ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान के माध्यम से शरीर, इन्द्रिय आदि जो भी अपेक्षित विषय हैं; उनका ज्ञान हो जाएगा।

साधक २– उदाहरण के लिए हमको शरीर का ज्ञान करना है तो इसके लिए हम ईश्वर से कैसे संबद्ध हों कि जिससे वह ज्ञान मिले?

स्वामी जी – हाँ! तो कैसे का अर्थ है कि जिसको हम कहते हैं ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना और दैनिक जीवन में यम-नियमों का पालन करना, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करना। तो जब हम इन दोनों क्षेत्रों को पूरा करेंगे तब ईश्वर से ज्ञान मिलेगा, बल मिलेगा और आनन्द मिलेगा। मिलता रहेगा किन्तु कितने अंश में, कब-कब मिलता है, इसका कोई मापदण्ड नहीं है। किन-किन क्षेत्रों में, कब-कब ज्ञान मिलता है, यह एकदम नहीं बता सकते। बस इतना ही कहा जा सकता है कि मिलता है।

साधक २– सिद्ध कैसे होगा कि यह ज्ञान ईश्वर से मिला है? हो सकता है कि हमने जिन बाह्य विषयों का चिन्तन किया था, स्वाध्याय किया था, वे ही उभर आएँ हों?

स्वामी जी – ये ऐसे सिद्ध होगा कि जिस समय हम ईश्वर की उपासना करेगें उस समय हमको विशेष ज्ञान होगा। उससे स्पष्ट पता लगेगा कि यह ज्ञान ईश्वर से हुआ है, मैं ईश्वर को जान पा रहा हूँ। यह सीधा ज्ञान ईश्वरीय ज्ञान की अनुभूति करवायेगा।

साधक २– जैसे कि अभी आप बता रहे हैं और हमें अनुभूति हो रही है कि हमको आप से ज्ञान मिल रहा है। तो क्या ईश्वर से ज्ञान मिलते समय ऐसी अनुभूति होगी?

स्वामी जी – ऐसा तो समझाने के लिए बोल रहा हूँ। यहाँ तो मैं शब्द बोल रहा हूँ, वहाँ ईश्वर के शब्द तो सुनाई देंगे नहीं।

साधक २– नहीं जी! मैं यह कह रहा हूँ 'इससे मिला', इस प्रकार की कोई अनुभूति तो होगी वहाँ?

स्वामी जी – मैं बता रहा हूँ आपको, अग्नि के पास जाने पर उष्णता की, प्रकाश की जैसी अनुभूति होती है वैसी ही ईश्वर और उसके गुणों की वहाँ अनुभूति होगी।

साधक २– वहाँ तो अग्नि से प्रकाश मिल रहा है, उसमें स्पष्ट अनुभूति होती है कि यह इसी का गुण है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – वहाँ भी ईश्वर चेतन है, मैं जीवात्मा चेतन हूँ और सर्वव्यापक ईश्वर से मुझे ज्ञान मिल रहा है; यह स्पष्ट अनुभूति होती है।

साधक २– वहाँ अपनी ओर से कोई संकल्प या कल्पना करने की आवश्यकता तो नहीं होती ?

स्वामी जी – कल्पना करने का क्या अभिप्राय ?

साधक २– अर्थात् यह ज्ञान मुझे ईश्वर से मिल रहा है, ऐसी अपनी मान्यता वहाँ बनानी होगी ?

स्वामी जी – न न। इसमें दो बातें हैं - एक तो इसमें शब्द-प्रमाण है, ऋषियों ने लिखा है कि समाधि में ईश्वर से ज्ञान मिलता है। अतः इससे सहायता मिलती है, इसको वह यथावत् स्वीकार करता है तथा दूसरी स्वयं की अनुभूति अर्थात् ऋषियों ने ज्ञान-प्राप्ति की जो विधि और स्थिति लिखी है उसको ज्यों का त्यों समझकर, उसका प्रयोग किया और वह अनुभूति प्राप्त हुई।

साधक २– वह तो शब्द-प्रमाण का क्षेत्र हो गया। हमको तो स्पष्ट ईश्वर से वर्त्तमान में ज्ञान उपलब्ध हो रहा है। तो यहाँ जैसे वर्त्तमान में उपलब्ध हो रही वस्तु की स्पष्ट अनुभूति होती है, वैसे यहाँ ज्ञान देने वाले ईश्वर की स्पष्ट अनुभूति होनी चाहिए।

स्वामी जी – नहीं नहीं। आपका विषय वहाँ जा रहा है, जहाँ नहीं जाना चाहिए। मेरा जो दृष्टान्त है उसे पकड़िये आप। आपने जो कहा कि वह जो ज्ञान हमको मिल रहा है वह ईश्वर से मिल रहा है, इसमें क्या प्रमाण है ? तो इसका उत्तर है कि आपने ऋषियों के वाक्यों को पढ़ा है कि (धर्मात्मा-योगी-महर्षि लोग जब-जब, जिस-जिस मन्त्र के अर्थ जानने की इच्छा करके ध्यानावस्थित हो, परमेश्वर के स्वरूप में समाधिस्थ हुए, तब-तब परमात्मा ने अभीष्ट मन्त्रों के अर्थ जनाये। स.प्र.समु.७।) ऐसे ही ऋषियों ने समाधि के लक्षण भी बताये हैं। यह शब्द-प्रमाण हुआ।

साधक २– अर्थात् इसका निर्धारण आप्तप्रमाण से होगा।

स्वामी जी – हाँ ! एक तो आप्तप्रमाण काम करेगा, दूसरा अपना व्यक्तिगत ज्ञान भी सहायक होगा। वहाँ व्यक्ति देखता है कि मुझको जो उपलब्धि हुई है, वह किसी अन्य की नहीं है। अब क्या समझ में आया ? ईश्वर के ज्ञान होने पर, मेरी जो स्थिति बनी, बढ़ा हुआ जो ज्ञान-विज्ञान मिला कि मैं ईश्वर की सहायतापूर्वक अहिंसा-सत्य आदि का पालन इतने ऊँचे स्तर पर कर रहा हूँ, मैं क्लेशों से इतना बच रहा हूँ आदि, सारा अध्ययन करके वह तुलना करता है कि इस अवस्था से पहले मैं क्लेशों से पिसता था, अब नहीं पिसता। अपने द्वारा ही यह परीक्षण हो रहा है। वहाँ इसका स्वयं का ज्ञान काम करता है जैसे **निर्विचारवैशारद्येऽध्यात्मप्रसादः**। यो.द.१/४७। सूत्र के भाष्य में प्रज्ञाप्रसाद रूप स्वानुभूति का जो चित्र खींचा है, वैसा ही अनुभव यहाँ भी होता है। वैसा ही ज्यों का त्यों समझ में आता है। वहाँ स्वयं जीवात्मा कसौटी है। अतः ईश्वर से हमको यह ज्ञान मिलता है, आनन्द मिलता है; इसकी पुष्टि शब्द-प्रमाण से और स्वयं जीवात्मा के अनुभव से होती है।

ईश्वर से हमको ज्ञान मिलता है, इस विषय को तर्क से भी समझा जा सकता है। जैसे कि ज्ञान के दो आधार या स्रोत हैं, एक ईश्वर जिसमें स्वाभाविक ज्ञान रहता है और दूसरा जीवात्मा जिसमें स्वाभाविक ज्ञान भी रहता है और नैमित्तिक ज्ञान भी। इसलिए जो भी ज्ञान आएगा (होगा) वह ईश्वर से आएगा अथवा जीवात्मा से। प्रकृति से तो आएगा नहीं क्योंकि वह सहायक तो है किन्तु जड़ है। दूसरी बात यह है कि जीवात्मा के पास जो व्यक्तिगत-स्वाभाविक ज्ञान है, वह इतना कम है कि मात्र उससे न मुक्ति प्राप्त कर सकता है, न कोई व्यवहार सिद्ध कर सकता है। अतः मोक्ष और व्यवहार की सिद्धि के लिए उसे व्यक्तिगत ज्ञान से पृथक् ज्ञान की आवश्यकता है और

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी पूर्ति ईश्वरीय ज्ञान से होती है।

अब ये पृथक् पूरे ज्ञान कैसे आते हैं, उनको हम नहीं जान सकते हैं, पर आयेंगे ईश्वर से, इतना तो जान सकते हैं। कभी हमारा स्वाभाविक ज्ञान काम करता है, कभी नैमित्तिक; उनमें से कुछ की साक्षात् अनुभूति होगी कि ये कहाँ से आए, जिनका दृष्टान्त दिया गया, किन्तु बहुत से ज्ञान-विज्ञान की हमको साक्षात् अनुभूति नहीं होगी। शब्द-प्रमाण से या अनुमान-प्रमाण से उनका निश्चय करना होगा कि वे कहाँ से आए?

आचार्य नैष्ठिक जी – हमारे स्वाभाविक ज्ञान का स्वरूप थोड़ा सा बताइए।

स्वामी जी – स्वाभाविक ज्ञान का स्वरूप वह है, जिसमें ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान या साधनों से उभार आता है अर्थात् आत्मा में जो किसी भी विषय को अनुभव करने का ज्ञान है, वह उसका अपना है, स्वाभाविक है। यह सुख है, यह दुःख है, इसको जिससे जानता है वह स्वाभाविक है। यद्यपि स्वाभाविक ज्ञान का प्रयोग भी ईश्वर-प्रदत्त नैमित्तिक ज्ञान व साधनों पर आश्रित होता है, पुनरपि इसका निर्वाचन इस रूप में कर सकते हैं – जैसे कि मैं जानता हूँ, मैं सोचता हूँ, मैं इच्छा करता हूँ, सुखी-दुःखी हूँ आदि। इनको जीवात्मा के पूरे स्वाभाविक गुण तो नहीं कह सकते क्योंकि नैमित्तिक ज्ञान के बिना जीवात्मा अपनी अनुभूति भी नहीं कर पाता, पुनरपि कुछ-कुछ अंश में स्वाभाविक गुण हैं। आपको कुछ और समझ में आया हो तो बता सकते हैं।

साधक ३ – जहाँ पर जीवात्माओं की २४ शक्तियों की चर्चा आई है वहाँ पर मुख्य एक प्रकार की शक्ति ज्ञान को भी कहा गया है। 'और ज्ञान' ऐसा शब्द वहाँ पढ़ा है। अर्थात् आत्मा में जानने का गुण है, यह इसका अपना स्वाभाविक है, यह मुख्य है? ऐसा कह सकते हैं क्या?

स्वामी जी – जीवात्मा का केवल ज्ञान गुण ही मुख्य नहीं है अपितु ज्ञान गुण भी मुख्य है, बल गुण भी मुख्य है। वहाँ मुख्य का अर्थ है व्यक्तिगत। मुख्य तो चेतनता बताने के लिए कह दिया जाए, यह भिन्न विषय है। जैसे कि आप कहें जड़त्व प्रकृति का मुख्य गुण है, यह भिन्न विषय है। पर जीवात्मा का ज्ञान गुण अपना है, जीवात्मा का बल गुण अपना है, जीवात्मा का इच्छा गुण अपना है। ऐसे बहुत से गुण गिना दिये जो इसके अपने अर्थात् स्वाभाविक हैं।

ये जो कसौटियाँ हैं, इनको आप अपनी संचिकाओं में संगृहीत कर लें – जैसे कि सत्यार्थ प्रकाश तृतीय समुल्लास, न्याय दर्शन का वाद, मनुस्मृति का वेदस्मृति...श्लोक आदि। इनके अतिरिक्त इनसे सम्बद्ध अन्य विषय हों, उनका भी संग्रह कर लें। आ गया समझ में? स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने सत्यासत्य को जानने के लिए अनेक जगह उन कसौटियों को उपस्थित किया है। तृतीय समुल्लास में इनका थोड़ा विस्तार है। वे ही मन्तव्यामन्तव्य में होने चाहिएँ।

साधक ३ – व्यवहारभानु में भी हैं।

स्वामी जी – आर्योद्देश्यरत्नमाला में भी सम्भावना है। उन्होंने बार-बार लिखा क्योंकि वे जानते थे कि इन कसौटियों को ठीक-ठीक जाने बिना सत्यासत्य, धर्माधर्म, बन्ध-मोक्ष आदि को नहीं जाना जा सकता।

साधक ८ – मनुस्मृति का कौन सा श्लोक है? स्वामी जी!

स्वामी जी – **वेदः स्मृतिः सदाचारः स्वस्य च प्रियमात्मनः।**
एतच्चतुर्विधं प्राहुः साक्षाद्धर्मस्य लक्षणम्॥ मनु. २/१२।

तो इन कसौटियों को अपनी संचिकाओं में अच्छी तरह से लिख लें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य नैष्ठिक जी – कसौटियों का अर्थ साधन समझना चाहिए?

स्वामी जी – वाक्य को पूरा करो, अन्यथा भ्रान्ति रह जाती है।

आचार्य नैष्ठिक जी – सत्यासत्य को जानने की जो कसौटियाँ कही जाती हैं, उनको साधन भी कह सकते है?

स्वामी जी – हाँ! कोई आपत्ति नहीं। साध्य-साधन तो व्यापक प्रयोग है और ये ज्ञान के साधन हैं, अतः आपत्ति नहीं है। वहाँ तो अपनी भाषा में तात्पर्य को लेकर लागू हो जाएगा। उनको उपकरण कह दो, प्रमाण-कसौटी-साधन कह दो, कोई बात नहीं, पर्यायवाची शब्द हैं ये।

साधक २ – आठ प्रमाणों के अन्तर्गत तो ये सभी आ जाएँगे।

स्वामी जी – आठ प्रमाण - प्रत्यक्ष, अनुमान, उपमान, शब्द, ऐतिह्य, अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव। एक बात और है, इनको संक्षेप से और विस्तार से, दोनों तरह से पढ़ सकते हैं। जब आप अर्थापत्ति, सम्भव, अभाव को एक में इकट्ठे कर लेंगे तब केवल अनुमान कहलायेंगे तथा ऐतिह्य को शब्द में मिला लेंगे तो कुल चार में कथन हो जाता है और योगदर्शन में तो तीन में ही सबको समेट लिया।

सम्पादक – योग दर्शन में उपमान प्रमाण को प्रत्यक्ष और शब्द के अन्तर्गत समझ लेना चाहिए।

साधक ८ – स्वामी जी! जीवात्मा के स्वाभाविक ज्ञान की जो हमारी चर्चा थी, उस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में यह लिखा है कि जीवात्मा का वह केवल साधनमात्र बनता है।

स्वामी जी – ठीक बात है। साधनमात्र बनता है, पर किसका?

साधक ८ – नैमित्तिक ज्ञान को ग्रहण करने का या पशु आदि के व्यवहार को ग्रहण करने का।

स्वामी जी – पशु आदि का तो क्या? अर्थात् वे यह सिद्ध करना चाहते हैं कि जीवात्मा उस अकेले ज्ञान से कोई व्यवहार नहीं कर सकता। जब उसको ईश्वर से शरीर आदि उपकरण और ज्ञान मिलता है तब वह कुछ कार्य कर पाता है। पता चल गया तो हाथ खड़ा कर दो, जिससे हमें भी पता चल जाए कि आपको पता चल गया है।

आचार्य नैष्ठिक जी – पता चल गया है।

स्वामी जी – अच्छा, ठीक है।

साधक ८ – स्वामी जी! जीवात्मा को यदि इस बात का भान हो जाये तो उसका अभिमान समाप्त हो जाए।

स्वामी जी – एक अभिमान ही नहीं, पता नहीं कितने दोष समाप्त हो जाएँ। यही तो नहीं जानता कि मैं क्या हूँ और ईश्वर क्या है? आप लोग भी नहीं जानते, अन्यथा आपके भी अभिमान आदि दोष समाप्त हो जाते। आप में तो ये सारे दोष ज्यों के त्यों दिखते हैं। एक बात ध्यान में रखिए, आपने पढ़ा-पढ़ाया, सुना-सुनाया, बहुत कुछ मन्थन किया पर यह मत मान लेना कि मैं इस विषय को जान गया हूँ। यह भयंकर भूल मत कर देना आप। यह भयंकर भूल पढ़े-लिखों में अधिक होती है। समझ में आया या नहीं?

साधक ३ – उसको ऐसा तो मान सकते हैं कि हमने उसे शाब्दिक रूप में तो जान लिया है, व्यावहारिक रूप में नहीं जाना है।

स्वामी जी – हाँ! शाब्दिक रूप में तो जान लिया है, व्यावहारिक रूप में नहीं जाना है, यह ठीक है। ऐसा मानते हैं तो व्यवहार में जानने के लिए प्रयत्नशील हो जाएँगे, किन्तु आपने मान लिया

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि ये बातें तो हमने सुन रखी हैं, अब और क्या करना; तब आपकी जिज्ञासा समाप्त हो चुकी है, तुष्टिदोष आ गया है, जिसका खण्डन सांख्यकार ने किया और अब आप प्रयत्नशील नहीं होंगे।

एक अन्य बात पर ध्यान दें – अब आप पढ़े-पढ़ाये, सुने-सुनाये अर्थात् जिसको आप मानते हो कि मैं इसको जान चुका हूँ, उसको सदा सामने रखो और अपना मन-वचन-कर्म देखो। अब पता चलेगा कि कितना जानते हो आप? दोहरा लो क्या समझ में आया?

साधक ३ – जितना पढ़ा-लिखा है, उन्हें सामने रखकर जीवन से तोलना है।

स्वामी जी – अपने मन-वचन-कर्म-व्यवहार को देखो, तब आपको पता चल जाएगा कि कितना समझ में आया है, कितना नहीं? तब आप समझेंगे कि मैं मूर्ख हूँ, सुकरात की तरह।

साधक ३ – भतृहरि जी का श्लोक है।

स्वामी जी – हाँ! भतृहरि जी का श्लोक आता है –

यदा किंचिज्ज्ञोऽहं द्विप इव मदान्धः समभवम्।
तदा सर्वज्ञोऽस्मीत्यभवदवलिप्तं मम मनः॥
यदा किंचिर्त्किचिद् बुधजनसकाशादवगतं।
तदा मूर्खोऽस्मीति ज्वर इव मदो मे व्यपगतः॥ नीति.श्लो.८।

उधर वह सुकरात की भी घटना आती है, किसी देश में रहते थे और आध्यात्मिक मार्ग पर चलते थे परन्तु वहाँ के राजनीतिज्ञ व अन्य लोग उनका विरोध करते थे और उन्हें मारने का भी प्रयत्न करते रहते थे। इस स्थिति में एक बार किसी ने पूछा – क्या कारण है कि लोग आपको बहुत बुरा मानते हैं और समाप्त करना चाहते हैं? तो सुकरात ने कहा – इसका एक ही कारण है कि मैं मूर्ख हूँ किन्तु अपनी मूर्खता को जानता हूँ और वे भी मूर्ख हैं परन्तु अपनी मूर्खता को नहीं जानते हैं। मैं उन्हें मूर्ख कहता हूँ, वे इसे नहीं मानते और मुझे मारना चाहते हैं। आया समझ में या नहीं, आप किसमें हो? अब विराम॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५ क्रियात्मक योगाभ्यास

निर्णय-परीक्षण : आषाढ़ शु. ११/२०६०-१०/०७/०३

अब हम गायत्री मन्त्र का पाठ करेंगे –

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु. ३६/३।

अब आपके समक्ष योगप्रशिक्षण में भाग लेने वाले साधकों को जिन-जिन नियमों का पालन करना है, वे नियम रखे जाएँगे। आप आइए और यहाँ बैठकर पत्रक को पढ़िये तथा शेष लोग ध्यान से सुनेंगे –

साधक १– शिविरार्थी ब्रह्मचारियों एवं साधकों के लिए २५ नियम बनाये गये हैं, उनको क्रम से सुना रहा हूँ –

०१– प्रतिदिन प्रातः जागरणोपरान्त प्रातःकालीन प्रार्थनामन्त्रों का ईश्वर-प्रणिधान-सहित पाठ करना।

०२– प्रातः ४ बजे घण्टी लगने पर कोई शिविरार्थी न उठे, तो अन्य शिविरार्थी उसे उठा देवें।

०३– स्वामी जी की आज्ञा के बिना, किसी व्यक्ति से नमस्ते के अतिरिक्त कोई चर्चा न करें। न दूरभाष से किसी के साथ सम्पर्क करें।

०४– कोई भी विशेष अर्थात् नया कार्य स्वामी जी से बिना पूछे न करें।

०५– किसी के साथ या स्वयं स्वतन्त्रतापूर्वक मन में भी कोई योजना न बनाएँ।

०६– स्वयं किसी को कोई भी सुझाव नहीं दें।

०७– गम्भीरता बनाए रखें। न स्वयं हँसे, न दूसरे को हँसाने का प्रयत्न करें। मौन रहें।

०८– व्यवहार में जो-जो कठिनाइयाँ आयें, उनके समाधान के लिए अध्यक्ष (स्वामी) जी से निवेदन करें।

०९– प्रतिदिन कम से कम दो घन्टे अर्थात् प्रातः सायं एक-एक घण्टा ध्यान करना अनिवार्य है।

१०– प्रतिदिन निदिध्यासन के लिए ३० मिनट समय लगाना अनिवार्य है।

११– आध्यात्मिक आर्ष ग्रन्थों का स्वाध्याय डेढ़ घण्टे करना। न्यूनातिन्यून एक घण्टे करना अनिवार्य है।

१२– रात्रि में शयन से पूर्व कम से कम ५ मिनट आत्मनिरीक्षण तथा उसके पश्चात् ५ मिनट तक ओम् अथवा गायत्री मन्त्र का श्रद्धापूर्वक जप करें।

१३– व्यायाम प्रकोष्ठ से बाहर करें।

१४– शयन की घण्टी (रात्रि ०९.३०) के पश्चात् अनावश्यक विद्युत् न जलाएँ।

१५– भोजन, दुग्धपान, फल-भक्षण आदि के समय मौनव्रत का पालन करें।

१६– प्रशिक्षण को छोड़कर शेष काल में मौनव्रत का पालन करें।

१७– मौनकाल में खट-पट आदि किसी भी प्रकार की ध्वनि न करें।

१८– पत्र, पत्रिका, दैनिक समाचारपत्र आदि पढ़ना, आकाशवाणी सुनना व दूरदर्शन देखना पूर्णरूप से निषिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१९– कोई भी पुस्तक स्वामी जी की अनुमति के बिना न पढ़ें।

२०– परस्पर अनावश्यक व बाह्य सांसारिक चर्चा न करें। आवश्यक वार्तालाप भी कम से कम शब्दों में ही करें। अधिक से अधिक मौन रहकर आत्मचिन्तन करें।

२१– परीक्षा पूर्वक सत्य ही मानें, बोलें, लिखें तथा आचरण करें।

२२– बोलते समय हितकारी, मधुर और आवश्यकतानुसार ही बोलें।

२३– सत्य दोष बताए जाने पर, भूल से या जानबूझकर मिथ्या आरोप लगाए जाने पर भी बुरा न मानें। प्रसन्नता पूर्वक सुनें, सहन करें तथा दोष होने पर उसे दूर करें। आवश्यक होने पर स्पष्टीकरण करें।

२४– खुले इधर-उधर न घूमें। शरीर पर कोई न कोई वस्त्र रखें। व्यायाम काल में कच्छा पहन सकते हैं।

२५– घण्टी लगने के उपरान्त ५ मिनट के अन्तराल में कार्यक्रम के प्रारम्भ होने से पूर्व अवश्य पहुँच जाएँ।

२६– व्यवहार में संस्कृतभाषा का प्रयोग करें। (यह नियम विचारोपरान्त बनाया गया।)

विशेष - आवश्यकता को देखते हुए नियम में संशोधन व संवर्द्धन संभव है। विशेष सूचना –

१. अतिथि महानुभाव किसी भी ब्रह्मचारी, साधक गण से कोई वार्तालाप न करें। आवश्यक हो तो श्री स्वामी जी से निवेदन कर लें।

२. प्रातराश तथा भोजन में प्रथम ब्रह्मचारी गण बैठेंगे, तदुपरान्त साधक तथा अतिथि बैठेंगे। धन्यवाद। आज्ञा से - शिविराध्यक्ष।

स्वामी जी – ये नियम विद्यालय के ब्रह्मचारियों पर लागू करने हैं या नहीं; यह आचार्यों का काम हैं, वे जैसा समझेंगे वैसा करेगें, पहले उनसे पूछ लेंगे।

अब यहाँ अपने लिए थोड़ा विचार कर लेते हैं। जो कि मुख्य रूप से भाग ले रहे हैं, जिनके लिए ये नियम बनाएँ हैं, क्या उनके ऊपर ये नियम यथावत् लागू हो सकते हैं या कुछ संशोधन अपेक्षित है? तो जिनको यह कठिन दिखता है, जो ऐसा समझते हैं कि हम इनका पालन नहीं कर सकते या अभी नहीं किन्तु कुछ दिन, सप्ताह, पन्द्रह दिन या महीने भर में पालन करने में समर्थ हो सकेंगे, तो वे बतायें। अथवा किसी को लगता हो कि ये नियम ऐसे हैं, जो हमारे किन्हीं पुराने अभ्यासों के अवरोध होने पर, स्वास्थ्य पर कुप्रभाव डालेंगे; क्योंकि उसके बिना हम रह नहीं सकते जैसे हँसना आदि छोड़ नहीं सकते, तो वे भी अपनी बात बताएँ। चुप नहीं रहना है, हाँ करो या स्पष्ट करो कि नियम सुधार करें।

साधक ६– इसमें कहना है।

स्वामी जी – ऐसे नहीं बोलना है।

साधक ६– अनुकूलता है।

स्वामी जी – ऐसे नहीं बोलते हैं, भाषा को सुधार लो। जमकर बोलो, जिससे एक-एक शब्द, अक्षर सबको सुनाई दे। आपकी तो दौड़ लगाने की भाषा है। अब आप तीसरी बार बोलेंगे तब कुछ पल्ले पड़ेगा मुझे!

साधक ३– मुझे भी ये नियम स्वीकार हैं।

साधक २– स्वाध्याय के नियम में मैं छूट चाहता हूँ। जितनी मुझे अपेक्षा होगी उतना मैं अन्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ग्रन्थों को देख लूँगा। पूरे समय तक मैं स्वाध्याय नहीं कर पाऊँगा।

स्वामी जी – ऐं!!

साधक २ – पूरे एक घण्टे तक मैं स्वाध्याय नहीं कर पाऊँगा।

स्वामी जी – नहीं, आप डेढ़ नहीं कर सकते हैं तो एक घण्टा करें। उसमें वेद, उपनिषद्, सत्यार्थ प्रकाश के विशेष-विशेष समुल्लास को लें।

साधक २ – पन्द्रह-बीस मिनट मैं कर सकता हूँ।

स्वामी जी – नहीं कर सकते, इसमें कोई कारण होना चाहिए? एक कारण है असमर्थता।

साधक २ – दूसरे कार्य के कारण समय नहीं मिल पाएगा।

स्वामी जी – उसमें एक बात है, कहीं ऐसा न हो कि अपने-अपने अन्य कार्य होने के कारण दूसरे लोग भी कहने लगें कि हमें भी छूट चाहिए, तो अव्यवस्था हो जाएगी। क्यों जी! आप बताओ कहीं ऐसा तो नहीं होगा?

साधक १ – इनको देखकर तो नहीं चाहेंगे किन्तु अपने-अपने व्यक्तिगत कारण से चाह सकते हैं।

स्वामी जी – स्वाध्याय करेंगे तो, किन्तु कम, अन्य कार्य अधिक होने के कारण। तो इनके लिए छूट कर सकते हैं। इसमें आप बताओ, क्या यह ठीक रहेगा? मान लो, आधा घण्टा लगा लें, तब आपको तो बाधा नहीं होगी?

साधक ३ – हमको तो बाधा नहीं है।

साधक ८ – स्वामी जी! यदि स्वास्थ्य की बाधा रही तो मेरा स्वाध्याय भी कम हो पाएगा।

स्वामी जी – ठीक है। रोग के कारण ऐसी कोई स्थिति आती है तो आप कम समय लगा लेना। और बोलो।

साधक ३ – स्वामी जी! अभी हम पूरे नियमों को लेकर चलते हैं। आगे देख लेंगे, जो कठिनाई आएगी, उसके अनुसार परिवर्तन कर लेंगे।

स्वामी जी – हाँ! तो स्वास्थ्य के कारण इनको भी इतनी छूट देते हैं, जैसा कि सत्यकाम जी ने बताया, तो उस समय ये बता देंगे कि मैं अस्वस्थता के कारण इतना कर पाया और जब ठीक हैं, तब इनके लिए भी एक घण्टा रखते हैं। दूसरी बात - सुमेरुप्रसाद जी का विचार है कि मैं दूसरे कामों में अपना समय अधिक लगाने की सोचूँगा। तो इनके लिए आधा घण्टा नियत मानकर चलते हैं। आगे प्रयोग करने पर कोई परिवर्तन करना होगा तो कर लेंगे।

साधक १ – स्वामी जी! मैं एक बात पूछना चाहता हूँ कि स्वाध्याय का काल लगातार एक घण्टे का रहेगा या बीच-बीच में अनुकूलता से समय पूरा कर सकते हैं?

स्वामी जी – लगातार एक घण्टा यदि नहीं कर पाते, उसमें ऐसा हो सकता है, सुविधा के अनुसार दो भागों में किया जा सकता है।

साधक १ – अथवा जब-जब समय मिले, उसके अनुसार कुल मिलाकर एक घण्टा स्वा- ध्याय कर लें।

स्वामी जी – पर उसमें काल निश्चित करना होगा या मनचाहे विभाग बनायेंगे?

साधक १ – तीन विभाग बना लेते हैं।

स्वामी जी – क्यों जी, कैसा रहेगा?

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३ – ऐसा कर सकते हैं।

स्वामी जी – हाँ ! तो अधिक से अधिक तीन विभाग बना लेते हैं। अन्यथा सीमा नहीं होगी, मनमाने ढंग से कम-अधिक करने लग जाएँगे।

साधक १ – स्वामी जी ! स्वाध्याय का भी एक तो प्रकार है कि लगातार पढ़े। दूसरा प्रकार है थोड़ा पढ़कर पुस्तक बन्द करके पुनः उस पर चिन्तन करता है। तो इस प्रकार से भी समय पूरा कर सकते हैं ?

स्वामी जी – हाँ, तो कोई बात नहीं। तीन बार समय विभाजित कर सकता है।

साधक ३ – मुख्य बात तो यही आई कि एक घण्टा स्वाध्याय करना है। तो उसमें आधा घण्टा अध्ययन किया और शेष आधा घण्टा गम्भीरता से विचार किया तो यह विचारकाल भी स्वाध्याय कहलाएगा ?

स्वामी जी – नहीं। इसमें देखने की बात यह है कि कभी ऐसा न हो जाए कोई थोड़ी- सी एक पंक्ति पढ़ ले और शेष आधा घण्टा विचारने में लगा दे। इससे यह होगा कि स्वाध्याय का जो अपना प्रभाव है या स्वाध्याय की जो उपलब्धि है, वह नहीं होगी। वह तो पूरी पंक्तियों को पढ़ने से ही होगी। यद्यपि मनन भी स्वाध्याय का अंग है। यह कोई बाहर की बात नहीं है और ये दोनों भी योग के ही भाग हैं।

साधक ५ – स्वामी जी ! व्यायाम के विषय में जो बात आई थी कि कमरे से बाहर करें तो उसी समय कोई बाहर उपासना कर रहा हो, तब क्या करेंगे ?

स्वामी जी – उसके विषय में हमने विचार किया था कि व्यायाम उपासना से भिन्न समय में करें। अथवा व्यायाम इतनी दूर जाकर करो कि ध्वनि न आए। अन्य कोई बात हो तो उठायें। अच्छा ! नियम के अन्तर्गत सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ का प्रसंग आ गया ? सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ होने पर क्या करें ?

साधक १ – यह नहीं आया है।

स्वामी जी – यह तप का एक भाग है। सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ को प्रसन्नता पूर्वक सहन करें।

साधक १ – यह थोड़ी-सी बात आई है कि सत्य दोष बताए जाने पर, भूल से या जान-बूझकर मिथ्या आरोप लगाए जाने पर भी बुरा न मानें।

स्वामी जी – यह एक भाग आ गया।

साधक १ – प्रसन्नतापूर्वक सहन की बात नहीं आई।

स्वामी जी – प्रसन्नतापूर्वक सहन की बात भी आई है। इसी के अन्तर्गत सुख-दुःख, मान-अपमान, हानि-लाभ, सर्दी-गर्मी आदि कठिनाइयों को प्रसन्नता पूर्वक सहन करें। एक दुःखपूर्वक सहन करता है, दूसरा सुखपूर्वक सहन करता है, दोनों में अन्तर है।

यह एक नियम यदि न आया हो तो इसमें जोड़ लें कि योग प्रशिक्षणकाल की घण्टियों को छोड़कर शेष काल में, कोई विशेष बाधा न आती हो, तो शुद्ध रूप में संस्कृत सम्भाषण करें। शुद्ध के साथ और क्या विशेषण लगाएँ ? मधुरता लगा लें। तो शुद्ध और मधुर संस्कृत सम्भाषण का नियम भी बना लें। अच्छा ! और इसके अवकाश का काल देख लो जैसे एक तो योग प्रशिक्षण काल, दूसरा आय-व्यय आदि का कार्य, जिसमें आप भाषा में बात करेंगे और शेषकाल में संस्कृत में बात करेंगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका यह भी उद्देश्य है कि आपको शुद्ध धारावाही रूप में अच्छी तरह से संस्कृत बोलनी आ जाए और आगे उसमें प्रवचन भी कर सकें। विद्वानों के साथ बातचीत कर सकें तथा कभी कोई सैद्धान्तिक समस्या खड़ी हो जाए तो संस्कृत में भी शास्त्रार्थ कर सकते हैं और भाषा का विज्ञान भी होगा इत्यादि।

साधक २ – यह नियम केवल हम लोगों पर लागू हो सकेगा, पूरे साधक वर्ग के लिए लागू नहीं हो पाएगा।

स्वामी जी – क्या कह रहे हैं?

साधक १ – ये कह रहे हैं यह नियम केवल ब्रह्मचारी वर्ग पर लागू हो सकेगा।

स्वामी जी – हमारा भी यही कहना है कि यह ब्रह्मचारी वर्ग के लिए हो।

साधक १ – आपने दोनों के लिए बोल दिया है।

स्वामी जी – अच्छा! तो इसके लिए संके त कर देंगे कि यह नियम के वल ब्रह्मचारी वर्ग पर लागू रहेगा।

साधक १ – स्वामी जी! इस पर विचार कर लें कि आर्यभाषा में किस समय वार्त्तालाप कर सकते हैं।

स्वामी जी – हाँ! इस पर विचार कर लेते हैं। कुछ बातें ऐसी हो सकती हैं जैसे किसी के साथ आपने संस्कृत भाषण किया और वह समझ नहीं सकता है तो अनुवाद कर दो। और क्या कर सकते हैं?

साधक १ – उपासना में प्रातः सायं या दिनभर में अधिक से अधिक कितना समय लगाया जा सकता है?

स्वामी जी – अच्छा! तो कम-अधिक की सीमा सापेक्ष है, एक जिसको कम कहेगा दूसरा उसी को अधिक कह सकता है। तो आप पहले बताओ! आपके मन में अधिक की सीमा कितनी है? आप बताओ, कितना करना चाहते हैं?

साधक १ – दिनभर में कुल मिलाकर लगभग चार घण्टे लगाना चाहता हूँ।

स्वामी जी – आप पहले तीन घण्टे लगाकर देखें।

साधक १ – दिनभर तीन तो लगाता ही हूँ।

स्वामी जी – नहीं, चार घण्टे लगाने के लिए यह देखना होगा कि अन्य सामूहिक कार्य बाधित हो सकते हैं। निष्काम कर्म, औरों की सेवा भी तो करनी ही है। अपने कार्यों के साथ-साथ समाज का कार्य करना ही पड़ेगा। उसके लिए समय चाहिए। इसके अतिरिक्त अपना व्यायाम और स्वाध्याय भी करने हैं। ये सब मिलाकर देखो कि चार घण्टे उपासना के लिए सम्भव हैं? इसमें अधिक समय लगा देने पर उन कार्यों में ढीलापन तो नहीं आएगा?

साधक १ – व्यायाम को कम किया जा सकता है।

स्वामी जी – नहीं, कम किसी को नहीं करना है। तो इन बातों पर हमको ध्यान देना है कि निष्काम भावना से, उत्साह और श्रद्धापूर्वक अन्यों की सेवा करनी है। दो दृष्टियाँ होती हैं - एक तो कि हम समाज से विविध लाभ उठाते हैं तो हमें विविध प्रकार से उनको सहयोग देना चाहिए। जितना लाभ ले रहे हैं उतना सहयोग करना। यह एक तुलनात्मक दृष्टि है। दूसरी दृष्टि है कि उतना तो करना है, अपितु उससे अधिक करने का प्रयास करना चाहिए। इसको कहते हैं निष्काम कर्म। और इसलिए भी स्वाभाविक रूप से इसको करते रहना चाहिए कि यह ईश्वर-प्राप्ति का साधन है। तो देख लीजिए,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐसी कोई त्रुटि नहीं आती हो तो चार घण्टे कर सकते हैं। अन्य कोई बात हो तो बताइए।

साधक ३ – मैं तो अभी एक-एक घण्टा ही उपासना करूँगा, अपेक्षा हुई तो आगे बढ़ाने का प्रयास करूँगा।

स्वामी जी – हाँ, और बोलिए। मुख्य रूप से आप लोगों के लिए विचार चल रहा है।

साधक ८ – स्वामी जी ! मैं शीघ्र उठता हूँ तो किसी को बाधा हो सकती है, तब क्या करना है ?

स्वामी जी – आप शीघ्र उठेंगे तो किसी को बाधा न हो, इस रूप में अपना काम कर सकते हैं।

साधक ८ – ठीक है, स्वामी जी !

स्वामी जी – और बताइए -

साधक ८ – स्वामी जी ! जैसा कि आपने परोपकार वाले क्षेत्र की बात कही, यह तो इसमें सम्मिलित नहीं है।

स्वामी जी – आपने पहले यह समझना है कि आप जो बोलते हैं वह हमको सुनाई दे। इस बात को भूल जाओ कि चाहे जैसा बोलते चलें। इतना प्रयास करो कि अक्षर, शब्द, वाक्य आदि इतने अच्छे हों कि आगे-पीछे सबको स्पष्ट सुनाई दें। आपको बार-बार टोकने पर भी यही लगता है, आप दो-तीन सप्ताह तक ध्यान नहीं देंगे। अब क्या बोला आपने, मुझे सुनाई नहीं दिया, पुनः ठीक-ठीक बोलिए।

साधक ८ – स्वामी जी ! आपने बताया था कि जो परोपकार है, वह भी हमारी उपासना का अंग है, किन्तु अब तक जो हमारी दिनचर्या निर्धारित हुई है, उसमें हमारी दृष्टि में ऐसे किसी कार्य विशेष का कोई उल्लेख नहीं है।

स्वामी जी – अभी भी सुनाई नहीं दिया। आप बोल दीजिये ! क्या कह रहे हैं ?

साधक १ – स्वामी जी ! ये यह कह रहे हैं कि ब्रह्मचारियों और साधकों की जो दिनचर्या निर्धारित की गई है, उसमें परोपकार का कोई कार्य निर्धारित नहीं किया गया है। अर्थात् आपने जो अभी कहा कि सेवा-परोपकार का कार्य करो, तो जानना चाह रहे हैं कि कौन-सा वह कार्य है व किस समय करना है ?

स्वामी जी – अच्छा ! तो यह बात है ! इसके लिए तो आपने शिविर से सम्बद्ध जो-जो कार्य निर्वाचित किये हैं जैसे कि आशुतोष जी आय-व्यय का काम करेंगे। ये सामाजिक-कार्य हैं। ऐसे ही और होंगे, जिसमें साफ-सफाई करना है, लेखन-अध्यापन करना है।

साधक १ – ये कार्य सबको वितरित किये गए हैं। इनको भी एक कार्य फल-सब्जी का दिया गया है कि कौन-सी सब्जी या फल किस दिन मंगवानी है, इसकी सूचना उधर बाहर से लाने वाले को देंगे तथा फल-वितरण का कार्य ये ही करेंगे।

स्वामी जी – तो आपके लिए हो गया। ऐसे और किसी को कोई कार्य नहीं मिला है तो बताये ? हाँ ! साधक जी को पूछ लो, इनके लिए कोई कार्य हो तो ?

साधक २ – इनको यज्ञ करने का कार्य दिया गया है।

स्वामी जी – अच्छा ! यह तो सबका मिलकर करने योग्य कार्य है। ऐसा कोई अन्य कार्य देखो जो पृथक् रूप से किया जाए। तो शाक-फल आदि का हो गया। आपने लेखन करना है और आपको ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – मुझे दूध-दही आदि की व्यवस्था करनी है और चिकित्सा का कार्य है।

स्वामी जी – अच्छा ! अब जिसको नहीं मिला हो, वह बताओ ? तो ठीक है, आगे आवश्यकतानुसार किसी को भी वह-वह कार्य देने का प्रयत्न करेंगे और कोई अपने अनुकूल कार्यों को देखते हुए कि मैं इस कार्य को कर सकता हूँ, हमको सूचित करे। पुनः जैसा उचित होगा हम व्यवस्था करेंगे। और देखो !

साधक १ – स्वामी जी ! ये जो कार्य दिए गए हैं, उनका समय कुछ कम करके या उसके साथ जब समय हो, तो जहाँ हम रह रहे हैं, वहाँ आस-पास घास उगी हुई है, मार्ग भी नहीं बना हुआ है, तो यह कार्य कर लिया जाए।

स्वामी जी – हाँ ! जहाँ हम रहते हैं वहाँ शुद्धि एक प्रमुख कार्य है। कहीं भी अशुद्धि न रहे, इसमें जो सहयोग कर सकता हो, वह बताए ? जितनी अशुद्धियाँ हैं, घास है, गड्ढे हैं, कुरूपता है, ऐसा नहीं रहना चाहिए। जहाँ हम रहते हैं, वह स्थान बहुत अच्छा होना चाहिए। अब आप में से बोलो, कौन इस कार्य को करेगा ? आपके भी दो भाग हैं - एक तो ऊपर वाला जिसमें ब्रह्मचारी रहते हैं, दूसरा यहाँ का जिसमें हम हैं, अन्य साधक, अतिथि और पाचक आदि अन्य लोग रहते हैं। तो इन दोनों में से एक-एक विभाग को भी लिया जा सकता है।

साधक १ – स्वामी जी ! रात्रि में जो आप आत्मनिरीक्षण की कक्षा लेंगे, उसमें दिन में जो मानसिक दोष हुए, उनको संचिका में लिखकर दिखाने का प्रयास करेंगे।

स्वामी जी – हाँ ! उनमें भी कुछ ऐसे दोष जो सबके बीच में सुनाये जा सकते हैं, जैसे मन में राग-द्वेष आ गया, चोरी की भावना आ गई आदि। इनको उदाहरण के रूप में सुना सकते हैं। अच्छा ! इस प्रसंग में ध्यान देने की एक बात - मानसिक रूप से जो दोष होते हैं, उनमें किसका प्रायश्चित्त अनिवार्य है, किसका नहीं; इस विषय में बताता हूँ। मान लीजिए आपका किसी व्यक्ति में अधिक राग हो गया या किसी से अति द्वेष हो गया है और वह व्यक्ति सामने आ गया। अब आपका राग या द्वेष उत्पन्न होने लगा किन्तु उत्पन्न होते-होते आपने उसे रोक दिया। यह एक अनिर्णीत स्थिति हुई, चाहें तो इसके लिए प्रायश्चित्त न करें। और दूसरी स्थिति वह होती है जिसमें आप रोक नहीं पाए, राग कर लिया, यह प्रायश्चित्त के योग्य है।

दोनों में अन्तर - एक में विचार उठा है, पर आप संघर्ष कर रहे हैं, निर्णय नहीं हो रहा है, स्वीकार नहीं कर रहे हैं (तब यह अभी दोष नहीं है।) तथा दूसरे में निर्णय हो जाता है, स्वीकार हो जाता है (तब यह दोष बन जाता है)। जब ऐसी स्थिति आई तब मानसिक प्रायश्चित्त करना है।

फिर से बोलता हूँ। एक स्थिति जिसमें विचार मात्र चलता है उसमें हम किसी निर्णय पर नहीं पहुँचते हैं, किन्तु दूसरी स्थिति वह होती है जिसमें हम निर्णय कर लेते हैं। जैसे कि 'यह व्यक्ति बहुत सुन्दर है' ऐसा लगा तो समझ लीजिए आपने स्वीकार कर लिया। मन में रूप का राग आ गया। अब आपको यहाँ प्रायश्चित्त करना है तथा प्रतिपक्ष भावना करनी है कि ऐसे रूप के विषय में सोचना कि बड़ा सुन्दर है, यह तो सुख की अनुभूति करना है। इसके तो संस्कार बनेंगे और वही संस्कार कामवासना को जगाएँगे। अतः यह दोष है, ऐसा नहीं होना चाहिए था। अब मैं प्रायश्चित्त करूँगा और आगे यह दोष नहीं होने दूँगा।

प्रायश्चित्त की विधि - प्रायश्चित्त के लिए प्रथम हम अपने दोष को स्वीकार करते हैं, पुनः उन दोषों को दूर करने के लिए अर्थात् आगे न करने के लिए ईश्वर के समक्ष प्रतिज्ञा करते हैं तथा प्रतिज्ञा को सफल करने के लिए मन्त्रों द्वारा ईश्वर से प्रार्थना करते हैं। इस प्रार्थना के मन्त्र भी दो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकार के होते हैं, एक तो जिससे व्यक्तिगत रूप में प्रार्थना करते हैं जैसे परि मान्ने दुश्चरिताद् बाधस्व.....। और दूसरे जिससे सामूहिक रूप में सबके लिए प्रार्थना करते हैं जैसे कि विश्वानि देव.....तन्न आसुव। अन्य भी ऐसे मन्त्र लिए जा सकते हैं। तो ऐसे किन्हीं मन्त्रों के द्वारा प्रायश्चित करते हैं। मानसिक दण्ड लेते हैं। आगे वे दोष न आवें, इस विषय में सावधान रहते हैं तथा यह भी परिणाम आता है कि उस विषय में हमारी रूचि कम हो जाती है। तो इस प्रकार प्रायश्चित्त कर सकते हैं।

साधक १ – बिना मन्त्रों की सहायता के भी प्रायश्चित्त कर सकते हैं?

स्वामी जी – अपनी भाषा में?

साधक १ – हाँ जी!

स्वामी जी – अपनी भाषा में तो कर सकते हैं, किन्तु प्रामाणिकता के लिए, आधार रूप में मन्त्र होने चाहिएँ। मन्त्र के साथ-साथ अपनी भाषा का प्रयोग कर सकते हैं।

साधक १ – स्वामी जी! दिनचर्या में प्रातःकाल व्यक्तिगत उपासना का समय साढ़े पांच से साढ़े छः बजे निर्धारित किया गया है। तो आपने कहा था कि यदि कहीं किसी को प्रतिकूलता हो तो उस पर विचार कर सकते हैं।

स्वामी जी – क्या अभिप्राय है आपका?

साधक १ – प्रातःकालीन उपासना का जो समय है, मैं उसमें स्वतन्त्रता चाहता हूँ।

स्वामी जी – कैसे जैसे?

साधक १ – जैसे कि मैं प्रातःजागरण के पश्चात् हाथ-मुंह धोकर एक घण्टा बैठता हूँ, तत्पश्चात् दिनचर्या से निवृत होकर पुनः बैठता हूँ। ऐसा मेरा अभ्यास है अर्थात् यह एक समय मुझे उतना अनुकूल नहीं रहता है। आपने कहा था ऐसे में विचार किया जा सकता है।

स्वामी जी – हाँ! एक तो समय-परिवर्त्तन की बात है और आप अधिक समय भी लगाना चाहेंगे?

साधक १ – हाँ! थोड़ा तो अधिक लगेगा।

स्वामी जी – तो आपके ऐसा करने से किसी को बाधा तो नहीं पड़ेगी?

साधक १ – दिनचर्या तो बाहर के शौचालय व स्नानागार में सम्पन्न हो जाएगी तथा कमरे में मेरे साथ रणवीर जी रहते हैं, उनको कोई बाधा हो तो बता दें।

स्वामी जी – साथ वाले या पास वाले को कोई बाधा न हो, तो ऐसा कर लें। दूसरी बात आपने स्वीकृति तो ले ली, अब प्रयोग करके देखो। पुनः कोई समस्या आए तो इसको रोक दिया जाए। और यह दिनचर्या-पत्रक ऐसे ही रखना है या कुछ परिवर्त्तन करके देना है?

साधक १ – स्वामी जी! ऐसा ही प्रार्थना-पत्र भी निर्मित कर लिया है, जिसमें सब लोग अपने-अपने हस्ताक्षर कर जमा करा देंगे। दिनचर्या-पत्रक का मूल भी संगणक में तैयार है। उसमें, प्रातःकाल यज्ञ में जो आपने संस्कृत-सम्भाषण का नियम जोड़ने को कहा था, उसको भी सम्मिलित कर, प्रतिलिपि करवाकर, सबको वितरित कर देंगे।

स्वामी जी – अब आप विशेष ध्यान देंगे। आपको इस कार्य के करने में, कुछ ऐसी बातें हैं, जिनपर ध्यान देना आवश्यक होगा, जिससे कि आप अपने लक्ष्य को अधिक प्रयत्नपूर्वक सिद्ध कर सकें। जैसे कि आपके लिए यह योजना बनाई गई कि इन ब्रह्मचारियों को ईश्वर-साक्षात्कार तक

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहुँचाना है। इसके लिए समय निर्धारित किया गया है और बहुत से प्रबन्ध किए गए हैं। अब आपके मन में यह बात अच्छी तरह आनी चाहिए कि यदि हमने यह कार्य पूर्ण नहीं किया तो हम दोष के भागी होंगे। दोहराइए, समझ में नहीं आया हो तो !

यदि आप यह अनुभव करेंगे कि यह आयोजन इसलिए किया गया है कि हम ईश्वर का साक्षात्कार करें और अन्यों को करवाएँ, तब तो उचित है किन्तु यदि हम ऐसा नहीं करते तो बहुत बड़े दोषी माने जाएँगे।

यदि ऐसा अनुभव आप नहीं करते तो आपका प्रयास ढीला रहेगा। दूसरा दोष यह होगा कि जिस मुख्य प्रयोजन के लिए ईश्वर ने आपको यह जीवन दिया है, वह आप नहीं कर रहे हैं। तीसरा एक सामाजिक दोष आयेगा कि आपको सिखाने-पढ़ाने, आयोजन करने वाले आपके ऊपर इतना परिश्रम कर रहे हैं और आप उसका उचित लाभ नहीं उठाते, तो वे लोग भी आपको अच्छा नहीं मानेंगे। आंशिक रूप में अच्छा मानने का निषेध नहीं है, उतना तो मानेगें। आपने अन्य बहुत से अच्छे कार्य किये हैं किन्तु इसको नहीं किया तो यह कमी रही, इस रूप में अच्छा नहीं मानेंगे। अन्य दोष यह आएगा कि आपको जो समय दिया गया वही समय अन्य लोगों को दिया जाता, उनको ऊँचा उठाने का प्रयास किया जाता, किन्तु वह सारी शक्ति आपके ऊपर लगाई गई, उन पर नहीं लगाई गई जिससे परोपकार भी नहीं हुआ। यह दोष आएगा। कुछ कम समझ में आया ?

साधक १ – समझ में तो आया किन्तु स्वामी जी ! हमारे हाथ में पुरुषार्थ करना मात्र है और ईश्वर-साक्षात्कार तो ईश्वर की कृपा पर निर्भर है। (इस स्थिति में सफलता हो ही जाएगी, यह कैसे निश्चित कर सकेंगे ?)

स्वामी जी – इसका उत्तर सुनो ! आज हमारे पास जितनी शक्ति है, वह पूरी लगा देंगे और अन्यों से जितनी शक्ति प्राप्त कर सकते हैं, उसको प्राप्त करके भी लगा देंगे। इतना करने पर अब उसको सामर्थ्याभाव के कारण दोषी नहीं माना जाएगा।

साधक १ – ईश्वर-साक्षात्कार हो अथवा न हो ?

स्वामी जी – हाँ ! स्तर की दृष्टि से दोष नहीं लगेगा किन्तु जीवन में नहीं किया, इस दृष्टि से तो लगेगा। पर वर्तमान में देखें तो विधान का पालन शक्तिभर किया। उसने अपनी और दूसरे की सारी शक्ति को भी लगा दिया, अब आगे सामर्थ्य नहीं रहा, तो ऐसे में वह दोषी नहीं माना जाएगा। किन्तु एक व्यक्ति न अपनी पूरी शक्ति लगाता है, न औरों से शक्ति ग्रहण करता है और क्षमता रखते हुए भी आगे पुरुषार्थ नहीं करता, तब वह दोषी है। वह कर सकता था किन्तु आलस्य-प्रमाद के कारण परिश्रम नहीं करता है। कई बार यों ही मान लेता है कि मेरे तो संस्कार ही नहीं हैं कि इस जन्म में समाधि को प्राप्त कर लूँ। अब मैं कैसे करूं ? यह हेत्वाभास है। ये सब दोष हैं। ऐसा होता है या नहीं ?

साधक १ – हो सकता है, होता है।

स्वामी जी – यद्यपि अपनी वैदिक परम्परा में व्यक्ति को शंका-समाधान की पूरी छूट होती है किन्तु प्रायः इसका परिणाम अच्छा नहीं आता है, क्योंकि सिद्धान्त को क्रियारूप देने के लिए जितना बल लगाया जाना चाहिए था, उसमें न लगाकर शंका-समाधान में सारा बल लगा दिया जाता है। क्या समझ में आया ?

साधक १ – क्रियारूप देने के लिए जितना बल लगाना चाहिए, शंका-समाधान में उतना बल नहीं लगाना चाहिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – नहीं लगाना चाहिए। इससे कई बार आचरण करने योग्य रुचि, श्रद्धा, प्रयत्न आदि कम हो जाते हैं। शंका-समाधान में अपने पक्ष को सिद्ध करने में कई गुणा परिश्रम किया जाता है किन्तु रुचिपूर्वक प्रयोग कर-करके देखना बहुत कम होता है। अभिप्राय समझ में आया? मान लीजिए आपको बीस बातें बताई गईं, उनमें से पन्द्रह अच्छी तरह से समझ में आ गईं और पांच रह गईं। समझ में नहीं आईं या कम समझ में आईं। तो अब आप पन्द्रह को छोड़कर उन्हीं पांच में उलझ गए। आप देख सकते हैं कि व्यक्ति पांच के लिए तो विशेष परिश्रम करता है किन्तु पन्द्रह के लिए विशेष परिश्रम नहीं करता है। आज की परम्परा में ऐसा बहुत मिलता है। अब आया समझ में?

आचार्य नैष्ठिक जी – नहीं आया।

स्वामी जी – नहीं आया तो पुनः सुनो! तर्क-प्रमाण से वस्तु को सिद्ध करना चाहिए यह तो ठीक है, होना चाहिए। यहाँ पन्द्रह बातें तो हमने सिद्ध कर लीं। पांच बातें ऐसी रह गई हैं कि जिनमें बहुतसी शंकायें उठ सकती हैं। अब हम पांच पर तो बल लगा रहे हैं कि यह नहीं हुआ, वह नहीं हुआ, पर पन्द्रह के लिए कुछ नहीं कर रहे हैं। जब कि समझने के पश्चात् पन्द्रह बातों के आचरण पर बहुत अधिक बल देना चाहिए और शंका-समाधान पर कम बल देना चाहिए।

अब एक विशेष बात - भाषा बोलने के क्षेत्र में आप सर्वत्र आदर-सूचक शब्दों का प्रयोग करें। पहले सोचो, पुनः समझ में आ जाए तब बोलो। अच्छा! इसका उदाहरण क्या होगा? कोई उदाहरण देकर समझाये। कौन समझाएगा?

साधक २ – जैसे किसी का नाम लेना हो तो उसको महोदय या जी लगाकर बहुवचन में बोलेंगे।

स्वामी जी – अच्छा! मान लो कोई पांच वर्ष का बालक है और उसको कुछ नहीं आता-जाता है। अब उसको संबोधित करना हो तो कैसे करेंगे?

साधक १ – वहाँ पर भी 'जी' लगाना है।

स्वामी जी – उसका नाम देवदत्त है, और संस्कृत में बोलना हो, तब कैसे बोलोगे?

साधक २ – देवदत्त महोदय! आगच्छतु।

स्वामी जी – मुख्य बात है आपको भी वहाँ कुछ संकोच होगा या नहीं? पहले यह बताओ।

साधक २ – यह स्थिति तो है।

स्वामी जी – क्यों?

साधक १ – अभ्यास नहीं है।

स्वामी जी – नहीं। वहाँ व्यक्ति में जो छोटे-बड़े वाली एषणा बैठी होती है, वह एकाएक पीछा नहीं छोड़ती है। वही कारण है। आप देख लेना, बलात् प्रयोग करना पड़ेगा आपको। तब हटेगी, ऐसे नहीं हटेगी।

आचार्य नैष्ठिक जी – व्यवहार में छोटे-बड़े का अन्तर होना चाहिए या नहीं?

स्वामी जी – नहीं। लोक में ऐसा कोई बोल सकता है, परन्तु आध्यात्मिक क्षेत्र में इससे बाधा खड़ी होती है। लोक में बच्चे को तू कह देते हैं किन्तु योग सीखने के क्षेत्र में ऐसा नहीं कहा जा सकता। क्योंकि यहाँ यह नहीं देखा जाता कि यह छोटा है, मैं बड़ा हूँ। यह अनपढ़ है, मैं पढ़ा-लिखा हूँ आदि। यदि यहाँ भी व्यक्ति उसी छोटे-बड़े, मान-अपमान आदि लौकिक बातों में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
भ्रमित हो जाए तो जो विवेक-वैराग्य होना है, वह नहीं हो पाएगा।

आचार्य नैष्ठिक जी – कभी कभी सामने वाले जो छोटे होते हैं, वे ही इसको अव्यावहारिक समझते हैं।

स्वामी जी – यह उनका अपना क्षेत्र है। वे ऐसा समझते हैं तो समझें, उनके कारण हम अपना श्रेष्ठाचरण नहीं बदलेंगे। अच्छा सुनो ! गुरुकुल झज्झर में पढ़ते समय जितने भी ब्रह्मचारी थे, वे सब मुझसे छोटे ही छोटे थे। जैसे कि आचार्य सुदर्शनदेव जी, आचार्य राजवीर जी आदि आदि। ये लोग बड़ी कक्षा के थे और कोई सात, कोई आठ वर्ष मुझसे छोटे थे। निचली कक्षा वाले तो छोटे थे ही थे। इनके अतिरिक्त औषधालय, पाकशाला, गोशाला के कर्मचारी और खेत में काम करने वाले श्रमिक आदि जितने थे, सबके साथ मैं 'जी ' लगाकर बोलता था और सबको बहुत अच्छा लगता था। (कभी किसी ने आपत्ति नहीं की।) और इसका प्रभाव क्या पड़ा, इस विषय में भी सुन लो ! स्वामी ओमानन्द जी ने छोटे तो क्या, बड़े विद्यार्थियों के लिए भी 'जी' शब्द लगाया हो, प्रायः यह सुनने में नहीं आया। किन्तु मुझे 'जी' लगाकर बुलाते थे। आ गई बात समझ में ? अच्छा ! मुझे स्वयं छोटों को भी 'जी' लगाकर बोलने में कोई लज्जा-संकोच नहीं होता था। छोटे मुझे बुरा कहेंगे, यह होगा, वह होगा, ऐसा कुछ नहीं था। हाँ ! लौकिक स्तर पर प्रभाव दिखता है जैसे कि यदि किसी बड़े व्यक्ति को 'जी' न लगाकर 'तू' बोल दो तो उनको बहुत दुःख होगा, परन्तु छोटे को क्या अन्तर पड़ना ?

आचार्य नैष्ठिक जी – एक शंका है ?

स्वामी जी – हाँ, बोलो!

आचार्य नैष्ठिक जी – हमसे जो छोटे हैं, हमारे द्वारा आदरसूचक शब्दों को सुनकर उनको बुरा लगता है। (लज्जा-संकोच अनुभव करते हैं।)

स्वामी जी – जिनको बुरा लगता है वे यदि समझना चाहें तो उनको इस प्रकार से समझाया जा सकता है कि देखो ! पांच वर्ष का बालक क्यों न हो, वह भी अपने लिए सम्मानसूचक शब्द सुनना चाहता है। आप प्रयोग कर देख सकते हैं। इसलिए बुरा लगने का प्रश्न ही नहीं है। कोई बुद्धिहीन ही बुरा मान सकता है। दूसरी बात यह है कि ईश्वर को दृष्टि में रखकर सब जीवों की अपने साथ तुलना करो, तब सभी सामन दिखाई देंगे। अब बताओ क्या आया समझ में ?

आचार्य नैष्ठिक जी – सभी जीवात्माएँ समान हैं, इस दृष्टि से सबका सम्मान होना चाहिए।

स्वामी जी – इसीलिए आपको सिखाया-पढ़ाया जाता है कि ईश्वर और हमारे पांच सम्बन्ध हैं और वे सब जीवों के लिए अनादि हैं। एक वचन में भी आदर सूचक शब्द बोले जाते हैं और बहुवचन में भी बोले जाते हैं।

साधक ८ – स्वामी जी ! जिनमें परस्पर अतिघनिष्टता होती है वे 'तू' आदि का ही प्रयोग करते हैं ?

स्वामी जी – वे करते रहें, हमारे लिए उचित नहीं है। क्योंकि यह घनिष्ट है, यह दूरस्थ है। एक के साथ तू लगायेंगे, दूसरे के साथ नहीं। तो इस प्रकार से आपकी प्रवृत्तियाँ वैराग्य के क्षेत्र को छोड़कर राग-द्वेष के क्षेत्र में चली जाएँगी। ऐसे कितने ही प्रयोग मैं बतला सकता हूँ जो आपको बुरे लगेंगे, जबकि वे उचित हैं।

साधक १ – कोई उदाहरण दीजिये !

स्वामी जी – मान लो आपको कहा जाए कि अमुक गांव से भिक्षा ले आओ। आप वहाँ जाकर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहने लगे - **भिक्षां देहि, भिक्षां देहि**। अब किसी ने भिक्षा तो दी नहीं अपितु कीचड़ फेंक दिया, ढेले मारने लगे। दूसरे दिन गए पुनः वही किया। आप उनसे बलिष्ठ हैं, अब आप मुझसे पूछेंगे कि इनको समझाऊँ या थप्पड़ लगा दूँ? और मैं कहूँगा इनको थप्पड़ नहीं लगाना है, ढेले मारने दो। तब आप कहेंगे कि मैं आपकी इस बात को मानकर चल नहीं सकता। ऐसे अनेक उदाहरण बनेंगे। दूसरा उदाहरण - आपको मैं कहूँगा - दिनभर शरीर को नाशवान् मानकर चलें। आपको समझ में नहीं आया और कहने लगे कि यह तो बेतुकी बात है। भला इस शरीर को नाशवान् कैसे समझ लूँ। आपको ऐसा लगेगा या नहीं?

साधक १— लग सकता है।

स्वामी जी — अब आपको पता चल गया कि बहुत-सी बातें उलटी दिखाई देती हैं, जो कि सत्य होती हैं। यहाँ दो बातें हैं - एक तो यह कि यह बात ही असत्य है और दूसरी कि यह अभी हमको समझ में नहीं आई है, किन्तु बात सत्य है। इसमें दूसरे पक्ष को ग्रहण करना है, कारण यह है कि आपने उस स्थिति में प्रयोग करके नहीं देखा है।आपने उस बाधा का स्वरूप नहीं देखा है। प्रयोग करने के पश्चात् जो परिणाम आता है, आपको उसका अनुभव नहीं है। आपका उतना ऊँचा स्तर नहीं है। एक अन्य उदाहरण - मान लो आपको कहा जाए कि अध्ययन भी करना है, परोपकार भी करना है और ईश्वर से सम्बद्ध रहते हुए करना है। यह आपको कैसा लगेगा?

साधक १— स्वामी जी! समझ में तो आ रहा है, किन्तु ऐसा व्यवहार में लाना आज तो सम्भव नहीं हो पाएगा।

स्वामी जी - व्यवहार में आज सम्भव है या नहीं, यह पृथक् विषय है। हमारा तो यह कथन है कि यह उचित है, ऐसा समझ में आ रहा है या नहीं? पहले इतना समझ लो। अतः पहले एक को समझो। पहले एक पकड़ में आ जाए पुनः दूसरे को पकड़ो, पुनः तीसरे को पकड़ो। जब एक बात समझ में आ जाए तब कहो कि हाँ! यह बात समझ में आ गई। यह पृथक् बात है कि उसको आचरण में कब ला पाएँगे। ऐसे ही आप से कहा जाए कि खीर खाओ, हलुआ खाओ परन्तु स्वाद लेकर मत खाओ, तब क्या करेंगे?

साधक ३— स्वामी जी! आपकी अधिकांश बातें समझ में तो आती हैं कि ये ठीक हैं, इनको करना चाहिए, इनसे लाभ भी हैं, परन्तु उनको हम एक साथ आचरण में नहीं ला पाते हैं या उन्हें आचरण में लाने की योग्यता अभी हममें नहीं है।

साधक २— ऐसा भी लगता है कि संभव नहीं है।

स्वामी जी - हाँ! ये असम्भव बातें हैं, व्यर्थ की बातें हैं, ऐसा भी लगता है। इस दोष को हटाने के लिए प्रयोग करने वाले व्यक्ति को अपनी योग्यता, विचार, व्यवहार, लक्ष्य आदि सबका अध्ययन करना चाहिए कि इनमें कहाँ न्यूनता है। वैसे ही जिन ऋषियों ने इनका उपदेश किया है, उनका जीवन, योग्यता, प्रयोग, व्यवहार, पक्षपात-रहितता आदि बहुत ऊँचे स्तर का था, उनको ध्यान में रखते हुए निर्णय लेना चाहिए। क्या समझ में आया?

आचार्य नैष्ठिक जी— अभी जैसा कि कहा गया ये असम्भव बातें हैं, व्यर्थ की बातें हैं। तो क्या साधक को ऐसा समझना चाहिए?

स्वामी जी - यहाँ ऐसा समझना चाहिए कि अज्ञानता के कारण आरम्भ में ऐसी साधक की मान्यता रहती है परन्तु वस्तुतः यह यथार्थ नहीं है। अतः इसको हटा देना चाहिए क्योंकि वेदों, दर्शनों, ऋषियों के विषय में ऐसा समझना उचित नहीं है। गीता में कहा - **अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
संशयात्मा विनश्यति। गी.४/४०। इस संकेत को भी जोड़ लेना चाहिए।

आचार्य नैष्ठिक जी – और यह हमारे लिए बहुत हानिकारक भी हो जाता है।

स्वामी जी – हाँ! यहाँ इस रूप में संतुलन बनाना चाहिए कि लाखों ऋषि हुए, जिनके ग्रन्थों को हम पढ़ते-पढ़ाते हैं। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि वे भी अल्पज्ञ, एकदेशी जीवात्माएँ थे। अतः संभव है कि उनसे भूल हो सकती है। इस स्थिति में क्या उनकी सभी बातें सन्दिग्ध माननी चाहिएँ? इसका उत्तर है कि यद्यपि वे अल्पज्ञ आदि थे, पुनरपि हमको यह मानकर चलना चाहिए कि उनकी सब बातें असत्य नहीं हैं। जैसे कि उन्होंने बीस बातें कहीं, जिनमें से अठारह तो सत्य समझ में आ गईं, शेष दो सन्दिग्ध रहीं। तो इन दो के आधार पर शेष अठारह को सन्दिग्ध या असत्य नहीं मानेंगे किन्तु इन दो को भी पूर्ण असत्य न मानकर इन पर विचार करेंगे। उनका प्रमाणों से परीक्षण करेंगे तथा यह मानकर चलेंगे कि ये दो बातें अभी हमको समझ में नहीं आई हैं न कि असत्य हैं। यदि प्रमाणों से असत्य सिद्ध हो जाएँ, तब उनको छोड़ देंगे।अब क्या समझ में आया?

मान लेने पर अठारह लाभ और दो हानियाँ होंगी किन्तु नहीं मानेंगे तो बीस की बीस हानियाँ हो जाएँगी। कल्पना कीजिए, उन्होंने कहा कि चन्द्रमा पर मनुष्य हैं और हमने पूरे चन्द्रमा पर अच्छी तरह देख लिया पर कहीं कोई मनुष्य नहीं मिला। अब हम परीक्षण के पश्चात् कह सकेंगे कि जीवात्मा अल्पज्ञ है, उन्होंने सम्भावना व्यक्त की थी, प्रत्यक्ष तो किया नहीं था। अतः उनकी बात मान्य नहीं है। परन्तु ईश्वर के विषय में ऐसी कल्पना भी नहीं कर सकते। ईश्वर की बातों पर पूर्ण विश्वास करना ही होगा। भले ही वे अपने को समझ में न आएँ।

साधक ३– स्वामी जी! जहाँ प्रत्यक्ष प्रयोग होते हैं वहाँ त्वम् का प्रयोग किया जाता है, ऐसा ऋषियों ने माना है। भवान् का प्रयोग वेद में कहीं नहीं मिलता है। (अर्थात् तू का प्रयोग करना छोटेपन का वाचक नहीं है।)

स्वामी जी – अच्छा! आपने महर्षि दयानन्द जी के वेदभाष्य में 'तू' का प्रयोग देखा है या 'आप' का? आर्याभिविनय में किसका प्रयोग देखा है आपने?

साधक ३– वहाँ तो 'आप' का प्रयोग मिलता है।

स्वामी जी – महर्षि दयानन्द के वेदभाष्य में 'आप' का प्रयोग भरा पड़ा है। हम यह नहीं कह रहे हैं कि 'तू' का प्रयोग वेद में कहीं नहीं मिलता है या व्याकरण से नहीं बनता है। लौकिक दृष्टि से जहाँ आवश्यक लगे, वहाँ प्रयोग कर लेने में कोई बात नहीं है परन्तु मुख्य बात है कि योगाभ्यासी के लिए क्या अनुकूल है, उसको कौन से प्रयोग अधिक करने चाहिएँ, यह देखना होता है। जैसे कि अब तक आपका तू-तेरा, मैं-मेरा का प्रयोग बहुत होता रहा है। इससे यह छोटा, यह बड़ा, आपने अपने अन्दर इन सब का जाल बिछा रखा है; इन जालों को आप इन प्रयोगों के बिना काट नहीं सकते। इन प्रयोगों के बिना सभी आत्माओं को अपने समान समझना-देखना तथा उनके प्रति आदरभाव रखना सम्भव नहीं है। महर्षि जी ने ईश्वर के प्रति भक्तिभाव में प्रायः 'आप' शब्द का प्रयोग ही अधिक किया है।

साधक ३– प्राचीन ग्रन्थों में तो गुरु-शिष्य में तुम का ही प्रयोग मिलता है।

स्वामी जी – 'ही' मिलता है या 'भी' मिलता है? 'ही' और 'भी' के अर्थ में अन्तर होता है।

साधक ३– मैंने तो 'ही' बोला है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – तो क्या भूल हुई ? 'मी' का अर्थ हुआ 'तू' भी बोला जाएगा और 'आप' भी बोला जाएगा किन्तु 'ही' बोलने पर केवल 'तू' ही बोला जाएगा।

साधक २– व्यक्तिगत रूप में देखते हैं तो ऐसा लगता है। बड़े व्यक्ति 'तू' कहें तो कोई बात नहीं है, लेकिन बड़े व्यक्ति को 'तू' कहना ठीक नहीं लगता है।

स्वामी जी – हाँ ! बुरा लगता है।

साधक ३– भाषा का समाज में आज जैसा भी प्रचलन हो गया है, वैसा ही हमको बोलना पड़ेगा।

स्वामी जी – नहीं। कारण यह है कि जिन शब्दों से हमारा अपमान झलकता है उनको हम नहीं सुनना चाहते हैं क्योंकि उनसे हमको दुःख होता है। ऐसा ही अन्यों के विषय में भी समझना चाहिए कि उनके लिए भी यदि हम अपमानजनक शब्दों का प्रयोग करते हैं तो उनको भी दुःख होगा। इसके अतिरिक्त आप जानते हैं कि हिंसा-अहिंसा के जो प्रयोग होते हैं उसमें वाणी भी एक साधन है। अतः यदि वाणी से किसी को दुःख होता है, उससे हमें दूसरों को बचाना होगा। इसलिए सम्मान-जनक वाणी का प्रयोग करना उचित है।

साधक ३– उपनिषद् में यह वाक्य आता है **त्वम् हि नः पिता**। तुम हमारे पिता हो। **यो अस्माकमविद्यायाः परं पारं तारयसीति**। प्रश्नोपनिषद् ६/८ ? जो हमको अविद्या से पार लगाने वाले हो; ऐसा प्रयोग आता है।

स्वामी जी – हम उसका निषेध नहीं करते हैं। किसी प्रकरण में विशेष उद्देश्य से ऐसा प्रयोग हो सकता है, भाषा विज्ञान में उसका निषेध नहीं है। परन्तु कौन से क्षेत्र में किस व्यक्ति के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है, इसको देखना है। वहाँ आचार्य और शिष्य में जो बोला जा रहा है, उसका कोई दुष्प्रभाव नहीं पड़ रहा है। अतः ऐसा बोला जा सकता है।

उपाध्याय जी – एक निवेदन है।

स्वामी जी – हाँ जी !

उपाध्याय जी – निवेदन यह है जो कार्य किए जा रहे हैं, उनके लिए समय का ध्यान रखा जाए क्योंकि अन्यान्य कार्य हैं, उनके लिए समय अपेक्षित होगा अथवा शंका समाधान का समय बढ़ाया जाए। यों तो सभी की इच्छाएँ कुछ न कुछ पूछने की होंगी, वह सब एक साथ सम्भव नहीं है।

स्वामी जी – अच्छा ! हमारा समय आगे निकल गया, हम ने भी ध्यान नहीं दिया, आपने भी ध्यान नहीं दिया, ठीक है ! आगे ध्यान रखेंगे। चलो ! विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६ यज्ञीयोपदेश

मंगलाचरण : आषाढ़ शु. १२/२०६०-११/०७/०३

आज हम विधिपूर्वक तीन मास तक चलने वाले योग-प्रशिक्षण-शिविर को आरम्भ करने जा रहे हैं। अच्छा ! मुख्य रूप से प्रश्नोत्तर करने वाले कौन-कौन हैं ? आप आठ ब्रह्मचारी।

आप सभी को यह समझना है कि किसी भी शुभ कार्य के प्रारम्भ-मध्य और अन्त में ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनी चाहिए। इससे जिस शुभ कार्य को हम करने के लिए उद्यत होते हैं उसमें ईश्वर की ओर से हमको सहायता मिलती है और वह कार्य सरलता से पूरा हो जाता है। अन्य लाभ जैसे कि व्यक्ति का जो लौकिक पदार्थों के साथ मैं-मेरा रूपी स्व-स्वामी-सम्बन्ध होता है, वह टूट जाता है तथा मिथ्या अभिमान नष्ट हो जाता है। अब आपको इतनी बातें समझ में आ गईं ? दोहराइये।

साधक ३— ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना के आपने तीन लाभ बताए - प्रथम - कार्य में सरलता हो जाती है। द्वितीय - कार्य सिद्धि के लिए ईश्वर से सहायता मिलती है और तृतीय - लौकिक पदार्थों के साथ स्व-स्वामि-सम्बन्ध टूट जाता है तथा मिथ्या अभिमान दूर हो जाता है।

स्वामी जी — यद्यपि अन्य बहुत से लाभ होते हैं, उनकी कोई गणना नहीं। किन्तु यदि व्यक्ति ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना नहीं करता तो ममत्व आदि दोषों से नहीं बच सकता है, चाहे कोई वैदिक पण्डित हो या भौतिक वैज्ञानिक। पहले आप अपने जीवन को देखो, आप भी इन दोषों से बचे नहीं हैं। यद्यपि अभी आपको अनुभव नहीं होता होगा, किन्तु प्रयोग करते-करते आगे वह स्थिति आ सकती है जब आपको अनुभव होने लगेगा कि स्तुति आदि से अभिमान आदि दोषों का नाश और न करने से वृद्धि होती है।

इसका आरम्भ कैसे करेंगे, इस पर ध्यान दें। आप प्रथम यह सोचेंगे कि मैं जिस कार्य को करने के लिए उद्यत हुआ हूँ, वह है 'ईश्वर का साक्षात्कार करना और करवाना'। यही मेरा प्रयोजन है, उद्देश्य है, लक्ष्य है। अब जब इस कार्य की सिद्धि के लिए उद्यत हुए हैं, तब ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। इसके उपरान्त ज्ञान-कर्म-उपासना रूपी जो मुख्य साधन हैं, उनको आप जुटायेंगे। पुनः भोजन-वस्त्र, शरीर आदि आन्तरिक तथा पृथ्वी-जल-अग्नि-वायु-आकाश आदि बाह्य पदार्थ किस प्रकार से हमारे सहयोगी हो सकेंगे, इसका विचार करेंगे। ये जितने पदार्थ विद्या, उपकरण आदि हैं, सब ईश्वर-प्रदत्त हैं। दोहराओ।

जिस लक्ष्य को हम सिद्ध करने चले हैं, वह हमारी बुद्धि में है। वह है - ईश्वर का साक्षात्कार करना और करवाना और आगे संसार का उपकार करना। इसके पश्चात् इन बातों का ध्यान करना है कि इसकी सिद्धि में जो-जो पदार्थ, विद्या आदि साधन हैं, वे कहाँ से आए हैं ? इसका उत्तर यही आयेगा कि ये सब ईश्वर से आए हैं। अतः जब हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना नहीं करते है तो इसका अर्थ हुआ कि हम ईश्वर के द्वारा किए गए उपकारों को नहीं मानते हैं और यह कृतघ्नता है। यहाँ एक बहुत बड़ी हानि यह होगी कि ईश्वर से हमें जो विशेष ज्ञान-बल-आनन्द मिलने थे, वे नहीं मिलेंगे।

अब जब मध्य में कार्य की सिद्धि कर रहे हैं जैसे कि समाधि लग गई, तब आपके समक्ष

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वाभाविक रूप से दो विचारधारायें आयेंगी। प्रथम - यह समाधि मैंने ईश्वर की सहायता से प्राप्त की है और द्वितीय - यह समाधि मैंने अपने बल से प्राप्त की है। यहाँ यदि आप मान लेते हैं कि इसमें तो मेरा योगदान नाममात्र है, यह ईश्वर की सहायता से प्राप्त हुई है, तब तो आपका विचार उचित है। इसके विपरीत यदि आप ऐसा विचारते हैं कि यह समाधि मैंने अपने बल पर प्राप्त की है, तब यह मिथ्या अभिमान होगा।

यदि ऐसा मानते हैं कि यह ईश्वर-प्रदत्त बल से हुई है, वही ज्ञान देने वाला, आँख, नाक आदि इन्द्रियों को देने वाला, पृथ्वी आदि को बनाने वाला है, तब आपके स्व-स्वामि-सम्बन्ध और मिथ्या अभिमान हट जाएँगे। ईश्वर की ओर से आपको और ऊँचे स्तर का ज्ञान मिलेगा तथा समाधि भी प्राप्त होगी।

अब हम गायत्री मन्त्र और विश्वानि देव.., का पाठ करते हुए ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। इस समय आप मन्त्रों का पाठ करते हुए, शब्दों का अर्थ लेते हुए, ईश्वर को सम्बोधित करेंगे।

प्रयोग आरम्भ .....समय लगभग १ मिनट।

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

आप अपना परीक्षण करते रहेंगे कि आपका मन अर्थों पर लगा रहा या नहीं? ईश्वर को सम्बोधित करते रहे या नहीं?

अब हम रुकेंगे और दूसरा प्रयोग आरम्भ करेंगे। प्रार्थना-प्रधान विश्वानि देव मन्त्र से पूरे विश्व के कल्याण की भावना रखते हुए ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे -

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥ यजु. ३०/३।

मन्त्र बोलते हुए एक-एक शब्द के अर्थ के ऊपर ध्यान रखेंगे। ईश्वर को संबोधित करते हुए स्वयं को ईश्वर के समीप उपस्थित मानते रहेंगे। यह हमारी अच्छी स्थिति कही जाएगी। यदि हम मन्त्र का पाठ करते हुए एक-एक शब्द का अर्थ नहीं कर पाते, ईश्वर को संबोधित नहीं कर पाते और स्वयं को ईश्वर के प्रति समर्पित नहीं रखते हैं, तब स्थिति में दोष माना जाएगा। यह उपासना का एक भाग आपको समझाने का प्रयास किया गया है। अब दूसरे अंश को लेते हैं -

योगाभ्यास का दूसरा अंश है मन, वाणी और शरीर से योग के आठ अंगों का पालन करना। आपको क्या समझ में आया?

साधक ३- मन, वाणी और शरीर से योग के आठ अंगों का पालन करना।

स्वामी जी - उसकी पद्धति, रीति ऋषियों ने बतलाई कि जो व्यक्ति योगाभ्यास करना चाहता है वह सभी प्राणियों के साथ वैर-भाव को छोड़ देवे और प्रेम से व्यवहार करे। यह अष्टांग-योग का क्रिया रूप है। आपको स्मरण है यह कहाँ लिखा है?

साधक ३- सर्वथा सर्वदा सर्वभूतानामनभिद्रोहः।

स्वामी जी - नहीं। मैंने जो बोला, वह शब्दावलि सत्यार्थ प्रकाश में है या ऋग्वेदादि भाष्य भूमिका में है। भाव बता रहा हूँ - जो व्यक्ति योगाभ्यास करना चाहता है, योगी बनाना चाहता है, उसके लिए प्रारम्भिक स्थिति यह है कि सब प्राणियों के साथ वैरभाव को छोड़कर प्रीति पूर्वक व्यवहार करे।

सम्पादक - ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका उपासनाविषय सूत्र २६ का भाष्य।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – एक है उपासना काल और दूसरा है व्यवहार काल। जो व्यक्ति विधिपूर्वक उपासना का अनुष्ठान करता है और विधिपूर्वक व्यवहार काल में यम-नियमों का पालन करता है तब निश्चित बात है कि इससे ईश्वर साक्षात्कार होता है, समाधि लगती है; ऐसा ऋषियों ने बतलाया है। क्या समझ में आया आपको ?

साधक ३ – एक है व्यवहार काल, दूसरा है उपासना काल। इन में जो व्यवहार काल में यम-नियमों का अच्छी प्रकार मनसा-वाचा-कर्मणा पालन करता है और उपासना काल में ईश्वर की उपासना करता है, उसका मुख्य प्रयोजन जो समाधि की प्राप्ति है, ईश्वर की प्राप्ति है, वह सम्पन्न हो जाएगा।

स्वामी जी – भाषा में थोड़ा-सा दोष आ गया। इसका भी ध्यान रखना चाहिए, भाषा को भी सुधारते रहना चाहिए। अन्त में वाक्य अधूरा बोला गया जिससे एकरूपता नहीं आई। आपको आया समझ में या नहीं आया ?

साधक ३ – जी ! आ गया, स्वामी जी !

स्वामी जी – अन्तिम वाक्य में थोड़ा-सा दोष आ गया। (ऐसा ऋषियों ने बतलाया है-इतना छूट गया। संपादक) पूरा वाक्य एकरूपता को प्राप्त न होकर थोड़ा-सा रह गया, इतना दोष हुआ। इसलिए भाषा को भी सुधारते रहना पड़ता है। हम सर्वज्ञ नहीं हैं। अतः सुधार करते रहेंगे तो भाषा सुधरती रहेगी और नहीं सुधारेंगे तो और बिगड़ जाएगी। आपने सुना है और सुनो ! पहले सत्य-असत्य को प्रमाणों से जानना, पुनः उस जाने हुए को अच्छे प्रकार से मन में मानना कि यह बात ऐसी है। उसके पश्चात् आचरण में लाना। अर्थात् व्यक्ति सत्य ही बोले, हितकारी बोले, मधुर बोले, जितनी आवश्यकता है उससे न्यून-अधिक न बोले तथा भाषा की दृष्टि से शुद्ध भी बोले। अब देखो ! आरम्भ कहाँ से हुआ ?

आचार्य नैष्ठिक जी – पहला प्रमाणों के सत्य-असत्य से जानना।

स्वामी जी – यह पहला क्षेत्र है। यहाँ भूल हो गई तो आगे भूल होती चली जाएगी। इसके पश्चात् ?

आचार्य नैष्ठिक जी – उसके पश्चात् मानना।

स्वामी जी – पुनः मन में अन्तिम रूप देना चाहिए कि बात ऐसी है अर्थात् निश्चय करना। पुनः क्या करेंगे ?

साधक १ – हितकारी, मधुर बोलना।

स्वामी जी – नहीं, उन्हीं को बोलने दो। देखें ! कितना स्मरण है।

आचार्य नैष्ठिक जी – जितना आवश्यक है उतना बोलना।

स्वामी जी – सत्य ही बोलना, मधुर बोलना, कटु न बोलना, हितकारी बोलना, जितनी आवश्यकता हो उससे न्यून-अधिक न बोलना तथा 'और' को क्यों भूल रहे हो ? और भाषा विज्ञान की दृष्टि से शुद्ध भी बोलना। आगे बढ़ो, जब पता चले कि अपात्र सामने आ गया, हानि होने की पूरी सम्भावना है तो वहाँ मौन हो जाएँगे। दोहराओ, समझो ! सीखना काम है, प्रथम सीखो, लेख बद्ध करो और पुनः उसको व्यवहार में ले आओ।

ब्रह्मचारी – अपात्र के सामने आ जाने पर जब हानि होने की सम्भावना दिखे, तब मौन हो जाना।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – सुनो पहले, उग्रता से नहीं बोलना है। हमें आपकी भाषा मीठी भी बनानी है। अब ध्यान देंगे – आपको एक प्रसंग मैंने सुनाया था। पूरा प्रसंग यदि याद न रहे तो बात बहुत कम समझ में आती है। अधिक बोलना भी पड़ता है। नया वैराग्यवान् व्यक्ति जिसको अभी-अभी वैराग्य हाथ लगा है, आरम्भ हुआ है और लौकिक क्षेत्र को कुछ पार किया है। उस समय व्यक्ति अगले को इतना नहीं देख पाता, न उसको किसी को देखने में रुचि होती। न किसी कि अपेक्षा रखता है। यह प्रसंग कुछ याद या नहीं? नहीं पता?

अर्थात् वह ऐसी धारणा नहीं बनाता कि इसको कुछ कहूँगा तो कहीं यह उलटा न समझ ले, मेरे ऊपर आरोप न लगा देवे। लोगों से मेरे बारे में कहेगा कि यह पहले चोरी करता था। मैं इसको पहले ज्यों का त्यों बोल दिया था। अतः अब मैं इससे बात नहीं करूँगा। आ गया समझ में या नहीं आया?

साधक १ – आ गया।

स्वामी जी – यदि आप पूर्वापर की बातें याद नहीं रखेंगे तब बहुत सी बातें यों ही चली जाएँगी, भ्रान्ति उत्पन्न होगी, संदेह उत्पन्न होगा और आपकी योग्यता कम रह जाएगी। अच्छा! वह यदि काट-छाँट करने लग जाए तो क्या होगा; इस विषय में क्या बताया था?

साधक २ – प्रगति नहीं होगी।

स्वामी जी – प्रगति नहीं होगी और लौकिक प्रवृत्तियाँ अन्दर प्रवेश करेंगी और लौकिकता की प्रबलता आ जाएगी। इसको आप प्रत्यक्ष देख सकते हैं। हाँ! जब ऊँची योग्यता बन जाती है, ऊँची स्थिति बन जाती है, लौकिक विचारधारा का अन्दर प्रवेश नहीं होने देता; इतनी सामर्थ्य जब आ जाती है तब वह निर्धारण करने लगता है कि यहाँ पर यह परिणाम निकलेगा, यहाँ पर सत्य बोलना है, यहाँ पर मौन रहना है। इस प्रकार कालान्तर में ध्यान देने लगता है। आपको यह प्रक्रिया समझ में नहीं आई तो फिर पूछो? सन्देह, भ्रान्ति न हो किसी को।

आचार्य नैष्ठिक जी – कृपा करके पुनः बताइए।

स्वामी जी – प्रारम्भ में विवेक-वैराग्य को प्राप्त होने वाला व्यक्ति, धारावाही स्वभाव वाला होता है। बच्चे के समान बोलता चला जाता है। कल्पना कीजिए पहले वह चोरी करता था, दस वर्ष तक आचारहीनता करता रहा था। अब किसी ने पूछा – आप ध्यान करते हैं। इस ओर आपका आकर्षण हुआ है। किन्तु पहले तो आप चोरी करते थे, आचारहीनता करते थे, क्या यह सत्य है? अब साधक यह नहीं सोचेगा कि यह व्यक्ति बुरा मानेगा, पापी मानेगा, और लोक में मेरा दुष्प्रचार करेगा; ऐसी भावना उसके अन्दर लेश मात्र भी नहीं आती। यदि आती है तो पुनः लौकिक स्थिति में उतर जाएगा। अतः यथावत् स्वीकार करता है। न समझ में आया हो तो पुनः पूछिए?

दूसरा अंश सुनो - जब वह साधक धीरे-धीरे परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता जाता है और लौकिकता पर अधिकार करता जाता है, बोलने पर संयम और सुनने में भी संयम करने में समर्थ हो जाता है अर्थात् कोई कितना भी मान-अपमान करे, उससे उसे कोई डर नहीं लगता है। इस स्थिति में आकर सीमा बनाना आरम्भ करता है कि यहाँ पर सत्य बोलना चाहिए, लाभप्रद है। यहाँ नहीं बोलना चाहिए, मौन रहना चाहिए। यदि हानिकारक होता है तब प्रतिबन्ध लगा देता है। अब आ गया समझ में? यदि आरम्भ में ही व्यक्ति इस प्रकार सीमा बनाने लगे तो दोष प्रारम्भ हो जाता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने समझा कि हम जो अहिंसा-सत्य आदि यम-नियमों का पालन करते हैं, उनका व्यवहार काल में कैसे पालन होता है। यह आपने देखा-सुना-पढ़ा है। पढ़ने वाले इनके सूक्ष्म इक्यासी-इक्यासी प्रकार के भेदों को भी जानते हैं। अब आप प्रयोग करके देखते जाइए, आपको परिणाम दिखता चला जाएगा। याद रखना, धीरे-धीरे आप ऐसी स्थिति में चले जाएँगे कि पूरे भूगोल में किसी भी व्यक्ति-प्राणी के साथ भूत-भविष्य-वर्तमान काल में वैर-भाव नाम की वस्तु दिखाई नहीं देगी। सार्वभौमा महाव्रतम् की विकसित स्थिति इस अवस्था में जाकर दिखाई देती है।

अच्छा ! एक बात का ध्यान रखना, जिसको भी समय न्यून-अधिक होता दिखाई दे, वह उसी समय सूचित करे। अब विराम ॥

७ क्रियात्मक योगाभ्यास

निर्विषयता : आषाढ़ शु. ११-११/०७/०३

अब हम गायत्री मन्त्र का पाठ करेंगे -

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु. ३६/३।

संध्या के प्रत्येक मन्त्र का शब्दार्थ स्मरण है? यदि नहीं है तो कण्ठस्थ कर लें और पंच-महायज्ञविधि में ऋषि ने जैसा लिखा है, यथावत् एक-एक शब्द का अर्थ स्मरण होना चाहिए।

क्या आप मन को सर्वथा रोक लेने में समर्थ हैं? जैसे कि हम यहाँ बैठे हैं और अभी आपसे कहा जाए कि अब आपने किसी विषय में विचार नहीं करना है। क्या आप ऐसा कर पाएँगे? आत्मनिरीक्षण करके देखें और जैसी अनुभूति हो वैसी बताएँ।

साधक ३ – हाँ जी! कर सकते हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! प्रयोग करके देखिए। पहले कुछ न सोचने का अभिप्राय सुनिए - अब मैं न तो ईश्वर को विषय बनाऊँगा, न जीवात्मा को, न प्रकृति को और न सृष्टि को विषय बनाऊँगा। क्या आपका अपने मन पर इतना अधिकार है कि तीनों वर्गों में से किसी को भी विषय न बनाकर स्थिर रह सकें? पहले बात को समझो और नहीं समझ में आए तब पुनः पूछो। पीछे वाले नहीं पूछेंगे, उनको कालान्तर में समय दिया जाएगा। अभी पहले वर्ग में ये जो आठ ब्रह्मचारी (साधक) हैं, इनका समय है। दोहराओ।

साधक ३ – अभी हम ऐसा प्रयोग करें कि न ईश्वर को, न आत्मा को और न प्रकृति को विषय बनाना है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – आप भी बोलो, आपको यह विषय समझ में आया या नहीं आया ?

साधक ५ – आ गया।

साधक ६ – केवल मन को नियन्त्रण में रखना है तो उसके लिए क्या करें ?

स्वामी जी – यही करना है कि किसी को विषय नहीं बनाना है। जैसे कि एक उदाहरण लेते हैं – मान लो कि हम कार में बैठकर जा रहे हैं और चालक गाड़ी को चला रहा है। उसका काम दिन भर गाड़ी चलाने का है किन्तु जब वह गाड़ी नहीं चलाना चाहता तो उसे रोक देता है और रोके रहता है। इस स्थिति में उसे कोई बाधा नहीं होती है। जब वह गाड़ी चलाना चाहता है तब चला लेता है और जब रोकना चाहता है तब रोक देता है। ऐसे ही जब हम पंखा चलाना चाहते हैं तब चला लेते हैं और जब नहीं चलाना चाहते हैं तब नहीं चलाते और पंखा रुका रहता है। इसी प्रकार अपनी इच्छा के अनुसार गाड़ी और पंखे के समान जब मन को चलाना चाहेंगे तब चला लेंगे और नहीं चलाना चाहेंगे तब रोके रहेंगे।

साधक ३ – मैंने अपनी इच्छा को रोक रखा है, उस समय यह अनुभूति होगी।

स्वामी जी – हाँ ! यह अनुभूति होगी। ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न रुके हुए हैं; यह अनुभूति सतत बनी रहेगी।

साधक १ – जब मैंने अपने ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न को रोक रखा है तब क्या अपने अस्तित्व का अनुभव होगा या नहीं ?

स्वामी जी – वहाँ केवल विचार नहीं करेगा, अपना अनुभव तो स्वभाव से ही सिद्ध है। जो यह कहता है कि मैंने मन को रोक रखा है, वह उसी स्वभावसिद्ध बात को कहता है।

साधक १ – अस्तित्व की अनुभूति तो वहाँ चलेगी ?

स्वामी जी – ऐसा मानने पर वहाँ दो अवस्थाएँ होंगी – प्रथम – मैं जीवात्मा हूँ और द्वितीय – मैंने मन को रोक रखा है, जबकि ऐसा नहीं करना है। (स्वभावतः मैं अनुभव कर रहा हूँ, यह कोई विषय नहीं है।)

साधक १ – ऐसा विचार नहीं करेगा पर अनुभव तो होगा।

स्वामी जी – नहीं। अनुभव कर रहा हूँ, यह ज्ञान नहीं उठाएगा। इच्छा-प्रयत्न को रोकना प्रधान रहेगा। अनुभव कर रहा हूँ, यह प्रधान नहीं रहेगा। उसके लिए जब हम आत्मा को विषय बनाएँगे कि मै सत्, चित् और एकदेशी हूँ तब यह अनुभव का विषय होगा, नहीं तो सामान्य रूप से अनुभव कर रहा हूँ, सिद्ध ही है।

साधक १ – जहाँ पर मैंने रोक रखा है, उस स्थल की अनुभूति होगी ?

स्वामी जी – हाँ ! आपने जिस स्थल पर रोक रखा है, वह धारणा का केन्द्र है। वह स्थान निर्धारित कर रखा है, ऐसा मानकर चलिए। उसी के आधार पर आपने अपनी आत्मा को रोक रखा है, स्थिर कर रखा है।

साधक १ – केन्द्र की अनुभूति होगी ?

स्वामी जी – नहीं ! पहले केन्द्र बना रखा है, पुनः केन्द्र को याद करना, नहीं करना, यह गौण होगा। इससे सम्बन्धित कोई बात हो तो पूछ लेना।

साधक २ – इच्छापूर्वक कोई भी विचार उत्पन्न नहीं करेंगे। उसके अतिरिक्त कोई भी अनुभूति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती हो तो भी उस पर ध्यान नहीं देंगे।

स्वामी जी – नहीं ! किसी अनुभूति को नहीं होने देंगे।

साधक २– शरीर आदि की अनुभति तो रहेगी ?

स्वामी जी – नहीं। कोई अनुभूति नहीं होने देंगे। कुछ बातें सामान्य रूप से सिद्ध होती हैं, उनको छेड़ना नहीं है। सबका अस्तित्व हमारी बुद्धि में है। हम जीवात्माएँ हैं, ईश्वर सर्वव्यापक है और प्रकृति, शरीर आदि सब कुछ है। इनके होते हुए भी हम इनको विषय नहीं बनाएँगे कि यह ऐसा है, वह वैसा है, अच्छा है, बुरा है, कुछ नहीं। सब स्वभाव से सिद्ध है।

अब प्रयोग करेंगे –

- प्रयोग करते समय मन को रोक रखा है; यह अनुभूति रहेगी।
- इच्छा, प्रयत्न को रोक रखा है, यह मुख्य विषय रहेगा। अन्त में देखेंगे कि जीवात्मा अर्थात् मैं रुका हुआ हूँ, मुझसे सम्बन्धित बल, प्रयत्न रुके हुए हैं।

यह जो प्रशिक्षण दिया जा रहा है, कालान्तर में इसका ही पुनः अभ्यास करना है।

अब मन को सर्वथा रोक लेने के इस प्रयोग का प्रयोजन समझें अर्थात् इस क्रिया से हमको क्या लाभ होता है ? मन, इन्द्रिय, बुद्धि, शरीर और आत्मा पर पूर्ण नियन्त्रण के लिए यह प्रयोग किया जाता है। नियन्त्रण का तात्पर्य है कि विवशता से किसी भी ज्ञान-अज्ञान, कर्म-अकर्म, उपासना-अनुपासना का ग्रहण न हो। केवल ज्ञान, कर्म, उपासना का और जितना आवश्यक हो, उतने का ही ग्रहण हो। मन अनधिकृत विषय में न जाए, अधिकृत विषयों में ही चले। मन को, स्वयं को अनिष्ट से हटाकर अभीष्ट में लगाना। बताया जाने वाला विषय प्रशिक्षण काल के अन्तर्गत ठीक प्रकार से ज्ञात हो गया, ऐसी अनुभूति होनी चाहिए। उस विषय में कोई संशय या भ्रान्ति नहीं रहनी चाहिए, अन्यथा प्रयोगकाल में तथा व्यवहार में सफलता नहीं मिलेगी ।

विषय समझ में आ जाने पर भी संध्या, उपासनादि में वृत्तियाँ उठाई जाती हैं। उनमें अभ्यास की न्यूनता, वैराग्य का अभाव आदि कारण समझने चाहिएँ क्योंकि ज्ञान, वैराग्य और दृढ़ अभ्यास हो जाने पर पुनः वृत्तियाँ उठाने की स्थिति नहीं रहती है। यदि प्रयत्न करने पर भी विषय समझ में नहीं आया, स्पष्ट नहीं हुआ तो शब्द-प्रमाण पर विश्वास करके अभ्यास, प्रयत्न करते रहने चाहिएँ।

साधक १– हेयोपादेयशून्या की स्थिति बनाने में क्या इस प्रयोग से कोई लाभ होता है ?

स्वामी जी – पारम्परिक रूप में लाभ होता है। इस प्रयोग से इन्द्रियों पर संयम तथा विरुद्ध विषयों से बचने की सामर्थ्य आती है। इन्द्रियों पर नियन्त्रण होने से राग-द्वेष की प्रवृत्ति अवरुद्ध हो जाती है। हेयता = दुःख व दुःख साधनों में द्वेष होना और उपादेयता = सुख व सुख साधनों में राग होना; ये दोनों ही निष्क्रिय हो जाते हैं। अथवा यों कहो, निर्विषयता से इन्द्रिय-निरोध में सहायता मिलती है तथा इन्द्रिय निरोध से राग-द्वेष पर अधिकार होता है। राग-द्वेष पर अधिकार होना ही हेयोपादेयशून्या स्थिति है। इसी तरह इन्द्रिय-निरोध से एकाग्रता उत्पन्न होती है तथा एकाग्रता से तत्त्वज्ञान की उपलब्धि आदि अन्य लाभ भी समझने चाहिएँ।

साधक १– आत्मा, शरीर और इन्द्रियों पर नियन्त्रण किस प्रकार से होता है ?

स्वामी जी – जैसे उपासना काल में हम प्रकृति के विषय में चिन्तन कर रहे हैं। अब आत्मा के विषय में चिन्तन करना हमको अभीष्ट है किन्तु रुचिकर व सरल विषय होने से प्रकृति का चिन्तन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छोड़ नहीं पा रहे हैं। उस स्थिति में इस निर्विषयक प्रयोग से, मन को प्रकृति से हटाकर पुनः आत्मा का चिन्तन आरम्भ कर सकते हैं। इसी प्रकार आत्मा से हटाकर ईश्वर को विषय बना सकते हैं। प्रकृति से हटाकर आत्मा में लगाने पर, प्रकृति पर नियन्त्रण हुआ तथा आत्मा से हटाकर परमात्मा में लगाने पर आत्मा पर नियन्त्रण हुआ। ऐसे ही निम्न विषय या अनभीष्ट विषय से हटाकर उच्च या अभीष्ट विषय में मन, इन्द्रियों को लगाने की सामर्थ्य प्राप्त हो जाने से आत्मादि पर नियन्त्रण प्राप्त करने में इस प्रयोग से लाभ होता है।

दूसरा उदाहरण - हम उपासना करने बैठे हैं। यहाँ ईश्वर का साक्षात्कार करना प्रयोजन है। निष्काम कर्म भी उसका एक साधन है। अब ध्यान करते-करते एक विचार उठा लिया कि निष्काम कर्म से भी तो ईश्वर की प्राप्ति होती है, पुनः ध्यान समाधि की क्या अपेक्षा? अब यहाँ चिन्तन पर अधिकार होता तो ध्यान में केवल ईश्वर-विषयक चिन्तन में संलग्न रह जाते। अधिकार न होने से निष्काम कर्म, जो कि यहाँ उपासना काल में असाधक है, बाधक है, इसके चिन्तन में लग गए और उपासना छोड़ बैठे।

तीसरा उदाहरण - जप के अन्तर्गत निर्णय किया कि केवल गायत्री मन्त्र लेना है और उसकी विशेष व्याख्या नहीं लेनी है। अब आप जप करने लगे तो विशेष व्याख्या में लग गए। प्रमाण और दृष्टान्त भी ढूँढने लगे। ऐसी स्थिति में यदि विचारों पर नियन्त्रण नहीं किया तो व्याख्या लिखने की तैयारी में लग जाएँगे। अतः इस प्रवृत्ति को रोकने में सर्वथा निर्विषयक कर देने से तत्काल सफलता मिल जाएगी। इस प्रक्रिया का अभ्यास हो जाने पर यह अनुभूति होगी कि आत्मा, शरीर, इन्द्रियाँ आदि सब रुक गए हैं। मनोनियन्त्रण के लिए बल प्रयोग की कोई अपेक्षा नहीं रही। ऐसा लगेगा कि स्वतः नियन्त्रण में स्थित हैं।

सावधानी - न्यून अभ्यास या अभ्यास के आरम्भिक काल में यह लगता है कि मैंने सब विचारों को रोक दिया और आगे भी रोके रहने में समर्थ हो गया, परन्तु कुछ काल में लगने लगता है कि विचार अब स्वयं उत्पन्न होना चाह रहे हैं। पुनः उनको और रोकने का प्रयत्न करते हैं तो छटपटाहट होने लगती है। ऐसा लगता है कि गला घुट रहा है। ऐसी स्थिति में नियन्त्रण को छोड़ देना चाहिए और कालान्तर में पुनः अभ्यास आरम्भ करना चाहिए। ज्ञान, वैराग्य और अभ्यास की न्यूनता के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। इस अभ्यास में श्वास-प्रश्वास की स्थिति सामान्य होनी चाहिए, परन्तु नवीन अभ्यासी की स्थिति भिन्न हो सकती है। जैसे नए अभ्यासी बन्दूक चलाते समय लक्ष्य भेदने के लिए अधिक शक्ति लगाते हैं, एक आँख बन्द करते हैं, हाथ-पैर भी सिकोड़ते हैं, श्वास-प्रश्वास बन्द करते हैं परन्तु अभ्यस्त हो जाने पर उसी व्यक्ति की स्थिति सामान्य रहती है।

मन को निर्विषयक बनाने की दो विधियाँ हैं - एक निषेध पक्ष और दूसरा विधि पक्ष। निषेध पक्ष में कोई भी विषय या विचार नहीं उठाए जाते जबकि दूसरे विधि पक्ष में ईश्वर, जीव, प्रकृति आदि किसी भी एक यथेष्ट विषय का ग्रहण किया जाता है, उसी एक विषय को बनाए रखने का अभ्यास किया जाता है, अन्य किसी भी विषय को नहीं आने दिया जाता है। अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८

ज्ञानखण्ड

ज्ञान : आषाढ़ शु. १२/२०६०-११/०७/०३

ओं भूर्भुवः स्वः । तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि । धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

गायत्री मंत्र का उच्चारण करते समय क्या आपका स्तर ऐसा बना रहा, जिसमें ईश्वर को सम्बोधित करते रहे और शब्दार्थ चलता रहा; आप अपना बताइये कैसा रहा ?

साधक १ – प्रायः ठीक रहा ।

स्वामी जी – आपको आभास होता है या नहीं कि अब स्थिति बनी हुई है और अब नहीं बनी रही । व्यक्ति को स्पष्ट अनुभूति होनी चाहिए कि स्थिति बनी हुई है या भंग हो गई । अच्छा ! महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जो गायत्री मन्त्र का शब्दार्थ संस्कार विधि में लिखा है, वह आपमें से किस-किस को कंठस्थ है ?

साधक १ – अक्षरशः संस्कार विधि आदि से स्मरण नहीं है ।

स्वामी जी – संस्कार विधि में जो शब्दार्थ लिखा है, आपको वह स्मरण करना है ।

साधक ८ – सत्यार्थ प्रकाश में भी लिखा है ।

स्वामी जी – सत्यार्थ प्रकाश में इसकी विस्तृत व्याख्या है और पंचमहायज्ञविधि में भी व्याख्या है । व्याख्या याद करनी हो तो वहाँ से याद करो और संक्षिप्त शब्दार्थ संस्कार विधि से याद करो । संस्कार विधि वाला अर्थ आपको याद है ?

साधक ३ – जी हाँ ।

स्वामी जी – तो आप सुनाएँगे ।

साधक ३ – जी ! कंठ खराब है ।

स्वामी जी – अच्छा, आप नहीं सुनायेंगे । छोड़ो !

अब हम पाठ करेंगे सह नाववतु.....। यह कहाँ का पाठ है ? तैत्तिरीय आरण्यक या उपनिषद् लिखा है ? इसका जो अर्थ ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में लिखा है वह किस-किस को याद है ? किसी को नहीं ।

साधक ३ – क्रमशः याद नहीं है, सामान्य रूप से याद है ।

स्वामी जी – उसको स्मरण करना है । इसमें आचार्य और शिष्य का परस्पर व्यवहार किस प्रकार का हो; यह बताया गया है । अब उसकी सिद्धि के लिये ईश्वर से प्रार्थना की जा रही है । अब हम पाठ करेंगे –

ओं सह नाववतु सह नौ भुनक्तु सह वीर्यं करवावहै ।

तेजस्विनावधीतमस्तु मा विद्विषावहै । ओं शान्तिः शान्तिः शान्तिः ॥ तैत्तिरीय उपनिषद् ब्र.अ.१ ।

इसमें ईश्वर से प्रार्थना की गई है कि आचार्य और शिष्य परस्पर इस प्रकार का व्यवहार करें । **सह नाववतु** एक-दूसरा, एक-दूसरे की रक्षा करे । **सह नौ भुनक्तु** एक दूसरा, एक दूसरे के साथ मिलकर आनन्द का उपभोग करे । **सह वीर्यं करवावहै** दोनों परस्पर सब प्रकार का बल बढ़ाएँ । **तेजस्वि नावधीतमस्तु** हम दोनों का पढ़ा-पढ़ाया तेजस्वी हो । **मा विद्विषावहै** हम दोनों प्रेम से रहें, कभी परस्पर द्वेष न करें । **ओं शान्तिः**

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शान्तिः शान्तिः हम लोगों के आध्यात्मिक, आधि-भौतिक और आधिदैविक इन तीनों तापों का निवारण करें।) इस प्रकार जैसा भी महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लिखा है वैसा ही उपस्थित कर लें।

साधक ३ – जैसा आपने बताया है वैसा आता है, वही हम भी लोगों को बताते हैं।

स्वामी जी – पुनरपि शब्दार्थ में जहाँ कहीं न्यूनता दिखती हो तो सुधार लेना चाहिए, इधर-उधर अर्थ नहीं जाना चाहिए।

साधक २ – मन्त्र में अवतु तथा भुनक्तु पद प्रथम पुरुष एक वचन के हैं; परन्तु यहाँ पर उत्तम पुरुष द्विवचन में अर्थ किया गया, ऐसा शब्दार्थ में प्रथम पुरुष है किन्तु हम मध्यम पुरुष का प्रयोग करते हैं। ऐसा क्यों ?

स्वामी जी – उसके सम्बन्ध में जहाँ व्याकरण की बात है वहाँ दो बातें हो सकती हैं। एक तो यह कि कहीं इस वाक्य-रचना में असावधानी सम्भावित है अथवा वाक्य की रचना पाणिनि व्याकरण की शैली से भिन्न हो, जैसे की उपनिषिदों में अनेक वाक्य ऐसे मिलते है जो पाणिनि व्याकरण के अनुकूल नहीं होते। ऐसे भी हो सकता है किसी और व्याकरण के अनुसार रहे हों। तो इसमें आपने एक प्रश्न उठाया कि **सह नौ अवतु** में, एक वचन लिखा है और हम द्विवचन में प्रयोग करते है ?

साधक ३ – वह रक्षा करे।

स्वामी जी – हाँ ! तो अवतु शब्द है एक वचन का और इसको द्विवचन बनाएँगे तब हमारी दृष्टि में क्या दोष आता है ? इसको देखो पहले।

साधक २ – आप हम दोनों की रक्षा करें। यहाँ क्रिया पद अन्य पुरुष के साथ जुड़ेगा।

स्वामी जी – हाँ ! क्रिया को अन्य पुरुष के साथ जोड़ें और व्यक्तियों को परस्पर जोड़ें। पहले शब्द व्यक्तियों के साथ जुड़ें और अवतु ईश्वर के साथ जुड़े।

साधक ३ – सह नौ अवतु वह हम दोनों की रक्षा करे।

स्वामी जी – हाँ ! अवतु को ईश्वर के साथ जोड़कर हम बोलेंगे – **सह नौ अवतु**। यहाँ नौ का प्रयोग आचार्य और शिष्य के कर्म रूप में है और अवतु का प्रयोग कर्त्ता में। इसी तरह नौ कर्म है और भुनक्तु कर्त्ता अर्थ में। वीर्यं कर्म है और करवावहै कर्त्ता अर्थ में। (यहाँ आवाम् कर्त्ता का अध्याहार होगा)। आगे तेजस्वि नौ अधीतम् अस्तु, यहाँ तेजस्वी कर्त्ता अर्थ में होगा। मा विद्विषावहै (यहाँ भी आवाम् कर्त्ता का अध्याहार होगा)। तो अब आपको समझ में आ गया तो याद करो, लेखबद्ध करो और नहीं आया तो पूछो ! इससे आप स्वयं समझ सकेंगे और अन्यों को बता भी सकेंगे तथा शंका समाधान में भी उत्तर दे सकेंगे।

आचार्य नैष्ठिक जी – सह नौ शब्द का क्या अर्थ है ?

स्वामी जी – सह नौ का अर्थ है हम दोनों। यह आचार्य शिष्य के लिए है। ईश्वर से प्रार्थना की जा रही है - हे ईश्वर ! आपकी कृपा से हम दोनों इस आनन्द को मिल कर भोगें।

और किसी को शंका हो या समझ में नहीं आया हो। आगे मुख्य अभिप्राय जानना चाहिए कि व्यवहार में, पठन-पाठन में, कोई भी ऐसी बात गुरु-शिष्य के मध्य न हो, जिससे विद्या-धर्म-उपासना आदि में कोई बाधा खड़ी हो। इसके अतिरिक्त आपको जहाँ कहीं पर ऋषियों द्वारा लिखित अध्यापक-विद्यार्थी के लक्षण, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य अथवा इनसे सम्बधित कोई बात उपलब्ध हो तो उसको अपनी संचिका में अंकित कर लें। अभी कुछ स्थल आपको स्मरण होंगे या नहीं ? कौन-कौन से हैं याद करो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३ – दो-तीन श्लोक मुण्डक उपनिषद में आये हैं कि आचार्य विद्यार्थियों को किस प्रकार की शिक्षा देंगे।

स्वामी जी – जहाँ-जहाँ दिये हैं पहले कोई एक संकेत कर लो, पुनः एक-दूसरे से लिख लें।

साधक ३ – निरुक्त के दूसरे अध्याय में गुरु-शिष्य के सम्बन्ध में चार श्लोक आये हैं और मनु स्मृति के द्वितीय अध्याय के अन्दर दो श्लोक आये हैं।

स्वामी जी – व्यवहार भानु में, सत्यार्थप्रकाश तृतीय समुल्लास आदि ग्रन्थों का संकेत कर लेवें और पश्चात् वहाँ से लिख लें। समय-समय पर विद्यार्थी, आचार्य-अध्यापक अपना-अपना निरीक्षण करते रहें। अपने दोषों, गुणों को देखते रहें। जैसे कि मैं विद्यार्थी हूँ, मेरे गुण क्या हैं, मैं उनका पालन कर रहा हूँ या नहीं? विद्यार्थी के जो दोष होते हैं, मैं उनको तो नहीं करने लगा? अपने निरीक्षण के अभाव में आलस्य-प्रमाद होने लगता है और उससे व्यक्ति गुणों को प्राप्त करना छोड़ देता है। अतः आत्मनिरीक्षण करने पर वह पुनः पुरुषार्थ से गुणों को प्राप्त करने लगता है। अपने अन्दर दोष आने की सम्भावनाओं का प्रतिकार करता है। निरीक्षण के बिना वह गुणों को प्राप्त नहीं कर पाएगा और न दोषों को छोड़ पाएगा।

आयुर्वेद के चरक, सुश्रुत ग्रन्थों में से एक ग्रन्थ में ऐसा संकेत आया है कि गुरु और शिष्य एक-दूसरे की अच्छी प्रकार से परीक्षा करके अपना सम्बन्ध जोड़ें। एक स्थान पर कहा है कि गुरु जैसा आदेश करता है, शिष्य वैसा ही करे और गुरु जिसका निषेध करता है, शिष्य उसको न करे। यदि सूची बनी हुई हो तो इन दोनों ग्रन्थों में इस प्रकरण को देखा जा सकता है।

उपनिषद् में एक प्रसंग सम्भवतः आरुणि का आया है, जिसमें यह दिखाया है कि गुरु के प्रति शिष्य की कितनी श्रद्धा होती है। जैसे कि गुरु की आज्ञा के संकेत पर भोजन छोड़ देना। गुरु की आज्ञा के बिना दूध भी न पीना, केवल झाग पी लेना आदि ऐसे कुछ वर्णन हैं। परिश्रम और श्रद्धा-विश्वास के साथ ईश्वर-प्राप्ति में कैसे शिष्य लगता है, इसको देखना हो तो इन्द्र-विरोचन के प्रसंग को पढ़ो। इन प्रसंगों को पढ़ते रहो। क्या समझ में आया ?

साधक ३ – इन्द्र-विरोचन की जो कथा आती है, वह भी इस प्रसंग में जुड़ती है।

स्वामी जी – उस कथा में जो बात आई कि १०१ वर्ष जितने लम्बे काल तक गुरु की आज्ञा का पालन करना और विद्या को सीखना; उसमें गुरु के प्रति कितनी श्रद्धा रही होगी ? कितना विश्वास रहा होगा? इतने लम्बे काल तक कितना परिश्रम किया होगा?

अब हम ज्ञान के विषय में विचार करेंगे। विद्या और ज्ञान, ये दोनों पर्यायवाची शब्द हैं। आर्योद्देश्यरत्नमाला में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने विद्या की परिभाषा लिखी है - विद्या - जिससे ईश्वर से लेके पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों का सत्यविज्ञान होकर उनसे यथायोग्य उपकार लेना होता है, इसका नाम 'विद्या' है। रत्न सं. १६। क्या समझ में आया?

साधक ३ – जिसमें ईश्वर से लेकर पृथ्वी पर्यन्त पदार्थों का सत्य विज्ञान हो कर उनकी अच्छाइयों से उपकार लेना है।

स्वामी जी – उसका नाम विद्या है। यद्यपि यहाँ विद्या शब्द से पूरी विद्या का संकेत है और पूरी विद्या का स्वरूप भी इसके साथ जुड़ा हुआ है। हाँ जी! क्या समझ में आया?

साधक ४ – यही कि विद्या और पूरी विद्या की परिभाषा दी है।

स्वामी जी – आप बताएँगे, पूरी विद्या कैसे बताई है? पूरी का क्या अर्थ या विशेषता है?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ६ – पूरे ज्ञान-विज्ञान को विद्या कहा गया है।

स्वामी जी – हाँ जी ?

साधक ३ – इसमें अपरा और परा इन दोनों विद्याओं का संकेत आ गया। ये दो विद्याएँ मानी गयी हैं और दोनों मिलकर पूर्ण विद्या कहलाती हैं। परिभाषा में दोनों का संकेत कर दिया गया है।

स्वामी जी – ईश्वर, जीव, प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थ, इन तीनों विषयक विद्या ले ली गई है। उपनिषत्कार के शब्दों में – **द्वे विद्ये वेदितव्ये परा चापरा चेति**। मुण्डक. १/१/४। परा और अपरा, ये दो विद्याएँ जाननी चाहिएँ। अपरा-विद्या में पृथ्वी आदि से लेकर प्रकृति पर्यन्त पदार्थों का विज्ञान है। अब क्या समझ में आया ?

साधक ३ – अपरा विद्या में अन्तिम कारण प्रकृति से लेकर पूरे संसार तक का ग्रहण करना चाहिए।

स्वामी जी – तुलनात्मक अध्ययन से हमको पता चलता है कि वैदिक भौतिक वैज्ञानिकों को छोड़कर शेष वैज्ञानिक अपरा-विद्या को सब कुछ मानते हैं तथा अपरा-विद्या में ही अपनी कृतकृत्यता समझते हैं। वास्तव में देखा जाए तो अपरा विद्या के क्षेत्र में भी अनेकत्र उनका ज्ञान शुद्ध नहीं है।

साधक ८ – अपरा विद्या का जो क्षेत्र है वह वैज्ञानिकों का है किन्तु उसमें भी उनका ज्ञान अधूरा है।

स्वामी जी – यह स्थिति भूगोल में वैज्ञानिकों की है। इसलिए किसी को यह भ्रम न हो कि ये वैज्ञानिक अपने आप में ठीक चल रहे हैं, अपने-आप में सफल हैं, दोष से रहित होते जा रहे हैं, इनका जीवन ठीक से व्यतीत हो रहा है आदि।

साधक ३ – परन्तु शास्त्र में जो चर्चा आई है, वहाँ तो कहा गया है – ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, शिक्षा, कल्प, निरुक्त, गणित, व्याकरण आदि सब अपरा विद्या है और **अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते**। मुण्डक. १/१/५। ऐसी परिभाषा की गई है अर्थात् सारे पदार्थों का जो शाब्दिक ज्ञान है, वह अपरा विद्या है और जिससे ब्रह्म की प्राप्ति होती है, वह परा विद्या है।

स्वामी जी – एक व्याख्या के अन्तर्गत ईश्वर और जीव परा विद्या में ले लिए जाएँगे और प्रकृति अपरा विद्या के अन्तर्गत आ जाएगी। इस अपरा में शब्दमय वेद भी आ गए। वेद शब्द से हम ईश्वर के ज्ञान को नहीं ले रहे हैं। ईश्वर का जो ज्ञान है वह परा विद्या है, वह अपरा विद्या नहीं है।

साधक १ – जो प्रकृति का यथार्थ ज्ञान है ?

स्वामी जी – वह सारा अपरा विद्या में आयेगा।

साधक १ – परा विद्या में नहीं आएगा ?

स्वामी जी – नहीं, क्योंकि महर्षि दयानन्द जी ने ऐसी ही व्याख्या की है। उपनिषदों में भी लिखा है – **द्वे विद्ये वेदितव्ये**। पुनः ऋषियों ने भी व्याख्या की जैसा कि ये (साधक ३) बोल रहे थे – जिस विद्या से ब्रह्म का प्रत्यक्ष होता है, उसका नाम परा विद्या है।

साधक ३ – जिससे अविनाशी ब्रह्म जाना जाए, ऐसा कुछ वाक्य है।

साधक १ – प्रकृति के यथार्थ ज्ञान-विज्ञान के बिना भी तो ब्रह्म का प्रत्यक्ष नहीं हो पाता है। सम्प्रज्ञात समाधि का वर्णन इसीलिए किया गया है।

स्वामी जी – हम यह नहीं कहते हैं कि किसके बिना ब्रह्म का प्रत्यक्ष नहीं होता अपितु हम तो यह निर्धारण कर रहे हैं कि अपरा और परा विद्या किसे कहते हैं। दो विभाग बना लिए। हमने केवल वाक्य की सीमा बनाई है। जो चाहे जोड़ दें, ऐसा नहीं है। एक सीमा में व्याख्या करनी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। ऋषियों के अनुसार अपरा विद्या यह है और परा विद्या यह है; इतना अभिप्राय लेना है। कौन किसका साधन है, कौन आवश्यक है; इसकी चर्चा नहीं है।

साधक ५ – ईश्वर का जो वेद ज्ञान है, क्या वह अपरा-विद्या है?

स्वामी जी – हाँ! ईश्वर का जो अपना व्यक्तिगत ज्ञान है वह अपरा विद्या नहीं है। ईश्वर का जो अपना स्वाभाविक ज्ञान है जैसे अग्नि की उष्णता। वह अपरा विद्या नहीं है। मन्त्रपाठ यह प्राकृतिक पदार्थों का स्वरूप है। शब्द ज्ञान, अर्थात् शब्द का स्वरूप, यह प्राकृतिक पदार्थ है। क्या समझ में आया?

साधक ५ – शब्द जो है, वह प्राकृतिक पदार्थ है।

स्वामी जी – वह ईश्वर का अंग नहीं है। अब आया समझ में? आ गया?

साधक २ – जैसे कि प्रीति और उत्साह प्राकृतिक गुण हैं।

सम्पादकीय – और आत्मा के भी गुण हैं, वैसे ही वेद मौलिक रूप में ईश्वर के गुण हैं। अतः परा विद्या के अन्तर्गत है परन्तु जीवात्मा के द्वारा शब्दरूप में उच्चरित तथा ग्रन्थरूप में लिपिबद्ध वेद प्राकृतिक है। अतः अपरा विद्या के अन्तर्गत है। **प्रीत्यप्रीतिविषादाद्यैर्गुणानामन्योऽन्यं वैधर्म्यम्।** सांख्य.द. १/१२७। **प्रीतेरात्माश्रयत्वादप्रतिषेधः।** न्याय द.४/१/५२।

स्वामी जी – जो शब्द गुण है वह आकाश का गुण है। इसका यदि प्रमाण चाहो तो उपनिषद् में देखो – **अशब्दमस्पर्शम् ...।**

साधक ३ – **अशब्दमस्पर्शमरूपमव्ययं तथाऽरसं नित्यमगन्धवच्च यत्।**
अनाद्यनन्तं महतः परं ध्रुवं निचाय्य तन्मृत्युमुखात्प्रमुच्यते॥ कठ. ३/१५।

स्वामी जी – आपने नहीं बोलना है। तो क्या समझ में आया?

साधक ३ – यह जो ध्वनि या लिपि है, यह ईश्वर का गुण नहीं है।

स्वामी जी – हम यहाँ तक पहुँच गए, परा विद्या और अपरा विद्या की परिभाषा ऋषियों के अनुसार आई कि – जिस विद्या से पृथ्वी से लेके प्रकृति पर्यन्त पदार्थों का ज्ञान होता है उसका नाम अपरा विद्या है और जिस विद्या से ईश्वर और जीवात्मा का ज्ञान हो, वह परा विद्या मानी जाएगी क्योंकि वहाँ ब्रह्म का संकेत है। अतः प्रकृति व प्राकृतिक पदार्थों तथा ईश्वर की सीमा बना ली गई, पुनः ऐसी परिभाषा बनानी आवश्यक होगी।

साधक ३ – स्वामी जी! कुछ शंका है।

स्वामी जी – हाँ, बोलो।

साधक ३ – **यया तदक्षरमधिगम्यते।** जिस विद्या से ईश्वर को जाना जाए, वह ब्रह्म विद्या, परा विद्या है। इससे अतिरिक्त अपरा में आना चाहिए। (आत्मा भी।)

स्वामी जी – अच्छा सुनो! पृथ्वी से लेकर प्रकृति पर्यन्त जो ज्ञान होता है, उसे अपरा विद्या बोलते हैं; ऐसा महर्षि दयानन्द जी का तात्पर्य होना चाहिए। यह ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में देखना पड़ेगा, कहीं लिखा है। इस परिभाषा में प्रकृति को लिया गया है, इसलिए अपरा विद्या के अन्तर्गत जीवात्मा का ग्रहण नहीं होगा, वह भी परा विद्या में आएगा।

साधक ३ – जैसे सम्प्रज्ञात के क्षेत्र में सारी प्रकृति और जीवात्मा को ले लिया है, इसलिए यहाँ तक तो हो गई अपरा विद्या।

स्वामी जी – यह तो योग दर्शन के अनुसार आप कह रहे हैं। हमें लेना है महर्षि दयानन्द

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जी की व्याख्या को, यहाँ योग दर्शन को नहीं लेना है। योग दर्शन का प्रकरण पृथक् है। विद्या की जो परिभाषा की गई, उसमें ऋषियों की एक व्याख्या के अनुसार ईश्वर और जीवात्मा को परा विद्या में ले लिया, शेष प्रकृति आदि पदार्थों को अपरा विद्या में ले लिया; ऐसा अभिप्राय समझ में आता है। हम यहाँ तक पहुँचे।

अब थोड़ा-सा तुलनात्मक अध्ययन करेंगे - आपको स्मरण रहे, जहाँ तक मैंने पढ़ा-सुना और भौतिक वैज्ञानिकों की मान्यताएँ देखीं। उसमें यही निष्कर्ष निकला कि जो ईश्वर, आत्मा या पुनर्जन्म को मानते हैं, ऐसे वेद से सम्बन्धित भौतिक विज्ञान के विद्वानों को छोड़कर शेष भौतिक वैज्ञानिकों की मान्यताएँ वेद के विरुद्ध जाती हैं और बुद्धिसंगत भी नहीं हैं। यह भी जानना चाहिए। जैसे कि इनकी एक मान्यता है -

भौतिक पदार्थों में से कुछ विशेष तत्वों का विकास होते-होते एक ऐसी स्थिति आती है, जिससे एक चेतन पदार्थ उत्पन्न हो जाता है, उसी का नाम जीवात्मा है और टूटते-टूटते एक ऐसी स्थिति में चला जाता है, जहाँ वह जड़त्व को धारण कर लेता है। यद्यपि आपको उन वैज्ञानिकों की ये लिखित मान्यताएँ विशेष रूप से ढूंढकर रखनी होंगी, केवल उसने उद्धृत किया है, इतने मात्र से काम नहीं चलेगा। आपको वह स्थल देखना पड़ेगा। कोई यह पूछ लेवे कि किसने यह बात कही है या भौतिक विज्ञान की किस पुस्तक में ऐसा लिखा है? तब क्या उत्तर देंगे? अतः यह याद होना चाहिए कि उसने ऐसा लिखा है। यह अपेक्षित होता है कि कौन-सा विद्वान् है जिसकी यह मान्यता है। इसलिए कोई भी विद्वान् हो, उसका नाम उपस्थित रहना चाहिए कि उसने ऐसा लिखा है। जैसे कि यह मंत्र है, यहाँ लिखा है, स्वामी दयानन्द जी ने यह अर्थ किया है आदि हम प्रमाण रूप में रखते हैं; ऐसा ही उनके विषय में भी संग्रह होना चाहिए। ऐसे ही, मान लो, उदयवीर शास्त्री जी ने वैज्ञानिकों का मत उद्धृत करते हुए लिखा है - जड़तत्त्वों का विकास होते-होते जो तत्त्व बनता है वह आत्मा है और बिखरते-बिखरते जब अन्तिम रूप में चला जाता है तब जड़ बन जाता है; यह एक मान्यता है। तो यहाँ मूल लेखक कौन है, यह भी जानना होगा। अन्यथा उदयवीर जी ने लिखा है, इतने से संतोष करना पड़ेगा। सारांश है कि हम कहते हैं कि इनका भौतिक विज्ञान अच्छा है किन्तु अनेक क्षेत्रों में वह विपरीत मान्यता रखता है, अनुपयोगी होता है। अच्छा! सृष्टि अपने-आप बनी, यह उनका एक मत प्रसिद्ध ही है। सृष्टि का विकास हुआ, जीवों का विकास हुआ, इस विकासवाद के मत को तो आप जानते हैं।

अब उसी विद्या के प्रसंग को लेते हैं। इस विषय में एक बात आई कि पृथ्वी से लेकर परमेश्वर पर्यन्त विज्ञान विद्या है और इसको प्राप्त करके व्यक्ति का जीवन कृतकृत्य हो जाता है। विद्या का इतना क्षेत्र समझ में आ गया। दोहराइये क्या कहा? जितनी विद्या व्यक्ति को मोक्ष प्राप्ति के लिए चाहिए, उतनी आ गयी और स्वरूप बताया कि इन दोनों वर्गों से ठीक-ठीक उपकार लिया जाए। जब तक ऐसा नहीं किया जाता, तब तक समझना चाहिए कि विद्या नहीं आयी। बोलो! क्या समझ में आया? अर्थात् शब्दार्थ-सम्बन्ध लगाते रहे, पठन-पाठन करते रहे किन्तु जब तक उपकार नहीं ले सकते, व्यवहार नहीं कर सकते, तब तक शाब्दिक ज्ञान की बात रही। अब क्या समझे? एक तो ज्ञान होना चाहिए और दूसरी बात बताई कि उससे प्रयोजन = अभ्युदय और निःश्रेयस, दोनों की सिद्धि होनी चाहिए, वही पूर्ण विद्या है।

साधक २- अर्थात् विद्या का क्षेत्र दो प्रकार का है। एक तो सभी पदार्थों का ज्ञान और दूसरा उनसे कैसे उपकार लिया जाए; यह दोनों प्रकार का ज्ञान विद्या है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ, ठीक है। जब आप शब्दार्थ-सम्बन्ध को पढ़ेंगे-पढ़ाएँगे, तब यह बात सामने आनी चाहिए कि क्या मैं ईश्वर आदि से उपकार ले रहा हूँ या नहीं? यदि यह बात आपके सामने नहीं आती, इसको इस रूप में नहीं देखते हैं तो आपकी विद्या व्यावहारिक नहीं बनेगी। भले ही शब्दार्थ-सम्बन्ध को आप जानते रहें पर वह व्यवहार में नहीं उतरेगा। क्या समझे दोहराओ!

यदि आप परमेश्वर, मनुष्य-पशु-पक्षी आदि जीवात्माओं, प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थों से उपकार लेना जानते हैं। इनसे धर्म-अर्थ-काम और मोक्ष की सिद्धि कर सकते हैं, तब तो आपका शब्दार्थ-सम्बन्ध ा ज्ञान सार्थक है, अन्यथा महर्षि ने जो संकेत दिया उसके अनुरूप हमारी विद्या नहीं होगी। आया समझ में? करना क्या है? व्यवहार करते समय देखो कि जैसा लिखा गया है वैसा प्रयोग कर रहे हैं या नहीं? जैसे एक सूक्ष्म उदाहरण – आप यह पढ़ रहे हैं कि ईश्वर का परिज्ञान हो और हम उससे कोई उपकार लें, तो ईश्वर से विद्या लेना आरम्भ कर दो, यह विद्या हुई। बोलो समझ में आया?

साधक ३ – आ गया।

स्वामी जी – लाभ उठाओ, आनन्द लो ईश्वर से, यह विद्या का उपकार हुआ। यदि आनन्द नहीं लेते तो समझना चाहिए आपने ठीक से विद्या का उपकार नहीं लिया। उपकार की भी थोड़ी सीमा नहीं होती, दिनभर ईश्वर से विद्या लो, सीखो, जानो। दिनभर ईश्वर से आनन्द लो, उसका सेवन करो। ऐसे ही अन्य जितने गुण हैं, उनको सदैव ग्रहण करते रहें। तो यह हुआ ईश्वर से उपकार लेना।

साधक १ – उदाहरण के माध्यम से समझाएँगे कि ईश्वर से उपकार कैसे ले सकते हैं?

स्वामी जी – जैसे कि सामान्य स्तर पर आप ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर रहे हैं तो उसके पूर्व आपका व्यवहार यम-नियम के अनुरूप होगा।अब यदि ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं तब ईश्वर आपको एक अंश में ज्ञान देता है।

साधक १ – किस प्रकार का ज्ञान देता है?

स्वामी जी – वह ज्ञान चाहे ईश्वर से सम्बद्ध हो, चाहे आत्मा या प्रकृति से सम्बद्ध हो, किसी विषयक हो सकता है। वह कितने अंश में देता है, कैसे देता है; यह पृथक् बात है। अब एक और उदाहरण – हमने परवैराग्य को प्राप्त किया, असम्प्रज्ञात समाधि को प्राप्त किया, ईश्वर प्रणिधान की सिद्धि की, सारी वृत्तियों का निरोध किया और ईश्वर में मग्न हो गए। अब ईश्वर हमको साक्षात् विशेष ज्ञान देगा, विशिष्ट अनुभव होगा। विशेष आनन्द देगा जैसे खीर-हलुवे का विशिष्ट आनन्द होता है। ईश्वर के साथ सम्बद्ध होने पर विशिष्ट अनुभूति होती है। जब आपका ईश्वर से सान्निध्य छूटेगा, तब समाधि भंग होगी, तब जो ज्ञान समाधि में हो रहा था, वह बन्द हो जाएगा। जो आनन्द मिल रहा था, वह आपके हाथ से चला जाएगा। यह आपको प्रत्यक्ष हो जाएगा। जैसे कि अग्नि के पास जाने से उसकी उष्णता प्राप्त होती है और दूर जाने से हट जाती है, वही स्थिति यहाँ पर होगी।

साधक १ – सत्त्वगुण के सुख और ईश्वर के आनन्द में क्या अन्तर होता है?

स्वामी जी – इसमें प्रथम यह बात जानने की है कि सम्प्रज्ञात समाधि में तो सत्त्वगुण के सुख और ईश्वर के आनन्द के अन्तर का पता नहीं चलता है। यद्यपि सम्प्रज्ञात समाधि में भी आंशिक रूप में हमको कुछ आनन्द मिलता ही है किन्तु वहाँ सत्त्वगुण का कितना सुख होता है और ईश्वर का कितना होता है; इसकी काट-छाँट (तुलनात्मक ज्ञान) करना कठिन है। असम्प्रज्ञात समाधि में दोनों के अन्तर का पता चलता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय – ईश्वर का सुख नित्य, एकरस और प्रगाढ़ होता है तथा उस काल में बुद्धि विशेष रूप से फैल जाती है जब कि सत्त्वगुण का सुख प्रवाही तथा तीव्र दबाव वाला होता है।

साधक १ – अपना सुख ?

स्वामी जी – हाँ ! आंशिक रूप में कुछ तो देगा ही।

साधक १ – इसमें प्रमाण क्या है ?

स्वामी जी – इसमें शब्द प्रमाण यह है कि पीछे जो हमने कहा कि ईश्वर की उपासना करने से ज्ञान की वृद्धि होती है, इस अनुमान से पता चलता है कि उपासना से हमको ज्ञान मिलता है। अब जब ज्ञान देता है तब आनन्द भी देना चाहिए। यह अर्थापत्ति से निकला।

साधक १ – सम्प्रज्ञात में तो ईश्वर विषय ही नहीं होता ?

स्वामी जी – नहीं। कोई बात नहीं विषय न हो, परन्तु ईश्वर का जो विद्या देने का नियम है, वह उसे तो पूरा करेगा। जो व्यक्ति आत्मा को जानने के लिए उचित परिश्रम करता है, तो क्या उसे ईश्वर ज्ञान की सहायता नहीं देता; इस बात पर विचार करो। अच्छा ! हमारी मान्यता के अनुसार तो जो भौतिक वैज्ञानिकों का यथार्थ विज्ञान है, उनका अपना नहीं है, वह भी ईश्वर से आया है। वे तो ईश्वर की उपासना भी नहीं करते हैं, पुनरपि आज ज्ञान-विज्ञान इतना बढ़ गया है। यह कैसे हुआ ? अतः न्याय की बात है, जो ईश्वराज्ञानुसार जितना परिश्रम करता है, उसको ईश्वर न्यायपूर्वक उतना ज्ञान-बल-आनन्द देता है। अब रही यह बात कि उपासना करने और न करने वाले में क्या अन्तर हुआ ? तो उत्तर यह बनेगा कि जब जीवात्मा ईश्वर की अनुभूतियाँ करने लगता है, तब जो आनन्द आता है, वह सम्प्रज्ञात में कभी नहीं आता। तब विशेष आनन्द होता है।

साधक १ – स्वामी जी ! आपने जिस प्रकार से समाधि की प्राप्ति की है, उसमें सम्प्रज्ञात का क्षेत्र कौन-सा मानते हैं ?

स्वामी जी – ये जीवात्मा का स्वरूप सम्प्रज्ञात का क्षेत्र है।

साधक १ – उस काल में सुख का अनुभव मिला-जुला होता है; ऐसा आप कह रहे हैं।

स्वामी जी – हाँ ! विभाजन करना कठिन होता है क्योंकि वहाँ सत्त्व वाला सुख भी होता है और ईश्वर का भी सुख होता है। यद्यपि ईश्वर का सुख वहाँ साधारण स्तर वाला होता है, विशेष स्तर वाला नहीं। विशेष स्तर वाला ज्ञान और सुख तो असम्प्रज्ञात समाधि में ही होता है। जैसा कि उपनिषत्कार के शब्दों में –

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूं स्वाम् ॥ कठ. २/२३।

ईश्वर-प्रणिधान की ऊँची अवस्था में विशिष्ट ज्ञान होता है और सामान्य ईश्वर-प्रणिधान की अवस्था में साधारण ज्ञान होता है। ऐसा सुख के विषय में भी समझना चाहिए कि सम्प्रज्ञात में साधारण सुख और असम्प्रज्ञात में विशिष्ट सुख होता है। इसी प्रकार भौतिक वैज्ञानिकों को भी उनके परिश्रम के आधार पर ईश्वर साधारण ज्ञान देता है और अन्यों को भी परिश्रम के आधार पर उस स्तर का ज्ञान और सुख देता है और उस स्थिति में सत्त्व से जो सुख होता है वह भी अपने-आप में सुख की एक विशिष्ट अनुभूति है। यह सम्प्रज्ञात तक का क्षेत्र आ गया।

अब जब जीवात्मा सम्प्रज्ञात को छोड़ देता है और परवैराग्य को प्राप्त करता है तब सत्त्व की अवधि या प्रभाव समाप्त हो जाता है और जीवात्मा ईश्वर में मग्न होता है। अब सत्त्व की अवस्था

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से ऊपर असम्प्रज्ञात में जो ज्ञान और सुख होता है, वह अतिविशिष्ट होता है, जो कि सम्प्रज्ञात में नहीं होता है। उसकी अनुभूति भी विशेष होती है।

साधक १ – समय हो गया।

स्वामी जी – कौन-सी घड़ी ठीक है?

साधक ३ – स्वामी जी! चार मिनट शेष हैं।

स्वामी जी – तो दोनों को मिला दो।

अच्छा! ये बातें गम्भीर हैं और आप जैसे-जैसे प्रयोग करते जाएँगे, वैसे-वैसे आपके सामने स्पष्ट होती जाएँगी। जहाँ-जहाँ समाधि में उलझनें उत्पन्न होती हैं, वहाँ-वहाँ ये काम आती हैं। क्या समझ में आया? यह क्षेत्र इतना गंभीर है कि इसमें विरला ही पहुँच पाता है। समाधि की अवस्था है या नहीं, ईश्वर का अनुभव हुआ या नहीं आदि विषयों में वैदिक परम्परा वालों को छोड़कर सारे भटके मिलेंगे। शाब्दिक रूप में भी स्पष्टता नहीं है। कोई कहता है समाधि में जीवात्मा ईश्वर में मिल जाता है, तो कोई कहता है ईश्वर ही बन जाता है आदि-आदि। इसके अतिरिक्त अन्य तुष्टि दोष हैं या नहीं, इनको भी नहीं समझ पाते। यदि पहले से अच्छी तरह पढ़ा-सुना, सीखा हो तो व्यक्ति उलझनों में नहीं फंसता, समाधान कर बाहर निकल आता है। संशय होने पर उसे याद आता है कि ऐसा नहीं बताया गया था, ऐसा नहीं सिखाया गया था। अतः इसे ग्रहण नहीं करना चाहिए।

यह हमारा घंटा ज्ञान प्रधान है। प्रातःकाल का कर्म प्रधान है और बीच वाला (क्रियात्मक योग) उपासना प्रधान है। आ गया समझ में या नहीं आया? अब विराम ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१ आत्मनिरीक्षण

परिभाषा एवं स्वरूप : आषाढ़ शु. १२-११/०७/०३

अब हम गायत्री मन्त्र और विश्वानि देव मन्त्र का पाठ करेंगे -

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु. ३६/३।

ओं विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परासुव। यद्भद्रं तन्न आसुव॥ यजु. ३०/३।

व्यक्ति अपने सम्बन्ध में अर्थात् आत्मा के सम्बन्ध में जो कुछ करता, देखता, सुनता और मानता है, उसे जानने को **'आत्मनिरीक्षण'** कहते हैं। इसमें दो विभाग हैं। प्रथम - जिसमें अपनी और दूसरों की उन्नति के कारण होते हैं। द्वितीय - जिसमें अपनी और दूसरों की अवनति के कारण होते हैं अर्थात् जिस ज्ञान, कर्म, उपासना से अपनी और अन्यों की उन्नति होती है, वह प्रथम भाग है। जिस ज्ञान, कर्म और उपासना से अपनी और अन्यों की अवनति होती है; वह आत्मनिरीक्षण का दूसरा भाग है। आवृत्ति करके देखिए, क्या समझ में आया ?

साधक २- जिस ज्ञान से अपना और अन्यों का जीवन बिगड़ता और सुधरता है। जिस कर्म से अपना और अन्यों का जीवन गिरता और उठता है, शुद्ध और अशुद्ध होता है। जिस उपासना से अपना और अन्यों का जीवन निम्न और उत्कृष्ट होता है, वह **'आत्मनिरीक्षण'** है।

स्वामी जी - हाँ ! आत्मनिरीक्षण से इन्हीं को जानने का प्रयत्न किया जाता है। उदाहरण के लिए ज्ञान के तीन क्षेत्र हैं ईश्वर, जीव और प्रकृति। हमने व्यक्तिगत रूप से इन्हें जानने का प्रयत्न किया। ईश्वर, जीव और प्रकृति के ठीक-ठीक रूप बताने वाली विद्या पढ़ी। इससे हमारा जीवन उन्नत हुआ, पुनः हमने दूसरों को भी यही पढ़ाया तो इससे उनका जीवन भी उन्नत हुआ। इसी प्रकार जो कार्य ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल थे, ऋषियों के आदेशानुसार थे; उनको किया। जिस विधि से योगाभ्यास करना चाहिए, उसी विधि से योगाभ्यास किया। ऐसा ही अन्यों से कराया। यह अपने और अन्यों के जीवन के उत्थान का कारण हुआ।

इसके विरुद्ध हमने ईश्वर, आत्मा, प्रकृति के विषय में विपरीत ज्ञान कर लिया और दूसरों को भी वैसा ही बताया - जैसे कि ईश्वर नहीं है, यह संसार स्वयं बनता और स्वयं विनष्ट हो जाता है, इसको बनाने वाले ईश्वर को मानने की कोई अपेक्षा नहीं है। यह ईश्वर को न मानने वालों के पक्ष में मिथ्या ज्ञान है। यह अपने और अन्यों के जीवन के पतन का कारण हुआ।

ईश्वर को मानने वालों में भी मिथ्या ज्ञान काम करता रहता है उसे आत्मनिरीक्षण के माध्यम से जानना चाहिए, जैसे कि ईश्वर एक स्थान में रहता है। समय-समय पर अवतार लेता है आदि। इस प्रकार का जानना और अन्यों को जनाना पतन का कारण हुआ।

कर्म के क्षेत्र में मिथ्या ज्ञान - जो ईश्वर के आदेश, ऋषियों के संविधान के अनुकूल कर्म न करके उसके विपरीत कर्म किए और कराए। इसी प्रकार अपनी उन्नति के लिए जितनी मात्रा में ज्ञान-कर्म-उपासना करनी आवश्यक थी उतनी की, वैसी की और अन्यों को करवायी अथवा न्यून की और करवायी, आंशिक की और करवायी, तब वैसे ही, उतने ही लाभ प्राप्त हुए। नितान्त न किया, न करवाया तो लाभमात्र से वंचित रहे आदि विषयों को आत्मनिरीक्षण के माध्यम से जानना चाहिए।

आत्मनिरीक्षण के द्वारा यह देखना चाहिए कि अपने और अन्यों के लिए जो शुद्ध ज्ञान-कर्म-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपासना के विषय में पढ़ा-सुना, उसकी आवृत्ति की या नहीं? पूर्व पढ़ा-सुना हुआ, निदिध्यासन किया हुआ आवृत्ति कर लेने पर ठीक हो जाता है, बिना आवृत्ति के उपस्थित नहीं रहता।

कर्त्तव्याकर्त्तव्य के विषय में आत्मनिरीक्षण के द्वारा यह देखना चाहिए कि हमारे करने योग्य और न करने योग्य ज्ञान-कर्म-उपासना की क्या स्थिति रही? हमें अपने लिए या अन्यों के लिए जितने ज्ञान करने थे उतने किए या नहीं? हमें अपने लिए या अन्यों के लिए जितने कर्म करने थे उतने किए या नहीं? हमें अपने लिए जितनी उपासना करनी थी उतनी की या नहीं? यदि ये तीनों कार्य नहीं किए, बच गए तो उनकी पूर्ति के लिए प्रयास किया अथवा नहीं?

इनमें जो पढ़ा-सुना उसकी आवृत्ति करके उचित-अनुचित का निर्णय करना चाहिए। पुनः निर्णय के लिए भी संशय उठाकर तर्क-प्रमाण से शंका-समाधान करना चाहिए। यदि स्वयं निदान नहीं कर पाए तो उस काल में स्थगित कर अन्य काल में गुरु, अध्यापक आदि से संशय की निवृत्ति करानी चाहिए। निर्णीत विषय में भी अन्य विद्वानों से सम्मति लेनी चाहिए आदि इसके सूक्ष्म-स्थूल अनेक क्षेत्र बन जाते हैं।

ऐसे ही अन्य अनेक विषय हैं जिन्हें आत्मनिरीक्षण के माध्यम से जानने का प्रयास करते रहना चाहिए जैसे कि देखा जाता है कि पढ़े हुए पाठ को जीवन में धारण करना चाहते हैं, आचरण में लाना चाहते हैं; परन्तु उसके विरोधी संस्कार, जो पूर्वतः संचित हैं, उसको उखाड़ फेंकते हैं। व्यवहार में आने नहीं देते हैं। ऐसा भी लगने लगता है कि विवेक-वैराग्य, समाधि क्या होती है? ऐसा कोई मनुष्य हुआ, जिसने ईश्वर का प्रत्यक्ष किया हो, आनन्द प्राप्त किया हो और अन्यों को कराया हो? इस प्रकार ये पूर्व के संस्कार अत्यन्त प्रबल होते हैं। उनका आक्रमण बहुत दूर तक होता है। ये संस्कार बीस-बीस, चालीस-चालीस वर्ष तक पढ़ी-पढ़ाई बातों को उखाड़ फेंकते हैं। इसीलिए कोई संन्यासी होकर भी पुनः गृहस्थ में चला जाता है।

विद्या के विरोधी संस्कार कैसे विद्या को छिन्न-भिन्न कर देते हैं? किस अवस्था में ईश्वर, समाधि आदि विषयों की व्यक्ति निन्दा करने लगता है? अन्य कोई इस विषय में उपदेश करने लगे तो उसे बोलने नहीं देता है। ऐसी स्थिति में वहाँ क्या करना चाहिए, आदि विषयों को आत्म-निरीक्षण के माध्यम से जानना चाहिए। अविद्या से उत्पन्न संस्कारों को आत्मनिरीक्षण से ही देखा जा सकता है। जैसे कि अविद्या- जनित संस्कार विद्या-जनित संस्कारों को दबा देते हैं। पचास वर्ष तक किए हुए अनुष्ठान, समाधि के अभ्यास, मोक्ष आदि की प्रवृत्ति को रोक देते हैं।

संस्कारों के उत्थान के विषय में दो विचार-धाराएँ चलती हैं - प्रथम, संस्कार स्वयं उद्बुद्ध होते हैं। द्वितीय, इन संस्कारों को जीवात्मा स्वयं उद्बुद्ध करता है। इस विषय में अपनी मान्यता को आत्मनिरीक्षण से देखना चाहिए। यद्यपि इन्हें प्रथम तो सिद्धान्त रूप में जानना कठिन होता है पुनः बहुत परिश्रम करने के उपरान्त, लम्बे काल के पश्चात् भी इन संस्कारों को दबाना, क्षीण करना, तनु करना आदि बहुत और भी कठिन होता है।

दूसरे पक्ष में, चेतन जीवात्मा स्वयं इन संस्कारों को उभारने तथा न उभारने, रोकने, दबाने, चोट मारने, नष्ट करने में समर्थ है, स्वतन्त्र है; इस दूसरी मान्यता को ग्रहण करने पर संस्कारों से लड़ने में, मनोनियन्त्रण में सरलता हो जाती है।

मन में संकल्प-विकल्प की क्रिया चलती रहती है। व्यक्ति थोड़ा भी असावधान हुआ कि विरोधी संस्कारों को उठा लेता है। अज्ञान उत्पन्न कर लेता है। अच्छे को बुरा और बुरे को अच्छा मानने लगता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि दर्शन योग महाविद्यालय में एक बार आत्मनिरीक्षण का नियम है, अपने शिविर में भी ऐसा ही करते हैं; किन्तु आत्मनिरीक्षण तो दिनभर सतत चलना चाहिए। यह जो संस्कारों की बात चल रही है, जब आप इस विधि से आत्मनिरीक्षण करेंगे तब समझ में आएगी।

सतत आत्मनिरीक्षण कैसे चलता है? उसमें क्या करते हैं? इसका उत्तर है कि जैसे ही यम-नियम आदि के विरुद्ध विचार उठाते हैं उन्हें तत्काल ही रोक देना चाहिए। इसके विपरीत पुनः अहिंसा आदि के अनुकूल बुद्धि बना लेते हैं। जब तक इतनी सूक्ष्मता से परीक्षण नहीं किया जाए और असावधानी बनी रही तो स्थिति बिगड़ने में कोई देर नहीं लगेगी। जैसे कि बीस वर्ष पूर्व देखे हुए किसी सुन्दर रूप की स्मृति उठा ली। अब यदि उसको ठीक मान लिया और तत्काल रोक नहीं लगाई तो कुसंस्कार साधक को अपने जैसा बना डालेगा। यद्यपि वर्षों तक वह प्रयत्न करता है या किया हुआ होता है, पुनरपि जैसे ही उभार दिखाई दिया और तत्काल रोक नहीं लगाई तो कुसंस्कार उसे पागल बना डालेगा। इसलिए ऐसा सोचकर तत्काल सांसारिक संस्कारों को रोक देना चाहिए।

'मैं ही संस्कारों को उठाता हूँ और कोई नहीं' केवल इतने ज्ञान मात्र से, बिना प्रबल संघर्ष, प्रयत्न और अभ्यास के व्यक्ति शीघ्र सफल नहीं हो सकता। मान लिया कि कोई किसी रूप को देख रहा हो, उसके प्रति आकर्षित हो रहा हो तो यह जानता हुआ भी कि मैं ही मन को प्रेरित कर रहा हूँ, स्वयं ही आकर्षित हो रहा हूँ, अब आकर्षित नहीं होऊँगा किन्तु बिना आकर्षित हुए रूप को देखूँगा; तो इस प्रकार भी उसका दिवाला निकल जाएगा। उसे तो तत्काल रूप के आलम्बन से विमुख होना चाहिए।

यहाँ शंका होती है कि द्रष्टा का ज्ञान तो शुद्ध है, पुनरपि असफल कैसे हो रहा है? तो उत्तर है कि वस्तुतः वह उसका ऊपर-ऊपर का ही शुद्ध ज्ञान है। अन्दर तो अशुद्ध ज्ञान से ही, विपरीत संस्कारों से ही दबा हुआ है, अन्यथा आकर्षण नहीं होना चाहिए था। दूसरा कारण है आज तक उलटा ही करता आया तथा केवल शब्द-प्रमाण से जानकर उतने ही को पर्याप्त मानता रहा अथवा शब्द-प्रमाण से तो विषय को अशुद्ध जान रहा है, परन्तु अन्दर से उसको शुद्ध ही मान रहा है। उसमें अनुभूति तो सुख की ही कर रहा है।

अन्य दृष्टान्त लीजिए, जैसे कि व्यक्ति जानता है कि अधिक नहीं खाना चाहिए। रात्रि में तो बिलकुल नहीं। पेट में दर्द होगा, ब्रह्मचर्य की हानि होगी आदि सब जानता है परन्तु पाकशाला में जाता है, भोजन करने बैठता है और स्वादिष्ट भोजन सामने आते ही अब उसकी एक भी नहीं चलती। यहाँ अन्दर मन में स्वादिष्ट भोजन के जो संस्कार हैं, इसके ऊपरी ज्ञान को उखाड़ फेंकते हैं और वह अधिक खा लेता है।

कोई बड़ा विद्वान् है। वह जानता है, पढ़ा है, पढ़ाया है, सुना है, सुनाया है कि सम्मान को विष के तुल्य और अपमान को अमृत के तुल्य समझना चाहिए, परन्तु जब अवसर आता है जैसे कि कोई अन्तर्राष्ट्रीय सम्मेलन हो रहा हो और वहाँ उसकी प्रशंसा हो रही हो तो व्यक्ति को अच्छा न लगे, स्वीकार न करे, यह बहुत कठिन है।

एक विषय समझ में आने पर दूसरा भी समझ में आता है। एक नहीं आया तो उस स्तर का दूसरा भी समझ में नहीं आएगा। इसके आधार पर जो स्थिति सम्मान के क्षेत्र में है वही स्थिति एषणा के विषय में भी समझनी चाहिए। जिसमें लोकैषणा रहती है उसमें वित्तैषणा (धन, भोग की एषणा) और पुत्रैषणा भी रहती है। इस विषय में महर्षि दयानन्द जी का प्रमाण भी देख लेना चाहिए। न्यून परीक्षा होने पर व्यक्ति को तीनों दिखाई नहीं देती हैं। अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१०

यज्ञीयोपदेश

कर्म : आषाढ़ शु. १४/२०६०-१२/७/०३

विशेष ध्यान देकर देखना चाहिए मन पर हमारा नियंत्रण कितना है अथवा आत्मा पर नियंत्रण कितना है? हम जब मन्त्र का प्रयोग करते हैं तो मन्त्र का पाठ और शब्दों का अर्थ तथा ईश्वर समर्पण कितना है और कितना-कितना वह भंग हो गया है?

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

हम सभी जिस लक्ष्य को पूरा करने के लिए योजनाबद्ध प्रयासशील हैं उसका एक भाग है कर्म। इसके विषय में यह जानना चाहिए कि प्रथम कर्म का स्वरूप क्या है, उसकी कौन-सी भिन्न-भिन्न अवस्थाएँ हैं, पुनः मन, वाणी और शरीर से जो करने योग्य हैं उनको करना और जो करने योग्य नहीं हैं उनको रोक देना। क्या समझ में आया आपको?

लिखने वाले इस बात पर ध्यान दें - जब किसी अन्य को पूछा जा रहा है तब तक वे अपना लिखने का कार्य करते रहें किन्तु जब उनसे सीधा कुछ पूछा जाए तो लिखना रोककर उत्तर देंगे। समझ में आया? तो अब कौन सुनाएगा? आप बोलो!

साधक ८- जिस योजना.....।

स्वामी जी - जिस लक्ष्य को लेकर हम योजनाबद्ध प्रयासशील हैं उसकी सिद्धि के लिए कर्म का अपना एक विशेष स्थान है। अतः कर्म के स्वरूप को जानना अनिवार्य है। कर्म के भिन्न-भिन्न स्तरों को जानना अनिवार्य है और जो न करने योग्य है उसको जानना तथा नहीं करना एवं जो करने योग्य है उसको जानना तथा करना आवश्यक है। व्यापक रूप में वैशेषिककार ने जो कर्म की परिभाषा की है, वह याद है तो आप सुनाएँगे -

साधक ५- याद नहीं है।

स्वामी जी - आप सुनाएँगे।

साधक ४- याद नहीं है, स्वामी जी!

स्वामी जी - आपको याद हो तो सुनाएँगे।

साधक ३- एकद्रव्यमगुणं संयोगविभागेष्वनपेक्षकारणमिति कर्मलक्षणम्॥ वैशे.द.१/१/१७।

स्वामी जी - यही है? याद नहीं है। आप ऐसे विशेष स्थलों को ध्यान से नहीं दोहराते, स्मरण नहीं करते तो वह त्रुटि मानी जाती है। अब याद कर लो। इसी सूत्र को दोहराओ।

साधक गण- एकद्रव्यम् अगुणम् संयोगविभागेषु अनपेक्षकारणम् इति कर्मलक्षणम्।

स्वामी जी - एकद्रव्यम् एक द्रव्य है आश्रय जिसका। **अगुणम्** जिसमें गुण नहीं रहते। गुण से भिन्न है, अन्य गुण नहीं रहते उसमे। **संयोगविभागेषु अनपेक्षकारणम्** संयोग विभाग में दूसरे की अपेक्षा किए बिना जो कारण बनता है, वह कर्म है। यहाँ व्यापक रूप से कर्म की परिभाषा कर दी गई। जितनी भी गतियाँ हैं, उनके विभाग किए गए हैं अर्थात् पाँच प्रकार के कर्म कहे हैं -

उत्क्षेपणमवक्षेपणमाकुञ्चनं प्रसारणं गमनमिति कर्माणि॥ वैशे.द.१/१/७।

उन सब की एक सम्मिलित परिभाषा कर दी। समझने की दृष्टि से इस रुमाल को हमने फेंका तो इसमें इसके आश्रय से कर्म कैसे रहा, आपमें से कौन बताएगा?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५– कर्म इस प्रकार से रुमाल के आश्रित है कि रुमाल के बिना हम कर्म नहीं कर सकते।

स्वामी जी – कौन-सा कर्म ?

साधक ५– यह जो एक स्थान से दूसरे स्थान तक रुमाल में गति हुई, यह कर्म है।

स्वामी जी – आप बता दो, ये क्या कहना चाह रहे हैं।

साधक ७– बिना रुमाल के हम प्रक्षेपण कर्म नहीं कर सकते।

स्वामी जी – अस्पष्ट रहा। आप बोलो !

साधक २– एक स्थान से दूसरे स्थान तक यह जो गति हुई है, यह गति बिना रुमाल के सम्भव नहीं थी।

स्वामी जी – एकद्रव्यम् यह जो गति हुई है एक स्थान से दूसरे स्थान तक जाना। यह गति बिना रुमाल के नहीं हो सकती थी। आ गया समझ में ? आगे **अगुणम्** वह गुण का आश्रय नहीं होता है। इस रुमाल में जो गति हुई है क्या यहाँ रूप नहीं है ? आप बताएँगे –

साधक ८– रूप तो रुमाल में है किन्तु जो गति हुई, उसमें कारण नहीं बनता।

स्वामी जी – बात कुछ बाहर चली गई। आप बोलो !

आचार्य नैष्ठिक जी – गति में रंग-रूप नहीं है।

स्वामी जी – अस्पष्ट रहा। गड़बड़ कर दी।

साधक २– प्रश्न एक बार पुनः रखा जाए।

साधक ३– कर्म जो है गुण का आधार नहीं बनता।

स्वामी जी – आ गया समझ में ?

साधक ५– वह जो कर्म है, वह रूप आदि गुणों का आधार नहीं बनता। उन दोनों का आधार रुमाल बनता है।

स्वामी जी – आ गया समझ में ? ठीक है। आगे **संयोगविभागेषु अनपेक्षकारणम्**। देखना, आपके मुँह में पानी न आ जाए ! यह जो रुमाल के साथ इस मिष्टान्न का संयोग हुआ पुनः विभाग हुआ। इस संयोग विभाग में कर्म अनपेक्ष कारण माना गया है। कैसे ? आप बताएँ –

साधक १– अर्थात् किसी दूसरे कारण की अपेक्षा न करता हुआ यह कर्म सीधा ही कारण हुआ।

स्वामी जी – हो गया ठीक। दूसरे किसी की अपेक्षा न करता हुआ संयोग और विभाग में कौन-सा कारण हुआ ? अनपेक्ष कारण।

अच्छा ! अब हम फल की दृष्टि से कर्म के विभाजन पर विचार करेंगे।

सम्पादक – यहाँ कर्म का विभाजन फल के आधार पर किया गया है। जिसका फल सुख होता है वे शुभ कर्म, जिनका फल दुःख होता है वे अशुभ कर्म और जिनका फल सुख-दुःख सम्मिलित होता है उन्हें मिश्र कर्म समझना चाहिए। चेष्टा विशेष का अर्थ है लक्ष्य को ध्यान में रखते हुए बुद्धिपूर्वक मन-वाणी और शरीर से प्रयत्न करना।

स्वामी जी – महर्षि दयानन्द सरस्वती जी द्वारा दिया गया जो कर्म का लक्षण है उसको कौन सुना सकता है आप में से ?

साधक ३– वहाँ महर्षि के भाव लगभग ऐसे है – जो जीवात्मा मन, वाणी, शरीर में चेष्टा विशेष करता है उसको कर्म कहते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – यही है लगभग ?

साधक ३ – लगभग यही है।

साधक ८ – वाणी की जगह इन्द्रिय पढ़ा है।

स्वामी जी – इन्द्रिय है या वाणी है ? इन्द्रिय होना चाहिए। इसलिए हम कहते हैं पुस्तक साथ रखा करो।

साधक ३ – यहाँ पर इन्द्रिय अधिक संगत है, वाणी तो उपलक्षण होगा। ठीक यही है कि मन, इन्द्रिय, शरीर में जो चेष्टा विशेष करता है।

स्वामी जी – इसलिए पुस्तक साथ रखने से कोई भी बात हो तो तत्काल निकाल कर देख लेते है और संदेह नहीं रहता है।

सम्पादक – कर्म – जो मन, इन्द्रिय और शरीर में जीव चेष्टा-विशेष करता है सो 'कर्म' कहाता है। वह शुभ, अशुभ और मिश्र भेद से तीन प्रकार का है। आर्यो.रत्न-५८।

स्वामी जी – अब आप बताएँगे, यह जो चेष्टा-विशेष लिखा है, उसका क्या अभिप्राय है ?

साधक ४ – चेष्टा विशेष उसको कहते हैं जिसका कोई परिणाम विशेष आए।

स्वामी जी – उदाहरण क्या बनेगा ?

साधक ४ – उदाहरण यह बनेगा कि जैसे हमने किसी को चोट पहुँचाई, तो उसमें पहले हाथ हिलाकर उसके शरीर का स्पर्श किया और उसको चोट पहुँचाई; इस क्रिया का चोट रूपी परिणाम विशेष आया है। दूसरी स्थिति में हमने केवल हवा में हाथ हिलाया; इसका कोई परिणाम विशेष नहीं आया।

स्वामी जी – कुछ समझ में आ गया ?

साधक ५ – हाँ जी !

स्वामी जी – अच्छा ! उन पर विचार करेंगे। अब हम मनुस्मृति, वात्स्यायन भाष्य में कर्म के जो विशेष लक्षण दिए हैं अर्थात् जिन विशेष कर्मों का फल मिलता है, वे कौन से हैं ?

साधक ३ – वाणी के चार माने गये हैं शरीर और मन के तीन-तीन।

स्वामी जी – कौन-कौन से हैं ?

साधक ३ – सत्य भाषण, मधुर, हितकारी और सार्थक ये वाणी के कर्म होंगे। शरीर के दान, रक्षा और सेवा हो गये। मन के दया, अस्पृहा और आस्तिकता। ये तीनों के शुभ कर्म होंगे।

स्वामी जी – यह जो लक्षण दिए हैं वात्स्यायन भाष्य में, न्याय दर्शन के कौन से सूत्र के भाष्य में हैं ? पुस्तक निकालकर उसका पता अंकित कर लो।

सम्पादक – **शरीरेण प्रवर्त्तमानो हिंसास्तेयप्रतिषिद्धमैथुनान्याचरति, वाचाऽनृतपरुषसूचनाऽसम्बद्धानि, मनसा परद्रोहं परद्रव्याभीप्सां नास्तिक्यं चेति, सेयं पापात्मिकाप्रवृत्तिरधर्माय।**

अथ शुभा - शरीरेण दानं परित्राणं परिचरणं चेति, वाचा सत्यं हितं प्रियं स्वाध्यायं चेति, मनसा दयामस्पहां श्रद्धां चेति, सेयं धर्माय। न्याय द. व्या. भा. १/१/२।

शरीर से व्यवहार करते हुए जो हिंसा, चोरी और व्यभिचार करना। वाणी से झूठ, कठोर, निन्दा-चुगली करना और अनर्गल बोलना। मन से दूसरों से वैर रखना, अन्यों के धन हड़प लेने की कामना और वेदों की निन्दा या ईश्वर का विरोध करना, ये पापाचरण हैं और अधर्म के लिए हैं।

शरीर से व्यवहार करते हुए दान, दुर्बलों की रक्षा और असमर्थों की सेवा करना। वाणी से

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्य, मधुर, हितकारी बोलना और वेदादि शास्त्रों का स्वाध्याय करना। मन से दूसरों के प्रति दया, अन्यों के धन की अनिच्छा और वेदादि शास्त्रों और ईश्वर तथा ऋषि आदि महापुरुषों पर श्रद्धा रखना पुण्याचरण और धर्म के लिए हैं।

स्वामी जी – पुनः मनुस्मृति में कौन-सा अध्याय है बारहवां या आठवां? उसको भी लिख लो।

सम्पादक – मनुस्मृति में सात्त्विक, राजसिक, तामसिक इन तीन प्राकृतिक स्वभाव वाली योनियों के अनुसार पाप-पुण्य दिलाने वाले तीन प्रकार के कर्मों का वर्णन है। किस-किस वर्ण को कौन-कौन से धर्म = कर्त्तव्य अर्थात् कर्म करने चाहिएँ और कौन-कौन से कर्म नहीं करने चाहिएँ, इसी का विशेष वर्णन है। अतः उसे धर्मशास्त्र कहते हैं।

स्वामी जी – अब कर्मों का स्तर भिन्न-भिन्न है। **कर्माशुक्लाकृष्णं योगिनस्त्रिविधमितरेषाम्**। यह कहाँ पर लिखा है?

साधक ३ – योग दर्शन के चतुर्थ पाद में है।

स्वामी जी – कौन-सा सूत्र है?

साधक ४ – सातवां सूत्र है।

स्वामी जी – अच्छा! इसमे कर्मों के विषय में क्या बताया?

साधक ३ – चार प्रकार के कर्मों की व्यवस्था बताई है शुभ कर्म, अशुभ कर्म, मिश्रित कर्म और निष्काम कर्म। तीन प्रकार के कर्म तो सांसारिक लोग करते हैं। योगी का कर्म निष्काम अर्थात् अशुक्ल, अकृष्ण होता है।

स्वामी जी – आप क्या समझे?

साधक ४ – चार प्रकार के कर्म इस सूत्र में बताए गए हैं। योगी के जो कर्म होते हैं अशुक्ल, अकृष्ण अर्थात् निष्काम कर्म होते है और अन्य व्यक्तियों के कर्म पाप, पुण्य व मिश्रित होते हैं।

स्वामी जी – निष्काम कर्म किसको कहते हैं। आप बताएँ?

साधक ६ – कामना रहित।

स्वामी जी – अच्छा! जिसकी कोई कामना न हो?

साधक ६ – नहीं, कर्त्तव्य पालन की दृष्टि से।

स्वामी जी – बात अभी पूरी नहीं आई। अब आप बोलें।

साधक ८ – जो कर्म केवल ईश्वर की प्राप्ति के लिए किए जाते हैं, लौकिक कामना के लिए नहीं।

स्वामी जी – तो क्या परिभाषा आई कि जो शुभ कर्म ईश्वर-प्राप्ति करने-कराने के लिए किए जाते हैं और लौकिक फल उनका उद्देश्य नहीं होता, वे हो गये निष्काम कर्म। अब आप आत्मनिरीक्षण करके बताना - आपको योगी बनाना है और अन्यों को बनाना है तो निष्काम कर्म दिन में कितना करते हैं या करते ही नहीं? हाँ जी बोलिए -

साधक १ – एक बात थोड़ी समझना चाहता हूँ कि ये जो निष्काम कर्म हैं ये केवल मानसिक कर्म माने जाएँगे अथवा वाचनिक और शारीरिक भी माने जाएँगे?

स्वामी जी – कौन-से?

साधक १ – निष्काम कर्म केवल मानसिक माने जाएँगे?

स्वामी जी – नहीं। तीनों प्रकार के निष्काम कर्म होते हैं।

साधक १ – योग-दर्शन में तो **मनसि आयतत्वात्** (यो.द.व्या.भा.४/७) ऐसा लिखा है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – नहीं। जहाँ तक कर्म का क्षेत्र है, परिभाषा में वह सब आ जाएगा।

साधक १ – वहाँ क्या संगति लगाएँगे ?

स्वामी जी – वहाँ की संगति उसको पढ़कर लगा लेना। अब हम ऋषि की एक बात कह रहे हैं – महर्षि दयानन्द सरस्वती जी यह मानते, लिखते, कहते हैं कि 'जो कर्म' अर्थात् जो कर्म का अभिप्राय है मानसिक, वाचनिक या शारीरिक कोई भी कर्म, जो ईश्वर प्राप्ति करने-कराने के लक्ष्य को लेकर किये जाते हैं और उनके पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, कीर्ति, पुनर्जन्म, स्वर्ग आदि कोई भी लौकिक उद्देश्य नहीं होते हैं, वे निष्काम कर्म हैं। किन्तु अभी इसमें समय नहीं लगाया जाए, पहले योगदर्शन की व्याख्या देख लेंगे, कालान्तर में उसके ऊपर और विचार कर लेंगे।

साधक १ – और मिश्रित कर्म भी निष्काम कर्म हो सकते हैं ?

स्वामी जी – हाँ ! मिश्रित कर्म भी निष्काम कर्म हो सकते हैं, क्यों नहीं ? यहाँ मिश्रित कर्म के दो अर्थ करेंगे। एक अर्थ आपने जो लिया शुभ-अशुभ मिले हुए। अब दूसरा अर्थ लेंगे सकाम-निष्काम मिले हुए अर्थात् सकाम करते हुए निष्काम भी साथ मिलकर हो गया अथवा निष्काम करते हुए सकाम भी साथ मिलकर हो गया। समझ में आया ?

साधक ३ – ऐसा पढ़ने में आया है कि निष्काम कर्म केवल शुभ ही होते हैं उसमें अशुभ का लेश भी नहीं होता है।

स्वामी जी – नहीं। निष्काम कर्म तो शुभ ही होते हैं इसमें कोई आपत्ति नहीं है किन्तु निष्काम कर्म करते समय जो अज्ञानता से अशुभ कर्म हो जाएगा, उसका क्या होगा ?

साधक ३ – वह मुक्ति के मार्ग में बाधक बनेगा।

स्वामी जी – हाँ ! वह मुक्ति के मार्ग में बाधक बनेगा परन्तु वैसा नहीं कि वह मुक्ति को रोक पाएगा। क्योंकि अशुभ कर्म सर्वथा नहीं रुकेगा और उसका फल यहीं संसार में मिलना है। (अतः अज्ञानता से अशुभ कर्म रुकेंगे नहीं और जब उसका फल यहीं भोगता रहेगा तब मुक्ति में कब जाएगा ?) देखो ! जीवात्मा सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् नहीं है, इस स्थिति में जानते हुए भी उसको अनेक पाप कर्म करने पड़ते हैं। जानते हुए भी उसमें रोकने की सामर्थ्य नहीं है, ऐसा है या नहीं ? चाहे कितना भी बल लगा ले, पहले तो सारे शुभ-अशुभ को जान नहीं सकता और जान भी ले तो पूरे अशुभ से सर्वथा रहित होवे, यह उसके वश का नहीं है। इसलिए सारे कर्म अशुभ नहीं होंगे और जो होंगे उनका फल संचित होता जाएगा और मुक्ति से आने के पश्चात् उसको भोग लेगा।

साधक ५ – निष्काम भावना से अज्ञानता से जो बुरे कर्म हो जाएँगे उनका फल क्या होगा ?

स्वामी जी – उनका फल दुःख ही होगा। अच्छा ! आपको यहाँ ध्यान देना होगा कि निष्काम कर्म हो, अज्ञानता से हो, बुराई भी हो और बुद्धिपूर्वक हो, इन सब की संगति कैसे लगेगी ?

साधक ५ – अज्ञानता की बात आई थी अभी।

स्वामी जी – जब अज्ञान जुड़ेगा तब निष्कामता कैसे जुड़ेगी ?

साधक ५ – इस प्रकार की बात आई थी।

स्वामी जी – इस प्रकार की बात नहीं, अपनी पूरी बात कहो और पुनः उसकी व्याख्या करो।

सम्पादक – यह बुरा है, ऐसा जानता हुआ उस कर्म को नहीं करेगा, किन्तु अज्ञानता से बुराई

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को भी शुभकर्म समझकर बुद्धिपूर्वक कर सकता है। जैसे भिखारी वेश में चोर आदि को दान देना आदि कर्म प्रायः होते रहते हैं।

साधक २– अच्छा! ये जो विवाह आदि शुभ कर्म हैं, क्या ये सब भी निष्काम कर्म हो सकते हैं?

स्वामी जी – हाँ! विवाह के विषय में दो बातें हैं - एक होता है निष्काम कर्म ऊँचे स्तर पर करना, वह तो यह नहीं है। इसको निम्नस्तर का निष्काम कर्म कह सकते हैं। क्योंकि यह विवाह संस्कार इसलिए करवा रहा है कि उसे पुत्र चाहिए। यद्यपि इसका लक्ष्य पुत्र उत्पत्ति मुख्य हो गया पुनरपि इसके साथ गौण रूप में ईश्वर-प्राप्ति जुड़ा हुआ है। इसकी भावना है कि अभी मैं सीधा ब्रह्मचर्य रखते हुए ईश्वर को तो नहीं पा रहा किन्तु आगे चल कर इस गार्हस्थ्य कर्म को करता हुआ ईश्वर की प्राप्ति करूँगा। इस प्रकार से ईश्वर-प्राप्ति लक्ष्य पूर्व से ही गौण रूप में बनाया जाता है तो इसे निष्कामता में लिया जा सकता है।

साधक २– प्रश्न है कि विवाह कर्म निष्काम कर्म में आ सकता है?

स्वामी जी – नहीं आयेगा पूरी तरह से। उसका मुख्य फल पुत्र की उत्पत्ति है। हाँ! जी।

आचार्य नैष्ठिक जी – पुत्रोत्पत्ति भी निष्काम कर्म में आ सकता है।

स्वामी जी – पुत्रोत्पत्ति निष्काम कर्म में पूरी तरह से नहीं आएगा।

साधक २– या तो पूरी रखेंगे या नहीं रखेंगे।

स्वामी जी – नहीं रखने में यह बात है कि जिसका जितना अंश किसी में रहता है उतना उसका मानना पड़ेगा। कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो सकाम होते हुए भी उसके आगे-पीछे निष्काम जुड़ा हुआ रहता है। इसलिए उसको हम नहीं हटा पाएँगे। यहाँ भी वह कहता है कि ब्रह्मचर्य से ही सीधा विवेक-वैराग्यवान् होकर मैं समाधि को प्राप्त नहीं कर पा रहा हूँ। मैं अभी तृष्णा से ऊपर नहीं उठा हूँ। मेरे अन्दर भोग की, पुत्र की, सम्मान की कामना विद्यमान है। अतः एक सीमा में इनकी पूर्ति करता हुआ श्रीकृष्ण आदि महापुरूषों के समान उपासना करता हुआ, पाँच महायज्ञों को करता हुआ योगी बनना चाहता हूँ। इसमें इतनी निष्कामता लक्ष्य रूप में जुड़ी है। चलो! पहले आप अपना देखो, उसको पकड़ो। मुख्य बात यह है कि क्या आप दिन में मन-वाणी-शरीर से जो कर्म करते हैं, वह पूरा निष्काम होता है या नहीं होता है? करते हैं तो कितना करते हैं, इसको देखो।

साधक २– निष्कामता ही स्पष्ट नहीं हो रही, ऐसी स्थिति में कर्मों को कैसे जाँचेंगे? जब तक स्पष्टता नहीं होगी तब तक निष्काम कर्मों को कैसे जानेंगे?

स्वामी जी – अच्छा! यह कहो कि निष्कामता समझ में नहीं आई। भाषा ऐसी बोलनी चाहिए थी। क्या समझ में आया? यह उलाहने की भाषा, खण्डनात्मक भाषा का रूप बनती है, इसको रोकना पड़ेगा।

हमने जो महर्षि दयानन्द जी का यह वाक्य लिया कि जिन शुभ कर्मों का लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति करना-करवाना ही हो और कोई लौकिक फल न हो, वह निष्काम कर्म होता है। इसको मानसिक स्तर पर आप अनुभव कर सकते हैं। मन में निश्चय कर सकते हैं - जिसमें ईश्वर की प्राप्ति करना-करवाना हो तथा अन्य लौकिक फलों को छोड़ दिया गया हो तो वह निष्काम कर्म होगा और यदि ईश्वर-प्राप्ति लक्ष्य नहीं हो, केवल भोगों की प्राप्ति, पुत्र की प्राप्ति, सम्मान की प्राप्ति, धन की प्राप्ति आदि लक्ष्य हों अर्थात् जितने भी लौकिक स्तर के कर्म हैं, सभी सकाम रहेंगे। ये ही

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर-प्राप्ति लक्ष्य से जुड़ जाने पर निष्काम कर्म बन जाएँगे। सकाम है या निष्काम है, यह कर्म के एक होने पर भी लक्ष्य के ऊपर निर्धारित होगा।

अब अपना ले लो। आप पाठ पढ़ाते हैं दर्शन का, व्याकरण का और उसका लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति करना-कराना चल रहा है तो वह आपका निष्काम कर्म हो गया। यदि इसी का लक्ष्य धन-सम्मान आदि की प्राप्ति हो गया तो यही सकाम कर्म हो जाएगा। ऐसे विभाजन होगा। अब तो बहुत स्पष्ट हो गया होगा।

अब देखना है कि आप दिन में निष्काम कर्म करते हैं या सकाम कर्म करते हैं। यदि निष्काम कर्म करते हैं तो कितना करते हैं, यह आपने आत्मनिरीक्षण से पता लगाना है। समझ में आया? और देखो! मैं आपको कुछ सिखाता हूँ, पढ़ाता हूँ, योग प्रशिक्षण देता हूँ तो मैं यह देखूँगा कि इनके पीछे मेरा लक्ष्य ईश्वर प्राप्ति करना-कराना है या यश, धन, भोग आदि की प्राप्ति? मैं यह आत्मनिरीक्षण करूँगा। कर्म के क्षेत्र में हम लक्षण और परिभाषा से चले थे और यहाँ पहुँचे कि हमको योगी बनना है तो निष्काम कर्म करना ही चाहिए, निष्काम कर्म करना अनिवार्य होगा। बिना निष्काम कर्म किए कोई भी व्यक्ति योगी नहीं बन सकता, ईश्वर का साक्षात्कार नहीं कर सकता, न करा सकता है। अब समय के अनुरूप विराम ॥

११ क्रियात्मक योगाभ्यास

आत्मा-मन-इन्द्रिय-निर्माण : आषाढ़ शु. १४-१२/७/०३

आत्मा, मन और इन्द्रियों को उपासना के योग्य बनाने के लिए क्या-क्या प्रयत्न करने चाहिएँ, क्या-क्या उसकी गतिविधियाँ हैं? क्या आपने कोई एक प्रयोग करके देखा है कि हम अपने मन को उस स्थिति में ले जाते हैं, जहाँ हमारा ज्ञान, बल, इच्छा, प्रयत्न अपने अधिकार में हो जाते हैं। उस स्थिति को सम्पादित कर लेने पर हम जिस प्रयोजन को सिद्ध करना चाहते हैं; वह सिद्ध हो जाता है, जहाँ चाहते हैं वहाँ अधिकारपूर्वक मन को लगा लेते हैं।

इस समय आप अपनी स्थिति का अध्ययन करते हुए अच्छी प्रकार से देखें कि हम अपने ज्ञान, मन, अन्तःकरण, बुद्धि, अहंकार आदि को नियन्त्रित करके वह स्थिति बना लेते हैं, जहाँ यह अनुभूति होने लगे कि हाँ! अब मैं ज्ञानपूर्वक अपने मन, इन्द्रिय, इच्छा, प्रयत्न को वश में करके देख रहा हूँ? जिस विषय में उनको लगाना चाहता हूँ लगा लेता हूँ, जहाँ से हटाना चाहता हूँ हटा लेता हूँ, रोकना चाहता हूँ रोक लेता हूँ।

अब आप प्रयोग करेंगे। यहाँ ध्यान रखेंगे -

१. किस प्रकार से यह विधि सम्पादित कर रहा हूँ?
२. क्या-क्या बाधाएँ आ रही हैं?
३. बाधाओं को रोकने के लिए मेरे पास कौन-कौन से उपाय विद्यमान हैं?
४. स्वयं को ही कैसे बाधक बना रहे हैं?
५. अब शान्त होकर स्थिर हो जाइए। अब कोई भी विषय उपस्थित नहीं करना है, न ईश्वर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ही विषय रहेगा, न उसके साक्षात्कार का चिन्तन करना है। न जीवात्मा विषय रहेगा, न प्रकृति और न कोई सांसारिक पदार्थ। केवल मन को निर्विषय बनाकर देखना है।

प्रयोग आरम्भ .....समय लगभग पाँच मिनट।

अब आप बताएँगे, आपकी क्या स्थिति रही?

साधक १— कुछ सूक्ष्म शब्दों का उच्चारण किया, परन्तु वे शब्द कौन-से थे स्मरण नहीं है।

साधक २— प्रयत्न कर रहा हूँ, ऐसा लग रहा था।

साधक ३— विषय कोई नहीं था।

साधक ४— द्रष्टा दृशिमात्रः इस सूत्र का स्मरण किया। साक्षीभाव की भावना की।

साधक ५— तीन-चार बार मक्खियाँ उड़ाई, गर्मी का ध्यान आया, टेप के विषय में ध्यान गया, पुनः रोक दिया।

स्वामी जी— आपको बोलने का ध्यान रखना है। जैसा बोलना चाहिए वैसा आपको आता नहीं है। इसलिए उसको सीख लो। यदि आपको यह पता नहीं है कि अक्षर, शब्द, वाक्य कैसे बोलें, तो हम बता देंगे कि ऐसे बोलो। यह बात ठीक नहीं है कि बताने वाला प्रतिदिन एक ही बात बताता रहे और आप सुनकर भी वहीं के वहीं खड़े रहें। होना यह चाहिए कि एक बार बता देने पर व्यक्ति समझ ले और उसको आचरण में लाने का प्रयत्न कर दे तथा अगली बात सुनने के लिए तत्पर हो जाए। यदि ऐसा न किया जाए तो व्यक्ति दोषयुक्त रहता है तथा बताने वाला भी उसके विषय में अन्यथा सोचने लगता है। बताने वाले के ऊपर दुष्प्रभाव पड़ता है कि यह व्यक्ति आलसी-प्रमादी है, हमारी बात पर ध्यान नहीं देता है। ध्यान रखें, यह जो विशुद्ध रूप में बोलना है, यह महत्वपूर्ण है, न कि जैसा मन में आए वैसा बोल दो। आप के मन में यह बात बैठ गई है कि कैसे भी बोल दो कोई अन्तर नहीं पड़ता, तो इसे हटा दो। हाँ! तो अब आप बताएँगे, प्रयोग करते समय क्या समझ में आया?

साधक ८— बाहर की ध्वनि आ रही थी।

स्वामी जी— तो उसको रोक देना था। रोक देने से स्थिति बन जाती। एक पक्ष में तो उस ओर ध्यान ही नहीं देना था। दूसरे पक्ष में यदि ध्यान दिया तो उसको रोक देना था। ध्यान को वहाँ न लगने देना; वहाँ यह प्रयास करना होता है।

साधक ८— या उपेक्षा कर देनी चाहिए।

स्वामी जी— उपेक्षा तो यह होगी कि ध्यान नहीं देना और बलपूर्वक रोक देना; यह भिन्न स्थिति है।

अच्छा! क्या आपको कभी यह अनुभूति हुई कि ऐसी स्थिति का सम्पादन किया जा सकता है जिसमें ईश्वर, जीव, प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थों में से किसी को भी विषय न बनाएँ, सब ओर से मन को रोक लें। ऐसा तब सम्भव होता है जब ईश्वर के सम्बन्ध में हमको बहुत कुछ ज्ञान हो चुका है। जीवात्मा के सम्बन्ध में हमको बहुत कुछ ज्ञान हो चुका है। प्रकृति से बने बहुत से पदार्थों का परिज्ञान हमको हो चुका है। यह पृथक् बात है कि पूरा न हुआ हो। इन मूल विषयों के ज्ञान होने के कारण हम इस स्थिति में पहुँचे कि ये जो इच्छा-प्रयत्न गुण हैं, ये जीवात्मा के गुण हैं। इससे प्रयोग करने में हम उलझते नहीं, झंझट भी नहीं दिखाई देता। क्या समझ में आया?

साधक ३— सरलता तो हुई है।

स्वामी जी— यह सरलता क्यों हुई? ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव को हमने समझा है। प्रकृति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और उससे बने पदार्थों को हमने समझा है। हम जीवात्मा के ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा को इस रूप में समझ पाए कि यहीं से सारा उद्भव होता है अर्थात् यहीं से सभी इच्छाएँ, क्रियाएँ उत्पन्न होती तथा आगे बढ़ती हैं, इससे हमको सरलता हो गई। जिन व्यक्तियों को ईश्वर से सम्बद्ध, प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थों से सम्बद्ध तथा इन्द्रिय, शरीर आदि से सम्बद्ध ज्ञान न हो तो वे इसका सम्पादन नहीं कर सकते।

साधक १ – क्या इन विषयों को धारणा स्थल में रोकते हैं या अन्यत्र भी?

स्वामी जी – इसमें ऐसा होता है कि यदि धारणा स्थल में रोकते हैं तो अधिक सुविधा रहती है। किसी को बिना धारणा स्थल के विषयमात्र में ही रोकने में सुविधा रहती है। स्थल कोई भी हो, वहीं पर इसको रोका जा सकता है। विषय के अनुरूप भी धारणा स्थल को बदल सकते है, जैसे कि पहले हृदय में धारणा थी, अब मस्तिष्क में बना ली। आप कोई भी केन्द्र बना सकते हैं। मुख्य बात है केन्द्र न बनाने में हमेशा कठिनाई होती है।

इसलिए धारणा का स्थान ऐच्छिक है, अपनी रुचि के अनुसार कहीं भी बना सकते हैं। जहाँ जिसका अच्छा अभ्यास हो, वहीं सरलता रहती है। उच्च वैराग्य होने पर अथवा असम्प्रज्ञात-समाधि की सिद्धि हो जाने पर, जब ईश्वर की अनुभूति होने लगेगी तो न चाहने पर भी अन्यत्र की हुई धारणा हृदय प्रदेश में ही आ जाएगी।

साधक १ – धारणा का अभ्यास हृदय में करना चाहिए या अन्यत्र?

स्वामी जी – जैसा मेरा अनुभव है अपनी रुचि के अनुसार जहाँ बन सके वहाँ धारणा बना लें। एक बार कहीं अच्छी स्थिति बन जाने पर पश्चात् अन्यत्र जहाँ इच्छा हो वहाँ धारणा का अभ्यास किया जा सकता है।

साधक १ – हृदय में तो स्वतः धारणा बन जाती है?

स्वामी जी – स्वतः प्रभाव होना एक पृथक् बात है परन्तु ऐच्छिक स्थान में धारणा बना लेना पृथक् बात है। इसके लिए तो विशेष अभ्यास करना पड़ता है। जो स्वाभाविक प्रभाव होता है उसमें तो स्थिर करने के लिए स्वतः व्यक्ति तैयार हो जाता है। जैसे आपका मस्तिष्क में अभ्यास हो गया। आप मानते हैं कि आत्मा का यह केन्द्र है। मान लिया अब आपको बहुत ऊँचा विवेक हो गया और आपकी असम्प्रज्ञात समाधि सिद्ध होने लगी। अब आप सोचने लगे कि मैं ईश्वर का साक्षात्कार करूँ और मस्तक में ही करूँ तो क्या होगा? इस अवस्था में धारणा का स्थल बिना प्रयत्न किए नीचे की ओर आ जाएगा। जब कि अन्य काल में यहाँ लाने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा और पूर्व स्थल से हटाने के लिए भी प्रयत्न करना पड़ेगा, वैसे योग्यता के आधार पर स्वतः भी ऐसा होगा।

अब हम इस प्रसंग में विचार करेंगे कि निर्विषयता के सम्पादन में आपको सफलता क्यों मिली, इस हेतु को स्मरण किया आपने?

साधक ३ – ईश्वर की सहायता मिलने से.....।

स्वामी जी – ईश्वर की सहायता तो सफलता का एक भाग हो गया। इसमें ईश्वर- विषयक ज्ञान आपने पढ़ा-लिखा और सीखा है। इसके साथ-साथ आत्मा से सम्बद्ध ज्ञान आपने पढ़ा-सुना, सीखा और पढ़ाया है। प्रकृति-प्राकृतिक पदार्थों का ज्ञान आपने किया है। यदि ये ज्ञान-विज्ञान इस रूप में न हों तो आप ऐसे अधिकार कर पाएँगे, यह बहुत कठिन है। उदाहरण के लिए - एक व्यक्ति ने यह मान लिया कि मैं ही ब्रह्म हूँ। अब वह इस स्थिति का सम्पादन करने लगे तो नहीं कर पाएगा। जीवात्मा के विषय में जो व्यक्ति ऐसा मानता है कि भौतिक पदार्थों का विकास

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होते-होते चेतन-तत्त्व उत्पन्न हो जाता है; वह भी सफल नहीं हो पाएगा। जो मन के विषय में यह मानता है कि मन एक चेतन पदार्थ है; वह भी सफल नहीं हो पाएगा।

अब आपको पता चल गया कि इस स्थिति के सम्पादन में उपकरण-साधन क्या बने रहे? एक तो ज्ञान बना रहा। दूसरा भाग है - वैराग्य उपस्थित रहा। जितना-जितना कम वैराग्य होगा उतनी-उतनी कम सफलता मिलेगी। आ गया समझ में, अब हम आगे बढ़ेंगे। तीसरा उपकरण है - प्रयत्न-अभ्यास। **स तु दीर्घकालनैरन्तर्यसत्कारासेवितो दृढ़भूमिः**। यो.द.१/१४। वह प्रयत्न लम्बे काल तक लगातार करेंगे तब सरलता होगी। सत्कार के जो चार अर्थ हैं उनको याद करो।

साधक ३ – तप, ब्रह्मचर्य, विद्या और श्रद्धा।

स्वामी जी – व्यक्ति के मन में जब उत्साह होता है और जब वह पुरुषार्थ करता है तब उसमें रुचि, श्रद्धा उत्पन्न होती है। एक विशेषण है विद्यापूर्वक अर्थात् मन एक जड़-पदार्थ है। मैं चेतन पदार्थ हूँ, मैं इसको चलाता हूँ। ऐसे विद्यापूर्वक अभ्यास करेंगे तो सफलता मिलेगी। ऐसे ही तप पूर्वक अभ्यास करेंगे तब सफलता मिलेगी। विद्यापूर्वक, श्रद्धापूर्वक, तपपूर्वक और ब्रह्मचर्यपूर्वक। इन चार बातों को लेकर जब प्रयत्न किया जाता है तब वह दृढ़ भूमि वाला होता है अर्थात् बाधक कारण उसको उखाड़ नहीं पाता है।

इस स्थिति के सम्पादन काल में किन्हीं अन्य भिन्न-भिन्न विषयों को जानने की जो इच्छा होती है, वह नहीं रहनी चाहिए। जब जानने की इच्छा नहीं रहेंगी, तब इसमें सरलता हो जाएगी। यदि अन्य भिन्न-भिन्न विषयों के ज्ञान की इच्छा बनी रहती है तो यह स्थिति बाधक रहेगी। इसी विषय में एक और बात, यदि इन विषयों में संशय रहा तो भी कठिनाई होती रहेगी। आगे बढ़ूँ या कुछ लिख रहे हो अभी।

साधक १ – ज्ञान तो बाधक नहीं होता है।

स्वामी जी – मेरा अभिप्राय है जिस विषय में इतना ज्ञान हो गया कि उससे हम समाधि की ओर प्रवृत्त हो सकते हैं, तो और अधिक उसी विषय में या अन्य नवीन विषय में जानने का प्रयत्न करना तथा समाधि के लिए प्रयास न करना; यह बाधक स्थिति है। जैसे कि ईश्वर ऐसा है हमको इतना ज्ञान हो गया और हम इतना ठीक से समझ गये। अब हमको संतोष है कि ईश्वर ऐसा है, तो आगे हमें समाधि के लिए प्रयत्न आरम्भ कर देना चाहिए, न कि आगे से आगे केवल सामान्य रूप से जानने के लिए तीव्र इच्छा करने लगें। ऐसे ही जीवात्मा के विषय में ऐसी दृढ़ स्थिति उत्पन्न कर ली कि जीवात्मा सत् है, चित् है, इच्छा, प्रयत्न गुण वाला है। इतना मोटा-मोटा ज्ञान हमको हो गया। अब कल्पना कीजिए, यदि हम इच्छा करेंगे और क्या-क्या गुण हैं; तब स्थिति का सम्पादन नहीं होगा। यहाँ ज्ञान भी हमारे सामने एक ऐसा कारण बन जाएगा, जो स्थिति को नहीं बनने देगा। यदि हम इतना जानकर कुछ कर सकें, तो सन्तोष जनक स्थिति बनी रहेगी। इस प्रकार कोई अन्य इच्छा हो गई तो वह बाधक हो जाएगी।

दूसरी बात, इसी के साथ अन्य बाधक कारण - हमको भिन्न-भिन्न लौकिक उत्तम पदार्थों की इच्छा यदि है तो यह बाधक है। जो पदार्थ हमको चाहिएँ, जो हमारे अभीष्ट को सिद्ध करेंगे, ऐसे अनेक पदार्थ हैं संसार में, उन सबको हम प्राप्त करने के इच्छुक होंगे तो बाधा खड़ी होगी। आपने यह जान लिया कि ये तीन पदार्थ हैं - ईश्वर, जीव और प्रकृति। इन प्राकृतिक पदार्थों में परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख और गुण-वृत्ति-विरोध दुःख होने से ये हमारे लिए प्राप्य नहीं है। क्या समझ में आया?

आचार्य नैष्ठिक जी – परिणाम दुःख, ताप दुःख आदि सभी सुखों में हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – इसलिए प्राकृतिक सुख और सुख के साधन हमारे लिए प्रापणीय नहीं हैं। यदि प्रापणीय बने रहे तो स्थिति नहीं बन पायेगी। इनकी इच्छा बनी रहेगी तो सम्पादन में बाधा खड़ी होगी।

साधक १ – अर्थात् आत्मा, मन पर नियंत्रण की सिद्धि हेतु विषयों के उचित ज्ञान के साथ-साथ इनमें दुःख देखते हुए इनसे वैराग्य भी अनिवार्य है।

स्वामी जी – हाँ ! इसमें यह स्थिति है कि जितना अच्छा आपका ज्ञान होगा उतना ही अच्छा इस मनोनियन्त्रण आदि का सम्पादन कर पाएँगे। नहीं तो आपको इसके सम्पादन में उतनी ही अधिक कठिनाई होगी। जैसे कि एक व्यक्ति जितना विरक्त होगा उसको उतनी कठिनाई नहीं होगी। उसके सामने तत्काल किसी विषय की इच्छा कर लेना या देर तक चलाते जाना आदि बाधाएँ नहीं रहती हैं। अर्थात् इन तीन विषयों में ज्ञान जितना दुर्बल रहेगा, परिणाम आदि दुःखों के निरोध में ज्ञान-विज्ञान जितना कम रहेगा, उतनी-उतनी बाधा सामने रहेगी।

अब हम निर्विषयता का अभ्यास करेंगे।

साधक ६ – क्या यहाँ पर ईश्वर आनन्द स्वरूप है आदि का जप किया जा सकता है ?

स्वामी जी – नहीं ! यहाँ पर ईश्वर को विषय नहीं बनाना है। यद्यपि यह प्रसंग से थोड़ी बाहर की बात लग रही है किन्तु ऐसा नहीं हैं, केवल समझने की बात है। यहाँ पर हम ईश्वर को छोड़ नहीं रहे हैं, ईश्वर आनन्द स्वरूप है, रहे। उसको प्राप्त करो, इसका निषेध नहीं है। इस प्रयोगमात्र में ईश्वर केन्द्र बिन्दु नहीं है। उसको हम छेड़ नहीं रहे हैं। ईश्वर को हमें अभी विषय नहीं बनाना है, इतना प्रयोजन है।

साधक १ – क्या निर्विषयता की स्थिति बन जाने के पश्चात् अभ्यास को रोका जा सकता है ?

स्वामी जी – इसमें एक व्यक्ति की स्थिति ऐसी है कि उसको वैराग्य हो गया, अच्छी स्थिति भी बन गई, परन्तु अभी तक संस्कार दग्धबीजभाव को प्राप्त नहीं हुए हैं। तो ये संस्कार उसके ऊपर प्रभाव डालेंगे। उतनी ही बाधा होगी। आप उतने वैराग्यवान् नहीं हैं और इस स्थिति को सम्पादित करना चाहते हैं तो आपको बहुत परिश्रम करना पड़ेगा। इसके सम्पादन के लिए या तो अनुभव आधारित ज्ञान हो या शब्द-प्रमाण को लेकर यहाँ पर खड़े होते हैं।

क्यों जी जीवानन्द जी ! बुढ़ापा तो नहीं आ गया ?

सुनो ! या तो अनुभव हुआ हो हमको वैराग्य के क्षेत्र में, तब स्थिति बना सकेंगे; अन्यथा अनुभव इतना नहीं है, थोड़ा वैराग्य है, सामान्य वैराग्य है और शब्द प्रमाण के बल पर हम इस स्थिति का सम्पादन करना चाहते हैं, तब अधिक पुरुषार्थ करना पड़ेगा। जैसा कि दर्शनकार ने कहा - **वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्**। यो.द.२/३३। ऐसा करना पड़ेगा। इस निर्विषयता की स्थिति के सम्पादन का लक्ष्य, उद्देश्य, प्रयोजन समझ में आ गया होगा।

दूसरी स्थिति में, योग से सम्बद्ध किसी एक विषय में अधिकार करना। एक विषय जैसे- ओ३म् सच्चिदानन्द! ओ३म् सच्चिदानन्द! ओ३म् सच्चिदानन्द! और साथ-साथ अर्थ करो या रुक रुक कर अर्थ करो। रुक करके अर्थ करना जैसे कि ओं सच्चिदानन्द! हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सत् चित् आनन्द स्वरूप हैं। यह पहली पद्धति है ध्यान की, जप की।

साधक ३ – एक विषय में स्थिर करने वाली स्थिति ऊँची होनी चाहिए ?

स्वामी जी – अभी आपकी बात स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आई।

साधक ३ – क्या एक विषय में मन को लगाए रखना, निर्विषयता वाली स्थिति से निम्न स्थिति है ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ ! निर्विषयता से यह नीचे वाली स्थिति है। दोनों में बहुत अन्तर है। एक विषय को बनाए रखना सरल है और नितान्त रोक देना कठिन है। एक विषय को बनाए रखने वाला स्तर निम्न है और सर्वथा रोक देने वाला स्तर ऊँचा है। आ गया समझ में ?

साधक ३– ऐसा लगता है नितान्त रोक देने की अपेक्षा एक विषय को बनाए रखने वाला स्तर कठिन तथा ऊँचा है।

स्वामी जी – इसलिए मैंने पहले ही बताया था कि हमारे अनेक ऐसे अनुभव होंगे जो आपको विपरीत दिखाई देंगे। इसी बात को स्पष्ट करने के लिए यह कहा जा रहा है। मेरी दृष्टि में यह वही दृष्टान्त है जो मैंने पहले आरम्भ में बतलाया था कि ऊँचे स्तर पर योग प्रशिक्षण दिया जा रहा हो तो प्रशिक्षक के बहुत ऊँचे अनुभव होते हैं। उस समय वह जो बातें कहेगा अपनी योग्यता के अनुसार कहेगा। इसलिए मैंने कहा था कि बहुत-सी मेरी बातें आपको उलटी दिखाई देंगी। कारण है कि आपकी योग्यता उतनी नहीं है जिससे कि आप इन बातों का यथार्थ निर्णय कर सकें। क्या समझ में आया ?

साधक ३– मेरा अभिप्राय वैसा नहीं था।

स्वामी जी – नहीं ! मैं उस बात पर बल नहीं दे रहा हूँ। मेरी दृष्टि से तो एक विषयक सरल और आपकी दृष्टि से नितान्त अवरोध सरल है। अब इस स्थिति में संशय उत्पन्न होता है कि किसकी बात सही मानी जाए। अब यहाँ प्रमाणों से सिद्ध करने की बात आती है, तर्क आदि से इस विषय में कुछ सोचा जा सकता है। इसको इस रूप में विचार सकते हैं –

मनुष्य जीवात्मा ज्ञानवान्, इच्छावान् पदार्थ है और जीवन पर्यन्त इसकी प्रवृत्ति भिन्न-भिन्न ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करने की बनी रहती है। अतः कभी किसी एक विषय में अधिक रुचि हो गई तब उसमें एकाग्र हो जाता है परन्तु ऐसा अधिकार पूर्वक, बुद्धि पूर्वक नहीं होता, अपितु संस्कारों के कारण हो जाता है। दूसरी बात है कि हमारा ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करने का स्वभाव है। हम अपने ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न का प्रयोग करते रहते हैं। अतः हम किसी भी विषय को उठा लेते हैं। अब वह हमारे प्रयोग में आने लगता है। आपने लोक में देखा होगा कोई वैज्ञानिक या संगीतज्ञ है वह अपने विषय में एकाग्र हो जाता है। वहाँ उसको रस आता है, इसलिए बिना परिश्रम के भी तीव्र इच्छा के कारण वह उसमें तल्लीन हो जाता है। जिसकी जिन विषयों में रुचि होती है वह उसमें जल्दी झुक जाता है परन्तु यहाँ बुद्धि पूर्वक मन को एकाग्र न करके संस्कार वशात् एकाग्र कर लेता है। आया समझ में ? इस अवस्था में व्यक्ति बिना प्रयत्न के भी उस विषय में संलग्न रहेगा।

अब हम प्रयोग आरम्भ करेंगे परन्तु इससे पूर्व आपको इस बात का परिज्ञान होना चाहिए कि जिस स्थिति का सम्पादन आप करने जा रहे हैं उसको यथावत् शब्द आदि प्रमाणों से जान लिया है या नहीं ? उस स्थिति का वर्णन कर देने पर आप समझ भी पाए या नहीं ? इसको केवल मान लेना नहीं है। यहाँ यह भूल नहीं होनी चाहिए। आपने बिना सम्पादन किए उस स्थिति को मान लिया है, यह पृथक् बात है। यदि स्थिति समझ में नहीं आयी और केवल मान लिया; यह भी ठीक नहीं है। इसलिए जो बात बतायी जा रही है इसको पहले मन में स्पष्टतया रख लो। जैसे कि अब मैं ईश्वर-जीव-प्रकृति आदि पदार्थ मात्र अर्थात् किसी विषय में नहीं सोचूँगा तो यह कैसी स्थिति होगी, यह मन में दिखाई दे रहा है ? ऐसे बैठकर देखो। इसको तत्काल वही कर सकता है जिसका बहुत अधिक ज्ञान-विज्ञान तथा अभ्यास है।

अब दूसरी बात है – ओ३म् सच्चिदानन्द ! बोलकर अर्थ करता है – हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। तो आप देखेंगे कि इस प्रक्रिया में सफल हो जाने वाला व्यक्ति भी इसको नितान्त रोक कर खड़े रहने की स्थिति में सफल नहीं हो पाता।

अध्ययन-अध्यापन, श्रवण-मनन आदि विषयों में आप नए नहीं हैं। बहुत कुछ पढ़ा-सुना है, पुनरपि यह विषय समझ में नहीं आया तो इसके लिए आप समय लगाएँ और स्थिति को बुद्धि में बैठाएँ। जैसे कि हम ईश्वर की सर्वव्यापकता को जानना चाहते हैं तो पहले शब्द प्रमाण से, अनुमान प्रमाण से यह सिद्ध करना पड़ेगा कि ईश्वर सर्वव्यापक है। जीवात्माएँ और प्रकृति व्याप्य हैं। जहाँ जीवात्माएँ और प्रकृति हैं वहाँ भी ईश्वर है और जहाँ जीवात्माएँ और प्रकृति नहीं है वहाँ भी ईश्वर है। सत्त्व-रजस्-तमस् से लेकर जहाँ तक सृष्टि है वहाँ भी ईश्वर है और जहाँ नहीं है वहाँ भी ईश्वर है।

साधक १ – इस स्थिति को धारणा बनाकर सम्पादित करना चाहिए?

स्वामी जी – हाँ! धारणा बनाकर अभ्यास करेंगे तो स्थिति अच्छी बनेगी, अन्यथा स्थिति अच्छी नहीं बनेगी।

साधक १ – इसको उदाहरण देकर समझाएँ।

स्वामी जी – एक मोटा दृष्टान्त लें। आप समुद्र के तट पर खड़े हैं और दूर-दूर तक समुद्र को देख रहे हैं किन्तु जहाँ तक समुद्र है आप वहाँ तक देखना चाहें तो नहीं देख सकेंगे। ऐसे ही जीवात्मा सर्वव्यापक ईश्वर के सारे देश को छूना चाहें (जानना चाहे) तो नहीं छू पाएगा। किन्तु सर्वव्यापक मानते हुए यदि एक देश में उसको जानना चाहे तो सर्वव्यापक रूप में भी जान लेगा।

साधक १ – आमने-सामने की स्थिति जो आप बताते हैं, वह कैसे बनेगी?

स्वामी जी – आमने-सामने की स्थिति तो एकदेशी पदार्थ में होती है सर्वव्यापक में नहीं। वैसे तो जीवात्मा की भी स्थिति आमने-सामने की नहीं है। जीवात्मा भी ईश्वर की तरह सर्वतोमुख है किन्तु सब ओर एक साथ जानने में समर्थ नहीं है। यद्यपि आमने-सामने का प्रयोग मोटे रूप में हम करते हैं किन्तु अन्ततः भूल न हो जाए, इस बात का ध्यान रखना है। अन्तिम स्थिति में जाकर सर्वव्यापक मानकर ही प्रयोग करना चाहिए।

साधक १ – जीवात्मा का भी मुख नहीं मानना चाहिए।

स्वामी जी – हाँ! जीवात्मा का भी मुख नहीं मान सकते, वह भी सर्वतोमुख है किन्तु उसमें इतनी सामर्थ्य नहीं कि एक साथ सब ओर जान सके।

साधक १ – इसकी व्यापकता को अग्नि और गोले के समान समझना चाहिए।

स्वामी जी – जीवात्मा को लोहे का गोला मानो और जैसे लोहे का गोला यह मानता है कि मैं अग्नि में पड़ा हूँ। ऐसे ही जीवात्मा अनुभव करे कि मैं ईश्वर में पड़ा हूँ। आगे बढ़ो तो जिस समय संसार नहीं बना था उस समय भी यही स्थिति थी और आज संसार बना हुआ है तब भी वही स्थिति है। अनन्त काल में भी मेरी यही स्थिति रहेगी, मैं सदा ईश्वर में डूबा रहूँगा। मोटा दृष्टान्त दूसरा ले लो। जैसे कोई व्यक्ति समुद्र में गोता लगाने पर डूब जाता है वैसे ही यह संसार ईश्वर में डूबा हुआ है। जब यह संसार नहीं था तब भी प्रकृति के रूप में ईश्वर में डूबा हुआ था। तीनों कालों में जीवात्मा, प्रकृति और प्रकृति से बना संसार अग्नि या समुद्र में गोले के समान डूबे रहेंगे। ये अनुभूतियाँ होंगी ईश्वरदर्शन के काल में। समाधि टूटेगी तो ये अनुभूतियाँ नहीं होंगी।

चलो! अब शन्नो देवी....मन्त्र का प्रयोग करें और इसके शब्दार्थ पर ऐसी स्थिति ले आओ- **ओ३म् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभि स्त्रवन्तु नः॥** यजु. ३६/१२। यदि इसके साथ-साथ अर्थ करेंगे तो मन्त्र पाठ के साथ-साथ करना पड़ेगा अथवा रुक-रुक कर एक-एक शब्द का अर्थ करेंगे।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – क्या हमारी यह सन्ध्या योग और ध्यान के अन्तर्गत आती है ?

स्वामी जी – हाँ ! सारी सन्ध्या योग के अन्तर्गत आएगी।

साधक १ – योग दर्शन के अन्तर्गत तो सदृश-प्रत्यय-प्रवाह को ध्यान कहा है ?

स्वामी जी – हाँ ! वह तो केवल ध्यान की बात कही गई है, ईश्वर समाधि की। एक मुख्य ध्यान वह है जो समाधि को सिद्ध कराने वाला होता है, समाधि तक पहुँचाने वाला होता है और दूसरा सामान्य लोगों को समाधि तक ले जाने वाले ध्यान तक पहुँचाने वाला होता है।

साधक १ – इसमें अनेक विषय होने के कारण व्यक्ति इसके माध्यम से अभ्यास करना नहीं चाहेगा।

स्वामी जी – हाँ ! व्यक्ति करना चाहेगा या नहीं, यह अलग विषय है। आपको इसका सम्पादन करना है। प्रश्न है, अभी क्या आप ऐसी स्थिति बना लेते हैं जिसमें समाधि वाले ध्यान में चले जाते हों ? यह देखने की बात है। यदि वह स्थिति नहीं बना सकते हैं तो इसका अभ्यास करना होगा।

साधक १ – संन्यासी हो जाने पर भी व्यक्ति इसको छोड़ देता है ?

स्वामी जी – हाँ ! वह पृथक् विषय है, यह व्यक्तिगत बात है। उसकी योग्यता पृथक् है, उसके संस्कार पृथक् होते हैं। उसकी स्थिति पृथक् होती है। आप की ऐसी स्थिति अब तक मुझे दिखाई नहीं देती। क्या समझ में आया ?

साधक १ – निदिध्यासन के रूप में इसको लिया जा सकता है।

स्वामी जी – हाँ ! निदिध्यासन तो अपने स्थान पर अपना काम करेगा ही। आपको देखना है कि ऋषि ने विधान किया है कि तीनों आश्रमों को सन्ध्या करनी आवश्यक है। इसलिए इसे आपको करना चाहिए। अतः यह सारा का सारा योग का भाग है, ऐसा समझो। यह पृथक् बात है कि किसी को कितना, किसी को कितना समझ में आता है, नहीं आता है, परन्तु इसी के माध्यम से हमको चलना है। अभी तो हम विधिपूर्वक पाठ करेंगे और धीरे-धीरे समाधि की ओर भी बढ़ते जाएँगे। कम से कम अपर वैराग्य तक तो साथ लेकर चलना है, जहाँ से ऊँचे ध्यान की अवस्था आ जाएगी।

साधक १ – इसमें प्रलयवत् अवस्था बनानी कठिन है।

स्वामी जी – हाँ ! इसमें आरम्भ में तो वह स्थिति नहीं बनेगी। एकदैव प्रलयावस्था बना लेना और बनाए रखते हुए सन्ध्या करना पर्याप्त अभ्यास के उपरान्त होता है। परन्तु आगे चलकर इसका सम्पादन किया जा सकता है। सन्ध्या में प्रलयावस्था का निम्न स्तर आरम्भ में भी सम्भव है किन्तु वह जो आकाशवत् अवस्था आपको बतलायी जाती है उसका सम्पादन वैराग्य के साथ सीधा सम्बद्ध है। नीचे वाला जो स्तर है वह शाब्दिक ज्ञानप्रधान है, शब्दों से जाना जाता है, शब्दों में लिखा रहता है, पर उसकी जो स्थिति बनती है, वह विवेकयुक्त होती है। जो ऊँचे स्तर पर प्रलय अवस्था बनेगी और वह दिनभर रहेगी, उसमें सारा संसार प्रलयवत् दिखाई देता है। वह कालान्तर में बनेगी।

साधक १ – सन्ध्या के समय में प्रलयावस्था का अभ्यास किया जा सकता है ?

स्वामी जी – ऐसा नहीं है। संध्या तो हमारा उपकरण-साधन है। इसको हम स्वतन्त्ररूप से करते जाएँगे। इसको करके जो शेष समय बच गया उसको प्रलयावस्था के सम्पादन में लगा देंगे अर्थात् जब आप संध्या करो तब उसको पहले पूरा करो और कुछ समय बच जाए तो उसमें प्रलयावस्था बनाने का अभ्यास करो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – सन्ध्या को पूरे घण्टे तक करना चाहिए ?

स्वामी जी – हम घन्टे की चर्चा नहीं कर रहे हैं। आप यदि चाहते हैं कुछ अधिक समय में सन्ध्या करें तो उसके लिए शब्दार्थ याद कर लो। जब तक उतना भी सम्भव नहीं हो तब तक पुस्तक रख लो और चाहो तो संक्षेप में भावार्थ कर लो। मानकर चलिए पन्द्रह या बीस मिनट लगाएँगे तो अर्थसहित इतना लगा लो।

ध्यान देने की बात है - एक है विशेष रूप से करने योग्य उपासना काल। उसमें चाहें तो उन्हीं संध्या के मन्त्रों को ले लें अथवा किसी वेदमन्त्र को या अपनी सुविधानुसार भाषा के वाक्य, शब्द आदि को लेकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं। इससे अन्यत्र काल में विवेक-वैराग्य को उत्पन्न करना, प्रलयावस्था बनाना, ईश्वर-जीव-प्रकृति के स्वरूप को जानना, व्याप्य-व्यापकभाव आदि को सिद्ध करना आदि जितने भी कार्य हैं, सब करने चाहिएँ। किन्तु ध्यान वाले उपासना काल में तो ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना ही करनी चाहिए, वैराग्य वाले प्रकरण को नहीं छेड़ना चाहिए। अब विराम ॥

१२ ज्ञानखण्ड

विद्याग्रहण पद्धति : आषाढ़ शु. १४/२०६०-१२/७/०३

व्यक्ति के क्रियाकलाप का आरम्भ ज्ञान से होता है तथा वह ज्ञान चार प्रकार से सफलता को प्राप्त होता है अर्थात् आगमकाल, स्वाध्यायकाल, प्रवचनकाल और व्यवहारकाल से।

सम्पादक – तत्र चतुर्भिश्च प्रकारैर्विद्योपयुक्ता भवत्यागमकालेन स्वाध्यायकालेन प्रवचनकालेन व्यवहारकालेनेति ॥ महाभाष्य पस्पशाह्निकम्।

व्यक्ति विद्याध्ययन किस प्रकार से करे, इसकी पद्धति ऋषियों ने बतलाई - आत्मा मन के साथ, मन श्रोत्रेन्द्रिय के साथ और श्रोत्रेन्द्रिय आचार्य के शब्दार्थ-सम्बन्ध के साथ जुड़ता है। इस रूप में विद्या ग्रहण की जाती है। आप विद्या ग्रहण के काल में जब आत्मा, मन, इन्द्रियों पर अधिकार करके रुचिपूर्वक उस विद्या पर विशेष ध्यान देते हैं तो उसके संस्कार बन जाते हैं। उस स्थिति में बोलने वाला व्यक्ति जैसे-जैसे उपदेश देता जाता है, सुनने वाले पर उसका विशेष प्रभाव पड़ता जाता है।

आप ये देखेंगे कि किसी व्यक्ति ने जिस समय अपनी समाधि प्राप्त स्थिति का वर्णन सुनाया और तब आपने बड़े ध्यान और रुचि से सुना तो उसके संस्कार बन गए। अर्थात् किसी समाधि प्राप्त व्यक्ति के द्वारा जब अपने अनुभव का वर्णन किया जाता है और सुनने वाला बड़े ध्यान और रुचि से सुनता है तब सुनाने वाले की जैसी स्थिति होती है, जिस स्थिति का वह वर्णन कर रहा होता है, सुनने वाला व्यक्ति भी उसी स्थिति की झलक देखने लगता है। उसी स्थिति में अपने आप को कुछ गया हुआ देखता है। बाहर के विषयों से हटकर वह जैसे भीतर चला गया हो और उसको ऐसा कुछ आभास होता है कि अभी मेरी स्थिति बहुत कुछ वही है जिसका वर्णन किया जा रहा है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक उदाहरण लेते है जैसे कि उसने कहा – समाधि की अवस्था इस प्रकार से उत्पन्न होती है। समाधि प्राप्ति के लिए साधक अनित्य पदार्थों को अनित्य जानता है, नित्य पदार्थों को नित्य जानता है, अशुद्ध पदार्थों को अशुद्ध जानता है, शुद्ध पदार्थों को शुद्ध जानता है, दुःख को दुःख जानता है, सुख को सुख जानता है, जड़ को जड़ जानता है और चेतन को चेतन जानता है। इसके पश्चात् उसके मन में वैराग्य उत्पन्न होता है और वैराग्य की स्थिति को बनाए रखने के लिए वह अभ्यास करता है। अभ्यास करते-करते उसको समाधि की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार बताने वाला बतलाता जाता है और सुनने वाला बड़ी रुचि से सुनता जाता है। अब जिस समय वक्ता के द्वारा वर्णन किया गया कि अनित्य पदार्थों को अनित्य जानता है, नित्य पदार्थों को नित्य जानता है, उसी समय साधक अपने मन में जिज्ञासा करता है कि अनित्य आदि पदार्थों को अनित्य आदि कैसे जानता है? वक्ता ने उसी प्रवाह में बोला – यह जो हमारा शरीर है, इस शरीर को व्यक्ति नाशवान् जानता है। साधक ने मन में प्रश्न उठाया – शरीर को नाशवान् कैसे जानता है? तो वक्ता का उत्तर आया कि प्राणियों को मरते हुए देखता है। सभी शरीरों की यह स्थिति है कि ये उत्पन्न होते हैं और मर जाते हैं।

इस प्रकार से जो शरीर की अनित्यता आदि सिद्ध की जाती है वह पहले मन में नहीं बैठती है तो इसे बिठाने के लिए स्वयं से पूछना चाहिए कि क्या यह मेरा शरीर सदा रहेगा या नहीं रहेगा? पुनः जब किसी शरीर को नष्ट होते हुए देखते हैं तब अपने शरीर की उससे तुलना करनी चाहिए कि मेरा भी शरीर इसी प्रकार नाशवान् है या नहीं? वहाँ संशय होता हैं। दो विरुद्ध विचार उत्पन्न होते हैं – एक तो यह कि मेरा शरीर भी नाशवान् है। दूसरा उस स्थिति को भुलाकर कहता है नाशवान् नहीं है। आप अपना बताइए, आपकी क्या स्थिति है?

साधक २– अपना शरीर नाशवान् नहीं लगता है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे –

साधक ३– जब विचार करते हैं तब लगता है, प्रायः नहीं लगता।

स्वामी जी – आप बोलेंगे, कैसा लगता है?

साधक १– विचार करने पर नाशवान् समझ में आता है। विचार नहीं करते हैं, पुरुषार्थ नहीं करते हैं तब इस ओर बुद्धि नहीं जाती है।

स्वामी जी – इनकी स्थिति ऐसी है कि जब विचार करते हैं तब नाशवान् है, ऐसा प्रतीत होता है, कालान्तर में नाशवान् प्रतीत नहीं होता है। हाँ जी! आगे कौन बोलेगा? आप –

साधक ४– विचार करने पर समझ में आता है कि नाशवान् है।

स्वामी जी – आप बोलिए, कैसा लगता है आपको?

साधक ७– पहले की अपेक्षा अब नाशवान् अधिक लगने लगा है।

स्वामी जी – और आप बताएँ।

साधक ८– कभी-कभी अनित्य दिखता है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे।

आचार्य नैष्ठिक जी – पहले की अपेक्षा अब नाशवान् अधिक दिखता है।

स्वामी जी – इस स्थिति में विचारक की प्रायः ऐसी इच्छा रहती हैं कि मैं कभी भी मरूँ नहीं। दोहराओ, समझो, देखो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य नैष्ठिक जी – विचारक की इच्छा बनी रहती है कि कभी मरूँ नहीं।

स्वामी जी – आप अपनी-अपनी बात बताएँ, आपकी क्या इच्छा रहती है? इस सम्बन्ध में क्या विचार रहता है? मैं अनन्त काल तक रहूँ, मरूँ कभी नहीं या और कुछ?

साधक २ – ऐसी ही स्थिति रहती है।

स्वामी जी – हाँ जी! बोलिए।

आचार्य नैष्ठिक जी – मेरी इच्छा रहती है कि अभी न मरूँ।

स्वामी जी – इन्होंने बताया कि अभी न मरूँ और दूसरी क्या रहती है? (तो कब मरना चाहेंगे?)

आचार्य नैष्ठिक जी – ईश्वर को पाकर मरूँ।

स्वामी जी – अच्छा! आपमें से जैसा कि इन्होंने (साधक २ ने) बताया कभी न मरूँ, ऐसी और किसकी अनुभूति रहती है?

साधक ३ – जब अन्यों को मरते देखते हैं तब यह इच्छा करनी उचित नहीं है।

स्वामी जी – यह तो ठीक है, परन्तु जब तर्क से सोचते है तब खण्डित होता है। बिना तर्क के सोचने पर तो वही लगता है कि सदा रहूँ।

साधक ३ – ऐसा तो सम्भव ही नहीं है, पुनः किसी के चाहने से क्या होगा?

स्वामी जी – चाहने, न चाहने का प्रश्न नहीं है। यह तो हेतु से खण्डित हो रहा है। सामान्य स्थिति में जब हम प्रमाणों से सिद्ध नहीं करते, उस अवस्था में ऐसा ही लगता है। व्यक्ति यही जानता, सोचता है कि मैं सदा ज्यों का त्यों रहूँ अर्थात् शरीर सहित सदा ज्यों का त्यों बना रहूँ, मरूँ कभी नहीं। हाँ जी! आप क्या कहना चाहते हैं?

साधक २ – ऐसा लगता है कि किसी को ऐसा कभी नहीं लगता होगा कि मैं मर जाऊँ।

स्वामी जी – हाँ! अर्थात्?

साधक २ – अर्थात् कभी भी कोई यह नहीं चाहता होगा कि मैं मर जाऊँ। यही चाहता होगा कि सदा रहूँ ही।

स्वामी जी – हाँ! कोई-कोई व्यक्ति ऐसा चाह सकता है परन्तु उसमें कारण होता है कि वह बहुत दुःखी होता है।

साधक २ – दुःखी को तो और कोई सुख की सम्भावना नहीं है, इस कारण वह सोचता है कि चलो, अभी मर जाएँ। किन्तु सामान्य स्थिति में क्या कभी किसी को लगता होगा कि जीने की अपेक्षा मर जाऊँ? अर्थात् ऐसा.....

स्वामी जी – ऐसा प्रतीत नहीं होता। आपका क्या अनुभव है, अपना-अपना बताओ। इनका तो यह अनुभव है।

साधक ३ – मेरा तो अनुभव ऐसा कार्य करता है कि शरीर छूटेगा और रोग भी आक्रमण करेंगे तो जितना अधिक हो सके समाधि को, ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त किया जाए।

स्वामी जी – एक अवस्था ऐसी देखी जाती है व्यक्ति को जब अत्यन्त दुःख होता है तब वह चाहता है कि अभी मर जाऊँ। यदि भयंकर दुःख न हो तो सदा जीने की स्थिति बनी रहती है। अच्छा! अब आप अपना सुनाओ, अब क्या चाह रहे हैं?

साधक १ – अभी तो ऐसी स्थिति अनुभव में आती है कि मैं सदा रहूँगा और मृत्यु का यथार्थ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वरूप मस्तिष्क में रहने से कोई ऐसी इच्छा नहीं रहती कि मैं सदा रहूँ। मृत्यु को विचारने की बात समझ नहीं आती है।

स्वामी जी – हाँ ! पुनः एक बार दोहराईये ?

साधक २– अपनी आत्मा की दृष्टि से कह रहे हैं कि यदि मैं अपने आत्मस्वरूप को समझ रहा हूँ, तो मरने की स्थिति तो है ही नहीं अपने सामने।

स्वामी जी – अपने आत्मस्वरूप को लेकर कह रहे हैं, उनका यह अभिप्राय है ?

साधक २– तब तो मरूँगा ही नहीं, मरने का प्रश्न ही नहीं है।

स्वामी जी – शरीर की दृष्टि से या आत्मा की दृष्टि से ?

साधक २– शरीर तो रुकेगा नहीं, यह तो ठीक है। पर मैं जो हूँ वस्तुतः, वह तो कभी मरूँगा ही नहीं। इसलिए मरने की कोई चिन्ता नहीं है।

स्वामी जी – अच्छा ! ऐसा रहता है, शरीर तो मरेगा ही। यही अभिप्राय है ?

साधक १– मुझे कुछ नहीं होगा, इतनी बात मन में रहती हैं।

स्वामी जी – शरीर तो रहेगा ही नहीं; यह होता होगा ?

साधक ३– शरीर रहे न रहे, मुझे कुछ नहीं होगा।

साधक २– आत्मा को तो कुछ होना नहीं है।

स्वामी जी – वह तो ठीक है किन्तु हम बोल रहे हैं शरीर की दृष्टि से।

साधक २– इनका अभिप्राय दूसरा है।

स्वामी जी – हम बोल रहे थे शरीर की दृष्टि से कि लोक में जो व्यक्ति रहता है, उसकी क्या विचारधारा होती है, उसका मन्थन कर रहे थे। मरना-जीना शरीर की दृष्टि से सोच रहे हैं, आत्मा की दृष्टि से नहीं सोच रहे हैं। हाँ !

साधक २– हमें तो अभी भी लग रहा है, मरूँ नहीं।

स्वामी जी – तो मरूँ नहीं, यह स्थिति बनी रहती है। वह एक ज्ञान की स्थिति अलग हुई, जिसमें आत्मा के स्वरूप को जानता हुआ कहता है कि मैं सदा रहूँगा। उसको हम छोड़ देते हैं। हम तो इस दृष्टि से बोल रहे हैं कि व्यक्ति इस शरीर से सम्बद्ध होकर क्या-क्या सोचता है ? जो अत्यन्त दुःखी है उसको भी छोड़ दो और जो शरीर से पृथक् आत्मा को जानता है उसको भी छोड़ दो, शेष जो शरीर को आत्मा मानता है, शरीर से आत्मा को भिन्न नहीं जानता है, वह क्या सोचता है ?

अब सिखाने वाला यह कहता है कि 'मैं कभी नहीं मरूँ' इसको हटाने का यह उपाय है – साधक देखता है कि संसार में लोग जन्म ले रहे हैं और मर रहे हैं अर्थात् जो जन्म लेता है वह अवश्य मरता है, तब तू कैसे सदा जी सकता है ? ऐसा सभी लोग नहीं सोचते हैं किन्तु जो जिज्ञासु होता है वही ऐसा सोचता है। जैसे कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को मृत्यु देखने को मिली। एक मिली, दूसरी मिली। अब उनके मन में यह बात आयी कि मैं भी मर जाऊँगा ? यों तो मरते हुए किसी न किसी को सभी देखते है परन्तु सभी के मन में यह बात नहीं आती है। इसलिए जो जिज्ञासु होता है, उसके विषय में यह बात कही जा रही है। वह ऐसा सोचता है कि मैं तो चाहता हूँ कि सदा जीवित रहूँ किन्तु लोग उत्पन्न हो रहे हैं और मर रहे हैं। मैं इनसे अतिरिक्त कैसे हो सकता हूँ ? पुनः वह बल लगाता है कि कोई तो ऐसा उपाय होगा और मैं उसे ढूँढ डालूँ तो मरने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से बच जाऊँगा। दोहराइए।

जो सदा जीने का इच्छुक है, वह विवेचना करता है, खोज करता है कि मै ऐसा उपाय ढूँढूँ संसार के अन्दर, जो मुझे मरने न दे। कुछ समझ में आ गया? हाँ जी!

आचार्य नैष्ठिक जी – क्या ऐसा योग जिज्ञासु सोचता है?

स्वामी जी – यह शरीर नाशवान् है या नहीं; इसको जानने का जो इच्छुक है, वह सोचता है। आपने सुना था कि ज्ञान कहते हैं – अनित्य को अनित्य और नित्य को नित्य जानो। इसके लिए जब व्यक्ति अनित्यतता का पूर्ण रूप से निर्णय करने लगता है तब अपने शरीर की अनित्यता का खण्डन करने के लिए पहले पूरा बल लगाता है। वह चारों ओर इस दृष्टि से देखता है कि कोई उपाय इस संसार में मिल जाए जिससे हमारा जीवन कभी नष्ट न होने पाये। बोलो क्या समझ में आया? आपने योग दर्शन में पढ़ा होगा कि अविद्याग्रस्त व्यक्ति समझता है कि देवों के शरीर कभी नहीं मरते हैं, सदा रहते हैं। सूर्य-चन्द्रमा आदि जितने पदार्थ हैं, ये सारे के सारे सदा रहेंगे। ऐसा वर्णन आया है। ऐसा वर्णन क्यों आया? ऐसा इसलिए आया कि अविद्याग्रस्त व्यक्ति ऐसा ही जानता है।

अब जिज्ञासु परीक्षण करना चाहता है कि क्या यह बात सत्य है कि देवों के शरीर सदा रहते हैं। क्या ये पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश सदा रहेंगे? इस प्रकार वह अपनी बुद्धि के अनुसार खोज आरम्भ करता है। अन्त में शरीर को बचाने का कोई भी उपाय उसको उपलब्ध नहीं हुआ। शरीर को सदा जीवित रखने का कोई उपाय उसके हाथ नहीं लगा। जब स्वयं या संसार को सर्वदा बचाए रखने का उसको कहीं से कोई उपाय हाथ नहीं लगा तो यह निर्णय आया कि जब कोई उपाय नहीं है तब तो हम सब मरेंगे ही।

अब वह आगे विचार करता है कि एक तो उपाय नहीं मिला। अतः हम मरेंगे ही। अच्छा! जब मैं स्वयं मरूंगा तो उसके पश्चात् क्या स्थिति होगी? अब आ रहा है समझ में या नहीं? नहीं आ रहा है तो कहो, और खोलेंगे, दृष्टान्त देंगे। आपको यह बताया जा रहा है कि व्यक्ति को विवेक कैसे उत्पन्न होता है और विवेक से वैराग्य कैसे उत्पन्न होता हैं तथा वैराग्य से अभ्यास और अभ्यास से समाधि कैसे उत्पन्न होती है। यहाँ तक आए हम। उसने जब अच्छी प्रकार से यह समझना आरम्भ किया कि वास्तव में कोई उपाय नहीं है। संसार में ऐसा कोई व्यक्ति दिखाई नहीं दे रहा है जो पहले उत्पन्न हुआ और आज तक चला आ रहा है, नहीं मरा है। किसी औषधि या चिकित्सा से भी ऐसा संभव नहीं है। ध्यान देना, जो व्यक्ति लौकिक सुख भोगों में प्रवृत्त है, मान-सम्मान में प्रवृत्त है, लोकैषणा, पुत्रैषणा से प्रभावित है, तो वह ऐसी खोज नहीं कर पायेगा। अब क्या समझ में आया।

साधक ३ – मरना निश्चित है, संसार का प्रलय होगा, पुनः-पुनः पढ़-सुनकर निश्चित हो गया। इसलिए योगाभ्यास का विधान किया।

स्वामी जी – हाँ जी! क्या कह रहे है ये?

साधक २– ये कह रहे है यह तो प्रमाणों से सिद्ध ही है कि मरना तो निश्चित है। इसलिए योगाभ्यास का विधान कर दिया परन्तु मेरा कथन है कि यद्यपि प्रमाणों से सिद्ध है पुनरपि अपने को यह स्वीकार नहीं होता है कि मरना निश्चित है। यद्यपि सामान्य रूप से मानता है कि मरना निश्चित है परन्तु अन्दर से स्वीकार नहीं करता है।

स्वामी जी – एक अन्तिम निर्णय करने की स्थिति में वह व्यक्ति नहीं आ पाता, जो भोगों से

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रभावित है। लोकैषणा, पुत्रैषणा से प्रभावित है। जो लौकिक स्थिति में रहते हैं, वे इस निर्णय तक नहीं आ पाते। कुछ समझ में आया या नहीं ?

साधक ७ – जो तीनों एषणाओं से युक्त है वह कभी मोक्ष की चर्चा नहीं कर सकता है।

स्वामी जी – यह साधन उपार्जित करो और भोग करो। इस प्रकार लौकिक सुख साधनों की प्राप्ति और दुःख के निवारण में जो व्यक्ति प्रवृत्त रहता है वह इसकी खोज नहीं करता। कुछ समझ में आया ?

साधक गण – आ गया।

स्वामी जी – यदि आप भी इसी खोज में रहेंगे, लौकिक सुख और सुखसाधन की प्राप्ति तथा दुःख और दुःखसाधनों के निवारण में लगे रहेंगे तो आप इस स्थिति में नहीं आएँगे कि मैं मरूँगा तब क्या होगा; ऐसा विचार नहीं कर सकेंगे। समझ में आया ? एक और अवस्था – जो व्यक्ति स्वस्थ है, साधन-सम्पन्न है, धन-धान्य से परिपूर्ण है, उसको किसी भी प्रकार की लौकिक कमी दिखाई नहीं देती। वह व्यक्ति भी इस स्थिति को उपस्थित करना नहीं चाहता है अर्थात् इस प्रसंग को नहीं चलाना चाहता है। दोहराओ और समझो, क्या समझ में आया ?

साधक ३ – एक व्यक्ति साधन सम्पन्न है, धन-धान्य से सम्पन्न है, वह भी इस विषय पर अन्तिम निर्णय करना नहीं चाहता है।

स्वामी जी – ध्यान देना, इस विषय की विवेचना करने वाला, खोज करने वाला, अन्तिम निर्णय को लाने वाला धन सम्पन्न, साधन सम्पन्न होते हुए भी यह देखता है कि मुझे मृत्यु छोड़ेगी नहीं, मृत्यु होनी निश्चित है। क्या समझ में आया ?

साधक २ – मृत्यु होनी निश्चित है, यही देखता है।

स्वामी जी – अब देखो ! उस व्यक्ति की क्या स्थिति होगी ? धन-धान्य से सम्पन्न व्यक्ति यदि मृत्यु को देखने का प्रयत्न करता है तो उसका सारा लौकिक सुख दुःखमय हो जाता है। अब बोलो ! क्या समझ में आया ?

साधक ३ – वह सुख सम्पन्न व्यक्ति...।

आचार्य नैष्ठिक जी – समझ में नहीं आया।

स्वामी जी – इस बात को जब निकट जाकर देखता है कि मृत्यु से बचा नहीं जा सकता, उस समय धन-धान्य से परिपूर्ण, स्वस्थ होते हुए भी व्यक्ति दुःख की ही अनुभूति करता है। कष्ट की अनुभूति करता है। मैं इन सुख साधनों से दूर होने जा रहा हूँ, ऐसा अनुभव करता है। अब आया समझ में ?

आचार्य नैष्ठिक जी – हाँ, अब आ गया।

स्वामी जी – एक बात ध्यान देने की है कि जो व्यक्ति सर्वसाधन-सम्पन्न होकर भी दुःख का अनुभव करता है, वह व्यक्ति योग में प्रवृत्त हो सकता है। जो व्यक्ति धन-धान्य साधनों से सम्पन्न, परिपूर्ण, स्वस्थ है और उस स्थिति में भी यह जानता है कि यह सुख अनित्य है, क्षणिक है, परिणाम-ताप आदि दुःखों से युक्त है। मैं इन दुःखों से बच नहीं सकता, इन साधनों से दूर होना ही पड़ेगा। कहा भी है – **संयोगाश्च वियोगान्ता**। सां.५/८०।

सर्वे क्षयान्ता निचयः पतनान्ताः समुच्छ्रयाः।
संयोगाश्च वियोगान्ता मरणान्तं च जीवितम् ॥ वा. रामा. अयो. का. १०५/१६।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो वह जब ऐसे देखता है तब उसकी बुद्धि, उसका प्रयत्न दुःख से छूटने में लग जाता है। क्या समझे? सर्वथा साधनसम्पन्न होने पर भी व्यक्ति जब यह देखता है कि इन सुख साधनों से वियोग होगा तब उसे दुःख ही दुःख दिखाई देने लगता है और वह किसी भी प्रकार से इससे निकलना चाहता है। इससे यह एक बात निकली कि जब व्यक्ति सर्वसाधन-सम्पन्न होकर भी, उनका उपभोग करते हुए भी, उनमें दुःख का अनुभव करता है तो वह योगी बनने के लिए उद्यत होता हैं। हाँ जी! क्या समझ में आया बोलो!

साधक ५– जो व्यक्ति सुख-साधनों में भी दुःख अनुभव करता है, वह व्यक्ति योगी बनने के लिए उद्यत होता है।

स्वामी जी – अब इसका उलटा कर दो। जो व्यक्ति सुख-साधनों में रहता हुआ उनमें दुःख का अनुभव नहीं करता, वह योग की ओर नहीं चलता। योग की खोज नहीं करता। योगी बनने की स्थिति में नहीं आ पाता। आप सर्वसाधन-सम्पन्न नहीं हैं, मानकर चलो, किन्तु जितने सुख-साधन आपके पास हैं, इस स्थिति में भी आपके ऊपर यह नियम लागू हो जाएगा। आपके पास जितने भी सुख और सुख के साधन हैं, उनमें ही यदि आप उस व्यक्ति की भाँति दुःख का अनुभव नहीं करते, तो आपकी प्रवृत्ति भी योग की ओर नहीं बढ़ पाएगी। ऐसा न मानना कि करोड़पति, अरबपति, राजा, महाराजा आदि जितने साधन सम्पन्न कहे जाते हैं, उन्हीं के लिए यह नियम है। ऐसा नहीं है। हाँ जी! क्या समझ में आया?

साधक ३– यह स्थिति केवल उनके लिए ही नहीं जो साधन सम्पन्न हैं, अपितु हमारे पास भी जो साधन हैं उनमें यदि हम सुख की अनुभूति करते हैं, दुःख की अनुभूति नहीं करते हैं, तो हम भी योग में प्रवेश नहीं कर सकते हैं।

स्वामी जी – आप आज जिन साधनों से युक्त हैं, जिनसे सुख ग्रहण करते हैं, उनमें यदि आप दुःख का अनुभव नहीं करते हैं, तो आप भी योग में प्रवेश नहीं कर सकते। ऊँचे योग की बात चल रही है यहाँ। सन्ध्या करना आदि तो चलते रहते हैं, यह सामान्य स्थिति है।

साधक ३– एक प्रश्न आया कि जितने सुख-साधनों से व्यक्ति योगाभ्यास कर लेता है उनके बारे में समझता है कि ये सुख साधन मेरे लिए अच्छे हैं, योगाभ्यास में उपयोगी हैं। इनसे मैं बिना किसी बाधा के अच्छी प्रकार योगाभ्यास कर सकूँगा। इस रूप में इन साधनों को वह अपनाता हो। (किन्तु उनमें दुःख नहीं देखता हैं तब क्या योग में प्रवेश नहीं कर सकता?)

स्वामी जी – यहाँ थोड़ा सा विषयान्तर हो रहा है, उस ओर नहीं जाएँगे। हमारा प्रसंग है वस्तुतः मरने के पश्चात् क्या स्थिति होगी मेरी; जिज्ञासु इसको देखना चाहता है। अब वह क्या करता है? वह देखता है, मान लिया कि कोई सम्पन्न व्यक्ति मर गया, ८० वर्ष की आयु का बड़ा व्यक्ति मर गया, धन-धान्य से परिपूर्ण व्यक्ति चला गया और उसका दाहसंस्कार भी हो गया तथा दूसरे दिन देखा राख भी उड़ गई। तो वह सोचता है कि एक दिन यही स्थिति मेरी भी होगी। यहाँ तक आया समझ में आप लोगों को? नहीं आया तो पूछो या अन्य दृष्टान्त देता हूँ - पहले ऐसा होता था सेना की दो टुकड़ियाँ आमने-सामने युद्ध करती थीं। अपने-अपने पक्ष में अन्य-अन्य सैनिक पीछे-पीछे बन्दूक लेकर खड़े रहते थे। इस स्थिति में जो सबसे आगे होता था वह न तो और आगे जा सकता था, न पीछे हट सकता था क्योंकि आगे जाए तो शत्रु की गोली लगेगी और पीछे हटे तो अपने पिछले साथी गोली मार देंगे। इस स्थिति में मरना निश्चित है, भागकर कहीं नहीं जा सकता। तो साधक यहाँ आकर निश्चय करता है कि इससे भिन्न मेरी स्थिति हो ही नहीं सकती। यही स्थिति मेरी होगी। अब तो कुछ समझ में आया होगा?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– उस स्थिति में वह सोच सकता है कि यहाँ मरना तो मेरा कर्त्तव्य है, मैं उसका पालन करुँगा।

स्वामी जी – इसको यहाँ नहीं लेना है। यहाँ तो अनिवार्य मृत्यु का निर्णय किया जा रहा है। याद रखना, जिस समय यह व्यक्ति ऐसा सोचता है उस समय यदि उसका ज्ञान परिपक्व नहीं है, अभी कच्चापन है, तो वह इससे डरकर भागना चाहता है। इस स्थिति से व्यक्ति बचना चाहता है, मरने की स्थिति में जाना नहीं चाहता है। कुछ समझ में आया?

आचार्य नैष्ठिक जी – विचारो में?

स्वामी जी – हाँ। वैचारिक अवस्था में ही वह यह चाहता हैं कि मैं इससे बचूँ। पहले तो उसने मौत को बुलाया। मैं मर जाऊँगा, इस स्थिति को बनाया। अब वह इसी से डर गया और सोचता है कि यह तो बहुत भयंकर है। इससे दूर क्यों न हो जाया जाए? इस स्थिति को छोड़ देना चाहता है। ध्यान देना, यहाँ विचारों की दो धाराएँ होती हैं – एक तो जिस व्यक्ति ने बहुत थोड़ा विचार किया है, मृत्यु के विषय में बहुत कम मन्थन किया है, वह यहाँ से डरकर भाग जाएगा और सांसारिक स्तर पर व्यवहार करने लगेगा अर्थात् इस अवस्था को छोड़ देगा और लौकिक बन जाएगा। अच्छी तरह सुनो और समझो।

वह यह मानता है कि इससे पीछे हटूँ, इधर-उधर हो जाऊँ। सोचना ही नहीं इस विषय में, खामखा इस झंझट में क्यों पड़ूँ। परिणाम निकलता है कि वह सांसारिक स्तर पर खड़ा हो जाता है और मृत्यु के विषय में निर्णय लेने का विचार छोड़ देता है। उसके मन में दो बातें आती हैं – एक तो यह कि जब मरेंगे तब मर जाएँगे, अभी क्या सोचना, छोड़ो इसको। दूसरा – हो सकता है कालान्तर में बचने का कोई उपाय मिल जाए!

दूसरी धारा – जिस व्यक्ति ने पहले पूरे संसार को अच्छी तरह से छाना। चप्पे-चप्पे पर बुद्धि दौड़ाई और निर्णय निकाल लिया। कोई क्षेत्र नहीं छोड़ा जहाँ शरीर को बचाया जा सके किन्तु अब वही इस अवस्था से हटना चाहता है, इस अवस्था को भुलाना चाहता है। पर वह देखता है कि इस मृत्यु की अवस्था को छोड़कर जाऊँगा कहाँ? कोई ऐसी जगह भी तो नहीं, जहाँ जाकर बच सकूँ, तो अब मरना निश्चित है। अतः अब जब मरना निश्चित है तब उस अवस्था को अभी क्यों न देख लिया जाए? आपको समझ में आ रहा है या नहीं, मुझे पता नहीं। वस्तुतः आपके सामने ये अवस्थाएँ आएँगी, निश्चित है, आप इससे बच नहीं सकते। बिना विचारे ही हम योग में चले जाएँगे, ऐसा मत मान लेना।

साधक २– उस स्थिति को देखने की हिम्मत नहीं होती।

स्वामी जी – हाँ! नहीं होती है। बहुत भंयकर डर लगता है। पर जिसने पूरा छान मारा, कोई जगह छोड़ी नहीं, वह इससे निकल जाता है। सामान्यतया हिम्मत नहीं होती इस स्थिति को उत्पन्न करने की। डरता है व्यक्ति। अन्य घटना सुनाऊँ, लाभ उठाएँगे या समय हो गया?

साधक ७– होने वाला है।

स्वामी जी – अब तक मैंने वर्णन सुनाया था। अब वर्णन नहीं, एक वास्तविक घटना सुनाता हूँ। दो व्यक्ति जो मेरे साथ मैत्री रखते थे। लम्बे काल से घनिष्ट सम्बन्ध था। मैंने यह जो खोज की थी, उस समय मैंने यही वर्णन उनको सुना दिया। पहले-पहले तो उन्होंने मुझे पागल ही मान लिया था, संभवतः महीना भर मानते रहे, अन्य लोग तो वर्षों तक मानते रहे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब मैंने इस मृत्यु जैसी घटनाओं का वर्णन किया, तब कालान्तर में वे दोनों विचार करने में प्रवृत्त हो गये कि भाई ! अवश्य ही यह कोई विशेष बात है। यह हमसे झूठ तो नहीं बोलेगा। आपस में हमारी मित्रता थी, झूठ-छल-कपट का तो प्रश्न नहीं था और वे देख रहे थे कि इसका तो आचार-विचार ही बदल गया है। पुनः उन्होंने सोचना आरम्भ कर दिया। परन्तु मैंने जितनी गम्भीरता से विचार किया था, खोज की थी, उतनी गम्भीरता से उन्होंने लिया नहीं था। केवल सुनकर सोचने को प्रवृत्त हो गये। कुछ समझ में आ रहा है? जल्दी-जल्दी बोल रहा हूँ।

आगे क्या बात हुई? एक दिन उनमें से एक व्यक्ति ध्यानावस्थित होकर इसी मृत्यु का मंथन कर रहा था कि यह शरीर नाशवान् है, सारा संसार मर जाएगा। एक करीर का पेड़ होता है, जिसको कैर बोलते है हरियाणा में, और संस्कृत में जिसको करीर कहते है। वह उस पेड़ के नीचे ध्यानमग्न होकर मृत्यु का विचार कर रहा था कि अचानक एक काला सांप शाखा पर लटकता हुआ दिखाई दिया। उसे लगा यह सांप अभी मुझे काटेगा और वह वहाँ से डरकर भाग पड़ा। अब जब प्रतिदिन की भाँति सांयकाल हम इकट्ठे हुए, तब दूसरे मित्र ने उसके विषय में बताया कि आज इसको पता नहीं क्या हो गया कि तुम्हारी तरह न तो बात करता है, न ठीक-ठाक दिखाई दे रहा हैं। मैंने पूछा क्या बात थी? तब उसने बताया कि पीछे बाग में पेड़ की शाखा पर एक भयंकर काला साँप लटका हुआ मुझे दिखाई दिया और लगा कि यह अभी मुझे काटेगा और मैं वहाँ से भाग पड़ा।

आपको बतलाऊँ, यह क्यों हुआ? वह भयंकर डर गया। वस्तुतः जब मृत्यु की घटना निश्चित रूप में उपस्थित होती है तब जितने मारने वाले भयंकर साधन होते हैं, वे सभी सामने उपस्थित होने लगते हैं। नहीं आया समझ में? जितने भी घातक साधन होते हैं अस्त्र-शस्त्र, मनुष्य, पशु, पक्षी आदि, वे सब के सब संस्कार के रूप में हमारे अन्दर विद्यमान रहते हैं। वे ही मृत्यु का आलम्बन पाकर उभर जाते हैं। उसको भी यही समझाया। जब कुछ बात समझ में आयी तब उसकी स्थिति सुधर गई।

अच्छा ! तो मैंने आपको बताया कि हम योग की प्राप्ति के लिए जिस विद्या की आवश्यकता समझते हैं, उसको किस-किस प्रकार से उपलब्ध करते हैं तथा उसमें क्या-क्या कठिनाईयाँ आती हैं। अब आपका कर्त्तव्य है उस विद्या की प्राप्ति करना और उसको ऐसे स्तर पर ले जाना, जहाँ विद्या ज्यों की त्यों सुरक्षित रहे। ऐसे करते-करते हम समाधि की ओर आगे बढ़ेंगे। अब विराम ॥

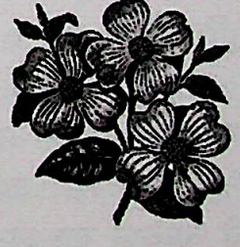

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१३ आत्मनिरीक्षण

अनुशासन : आषाढ़ शु. १४/२०६०-१२/७/०३

आत्मनिरीक्षण के प्रसंग में यह जानना चाहिए कि जो-जो कार्य अपनी उन्नति के लिए और अन्यों की उन्नति के लिए करने योग्य थे, वे आपने सम्पन्न किए या नहीं तथा जो कार्य अपने लिए और अन्यों के लिए हानिकारक थे, उनमें से आपने कौन-कौन से किए अथवा हो गए? अब आप अपना आत्मनिरीक्षण सुनाएँगे -

साधक ३- स्वास्थ्य में न्यूनता के कारण प्रातःकाल विलम्ब से जागरण किया। उपासना में कुछ वृत्तियों का अधिक प्रभाव रहा। इसी अस्वस्थता के कारण स्वाध्याय नहीं किया, निदिध्यासन नहीं किया और संस्कृत-संभाषण का विशेष ध्यान नहीं रखा। परन्तु सायंकालीन उपासना के लिए प्रयास किया और उसमें अच्छी सफलता मिली। मन की चंचलता को दूर करने के लिए ईश्वर से सामर्थ्य मिला। स्थिति अच्छी लगी। अनेक विघ्नों के पश्चात् एक अच्छी स्थिति का अनुभव हुआ, उससे मन की जड़ता का अच्छी तरह से बोध हुआ और मैं आत्मा इच्छा-प्रयत्न करता हूँ, इसका भी अच्छी तरह से परिज्ञान हुआ। कुल मिलाकर सांयकाल की उपासना अच्छी होने से सारी दिनचर्या को मैंने अच्छा समझा। यह मेरा अनुभव रहा।

स्वामी जी - भोजन नहीं करने के पक्ष में कुछ घन्टे पहले पाचक को सूचना दे देनी चाहिए। नहीं देते हों तो सूचना देना आरम्भ कर दें। अब आप सुनाएँगे -

साधक ७- प्रातःकाल ३ बजे जागरण कर थोड़ा-सा जल पीकर नित्य कर्म से निवृत्त हो हाथ-पैर धोकर अभ्यास किया। उसके पश्चात् व्यायाम और प्राणायाम किया। प्राणायाम के पश्चात् मन्त्र का जप किया। उसके पश्चात् यज्ञ में चले गये। उसके .....।

स्वामी जी - तो आत्मनिरीक्षण में प्रसंग के अनुकूल बातें कही जाती हैं, सभी नहीं। मुख्य बात है जो-जो अपने लिए और अन्यों के लिए उत्तम कार्य करने योग्य थे, वे नहीं हुए तथा जो अपने लिए या अन्यों के लिए हानिकारक थे, वे कितने हुए; उनको बताना चाहिए। विशेष कर भोजन के सम्बन्ध में आपको सावधान रहना चाहिए। भूख न लगने पर भोजन न करना, जितनी भूख लगी है उससे कम खाना, भोजन को स्वाद ले-लेकर न खाना आदि। दोहराइए क्या समझ में आया?

साधक ८- भूख न होने पर भोजन न खाना, जितनी भूख लगी है उससे कम खाना, स्वाद लेकर भोजन न खाना।

स्वामी जी - भोजन को स्वाद की दृष्टि से न खाना किन्तु बुद्धि बढ़ेगी, शक्ति मिलेगी, विद्या पढ़ाएँगे, प्रचार करेंगे आदि दृष्टि से खाना। आ गया समझ में? आगे शरीर को स्वस्थ रखने के लिए यथाशक्ति प्रयास करना यथा व्यायाम, ब्रह्मचर्य का पालन आदि तथा स्वास्थ्य को बिगाड़ने वाले जितने कार्य हैं, उनको न करना यथा व्यायाम न करना, जो नहीं खाना चाहिए (लहसुन, प्याज आदि) उसको खा लेना, राग के कारण घी आदि पदार्थों को अधिक खा लेना। भोजन की आवश्यकता न होने पर भी राग के कारण भोजन खा लेना, शरीर से पुरुषार्थ न करना आदि। स्वयं को परिज्ञान न होने पर किसी वैद्य या जानकार से पूछना किन्तु वह भी पहले अधिकारियों से अनुमति लेकर पूछें। बिना अनुमति के चाहे किसी डॉक्टर या वैद्य से पूछना भी उचित नहीं होगा। ये स्वास्थ्य से संबद्ध नियम हुए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसके अतिरिक्त जो नियम बने हुए हैं, उनके विरुद्ध अन्य किसी प्रकार की योजना न बनाना जैसे कि आप कभी कोई भी योजना बनाने बैठ जाते हैं; ऐसा नहीं करना। अच्छा ! चलते-फिरते, आते-जाते आपका मन नियन्त्रण में रहता है या नहीं, क्या अनुभव करते हैं आप ?

साधक ३ – कभी-कभी तो नियन्त्रण में रखते हैं और कभी खुला भी छोड़ देते हैं।

स्वामी जी – क्या आपको दोनों धाराएँ समझ में आती हैं ? क्या यह अनुभव होता है जब हम मन को नियन्त्रण में रखते हैं तो एक भिन्न स्थिति होती है और नियन्त्रण न रहने पर भिन्न स्थिति होती है ? नियन्त्रित होने पर लगता है कि मेरा मन नियन्त्रण में है। चाहे जिस विषय को नहीं पकड़ सकते। चाहे जो विषय आकर प्रवेश नहीं कर सकता। यह प्रथम धारा है। दूसरी धारा भी दो प्रकार की है जिनमें एक स्थिति में विषय प्रवेश करते रहते हैं, अर्थात् हम उन्हें प्रवेश करवाते रहते हैं और उस ओर हमारा कोई ध्यान नहीं रहता। दूसरी स्थिति में विषय को बलात् रोकने में प्रयत्नशील रहते हैं किन्तु वे घुसते हुए दिखाई देते हैं अर्थात् चाहते हुए भी उनको रोक नहीं पाते हैं। ये तीनों स्थितियाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की हैं। समझ में आ गया ?

साधक ३ – विषयों को रोकने के लिए आजकल मुझे अधिक प्रयास नहीं करना पड़ता, सरलता से वे नियन्त्रण में आ जाते हैं।

स्वामी जी – कभी आपको चलती हुई विचारधाराएँ भी रुकी हुई प्रतीत होती हों; ऐसा तो नहीं है ? ऐसा होता है कि सूक्ष्म मानसिक तरंगे चलती रहती हैं, जिनको व्यक्ति पकड़ नहीं पाता है। जब पकड़ नहीं पाता है तब मान लेता है कि मेरे मन में कोई वृत्ति या विचार नहीं उठ रहे हैं। यह भी एक अवस्था रहती है मन की। कुछ पकड़ में बात आई या नहीं आई ?

साधक २ – कुछ विषयों का विचारणीय रूप में निर्धारण कर रखा है, इसलिए उनको तो रोकने का प्रयास नहीं करते हैं। उनको चलाते रहते हैं। सूक्ष्मता से अभी इनका नियन्त्रण भी नहीं होता है। यदि बलपूर्वक नियन्त्रण करते हैं तो थकान हो जाती है। वैसे सामान्य अनिर्धारित विषयों में तो मन को नियन्त्रित कर लेते हैं।

स्वामी जी – और जब आप आत्मा, मन पर नियन्त्रण करने का अभ्यास कर लेंगे, कुछ अच्छी स्थिति आ जाएगी, तब भी आपको प्रायः थकान जैसी स्थिति नहीं आयेगी। इस स्थिति में मान लिया थकान हो गई तो व्यक्ति क्या करता है ? वह कहता है - अब मैं नहीं सोचूँगा, विश्राम करूँगा। नियन्त्रित अवस्था में यह उपाय भी अपनाया जाता है। जब हमारा आत्मा, मन पर नियन्त्रण नहीं होता है, तब हम विचारों को रोकना चाहते हुए भी रोक नहीं पाते हैं। जैसे कि हम विश्राम करना चाहते हैं तो वे विश्राम नहीं करने देते; यह स्थिति रहती है।

साधक ३ – वहाँ एक ऐसी स्थिति होती है कि मन को पकड़ रखा है तब भी थकान होती है। अब मन को कहीं नहीं लगा रहे हैं तो भी थकान क्यों होती है ?

स्वामी जी – उसमें दो बातें होती हैं। एक तो यह कि आपको मन को पकड़ने का जो विज्ञान है, वह नहीं आया अथवा इतना अभ्यास नहीं हुआ कि एक स्वाभाविक स्थिति बन जाए। स्वभाव बन जाने पर बल नहीं लगता। स्वाभाविक बनने पर या अच्छा विज्ञान हो जाने पर न तो तनाव होता है, न बल लगता है। बल लगने की स्थिति तो नए व्यक्ति की होती है। हाँ ! मान लिया, जब नितान्त रोकते हैं तब उसमें बल लगता है और थकान होने लगती है। इस स्थिति में किसी एक विषय को उठा लेते हैं जैसे ओ३म् सच्चिदानन्द। तो नितान्त रोकने में जब आपको प्रतीत हो कि तनाव लग रहा है तो योग से सम्बद्ध सीधे-सादे किसी एक विषय को उठा लें।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– यदि बुद्धि पूर्वक ऐसा करते हैं कि चलो ! मन को किसी विषय में नहीं जाने देना है अथवा अब केवल एक ही विषय को विचारना है अथवा ऐसा कोई काम करते हैं जिसमें मस्तिष्क पर बल पड़ता है या चिन्ता आती है, तब थकान हो जाती है।

स्वामी जी – थकान की दृष्टि से उसको रोकने के लिए यह प्रयोग किया जा सकता है कि उस समय जो कार्य कर रहे हैं उस पर विशेष बल नहीं लगाया जाए अथवा किसी सामान्य विषय को उठा लिया जाए। परन्तु जो नितान्त रोकना है, किसी में नहीं लगाना है, इसमें पहले की अपेक्षा अधिक बल लगता है, पुनरपि अधिक अभ्यास होने पर इसमें भी बिलकुल बल नहीं लगता। क्योंकि कोई भी कार्य स्वाभाविक बना लेने पर सामान्य हो जाता है। आप ने संसार को प्रलय जैसी अवस्था बनाने का बहुत अभ्यास कर लिया तो अब बल नहीं लगेगा। जब आप नए-नए हैं और दिन भर प्रलयावस्था बनाए रखना चाहते हैं तो दिनभर एड़ी से चोटी तक बल लगाना पड़ेगा, अन्यथा वह अवस्था नहीं टिकेगी।

आपने अभ्यास किया है कि ईश्वर सर्वव्यापक है और जीवात्मा व्याप्य है, प्रकृति भी व्याप्य है, सृष्टि भी व्याप्य है। इस व्याप्य-व्यापक के सिद्धान्त को लेकर आप प्रयोग कर रहे हैं और ईश्वर-प्रणिधान का सम्पादन कर रहे हैं। इसका आपको बहुत अच्छा अभ्यास हो गया है तो अब आपको कठिनाई का अनुभव नहीं होगा, जबकि पहले-पहले होगा। व्यायाम करते हुए किसी व्यक्ति को आपने देखा होगा कि वह जब नया-नया होता है दो-चार दण्ड लगाते ही उसका शरीर टूटता है, बड़ी थकान होती है, व्यायाम नहीं करना चाहता किन्तु कालान्तर में वही व्यक्ति रुचि पूर्वक हजार-हजार दण्ड लगा लेता है। अध्ययन में भी ऐसा ही होता है। आप किसी को अष्टाध्यायी याद कराने लगो तो आरम्भ में उसको बहुत कष्ट होता है किन्तु कालान्तर में वही सरलता से याद करने लगता है।

एक व्यवस्था से सम्बन्धित बात। आपको यदि मच्छर काटते हैं तो आप मच्छरदानी का प्रयोग कर सकते है। टांगने के लिए लाठी का प्रयोग कर सकते हैं या खूंटी में बांध सकते हैं, उसे आप देख लेना। इसके अतिरिक्त आपके कार्य में अन्य कोई बाधा उत्पन्न होती है और वह दूसरे से सम्बद्ध है तो उनको बताते रहना चाहिए। मुझे बतलाएँ या किसी अधिकारी को। अब आपको कोई और बात पूछनी हो तो पूछो !

साधक ३– स्वयं का परीक्षण करते समय यह निर्णय कैसे करें कि मेरी स्थिति बन गई है। जैसे कि एकाग्रता का अभ्यास कर रहे हैं तो इसको हम पूरा सत्य कैसे मानें? मन को रोक लिया या अपनी आत्मा को साक्षीभाव मानकर प्रयोग कर रहे हैं तब यह ठीक है, इसको कैसे मानें? मेरा मन भी रुका हुआ है; इसको कैसे समझे?

स्वामी जी – प्रयोग से यह पता चलेगा। उसमें आपका ज्ञान पूरा काम करना चाहिए। जब आप उसी प्रयोग को बार-बार करेंगे और ध्यान देंगे तो आपको पूरी स्थिति समझ में आ जाएगी कि वास्तव में पूरी वृत्तियाँ रुक जाती हैं और यदि पूरी वृत्तियाँ नहीं रुकती हैं, भ्रान्ति रहती है तो उसका भी पता चल जाएगा।

साधक ३– और व्यवहार काल में बाहर चलते-फिरते विषयों का तीव्र आक्रमण नहीं होता या बिलकुल नहीं होता, यह विज्ञान काम करता है। परन्तु यह कैसे कहें कि हमारा ज्ञान बिलकुल ठीक है?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – इसका उत्तर दिया कि लम्बे काल तक जब आप बार-बार प्रयोग करते रहेंगे, उसको बार-बार बहुत सूक्ष्मता से देखेंगे तब यदि वह वृत्ति सूक्ष्म रूप में उभरती है, तो भी पता चल जाएगा और कोई वृत्ति आती नहीं, उनको पूरा रोक देते हैं, तो भी स्पष्ट हो जाएगा कि वास्तव में वृत्ति पूरी रुक गई है।

साधक २– मेरी वृत्ति रुक गई है या मेरा मन नियन्त्रित है, इसका इनको कैसे पता चलेगा कि मैं सच बोल रहा हूँ? या इनकी वृत्ति रुक गई है, इसको मैं कैसे मान लूँ?

स्वामी जी – अब मैं यही उत्तर दे रहा हूँ।

साधक २– मुझे कैसे पता चलेगा?

स्वामी जी – इनको स्वयं को न?

साधक २– नहीं! इनका मन नियन्त्रित है या इनकी वृत्तियाँ रुकी हुई हैं; इस विषय में ये जो कह रहे हैं, उसको मैं कैसे सत्य मान लूँ कि ये ठीक कह रहे हैं।

स्वामी जी – मैं यह कहता हूँ कि हम इनकी बात सुनेंगे किन्तु हम एकदम सत्य नहीं मानेंगे उसको। ऐसा मानकर चलेंगे कि ये जो प्रयोग कर रहे हैं, वास्तव में ऐसा हो भी सकता है और इनको भ्रान्ति भी हो सकती है। इसलिए जब तक कोई ऐसा प्रमाण न मिल जाए, तब तक पूर्ण सत्य नहीं मानेंगे।

साधक २– उसका कोई लक्षण नहीं होता है?

स्वामी जी – नहीं होता है। हमारे लिए तो पहले यही रहेगा कि हम या तो इनको शत-प्रतिशत सत्यवादी मान लें, तब निर्धारण हो सकता है।

साधक २– केवल शब्द प्रमाण से।

स्वामी जी – हाँ! शब्द प्रमाण से होगा। हम केवल प्रत्यक्ष प्रमाण ही नहीं मानते हैं, अन्य प्रमाण भी मानते हैं। अन्यथा जैसे दूसरे लोग प्रत्यक्ष प्रमाण को ही सब कुछ मानते हैं, वह दोष आ जाएगा। यह उनकी उलझन है हमारी नहीं। हम जब शत-प्रतिशत मानेंगे तब शब्द-प्रमाण के आधार पर मान लेंगे।

साधक २– अनुमान आदि कोई प्रमाण भी लेंगे?

स्वामी जी – अनुमान से तो अर्थात् इनके व्यवहार यथा - उठना-बैठना, खाना-पीना, लेना-देना आदि से भी कुछ पता चलेगा। ये व्यक्ति इतने योग्य हैं, वास्तव में बहुत परिश्रम करते हैं, इनकी सारी क्रियाएँ एक उच्च कोटि के योगाभ्यासी जैसी हैं और ये परीक्षा पूर्वक ही बोलते हैं। जब ये सारा मिलान करेंगे तब यह बात जंचने लगेगी कि वास्तव में इन्होंने जो बात कही कि इतने काल तक मैंने सर्वथा वृत्ति रोक ली, यह बात सत्य है और जँचने लगेगी।

तो समय देखो, मेरी घड़ी में हो गया है। आप सोते समय अपने दरवाजे आदि बन्द रखना। वहाँ रहने, उठने-बैठने, खाने-पीने आदि में करदीप (टार्च) साथ रखना और सुरक्षा की दृष्टि से सीटी न हो तो ले लेना। आप प्रातः काल यदि शौच के लिए बाहर जाते हैं तो साथ में डण्डा और सीटी रखें। आजकल अपनी तथा अन्यों की सुरक्षा के लिए यह अत्यन्त आवश्यक है। अब विराम॥

CC-0. Jangamwadi Math Collection. Digitized by eGangotri and Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१४ यज्ञीयोपदेश

विधिपूर्वानुष्ठान : आषाढ़ पूर्णिमा २०६०-१३/७/०३

जब आप मन्त्र बोलते हैं तब मन्त्र के शब्दों का जो अर्थ है, वह आपके मन में उपस्थित रहना चाहिए। अर्थ करते समय ईश्वर को सम्बोधित करते हुए स्वयं को ईश्वर-समर्पित रखना चाहिए। आपको क्या समझ में आया? ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते समय जिन-जिन बातों का ध्यान रखना चाहिए उन्हें कौन सुनाएगा? चलो! आप ही सुनाओ -

साधक २- ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते समय जिन मन्त्रों से हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर रहे हैं, उन मन्त्रों का शब्दार्थ मन में रहना चाहिए। अर्थ करते समय ईश्वर को सम्बोधित करते रहना चाहिए और उसी काल में ईश्वर के समर्पित भी रहना चाहिए।

स्वामी जी - अब शब्दों के आधार पर हम अपनी स्थिति का परीक्षण करेंगे। प्रयोग करते समय हम यह ध्यान रखेंगे कि जो स्थिति बताई गई है वह मेरे प्रयोग में है या नहीं? यदि है तो समझना चाहिए कि मेरा प्रयोग ठीक है। यदि प्रयोग में नहीं है तो समझना चाहिए कि मेरे प्रयोग में दोष है। अब इस बात को लोक के साथ जोड़कर देखो। वहाँ आपको ऐसा मिलेगा कि कोई व्यक्ति बीस वर्ष तक गुरुकुल में रहा और पूरे समय तक संध्या करता रहा। आज वह लगभग साठ-सत्तर वर्ष का हो गया किन्तु यह विधि उसको अभी तक नहीं आई। एकाध को छोड़ दो, शेष की यही स्थिति मिलेगी। आपका क्या अनुभव है?

परिणाम यही बताता है कि जो व्यक्ति इस विधि से संध्या करता है और दैनिक व्यवहार में भी ईश्वर की आज्ञा का पालन करता है तो वह विकसित न हो, योग में गति न करे और ईश्वर के सान्निध्य को प्राप्त न कर पाए; यह नहीं हो सकता। यद्यपि बिना विधि के करने से कुछ संस्कार बनते हैं, कुछ हाव-भाव बनते हैं, कुछ भाव मन्त्रों से भी आ जाते हैं परन्तु जिस मुख्य प्रयोजन के लिए ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना की जाती है, जीवन का उत्कर्ष, ईश्वर-साक्षात्कार करना; यह सब कुछ नहीं होगा।

अब आप प्रयोग करेंगे और ध्यान देंगे। यद्यपि ध्यान काल में किसी का उतना अभ्यास नहीं है कि उच्चारण के कोई दोष न हों। व्याकरण की दृष्टि से अनेक त्रुटियाँ रह सकती हैं क्योंकि बाल्यकाल से अभ्यास नहीं करवाया गया। परन्तु कोई बात नहीं, उनकी ओर विशेष ध्यान नहीं देना है। विशेष ध्यान उन कर्त्तव्यों की ओर देना है जो अभी बताए गए हैं।

अब प्रयोग करेंगे। **ओ३म्** (गायन सहित लम्बा प्रयोग)। उच्चारण का स्तर क्या रहेगा? जब हम **ओ३म्** बोल रहे होते है तब हम ईश्वर को सम्बोधित करते हैं कि हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक हैं। हमने **ओ३म्** का उच्चारण किया, अर्थ किया, ईश्वर को सम्बोधित किया और स्वयं को ईश्वर के समर्पित रखा। **भू.....र्_**। इस उच्चारण में हमने कहा - हे ईश्वर! आप प्राणों के भी प्राण है। यह अर्थ किया, ईश्वर को सम्बोधित और अपने आपको ईश्वर के समर्पित रखा। **भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥** आप बताएँगे कि जैसा बताया वैसा हो सका या नहीं?

साधक ३- साथ-साथ अर्थ करना और ईश्वर-समर्पित रहना, इसका प्रयास किया परन्तु मध्य में एक-दो बार चित्र जैसे ईश्वर के रूप में मैंने देखे। शेष स्थिति अपेक्षाकृत ठीक रही।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ जी ! आप लिखने में लगे हैं। अच्छा ! आप सुनाएँगे –

साधक ४– स्वामी जी ! दो बार स्मृतिवृत्ति उठाई और कहीं-कहीं अर्थ छूट गया।

स्वामी जी – तो पुनः क्या किया ?

साधक ४– तो पुनः दोबारा बनाने का प्रयास किया।

स्वामी जी – पुनः उसी स्थिति में आ गए। स्वभाव से यह बात सिद्ध है कि आप जब करने लगेंगे तो स्थिति भंग होगी, पुनः प्रयास करेंगे पुनः भंग होगी। पुनः प्रयास करेंगे। यह कोई नई घटना नहीं है। दिन में हजार बार ऐसी स्थिति बनाते हैं और बिगड़ती है। मन में काम, क्रोध उभरेंगे, उनको रोकेंगे; उभरेंगे, उनको रोकेंगे। दिन में हजार बार यह घटना हो सकती है। एक क्षेत्र विद्या का है, दूसरा कर्म का है, तीसरा उपासना का है। इन तीनों क्षेत्रों में ये घटनाएँ लगातार होती रहेंगी। आप दिनभर तीनों क्षेत्रों में यही करते रहेंगे – अच्छे भाग को लाएँगे और बुरे को हटाएँगे। समझ में नहीं आया हो तो पूछो ?

साधक ४– स्वामी जी ! ईश्वर को सम्बोधित करना और ईश्वर के समर्पित रहना, इन दोनों में क्या अन्तर है ?

स्वामी जी – इन दोनों में अन्तर है कि कभी ईश्वर को सम्बोधित करते हैं, जैसे कि हे ईश्वर ! आप प्राणों के भी प्राण हैं। उस समय आत्मा को ईश्वर के प्रति समर्पित नहीं कर पाते हैं और कभी आत्मा को समर्पित करते है किन्तु ईश्वर को सम्बोधित नहीं कर पाते हैं। ऐसी घटना होती रहती है।

साधक १– समर्पित कैसे करते हैं ?

स्वामी जी – जैसे एक आचार्य के समक्ष एक बुद्धिमान्, अच्छे संस्कार वाला बालक स्वयं को यह मानता है कि मैं गुरुजी के पास बैठा हूँ। मेरा शरीर, सामर्थ्य जो कुछ है उनको गुरुजी देख रहे हैं। मैं गुरुजी की स्तुति कर रहा हूँ। आप महान् विद्वान् हैं, बलवान् हैं, धार्मिक हैं और मैं आपके सामने हूँ तथा आप मुझे अच्छी तरह जान रहे हैं।

एक अन्य मोटा दृष्टान्त ले सकते हैं माता-पुत्र का। जैसे कि बालक अपनी माँ की गोद में जाकर बैठ जाता है और अपने आपको माँ के आधीन कर देता है। यही बात ईश्वर के पक्ष में लागू हो जाएगी। साधक के ज्ञान में ये बातें आ चुकी होती हैं कि सब कुछ ईश्वर का है, यह शरीर, इन्द्रियाँ ईश्वर की बनाई हुई हैं। इस प्रकार सब कुछ ईश्वर का मानना और अपने आपको ईश्वर के समक्ष उपस्थित कर देना, यह समर्पण है।

इसके विपरीत जब व्यक्ति ईश्वर से जुड़ा हुआ नहीं है। सारी वस्तुएँ ईश्वर की हैं, यह उसकी बुद्धि में नहीं है। ईश्वर को इनका कर्त्ता-धर्त्ता नहीं मानता है और बाहर की वस्तु के साथ उसका आकर्षण, प्रेम या द्वेष बना रहता है। यह ईश्वर-समर्पण से विपरीत आचरण है। अब हम निष्काम कर्म के क्षेत्र में विचार करेंगे।

साधक २– एक बात पूछनी थी यहाँ पर मन्त्र में एक शब्द है, 'यो' दूसरा शब्द है 'तत्'। ये दोनों शब्द साक्षात् ईश्वर-समर्पण करने में बाधक बन रहे हैं। क्योंकि इनसे दूरी की प्रतीति हो रही है। इसको कैसे हटाएँगे ?

स्वामी जी – तो इसका समाधान ऐसे करेंगे कि 'तत्' का अर्थ है 'उसको'। तो जैसे ही 'तत्' का अर्थ आयेगा 'उसको' उसी समय कहेंगे हे ईश्वर ! 'आपको'। (आपके स्वरूप को)

साधक २– शब्द का अर्थ बदलेगा ?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – पूरा अर्थ बदलेगा। वहाँ पर प्रथम पुरुष ईश्वर को मध्यम पुरुष बना लेंगे। तत् कर्म है, उस ईश्वर को। तो जब ईश्वर समर्पण करने लगेंगे तब वहाँ पर इसका अर्थ करेंगे हे ईश्वर ! आपको। आपको कहने पर समर्पण वाली स्थिति आमने-सामने वाली बन जाएगी। ऐसे ही 'यो' शब्द वहाँ आया अब उसका अर्थ बदल देंगे। 'यो' का अर्थ है 'जो'। 'जो ईश्वर' के स्थान में अर्थ करेंगे 'हे ईश्वर ! आप'। इस प्रकार से जहाँ-जहाँ भी हमने आमने-सामने की दृष्टि से अर्थ बदलना होता है, वहाँ-वहाँ अन्य पुरुष को मध्यम पुरुष में ले आते हैं।

साधक १ – आमने-सामने की स्थिति से क्या अभिप्राय है ?

स्वामी जी – ईश्वर हमारे सामने उपस्थित है, हम ईश्वर के सामने उपस्थित हैं। यह आमने-सामने का अर्थ है।

साधक १ – यह पूर्ण स्थिति है ?

स्वामी जी – पूर्ण की व्याख्या करनी पड़ेगी।

साधक १ – क्या इस प्रकार आमने-सामने मानकर चलना सर्वाधिक उच्च स्थिति है ?

स्वामी जी – सर्वाधिक उच्च स्थिति है, इतने कथन मात्र से उच्च स्थिति की व्याख्या नहीं हो सकती। पृथक् से इसकी व्याख्या करनी होगी, यह सर्वाधिक उच्च स्थिति है। यहाँ तो हमने इतना देखना है कि यह आमने-सामने की स्थिति है। इतना ही लेना है।

साधक १ – यहाँ पर व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध यथार्थ रूप में घट रहा है क्या ?

स्वामी जी – हाँ, घटेगा। जब आपने पहले से इस रूप में समझ रखा है कि ईश्वर व्यापक है और जीवात्मा तथा प्रकृति व्याप्य है। इस प्रकार पूरे विश्व को तीन क्षेत्रों में बांट लिया है। अब आप ईश्वर को समर्पित होने लगते हैं तब आमने-सामने कहने में कोई दोष नहीं आएगा। जिस ईश्वर के प्रति आप समर्पित हो रहे हैं - वह सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् और सर्वव्यापक भी है। तीनों वर्ग अर्थात् पदार्थ मात्र व्याप्य है।

एक होता है प्रत्यक्ष-प्रमाण से अनुभवयुक्त ज्ञान, दूसरा होता है शब्द-प्रमाण और अनुमान-प्रमाण से परिज्ञान। प्रत्यक्ष-प्रमाण से तो व्याप्य-व्यापक भाव का अनुभूतज्ञान नहीं हो रहा है किन्तु शब्द-प्रमाण से ज्ञान हो रहा है। यहाँ शब्द-प्रमाण के आधार पर भी व्याप्य-व्यापक भाव ज्यों का त्यों जाना जा रहा है। इसी प्रकार शब्द-प्रमाण से ज्ञात अन्य बातें भी उसकी बुद्धि में हैं। यद्यपि एक साथ ईश्वर के सारे गुण उसकी बुद्धि में उपस्थित नहीं होंगे। जब कभी बीच में झलक आयेगी, जैसी कि प्रायः आती है, मैं कहाँ हूँ और ईश्वर कहाँ है, यह प्रश्न उठेगा तब झट समाधान के रूप में यह बात आयेगी कि ईश्वर व्यापक है, मैं व्याप्य हूँ और ईश्वर सर्वज्ञ है, मैं उसको समर्पित हूँ। यह व्यापकत्व गुण प्रधान रहेगा उस काल में। यद्यपि हम कालान्तर में बदलकर अन्य गुण को भी प्रधानता दे सकते हैं। जैसे ईश्वर सर्वज्ञ है मैं उसको समर्पित हूँ, ईश्वर सर्वशक्तिमान है मैं उसको समर्पित हूँ आदि।

अब आप ध्यान देंगे इस बात पर कि निष्काम कर्म व सकाम कर्म का स्वरूप क्या है ? व्यक्ति अपने लिए जो-जो शुभ कार्य करता है वे कभी सकाम होते है और कभी वे ही निष्काम बन जाते हैं। समझ में आ गया होगा।

साधक ३ – हाँ ! जी।

स्वामी जी – व्यक्ति दूसरों के लिए जो-जो शुभ कार्य करता है वे कभी सकाम होते हैं और कभी वे ही निष्काम बन जाते हैं। उदाहरण के लिए - आप स्वयं वेद को पढ़ते हैं, दर्शनों को पढ़ते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं या किसी अन्य शास्त्र का गम्भीरता से अध्ययन कर रहे हैं तो यह शुभ कर्म है और आपके अपने लिए है। किसी उद्देश्य से यही सकाम कर्म भी हो सकता है और उद्देश्य बदलने पर यही निष्काम कर्म बन जाएगा। मान लीजिए आप इस विद्या को इसलिए पढ़ रहे हैं कि मुझे धन मिलेगा, मान मिलेगा, यश मिलेगा, कीर्ति मिलेगी, स्वर्ग मिलेगा तो यह सकाम कर्म बनेगा। समझ में आ गया? यदि इसका उद्देश्य बदल दो कि जो यह मैं अंग-उपांग, वेद को पढ़ रहा हूँ। विद्या की प्राप्ति कर रहा हूँ, इसके बदले में मुझे यश, कीर्ति, धन, सम्मान, अधिकार, अच्छे माता-पिता के घर में अगला जन्म आदि नहीं चाहिए अपितु इसके बदले में मुझे ईश्वर चाहिए तो यही निष्काम कर्म बन गया।

इसी प्रकार जब आप दूसरे को विद्या पढ़ा रहे हैं तब वह सकाम कर्म भी हो सकता है और निष्काम कर्म भी हो सकता है। एक व्यक्ति लाखों-करोड़ों रुपए का दान करता है; वह सकाम कर्म भी हो सकता है और निष्काम कर्म भी। आप किसी रोगी की सेवा करते हैं या किसी अन्य प्रकार का सहयोग करते हैं, यह सकाम कर्म भी हो सकता है और निष्काम कर्म भी।

अब आगे बढ़ो। इन निष्काम और सकाम कर्मों को जानने-समझने के लिए आपके अपने व्यवहार यथा उठना-बैठना, चलना-फिरना, बोलना-चालना, खाना-पीना, लेना-देना, अपना कार्य करना, दूसरे का कार्य करना आदि की परीक्षा सतत करनी पड़ेगी। आप सब कार्यों को सकाम भावना या निष्काम भावना से कर रहे हैं, यह परीक्षा आपको करनी पड़ेगी। अभ्यास के कारण जो कार्य सकाम हो गया उसको निष्काम में परिवर्तित कर दो। जैसे कि आप दर्शन-शास्त्र का अध्यापन कर रहे हैं और उस समय एक विचार मन में उठ गया कि इसके बदले में मुझे धन-मान-कीर्ति मिलेगी। मेरे शिष्य-प्रशिष्य होंगे, जो देश-विदेश में प्रचार-प्रसार करेंगे आदि। अब आपने देखा कि यह तो सकाम कर्म होने जा रहा है। ऐसा ठीक नहीं है, इसको मैं निष्काम कर्म में परिवर्तित करता हूँ। वस्तुतः ये सब कुछ करने का फल मुझे ईश्वर का दर्शन होगा, ईश्वर-साक्षात्कार होगा, मुझे ईश्वर का नित्य आनन्द मिलेगा। अब आपने ईश्वर-प्राप्ति उद्देश्य बना लिया तो यह निष्काम हो गया। ऐसे प्रयोग करते-करते आपका जो सकाम कर्म का क्षेत्र है, वह क्षीण होता जाएगा और निष्काम कर्म का क्षेत्र बढ़ता जाएगा। यदि ऐसे प्रयोग आप नहीं करते हैं तो सकाम कर्म का क्षेत्र बढ़ता जाएगा और निष्काम कर्म का जो क्षेत्र थोड़ा बहुत उभरा हुआ है, वह भी दब जाएगा।

निष्काम कर्म की पुष्टि का एक और उपाय याद रखना चाहिए। निष्काम कर्म करने में हम सफल होते हैं, हमको सुविधा हो जाती है जब इस ज्ञान-विज्ञान को हम प्राप्त कर लें कि सारी विद्याओं का आदि मूल परमेश्वर है। निर्मित होने वाले अर्थात् प्रकृति से बने सारे पदार्थों का आदि मूल परमेश्वर कर्त्ता है। यदि आपका यह सिद्धान्त काम करता है तो निष्काम कर्म की सिद्धि आपको शीघ्र हो जाएगी। क्या आया समझ में? नहीं आया तो पूछिये।

साधक ८– निष्काम कर्म की सिद्धि सरलता से हो जाएगी। आगे स्मरण नहीं रहा।

स्वामी जी – तो अन्यों से पूछ लो।

साधक २– यदि ऐसा जान लिया कि सभी विद्याओं का और सभी पदार्थों का आदि मूल निर्माणकर्त्ता परमेश्वर ही है, तो निष्काम कर्म की सिद्धि शीघ्र हो जाएगी।

स्वामी जी – शीघ्र सफलता मिलेगी। आप ध्यान देंगे कि जो व्यक्ति सारी विद्याओं का आदि मूल और सारे निर्मित पदार्थों का कर्त्ता निमित्त कारण ईश्वर को नहीं मानता तो वह अपने आपको इन सबका स्वामी मानता है। यदि वह ईश्वर को इस रूप में जानता-मानता है कि बिना व्यक्तिगत प्रयोजन के संसार का उपकार करना उसका स्वभाव है तो निष्काम कर्म करने में

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सफलता मिलती है। दोहराइए, क्या समझ में आया? जब ऐसे स्वभाव वाले ईश्वर के साथ यह जीवात्मा रहता है, उससे सम्बद्ध है और यह मानता है कि इस ईश्वर के आदेश का पालन करना मेरा धर्म है, इसके विरुद्ध चलना अधर्म है तो उस स्थिति में ईश्वर का उस पर प्रभाव पड़ता है। वह देखता, समझता है कि ईश्वर अनादि काल से और आज भी तथा आगे भी बिना किसी व्यक्तिगत प्रयोजन के संसार का भला करता है। मैं उसी से सारे साधनों को लेकर कुछ कार्य कर पा रहा हूँ। मैं उसकी सहायता के बिना स्वयं कुछ नहीं कर सकता। इसलिए मुझे भी ईश्वर की भांति आचरण करना चाहिए। आ गया समझ में?

आचार्य नैष्ठिक जी – जी! आ गया।

स्वामी जी – अब थोड़ा-सा संकेत आपको बताता हूँ। ध्यान देंगे आप। जैसे कि व्यास भाष्य में हिंसा का विस्तृत रूप में विवरण दिया जहाँ उन्होंने एक बात कही कि यह इक्यासी प्रकार की है। इसके मन, वाणी और शरीर ये तीन साधन हैं। यह व्याख्या आप ने पढ़ी होगी। हम इसका प्रयोग ठीक उलटा करेंगे। हिंसा की जगह अहिंसा को अपनाएँगे। वह भी ठीक इक्यासी प्रकार की होगी। हाँ! आप जब यम-नियमों का पालन करेंगे तब इक्यासी प्रकार की हिंसा और इक्यासी प्रकार की अहिंसा का खाते-पीते, उठते-बैठते ध्यान रखेंगे। इसी प्रकार जैसे अहिंसा के विषय में बताया कि यह इक्यासी प्रकार की है वैसे सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य, अपरिग्रह के विषय में भी जान लेना चाहिए। यह पूरा कर्म का क्षेत्र दिनभर आपके साथ रहेगा। अब विराम॥

१५ क्रियात्मक योगाभ्यास

उपायसंचय : आषाढ़ पूर्णिमा २०६०-१३/७/०३

अब हम **त्र्यम्बकं यजामहे .....।** यजु. ३/६०। इस मन्त्र से ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करेंगे। आप बोलते समय प्रयास करेंगे कि मन्त्र के शब्दों का अर्थ उनके साथ-साथ होता रहे, ईश्वर समर्पण साथ-साथ बना रहे। आत्मा, मन, इन्द्रियाँ अधिकार में रहें और इस कार्य में बाधक कारणों को रोकते रहें। अब बोलेंगे –

ओम् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

जब हम यह लक्ष्य लेकर चलेंगे कि ईश्वर साक्षात्कार करना, करवाना और संसार का उपकार करना है तब इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हमें जानना होगा कि इसके लिए हमारे पास क्या साधन हैं? पुनः इसका उत्तर होगा कि ऋषियों ने बतलाया कि ईश्वर-प्राप्ति करने और कराने का तथा संसार का उपकार करने का साधन योग है। उसके पश्चात् प्रश्न उठेगा कि योग की सिद्धि कैसे हो सकेगी? तब उसका उपाय बतलाया गया कि योग की सिद्धि शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म अर्थात् निष्काम कर्म एवं शुद्ध उपासना से होती है। इसलिए योगी बनने के लिए ये तीनों साधन व्यक्ति को सुसज्जित करने ही पड़ेंगे।

अब हम इस पर विचार करेंगे कि योग की परिभाषा क्या है तो इसके विषय में महर्षि पतंजलि ने कहा – **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** यो.द. १/२। चित्त की वृत्तियों के निरोध को योग कहते हैं। यदि आगे बढ़कर इसको दूसरे शब्दों में कहेंगे तो ऐसा कह सकते हैं – ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना तथा चित्त की एकाग्रता बनाकर, उसके माध्यम से प्रकृति, प्रकृति से बने पदार्थ, जीवात्मा और परमात्मा का ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करना योगाभ्यास है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हम योगाभ्यास करेंगे तब उसके लिए दो कार्य करेंगे। एक, व्यवहार में यम-नियम के माध्यम से ईश्वर के आदेशों का पालन करना। दूसरा, उपासना काल में अन्य विषयों से मन को हटाकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना तथा तत्त्वज्ञान के लिए ध्यान-समाधि का अभ्यास करना।

जब हम इस दृष्टि से सोंचेगें-विचारेंगे तब उसकी सज्जा करेंगे। क्योंकि व्यक्ति कोई भी कार्य करता है तो प्रथम उसकी सिद्धि के लिए कुछ तैयारी करता है, उसके साधनों को उपस्थित करता है। इस नियम के आधार पर देखा जाए तो साधनों के क्षेत्र में यह बात सामने आती है कि जो व्यक्ति ईश्वर का साक्षात्कार करना चाहता है उसे ईश्वर के विषय में पढ़ाया जाए, सिखाया जाए। जब ईश्वर की प्राप्ति करनी है तो साधक-साधिका को यह जानना अनिवार्य होगा कि ईश्वर कैसा है, मैं आत्मा कैसा हूँ, ये शरीर, इन्द्रियाँ, पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश कैसे हैं आदि? अतः इस ज्ञान के साथ ही व्यक्ति उपासना में आसन पर बैठता है।

उपासना आरम्भ करने से पूर्व यह बात ध्यान देने योग्य है कि एक सामान्य विधान है कि किसी भी शुभ कार्य के आरम्भ में ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनी चाहिए और यही विधान इस योगाभ्यास के क्षेत्र में भी लागू होगा और दूसरी बात आती है कि ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना के लिए क्या-क्या विचार करने चाहिएँ। अतः साधक विचार करता है कि मैं अब इस आसन पर बैठकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करूँगा। यह मेरा प्रमुख कार्य है। इसके साथ वह विचारता है कि इस काल में अन्य विषयों को नहीं उठाऊँगा। अन्य विषयों को इसलिए रोका जाता है कि साधक यदि अन्य विषयों को उठाता है तो वह ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना नहीं कर पाएगा। इतना ही नहीं, उपासना के काल में उत्तम से उत्तम विचार यथा पठन-पाठन, परोपकार आदि जितने भी अपने और दूसरों के कल्याण के कार्य हैं, सब को रोक दिया जाता है।

अब साधक किस प्रकार से इन कार्यों को करता है? वह विचार करता है कि मैं अब आसन लगाकर योगाभ्यास के माध्यम से जिस ईश्वर को प्राप्त करना चाहता हूँ, वह कैसा है? यद्यपि इस कार्य का सम्पादन साधक की अपनी-अपनी योग्यता और काल की अनुकूलता पर निर्भर करता है। कम योग्यता होने पर स्थूल भाषा में ईश्वर का लक्षण या वर्णन करता है और ऊँचे स्तर वाला साधक शास्त्रीय भाषा में ही ईश्वर का लक्षण या वर्णन करता है। जैसे कि आप या कोई भी साधक वेदमन्त्रों से, दर्शनों से या आर्य समाज के नियमों से वर्णन करेंगे। यह साधक के ऊपर निर्भर है। इसी प्रकार कौन, कितना समय लगा सकता है, यह उसकी अनुकूलता पर निर्भर करता है। यही बात इन सभी साधनों के प्रयोग के विषय में है। साधक के पास यदि अधिक समय होता है तो वह उन सब साधनों का प्रयोग करेगा। ईश्वर की स्थिति को समझने के लिए, ईश्वर के स्वरूप को मन में बैठाने के लिए कोई साधक केवल वेदमन्त्रों का ही आश्रय लेगा तो कोई वेदमन्त्रों के साथ-साथ दर्शनों के सूत्रों का भी आश्रय लेगा। मुख्य बात है, ऐसा करने से ईश्वर के विषय में जो संशय होता है, भ्रान्ति होती है, वह दूर होती जाती है, हटती जाती है और एक निर्णयात्मक ज्ञान उत्पन्न होता जाता है।

अब आप बताएँगे कि इस वर्णन से आपको क्या समझ में आया? आपमें से कौन बोलेगा, कोई बोलना चाहे तो बोले -

साधक २- साधक जब ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने के लिए आसन पर बैठ जाता है तब वह अपनी योग्यता के अनुसार अर्थात् न्यून योग्यता वाला साधारण शब्दों में भाषा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के शब्दों द्वारा ईश्वर के लक्षण को उपस्थित करेगा। कोई वेदमन्त्रों के द्वारा या आध्यात्मिक शब्दों के द्वारा वर्णन करेगा। इस प्रकार अपनी भिन्न-भिन्न योग्यताओं से, ईश्वर के वाचक विभिन्न शब्दों के माध्यम से ईश्वर के लक्षणों को उपस्थित करेगा। इसी प्रकार काल की भी अपनी सीमा रखेगा अर्थात् जिस साधक की योग्यता अधिक है और उसके पास काल भी अधिक है तो वह सभी साधनों का एक साथ प्रयोग करेगा। वह काल भी अधिक लगाएगा और सभी प्रकार के शब्दों का भी प्रयोग करेगा।

स्वामी जी – आप सबको यह बात समझ में आ गई?

आप को इस बात पर विशेष ध्यान देना है कि जो कोई इसको केवल लिखता है, टेप करता है, संचिकाओं में संगृहीत करता है, किन्तु कण्ठस्थ नहीं करता, स्मरण नहीं रखता तो सफलता नहीं मिलेगी और बिना स्मरण के आगे के प्रयोगों को भी नहीं कर पाएगा, साक्षात्कार की स्थिति बनानी तो दूर की बात रही। आप जानते हैं कि इतना पढ़ने-लिखने के उपरान्त भी लोगों को ईश्वर-साक्षात्कार क्यों नहीं हो रहा है? इसीलिए कि ईश्वरप्राप्ति के सम्बन्ध में उन्होंने जो पढ़ा-सुना, साधनों के सम्बन्ध में जाना, उनका प्रयोग नहीं कर रहे हैं और जिन बाधकों को जाना, उनको हटा नहीं रहे हैं।

साक्षात्कार न होने के विषय में मूल में दो ही बातें होती हैं - उनको विधि का पता नहीं होता तथा कुशल प्रशिक्षक के द्वारा उनको बताया भी नहीं जाता। इस अवस्था में व्यक्ति कितने ही जन्म-जन्मान्तर तक प्रयत्न करता रहे, सफलता नहीं मिलेगी परन्तु विधिवत् पुरुषार्थ करे तो यह नहीं हो सकता कि साक्षात्कार न हो। यदि विधि में भी दोष है तो कितना ही व्यवहार में लाए, सफल नहीं होगा। इससे यह सिद्ध होता है कि आचरण में लाना पड़ता है, विधिवत् प्रयोग करना पड़ता है।

आपके सम्बन्ध में कहा जाए तो जैसा कि मैं समझता हूँ, आपने जितना पढ़ा-लिखा है, केवल उसी से ईश्वर का साक्षात्कार कर लेंगे; यह सम्भव नहीं है। आपमें से किसी को यह संशय न रहे कि बहुत पढ़-सुन लेने मात्र से सफलता प्राप्त हो जाती है। वस्तुतः वैदिक परम्परा में सिद्धान्त को पढ़ने, लिखने और सुनने के साथ-साथ प्रयोग में भी लाना पड़ता है, उसके अनुकूल आचरण भी करना पड़ता है। उस स्थिति में जाकर ईश्वर की प्राप्ति होती है, तब जीवन सफल होता है।

साधक १ – 'मैं समझता हूँ' आपके इस कथन का क्या अभिप्राय है?

स्वामी जी – मेरी दृष्टि में अर्थात् मैं ऐसा ही मानता हूँ, किन्तु ऐसा ही हो, यह अनिवार्य नहीं।

अब यह प्रश्न उठता है कि प्रातःसायं ईश्वर का लक्षण-कथन, उसके स्वरूप का वर्णन, पुनः पुनः क्यों किया जाता है? यह इसलिए कि एक समान ही दोनों कालों में करना चाहिए। इससे संशय दूर होते हैं, मिथ्याज्ञान शनैः शनैः नष्ट होता है, अन्यथा कठिनाई होती है। जैसे-जैसे लक्षणों की आवृत्ति होती जाएगी, वैसे-वैसे संशय, भ्रान्ति आदि दूर होते जाएँगे। कालान्तर में सुदृढ़ अवस्था बन जाती है।

अब प्रयोग की आवृत्ति - आसन पर बैठकर पूर्वोक्त बातों को ध्यान में रखते हुए साधक स्थूल रूप से इस प्रकार विचार करता है - स्वामी दयानन्द जी ने ईश्वर के स्वरूप का जो वर्णन किया है, मैं उसी स्वरूप वाले ईश्वर को प्राप्त करना चाहता हूँ। साधक की स्थिति उस समय ऐसी होती है कि वह स्वामी दयानन्द जी को आप्त पुरुष मानता है। इसी से यह बात सिद्ध होती है कि आप्तता को स्वीकार किए बिना विश्वास नहीं होता है। अब इस अवस्था में बैठकर साधक कहता है - हे ईश्वर! मैं आपको प्राप्त करना चाहता हूँ, आपका साक्षात्कार करना चाहता हूँ। महर्षि ने आर्य

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection, Kapil Tripathi Vidyapeeth, Sagar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज के दूसरे नियम में आपके स्वरूप का वर्णन इस प्रकार से किया - ईश्वर सच्चिदानन्दस्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है उसी की उपासना करनी योग्य है।

यदि और वर्णन करना चाहता है तो पुनः कहता है - हे ईश्वर ! महर्षि ने आर्य समाज के प्रथम नियम में भी आपका वर्णन किया है, जो इस प्रकार से है - सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है। हे ईश्वर ! आप में अनन्त विद्याएँ हैं। आप सृष्टि के सम्पूर्ण पदार्थों के रचयिता हैं।

अब स्वयं के विषय में साधक यह विचार करे - हे परमेश्वर ! मेरा स्वरूप जो शब्द-प्रमाण व अनुमान-प्रमाण से सिद्ध है, जैसा कि ऋषियों ने जाना है - मैं आत्मा हूँ, सत्-चित् हूँ, एकदेशी हूँ, अल्पज्ञ हूँ, कर्म करने में स्वतन्त्र तथा फल प्राप्त करने में आपके आधीन हूँ। मैं ज्ञान, इच्छा, द्वेष, प्रयत्न गुण वाला तथा सुख-दुःख का अनुभव करने वाला हूँ, यही मेरा स्वरूप है।

अब प्रकृति के विषय में साधक विचार करता है - हे ईश्वर ! मेरा यह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, अहंकार, पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि पूरी सृष्टि सत्त्व, रज, तम नामक प्रकृति से बने हुए पदार्थ हैं। इन साधनों के माध्यम से हम आपको प्राप्त करते हैं। इन साधनों के निर्माता आप ही हैं। इनके रक्षक आप ही हैं। न तो स्वतः इनका निर्माण होता है, न आपके बिना इनकी रक्षा ही सम्भव है।

उपासनाकाल में पूरे विश्व को तीन भागों में बाँट देना चाहिए।

१. ईश्वर साध्य है, प्राप्त करने योग्य है

२. मैं जीवात्मा हूँ, साधक हूँ।

३. प्रकृति और प्राकृतिक पदार्थ साधन हैं

इस प्रकार विचार करके ईश्वर की स्तुति, प्रार्थना और उपासना करनी चाहिए। इसके साथ-साथ जैसा कि ऋषियों ने बताया है, अपने शरीर में ही किसी एक स्थान विशेष में धारणा अर्थात् केन्द्र बना लें। उसी केन्द्र पर स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर रहा हूँ, ऐसा मानते रहें।

अब प्रयोग करेंगे, शब्द होगा - ओम् सच्चिदानन्द।

ध्यानकाल में **उच्चारण, अर्थविचार, समर्पण, सम्बोधन, ईश्वर-प्रणिधान** और **सम्बन्ध**; ये कार्य करने होते हैं और इच्छा, प्रयत्न आदि की भी अनुभूति बनी रहे। शनैः शनैः अभ्यास से सब होता है।

इसमें प्रथम कार्य **उच्चारण** करना होता है, जैसे साधारण रूप में बोलना, स्वर-सहित मन्त्रादि बोलना तथा संगीतमय गीत, भजन आदि के रूप में बोलना। यहाँ बोलेंगे - ओम् सच्चिदानन्द।

इसमें दूसरा कार्य है **अर्थ का विचार** करना - इसमें भी तीन स्थितियाँ होती हैं, जैसे अर्थ करते समय -

१. **रुक-रुक कर अर्थ करना** जैसे - ओम् = हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। सत् = सदा रहने वाले हैं, सत्तावान् हैं। चित् = चेतनस्वरूप, ज्ञानवान् हैं। आनन्द = आनन्द स्वरूप हैं। इस प्रकार पाठ करते हुए अर्थ करना

२. **पाठ करते हुए लम्बे काल में साथ-साथ अर्थ करना**। जैसे - ओऽऽऽ हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३. सामान्य गति से पाठ करते हुए अर्थ करना। जैसे - ओं सच्चिदानन्द। ओम् = हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक हैं। सत्= सदा रहने वाले हैं, सत्तावान् हैं। चित् = चेतनस्वरूप, ज्ञानवान् हैं। आनन्द = आनन्द स्वरूप हैं। इस प्रकार पाठ करते हुए अर्थ करना।

इस काल में रुकते हुए मध्य-मध्य में नासिका से लम्बा श्वास-प्रश्वास कर सकते हैं।

समर्पण – जैसे कोई बालक या शिष्य अपने माता-पिता या गुरु के अधिकार में रहता है, उन्हीं से सब अपेक्षाएँ पूर्ण करने की इच्छा रखता है, वैसे ईश्वर के समक्ष रहना।

सम्बोधन – जैसे आमने-सामने किसी व्यक्ति को बुलाते हैं, वैसे ही ईश्वर को सामने मानकर बोलना।

ईश्वर-प्रणिधान – ईश्वर-प्रणिधान के अन्तर्गत समस्त पदार्थों का, ज्ञान-विज्ञान का, बल-सामर्थ्य का और स्वयं आत्मा का भी स्वामी ईश्वर को स्वीकार करके चलना होता है। इसके साथ-साथ सभी कार्यों को उसी की शक्ति से कर पा रहा हूँ, यह भावना मन में बनाए रखते हुए, उन क्रियाकलापों के बदले लौकिक-फल की चाह का परित्याग भी करना होता है। ईश्वर के प्रति अतिशय प्रेम रखना, उसे सर्वाधिक प्रिय मानना-समझना, ईश्वर और जीव के जो नित्य सम्बन्ध हैं उनको मानना तथा उनके अनुरूप व्यवहार करना आदि ईश्वर-प्रणिधान के अन्तर्गत कार्य हैं।

सम्बन्ध – अपना सम्बन्ध संसार से हटाकर ईश्वर से जोड़ना चाहिए। उपासक को ईश्वर के साथ माता, पिता, गुरु, आचार्य, राजा आदि सम्बन्ध बनाने चाहिएँ और शेष समस्त सांसारिक सम्बन्धों को छोड़ देना चाहिए। जो व्यक्ति उपासना-काल में सांसारिक सम्बन्धों को लेकर उपासना करता है, उसको सफलता नहीं मिलती। अतः उपासना, सन्ध्या, जप-ध्यान का दोष नहीं है कि वह व्यक्ति इनको करता हुआ ऊँचा नहीं उठा, महान् नहीं बना, ईश्वर को प्राप्त नहीं हुआ। यह उस व्यक्ति का दोष है। इसलिए उपासना काल में सांसारकि सम्बन्धों को हटा देना चाहिए। हटाने के प्रलयावस्था आदि विविध उपाय आपने सुने हैं, उनसे वे सम्बन्ध हटाए जाते हैं।

अब पुनः ओं सच्चिदानन्द का मानसिक प्रयोग करें।

प्रयोग आरम्भ .....समय लगभग २ मिनट।

इस काल में रुकते हुए मध्य-मध्य में नासिका से लम्बा श्वास-प्रश्वास कर सकते हैं।

साधक १ – प्रयोगकाल में हृदय, कण्ठ वा स्थान विशेष का ध्यान बना रहे या इनको विस्मृत भी किया जा सकता है?

स्वामी जी – जीवात्मा हृदय देश में है। वहाँ देशवृत्ति (केन्द्र की अनुभूति) हट जाए और विषयवृत्ति बनी रहे तो कोई बाधा नहीं अथवा केन्द्र की अनुभूति बनी रहे। जैसे तीरन्दाज को लक्ष्य का ध्यान रहता है, वैसे ही साधक की एकस्थानीय वृत्ति बनी रहनी चाहिए। इसका विधान इसलिए है कि मन को देशान्तर में भेज देने पर पुनः उस केन्द्र पर वापस ला सकें। अतः धारणा से मनोनियन्त्रण में सुविधा होती है और बिना केन्द्र बनाए असुविधा होती है।

अब **शन्नो देवीरभिष्टय** मन्त्र का अभ्यास करेंगे। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१६

ज्ञानखण्ड

मृत्युनिश्चय, स्वानुभव : आषाढ़ पूर्णिमा २०६०-१३/७/०३

समाधि प्राप्ति के लिए व्यक्ति को विवेक की आवश्यकता पड़ती है। विवेक की परिभाषा करनी हो तो हम कहेंगे कि वह स्थिति जिसमें व्यक्ति किसी विषय का व्यावहारिक ज्ञान उपलब्ध करता है। जैसे कि एक व्यक्ति यह जानता है कि यह पदार्थ अनित्य है, यह नित्य है। पहले इसमें सन्दिग्ध अवस्था होती है। आगे चलकर ज्ञान की वह स्थिति आ जाती है जिसमें व्यक्ति को शत-प्रतिशत निश्चय हो जाता है और उसका व्यवहार तदनुरूप होने लगता है। यह विवेक की स्थिति है। इसका सूक्ष्म उदाहरण बनेगा कि हम स्वयं चेतन आत्मा को शरीर-मन-बुद्धि-अन्तःकरण व इन्द्रियाँ, इन जड़-पदार्थों से पृथक् समझते हैं और इस विवेक का प्रयोग भी व्यवहार में कर लेते हैं।

अब स्थूल वस्तु शरीर को हम उत्पन्न हुआ-हुआ और नाशवान् जानते हैं। नाशवान् जानने की हमारी जो स्थिति होगी, वह कैसी होगी? इसका दृष्टान्त लेते हैं - पहले आपसे पूछूँ तो जैसा समझते हैं वैसा उत्तर देंगे। क्या आपको यह बात जंचती है, क्या आप निश्चित मानते हैं कि आज रात्रि में आपकी मृत्यु हो सकती है? यद्यपि हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है, ये दोनों पक्ष हैं। एक पक्ष में मृत्यु नहीं भी हो, परन्तु दूसरे पक्ष में निश्चित रूप से हो सकती है। समझ में आया कुछ? आया तो मैं आपसे पूछता हूँ कि आज रात को आपकी मृत्यु हो सकती है; इसको कौन-कौन जानते-मानते हैं, वे बताएँ। नहीं समझ में आया तो पुनः दोहराएँगे। आप बोलिए पर बोलना जरा ध्यान से, आप आठ ब्रह्मचारियों में से कोई भी बोल सकते हैं।

साधक ७- वेद मन्त्र तो कहता है ब्रह्मचारी के पास मृत्यु बिना बुलाए नहीं आती है।

स्वामी जी - आपको अपनी भाषा और स्पष्ट करनी होगी, थोड़ा ऊँचा बोलना पड़ेगा।

साधक ७- ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत। अथर्व. ११/५/१९। ब्रह्मचर्य के प्रताप से देवों ने मृत्यु को भगा दिया। अतः ब्रह्मचारी के पास मृत्यु बिना बुलाए नहीं आ सकती है। भीष्म पितामह इसके उदाहरण हैं।

स्वामी जी - हाँ! तो आपको पता होना चाहिए कि आप प्रसंग से दूर चले गये हैं। आपका मुख्य विषय छूट गया है। इसलिए विषय को पकड़ना सबके बस की बात नहीं होती है। जो ऊँचे स्तर के अध्ययन वाले ब्रह्मचारी हैं, वे ही इस बात को झट पकड़ पाते हैं। वस्तुतः इस विषय को समझने की सबमें एक जैसी योग्यता नहीं होती हैं। अतः सबको समान रूप से सिखाने में भी कठिनाई पड़ती है। तो आपका मुख्य विषय छूट गया है। उसको पकड़ने का प्रयत्न करें।

साधक ७- वैसे सिद्धान्त यही है कि मृत्यु हो भी सकती है।

स्वामी जी - चलिए, आप बोलेंगे।

साधक २- मृत्यु होगी, इस बात का खण्डन तो नहीं कर सकते और दूसरी बात - आज मृत्यु होगी, ऐसा स्वीकार भी नहीं कर सकते। यदि कोई ऐसा अनिवार्य साधन दिख जाए जिससे मृत्यु होती है तब तो यह बात बैठ सकती है।

स्वामी जी - जैसा कि आपने कहा साधन उपस्थित होने पर मृत्यु होगी, यह बात जंच सकती है, नहीं होने पर नहीं जचेंगी; ये दो धाराएँ अलग-अलग हैं। यह बात इन्होंने अपने स्तर की दृष्टि

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से कही है। जैसे कि अनेक डाकू, भयंकर आंतकवादी अपने अस्त्र-शस्त्र लेकर आ चुके हैं और यह निश्चित हो चुका है कि ये छोड़ेंगे नहीं। ऐसी घटना हो जाए तब तो इनके मन में बात बैठ जाएगी। यदि घटना नहीं घटेगी तो नहीं बैठेगी। यही है आपका अभिप्राय? आप सुनाओ -

साधक ५ – इसमें जो एक अनुभव हुआ कि कम जंचेगी ....।

स्वामी जी – आपको भाषा और स्पष्ट बोलनी पड़ेगी। जोर से बोलो, शब्दों को, अक्षरों को पृथक्-पृथक् बोलो।

साधक ५ – मृत्यु की घटना घटने पर यह बात जंचती है कि मृत्यु आज हो जाएगी अन्यथा ऐसा अनुभव नहीं होता है।

स्वामी जी – ठीक बात है। अब आप बोलो -

साधक ३ – सिद्धान्त के रूप में तो यह बात .....।

स्वामी जी – सुनो! सुनो! आपकी भाषा भी घुली-मिली रहती है, उसको ठीक कर लो। यह जो भाषा बताने-समझाने का विज्ञान है, उसको सीखना पड़ेगा। ऊँचाई, अक्षर, शब्द, वाक्य ऐसे हों कि दूसरे व्यक्ति को पकड़ने में कोई बाधा न हो। कुछ अधिक समय लगेगा, परन्तु विषय समझ में आएगा और सबको आयेगा।

साधक ३ – सिद्धान्त के रूप में तो यह बात सिद्ध है कि मृत्यु कभी भी हो सकती है। परन्तु यह बात अभी जंचती नहीं कि मृत्यु आज हो सकती है।

स्वामी जी – इनका भी स्तर सामने आ गया। अब आप बताएँगे -

साधक ४ – जैसा साधक दो ने बताया कि किसी घटना के उपस्थित होने पर यह बात जंचती है कि मृत्यु हो सकती है, अन्यथा नहीं। घटना के बिना तो सम्भावना भी नहीं रहती।

स्वामी जी – आप बोलो -

साधक ८ – स्वामी जी!

स्वामी जी – और थोड़ा ऊँचा बोलो।

साधक ८ – स्वामी जी! जैसे आपने विकल्प रूप में बताया कि मृत्यु हो सकती है, तो उस स्थिति में....।

स्वामी जी – निश्चित रूप में मृत्यु हो सकती है, इस शब्द का ध्यान रखना। आज मृत्यु हो भी सकती है और नहीं भी हो सकती है; यह विकल्प है। परन्तु जो मृत्यु है, वह निश्चित है। आज मृत्यु का कोई कारण उपस्थित नहीं है, पुनरपि हम यह मानते हैं कि आज रात्रि में निश्चित रूप से मृत्यु होगी। चाहे किसी भी कारण से हो, चाहे भूकम्प के आने से, डाकुओं के आक्रमण से, सांप के काटने से, हृदय गति बन्द होने से आदि-आदि। जहाँ तक मुझे याद है आयुर्वेद में मृत्यु के एक सौ एक कारण गिनाए हैं। बोलो!

साधक ८ – यदि आज मृत्यु हो जाए तो मन में जो योजना है वह अधूरी ही रह जाएगी। मेरी स्थिति इस प्रकार की है।

स्वामी जी – और स्पष्ट बोला करो। अब आप बोलो!

साधक ६ – ऐसा कहने और सुनने पर स्थूल रूप से तो प्रतीत होता है कि मृत्यु हो सकती है, नहीं तो सामान्य रूप से ऐसा नहीं लगता।

स्वामी जी – आत्मनिरीक्षण में आप जिज्ञासु बनकर देखो तो आपको पता चल जाएगा कि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में मैं मानता हूँ या नहीं? जैसा कि आपने अपनी स्थिति बतायी कि घटना विशेष में हम मान लेते हैं, पर निश्चित रूप में आप नहीं मान पा रहे हैं। जब निश्चित रूप में मानने की स्थिति हो जाएगी तब वह विवेक कहलाएगा।

आचार्य नैष्ठिक जी – मैं कभी ऐसा विचार करता हूँ कि यह भवन गिर सकता है और अभी भी मृत्यु हो सकती है। किन्तु यह थोड़ी देर तक ही स्थिति रहती है।

स्वामी जी – तो उन्होंने बताया कि अकस्मात् कभी भी मृत्यु हो सकती है परन्तु यह अनुभूति थोड़े से काल के लिए रहती है। थोड़े काल के पश्चात् यह स्थिति हट जाती है, पुनः भूल जाते हैं। तो आप विवेक के क्षेत्र में थोड़ी-थोड़ी गति कर रहे हैं।

अब हम थोड़ा-सा इसके साथ दर्शनकार की भाषा को जोड़ेंगे। हमारी विचार-धाराएँ, सिद्धान्त तथा निर्णय जो होते हैं उनको हम ऋषियों की परम्परा के साथ जोड़कर सोचते हैं। ऋषियों की बातों को ध्यान में रखकर चलेंगे तो हमको भ्रान्तियाँ नहीं होंगी या कम से कम होंगी। संशय कम से कम होगा और हमको उस स्थिति को प्राप्त करने में सरलता होगी, बाधा कम होगी। दोहराओ और सोचो।

यदि हमने विवेक का विषय ले रखा है तो विवेक की परिभाषा, उत्पत्ति, बाधक कारण आदि जितने भी बिन्दु हैं, उन्हें हम ऋषियों के साथ मिलाकर चलेंगे अन्यथा नहीं और यदि ऋषियों के साथ मिलकर नहीं चलेंगे तब यह होगा कि हम मनमानी करेंगे और हमारे मन में बहुत सी विरुद्ध विचार-धाराएँ चलने लगेंगी, भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो जाएँगी, संशय उत्पन्न हो जाएँगे और पुनः इनको हटाने में हमको बहुत अधिक परिश्रम करना पड़ेगा।

यदि हम ऋषियों को साथ रखते हैं, उनको महत्त्व देते हैं तब स्मरण रखना कि जिन विषयों में हमारा प्रत्यक्ष नहीं है, वह विषय भी शब्द-प्रमाण के आधार पर पूरी तरह समझ में आ जाएगा। उस क्षेत्र को हम सरलता से पार कर जाएँगे। हम एक उदाहरण लेते हैं। ईश्वर ने महत्तत्त्व नामक एक पदार्थ बनाया जिसके विषय में ऋषियों ने कहा कि वह भी एक वस्तुतत्त्व है। अब हम सोचने लगे कि विवेक के क्षेत्र में महत्तत्त्व को एक पदार्थ माना जाए या नहीं?

अब हमारे सामने एक समस्या आई कि महत्तत्त्व हमारे प्रत्यक्ष का विषय नहीं है, पुनः कैसे उसको स्वीकार करें? अब जब हमने ऋषियों को महत्त्व दिया तो यह निश्चित हो गया कि ऋषि ने लिखा है कि महत्तत्त्व नाम का पदार्थ होता ही है। अतः हमको कोई संदेह नहीं रहा, न प्रत्यक्ष करने की आवश्यकता रही। शब्द-प्रमाण के आधार पर हमारा कार्य सम्पन्न हो गया। तो सांख्यकार ने यह बात कही - **सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः।** सांख्य. १/६१।

सम्पादकीय – सत्त्व, रज, तम की साम्यावस्था को प्रकृति कहते हैं। प्रकृति से महत्तत्त्व, महत्तत्त्व से अहंकार, अहंकार से मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्र, इन पाँच तन्मात्रों से पाँच स्थूलभूत उत्पन्न हुए; ये चौबीस और एक पुरुष को मिलाकर कुल पच्चीस पदार्थ-समुदाय हैं।

स्वामी जी – यह बात क्यों छेड़ी? सांख्यकार ने यह बात इसलिए उठाई है कि इन चौबीस तत्त्वों का वे विवेक उत्पन्न कराना चाहते थे। यदि इन बातों को जानने में आपका आकर्षण रहा हो, इन पर आपने परिश्रम किया होगा तो याद होंगे। आप बताएँगे कि ये चौबीस तत्त्व कौन-कौन से हैं?

साधक ४– एक तो मूल प्रकृति। पुनः महत्तत्त्व, अहंकार, मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ, पाँच तन्मात्र और पाँच स्थूलभूत; ये चौबीस तत्त्व हुए।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – इसमें जो २४ तत्त्व गिनाए। इसमें पहले तो प्रकृति से चलकर स्थूलभूत तक बतलाया। अब आप ध्यान देंगे - जो सत्त्व, रज, तम हैं, इन्हीं तीनों समुदायों का नाम प्रकृति है और एक-एक समुदाय में कितने-कितने अवयव हैं? जो बोलना चाहे वह बोलेगा।

साधक ३ – सत्त्व, रज और तम तीन समुदाय हैं और तीनों समुदायों के बहुत सारे परमाणु हैं, उनकी संख्या का पता नहीं, कितनी है।

स्वामी जी – इन्होंने बताया कि तीन समुदायों का एक झुण्ड है, जिसका नाम प्रकृति है और एक-एक समुदाय में उस-उस जाति के कितने-कितने अवयव हैं, हम उनकी गणना नहीं कर सकते। अब क्या समझ में आया? दोहराओ।

ब्रह्मचारी १ – सत्त्व नामक तत्त्व में और कितने सत्त्व पदार्थ हैं, उनकी गणना हम नहीं कर सकते। ऐसे ही रज के, ऐसे ही तम के।

स्वामी जी – हाँ जी! बोलिए।

आचार्य नैष्ठिक जी – क्या इन सत्त्व, रज और तम में भी कोई और विभागीकरण है?

स्वामी जी – नहीं। पुनः सुनिए! हमारा अभिप्राय था कि जैसे ये मिट्टी के कण हैं और एक जाति वाले तथा असंख्य हैं, ऐसे ही सत्त्व, रज, तम के अनेक अवयव हैं और हमारी दृष्टि से असंख्य हैं। परन्तु तीनों समुदायों में प्रत्येक समुदाय के अपने-अपने सब अवयव एक जैसे हैं। उनमें अन्य कोई भेद या विभाग नहीं है। अब जिसको समझ में नहीं आया पूछो!

श्रोता – ऐसे ही प्रकृति के परमाणु हैं?

स्वामी – आप नहीं बोलेंगे। आपको केवल सुनने का अधिकार दे रखा है। यहाँ कई वर्ग हैं। एक ब्रह्मचारी वर्ग यह है, जो मुख्य है और ऊँचे स्तर पर उनके लिए योग प्रशिक्षण चल रहा है। इसमें कुल आठ हैं और एक आचार्य जी को ले लो, तो नौ हैं। इसके पश्चात् दूसरा ब्रह्मचारी वर्ग है, वह भी स्वतन्त्र रूप से सुन सकता है। इसके पश्चात् मुमुक्षु जी, साधक जी का तीसरा वर्ग है और चौथा इन वानप्रस्थ वालों का है। इसके पश्चात् आप जैसे अतिथियों का, जो दर्शक के रूप में यहाँ बैठ जाते हैं, सुन लेते हैं। यह हमारी व्यवस्था है। इसमें बीच में चाहे जो कोई पूछ ले और उत्तर दिया जाए, ऐसा नहीं है। तो हम कहाँ चल रहे थे?

ब्रह्मचारी १ – सत्त्व, रज, तम के कण अनन्त हैं।

स्वामी जी – और वे एक जाति के हैं।

आचार्य नैष्ठिक जी – इस गणना में तो छब्बीस तत्त्व हो जाने चाहिएँ। सत्त्व एक, रज दो, तम तीन.....।

स्वामी जी – यहाँ पहले इस सिद्धान्त को समझना चाहिए कि भिन्न-भिन्न शास्त्रों की अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न परिभाषाएँ होती हैं जो कि अपने शास्त्र की मयार्दा में काम करती हैं। इस सिद्धान्त के आधार पर यहाँ सांख्यकार ने एक परिभाषा बना ली कि हम अमुक-अमुक को इस-इस नाम से कहेंगे अर्थात् सत्त्व, रजस्, तमस् नामक तीनों समुदायों को हम प्रकृति कहेंगे। जैसे - महर्षि पाणिनि ने अपनी अष्टाध्यायी व्याकरण में एक सूत्र पढ़ा वृद्धिरादैच्। अर्थात् आ, ऐ, औ इन तीन वर्णों को हम वृद्धि कहेंगे। इसका अभिप्राय होता है कि लोक में जो वृद्धि का अर्थ विकास लिया जाता है, वह इस शास्त्र में नहीं लिया जाएगा और न तो लोक में वृद्धि का अर्थ, आ, ऐ औ लिया जाएगा। आ गया समझ में? तो अब ढीले मत रह जाना। यह इसका समाधान हो गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब हमको यह ज्ञात हो जाए कि कोई एक ऐसा वस्तुतत्त्व है और वह हमारी बुद्धि में पूरी तरह से बैठ जाए तथा हमारा व्यवहार उसके अनुकूल होने लगे तो यह विवेक की स्थिति कहलाएगी।

जब हम विवेक करने लगेंगे तब वहाँ पर यह शंका खड़ी होगी कि प्रकृति अनादि क्यों है? क्योंकि सांख्यकार ने विवेक कैसे उत्पन्न होता है, इस विषय में चौबीस तत्त्वों का यथार्थ ज्ञान उपाय के रूप में बताया। यहाँ पुरुष को थोड़ी देर के लिए नहीं गिन रहे हैं, केवल प्राकृतिक तत्त्वों को ले रहे हैं। विवेक की प्रक्रिया में व्यक्ति जब विचार करता हुआ यहाँ पहुँचेगा कि सत्त्व, रज, तम इन तीनों का नाम प्रकृति है, जो अनादि है, तब प्रकृति अनादि क्यों है? यह शंका उभरेगी।

आचार्य नैष्ठिक जी – हमको तो शंका नहीं होगी।

स्वामी जी – यह तो आपने सिद्धान्त के रूप में प्रमाणों से जान लिया। परन्तु आगे जब कभी आप अन्तिम रूप में जाना चाहेंगे तब, ध्यान देना, वहाँ स्थिति लड़खड़ा सकती है। क्या समझ में आया?

साधक २ – जैसे मृत्यु निश्चित सिद्ध होते हुए भी नहीं दिखाई देती।

स्वामी जी – जैसे मृत्यु निश्चित होते हुए भी दिखाई नहीं देती, उसके विषय में स्थिति लड़खड़ाती है। इसी तरह अन्य सिद्धान्तों में भी स्थिति लड़खड़ाती है जैसे जीवात्मा के विषय में युक्ति-प्रमाण से धारावाही बोल कर हम सिद्ध कर देते हैं कि जीवात्मा नित्य है परन्तु अन्ततः नित्य मानने की स्थिति हमारी लड़खड़ाती है अर्थात् संशय उत्पन्न होता है या भ्रान्ति उत्पन्न होती है। इसको साधारण रूप में आप रोक नहीं सकते।

तो अब तक हमने प्रकृति से चलकर स्थूलभूत की ओर का प्रकरण चलाया। अब हम इसके विपरीत स्थूलभूत से प्रकृति की ओर चलेंगे। जैसे सांख्यकार ने कहा कि **प्रकृतेर्महान्.....पुरुष इति**। पुरुष तक लाकर छोड़ा। पुनः क्या करें? तो उन्होंने कहा - पाँच स्थूलभूत विनाश को प्राप्त होंगे और तन्मात्रों में लीन होंगे, तन्मात्र अहंकार में और अहंकार महत्तत्त्व में और महत्तत्त्व प्रकृति में चले जाएँगे। आप ध्यान देंगे, स्थूलभूतों के अन्तर्गत यह हमारा शरीर है और यह शरीर पृथ्वी का एक भाग है। यदि पृथ्वी आदि का यह भाग है तो हम इसको अनित्य सिद्ध करना चाहेंगे अर्थात् यह शरीर निश्चित रूप से उत्पन्न हुआ है और विनष्ट होगा। हम यहाँ पहुँचना चाहते हैं परन्तु यह आपके लिए कठिन पड़ रहा है जैसे कि आप लोगों ने अपने अनुभव सुनाये। तब आपने सुनाया था कि कारण उपस्थित हो तो स्थिति बनती है और कारण उपस्थित न हो तो स्थिति नहीं बनती है।

अच्छा! एक और उदाहरण रखता हूँ - आप पहले नहीं थे, उत्पन्न हुए हैं, क्या निश्चित रूप में आपका यह ज्ञान काम करता है? यह एक छोटा बच्चा है, एक-दो वर्ष का होगा, तो क्या आपको लगता है पहले मैं भी ऐसा ही छोटा था, उत्पन्न हुआ था। बताओ आप -

साधक ३ – विचार करने पर लगता है कि मैं भी एक दिन छोटा था, आज इतना बड़ा हो गया हूँ।

स्वामी जी – अब आप बोलेंगे -

साधक १ – हाँ! ऐसा लगता है।

स्वामी जी – आप बोलिए -

साधक ६ – कुछ विचार करने पर थोड़ा लगता है।

साधक २ – दो-तीन साल तक के पीछे अर्थात् जहाँ से स्मृति काम करती है वहाँ तक की बातें तो जंचती हैं, उसके पहले की बातें कि जन्म हुआ था, यह प्रतीति नहीं होती है। किन्तु पहले नहीं था, ऐसा लगता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – ये कह रहे हैं पहले नहीं था, यह बात तो जंचती है, पर मेरा जन्म हुआ है, यह बात नहीं जंचती है। आप एक इतिहास की घटना जोड़ो तो इसके विषय में अधिक पुष्टि होगी क्योंकि उदाहरण से, प्रमाण से बात की पुष्टि होती है। महाभारत की कथा है, यक्ष-युधिष्ठिर संवाद। उसमें बताया गया कि एक बार किसी तालाब में उसके स्वामी यक्ष के प्रश्नों का उत्तर दिये बिना पानी पीने के कारण चारों पाण्डव मूर्छित कर दिए गए थे। अन्त में युधिष्ठिर जी भी उनकी खोज में वहीं पहुँचे तो पता चला कि यह कारण था और वे भी वैसा करते हैं तो उनकी भी यही स्थिति होगी। परन्तु उन्होंने यक्ष को प्रश्नों के उत्तर दिए थे, कितने प्रश्न पूछे थे, मुझे प्रसंग याद नहीं, सम्भवतः नौ प्रश्न थे। उनमें से एक यह प्रश्न पूछा गया था कि युधिष्ठिर जी ! यह बतलाओ कि संसार में सबसे बड़े आश्चर्य की बात क्या है? तो उन्होंने उत्तर दिया –

अहन्यहनि भूतानि गच्छन्तीह यमालयम्। शेषाः स्थावरमिच्छन्ति किमाश्चर्यमतः परम्॥

प्रतिदिन अनेक प्राणी मरते हैं। उनमें मनुष्य भी पता नहीं एक दिन में कितने मर जाते हैं, उसी प्रकार कीट-पतंग कितने मर जाते हैं, उनकी गणना करना तो हम में से किसी के वश की बात नहीं है। एक दिन में कितने ही उत्पन्न होते हैं और कितने मर जाते हैं; इसको ईश्वर ही जान सकता है, हम नहीं जान सकते। तो युधिष्ठिर जी ने कहा कि प्रतिदिन अनेक को मरते हुए देखकर भी दूसरे चाहते हैं कि हम सदा जीते रहें; यही आश्चर्य की सबसे बड़ी बात है। दोहराओ ! क्या आया समझ में? मरने वाला मर गया और हम चाहते हैं कि सदा ज्यों के त्यों बने रहें। तो हमारे मन में यह जो उपज है कि मैं सदा बना रहूँ, यह आश्चर्य की बात है।

अच्छा चलो ! हमारा प्रकरण चल रहा था कि जिस समय व्यक्ति प्राणियों के मृत्यु का अन्तिम निर्णय करना चाहता है उस समय उसको भंयकर डर लगता है। प्रसंग आपको याद होगा?

आचार्य नैष्ठिक जी – जो कि सांप देखकर भाग गया था।

स्वामी जी – उसका यह अंश याद न हो तो पुनः दोहराता हूँ। जब मैंने अपने से सम्बद्ध दो व्यक्तियों को यह बताया कि यह सारा संसार नाशवान् है। कोई बचने वाला नहीं है। पर मेरी स्थिति उन जैसी नहीं थी (जो भाग गया था,) न वह (हँसने-गाने वाली) थी जो पहले उनके साथ में रहा करती थी। क्या समझ में आया? आप भी जिस दिन इस मेरी जैसी (गम्भीर) स्थिति में आएँगे तो आपका आकार, बात-चीत, खाना-पीना सब बदल जाएँगे। यह एक लक्षण है। जिस दिन आपको मृत्यु का निश्चित रूप में ज्ञान होगा उस दिन आपका सारा जीवन उथल-पुथल हो जाएगा किन्तु वैसा न होकर जीवन ज्यों का त्यों रहे तो समझ लेना कि आपको अभी शरीर नाशवान् है, यह समझ में नहीं आया है। यह विवेक-विज्ञान नहीं हुआ है। दोहराओ क्या समझ में आया?

आचार्य नैष्ठिक जी – यदि हमारे व्यवहार में अन्तर नहीं आया तो.....।

स्वामी जी – समझ लेना आपको मृत्यु का ज्ञान नहीं है, विवेक नहीं है। लोग आपको पागल कह सकते हैं। कुछ रोग हो गया है; ऐसा कह सकते हैं। शोक सागर में डूबा है; ऐसा कह सकते हैं। पता नहीं कितनी बातें आपको कह सकते हैं।

आपको वह घटना थोड़ी-सी सुना दूँ। जब विशेष रूप से हमारे दो मित्रों ने यह देखा कि यही व्यक्ति एक महीने पहले तो हँसता-खेलता, उछलता-कूदता था। हमसे सारी बातें करता था। यह करता था, वह करता था। कुछ और ही हाव-भाव दिखते थे, वही आज किसी की आकृति को भी नहीं देख रहा है। आँख बन्द करके बैठता है। चलता है तो भी आँखें बन्द। तब उनको लगा कि कुछ न कुछ विशेष बात हुई है। पहले तो उन्होंने भी यही समझा था कि यह पागल हो

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चुका है और लगभग एक मास तक यही समझते रहे। किन्तु वे जब हमारे पास बैठते थे और मैं बुद्धिपूर्वक बातें करता था तब धीरे-धीरे उनको समझ में आया कि यह पागल नहीं है। इसको कोई विशेष स्थिति हाथ लगी है। इसमें विशेष परिवर्तन आ गया है ।

धीरे-धीरे स्थिति बदली। सामान्य रूप में बात-चीत होने लगी और वे दोनों ध्यान से सुनने लगे तब मैंने पुनः कहा - यह पूरा संसार नाशवान् है। यहाँ कोई भी नहीं बच सकता है। तो एक व्यक्ति पर प्रभाव पड़ा और वह ध्यान में बैठकर मृत्यु के विषय में विचार करने लगा और पुनः यह स्थिति आई (कि भाग खड़ा हुआ)। वस्तुतः जब व्यक्ति मृत्यु के विषय में अन्तिम निर्णय करने लगता है उस समय जो-जो मृत्यु के कारण होते हैं, जिनसे वह डरता रहा है, आज भी जिनसे डरता है, वे सब अन्दर संस्कार के रूप होते हैं और इस अवस्था में यथार्थ रूप में सामने दिखाई देते हैं। दोहराओ ! नहीं आया तो पूछो। पुनः उदाहरण दूँ ?

आचार्य नैष्ठिक जी – जी।

स्वामी जी – मान लीजिए हम काले सांप से बहुत डरते रहे। पन्द्रह-बीस वर्षों तक मानते रहे कि कभी काला सांप काट न ले ! कभी काला सांप काट न ले ! अब जब हम मृत्यु का विचार करने लेगेंगे तब ध्यान में दिखने लगेगा कि काला सांप काट लेगा और उससे डर लगने लगेगा। आपकी ऐसी स्थिति हो सकती है, ऐसा प्रसंग आपके सामने आ सकता है। जिस समय आप सिद्ध कर रहे हैं कि संसार नाशवान् है और मान लीजिए आप पहले डाकू से बहुत डरते थे। आपको लगता था कहीं गोली चलाकर मार न डाले, तलवार से टुकड़े-टुकड़े न करवा दे। अब जब आप आँख बन्द करके निर्णय करने लगे तो आपको डाकू, आतंकवादी दिखाई दे सकते हैं। पता नहीं क्या-क्या सामने आ जाएँगे। इस प्रकार जब व्यक्ति मृत्यु का निर्णय करने बैठेगा तो अब तक जिन-जिन भयानक बातों से डरता रहा, बचता रहा; उनमें से कोई भी उसके विचार में आ सकता है।

अब इसके साथ एक बात जानने की है। जब कोई व्यक्ति पूरे संसार को छानकर बैठ गया, कोई कोना नहीं छोड़ा और यह निर्णय कर लिया कि शरीर को मृत्यु से बचाया नहीं जा सकता। तब उसे चोर, डाकू, भयंकर काला सांप कुछ भी दिखाई देता हो तो उसे कोई डर नहीं लगेगा। अर्थात् जिसने इतना परिपक्व निर्णय कर लिया, मृत्यु से बचकर भागने का कोई छिद्र नहीं रह गया तो वह इन कारणों से क्यों डरे ? बोलो, क्या समझ में आया ?

साधक ३ – प्रश्न है कि जिस ने अपने मन पर अधिकार कर लिया उसको पता है कि मैं चोर के दृश्य को उठा रहा हूँ या काले सांप के विचार को उठा रहा हूँ। स्वतः कुछ नहीं आ रहा है। वस्तुतः कुछ है ही नहीं, विचार मात्र है तो यहाँ डरने की स्थिति रहेगी ? वह तो डरने से पहले विचारों को रोक लेगा।

स्वामी जी – आप एक अंश में कह सकते है जिस व्यक्ति ने इतना सोचा, जितना आपने सोचा। जिसने किसी गुरु से प्रशिक्षण ले लिया, सारे सिद्धान्त जान लिए, बहुत मन्थन कर लिया, वह तो समाधान कर लेगा।

साधक ३ – वस्तुतः यहाँ सांप भी नहीं है, चोर भी नहीं है, विचार मात्र है तो यहाँ डरने की क्या बात है ?

स्वामी जी – यह तो उसकी बात है जो पूरे क्षेत्रों में विचार कर चुका है। निर्णय की स्थिति पक्की कर ली है। यहाँ तक पहुँच गया कि जो चोर मुझे डरा रहा है वह भी नाशवान् है तो डर किस बात का ?

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– प्रसंग है कि उसने विचार किया है।

स्वामी जी – वही तो बात चल रही है, मैं वही तो सुना रहा हूँ।

साधक २– जैसे कि जंगल या आक्रामक स्थल में कभी ऐसा देखा जाता है कि सामने कुछ भी नहीं है, पुनरपि ऐसा लगता है कि कोई आ रहा है। वहाँ यह जानते हुए कि मैं कल्पनामात्र कर रहा हूँ, पुनरपि उस अवस्था से प्रभावित होते हैं। उसके विरुद्ध प्रतीति नहीं होती।

स्वामी जी – हाँ ! नहीं होती।

साधक २– अर्थात् वह जानता हो कि मैं एक कल्पना कर रहा हूँ, भ्रान्ति है, तो भी उसे रोक नहीं सकता।

स्वामी जी – इतना परिज्ञान नहीं होता है कि वह उसे नियन्त्रित कर सके। आपको अन्य दृष्टान्त देता हूँ परन्तु इसके पूर्व याद रखना विषय को वहीं लगाना चाहिए, जहाँ वह लगता हो। अब मेरे ऊपर तो लागू नहीं हो रहा था। क्या समझ में आया? मैं सारे विषय को विचार चुका था, यह तुलनात्मक अध्ययन सुना रहा हूँ। मुझे तो चोर, डाकू, सांप नहीं डरा पा रहे थे। क्योंकि मैं उन विषयों को जानबूझकर बुद्धिपूर्वक उठाकर अच्छी प्रकार से निर्णय कर चुका था कि न तो साँप बचेगा, न मैं बचूँगा। जब न मारने वाला, न मरने वाला बच सकता, तब डर किस बात का? यह स्तर भिन्न है। तो जिस समय व्यक्ति की स्थिति कच्ची होती है, पूर्वापर विचार अपूर्ण होता है तब उसकी सांप आदि का दिखना, डरकर भागना आदि स्थितियाँ बनती हैं, परिपक्व और पूर्ण चिन्तन वाले की नहीं।

मृत्यु जब सामने आती है तो व्यक्ति के जीवन में कितनी उथल-पुथल हो जाती है, यह आप सोच सकते हैं। अच्छा ! अब मेरे जीवन में क्या दृश्य रहा होगा जब कि लम्बे काल तक मेरे सामने यह स्थिति रही कि मृत्यु कभी भी आ सकती है, कुछ क्षण में आ सकती है, दिनभर यह बात दिमाग में बैठी रही और मंथन चलता रहा। उस समय जितनी उथल-पुथल हो सकती है, सब हुई। यह सब लगता रहा। जो व्यक्ति सांप से डरा था उसके जीवन में यह उथल-पुथल नहीं हुई थी। क्या समझ में आया? (क्योंकि उसने अन्तिम स्थिति तक पहुँचने का प्रयास छोड़ दिया।)

साधक ३– स्वामी जी ! एक जो बिलकुल अनपढ़ व्यक्ति है, जिसे कुछ पता नहीं है और दूसरा व्यक्ति जिसने सारे शास्त्रों को पढ़ा-सुना है। यदि दोनों विचार कर रहे हैं, तो दूसरे की खोज में अन्तर होगा। दूसरे को उतनी बाधा नहीं आएगी।

स्वामी जी – हाँ ! यदि वह ठीक तरह से सोचता है, सिद्धान्तों को समझ लिया है, पदार्थों का ज्ञान-विज्ञान ठीक हो गया है और उसके अनुकूल विचार करता है या किसी सिखाने वाले से सीख लिया है तब उसको तो बाधा नहीं आएगी। सिद्धान्त आदि का परिज्ञान न रखने वाले या किसी से न सीखने वाले के सामने जितनी बाधा रहेगी उतनी इसके सामने नहीं रहेगी। यह अन्तर होगा। कच्चा ज्ञान होने पर बाधाएँ तो आएँगी ही।

साधक २– गहराई में जाने पर तो उसको भी बाधा आएगी।

स्वामी जी – हाँ ! गहराई में जाने पर जो स्तर उत्पन्न होता है, उसी स्तर पर जब पढ़ा-लिखा व्यक्ति भी सोचना आरम्भ करेगा तब उसको भी बाधा आएगी, किन्तु बिना पढ़े-लिखे की अपेक्षा कम आएगी। क्योंकि उसको बहुत सी सुविधाएँ हो जाती हैं। जिसको सिखाने वाला हो, जिसने वेदों का, दर्शनों का, उपनिषदों का अध्ययन और अध्यापन किया हो, वह व्यक्ति जब चिन्तन करेगा तो उसको कम बाधाएँ उपस्थित होंगी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गंगा प्रसाद उपाध्याय जी की लिखी एक घटना का भाव सुनाता हूँ। जिस समय आमने-सामने बँदूको से लड़ाई होती थी। दोनों दल आमने-सामने केवल बन्दूकों से गोली चलाते थे। उस समय के नियम के अनुसार दोनों राजाओं में आमने-सामने का युद्ध होता था। उस समय जब एक दल सुसज्जित होकर युद्ध के लिए आगे रहता था, दूसरी ओर से भी एक दल सुसज्जित होकर आगे रहता था, तब दूसरे दल भी उनके पीछे होते थे। उस स्थिति में आगे वाला जब और आगे न बढ़कर पीछे हटना चाहता था तब पीछे वालों द्वारा उसे गोली से मार दिया जाता था ।

उस घटना का भाव सुनाता हूँ। विदेश में एक व्यक्ति था जो अँग्रेजों की सेना की एक टुकड़ी में सम्मलित होकर आमने-सामने युद्ध के लिए जब तैयार हो गया तब उसके मन में यह बात बैठ गई कि आगे बढ़ूँगा तो भी मरूँगा और पीछे हटूँगा तो भी मरूँगा। मरना निश्चित है। क्या समझे ?

साधक ३ – आगे भी मृत्यु है पीछे भी मृत्यु है।

स्वामी जी – यह उसने मान लिया। युद्ध हुआ, मरे-कटे सब कुछ हुआ पर संयोग से वह व्यक्ति बच गया। कालान्तर में उससे मिलने का इच्छुक एक व्यक्ति आया और उसी से पूछा कि मैं अमुक से मिलना चाहता हूँ, वह कहाँ मिलेगा ? तो इसने कहा वह तो लड़ाई में मर चुका है। जबकि वह जीवित था और स्वयं अपने विषय में बता रहा था। अब क्या समझ में आया ?

साधक ३ – उस पर मृत्यु का इतना अधिक प्रभाव पड़ा कि उसने स्वयं को मरा समझ लिया।

स्वामी जी – यह स्थिति आई। आप जिस दिन जान लेंगे कि मृत्यु निश्चित है तो आपके सामने भी यही स्थिति आकर खड़ी हो जाएगी। उदाहरण के लिए मान लो कल एक व्यक्ति मर गया और उसका दाहसंस्कार कर दिया गया तथा आज उसकी राख भी उड़ गई। परन्तु आज आप या आप में से किसी के लिए सरकार की ओर से यह आदेश निकल गया कि आज दस बजे रात्रि पर्यन्त इसको विद्युत् या फाँसी के माध्यम से समाप्त कर दिया जाएगा। बचाव का कोई अवकाश नहीं रहा है, सब करके देख लिया। इसको अपने ऊपर लागू करके देखो ! आज दस बजे लटका दिया जाऊँगा, कल राख हो जाऊँगा। आगे वह राख भी नहीं बचेगी, उड़ जाएगी। परिणाम क्या होगा ? यह जो मैं और मेरा रूपी संसार के सारे सम्बन्ध हैं, वे सब एक साथ समाप्त हो जाएँगे।

उस समय जो निर्णय होता है, जब कोई विकल्प नहीं रहता; ऐसी स्थिति व्यक्ति को बौद्धिक स्तर पर बनानी पड़ती है। अनुमान-प्रमाण, शब्द-प्रमाण से स्थिति बनानी पड़ती है।

आचार्य नैष्ठिक जी – कभी डरके मारे मृत्यु तो नहीं हो जाएगी ?

स्वामी जी – हाँ ! कोई व्यक्ति बहुत दुर्बल हृदय वाला हो और उसका एकदम निर्णय होने लगे कि निश्चित रूप से मारा जाऊँगा। तब ऐसा हो भी सकता है। क्या समझे आप ? यहाँ एक बात समझने की है कि एक स्थिति तो है वास्तविक रूप में मार दिया जाए, जला दिया जाए। दूसरी स्थिति यह है कि जिसमें बौद्धिक रूप में निश्चय मात्र है। इन दोनों में भी मृत्यु हो सकती है, एक में भी मृत्यु हो सकती है तथा दोनों में मृत्यु नहीं भी हो सकती है।

आचार्य नैष्ठिक जी – ऐसा विचार करते समय यदि डर के मारे मृत्यु हो जाए तो ?

स्वामी जी – आपकी बात ठीक है। यह भी एक डर है। इसको हटाने के लिए उपाय करना चाहिए। इसका उपाय है व्यक्ति विचार करे कि डरने मात्र से तो मृत्यु हटेगी नहीं। तू डरकर कहाँ जाएगा। जब डरकर भी कहीं जाने की जगह नहीं है तो क्यों निरर्थक डरता है, मृत्यु को आने दे। यहाँ उसने पकड़ा। पकड़ में आई बात ! ऐसे वह निर्णय करेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आचार्य नैष्ठिक जी – कहीं उसका यह विचार तो उत्पन्न नहीं हो जाएगा कि मुझे तो मरना ही नहीं है?

स्वामी जी – यह तो उसकी मिथ्या कल्पना होगी। यह कोई विचार नहीं है। इसी का तो दृष्टान्त महाभारत में दिया गया था। कोई मरना नहीं चाहता। इसी को तो आश्चर्य माना था उसने। दिल्ली जैसे नगर में चले जाओ, वहाँ अपनी अमरता को समझने वाला करोड़ में से कोई एक भी कठिनाई से मिलेगा। वस्तुतः जब तक यह मृत्यु की स्थिति उत्पन्न नहीं की जा सकती है तब तक जीवन में विवेक नहीं आयेगा। चाहे कोई कुछ भी पढ़े-पढ़ाए, विवेक नहीं होगा।

साधक ३ – एक प्रश्न है, यहाँ यदि इस ज्ञान को अधिक दृढ़ बनाया जाए कि मैं आत्मा तो अमर हूँ, मुझे कोई मार नहीं सकता, पुनः मृत्यु का डर क्यों?

स्वामी जी – पहले मरने वाले को दृढ़ बना लो, पुनः न मरने वाले को दृढ़ बनाना। पहले स्थूल के विषय में क्यों नहीं सोचते, सूक्ष्म के विषय में क्यों सोचना चाहते हैं? प्रथम शरीर के स्थूल विषय को छोड़कर आत्मा के सूक्ष्म विषय की ओर भाग रहे हैं। जो प्रत्यक्ष विषय है वह सरल रहेगा या जो परोक्ष है? जीवात्मा को कोई मार रहा है और वह मर नहीं रहा है, ऐसा हमको दिखाई दे तब तो प्रत्यक्ष माना जाएगा, अन्यथा तो अनुमान से ही चलेगा। यहाँ तो प्रत्यक्ष विषय को लेकर सोच रहे हैं हम। आगे बढ़ूँ मैं?

साधक गण – जी!

स्वामी जी – वैसे तो यह एक-एक प्रसंग बहुत लम्बा-चौड़ा होता है। इसके साथ कब-कब, क्या-क्या, कैसे-कैसे सोचना चाहिए आदि बातें जुड़ी रहती हैं। साथ ही कोई सिखाने वाला हो और इनसे सम्बद्ध शास्त्रों को पढ़ा हो कि इन-इन स्थितियों में ये-ये उपाय ऋषियों ने बताए हैं। पुनः वे सिद्धान्त हमारी बुद्धि में उपस्थित रहते हैं तथा हम उनसे कार्य लेते रहते हैं। यदि हमको ऋषियों पर विश्वास हो तो उनके सिद्धान्तों को हम ज्यों का त्यों मान लेते हैं, उससे थोड़ा समय लगता है। इसके विपरीत वैदिक परम्परा के अनुसार दर्शनशास्त्र पढ़े-पढ़ाए नहीं हों, परिभाषाएँ नहीं आती हों, सिद्धान्तों का पता नहीं हो तो व्यक्ति को बहुत परिश्रम करना पड़ता है और इस स्थिति में विचारने को बैठ जाए तब तो पता नहीं कितनी भ्रान्तियाँ उत्पन्न हो सकती हैं।

ये जो मतमतान्तरों के लोग योगाभ्यास कर रहे हैं और जिस रूप में ईश्वर को मान रहे हैं, ईश्वर के साक्षात्कार को मानते हैं, समाधि को मान रहे हैं, इन सभी को यही भ्रान्तियाँ तो उत्पन्न हो रही हैं जो वैदिक सिद्धान्तों के अभाव में होती हैं। क्या समझ में आया? दोहरा लो!

आचार्य नैष्ठिक जी – मतमतान्तरों के लोगों को .....।

स्वामी जी – सिद्धान्तों का ज्ञान नहीं कराया गया। वैदिक परम्परा के अनुसार दर्शनों का अध्ययन-अध्यापन नहीं करवाया गया। सिखाने वाले ऐसे गुरु नहीं मिले जो इन सिद्धान्तों को जानते हों। इसके विपरीत जिनकी मान्यताएँ भिन्न, परम्पराएँ भिन्न, प्रशिक्षण भिन्न, ईश्वर भिन्न, जीवात्मा भिन्न, समाधि भिन्न, ये सारी भ्रान्तियाँ उनके पढ़े-लिखों में भी ज्यों की त्यों काम करती हैं। योग के लिए पूर्ण रूपेण जीवन समर्पित करने पर भी उनमें एक व्यक्ति भी योगी नहीं बन पाता। यह स्थिति दूसरे लोगों की है।

आचार्य नैष्ठिक जी – परन्तु वे लोग तो उस स्थिति में भी अन्यों को प्रभावित कर लेते हैं और स्वयं प्रभावित नहीं होते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ ! प्रभावित कर लेते हैं, ठीक बात है। प्रभावित होने में कारण है वैदिक परम्परा से पठन-पाठन और आचरण का अभाव। ऐसे कई वैदिक लोग भी हैं जो अपने शास्त्रों को न तो पढ़ते, न उनका आचरण करते हैं, वे उनसे प्रभावित हो जाते हैं और अपनी परम्परा को छोड़कर उनमें मिल जाते हैं।

साधक २– ऐसा कोई उपाय हो सकता है जिससे हम मृत्यु को समक्ष लायें। कैसे हम उसको सामने लाएँ ?

स्वामी जी – इसका यह उपाय है - स्वयं से इसका उत्तर पूछेंगे कि तुम क्यों नहीं मरोगे ? इसकी विधि है जैसे कि हम चाहते हैं कि हम मरे नहीं; किन्तु सामने देख रहे हैं कि प्रत्येक व्यक्ति जो उत्पन्न हुआ है वह मर रहा है। अब अपने से पूछेंगे कि तू कैसे बचा रहेगा ? ऐसे अपने-आप से उत्तर पूछेंगे। अथवा जो मरने का इच्छुक नहीं है, जो मरना मानता नहीं है या जिसको मरने में संशय है तो वह मृत्यु की घटना को सामने लाएगा। मरे हुए को लेकर अपने जीवन की तुलना करेगा। जैसे कि उत्पन्न होना और मरना प्रत्यक्ष हैं। सब इनको देख रहे हैं। इस प्रत्यक्ष-प्रमाण का खण्डन कोई कैसे कर सकता है ? ऐसे सामने लाएगा, उपस्थित करेगा और स्वयं को पूछेगा कि तू कैसे मानता है कि मैं नहीं मरूँगा ? तुमको संशय कैसे उत्पन्न हो गया कि मरूँगा या नहीं मरूँगा ? कारण बताओ ? अपने से पूछा करो तो आपको पता चल जाएगा। यदि आपने दर्शन पढ़े हैं तो आपको सुविधा हो जाएगी। क्या समझ में आया ? दर्शन यदि पढ़े हैं तो झट संशय को लाकर खड़ा करेंगे और उसका समाधान करेंगे। न्याय का काम है यह। जो कहते हैं योग में न्याय का क्या काम है ? तो उनको पता नहीं है कि योग में न्याय से ऐसे काम पड़ता है। ऐसी उलझनें खड़ी होती हैं, संशय उत्पन्न होता है कि व्यक्ति सोचता रह जाता है, किन्तु न्याय-प्रक्रिया को जानने वाला झट समाधान निकाल लेता है।

- यह शरीर नाशवान् है।
- क्योंकि उत्पन्न होता है।
- जो-जो वस्तु उत्पन्न होती है वह वह नाशवान् देखी जाती है।
- जैसे घास।
- घास के समान शरीर उत्पन्न होता है।
- इसलिए उत्पन्न होने के कारण शरीर नाशवान् है।

ऐसे आप अपने से पूछना कि पंचाययवय से सिद्ध है, पुनः तू क्यों नहीं मानता है ? हाँ ! यहाँ बचने का प्रयास मत करना कि क्या निरर्थक मृत्यु के पीछे पड़ना, छोड़ो इसको। यदि ऐसे टाल-मटोल करेंगे तो कुछ नहीं मिलेगा। निर्णय नहीं आएगा। आपको सत्यग्राही होना पड़ेगा।

ध्यान रखना ! कौन इसमें सफल होता है, उसके विषय में एक आवश्यक बात बता रहा हूँ - एक सिद्धान्त कि जो व्यक्ति तीन काल में पूर्णरूपेण सत्यग्राही है, जिसको सत्य के ग्रहण से कोई रोक नहीं सकता या स्वयं हट नहीं सकता और तीन काल में जिसको असत्य के त्याग से कोई रोक नहीं सकता या स्वयं हट नहीं सकता, वही व्यक्ति विवेक-वैराग्य-अभ्यास को लेकर समाधि को प्राप्त कर सकता है, इसके विपरीत नहीं।

पूर्णरूपेण सत्यग्राही और पूर्णरूपेण असत्यत्यागी कौन है, इसकी विवेचना उदाहरण सहित आपको करनी पड़ेगी, तब समझ पाएँगे। पहले आपको अपने ऊपर इनको घटाना पड़ेगा। जैसे कि

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन्मजन्मान्तर की लौकिक इच्छाएँ हमारे पीछे पड़ी रहती हैं और जब हम मृत्यु का विचार करने लगते हैं तब एक-एक कर याद आने लगती हैं। . उन घटनाओं को सामने लाने लगते हैं, छोड़ नहीं पाते हैं। हमको कभी अच्छे भोजन की, कभी सुन्दर रूप देखने की, कभी मान की, कभी धन की, कभी यह कर लो, कभी वह कर लो, कभी यह खा लो, कभी वह खा लो आदि इच्छाएँ होती हैं। इन सबको रोकना होगा। कभी कल्पनाएँ करने लगते हैं कि वह मुझे पागल कहेगा, रोगी कहेगा, वैद्य को दिखाने के लिए कहेगा, मौनी है, बोलता नहीं है आदि-आदि। पता नहीं कितनी सारी बातें आपके सामने आएँगी। यदि इनमें से किसी से भी डर जाते हैं और इनका निदान नहीं करते हैं, तो आप सत्यग्राही और असत्यत्यागी हैं, यह नहीं माना जा सकता।

यह है समाधि को प्राप्त कराने वाला उच्च कोटि का ज्ञान-विज्ञान अथवा ज्ञान-कर्म-उपासना। यदि इसका प्रयोग आप ज्यों का त्यों करते हैं तो निश्चित है कि आप समाधि को प्राप्त कर लेंगे?। ईश्वर-साक्षात्कार कर लेंगे और औरों को भी करवा सकेंगे। अब विराम ॥

१७ आत्मनिरीक्षण

मनोनिरोध : आषाढ़ पूर्णिमा २०६०-१३/७/०३

जब आप ध्यान में विषयान्तर में चले जाते हैं, तब आपको यह अनुभव होता है कि मैं विषयान्तर चला गया हूँ और पुनः उसको लौटा लेना चाहिए और लौटा लेते हैं; ऐसा कोई अनुभव होता है?

साधक ७- इतना अनुभव होता है कि मन विषयान्तर में चला गया और उसको रोक दिया जाए।

स्वामी जी - जैसे कि मन विषयान्तर में लग गया और कुछ काल के पीछे पता चला कि मैं विषयान्तर में चला गया हूँ और अब पुनः उसको वापस ले आते हैं। क्या ऐसा होता है? आप बोलेंगे -

साधक ५- हाँ! ऐसा होता है, स्वामी जी!

स्वामी जी - कैसे-जैसे?

साधक ५- जैसे उपासना चल रही होती है, मन्त्र पाठ करता हुआ मैं अर्थ कर रहा होता हूँ तो अर्थ करते-करते उससे सम्बन्धित या असम्बन्धित दूसरा विचार आ जाता है या मैं ले आता हूँ, ऐसा अनुभव में आता है।

स्वामी जी - और पुनः क्या स्थिति रहती है? एक तो यह कि विषयान्तर हो चुके तब पता चला। यह वह स्थूल स्थिति है जिसमें विषयान्तर होने के पश्चात् पता चलता है।

साधक ५- यही स्थिति है स्वामी जी! विचार आ जाने के पश्चात् पता चलता है.....।

स्वामी जी - कि मैं विषयान्तर में चला गया हूँ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५– हाँ जी! और कई बार अधिक सूक्ष्म वृत्तियाँ आती हैं और चली जाती हैं किन्तु उस समय पता नहीं चलता। पुनः अभ्यास करते हुए कालान्तर में पता चलता है कि वृत्तियाँ आईं और चली गयीं।

स्वामी जी – ऐसी स्थिति, जिसमें विषयान्तर होते ही पता चल जाता है और उसको रोक देते हैं, यह दूसरी सूक्ष्म स्थिति है। पहली स्थिति में विषयान्तर होने के पश्चात् पता चलता है तत्काल पता नहीं चलता है। दूसरी में विषयान्तर होते ही तत्काल पता चलता है। क्या दोनों अनुभूतियाँ आपको होती हैं या नहीं होतीं?

साधक ५– होती हैं, स्वामी जी!

स्वामी जी – और आपका कैसा रहता है?

साधक ८– कोई वृत्ति उठाता हूँ तो तुरन्त पकड़ लेता हूँ।

स्वामी जी – क्या ऐसा नहीं होता कि आपने विषयान्तर में मन को लगाया और जब लगा दिया तब पता चला कि मैं विषयान्तर में चला गया हूँ, पुनः झट मन को रोका।

साधक ८– रोकने का काल ज्यादा नहीं होता।

स्वामी जी – आप ध्यान देकर देखेंगे कि जब हम मन को प्रेरणा देते हैं उस समय क्या हम अन्दर से अपन-आप को पकड़ पाते हैं। इसको समझने के लिए बाहर की क्रिया का एक दृष्टान्त लेंगे। जब हम इस द्वार को बन्द करते हैं तब हमको यह पता चलता है कि मैंने हाथ बढ़ाया और दरवाजे को बन्द किया। हाथ को आगे बढ़ाया फिर द्वार को बन्द किया; यह बाहर की क्रिया हम को दिखाई देती है। ऐसे ही क्या अन्दर जीवात्मा हाथ की भाँति जब मन को चलाता है तब मैं मन को इस विषय में चला रहा हूँ, ऐसा कुछ दिखाई देता है? कोई अपना अनुभव बताएगा?

साधक ३– मन को चला दिया है, अब चला रहा हूँ अर्थात् क्रिया हो जाने के पश्चात् अनुभव होता है।

साधक ५– किसी विषय में मन को चला दिया या चला रहा हूँ, यह तो अनुभव होता है किन्तु स्वामी जी! जिस समय चलाने के लिए जो प्रयत्न करता हूँ, वह पकड़ में नहीं आता। जैसे कि मैं हाथ बढ़ा रहा हूँ, वहाँ पर मन को कैसे प्रेरित कर रहा हूँ, वह पकड़ में नहीं आता।

स्वामी जी – हमने यह हाथ यहाँ रख दिया, यह रखा हुआ है। अब हम अनुमान या शब्द प्रमाण से यह मानते हैं कि जब तक हमारा ज्ञान, हमारी इच्छा और हमारा प्रयत्न नहीं होगा तब तक हाथ उठ नहीं सकता। ऐसा मानते हैं या नहीं मानते?

साधक ३– मानते हैं।

स्वामी जी – अब ज्ञानवान् जीवात्मा ने अपने मन में एक ज्ञान उत्पन्न किया कि मैं अब अपने हाथ को उठाऊँ। इस ज्ञान के पश्चात् उसने हाथ को उठाने की इच्छा की। पुनः इच्छा करने के उपरान्त बल लगाया-प्रयत्न किया। तो ज्ञान, प्रयत्न और इच्छा इन तीनों को पकड़ना होगा। आगे यहाँ पर मन तो हमारे और हाथ के बीच एक माध्यम है। प्रथम हम मन को प्रेरणा देते हैं, पुनः मन त्वग् इन्द्रिय को प्रेरणा देगा। क्यों जी? अब त्वचा यहाँ पर काम करेगी तब वह हाथ उठेगा।

साधक १– हस्तेन्द्रिय-कर्मेन्द्रिय काम करेगी अथवा त्वग् इन्द्रिय?

स्वामी जी – हाँ! कर्मेन्द्रिय काम करेगी। यहाँ मेरा अभिप्राय इतना है कि पहले हस्त को उठाने में बीच में त्वचा काम करेगी या नहीं? जैसे कि हाथ तो यहाँ से आरम्भ हुआ है किन्तु इससे

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले या तो नाड़ियों के माध्यम से या त्वग् इन्द्रिय के माध्यम से मन की क्रिया यहाँ तक आएगी। मन और हाथ के बीच कोई न कोई माध्यम यहाँ तक तो होगा। आप यह तो सम्भवतः नहीं कह सकेंगे कि सीधा मन हाथ को उठा देता है। अतः पहले अन्दर खिंचाव होता है त्वग् इन्द्रिय में या नाड़ियों में। उसके पश्चात् जीवात्मा का प्रयत्न हाथ से जुड़कर हाथ को उठा देता है। जैसे मैंने सोचा बिजली को जानूँ तो वहाँ पर क्या-क्या क्रिया होगी? वहाँ पहले मैं ज्ञान उठाऊँगा, पुनः इच्छा करूँगा कि बिजली को देखूँ, पुनः मन को प्रेरणा दूँगा। मन आँख को प्रेरणा देगा, तब आँख बिजली को देखेगी। अच्छा! मन जब यहाँ आँख को प्रेरणा देगा तब वह प्रेरणा नस-नाड़ियों के बीच से होकर जाएगी या नहीं?

मुख्य रूप से हमने इतना लेना है कि यह जो अन्दर इच्छा, प्रयत्न करते हैं, कम से कम हम इनको पकड़ना जानें। जैसे कि हम यहाँ बैठे हैं और चाहते हैं कि किसी विषय में विचार नहीं करेंगे और ऐसा प्रयत्न करने लगे परन्तु कुछ क्षण के पश्चात् ही बिना किसी योजना के कोई लम्बा-चौड़ा विषय उठा लेते हैं। ऐसा आप देख सकते हैं। क्या समझ में आया?

साधक २- आरम्भ हो जाता है।

स्वामी जी - आरम्भ हो जाता है, यह सभी अनुभव करते हैं। ऐसा मानकर चलिए, किसी विषय में मन को नहीं चलाना है। आप चुपचाप बैठ जाइए, बोलिए नहीं। अब आपका कोई प्रयत्न दिखाई नहीं देगा, आप अपने प्रयत्न को रोक दीजिए। रोकने का अभिप्राय है - वह जो क्रिया होती है, उसको न करो। जो इच्छा, प्रयत्न हैं उनको न करो और उस स्थिति में देखो कि इच्छा, प्रयत्न कैसे उत्पन्न होते है। हाँ जी! बोलो।

साधक ३- अचानक कोई बीस साल पहले की घटना सामने आ जाती है। ऐसा कोई चित्र आ जाएगा जब कि कोई योजना नहीं है।

स्वामी जी - हाँ! तो आप देखेंगे बीस वर्ष की जो घटना है, वह आ जाती है। यहाँ आपने तो सोचा था किसी को याद नहीं करूँगा, मन को शान्त किया था, परन्तु बीस वर्ष की घटना उपस्थित कर ली। थोड़ी-सी देर में मन में परिवर्तन हो गया। आत्मा के ऊपर प्रभाव आ गया। सारा वातावरण बदल गया।

साधक ३- उसमें ऐसा होता है आते ही चली जाती है। एक चित्र आया और तत्काल समाप्त हो गया।

स्वामी जी - और प्रभावित भी तो कर गया! आया और तत्काल समाप्त हो गया, इतना ही नहीं हुआ अपितु वह जो स्मृति आई, वह राग-द्वेष को साथ लाई। जैसे कि एक अति सुन्दर या भंयकर दुःखदायी चित्र सामने आ गया और राग-द्वेष से युक्त कर गया। जो भी हो, यहाँ यह समझना है कि वह जो घटना आती है, बिना योजना-प्रयत्न के दिखाई देती है, वह हमको प्रभावित करती है। आया समझ में?

साधक ३- आ गया, किन्तु कई बार ऐसा होता है घटना आती है पर वह इतना प्रभावित नहीं करती।

स्वामी जी - प्रभावित करती तो है किन्तु उतना नहीं।

साधक ३- नहीं करती, जब तत्काल उसको हटा देते हैं।

स्वामी जी - नहीं। ऐसा होता है जो घटना आएगी वह तो प्रभाव डालेगी। कितना डालेगी, यह पृथक् बात है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– मस्तिष्क के क्षेत्र में चित्रात्मक कुछ दिखाई दिया अथवा शब्दरूप में हमने कोई विचार किया, इनको पकड़कर रोकना तो समझ में आता है लेकिन जहाँ पर कोई चित्र नहीं है, कोई शब्द नहीं है, केवल भावना है - जैसे करुणा की भावना, मित्रता की भावना। यहाँ पर चित्र नहीं है, शब्द नहीं है, भावना मात्र है; किन्तु भावनाओं में परिवर्तन होता है और उसको भी पकड़ना पड़ता है। तो वहाँ पर क्या ध्यान रखना पड़ता होगा?

स्वामी जी – वह मानसिक स्तर पर आती है?

साधक १– हाँ! लेकिन वहाँ पर कोई शब्द या चित्र नहीं आ रहा।

स्वामी जी – नहीं। एक बात और आएगी वहाँ पर।

साधक १– हृदय के क्षेत्र में भावना में परिवर्तन हो रहा है।

स्वामी जी – नहीं। परिवर्तन जो होगा उसमें या तो कोई आकृति आएगी या कोई शब्द आएगा। भावना का कोई न कोई आधार रहेगा।

साधक १– केवल भाव आते हैं जैसे करुणा का भाव।

स्वामी जी – करुणा का भाव भी तो किसी को लेकर आएगा। आप नहीं समझे? जैसे कि करुणा का भाव आया तो वह कैसे उभरा? अपने से सम्बद्ध था या किसी व्यक्ति से सम्बद्ध था; यह देखना।

साधक १– समस्त प्राणीमात्र कों लेकर उभरा।

स्वामी जी – तो प्राणीमात्र विषय बनेगा। चाहे प्राणीमात्र का रूप आधार बने या शब्द आधार बने। कोई न कोई विषय बनेगा।

साधक १– इनके बिना भाव नहीं रह सकता?

स्वामी जी – नहीं। अकेला भाव कैसे रहेगा? जब आप दूसरे से सम्बद्ध होंगे तब कोई न कोई बाहर का विषय भी आपके साथ सम्बद्ध होगा।

साधक १– या भाव आने पर पुनः हम उससे सम्बद्ध होंगे?

स्वामी जी – आप जो कह रहे है किसी प्राणी से सम्बद्ध होगें तो उससे सम्बन्धित भाव उभरेगा और बिना प्राणी के उभरता है, यह पृथक् बात है। (यह विचारणीय है।)

साधक १– स्वामी जी! कुछ ऐसी विचारधाराएँ हैं जो इस क्षेत्र में (अपनी ओर से) चलती रहती हैं और कुछ ऐसी हैं जो निमित्तवशात् परिवर्तित होती रहती हैं।

स्वामी जी – हम तो यह कह रहे हैं कि शब्द का चित्र उतरता है या आकृति का चित्र उतरता है उसमें कोई न कोई आधार रहेगा। परिवर्तन जो होगा उसमें या तो कोई आकृति आएगी या कोई शब्द आएगा। भावना का कोई न कोई आधार रहेगा।

साधक १– यहाँ पर (भाव) अनुभव में आता है (यहाँ पर अनुभव मात्र होता है, बिना शब्द आकृति का)।

स्वामी जी – न। उनको हम नहीं पकड़ रहे हैं। हम यह कह रहे हैं कि वह जो हमारी स्मृति-वृत्ति है उसके दो रूप होते हैं। एक विशेष आकार-प्रकार सहित, दूसरी सामान्य। यह समझ में आया? एक-जहाँ, जिस काल में, जिसके साथ घटना घटी, उसके सहित स्मृति-वृत्ति आती है। दूसरी - घुली-मिली, अस्पष्ट होती है। उदाहरण - मान लो आप जब दस वर्ष के थे। दिल्ली में कबड्डी खेल रहे थे और चोट लग गई थी। अब जो चोट लगी थी, वह दिल्ली, मैदान, कबड्डी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदि सहित स्मृति में आएगी और दूसरी चोट लगी थी, कहाँ लगी थी? पता नहीं। अधिकतम इतना याद कर सकते हैं खेल में लगी थी। किससे लगी थी, यह पता नहीं चल रहा।

साधक १ – जैसे स्वामी जी! एक व्यक्ति उदास बैठा हुआ है और दूसरा वहीं प्रसन्न है। एक के अन्दर उदासी का भाव है, दूसरे के अन्दर प्रसन्नता का भाव है। यह भावों में जो परिवर्त्तन है, किसी घटना से सम्बन्धित नहीं है। मैं इन्हीं भावों की बात कर रहा हूँ।

स्वामी जी – नहीं। यह जो भाव शब्द की व्याख्या है, वह स्पष्ट नहीं है। आप यह देखें पहले भाव जो आएगा वह नया होगा, आपने नए उठाये हैं अथवा स्मृति के रूप में जो रूप आदि सहित हैं, वे उभरेंगे?

साधक १ – रूप-शब्द-सहित तो समझ में आ जाता है।

स्वामी जी – और कहीं स्पर्श की घटना याद आ गई, कहीं शब्द की, कहीं भोजन की, कहीं गन्ध की आ जाती है। तो उसमें देखने की प्रमुख बात है कि हम किसी कार्य में तत्काल प्रवृत्त हो जाते हैं और उसका परीक्षण नहीं करते हैं, विचार नहीं करते, न परिणामों को देखते हैं। परिणामों को देखे बिना, अच्छे-बुरे की परीक्षा किए बिना, हम उस कार्य में प्रवृत्त हो जाते हैं, यह स्थिति है। इसको रोकना है कि बिना परीक्षा, परिणाम के किसी भी कार्य में हम प्रवृत्त नहीं होंगे।

हम कार्य का विभाजन करते हैं। हमारी विचारधारा के पूरे तीन विभाग हैं – ज्ञान-कर्म-उपासना। इनमें सब कार्यकलाप आ जाते हैं। अब हम क्या करते हैं? हम बिना परीक्षा किए, बिना परिणामों को जाने, ज्ञान में प्रवृत्त हो जाते हैं, कर्म में प्रवृत्त हो जाते हैं, उपासना आरम्भ कर देते हैं। इनके स्थान में परीक्षा किए बिना, परिणामों को देखे बिना, न तो ज्ञान में, न कर्म में, न उपासना में प्रवृत्त होना है। तब आप तीनों को पकड़ पाएँगे और तीनों को ठीक कर सकते हैं।

अच्छा सूक्ष्म विषय है यह। बड़ी तीव्रता से ये तीनों कार्य होते हैं। हमने यदि इनका मोटा सा वर्गीकरण कर लिया तो ज्ञान का, कर्म का, उपासना का तीनों क्षेत्रों का हम सरलता से अध्ययन कर लेते हैं। हमारे पास में समय की स्थिति इतनी नहीं होने से अब हम यहीं विराम देते हैं। इसको सोचना, विचारना और पूरे दिनभर परीक्षण करते रहना, यह आपका कार्य है। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१८ यज्ञीयोपदेश

बाधानिवारण : आषाढ़ कृ. १/२०६०-१४/०७/०३

ध्यान देंगे कि गायत्री-मन्त्र का पाठ करते हुए हम एक-एक शब्द का अर्थ कर पाते हैं या नहीं? प्रत्येक शब्द का अर्थ करते हुए ईश्वर को सम्बोधित कर पा रहे या नहीं? इस स्थिति में मैं ईश्वर के पास उपस्थित हूँ, ईश्वर मेरे पास उपस्थित है; यह (व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध) अनुभव करते हैं या नहीं?

इस विषय में जब कभी संशय या भ्रान्ति उत्पन्न होवे तो पूर्वपरीक्षित ईश्वर सर्वव्यापक है और आत्माएँ, प्रकृति और सृष्टि व्याप्य हैं; इस ज्ञान का प्रयोग करना चाहिए। इससे संशय और भ्रान्ति, ये दोनों दूर हो जाते हैं। यदि जीवात्मा ईश्वर के सर्वव्यापक होते हुए, स्वयं, प्रकृति और संसार के व्याप्य होते हुए, दोनों के बीच जो व्यापक-व्याप्य का स्वरूप है, उसको स्वीकार नहीं करता है, नहीं मानता है तो उसको संशय व भ्रान्ति बने रह जाते हैं। आपको कुछ समझ में आया?

इसलिए प्रमाणों से अच्छी प्रकार परीक्षा करके सत्य-असत्य, धर्म-अधर्म, कर्त्तव्य-अकर्त्तव्य, बन्ध-मोक्ष, अच्छे-बुरे आदि का निर्धारण करके रखना चाहिए और जब-जब अपनी स्थिति वैदिक-परम्परा या सिद्धान्त से विचलित होती दिखाई दे, तब-तब इन निर्धारित सिद्धान्तों का प्रयोग कर लेना चाहिए। दोहराइए, क्या समझ में आया?

साधक ८ – जिस समय हमें ईश्वर के सम्बन्ध में भ्रान्ति होती है, उस समय प्रमाणों से परीक्षित किया हुआ सिद्धान्त प्रयोग में लाया जाता है।

स्वामी जी – ईश्वर तो एक उदाहरण हुआ, इसी प्रकार से किसी भी विषय में जब संशय होता हो, भ्रान्ति होती हो तब परीक्षा-पूर्वक सिद्ध किये हुए सत्य सिद्धान्त तत्काल कार्य में ले लिये जाते हैं। यदि ऐसा न किया जाए तो संशय उभर जाएगा, भ्रान्ति बढ़ जाएगी और आप अपने मार्ग को छोड़ बैठेंगे।

कभी-कभी ऐसा होता है कि संशय या भ्रान्ति को हटाने के लिए परीक्षा-पूर्वक प्रमाणों से सिद्ध किये सिद्धान्तों का प्रयोग करने लगते हैं तब वे प्रमाण ही असिद्ध हो जाते हैं, उन्हीं को स्वीकार नहीं कर पाते हैं। यह स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि प्रमाण की बात मानी जाए या स्वयं की बात मानी जाए? यह स्थिति आपके सामने उपस्थित हो सकती है।

ये बातें आपको समझ में आ रही हैं या नहीं? आपसे यदि विशेष नहीं पूछा जाए तो आराम करते रहेंगे, बोलने वाला बोलता रहे। इसलिए कि जब पूछा जाता है तब व्यक्ति ध्यान से सुनता है और बताने का प्रयास करता है। जब पूछा नहीं जाता तब न तो ध्यान से सुनता है, न सज्जा करता है और न वह उत्तर देने का प्रयास करता है। यह स्वभावतः सिद्ध है। तो हमारे सामने क्या स्थिति आई?

साधक २ – संशय हो जाने पर उनके निवारण के लिए जब हम पुनः प्रमाणित विषयों को उपस्थित करते हैं, तब वहाँ यह नयी स्थिति उत्पन्न हो जाती है कि उन प्रमाणित विषयों पर ही विश्वास नहीं होता।

स्वामी जी – वहाँ पर व्यक्ति अपनी बात माने अथवा प्रमाणों से सिद्ध बात को माने, यह बात

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकर उपस्थित हो जाती है। यदि व्यक्ति शब्द-प्रमाण को शत-प्रतिशत सत्य मानता है तब तो अपनी बात को ठुकरा देता है और यह कहता है कि प्रमाण की बात सत्य है तथा मेरी बात झूठी है। यह प्रयोग होता है वहाँ पर। आप ऐसा करते हैं या नहीं, इसका आत्म-निरीक्षण कर लो। कोई करता हो तो बताओ -

साधक २- प्रमाण को ही छोड़ देते हैं।

स्वामी जी - हाँ। इन्होंने अपनी स्थिति बताई कि हम तो प्रमाण को ही छोड़ देते हैं, अपनी बात मान लेते हैं। अपना अनुभव बताओ, आप क्या करते हो? कुछ तो करते होंगे?

साधक ३- कुछ विषयों में अपनी बात को प्रमुख रखते हैं पर उसको प्रमाणों से सिद्ध करने का प्रयास करते हैं। अर्थात् अपनी बात को प्रमाण से सिद्ध किया जाए, यह अगली विचार धारा रहती है। (अर्थात् प्रमाणित को छोड़ देते हैं!)

स्वामी जी - वेद तथा वेदानुकूल ऋषिकृत ग्रंन्थों में जो सत्य-असत्य को जानने के लिए प्रमाण दिए गए हैं, उनमें ऐसी स्थिति होने पर क्या करना चाहिए? तो वहाँ भी अपनी बात छोड़ देनी चाहिए और शब्द-प्रमाण को स्वीकार कर लेना चाहिए।

तो हम इस बात को लेकर चले थे कि ध्यान की स्थिति में ईश्वर और हमारे बीच व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध के विषय में यदि बाधा खड़ी हो जाती है, हमारे मन में वह उतरता नहीं या हम समझते नहीं अथवा उलटा समझते हैं, तब वहाँ यह प्रयोग करते हैं कि शब्द-प्रमाण से जो ईश्वर व्यापक और जीवात्मा, प्रकृति और सृष्टि व्याप्य सिद्ध किया हुआ है, उसको उपस्थित कर लेते हैं। इसी प्रकार से जब भी अपनी और प्रमाण में से किसकी बात स्वीकार करने की स्थिति आती है, तब अपनी बात को छोड़कर शब्द-प्रमाण को स्वीकार कर लेते हैं। अब आया समझ में, ऐसे प्रयोग होता है?

साधक ८- दोबारा बतायें -

स्वामी जी - जब हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं तब मन्त्र का पाठ, शब्द का अर्थ और ईश्वर के समर्पित होते हैं; ये काम करते हैं। इसके साथ जब ईश्वर को व्यापक स्वयं को व्याप्य, ईश्वर को व्यापक प्रकृति को व्याप्य, ईश्वर को व्यापक सृष्टि को व्याप्य मानने की बात आती है, तब वह हमें अपनी बुद्धि से प्रत्यक्ष तो दिखता नहीं। पुनः इसको हम शब्द-प्रमाण से स्वीकार कर लेते हैं। दोहराइये, क्या समझ में आया?

ब्रह्मचारी - शब्द-प्रमाण से हमने यह सिद्ध किया है कि ईश्वर व्यापक है, जीवात्माएँ व्याप्य हैं, ईश्वर व्यापक है प्रकृति व्याप्य है किन्तु प्रत्यक्ष में जब हम प्रयोग करते हैं तो हमारी बुद्धि में यह बात जंचती नहीं कि ईश्वर व्यापक है और हम तथा यह जगत् व्याप्य हैं।

स्वामी जी - उसके पश्चात् वहाँ पर 'अपनी बात' मानी जाए या 'शब्द-प्रमाण की बात' मानी जाए, यह स्थिति आती है। तब वहाँ हम शब्द-प्रमाण की बात मान लेते हैं। यदि हम ऐसा नहीं करते हैं तो प्रगति नहीं कर सकते, विकसित नहीं हो सकते, समाधि जैसी स्थिति को प्राप्त करने में तन-मन-धन से अपने-आप को समर्पित नहीं कर सकते। यह बात आएगी। इतना समझ में आया?

साधक ८- हाँ! जी।

स्वामी जी - तो ऐसी स्थिति में शब्द-प्रमाण सत्य है और हमारी बात झूठ है, ऐसा मानकर अपनी बात को छोड़ देना चाहिए। अन्य कोई शंका हो तो पूछ सकते हैं आप।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– प्रयोगकाल के अन्दर जिस समय धारणा-प्रदेश में अपने-आपको व ईश्वर को उपस्थित मानकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना साधक कर रहा है, उस समय सृष्टि में ईश्वर व्यापक है, सभी जीवात्माओं में व्यापक है; क्या इस प्रकार का चिंतन विषयात्मक नहीं होगा? सृष्टि को बुद्धि में लाना, जगत् को लाना विषयान्तर नहीं होगा?

स्वामी जी – एक तो आपका प्रश्न कुछ खण्डनात्मक रहता है, पहले उसको हटा देना चाहिए।

साधक १– मैं भी अनुभव करता हूँ।

स्वामी जी – यह अच्छा नहीं है।

साधक १– जी!

स्वामी जी – तो हमारी बात चल रही थी कि जप करने लगे तब संशय उत्पन्न हो गया। इसको कोई रोक नहीं सकता। यही थी न? जब संशय हो जाए तो क्या करें; वक्ता का तात्पर्य यह है, अन्य कुछ नहीं है। तो आप वक्ता का यह तात्पर्य लीजिए। उन विषयों को विचारने लग जाओ, वक्ता यह नहीं कहना चाहता है। वहाँ यह तात्पर्य मत लीजिए आप।

साधक ३– जब संशय हो तब करेंगे।

स्वामी जी – व्यक्ति को वक्ता का तात्पर्य समझना कठिन होता है। जब ऐसी स्थिति आए तो हम क्या करें? और यह तो होगा। यह कोई नयी घटना नहीं है। संशय लाख बार होगा? जीवनभर होता रहेगा। कुछ आया समझ में?

साधक ८– हाँ जी!

स्वामी जी – उस उलझन को हटाने में हम क्या प्रयोग करें? अपनी बात मानें या शब्द प्रमाण की मानें? उसका समाधान है कि शब्द-प्रमाण की बात सत्य है और हमारी झूठ है। अतः अपनी बात का परित्याग कर देना चाहिए। यदि हम ऐसा करते चलेंगे तो हमारे जीवन का उत्थान, प्रगति, विकास बहुत अधिक होगा। यदि हम इस रूप में शब्द-प्रमाण को मानकर नहीं चलेंगे तो विकास, प्रगति, उन्नति नहीं हो पाएगी। कुछ हो सकती है किन्तु अच्छी प्रकार से उन्नत्ति, शीघ्रता से सफलता का मिलना आदि और हम आगे ठीक चले जाएँगे, ऐसा नहीं हो पाएगा।

साधक २– उस काल में तो इस प्रकार के संशय की स्थिति को छोड़कर शब्द-प्रमाण को मान लेंगे किन्तु कालान्तर में यदि वही संशय पुनः उभरता है, तब उस स्वतंत्र काल में इसका समाधान क्या करेंगे?

स्वामी जी – जैसे? अन्यकाल में का क्या अभिप्राय है?

साधक २– जैसे व्याप्य-व्यापक-भाव को हम धारणा-प्रदेश में मानते हैं।

स्वामी जी – हाँ हाँ!

साधक २– सृष्टि आदि का स्थान तो उससे बहुत अन्यत्र है, वह हमारे हृदय प्रदेश में आ ही नहीं सकता है, तब उनको वहाँ पर मानना, यह एक प्रकार की कल्पना-मात्र हुई।

स्वामी जी – कहाँ पर मानना?

साधक २– सृष्टि आदि को हृदय में मान लेना। व्याप्य-व्यापकभाव मानने के लिए अथवा सम्पूर्ण सृष्टि को और ईश्वर को हृदय प्रदेश में मानना कल्पना-मात्र हुई।

स्वामी जी – नहीं। हम सृष्टि को लाकर हृदय में इकट्ठा नहीं कर रहे हैं। अपितु हमने तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो पहले से ईश्वर को व्यापक और पदार्थमात्र को व्याप्य सिद्ध कर रखा है, उस ज्ञान को उपस्थित कर रहे हैं। सत्त्व, रज, तम में ईश्वर व्यापक है, जीवात्मा में ईश्वर व्यापक है और सृष्टि में ईश्वर व्यापक है। तीनों में ईश्वर व्यापक है, यह पहले सिद्ध कर चुके हैं। यहाँ तो केवल उसको उपस्थित कर रहे हैं। अब आपका अभिप्राय है कि सृष्टि को लाकर क्यों खड़ा करें? यदि आपका काम अकेले जीवात्मा से ही चलता हो तो आप सृष्टि को न लाइए वहाँ पर।

साधक २– प्रश्न यह है कि हम सूर्य में भी व्यापक मान रहे हैं, चन्द्र आदि में सब जगह ईश्वर को व्यापक मान रहे हैं और उसी व्यापकता को यहाँ अपने हृदय में अनुभव कर रहे हैं कि इस प्रकार सब में ईश्वर व्यापक हैं। अर्थात् सूर्य तो यहाँ है ही नहीं, पुनः उसमें जो ईश्वर की व्यापकता है, उसको हम अपने हृदय में कैसे माने?

स्वामी जी – मैं यह नहीं कह रहा हूँ कि सूर्य में जो ईश्वर की व्यापकता है, उसको यहाँ अपने हृदय में अनुभव करें किन्तु सिद्धान्त रूप में वस्तुतः सूर्य आदि में ईश्वर व्यापक है या नहीं?

साधक २– है।

स्वामी जी – तो उसको देखना (मानना) है। सूर्य आदि को यहाँ लाकर खड़ा नहीं करना है। सृष्टि में व्यापक है, यह कहने से सारी रचना में आ गया और जीवात्मा में कहने से आप और सब जीवात्माओं में आ गया। बची प्रकृति, तो प्रकृति कहने से प्रकृति में भी आ गया। इसलिए हमने तीनों में कह दिया।

साधक २– वहाँ पर ऐसी बुद्धि रखकर चलें।

स्वामी जी – हाँ! तीनों में ईश्वर व्यापक है और प्रलय काल में भी, वर्तमान काल में भी तथा आने वाले प्रलय में भी, तीनों कालों में भी ऐसा ही समझना चाहिये। हाँ जी!

साधक १– उपासना काल में केवल ईश्वर ही विषय बनता है और जीवात्मा और प्रकृति आदि विस्मृत से हो जाते हैं। क्या यह स्थिति उपयुक्त है अथवा दोषपूर्ण है?

स्वामी जी – जिस समय हम ईश्वर का ही स्मरण करते हैं – यथा हे ईश्वर! आप सर्वज्ञ हैं। तो उस समय न प्रकृति विषय रहेगी, न जीवात्मा रहेगा। कोई विषय नहीं रहेगा। विचारने योग्य कोई विषय नहीं रहेगा। हाँ! परिपक्व अवस्था होने पर यदि हमको आवश्यकता पड़ती है तब इनको उठाया जा सकता है। परिपक्व अवस्था अर्थात् जिस व्यक्ति को समाधि का बहुत अच्छा अभ्यास हो गया है। वह समाधि में रहता हुआ भी तीनों का विचार कर लेता है, उसे कोई बाधा नहीं पड़ती है। किन्तु जो ऐसा नहीं कर पाता है नया व्यक्ति है, उसके सामने ईश्वर प्रधान रहेगा। ये रहेंगे किन्तु गौण रहेंगे। गौण रूप में किसी का अभाव नहीं होता। अतः नया व्यक्ति जब ईश्वर के विषय में विचार करने लगेगा, तब ईश्वर के अतिरिक्त अन्य कोई विषय विचारने योग्य नहीं रहेगा।

अब मन्त्र का प्रयोग करेंगे हम। अब सारी बातें हुई और आपने सुनीं; परन्तु जो मैंने चित्र उपस्थित किये, वे अब भी ज्यों के त्यों आपके सामने आएँगे। इनको सुनने मात्र से आप हटा नहीं सकते। वे तो आएँगे। इसलिए प्रयत्न करो, उनको रोको, संशय को न होने दो, भ्रान्ति को न होने दो। चलिये –

ओं ऽऽ भूर्भुवः ऽ स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यम् ऽ भर्गो देवस्य ऽ धीमहि ऽ। धियो यो ऽ नः प्रचोऽदयात्॥ अब आप अपनी स्थिति बताएँगे, ध्यान का स्तर ठीक रहा या कुछ बाधा पड़ी? हाँ जी! आप बोलो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ४– स्वामी जी ! अभी जैसा आपने बताया था उसके आधार पर मानसिकता बनने के कारण अधिक संशय तो नहीं हुआ कि ईश्वर सर्वव्यापक नहीं है या क्या है ? लेकिन उसकी व्यापकता की और मैं उसमें डूबा हुआ हूँ, इसकी अनुभूति अच्छे स्तर पर नहीं बन पायी।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। यदि संशय हो तब तो उसकी अनभूति बनाने का प्रयत्न करना चाहिए, परन्तु जब संशय नहीं हो तो सीधा ईश्वर से सम्पर्क रखें।

साधक ४– तो जब अनुभूति अच्छे स्तर पर नहीं बन पायी, इसका अर्थ है कि संशय कहीं न कहीं होगा, ऐसा मान सकते हैं क्या ?

स्वामी जी – आवश्यक नहीं है। एक यह भी तो स्थिति होती है जिसमें संशय उठता ही नहीं है। जैसे कि जप करते समय आपने कहा – **ओ ऽऽऽ म् भूः** और अर्थ किया– हे ! ईश्वर आप प्राणों के भी प्राण हैं। तो इस समय आपका सम्बन्ध ईश्वर से जुड़ा हुआ है। इस स्थिति में यदि संशय हो जाए तब तो प्रमाणों का प्रयोग करेंगे। ईश्वर सर्वव्यापक है, प्राणों का भी प्राण है आदि सिद्ध करने के लिए प्रमाणों का प्रयोग करेंगे और यदि सतत जप करते चले जा रहे हैं **ओ ऽऽऽ म् भूः** हे ! ईश्वर आप प्राणों के भी प्राण हैं तथा कोई भिन्न विषय भी नहीं बना रहे हैं, तब संशय-निवारण की आवश्यकता नहीं है। संशय होता है तब पुनः प्रमाणों का प्रयोग करते हैं। हाँ जी ! आगे आप बोलो –

साधक २– व्याप्य-व्यापक-भाव वाली बुद्धि तो नहीं थी, पर ईश्वर सामने है, मैं इसको सम्बोधित कर रहा हूँ, इतनी केवल बुद्धि थी। यह स्थिति भी सदोष है या निर्दोष ?

स्वामी जी – हाँ ! (निर्दोष है।) क्योंकि यहाँ हमने न तो सर्वव्यापक का खण्डन किया और न ही संशय हुआ।

साधक २– विषय को ही नहीं रखा।

स्वामी जी – (व्याप्य-व्यापक-भाव) विषय नहीं रहा, तो भी ठीक है। इसलिए कि हम यहाँ ईश्वर के एक गुण को ले रहे हैं – वह ईश्वर प्राण=जीवन को देने वाला है। इसमें हमको कोई संशय नहीं है तो यह ठीक है। मान लो, आप प्राणों के भी प्राण हैं, केवल इतना ले लिया और इसको ठीक से करते जा रहे हैं तो ध्यान की स्थिति में यह ठीक है।

साधक ७– हम गायत्री मन्त्र का अर्थ जानते हैं। पुनरपि उसका अर्थ बार-बार करने की क्या अपेक्षा है ?

स्वामी जी – थोड़ी-सी बात अस्पष्ट रही।

साधक ७– हम गायत्री मन्त्र का अर्थ पूर्णतः जानते हैं, प्रभु तो जानते ही हैं और हम गायत्री मन्त्र के द्वारा प्रार्थना कर रहे हैं। तो बार-बार उसके अर्थ करने की अपेक्षा केवल मन्त्र ही उच्चारण करते रहें, उन्हीं पर हम ध्यान देते रहें तो ?

स्वामी जी – उन पर किन पर ?

साधक ७– मन्त्र के शब्दों पर ही।

स्वामी जी – तो शब्दों पर ध्यान दिया और अर्थ का क्या किया ?

साधक ७– अर्थ नहीं करेंगे।

स्वामी जी – अर्थ क्यों नहीं करेंगे ? इसका तो विधान है –

तज्जपस्तदर्थभावनम् । यो.द.१/२८।

साधक ७– भावना तो हमारी है और प्रभु से प्रार्थना करते रहेंगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Rama Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – न न ! यह आपकी अपनी व्याख्या हो गई। (यह नहीं चलेगी)। उस शब्द का जो अर्थ है, वही अर्थ करना भावना है। **तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्।** यो.द. १/२७-२८। यह संविधान है। तो **ओ३म्** प्रणव है और अर्थ सर्वरक्षक है। अतः ओम् का पाठ करो और अर्थ सर्वरक्षक करो; ऐसा रहेगा। यदि कोई अन्य शब्द आपने ले लिया हो तो ऐसे ही उनका भी अर्थ करना पड़ेगा। हाँ जी !

साधक १ – स्वामी जी ! शब्द का अर्थ करना ही भावना है क्या ?

स्वामी जी – हाँ। परिभाषा - जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा ही जानना भावना है। इस प्रसंग में जब हम जिस पदार्थ को बोल रहे हैं, वह पदार्थ ऐसा ही है।

साधक १ – उसको हम पुनः वैसा देखने का प्रयास करेंगे।

स्वामी जी – वैसा ही हम देखने का प्रयत्न करेंगे, जैसा पदार्थ है।

साधक १– जैसे सर्वरक्षक कहा तो सर्वरक्षक देखने का प्रयास करेंगे, यह भावना है।

स्वामी जी – हाँ! यह भावना है।

साधक १ – जी !

स्वामी जी – जिसको हम बोलते हैं ओम्। तब ओम् का अर्थ हमने लिया सर्वरक्षक। तो उसको सर्वरक्षक ही देखेंगे, यह भावना है। तज्जपस्तदर्थभावनम् में यदि सर्वरक्षक ईश्वर को नहीं देख पाते हैं तो दोष माना जाएगा।

साधक १– केवल शब्द का अनुवाद कर दिया, लेकिन ऐसा देख नहीं पाते तो ?

स्वामी जी – देख नहीं पाते हैं तो दोष माना जाएगा।

साधक १– स्वामी जी ! जब आप यह कहते हैं कि शब्द का अर्थ करें तो वहाँ यह अभिप्राय लेना होगा कि भावना बनाते हुए करें या किस प्रकार से समझे ?

स्वामी जी – जैसे कि आपने ओम् का अर्थ किया सर्वरक्षक। तो सर्वरक्षक का तात्पर्य है - ईश्वर नामक पदार्थ, जो सबकी रक्षा करता है। आई बात समझ में ? यही भावना है, हमने जो अर्थ किया। अर्थ का अभिप्राय है वस्तु।

साधक २ – जब ओम् का अर्थ सर्वरक्षक करते हैं, तब सर्वरक्षक भी शब्द है, ओम् भी शब्द है। अतः यहाँ सर्वरक्षक को अर्थ नहीं माना जाये अपितु इससे जो संकेतित हो रही है, वह वस्तु अर्थ है।

स्वामी जी – हाँ। वह लिया जाएगा। क्योंकि शब्द अपने आपमें पृथक् वस्तुतत्त्व है और अर्थ अपने आपमें पृथक् वस्तुतत्त्व है। शब्द का जो अर्थ किया आपने, उससे और किसका ग्रहण करेंगे ? पदार्थ का ही तो ग्रहण करेंगे, अन्यथा केवल शब्द-प्रयोग का कोई प्रयोजन ही नहीं है। अतः यहाँ उसी पदार्थ का ग्रहण होगा। शब्द यहाँ संकेत देता है कि वह ईश्वर को कह रहा है। आई बात समझ में ? तो ईश्वर का ग्रहण होगा उसमें।

साधक १– स्वामी जी ! जैसे सर्वरक्षक कहते हैं, सर्वशक्तिमान् कहते हैं, तो सब में ईश्वर का ग्रहण तो कर रहे हैं किन्तु पुनः वैसा दिखना भी चाहिए, तभी तो भावना पूरी मानी जाएगी।

स्वामी जी – हाँ। दिखने का अभिप्राय ?

साधक १ – अनुभव।

स्वामी जी – ज्ञान।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – अनुभव जैसा ज्ञान।

स्वामी जी – दिखने का अभिप्राय है प्रत्यक्ष होना चाहिए या अनुमान आदि जैसी मान्यता बनी रहनी चाहिए। जैसा पदार्थ है, वैसा मन में भाव रहना चाहिए।

साधक १ – सर्वशक्तिमान् बोलते हैं तो सर्वशक्तिमान् बुद्धि में रहना चाहिए। समझ में भी आना चाहिए।

स्वामी जी – समझ में आना चाहिए और हमारी बुद्धि उसको स्वीकार करे। कई बार ऐसा होता है पदार्थ को तो सिद्धान्ततः जानते हैं परन्तु हमारी बुद्धि उसको स्वीकार नहीं करती है। यदि ऐसा है, तब वही बात आएगी जो मैंने पहले आपसे कही थी। स्मरण हो तो दोहराइये – जब संशय हो, भ्रान्ति हो, तब पुनः पुनः अभ्यास करके पदार्थ के यथार्थ स्वरूप को अपनी बुद्धि में बैठाने का पूरा प्रयत्न करना चाहिए। कालान्तर में संशय व भ्रान्ति वाले संस्कार दबते जाएँगे और यथार्थता के संस्कार दृढ़ हो जाएँगे, पुनः हम स्वाभाविक रूप से स्वीकार करने लग जाएँगे।

साधक १ – जब तक पूरा स्वीकार नहीं कर पा रहे हैं, तब तक न्यूनता मानी जाएगी।

स्वामी जी – हाँ! पूरे की बात जहाँ तक है, उसमें न्यूनता तो मानी जाएगी। मान लिया कभी आप ओम् का पाठ करते हुए ओम् का अर्थ जब सर्वरक्षक लेने लगे, तब मन अधिकार से बाहर हो गया। आपको लगने लगा कि वह नहीं मान रहा है। ऐसा आप देख सकते हैं। जब आप अपने-आप को मनाने लगे कि ईश्वर सर्वरक्षक है। वस्तुतत्त्व ईश्वर है; मनाने लगे तो आपके विचार आपके अधिकार से बाहर हो गए। नहीं आया समझ में? संशय उठा लिया या भ्रान्ति हो गई, तत्काल लगने लगा कहाँ ईश्वर है? वहाँ पर यदि मन या आत्मा अधिकार में है तब आप उस संशय को रोक देंगे, भ्रान्ति को रोक देंगे कि नहीं! मैं संशय उत्पन्न नहीं करूँगा, मैं भ्रान्ति उत्पन्न नहीं करूँगा। इस प्रकार आपने रोक दिया और वह रुक गया। यदि आप ऐसा नहीं कर पाते हैं तो संशय कहीं भी उभरेगा और आपकी स्थिति बिगड़ जाएगी।

इसलिए आपने पाठ सुना था, पढ़ा था कि ज्ञान-कर्म-उपासना ये तीनों के तीनों दिनभर चलते हैं और जो इन तीनों के ऊपर नियन्त्रण नहीं कर पाता, उसकी यह दुर्गति हो जाएगी। पुनः सुनिए! आप को जैसे संशय हुआ और उसको आपने झट रोक दिया कि संशय नहीं करना है, भ्रान्ति नहीं करनी है; ऐसे रोक दिया तो आप बच जाएँगे। यदि आप इतना अधिकार नहीं रखते तो संशय से जो आपत्ति आएगी, भ्रान्ति से जो उलझनें उत्पन्न होंगी, वे होंगी ही, उनको नहीं रोका जा सकता। अब विराम ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Kendriya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

११ क्रियात्मक योगाभ्यास

वृत्तिनिरोध : आषाढ़ कृ. १/२०६०-१४/०७/०३

त्र्यम्बकं यजामहे..... से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। आपको इसका अर्थ स्मरण है अथवा नहीं? जैसे आपने ध्यान की पद्धति-रीति सुनी है, उसी प्रकार से इस मन्त्र के पाठ में भी उसका प्रयोग करना है -

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

अब मानसिक प्रयोग करेंगे। मानसिक-प्रयोग में आपने, जो प्रथम रीति है - पहले मन्त्र का पाठ करो और पुनः एक-एक शब्द को लेकर उसका अर्थ करो, उसका प्रयोग करना है। आपने मन्त्र पढ़ा, पुनः कहा **त्र्यम्बकं यजामहे** तो पहले आप त्रि शब्द का अर्थ करेंगे। हे ईश्वर! आप जीवात्मा, प्रकृति और पूरी सृष्टि के अध्यक्ष हैं, रक्षक हैं, संचालक हैं, स्वामी हैं। इस प्रकार से शब्द का अर्थ करते हुए अन्त तक धीरे-धीरे पाठ करेंगे। मानसिक रूप में आपने पाठ करना है। आरम्भ कीजिए -

जप आरम्भ.....। समय लगभग ५ मिनट।

अब आप रुकेंगे और अपनी-अपनी स्थिति बतायेंगे, कैसी रही? आप सुनाएँगे -

साधक २- ईश्वर को सम्बोधित करते हुए अर्थ का विचार करता रहा।

स्वामी जी - एक बार आपने अन्त तक अर्थ कर दिया। पुनः क्या किया?

साधक २- पुष्टिवर्धनम् क्यों कहा गया? आगे कहा गया मृत्यु से हमको बचायें। पुनः कहा हमको मोक्ष प्राप्त कराने वाले हैं। तो इस अर्थ के साथ सुगन्धिम् और पुष्टिवर्धनम् की क्या संगति है? दोनों गुणों का यहाँ क्या अभिप्राय है?

स्वामी जी - अच्छा! एक बात है। वहाँ पहले इतना ही अर्थ लें कि सुगन्धि और पुष्टि के वर्द्धक हैं; इतना ही अर्थ लेकर चलें, अधिक विस्तार में न जाए क्योंकि इससे कभी ऐसा न हो हम विषयान्तर में जाकर व्याख्या करने लगे और ईश्वर से थोड़ा-सा इधर-उधर सम्बन्ध हो जाएँ?

साधक २- ईश्वर के साथ तो असम्बद्ध नहीं होता है।

स्वामी जी - जैसे कि हम ईश्वर को सम्बोधित कर रहे हों और इन शब्दों का क्या सम्बन्ध है, ऐसा करते हुए थोड़ा-सा विस्तार में चले गए तो ईश्वर से दूर हो सकते हैं। इसलिए या तो ईश्वर से पूछो कि हे ईश्वर! मैं यह जानना चाहता हूँ कि इनका आपस में क्या सम्बन्ध है? तो दूर जाने की सम्भावना नहीं रहती है।

हाँ जी! अब आप सुनाएँगे क्या स्थिति रही? जप की स्थिति चली या नहीं चली?

साधक ३- जी! मन्त्र का उच्चारण मन में किया, उसका अर्थ भी कर लिया और समर्पण की स्थिति भी बनाई परन्तु मध्य में कुछ बाहर से मोर की ध्वनि आई, उससे ध्वनिवृत्ति बनी और उसको रोक दिया, पुनः ध्यान आरम्भ कर दिया। तो ध्यान में बाहर की ध्वनि के कारण कुछ तो बाधा हुई।

स्वामी जी - जब ध्वनि आई तो उसको बलात् रोक देते।

साधक ३- वह लगातार आ रही थी, उससे वृत्ति बन गई।

स्वामी जी - लगातार को रोकने की विधि दूसरी है कि उसकी ओर ध्यान ही नहीं देना। क्या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समझ में आया? उस ओर से ध्वनि आ रही है या नहीं आ रही है; इस पर ध्यान ही नहीं देना। यदि ध्यान जाने की स्थिति हो तो उसको बलात् रोको और बलात् रोकने में भी वही सिद्धान्त काम करेगा जो आपने पहले सुना रखा है 'सब ओर से रोक देना'।

कई बार ऐसा होता है हम जप कर रहे होते हैं और ध्वनि आना आरम्भ हो गया। अब हमने उसको रोकने का प्रयत्न किया तो ईश्वर से हटकर हमारा मन किसी दूसरे विषय की ओर दौड़ने-सा लगा। जैसे कि अन्य विषय तत्काल उठा लिया। अब पुनः एक बार प्रयत्न किया और ईश्वर का ध्यान आरम्भ किया कि पुनः ध्वनि आने लगी और बाधा डालने लगी। इस स्थिति में ध्यान हो नहीं पा रहा और मन विषयान्तर जा रहा है तो अब क्या करेंगे? अब एकदैव सब ओर से मन को रोक देंगे। किसी ओर नहीं चलाना है। कुछ काल तक ऐसे ही स्थिति नियन्त्रण में रखेंगे और जब लगा कि मन स्थिर हो गया तो पुनः ईश्वर का ध्यान आरम्भ कर देंगे।

साधक ३— स्वामी जी! जब शब्द की तीव्रता होती है तब हम कितना ही विचार करें कि मैं इच्छा करने वाला हूँ, इच्छा नहीं करूँगा, परन्तु तब भी मन को रोक नहीं पाते हैं। ऐसा लगता है, बलात् चोट-सी पड़ रही है शब्द की।

स्वामी जी— कोई बात नहीं। एक होती है अति तीव्र ध्वनि, अति तीखी, जैसे कि तोप का गोला छूट रहा हो, तब तो हमारे बस की बात नहीं। हो सकता है कान का परदा भी फट जाए। वह हमारी सीमा के बाहर है। पर दूसरी ध्वनि, जो न्यूनमात्रा में होती हैं, उन पर नियन्त्रण कर सकते हैं। आप यह देख सकते हैं जब अच्छा ध्यान लगता है तब छोटी-मोटी ध्वनि तो सुनाई ही नहीं देती है। ऐसा देख सकते हैं आप।

साधक ३— ऐसा तो होता है।

स्वामी जी— जब ऐसा होता है तो वहाँ भी होगा, वहाँ बलात् रोक दी जाएगी। जब व्यक्ति किसी विषय में अतितल्लीन हो जाता है, कितनी ध्वनियाँ आती रहें, उसको बाधित नहीं करती हैं। बाधित होने में एक कारण है ईश्वर के प्रति आपका अत्यन्त प्रेम का अभाव। ईश्वर के प्रति आपका अत्यन्त प्रेम न होने के कारण आपको अधिक बाधा पड़ती है। दोहरा लीजिए अच्छी तरह से।

साधक ३— ईश्वर में अति प्रेम...।

स्वामी जी— अति प्रेम न होने के कारण से ये छोटी-मोटी ध्वनियाँ बाधित करती रहती हैं। जब अतिप्रेम होगा तो अनेक छोटी ध्वनियाँ बाधित नहीं करेंगी। इसलिए जब अतिप्रेम न हो और ये बाधित कर रही हों तो उसको ध्वनियों को बलात् रोकना पड़ेगा। अभ्यास-प्रयत्न से रोकना पड़ेगा।

साधक ८— ऐसा भी होता है कि हम ईश्वर का ध्यान छोड़कर इनको अपना विषय बना लेते हैं।

स्वामी जी— हाँ! यह होता है। यह एक दोष है ध्वनि को अपना विषय बना लेना।

साधक ८— यह व्यक्ति क्यों बोल रहा है।

स्वामी जी— हाँ! एक स्थिति यह है कि यह क्यों बोल रहा है? उसकी ध्वनि क्यों आ रही है आदि चेतन से सम्बन्धित विषय है। दूसरा है जड़ से सम्बन्धित जैसे ट्रक की, रेल की ध्वनि। उस ध्वनि को, यह उसकी ध्वनि है, इस रूप में विषय बना लेते हैं। तीसरी स्थिति में कभी ऐसा प्रतीत होता है कि बलात् कोई स्मृति विषय बन रही हैं। ऐसी विवशता की स्थिति होती है। हाँ जी! कुछ कहना चाह रहे हैं?

साधक ६— कभी ऐसा लगता है स्वामी जी! ईश्वर में अतिप्रेम कैसे हो? ईश्वर में प्रेम किस प्रकार उत्पन्न करें?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – छोटा-सा उत्तर है ईश्वर के पूरे गुण-कर्म-स्वभाव को अच्छी तरह समझ लो, जीवात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव को समझ लो और प्रकृति-विकृति के गुण-कर्म-स्वभाव को समझ लो तो ईश्वर में प्रीति हो जाएगी। क्या समझ में आया?

साधक ६ – पढ़ने-सुनने में तो ऐसा लगता है और यह इच्छा रहती है कि कैसे इसको प्रयोग में अपनाएँ, जिससे ईश्वर में अतिप्रेम हो जाए।

स्वामी जी – एक तो उत्तर हो गया कि ईश्वर के पूरे गुण-कर्म-स्वभाव को जान लेने पर ईश्वर में प्रीति हो जाएगी। इसको आप विस्तार से समझो कि आगम काल, स्वाध्याय काल, प्रवचन काल और उसके पश्चात् व्यवहार काल जोड़ दो इसमें, यहाँ तक आपको पहुँचना पड़ेगा। व्यवहार में ईश्वर-जीव-प्रकृति-विकृति के गुण-कर्म-स्वभाव को तुलनात्मक रूप से उतार लेने पर इस पूरे संसार की, यहाँ तक कि जीवात्मा की सत्ता की प्रतीति में भी कठिनाई हो जाएगी।

जब ईश्वर के साथ जीवात्मा और प्रकृति-विकृति के गुण-कर्म-स्वभाव का तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तो सार निकालेगा कि जैसे जीवात्मा की कोई सत्ता ही न हो। प्रकृति नाम की वस्तु है और वह अपने-आप हमारा कोई भला करती हो, यह भी नहीं रहेगा। केवल ईश्वर बच जाएगा। इतना अध्ययन और इतने प्रयोग आपको करने पड़ेंगे।

ईश्वर में अतिप्रेम होना, जीवात्मा में अतिप्रेम होना और प्रकृति या सृष्टि में अतिप्रेम होना; ये तीनों भिन्न-भिन्न अवस्थायें हैं। क्योंकि प्रीति वहाँ होती है जहाँ उत्कर्ष दिखाई देता है। वह बहुत उपयोगी है, बहुत उत्तम है, बहुत आनन्दप्रद है, दुःखों से छुड़ाने वाला है; ऐसा लगता है। जब आप यह अन्य पदार्थों में देखेंगे तो ईश्वर में अतिप्रेम नहीं हो सकता। और सुन लो! आपको सुख और सुख साधनों में राग है तो ईश्वर में अतिप्रेम नहीं हो सकता। इसके विपरीत जब सुख और सुख साधनों में दुःख भरा हुआ है; ऐसा देखेंगे तब मोड़ खाएँगे। क्योंकि जहाँ दुःख और दुःख के कारण मिलेंगे, वहाँ कहाँ जाएँगे? कुछ समझ में आ रहा है?

और समझिये – जब लोक में सर्वत्र तीनों कालों में परिणाम-दुःख, ताप-दुःख, संस्कार-दुःख और गुणवृत्तिविरोध-दुःख को देखेंगे तब आपकी प्रीति इस ओर भी नहीं रहेगी। इसके उपरान्त कल्पना करें नित्य आनन्द, दुःखरहित आनन्द, अनन्त ज्ञान, अनन्त बल आदि गुण ईश्वर में हैं किन्तु साक्षात् नहीं हो रहे हैं, तब क्या करेंगे? शब्द-प्रमाण से मानकर चलेंगे और तब ईश्वर में अतिप्रेम हो जाएगा। आगे चलकर जब आप ध्यान करेंगे, बार-बार जप करेंगे, धीरे-धीरे ईश्वर के स्वरूप में अपनी एकाग्रता की स्थिति का अच्छी तरह सम्पादन करने लगेंगे, तब अनुभूतियाँ होने लगेंगी कि ईश्वर के ध्यान में आनन्द आता है। तब ईश्वर में अतिप्रेम होगा। अब तो बहुत कुछ हो गया?

साधक ६ – वैसे अभी भी ये सब बातें ही लगती है, वस्तुतत्त्व नहीं लगता है।

स्वामी जी – बातें नहीं हैं। किन्तु आपको ऐसा करना पड़ेगा, तब वास्तविकता दिखाई देगी। बातें भी तो सुननी चाहिएँ, सुनानी चाहिएँ परन्तु आपके लिए इतना पर्याप्त नहीं होगा, आपको तो ऐसा करना ही पड़ेगा। हाँ जी! जप करते समय आपको कोई अनुभूति हुई? क्या बाधा खड़ी हुई? इस पद्धति में क्या दिखाई दिया या अन्य कोई बात?

साधक १ – स्वामी जी! एक यह बात पूछना चाहता हूँ कि जैसे बाहर की ध्वनि भी मन्द रूप में अनुभव में आ रही है पर वृत्ति नहीं बन रही है, ऐसी कोई स्थिति होती है?

स्वामी जी – हाँ! वह अनुभूति हमारे पास आ रही है किन्तु उस विषयक हमारा ज्ञान काम नहीं कर रहा है। साधारणतया ध्वनि आ रही है पर हम उसको विषय नहीं बना रहे हैं।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Kendriya Sanskrit Vidyapeeth Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – वह जो अति अल्प स्तर की ध्वनि है, वह सुनाई देनी बन्द हो सकती है।

स्वामी जी – हाँ! अधिक स्तर वाली कुछ सुनाई देती रहेंगी।

साधक १ – तो जो सुनाई देती रहेगी उससे धारणा बनाए रखने में कोई कठिनाई नहीं आ रही है, ईश्वर से सम्बन्ध बनाये रखने में बाधा नहीं है।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। यदि हमारे कान पर प्रभाव डाले किन्तु हमारे शब्दार्थ में बाधा न डाले तो कोई बात नहीं।

साधक १ – लेकिन यह जो थोड़ी-सी अनुभूति हो रही है, यह वृत्ति का स्वरूप तो नहीं है?

स्वामी जी – यह अनुभूति भी थोड़ा-थोड़ा वृत्ति का स्वरूप है। इसको भी नितान्त भूल जाना चाहिये या रोक देना चाहिये। इसके विषय में विचार ही नहीं होने देना है।

साधक १ – विषय तो नहीं बनने दे रहे लेकिन अनुभव तो थोड़ी-सी होती है।

स्वामी जी – मैं आपको बताता हूँ। समाधि-अवस्था का अच्छा अभ्यास होने पर एक व्यक्ति आँख खोलकर ऐसे बैठ जाता है और अन्दर से धारणा बना रखी है। इस अवस्था में यद्यपि उसकी आँख खुली है, परन्तु वह बाहर विशेष ध्यान नहीं दे रहा। इसलिए आँख खुली होते हुए भी सामान्यतया रूपों की स्थिति दिखते हुए भी उसकी समाधि में विशेष बाधा नहीं पड़ेगी।

साधक १ – विशेष बाधा नहीं पड़ेगी।

स्वामी जी – हाँ! अभिप्राय पक्के व्यक्ति को तो सामान्य बाधा भी नहीं पड़ेगी, विशेष तो पड़ेगी ही नहीं। क्योंकि वह देखने के लिए किसी एक बिन्दु का निर्धारण नहीं कर रहा और उसका ज्ञान-विज्ञान अन्दर ही अन्दर काम कर रहा है। जैसे कि अब मैं मुमुक्षु जी को देख रहा हूँ, यह विशेष दृष्टि है। समझे? अब देखो! मेरी आँखें खुली हुई हैं, पर मैं देख नहीं रहा हूँ। क्योंकि अन्दर मेरा ज्ञान-विज्ञान ईश्वर के साथ सम्बद्ध है। **त्र्यम्बकं यजामहे** हे ईश्वर! आप तीन के रक्षक हैं, तीन के अध्यक्ष हैं, तीन के संचालक हैं। यहाँ साधारणतया आँखें खुली हैं, तो भी विशेष बाधा नहीं है। पर नये व्यक्ति को ऐसा करने में थोड़ी कठिनाई हो सकती है।

एक और बात, जब आप ध्यान में बैठे हों और किसी की ध्वनि आ रही हो, आप सारे को प्रलय की स्थिति में पहुँचा दो। प्रलय की स्थिति में पहुँचा देने पर ध्वनि करने वाला, सुनने वाला या विविध प्रकार के तीनों कालों में जितने भी विषय हो सकते हैं, कोई सामने नहीं आएगा। तीव्र ध्वनि का होना, वह पृथक् बात है किन्तु जितनी स्मृतियाँ, आकार-प्रकार, हमारा ज्ञान, हमारी मन की स्थिति, वृत्तियाँ जिनको भी विषय बनाते हैं, सबको प्रलय में बदल दिया तो कोई भी पदार्थ विषय बनकर सामने आने योग्य नहीं रहेगा।

साधक १ – स्वामी जी! जब प्रलय अवस्था बनाते हैं तो मस्तिष्क का क्षेत्र प्रभावित होता है और धारणा उस ओर चली जाती है। लेकिन पुनः जब जप करने लग जाते हैं तो धारणा उतरकर नीचे आ जाती है। तो ऐसा क्यों होता है?

स्वामी जी – जैसे हम बनाते हैं तो?

साधक १ – जब प्रलय अवस्था का सम्पादन कर रहे हैं तब मुख्य रूप से एकाग्रता का भाग मस्तिष्क के क्षेत्र में है और जब पुनः ईश्वर को केन्द्र बनाकर जप आदि आरम्भ करते हैं तब धारणा पुनः हृदय स्तर पर आ जाती है, ऐसा क्यों होता है?

स्वामी जी – उसमें कारण है जब हम प्रलयवत्-अवस्था बनाते हैं तब हमारी बुद्धि का,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मस्तिष्क भाग का अधिक प्रयोग होता है, उसमें ध्यान होता है, वहाँ पर अधिक बल पड़ता है, और जब पुनः हम ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ते हैं तो वहाँ का जो बल हैं, वहाँ की शक्ति है वहाँ से हट करके यहाँ आती है। इसलिए धारणा हृदय स्तर पर आ जाती है।

साधक ८– स्वामी जी ! जैसे स्मृति-वृत्ति को हटाने के लिए एक उपाय के रूप में प्रलय अवस्था का सम्पादन करें, पर प्रलय अवस्था का सम्पादन न करके स्मृति-वृत्ति को हटाने का कोई अन्य भी उपाय है ?

स्वामी जी – हाँ ! हैं उपाय। मन को जड़ समझो और रोको उसको। ईश्वर के अतिप्रेम में लग जाओ, रुक जाएँगी वृत्तियाँ। संसार के सुख-साधनों को दुःख रूप समझो, रुक जाएँगी वृत्तियाँ। ऐसे अपने-अपने ढंग से भिन्न-भिन्न उपाय काम करते हैं।

साधक १– और एक, स्वामी जी ! अन्धकार की स्थिति बनाने से भी स्मृति-वृत्ति हटती है ?

स्वामी जी – अन्धकार में भी अन्ततः वही स्थिति लानी पड़ेगी अन्यथा अन्धकार में भी पदार्थ बने रहेंगे, प्रलय नहीं हो पाएगी।

साधक १– मेरा अभिप्राय है जो प्रलय अवस्था नहीं बना सकता, उसके लिए यह अन्धकार की स्थिति भी लाभकारी है।

स्वामी जी – वह तो पृथक् बात है किन्तु उसमें अन्धकार ही विषय बन जाएगा।

साधक १– और उसमें ईश्वर को व्यापक मान ले।

स्वामी जी – और अन्धकार विषय बनेगा तो उसमें पदार्थ भी आएँगे और उन पदार्थों से भी मन को रोकना पड़ेगा।

साधक १– स्वामी जी ! यह जो पदार्थ दिखते हैं वे प्रकाश में दिखते हैं। यदि अन्धकार की स्थिति बना लें तब तो पदार्थ दिखाई ही नहीं देंगे।

स्वामी जी – उसमें एक और बात है स्मृति भी तो एक वस्तु है। वह तो अन्धकार में भी आएगी।

साधक १– यदि आन्तरिक-मानसिक-बौद्धिक अन्धकार हो तब भी ?

स्वामी जी – कुछ भी हो। स्मृतियाँ भूत, भविष्यत्, वर्तमान की होती हैं। वे स्मृतियाँ काम करती रहेंगी। यों तो कुछ अन्तर आएगा अन्धकार बनाने से। पुनरपि इन स्मृतियों को रोकने, पदार्थों को सर्वथा हटाने की स्थिति लानी पड़ेगी।

साधक ६– स्वामी जी ! इस प्रलय-अवस्था में इस बात की ओर ध्यान दिया जाए कि कोई स्थान को न लेकर एक ईश्वर में ही डूबें। कोई भी रूप-आकार न लावें ?

स्वामी जी – तो ध्यान किसका करोगे उस समय ?

साधक ६– ईश्वर को ही सम्बोधित कर रहे हैं ऐसा।

स्वामी जी – कब ?

साधक ६– प्रलय-अवस्था का सम्पादन करके, जैसे कि ईश्वर सर्वव्यापक है और हम जीवात्मा उसमें डूबे हुए हैं। उस स्थिति में जैसे आपने भी उदाहरण दिए थे गुरु-शिष्य का या माता-पुत्र का, तो उस रूप में ईश्वर में ध्यान हो तो कैसा रहेगा ?

स्वामी जी – आपका कहने का अभिप्राय है कि हम प्रलयवत्-अवस्था बनाकर ईश्वर का ध्यान करें; तो ठीक है। प्रलयवत् अवस्था बनाकर ओम् या गायत्री का जप करते हुए ईश्वर की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुति-प्रार्थना-उपासना करें, इसमें कोई आपत्ति नहीं है।

साधक १– जब प्रलयवत्-अवस्था बनाकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे तब भी अपन-आप किसी न किसी केन्द्र पर आकर तो रहेगा जीवात्मा ?

स्वामी जी – जीवात्मा ?

साधक १– अर्थात् किसी एक स्थान की अनुभूति तो रहेगी ही।

स्वामी जी – दो बातें होती हैं इसमें। एक तो यह जो हमारा शरीर है, इसको हमने प्रलय की स्थिति में पहुँचाया, परन्तु यह एक आनुमानिक अवस्था है। अनुमान-प्रमाण से हमने इस प्रलय को बनाया है। वास्तव में तो शरीर विद्यमान ही रहता है और उसी शरीर में बैठकर हम काम करते हैं और प्रलय भी मानते हैं। अतः इन दोनों विचारों को साथ-साथ समझना पड़ेगा। जैसे कि अभी हम बैठकर ध्यान करने लगें तो इसी अवस्था में कहेंगे शरीर को, मन को और बुद्धि को भी हटा दो। तो यह केवल बौद्धिक स्तर पर होगा और इसी के आधार पर हम यहाँ केन्द्र भी बना लेंगे। यद्यपि केन्द्र बनाने में भी दो स्थितियाँ रहेंगी - एक तो शरीर में ही केन्द्र बनायेंगे परन्तु शरीर को नहीं देखेंगे, केन्द्र मात्र को हम यहाँ देखते रहेंगे और वहीं पर अपने-आप को उपस्थित करके ईश्वर की स्तुति करेंगे, भले ही शरीर नाशवान् रहे, कोई आपत्ति नहीं है। अथवा दूसरी विधि यह है कि शरीर आदि को हमने नाशवान् सिद्ध कर दिया और ईश्वर के अन्दर ही धारणा बना ली।

साधक १– किन्तु धारणा तो किसी एक ही स्थान पर बनेगी, चाहे ईश्वर के अन्दर हो।

स्वामी जी – न, कहीं भी हो। व्यापक ईश्वर के अन्दर मैंने धारणा बनाई है।

साधक १– ईश्वर के एक देश में बनाई न, स्वामी जी !

स्वामी जी – हाँ ! एक ही देश में तो होगी, सर्वत्र कैसे होगी ? एक ही देश में होगी, जैसे शरीर के भी एक देश में है।

साधक १– वह जो एक देश है वह तो उसके अनुभव में रहेगा, स्वामी जी !

स्वामी जी – नहीं ! वह देश क्या है ? ईश्वर का स्वरूप है और उसमें एक जगह रोक रखा है।

साधक १– स्वामी जी ! जैसे उस व्यक्ति ने ईश्वर के एक देश में रोक दिया उसके पश्चात् ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करता है और उससे जो पुनः आनन्द या उत्साह की अनभूति होती हैं वह तो सभी को एक ही स्थल पर होगी ?

स्वामी जी – सभी को मतलब ?

साधक १– सभी साधकों को आनन्द की, उत्साह की जो अनुभूति होगी। वह तो सबको एक ही स्थान पर होगी।

स्वामी जी – अभी समझ में नहीं आया।

साधक १– अर्थात् ....।

स्वामी जी – जहाँ धारणा की है ?

साधक १– सभी को हृदय प्रदेश के आसपास ही वह अनुभूति होगी।

स्वामी जी – हाँ, यह ठीक बात है। इसमें भी दो बातें हैं - एक यह कि मुख्य केन्द्र का तो जहाँ तक हम निर्वाचन करें तो (वह हृदय माना गया है)।

साधक १– वह अलग हो तो।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – नहीं, वह हृदय माना गया है। परन्तु इसमें भी मतभेद है। कुछ लोग हृदय मानते हैं और कुछ लोग मस्तक, यह विकल्प है इसलिए जीवात्मा के ध्यान का केन्द्र यह (मस्तक) भी बना सकते हैं।

साधक १ – हम केन्द्र बनाएँगे लेकिन अनुभूति कहाँ पर होगी?

स्वामी जी – मुख्य अनुभूति का तो यही (हृदय) केन्द्र है। ईश्वर की अनुभूति का और अन्य अनुभूतियों का पृथक् विभाग है। हम चल रहे थे ध्यान की स्थिति में क्या होता है, यह उससे हटकर विषय आ गया है। अब यह आ गया कि ईश्वर का जो प्रत्यक्ष होगा (वह कहाँ होगा?)। तो इसके विषय में भी विचार कर लें। तो प्रधान रूप से अर्थात् शब्द-प्रमाण से अधिक जो पुष्ट बात है, वह यह है कि इसका केन्द्र हृदय माना गया। अब एक और बात आई कि भाई! हम तो जीवात्मा का केन्द्र मस्तिष्क मानते हैं, कल्पना करें। तो ठीक है, जब मस्तिष्क में मानेंगे तो उस पक्ष में वहाँ अनुभूति होगी।

साधक १ – स्वामी जी! आप अपने प्रयोग के आधार पर ऐसा कह रहे हैं?

स्वामी जी – हाँ! मैं अपने प्रयोग बताता हूँ। मेरे जो प्रयोग हैं उनमें ईश्वर के स्वरूप की जो अनुभूति होती है, उसका यह (हृदय) केन्द्र बनता है और समाधि की जो प्राथमिक स्थिति उत्पन्न होती है, जिसमें ईश्वर अनुभूति का विषय नहीं बनता है, उसका केन्द्र यह मस्तिष्क है। यहाँ (ललाट) से उसका आरम्भ होता है। जिसको हम सम्प्रज्ञात समाधि बोलते हैं, उसका प्रारम्भ यहाँ से होता है। इसमें हम सृष्टि को प्रलयवत् बनाकर ओम् का, गायत्री का जप करते हैं। जप करते-करते जब हमारी स्थिति ठीक बन गई, वृत्ति-निरोध कर लिया। अब हम यह चाहते हैं कि ईश्वर का अनुभव करें, ईश्वर से सम्बद्ध होवें तो वह यहाँ (हृदय में) आकर होता है।

साधक १ – उतर आएगा।

स्वामी जी – यहाँ आ कर अनुभूति होगी और वह ईश्वर की जो अनुभूति होती है वह यह सिद्ध करती है कि ईश्वर सर्वव्यापक है। वह ऐसा सिद्ध नहीं करती है कि ईश्वर एक जगह पर है। कभी-कभी उस अवस्था में परिवर्तन होता है जब जीवात्मा स्वयं को ईश्वर से पृथक् देखने का प्रयास करता है। क्या समझ में आया? जैसे कि इस कमरे में एक व्यापक वस्तु है और मैं उसको देखना चाहता हूँ तथा मैं स्वयं उससे पृथक् हूँ, यह भी देखना चाहता हूँ। यह स्थिति होती है। क्या समझ में आ रहा है?

साधक ३ – ईश्वर को व्यापक देखता हुआ स्वयं को पृथक् देखना चाहता है।

स्वामी जी – अच्छा! एक दूसरा दृष्टान्त लेते हैं समुद्र का। जैसे समुद्र में एक व्यक्ति ने गोता लगाया और सब ओर से डूब गया। अब समुद्र तो व्यापक है और वह एकदेशी है। इस अवस्था में अपने-आप को समुद्र से पृथक् देखना चाहता है। अब तो कुछ समझ में आया होगा?

तो यहाँ समझना है कि जैसे समुद्र व्यापक है और वह एकदेशी, अब जब अपने-आप को समुद्र से अलग देखना चाहता है तब समुद्र की व्यापकता में न्यूनता (छिद्र) दिखाई देती है। वैसे ही जब जीवात्मा सर्वव्यापक ईश्वर से स्वयं एकदेशी को पृथक् देखना चाहता है तब ईश्वर की सर्वव्यापकता जो है, वह कम हो जाती है। क्या समझ में आया? जहाँ पर वह विद्यमान है वहाँ पर ईश्वर दिखाई नहीं देता है। अब पुनः वह अच्छी प्रकार से ईश्वर से सम्बद्ध होकर उसको समझने का प्रयास करता है तब पुनः वह स्थिति आ जाती है जिसमें कोई कमी नहीं रहती है। अर्थात् जहाँ जीवात्मा है वहाँ भी ईश्वर दिखाई देने लगता है उसको। पृथक्ता की स्थिति हट जाती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा ! आपको वैदिक संध्या याद है या नहीं ? उसका प्रयोग करते हैं या नहीं ?

साधक ३ – अर्थ सहित पूरी याद हैं परन्तु उपासना करते समय कभी-कभी उसको छोड़ देते हैं। पुनः पृथक् से करते हैं।

स्वामी जी – कुछ भी करें, भले ही पृथक् से करें, किन्तु नियमित करें। यह नियम है कि आपने दोनों समय उसका उपयोग करना हैं। क्या समझ में आया ?

साधक ३ – जब विशेष गहराई की स्थिति बनती हैं, तब संध्या बाधक लगती है, तब छोड़ देते हैं उसको।

स्वामी जी – नहीं। आपने संविधान का पालन करना है। यह वही बात है कि संविधान कुछ कहता है और आपका मन कुछ और मानता है, तो संविधान का पालन करना मुख्य है। उस समय आपका मन नहीं मानता है तो उसका प्रयोग अन्य काल में करो।

साधक ३ – या केवल मन्त्रपाठ कर लें ?

स्वामी जी – नहीं-नहीं ! हम यह क्यों कहेंगे कि मन्त्र पाठ करें। हम यह संविधान मानते हैं कि अर्थ सहित जप करना चाहिए तो अर्थसहित जप करेंगे। जब विधि बताई है तो अर्थसहित जप करना है। यह तो हो सकता हैं समय थोड़ा लगाएँ। हाँ जी !

साधक १ – स्वामी जी ! क्या ऐसा प्रयोग कर सकते हैं कि मन्त्रों को धीरे-धीरे पक्का करते जाएँ ? जैसा कि गायत्री मन्त्र के ऊपर अधिकार हो गया है। त्र्यम्बकं यजामहे पर, शन्नो देवी पर, ऋतञ्च सत्यञ्च पर अधिकार है किन्तु अभी मनसा परिक्रमा पर अधिकार नहीं बन पाया है।

स्वामी जी – जब तक ऐसा नहीं बन पाया है तब तक सामान्यतया नियमपूर्वक पाठ तो होगा ही और आगे थोड़ा-थोड़ा करते जाएँगे। एक-एक मन्त्र का अध्ययन करना है। हमारे पास पुस्तकें हैं जैसे कि विश्वश्रवा जी की भी विस्तृत पुस्तक है और एक अष्टांग योग है स्वामी आत्मानन्द जी की। या क्या नाम है उसका ?

साधक ७ – संध्या अष्टांगयोग।

स्वामी जी – यही है। तो जितने का अर्थ बन पाया उनका तो वैसे ही करो। शेष आगे बढ़ाते जाओ।

साधक १ – पक्का करते जाएँ।

स्वामी जी – हाँ ! उनको पक्का करते रहें और आगे बढ़ते जाएँ। आपको इस बात का ध्यान रहे कि ऋषियों ने ये जो विधि-विधान बनाए हैं, उनके ऊपर हमारी अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम रहना चाहिए। यदि हम उसकी उपेक्षा कर देंगे तो लड़खड़ा जाएँगे। आज यह पूरा विश्व क्यों भटक रहा है ? इसलिए कि ऋषियों की परम्परा को छोड़ दिया है। उनके ग्रन्थों को न पढ़ने से, प्रयोग में न लाने से भटका है। पूरे के पूरे विश्व के भटकने का कारण यही है। इसलिए उसका प्रयोग करो।

उन्होंने यह बतलाया कि देखो भाई ! पहले तो व्यक्ति आरम्भ करता है और धीरे-धीरे ऊँची स्थिति में चला जाता है। आगे चलकर जब संन्यास की अवस्था आ जाती है तब उस संन्यास-आश्रम वालों के ऊपर इस संध्या का संविधान लागू नहीं होता है। वह स्वतन्त्र होता है करना चाहे तो करे, न चाहे तो न करे। वे अपने अनुकूल किसी दूसरे का पाठ करेंगे और इसको करना चाहें तो इसको भी कर सकते हैं, कोई बाधा नहीं है।

और आप जब महर्षि ने जो संध्या शब्द का अर्थ लिखा है उसकी ओर थोड़ा-सा ध्यान देंगे तब

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता चलेगा कि उसकी विधि वही है जो हम **त्र्यम्बकं** की विधि सिखाते हैं। क्या समझ में आया?

साधक ६ – उसकी विधि वही बनेगी।

स्वामी जी – विधि वही तो बनेगी, अन्य तो कोई नहीं बनेगी। क्यों?

साधक ३ – जो योगदर्शन की विधि है - **तस्य वाचकः प्रणवः। तज्जपस्तदर्थभावनम्।** हम उसको करते हैं पूरा घन्टे भर।

स्वामी जी – नहीं। हमने देखना है तीनों आश्रमों के लिए महर्षि ने संविधान कर दिया। तो हम उसका पालन करें या न करें?

साधक १ – करना चाहिए।

स्वामी जी – उसको देखो! पुनः? उसमें ननुनच नहीं है और वह लाभप्रद है, हानिकारक नहीं है।

साधक १ – यह बात एक समान है, स्वामी जी! जैसे त्र्यम्बकं यजामहे करते हैं वैसे ऋतञ्च सत्यञ्च करेंगे। वही विधि है।

स्वामी जी – आप प्रयोग करके देख सकते हैं, विधि वही रहेगी सब में। वहाँ जो संध्या की परिभाषा की है कि जिसमें अच्छे प्रकार से परमात्मा का, ब्रह्म का ध्यान किया जाए, उसका नाम संध्या है। तो अच्छे प्रकार से ब्रह्म का ध्यान किया जाए, यही तो सारा का सारा योग का प्रकरण है। **सन्ध्यायन्ति सन्ध्यायते वा परब्रह्म यस्यां सा सन्ध्या।** पञ्चमहा.सन्ध्योपासनम्। तो वह व्याख्या भी कर दी, यों ही नहीं छोड़ दिया और उनकी बात का, जैसा कि आपने सुना, हम अधिक विश्वास करते चलेंगे तो हमारी अधिक से अधिक समस्याएँ दूर होती चली जाएँगी।

अच्छा! इस विषय में मेरे जो प्रयोग हुए हैं। आरम्भ से लेकर अब तक जैसे कि वैदिक धर्म, आत्मा-परमात्मा, मुक्ति, समाधि आदि जितने प्रकरण हैं, उस योग-वैराग्य के क्षेत्र से सम्बन्धित, उन सब के विषय में महर्षि के ग्रन्थों को मैंने पढ़ा और उनके ऊपर मनन किया। उससे जितनी समस्याओं का समाधान हुआ उतना किन्हीं ग्रन्थों से नहीं हुआ, किसी व्यक्ति से भी नहीं हुआ। अब यदि मैं ऐसा न करता, महर्षि के ग्रन्थों को ऐसे न पढ़ता-पढ़ाता तो इतनी अच्छी स्थिति नहीं बन सकती थी। कितनी सहायता मिली है। बहुत अधिक मिली। पर ऋषियों में आपकी रुचि-श्रद्धा कुछ कम होगी। ऐसा है ही कुछ? किसी की कुछ अधिक होगी, पर जितनी होनी चाहिए उसमें कमी ही दिखती है सब में या ऐसा नहीं है, आपका अनुभव क्या कहता है?

साधक ३ – कम है।

स्वामी जी – मेरे साथ आपकी तुलना की जाए तो आपकी श्रद्धा मेरी अपेक्षा बहुत कम दिखाई देती है। मुझे तो यही लगता है, आप लोगों को कैसा अनुभव होता है, पता नहीं। मेरी बुद्धि के अनुसार मुझमें जितनी मात्रा में श्रद्धा रही आरम्भ से, आज भी है, उतनी मात्रा में आपके अन्दर दिखाई नहीं देती है। हो सकता है मेरे जानने में भूल हो। अल्पज्ञता से परीक्षण अशुद्ध कर लिया हो। क्या समझ में आया?

यह इसलिए कहा जा रहा है कि आप में बहुत मात्रा में श्रद्धा-रुचि होनी चाहिए। बहुत अधिक होनी चाहिए। समझने-समझाने, लिखने-लिखाने वाले बहुत से लोग मिल जाते हैं, मिल जाएँगे। पर इतनी श्रद्धा रखना, इसके ऊपर इतनी तन्मयता से चलना, उसी के लिए सर्वस्व लगा देना और उसी के अनुसार करना-कराना, सभी क्षेत्रों में उसी को देखना और व्यवहार में ज्यों का त्यों लाने का प्रयत्न करना आदि जो मेरे प्रयोग हुए हैं, ऐसा करने वाले अन्य कितने लोग होंगे, मुझे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता नहीं। आमने-सामने तो मेरी बुद्धि के अनुसार कोई आया नहीं। कुछ समझ में आई बात? तात्पर्य भी समझ में आया कि नहीं?

साधक ७– आ गया जी! आपकी अपेक्षा हम में कम तो है।

स्वामी जी – मुझे सुनाई नहीं दिया।

साधक ७– अपेक्षाकृत अन्य लोगों में कम है श्रद्धा आदि। आप प्रत्येक कार्य में ऋषियों को आगे रखते हैं, यह बड़ी अच्छी बात है।

स्वामी जी – हाँ जी! क्या पूछना चाहते थे आप।

साधक ८– स्वामी जी! ऐसा है पुरुषार्थ किसी में कम हो, वह पृथक् बात है परन्तु बहुत सारे लोग ऋषि का खण्डन करते हैं, वह मुझे बहुत अखरता है।

स्वामी जी – चलो! हमने उन लोगों का यह दोष नहीं देखना है। यों तो खण्डन नहीं करना चाहिए, यह अच्छा नहीं है, हानिकारक है। परन्तु उनमें और आप में जो श्रद्धा कम है; इसको देखना है। वह तो जो करते हैं, करते ही हैं, पर आपने यहाँ बल देना है। आपने तो अपने दोषों को हटाने पर बल देना है; यह एक प्रवृत्ति है, एक धारा है, एक शैली है। यदि दूसरे के दोषों पर बल देने लग जाएँगे तो अपने दोषों को नहीं जान पाएँगे, अपने दोषों को नहीं पकड़ पाएँगे, अपने दोषों को दूर करने में पूर्ण प्रयास नहीं करेंगे तथा उस व्यक्ति के प्रति द्वेष हो जाएगा। परिणाम यह निकलेगा। आगे बढ़ो तो आपको यह अभिमान होने लगेगा कि मैं तो इतना मानता हूँ, यह क्या मानता है? यह अभिमान आकर खड़ा हो जाएगा या नहीं? आप देख सकते हैं, ऐसा ही होता है।

साधक ७– जो मनुष्य नित्य प्रातःसायं संध्या नहीं करता....शूद्र में रख देना चाहिए।

स्वामी जी – तो आपको समझ में आ गया कि जिस-जिस आश्रम में जो-जो संविधान बनाया गया है, उस-उस का पालन करने का पूरा प्रयत्न करना, विश्वासपूर्वक करना; इस स्थिति को बनाकर चलने से हमको अधिक सफलता मिलेगी। हमको बाधाएँ कम बाधित करेंगी, संशय न्यून होंगे, भ्रान्तियाँ भी न्यून होंगी और जब संशय-भ्रान्ति होंगे तब हम उनकी बातों को ठीक मानने के कारण संशय-भ्रान्ति को हटा डालेंगे। अपनी बात को हटा देंगे।

अच्छा! आपने **शन्नो देवी.....।** यजु.३६/१२। मन्त्र का अभ्यास किया है, इसका अर्थ कर लोगे? और साथ-साथ बोलते हुए करोगे या रुककर करोगे?

साधक ३– दोनों का अभ्यास है।

स्वामी जी – तो बोलते-बोलते भी ध्यान देना है - पहली विधि में पहले पूरा पाठ करना पुनः अर्थ करना। दूसरी पद्धति में एक-एक शब्द को लम्बा बनाओ और अर्थ करो। तीसरी विधि में मध्यकोटि से पाठ करते हुए अर्थ करते जाना। यह तीसरी कठिन है या आपको नहीं लगती है?

साधक २– पाठ के साथ-साथ अर्थ करते हैं।

स्वामी जी – तीनों में अन्तर दिखता है आपको या नहीं?

साधक ३– हाँ जी!

स्वामी जी – पहली पद्धति में पाठ करो, रुको और एक-एक शब्द का अर्थ करो, पुनः पाठ करो, रुको और एक-एक शब्द का अर्थ करो; यह पहली पद्धति है। अब शब्दों को लम्बा बनाओ। लम्बा बनाने से अर्थ करने का अवसर मिल जाता है। समय लगता है पर अर्थ कर लेते हैं; यह दूसरी पद्धति है। तीसरी में मध्यम कोटि से पाठ भी करना, अर्थ भी करना और ईश्वर-समर्पित भी

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहना। यदि आप मध्यकोटि से करना चाहते हैं तो करके देख लो, कैसा रहता है? करके देखो।

ओ३ऽऽम् शन्नो देवीरभिष्टय आऽपो भवन्तु पीतये ऽऽ। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः॥
ओ३ऽऽम् शन्नो देवीरभिष्टय आऽपो भवन्तु पीतये ऽऽ। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः॥
ओ३ऽऽम् शन्नो देवीरभिष्टय आऽपो भवन्तु पीतये ऽऽ। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः॥

अब रुकेंगे आप। कैसा लगता है आपको?

साधक ३– कोई-कोई शब्दार्थ छूट जाता है। अच्छे प्रकार से कोई-कोई शब्दार्थ नहीं हो पाया। गति अधिक लगी।

स्वामी जी – हाँ! छूटता है। तो जब हम गति मन्द और लम्बा करेंगे तब सुविधा हो जाएगी। एक नवीन साधक, जिसका मन पर अभी इतना नियन्त्रण नहीं है, वह तो शब्दों को लम्बा बनाकर भी अर्थ नहीं कर पाता, तब वह एक-एक शब्द को लेकर अर्थ करता है। अभी हम जो प्रयोग कर रहे थे, यह तीसरे स्तर की पद्धति है।

अब एक दूसरी बात - आप जब प्रलयवत् अवस्था बनाते हैं तब क्या आभास होता है? क्या अनुभूति होती है?

साधक १– स्वामी जी! वृत्तियाँ पूरी तरह से बन्द हो जाती हैं, कोई भी वृत्ति इच्छा करने पर भी नहीं आती, ऐसा लगता है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलो! एक व्यक्ति तो प्रलयवत् अवस्था बना ही नहीं पाता है। यह आप अनुभव कर सकते हैं।

साधक ३– मैं पूरी तरह से प्रलयवत् अवस्था बना नहीं पाता।

स्वामी जी – हाँ। प्रलयवत् अवस्था (सब की) बनती ही नहीं। पूरा बल लगाने पर भी नहीं बनती।

साधक ३– और एक बार बन गई, पुनः ध्यान आरम्भ करते ही चली गई।

स्वामी जी – तत्काल चली जाती है। वह अवस्था रहती नहीं है।

साधक ३– बनाकर जैसे ही ध्यान आरम्भ करते हैं वैसे ही चली जाती है।

स्वामी जी – पहले तो बहुत परिश्रम करने पर भी कुछ लोगों की बनती ही नहीं है और किसी की जैसे-तैसे बन गई तो दूसरे मिनटों में या कुछ काल में वह नहीं रहती। वह उसको स्थिर नहीं कर पाता।

यदि दृष्टान्त लेकर चलें तो और समझ में आएगा। मान लो अभी-अभी कोई घटना हुई और किसी की मृत्यु हो गयी। वही व्यक्ति अब तक ठीक-ठाक खा-पी रहा था। हमारे पास बैठा था। मैं और मेरे की सारी बातें कर रहा था। अब देहावसान होने से सब समाप्त हो गया। दाहसंस्कार कर दिया गया, वहाँ जाकर देखा तो राख भी नहीं रही, वह भी उड़ गई। हमने यह सब देखा तो लगने लगा कि यह स्थिति तो मेरी भी होगी और उसके पश्चात् मन में बात बैठ गई। तो ऐसा वैराग्य होगा कि अब तक जैसे सोच रहे थे उससे एकदैव उलटा सोचने लगे। एकदैव ऐसी स्थिति आ गई, लगने लगा कि ऐसा वैराग्य तो कभी जीवन में देखा ही नहीं था। ध्यान दें, घण्टे-दो घण्टे से आगे बढ़ जाओ पुनः दिखेगा कि वह जो महान् वैराग्य हुआ था, अब नहीं रहा। (जाने वाले के साथ यह भी चला गया।) उदाहरण समझ में आया? वह वैराग्य आपके हाथ से निकल गया और अब कितना ही बल लगाइए तो भी हाथ नहीं लगेगा। ऐसे लुप्त हो जाता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– पुनः उसी प्रकार घटना का विचार करेंगे तब वही स्थिति बन जाएगी।

स्वामी जी – इस स्थिति में व्यक्ति पुनः क्या करता है? वह पुनः विचार करता है। उसको जैसे पहले वैराग्य हुआ था वैसा ही दोहराता है। वह यहाँ से चला कि भाई! वह व्यक्ति था, ठीक-ठाक था। दुर्घटना हुई, वह मर गया। उनकी राख भी नहीं रही और उसे देखकर मुझे वैराग्य हुआ था। मैंने उस मरे हुए को देखा था, उसका दाहसंस्कार कर दिया गया और कालान्तर में उसकी राख भी उड़ गई।

उसने पुनः वही सब किया तो पुनः वैराग्य हो गया। तो जो व्यक्ति बार-बार इसकी आवृत्ति करेगा उसको पुनः वही वैराग्य हो जाएगा। कभी समाधि भंग हो गयी, टूट गयी। नया-नया व्यक्ति है और उसकी समाधि टूट गई तो उसने क्या किया? पहले जिन-जिन कारणों से समाधि सिद्ध हुई थी, पुनः उनको ढूँढा, एकत्रित किया, उपस्थित किया और जिन-जिन बाधकों को छोड़ने से समाधि लगी थी, उनको दूर कर दिया। तो ऐसा करने से सामान्यतया पुनः समाधि प्राप्त हो जाएगी परन्तु कभी ऐसा भी होता है कि समाधि भंग हो गई और उसने एड़ी से चोटी तक बल लगा दिया किन्तु वह बात बनी ही नहीं। क्या समझ में आया?

साधक १– पुरुषार्थ करने पर भी वह स्थिति नहीं प्राप्त हुई।

स्वामी जी – योगदर्शनकार ने इसका क्या नाम दिया है?

साधक ३– अनवस्थितत्त्व।

स्वामी जी – हैं?

साधक ३– अलब्धभूमिकत्व। स्वामी जी! एक तो प्राप्त ही नहीं हुई। यह प्राप्त हो गई पुनः हट गई। अतः अनवस्थितत्त्व हुई।

स्वामी जी – हाँ! अनवस्थितत्त्व में आएगी यह। प्राप्त हो गई, पुनः हट गई। वह ठहर नहीं पा रही है, एक स्थिति तो यह है। हम कहते हैं ठहर गई थी, ठीक है, तो इसमें भी लागू होगी। दूसरी वह भी है जो अभी प्राप्त ही नहीं हुई, वह अलब्धभूमिकत्व है।

साधक १– यह स्थिति तो बहुत लम्बे काल तक चलती होगी?

स्वामी जी – लम्बे काल तक चलती है। हाँ जी!

साधक ८– जब उसने बाधकों-साधकों का भी विचार कर लिया, उपाय जुटा लिये और पुरुषार्थ करने के पश्चात् भी वह स्थिति उसको प्राप्त नहीं होती तो और कारण क्या है?

स्वामी जी – सुनो सुनो! वस्तुतः वह पूरा प्रयोग कर ही नहीं पा रहा है, बाधकों को पूरा छोड़ ही नहीं पा रहा। परिश्रम करने पर भी उपस्थित साधनों को वह प्रयोग में नहीं ला रहा है। नहीं तो ऐसा क्यों होता? **कारणभावात् कार्यभावः**। वैशे. ४/१/३। कारण के होने से कार्य होगा और **कारणाभावात् कार्याभावः**। वैशे.१/२/१। कारण नहीं होगा तो कार्य नहीं होगा; यह बात है।

अच्छा! यह बताओ, हम यहाँ इतना काल लगाएँगे, इसमें आप ईश्वर-साक्षात्कार पर पहुँच जाओगे या नहीं पहुँच पाओगे? आप को क्या लगता है?

साधक ३– ऐसी स्थिति नहीं लग रही है अभी तो।

स्वामी जी – क्यों?

साधक ३– इसके लिये तो बहुत लम्बा काल, बहुत अधिक पुरुषार्थ वर्षों तक हो, उसमें होता है। तीन महीने में तो संभव नहीं दिखता। यह पृथक् बात है एकाग्रता की प्राप्ति अभी भी होती

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और आगे वृद्धि हो जाएगी और योग्यता बढ़ेगी।

स्वामी जी – हाँ जी! बोलो।

साधक ४– नहीं होगी।

स्वामी जी – अच्छा ! नहीं होगी, यही निर्णय लेंगे या न हो, यह भी संभावना है, यह निर्णय ठीक रहेगा ?

साधक ८– संभावना वाला ठीक रहेगा।

स्वामी जी – अच्छा ! इसके लिए आपको सिखाने बताने में मैं जितना परिश्रम करता हूँ आप उतना करते हैं या उससे अधिक करते हैं या उससे कम करते हैं ? क्या अनुभव है आपका ?

साधक ३– अपने सामर्थ्य के अनुसार तो उससे कुछ कम होता है, ऐसा मुझे लगता है। यह लगता है कि पुरुषार्थ अधिक कर सकते हैं।

स्वामी जी – हमारे पास बाधकों का एक भाग ऐसा है जो हमको बाधित करता है, हमारी समाधि नहीं लगने देता है और हमको उसका पता नहीं चलता। इतना ही नहीं एक और दूसरा भाग ऐसा है हमारे पास जो बाधक होता हुआ भी हमको साधन दिखाई देता है। अब क्या समझ में आया ?

साधक ८– एक भाग ऐसा है जो बाधक होते हुये भी हमारी पकड़ में नहीं आता।

स्वामी जी – और दूसरा ऐसा है जो बाधक है परन्तु साधन दिखाई देता है। सांख्यकार ने इस सम्बन्ध में क्या बात कही ? **असाधनानुचिन्तनं बन्धाय भरतवत्**। सां.४/८।

यह बालक है सत्यव्रत। आपने देखा बहुत अच्छा लगता है। बहुत प्यारा लगता है। आपने सोचा हमारी गोदी में आता है। इसको खिलाओ-पिलाओ। मुझे इसकी सेवा करनी चाहिए। इसके कपड़े भी धो दो तो अच्छा रहेगा। पुनः सेवा करने लग गए। आगे सोचने लगे इसको कुछ सिखाओ, लिखाओ-पढ़ाओ। यह करो वह करो। बच्चे की सेवा करना तो परोपकार का काम है। यह तो समाधि लगवाने में साधक बनेगा। क्या समझ में आया ? धीरे-धीरे बालक में मोह-आसक्ति हो गई। एक दिन बालक रोगी हो गया, दिखाई नहीं दिया या अपने घर चला गया। अब आप कहने लगे - जी ! यहाँ तो मेरा जी नहीं लग रहा, बालक को देखे बिना। मैं उसको एक बार देखकर आ रहा हूँ। समझ में आ गया !

समय हो गया। अच्छा ! अब कार्य से सम्बन्धित कुछ बातें हैं - आप में से कोई अवकाश रखता हो तो व्यवस्थापक जी को सूचित करे। वे कुछ खेती का काम बताते हैं जैसे घास काटना, डोली बांधना आदि। आप उनसे सम्पर्क करके कार्य ले सकते हैं। पहले यह बताओ कि कोई शारीरिक परिश्रम, व्यायाम या कुछ कार्य आप में से कौन-कौन करना चाहते हैं ? अच्छा ! आप लोग व्यवस्थापक जी को सूचित कर देना। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२० ज्ञानखण्ड

अनित्यता : आषाढ़ कृ. १/२०६०-१४/०७/०३

शरीर की अनित्यता का ज्ञान प्राप्त करने में पर्याप्त त्याग, तप, परिश्रम, काल लगता है। क्या आप कभी ऐसी स्थिति में पहुँच जाते हैं कि शरीर नाशवान् दिखाई दे? हाँ जी!

साधक २– शरीर से लेकर जितने वृक्ष-वनस्पति आदि हैं वहाँ तक नाशवान् स्थिति दिखाई देती है। उसके आगे पृथ्वी आदि की नहीं दिखाई देती है।

स्वामी जी – तो आपको अब तक यह पता चला कि शरीर के विषय में हमारी अपनी-अपनी भिन्न-भिन्न स्थिति रहती है। शरीर को नाशवान् सिद्ध कर देने पर भी कभी वह स्थिति दिखाई देती है और कभी हट जाती है। आप क्या अनुभव करते है? क्या आपकी पूरे दिन शरीर को नाशवान् समझने की स्थिति रहती है? जो व्यक्ति 'यह शरीर नाशवान् है', यह स्थिति बना लेता है और जब इसको दिनभर बनाए रखने में समर्थ हो जाता है, उसके पश्चात् वह शरीर से आगे अपने से सम्बद्ध परिवार, गांव, नगर और आगे बढ़ो तो जितने भी व्यक्ति संसार में हैं, उन सबको नाशवान् सिद्ध करता है। क्या समझ में आया?

साधक ३– जो व्यक्ति अपने शरीर को नाशवान् सिद्ध कर चुका है वह अपने परिवार, गांव, समाज के लोगों को भी अनित्य-स्थिति में देखने का प्रयास करता है।

स्वामी जी – समस्त प्राणीमात्र मनुष्य, पशु आदि जो भी हैं उनको वह नाशवान् सिद्ध करता है; इसमें कोई उलझन दिखती हो तो बोलो। आगे बढ़ो, इनको नाशवान् सिद्ध करने की स्थिति आ जाने पर उसके मन में एक विचार उत्पन्न होता है कि वर्तमान में ये जितने भी मनुष्य आदि देहधारी हैं, ये सब के सब तो नष्ट हो जाएँगे परन्तु इनकी संतति, पुनः उनकी संतति तो चलती रहेगी। आगे-आगे उत्पन्न होती जाएगी? क्या समझ में आया?

साधक ३– ये जो प्राणी मर रहे हैं, इनकी आगे संतति भी तो हो जाएगी, वह यह विचार करता है।

स्वामी जी – इनको नाशवान् उसने सिद्ध कर दिया परन्तु इनकी संतति आगे-आगे उत्पन्न होती जाएगी। क्या यह तारतम्य अनन्त काल तक चलता रहेगा या यह भी समाप्त होगा?

साधक ३– यह भी समाप्त हो जाएगा।

स्वामी जी – यह भी सरल नहीं है, जितना सोच रहे हैं। यह यदि इतना सरल होता तो ये लोग ऐसा क्यों मानते होते कि यह (हमारी सन्तान-परम्परा) सदा चलती रहेगी, कभी समाप्त नहीं होगी।

साधक ३– उन्होंने वैदिक सिद्धान्तों का ठीक से ज्ञान प्राप्त नहीं किया है। यह कारण हो सकता है कि वैदिक परम्परा को ठीक से नहीं जाना है। यह जो उत्पत्ति वाला है वह नाश को प्राप्त होगा ही।

स्वामी जी – हाँ जी! क्या बोलना है? क्या सोचना है, आ गया समझ में?

साधक २– सन्तति परम्परा नित्य ही दिखाई देती है। यदि इतनी साधारण बात होती तो सभी को यह प्रतीत हो जाना चाहिए था कि 'ऐसी स्थिति सदा नहीं रहेगी'। पुनः संतान आदि के लिए जो संग्रह करते हैं, वह न करते।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – इतना तो समझ में आ गया? प्रश्न है – क्या आप यह अनुभव करते हैं, आपके मन में यह बात बैठी या नहीं कि संतति का तारतम्य भी समाप्त हो जाएगा? यूँ तो मोटे रूप में सभी जानते हैं, कहते रहते हैं कि सब समाप्त हो जाएगा परन्तु आपको क्या यह संतति-धारा नष्ट होती दिखती है? हमको तो यहाँ पहुँचना है। कुछ तो समझ में आया? शब्दों में मान लेने की बात नहीं कर रहे हैं। हम यहाँ वास्तविकता तक पहुँचना चाहते हैं। संतति की भी समाप्ति को हम प्रलय अवस्था में देखना चाहते हैं।

साधक २ – ऐसा तो कह सकते हैं।

स्वामी जी – ऐं !!

साधक २ – भौतिक रूप में कह सकते है वृक्ष-वनस्पति आदि नष्ट हो जाएँगे।

स्वामी जी – यह व्यक्ति जिसने मृत्यु को सिद्ध किया है, यह इसके ऊपर दृष्टि डालकर चल रहा है और इसका भी निर्णय करना चाहता है। जिसने प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से वस्तुतत्त्व को सिद्ध करने का अभ्यास किया है, वह अन्य ढंग से सोचता है और जिसने ऐसा अभ्यास नहीं किया है, वह इससे अन्य ढंग से सोचता है। अब क्या समझ में आया? बोलो !

ब्रह्मचारी – जिसने वस्तुतत्त्व का प्रमाणों से परीक्षा करने का अभ्यास किया है वह भिन्न प्रकार से सोचेगा और जिसने वस्तुतत्त्व की प्रमाणों से परीक्षा करके सोचने का अभ्यास नहीं किया है, निर्णय करने का अभ्यास नहीं किया है, वह भिन्न प्रकार से सोचेगा।

स्वामी जी – वह भिन्न प्रकार से कैसे सोचता है? उसका ढंग यह है कि कभी न कभी यह संतति नष्ट होगी। अनन्त काल को सामने ले आता है। 'कभी न कभी' ऐसे काल को बढ़ाता है। कभी न कभी यह संतति नष्ट होगी अर्थात् किस बात पर बल दिया? काल को अनन्त बनाकर खड़ा कर दिया। (अभी तो नहीं होगी।)

ब्रह्मचारी – अर्थात् कभी नहीं होगी।

स्वामी जी – क्या समझ में आया, बोलो?

साधक ३ – संतति की प्रलय तो होगी। यह निश्चित है कि संतान का भी एक दिन अन्त हो जाएगा। जब सम्पूर्ण सृष्टि का विनाश निश्चित है, प्रमाण से सिद्ध है तो उनके साथ संतति का भी सर्वथा विनाश निश्चित है।

स्वामी जी – हाँ जी!

साधक ५ – यह जो विचार शैली है कि 'कभी न कभी' यह समाप्त हो ही जाएगी। इसके पीछे क्या कारण था?

स्वामी जी – इसके पीछे काल की अनन्तता जुड़ी हुई है। (अनिश्चितता है) यह बिना प्रमाणों से सोचने का एक ढंग है। जब प्रमाणों से सोचते हैं तब व्यक्ति शब्द-प्रमाण और अनुमान-प्रमाण से इस सन्तति का विनाश सिद्ध करता है। क्या समझ में आया?

साधक ३ – पुनः अनन्त काल में जाने की अपेक्षा नहीं रहती। इसी वर्तमान सृष्टि से ही सिद्ध हो जाएगा। एक सृष्टि का अन्त है, पुनः नई सृष्टि होगी।

स्वामी जी – परन्तु जब सृष्टि का एक भाग नष्ट होता है तब दूसरा बना रहता है। क्या समझ में आया?

साधक ३ – ठीक है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – एक सन्तति नष्ट होती है, दूसरी बनती देखी-देखी जाती है। सृष्टि का कोई एक भाग टूटता है और दूसरा कहीं उत्पन्न हो जाता है। जैसे कि भूमि का एक खण्ड (टीला) चूर-चूर हो गया और दूसरा कहीं उत्पन्न हो गया।

साधक ३ – तो उसमें कोई बाधा नहीं है। सम्पूर्ण सृष्टि का प्रलय होगा और सन्तति का प्रवाह भी रुक जाएगा। पुनः नयी सृष्टि होगी पुनः (नया सन्तति का प्रवाह चलेगा।)

स्वामी जी – यहाँ तक नहीं पहुँचा है वह। वह तो शरीरधारी व्यक्तियों तक बात कर रहा है। तो आगे यह व्यक्ति वर्त्तमान शरीरधारियों के समान उनकी सन्तति को अनित्य सिद्ध करने के लिए क्या करता है? वह अपने से पीछे के भाग को छूता है। वह देखता है कि मेरे जो माता-पिता, जिनसे मेरा शरीर उत्पन्न हुआ, वे पहले नहीं थे। उनके माता-पिता जिनसे उनका शरीर उत्पन्न हुआ, वे पहले नहीं थे। ऐसे पीछे की ओर जाते-जाते सोचता है कि क्या कोई ऐसा काल था जब किसी के भी माता-पिता नहीं थे? इसको सिद्ध करता है।

साधक ३ – यह बात वहाँ ठहरेगी सृष्टि के आदि में और उससे पीछे जाएँगे तब।

स्वामी जी – हाँ जी! क्या समझ में आ रहा है?

साधक २ – वह पीछे की ओर देखता है।

स्वामी जी – पीछे मुड़कर वह देखता है कि मेरे माता-पिता, उनके माता-पिता, उनके माता पिता, उनके माता-पिता का लाखों-करोड़ों वर्ष पीछे तक का तारतम्य क्या यह सदा से चलता आ रहा है या कोई एक काल ऐसा था जिसमें एक भी शरीरधारी व्यक्ति नहीं था।

साधक २ – परम्परा का आरम्भ हुआ है या सदा से चलता आ रहा है।

स्वामी जी – परम्परा का यह आरम्भ हुआ है या कभी सदा से एक के पीछे एक ऐसे सदा से उत्पन्न होते आ रहे हैं। वह यहाँ तक पहुँच गया।

ब्रह्मचारी – स्वामी जी! बिना शब्द-प्रमाण के निर्णय का कोई आधार नहीं दिखता।

स्वामी जी – भूमि पर रहने वाले व्यक्ति का आरम्भ होते हुए किसी शरीरधारी ने नहीं देखा।

साधक ३ – ईश्वर ने वेद में बताया है ऐसा होता है। इसका आरम्भ होता है और अन्त भी होता है। प्रमाण तो हमारे पास है।

स्वामी जी – और जिस समय अन्तिम व्यक्ति मरेगा, उसको भी कोई नहीं देख पाएगा। आ गया समझ में?

ब्रह्मचारी – जी! स्वामी जी।

स्वामी जी – उसकी बुद्धि में क्या बात काम करती है? जिस काल में इस मनुष्य की उत्पत्ति हुई, उस काल में इसको उत्पन्न होते हुए किसी ने नहीं देखा। ऐसा ही है न?

साधक ३ – ऐसा ही है और अन्त में भी ऐसा ही होगा।

स्वामी जी – और जो अन्तिम व्यक्ति मरेगा उसको भी कोई नहीं देख पाएगा। यहाँ तक पहुँच गए हम।

आगे बढ़ो! यह व्यक्ति सृष्टि के पदार्थ नाशवान् हैं या नहीं; इसको लेकर चला था। तो सृष्टि के पदार्थ नाशवान् हैं, यह तो सिद्ध हो गया। अब यह सिद्ध करना रह गया कि यह 'उत्पन्न होना और नष्ट होना' क्या अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता रहेगा? ये दो बातें सिद्ध करनी रह गई हैं?

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– इसमें दो स्थितियाँ आएँगी एक तो प्रवाह से जो अनादि काल से चला आ रहा है और अनन्त काल तक चलता जाएगा। दूसरी मध्य में स्थिति रुकती है। यह नई रचना होती है तो दो स्थितियाँ वहाँ हैं।

स्वामी जी – तो वह यह देखना चाहता है कि यह जो मनुष्य की उत्पत्ति-विनाश की स्थिति है, यह अनादि काल से चली है? एक के पश्चात् दूसरा, एक के पश्चात् दूसरा, ऐसा पीछे से चलता आ रहा है अथवा कभी अवरुद्ध रहा है? एक काल ऐसा था जिसमें कोई भी नहीं था, पुनः उत्पन्न हुए हैं?

इसके साथ आबद्ध एक और मान्यता है – यह सृष्टि आरम्भ हुई है, पर इससे पहले कभी नहीं थी। पहले कभी मनुष्य नहीं थे। दोहराओ क्या समझ में आया?

साधक ३– यदि पहले नहीं थी और हो गई तो पुनः सिद्धान्त बनेगा ही नहीं। अब बनी तो पहले भी थी, यह सिद्ध हो रहा है।

साधक २– एक परम्परा यह है कि यह सृष्टि तो बनी हुई है, पर प्रथम है, आदि है, इससे पहले कभी कोई सृष्टि नहीं बनी थी।

स्वामी जी – कोई सृष्टि नहीं थी, एक मान्यता यह है। अब यहाँ प्रमाणों का प्रयोग करके देखना है कि जिस सृष्टि में से हम खाते-पीते हैं, हमारा यह शरीर बना, पुनः उससे आगे-आगे अन्य-अन्य शरीर बनते जाते हैं। तो क्या इसी प्रकार से ये पृथ्वी आदि पांच भूत उत्पन्न होते हैं या नहीं? तथा शरीर की भाँति ये सारे के सारे कभी नष्ट हो जायेंगे या नहीं? दोहराओ! ये पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि भूगोल अनादि काल से बने-बनाए चले आ रहे हैं अथवा इनकी उत्पत्ति हुई है; यह सोचता है। पुनः सोचता है कि ये अनन्त काल तक ज्यों के त्यों रहेंगे? क्या कभी भी ऐसा समय नहीं आएगा जब ये नष्ट हो जाएँगे? यहाँ भी वही बात है क्योंकि इनको भी बनते हुए किसी ने नहीं देखा और बिगड़ते हुए भी कोई नहीं देख सकेगा।

साधक ७– शब्द-प्रमाण से सिद्ध है कि यह बनी है और नष्ट होगी।

स्वामी जी – अब प्रमाणों को लेकर चलें तो प्रत्यक्ष-प्रमाण तो इसमें है नहीं। अनुमान और शब्द-प्रमाण हैं। शब्द-प्रमाण में भी जब दो मान्यतायें खड़ी हो जायें तो उससे संशय उत्पन्न होता है। जैसे कि यहाँ एक शब्द-प्रमाण कहता है यह अनादि है और दूसरा कहता है कि यह सृष्टि उत्पन्न हुई है। तो संशय* उत्पन्न होता है।

समानानेकधर्मोपपत्तेर्विप्रतिपत्तेरुपलब्ध्यनुपलब्ध्यव्यवस्थातश्च विशेषापेक्षो विमर्शः संशयः ॥ न्याय.द.१/१/२३। समान धर्म की प्रतीति, अनेक धर्म की प्रतीति, विरुद्ध धर्म की प्रतीति होने से और उपलब्धि तथा अनुपलब्धि की अव्यवस्था से संशय उत्पन्न होता है।

सम्पादकीय – संशय* की व्याख्या –

१. समान धर्म मिलने से – न्यून प्रकाश में पुरुष-आकार की लम्बी-चौड़ी, ऊँची वस्तु को देखकर संशय होता है कि वह कोई मनुष्य है या ठूँठ? समान आकृति वाले दो जुड़वें भाइयों में से अकेले में एक को देखकर संशय होता है कि जिससे पहले मिला था, यह वही है या दूसरा है? समान वस्त्र-वेश वाले साधुओं को देखकर संशय होता है कि यह ढोंगी है या सच्चा?

२. अनेक धर्म मिलने से संशय – यहाँ पर अनेक का अर्थ है समान, असमान। कुछ मिलने वाले धर्म और कुछ न मिलने वाले धर्म। जैसे कि कोई आर्य समाज में भी जाता है और मन्दिर में भी जाता है। घर में यज्ञ भी करता है और मूर्तिपूजा भी कर लेता है। अब उस व्यक्ति को

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देखकर यह संशय होता है कि वह ईश्वर को निराकार मानने वाला आर्य समाजी है या ईश्वर को साकार मानने वाला पौराणिक है?

३. विप्रतिपत्ति होने से संशय – विप्रतिपत्ति कहते हैं विरुद्ध पक्ष को। जैसे कि धार्मिक लोग कहते हैं कि ईश्वर है और नास्तिक लोग कहते हैं कि ईश्वर नहीं है। यहाँ दोनों पक्षों में स्पष्ट विरोध है। वैज्ञानिक कहते हैं भार, आकार से रहित कोई पदार्थ नहीं होता है किन्तु दार्शनिक वैदिक विद्वान् कहते हैं कि भार, आकार से रहित भी पदार्थ होता है। यहाँ भार, आकार से युक्त होना और न होना, दोनों परस्पर विरुद्ध बाते हैं। इस स्थिति में निर्णय रूप में वास्तविकता को जानने की इच्छा रखने वाले को संशय होता है कि किसका पक्ष ठीक है?

४. उपलब्धि की अव्यवस्था से संशय – पदार्थ के होते हुए प्रतीत होना और न होते हुए प्रतीत होना; इस स्थिति में संशय होता है। जैसे कि तालाब में पानी होता हुआ दिखाई देता है। वहाँ जल की प्रतीति होती है, परन्तु मरुस्थल में जल न होता हुआ भी मृगमरीचिका के रूप में दिखाई देता है। वहाँ रेत में जल न होते हुए भी जल की प्रतीति होती है। इसी प्रकार गर्मी में दूर सड़क पर उत्सर्जित सूर्य किरणों की चमचमाहट को देखकर संशय होता है कि वहाँ जल है या नहीं?

५. अनुपलब्धि की अव्यवस्था से संशय – पदार्थ के न होने पर दिखाई नहीं देना और पदार्थ के होने पर भी दिखाई नहीं देने से संशय होता है। जैसे कि प्रकोष्ठ में व्यक्ति नहीं होता है तो नहीं दिखाई देता है और तार में बिजली होती हुई भी नहीं दिखाई देती है। इसी आधार पर ईश्वर के विषय में संशय होता है कि ईश्वर न होते हुए नहीं दिखाई दे रहा है या होते हुए भी नहीं दिखाई दे रहा है? इस प्रकार सर्वत्र पांच प्रकार के संशय होते हैं, यह बात समझ लेनी चाहिए।

स्वामी जी – कितने क्षेत्र हुए संशय के?

साधक ३ – पाँच।

स्वामी जी – पाँच हैं। उनमें से यहाँ विप्रतिपत्ति होने से संशय उत्पन्न हुआ है। जैसे कि हमारी वैदिक परम्परा में वेदादि ग्रंथ हैं, इनके पढ़ने-पढ़ाने वाले विद्वान् हैं, उनके शिष्य-प्रशिष्य हैं तथा यह मान्यता है कि सृष्टि का आदि है और अन्त होता है। उसी प्रकार से एक जैन सम्प्रदाय है। उसमें भी ग्रंथ हैं, विद्वान हैं, लेखक हैं, उपदेशक हैं और उनकी बात को मानकर उनके शिष्य-शिष्याएँ बनते हैं तथा वे लोग इस सृष्टि को अनादि और अनन्त मानते हैं। यहाँ दोनों में विरोध होने से किसी एक पक्ष की मान्यता सन्दिग्ध हो गई और कुछ देर के लिए उन दोनों को छोड़ देंगे और अनुमान-प्रमाण से इन दोनों को सिद्ध करना चाहेंगे। अनुमान-प्रमाण की पंचावयव प्रक्रिया से इनको कैसे अनित्य सिद्ध करेंगे?

साधक ३ – शरीर के उदाहरण से सिद्ध करें।

स्वामी जी – क्या है?

साधक ३ – हमारा शरीर सृष्टि का एक घटक है। अतः इसको लेकर आरम्भ करते हैं।

- प्रतिज्ञा – यह शरीर अनित्य है।
- हेतु – यह उत्पन्न होता है।

(व्याप्ति – जो-जो पदार्थ उत्पन्न होते हैं वे नष्ट भी होते देखे जाते हैं।)

- उदाहरण – जैसे कि घट।
- उपनय – उसी के समान यह शरीर भी है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

◆ निगमन - अतः उत्पन्न होने से यह शरीर अनित्य है।

स्वामी जी – और कोई सिद्ध करना चाहे तो करो। बोलो, कैसे सिद्ध करोंगे ?

साधक ८ – स्वामी जी ! शरीर को तो नाशवान् सिद्ध कर लिया है, अब सूर्य, चन्द्र, पृथ्वी आदि को नाशवान् कैसे सिद्ध करें, यही प्रश्न है ? क्योंकि वे ही अनन्त लगते हैं।

स्वामी जी – और अब आप भूमि को नाशवान् सिद्ध करो।

साधक ३ – भूमि नाशवान् है। क्योंकि ये तोड़ने से टूट जाती है। और जो वस्तु टूटती हो, वह कहीं न कहीं मिलकर बनी हुई होती है। आगे थोड़ा-सा कोई अन्य स्पष्ट कर दें। (जैसे स्तम्भ। स्तम्भ के समान भूमि टूटती है। अतः स्तम्भ के समान टूट जाने से नाशवान् है।)

स्वामी जी – आगे नहीं है। हाँ जी ! आप बोलो -

साधक २ – अवयवी होने से भूमि अनित्य है। जो-जो वस्तु अवयवी होती है, वह-वह अनित्य होती है। जैसे घट-पट आदि। उसी तरह की पृथ्वी भी है। पट के समान अवयवी होने से भूमि अनित्य है।

स्वामी जी – पृथ्वी नाशवान् है। क्योंकि यह तोड़ने से टूट जाती है। तोड़ते हैं तो छिन्न-भिन्न हो जाती है। जो-जो वस्तु तोड़ने से टूट जाती है, वह-वह नाशवान् देखी जाती है। जैसे शरीर। शरीर की भाँति ही यह पृथ्वी भी टूटती है। इस ढंग से बोलो।

साधक २ – स्वामी जी ! यहाँ थोड़ी विशेषता है। शरीर जैसे धर्म पृथ्वी में नहीं दिखाई देते हैं। शरीर के अवयव तो टूटकर जुड़ते नहीं है किन्तु पृथ्वी के जुड़ जाते हैं। एक जगह से मिट्टी उठाकर दूसरी जगह डालने पर जुड़ जाती है, शरीर में ऐसा नहीं होता है।

स्वामी जी – उसमें एक बात है, वह जो आप को मिलने-जुलने वाले दिखाई दे रहे हैं वे भी अवयव ही हैं।

साधक २ – घटादि पदार्थों में ऐसा है कि उसका भाग निकाल दिया जाए और पुनः उसके पास लगा दिया तो जुड़ता नहीं है, परन्तु पृथ्वी का भाग तो जुड़ जाता है।

स्वामी जी – पृथ्वी टूटती है, क्या इसका उदाहरण यह नहीं बनेगा कि हमारा शरीर भी टूटता है अथवा शरीर टूटता है और शरीर बना है पृथ्वी आदि से ? वह उदाहरण भी नहीं बनेगा ?

साधक २ – शरीर में पृथ्वी के धर्म ही नहीं हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! यह उदाहरण बनायें कि जैसे शरीर टूटता है, खण्ड-खण्ड हो जाता है, वैसे यह भूमि भी तोड़ने से टूटती है। चूर-चूर हो जाती है अर्थात् परमाणु के रूप में चली जाती है। इसी तरह शरीर भी परमाणु के रूप में चला जाता है। जैसे मनुष्य का शरीर परमाणु रूप में चला जाता है वैसे ही भूमि भी टूटकर परमाणु रूप में चली जाती है, पुनः शरीर और पृथ्वी के धर्म समान क्यों नहीं हैं ?

साधक २ – पृथ्वी में ऐसा कोई विकार सिद्ध हो जाए जो कि लगातार चल रहा है। तब तो यह सिद्ध होगा कि भूमि का विनाश हो जाएगा। जैसे कि शरीर में विकार सिद्ध होते हैं, छोटा बच्चा, युवा और वृद्ध होता है। इसमें सतत ऐसा विकार होता है जो इसके विनाश को सिद्ध करता है। पृथ्वी में ऐसा कोई लक्षण दिखाई नहीं देता है कि जो आज से हजार वर्ष या पांच हजार वर्ष पहले था और वह आज नहीं है। यदि वह दिख जाए तो सिद्ध हो जाएगा।

स्वामी जी – जैसे कि एक ढेले को उठाकर हम उसको तोड़ डालते हैं। जो पत्थर आदि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्यन्त कठोर हैं उनको तोड़ते हैं तो वे भी चूर-चूर हो जाते हैं। अर्थात् भूमि का कोई भी ऐसा भाग नहीं मिलता जिसे हम तोड़ें और नहीं टूटता हो।

साधक २– पर तोड़ेगा कौन पूरे को? थोड़ा-सा तोड़ने से कोई अन्तर नहीं पड़ता।

स्वामी जी – नहीं। हम यह गणित लगा रहे हैं जैसे एक लोहे का खण्ड या पत्थर है यह बिना तोड़े भी टूट सकता है। जैसे कि शरीर बिना तोड़े भी टूटता है। यदि शरीर को छेड़ो नहीं तो भी तो यह धीर-धीरे नष्ट हो जाता है। ऐसे ही मानकर चलो पृथ्वी के भी प्रत्येक भाग को कोई तोड़ता नहीं तो भी उसी तरह टूटेगा ही वह भी। पृथ्वी के जो भाग हैं अनेक ढेले आदि, वे सरलता से टूट जाते हैं, चूर-चूर हो जाते हैं और कठोर भाग भी चूर-चूर हो जाते हैं। इन्हीं की भाँति सारे ही भाग चूर होने चाहिएँ। नहीं तो शरीर चूर-चूर हो जाए, ढेला भी चूर-चूर हो जाए और पत्थर चूर-चूर न हो, यह नहीं हो सकता।

साधक २– ऐसा यदि कोई पूरे भाग को चूर-चूर कर दे, तब तो हो सकता है। अपने-आप तो हो नहीं रहा है।

स्वामी जी – न! हमने यही तो दृष्टान्त दिया कि हमारा शरीर बिना नष्ट किये नष्ट होता है। यह तो शीघ्र नष्ट होने वाला पदार्थ हुआ। ऐसे ही पृथ्वी का ढेला नष्ट तो हो ही जाता है। जब पृथ्वी का ढेला नष्ट हो जाता है, तो पत्थर भी होने चाहिएँ, पुनः लोहे का, सोने का भी नाश होना ही चाहिए। एक भाग किसी का नष्ट हो और उसका दूसरा भाग नष्ट न हो, चूर-चूर न हो जाए; यह व्याप्ति नहीं मिलती।

साधक २– स्वामी जी! जैसे वृक्ष के पत्ते हैं, डालियाँ हैं, ये ऊपर के भाग हैं और प्रतिवर्ष बदल जाते हैं, किन्तु मूल सुरक्षित रहता है। ऐसे ही पृथ्वी के ऊपर के भाग भले ही टूटते-फूटते रहते हों किन्तु मूल भाग के सुरक्षित होने से इसकी स्थिति बनी रहेगी।

स्वामी जी – नहीं। वृक्ष के मूल भाग भी कालान्तर में टूट जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं। जैसे वृक्ष के मूल भाग भी कालान्तर में टूट जाते हैं, नष्ट हो जाते हैं वैसा ही पृथ्वी के विषय में समय लेना चाहिए। अतः उसमें हम यह तर्क उठाएँगे, उसके लिए व्याप्ति लगाएँगे कि पृथ्वी के कुछ भाग ऐसे हैं जो चूर-चूर हो जाते हैं। यदि कुछ भाग चूर-चूर हो जाते हैं तब सारे भाग चूर-चूर क्यों नहीं होंगे? जो चूर-चूर हो जाते हैं वे भी पृथ्वी के ही भाग हैं और जो अत्यन्त दृढ़ हैं वे भी पृथ्वी के ही भाग हैं। दोनों पृथ्वी के भाग होने से एक क्षेत्र ऐसा हो, जो चूर-चूर होता हो और दूसरा कभी भी चूर-चूर न हो, यह व्याप्ति नहीं लगेगी।

साधक २– पूरा चूर-चूर करने पर नष्ट हो जाए, इतना तो ठीक है; पर कारण यह है कि इस पृथ्वी के ऐसे धर्म हैं कि इसके अवयव आपस में स्वयं जुड़े हैं और जब तक ये बिखर नहीं जाते हैं तब तक कुछ भी नहीं होगा।

स्वामी जी – हम यह कहते हैं कि पृथ्वी के कुछ भाग थोड़े काल तक चलने वाले हैं और कुछ भाग बहुत काल तक चलने वाले हैं। जैसे कि घास, मनुष्य, वृक्ष आदि। इसमें घास बहुत शीघ्र नष्ट हो जाती है, मनुष्य शरीर तीन-चार सौ वर्ष तक चल सकता है। वृक्ष कोई दो सौ, पांच सौ, हजार वर्ष का भी हो सकता है, उनकी सूखी लकड़ियाँ लाख वर्ष की भी हो सकती हैं। ये सब पृथ्वी के अंश हैं; यह आप जानते हैं, बात जंचती है और यह संगत है। कोई थोड़ी देर तक रहने वाला पदार्थ है तथा कोई वर्षों तक रहने वाला पदार्थ है। आगे बढ़ो तो कोई पत्थर हजार, लाख वर्ष से ऊपर करोड़ों वर्षों तक चला जाएगा। ऐसे कोई अरब तक पहुँच जाएगा। यह तो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो सकता है पृथ्वी के कोई भाग थोड़े काल में नष्ट होते हैं तो कोई बहुत अधिक काल में, पर एक दिन सारे नष्ट नहीं होंगे, यह बात नहीं जंचती।

साधक २– शरीर और पृथ्वी में धर्मभेद होने के कारण यह नियम वहाँ लागू नहीं होगा।

स्वामी जी – दूसरे चुपचाप बैठे हैं, वे भी अपनी बुद्धि को दौड़ा लें। जो अनुमान-प्रमाण से अनित्यता की सिद्धि होती है, उसको करके देखें। जिसने बोलना हो तो बोलो।

साधक ३– यह तो सिद्ध है कि जो वस्तु तोड़ने से टूट जाती है, वह पहले कभी मिलकर, संगठित होकर बनी हुई होती है। तो वह अनित्य ही होगी, यह सिद्ध है।

स्वामी जी – आप बोलो ! क्या समझ में आया या नहीं आया ?

साधक ७– आ गया स्वामी जी ! स्पष्ट हो गया है।

स्वामी जी – आ गया समझ में ?

साधक ३– और स्पष्ट होना चाहिए।

स्वामी जी – एक तो अब हम जो यह सिद्ध कर रहे हैं यह अनुमान-प्रमाण से कर रहे हैं। दूसरा शब्द-प्रमाण से इनको अनित्य सिद्ध करते हैं। अनुमान-प्रमाण व शब्द-प्रमाण से व्यक्ति इस पूरी सृष्टि को जब अनित्य सिद्ध करता है तब ये जितने भी शरीरधारी अथवा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, अरबों लोक-लोकान्तर हैं, किसी को नहीं छोड़ता, सारे को नाशवान् सिद्ध कर देता है। पूरे के पूरे को।

तो शब्द-प्रमाण व अनुमान-प्रमाण से जिस समय वह सारी सृष्टि को समाप्त कर देता है उस समय, उस व्यक्ति को अपना शरीर, दूसरों के शरीर या जितने भी सूर्य-चन्द्र आदि पदार्थ हैं, इनमें से कोई भी दिखाई नहीं देता। दोहराओ और स्थिति को देखो।

साधक ३– जिस समय व्यक्ति शब्द प्रमाण और अनुमान प्रमाण से अपने शरीर, सूर्य-चन्द्र आदि समस्त पदार्थों को नाशवान् सिद्ध कर देता है। उस समय उसे कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता है।

स्वामी जी – उस समय कोई निर्मित पदार्थ नहीं रहता है। अब जब इन सब को नाशवान् सिद्ध कर दिया तब उसके मन में एक और विचार उभरकर सामने आया कि मैंने जो इस सृष्टि को नाशवान् सिद्ध कर दिया, समाप्त कर दिया; वह अभाव में परिवर्तित हो गया, अभाव रूप हो गया अथवा सूक्ष्मतम रूप में रूपान्तरित हो गया ?

यह शंका इसलिए उत्पन्न हुई कि नाशवान् के दो अर्थ हैं - एक तो यह मान्यता है कि जो भावात्मक पदार्थ था वह अभाव को प्राप्त हो गया। दूसरी मान्यता है सूक्ष्म-सूक्ष्मतम अवस्था में चला गया। जहाँ तक अत्यन्त टूटना है वहाँ तक टूटकर रूपान्तरित हो गया परन्तु अभाव को प्राप्त नहीं हुआ।

साधक ३– रूपान्तर हो जाना।

स्वामी जी – रूपान्तर हो गया। वह क्या सोचता है ? आपको क्या समझ में आया ?

साधक ३– यह सारा संसार जब प्रलय को प्राप्त होगा ....।

स्वामी जी – तो उसके सामने दो बातें आईं - एक तो यह कि अभाव रूप हो जाएगा।

साधक ३– अथवा रूपान्तर हो जाएगा।

स्वामी जी – या रूपान्तर हो जाएगा। दूसरी यह मान्यता है। दोनों सामने आएँगी या नहीं ?

साधक ३– हाँ जी! वे तो आएँगी।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – आएँगी। अब जैसा कि आपने पहले सुना है एक ऐसी भी मान्यता लोगों की है कि यह संसार अभाव रूप में था और अभाव से भाव की उत्पत्ति हो गई और पुनः अभाव को प्राप्त हो जाएगा। समझ गए आप ?

साधक ३– और यह भी मान्यता है कि अभाव से भाव होता नहीं और भाव का अभाव भी नहीं होता है। **नाशः कारणलयः**। सां.द. १/१२१। यह सांख्य का सिद्धान्त है। रूपान्तर हो जाना।

स्वामी जी – जब अनुमान-प्रमाण व शब्द-प्रमाण से विचार करता है तब यह बात सिद्ध होती है कि जो भावात्मक सृष्टि है मनुष्य आदि प्राणियों के शरीर और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश आदि, ये विनाश को जब प्राप्त होते हैं तब इनका रूपान्तर होता है, अभाव नहीं होता है। तो उसकी बुद्धि में क्या है ? वह अनुमान से यह देखता है कि जो वस्तु थी, उसकी सत्ता थी, वही टूटते-टूटते परमाणु रूप में बदलकर नष्ट हुई है, उस सत्तात्मक वस्तु का अभाव कैसे हो सकता है ? वह यह देखता है।

जब उसको यह बात समझ में आ गई कि भावात्मक वस्तु रूपान्तरित होकर रहती है, उसका अभाव नहीं होता। पुनः एक शंका होती है कि रूपान्तरित सृष्टि उसी अवस्था में पड़ी रहेगी या पुनः बनेगी ? पुनः रूपान्तर होकर सृष्टि बनेगी या नहीं ? आप क्या सोचते हैं ?

साधक ३– यदि हमारे पास शब्द-प्रमाण है कि सृष्टि की प्रलय हो गई तो पुनः नई उत्पत्ति होगी और पुनः प्रलय होगा, पुनः नई उत्पत्ति होगी, यह क्रम चलता रहेगा; तब यह प्रश्न नहीं हो पाएगा कि सृष्टि बनेगी या नहीं ?

स्वामी जी – एक स्थिति यह है कि आप प्रमाण से ईश्वर को एक सिद्ध पदार्थ मानते हैं और वही इसको तोड़ता है और बनाता है, यह मानना पड़ेगा।

साधक ३– एक शंका है कि जब ये सारी बातें सिद्धान्त रूप में जानी हुई हैं, पढ़ी हुई हैं तब संशय ही नहीं हो सकता कि संसार अभाव में जाएगा या भाव में जाएगा। कौन-कैसे होगा, यह शंका ही उत्पन्न नहीं होती है।

स्वामी जी – शंका उत्पन्न न होने का कारण यह भी है कि आप उतनी गहराई में जाकर स्वतन्त्र चिन्तन कम करते हैं। क्या समझ में आया ? दोहरा लो।

साधक २– गहराई में जाकर चिन्तन नहीं करते हैं।

स्वामी जी – एक तो गहराई में जाना और पुनः अपनी बुद्धि को स्वतन्त्र छोड़ कर निर्णय करना। उसी स्तर से सूक्ष्मता में जाकर यह देखना कि ठीक है शब्द-प्रमाण से सिद्ध है, पर मेरी बुद्धि इसको स्वीकार करती है या नहीं करती है। क्या समझ में आया ?

साधक ३– अब तो शास्त्रों में जैसा लिखा है, पढ़ा है, उसको बुद्धि वैसा ही स्वीकार करती है। यह लगता है कि पूर्णतः ठीक लिखा है।

स्वामी जी – अच्छा ! यदि ऐसा होता, बुद्धि स्वीकार कर रही होती और अन्तिम निर्णय हो गया होता तो बहुत से पढ़े-लिखे लोगों की समाधि लग जानी चाहिए थी।

साधक २– वह परिणाम आना चाहिए था।

स्वामी जी – परिणाम आना चाहिए था उनका, परन्तु परिणाम तो आ नहीं रहा हमारे सामने। दोहराओ सोचो ? परिणाम नहीं आ रहा है, यह तो आपको समझ में आया ? हजारों पढ़े-लिखे लोगों को यदि यह बात समझ में आ गई होती तो उनकी समाधि लग जानी चाहिए थी और नहीं लग रही है तो इसका कोई कारण होना चाहिए या नहीं ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मचारी – स्वामी जी! पठित सिद्धान्तों के प्रति आस्था तो है, पर निर्णय नहीं है।

स्वामी जी – हाँ! हम यही तो कह रहे है कि विचारते-विचारते बुद्धि में जो अन्तिम निर्णय आता है और व्यावहारिक रूप धारण करता है, वह तो दिखना चाहिए? क्या वह निर्णय वहाँ तक पहुँचा है? बोलो और कौन बोलेगा? आपके सामने बातें आ रही है और आएँगी कि यदि इतना ही मंथन करना पर्याप्त होता, इतने से काम चल जाता तो उनमें ये बातें होनी चाहिए थीं। ये पढ़ने-पढ़ाने वाले व्याख्याकार, भाष्यकार आदि बहुत से लोग थे और अब भी हैं तो वे मंथन करते-करते विवेक-वैराग्य को क्यों नहीं प्राप्त हो गए, क्यों नहीं उनको समाधि प्राप्त हो गई? इसलिए यहाँ कोई न कोई तो बात है।

साधक २– शब्द-प्रमाण हमको विषय का थोड़ा ज्ञान तो करा देता है पर अपनी बुद्धि जब तक स्वीकार नहीं करे तब तक हमारा व्यवहार नहीं बदलता है।

स्वामी जी – जब हम शब्द-प्रमाण को मानकर चलते हैं तब उसमें भी बहुत से ऐसे भाग होते हैं जो मंथन करते-करते हमारे अनुभव का विषय बन जाते हैं। किन्तु शब्द-प्रमाण से सिद्ध बात को अपने ज्ञान में अच्छी प्रकार से बिठाने के लिए व्यक्ति को परिश्रम करना पड़ता है। शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण से सिद्ध बात को अच्छी प्रकार से बार-बार परीक्षण कर मन में पूरा बैठा लेना; यह अपेक्षा रहती है। प्रमाणों से पुनः पुनः परीक्षा करके अन्तिम रूप देना और बुद्धि में बात का बैठ जाना; एक स्थिति है। इसके अतिरिक्त बात का वैसा ही बैठे रह जाना; यह दूसरी और उत्तम स्थिति है।

हम जो सिद्ध करते आ रहे हैं कि सभी शरीर नाशवान् हैं, पुनः पृथ्वी आदि नाशवान् हैं आदि; तो व्यक्ति का इतना अभ्यास हो जाना चाहिए कि वह एक बार बुद्धि को दौड़ाये और सबको नाशवान् देख ले। इतना अभ्यास होना चाहिए। अब देखिये, आपको क्या समझ में आया? दोहराओ –

मनुष्य आदि सब शरीरों को सिद्ध किया कि ये नाशवान् हैं और आने वाले काल में सन्तति की सन्तति नहीं रह सकती, अनादिकाल से सन्तति की सन्तति नहीं चली आ रही है। पुनः पृथ्वी आदि जितने भी भूगोल हैं, सब के सब नाशवान् हैं, यह सिद्ध किया। अब उसने इस स्थिति को परिपक्व बना लिया है, तो जिस-जिसको, जब-जब चाहेगा, तत्काल उसकी बुद्धि वहाँ जाएगी और नाशवान् दिखा देगी। इसके विपरीत जिसने सब की अनित्यता को सिद्ध नहीं किया या स्थिति को परिपक्व नहीं बना लिया है, तो तत्काल उसकी बुद्धि न वहाँ जा पाएगी और न नाशवान् दिखा सकेगी। अब ध्यान दो, क्या अन्तर है?

जिन-जिन क्षेत्रों को आप अच्छी प्रकार से मंथन कर सिद्ध कर चुके हैं कि ये नाशवान् हैं और आपके मन में कोई सन्देह नहीं रहा और ऐसा आप बहुधा कर चुके हैं तो आपको इसका यह भी लाभ होगा कि कालान्तर में यदि किसी कारणवशात् वहाँ सन्देह या भ्रान्ति उत्पन्न हो जाती है तो पहले का सिद्ध किया हुआ जो ढंग है, पद्धति है; उसके आधार पर आप तत्काल पुनः उसे अनित्य सिद्ध कर लेंगे। यहाँ तक तो आ गई बात समझ में?

इसमें अन्तिम परिणाम यही निकला कि हमने जो मंथन किया है उसमें अच्छी प्रकार निपुण होना, जिसको पारंगत होना बोलते हैं, वह स्थिति आपको सम्पादित करनी पड़ेगी और इतना ही नहीं, पूरे दिनभर वह बनाकर रखनी पड़ेगी। यह विवेक है।

अब हम आगे सोचते हैं। तो ध्यान देंगे, आप जब सब को नाशवान् सिद्ध करेंगे तब न भोक्ता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहेगा और न भोग्य। सुख और सुख के साधनों के प्रति, दुःख और दुःख के साधनों के प्रति राग और द्वेष दोनों विदा हो जाएँगे। अब क्या समझ में आया? परिणाम क्या निकल रहा है?

ब्रह्मचारी – सारी वस्तुओं को नाशवान् सिद्ध करने के पश्चात् न तो भोक्ता रहेगा, न भोग्य रहेगा। जिससे भोग्य वस्तुओं के प्रति न तो राग उत्पन्न होगा और न द्वेष रहेगा।

स्वामी जी – यह परिणाम निकलेगा। अब यह सुख और सुख-साधनों में राग तथा दुःख और दुःख-साधनों में द्वेष की जो धारा चलती रहती है, यह व्यक्ति को एकाग्र नहीं होने देती है, समाधि की ओर नहीं जाने देती, यह समाप्त हो जाएगी। जिस काल में यह समाप्त हो जाएगी, उस काल में आप अपने मन को जहाँ लगाना चाहते हैं, वहाँ सरलता से लगा लेंगे।

सृष्टि को इस रूप में जान लेने के पश्चात्, प्रलयवत् बनाने के पश्चात्, ये सैकड़ों, हजारों प्रकार की विचार-धारायें आपको बाधित नहीं कर सकेंगी। अन्यथा बाधित करेंगी और उस बाधा को आपको रोकना ही पड़ेगा। दोनों में यह अन्तर है। आ गया समझ में। अब विराम॥

२१ आत्मनिरीक्षण

दिनचर्याविचार : आषाढ़ कृ. १/२०६०-१४/०७/०३

अब आत्मनिरीक्षण का विषय आरम्भ करते हैं। आप सुनायेंगे –

साधक १ – प्रातः कालीन उपासना में आलस्य का प्रभाव रहा।

स्वामी जी – अपने ग्रन्थों में लिखा है व्यक्ति को ध्यान-काल में आलस्य क्यों आता है, निद्रा क्यों आती है? वहाँ इनके कारणों के जानकर इन्हें हटाना चाहिए। अब आप सुनाएँगे।

साधक ८ – प्रातःकालीन उपासना ठीक रही। व्यवहार में कुछ क्षोभ रहा।

स्वामी जी – विद्युत् जाने की स्थिति हो तो यहाँ बत्ती रखा करो। जब चली जाए तब झट जला दिया करो। तो जो क्षोभ हुआ, पुनः उसको रोका या क्या रहा?

साधक ८ – रोक दिया स्वामी जी! और पुनः असावधानी से असत्य बोलने का अवसर आने को हुआ।

स्वामी जी – आप थोड़ा और ऊँचा बोलो और साफ भी बोलो।

साधक ८ – कमरे में ताला लगाना था और चाबी मेरे पास थी जब कि मैंने कहा मेरे पास नहीं है। पुनः उन्होंने मुझे सावधान किया और मैंने ढूंढा तो मेरे पास मिल गई।

स्वामी जी – आप लोगों को पुनः-पुनः कहा जाता है कि अपनी भाषा को सुधारो, अपनी भाषा को सुधारो, तो भी कई ऐसे हैं कि वैसा ही बोलते रहते हैं। मासों तक कहा जाता है पुनरपि ध्यान नहीं देते, वैसा ही बोलते जाते हैं। आपको यह पता नहीं चलता कि सिखाया क्या जा रहा है? ऐसी क्या बुद्धि है, जिसमें कुछ भी परिवर्तन नहीं हो रहा? यह तो ठीक है कि कानों में

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्वनि होने से मुझे अपेक्षाकृत कुछ कम सुनाई देता है, परन्तु वास्तव में आपकी भाषा बहुत खराब है। आपको यह समझ में क्यों नहीं आता कि मैं जो भ्रष्ट भाषा बोल रहा हूँ, इसको सुधार लूँ! क्यों जी? आपको यहाँ तक ध्यान देना है कि जो इक्यासी प्रकार की अहिंसा कही है, उसका पालन करना है किन्तु आप तो उलटे सुनने वाले को दुःख दे रहे हैं। उनको बल पड़ रहा है। वे आपको अच्छा नहीं मान रहे। आप जैसा बोलते हैं, वह अन्यों को सुनाई नहीं देता है। यदि सुनने वाला अपने मन पर नियन्त्रण न रखें तो उसको बहुत दुःख होगा।

बोलने के भी कुछ नियम हैं। जिसको हम सुनाना चाहते हैं उसको अक्षर, शब्द, वाक्य पूरा सुनाई देना चाहिए। एक अक्षर, शब्द, वाक्य के पश्चात् दूसरा अक्षर, शब्द, वाक्य कितने काल में बोलना चाहिए और सुनने वाले मेरी बात को पकड़ रहे हैं या नहीं, हमको इसकी अनुभूति रहनी चाहिए।

एक तो आप इस बात पर विचार करें कि हम योग-विद्या को जानने के लिए, सीखने के लिए, क्रिया-रूप देने के लिए एक-एक घन्टा लगाते हैं, पुरुषार्थ करते हैं, परिश्रम करते हैं। उसमें अपने-अपने शरीर, बल, सामर्थ्य के अनुरूप न हो, अधिक परिश्रम दिखता हो तो इसको पौन घण्टा कर सकते हैं। आपका क्या विचार है? प्रतिदिन जो हम एक-एक घण्टा लगाते हैं, उसको पौन-पौन घण्टा कर लें तो पन्द्रह-पन्द्रह मिनट बेचेंगे और थकान नहीं होगी। बौद्धिक अथवा शारीरिक परिश्रम अधिक होने लगे तो उसका उपाय है कि उसे कम कर दो। हाँ जी!

साधक ४— कटिपीड़ा के कारण मैं आपसे यह निवेदन करने वाला था कि एक-एक घण्टे की जो कक्षा है उसको पौन घन्टा किया जाए तो मेरे को कुछ सुविधा रहेगी।

स्वामी जी — और बोलिए! इस में किसी को कोई बाधा हो, ठीक नहीं लगता हो तो बताइए। पौन-पौन घन्टा करें?

साधक ३— हाँ जी! मैं तो सहमत हूँ।

स्वामी जी — देखो, विचारो। दस के स्थान पर आरम्भ न करके सवा दस बजे आरम्भ करें तो पौन घण्टा हो जाएगा। उधर मध्याह्नोत्तर आगे या पीछे किस ओर से घटायें-बढ़ायें? उसमें या तो जैसा कि उन्होंने बताया था पौने तीन से आरम्भ कर दें और कहाँ तक चलाएँगे? साढ़े तीन तक। तो ऐसा करने में आपको बाधा तो नहीं दिखती?

साधक १— अथवा तीन से पौने चार तक करें तो?

स्वामी जी — उसमें ऐसा है कि अपने उपाध्याय जी ने संकेत दिया था कि तीन से आरम्भ न करके आप पौने तीन करें।

साधक १— मेरे विचार में उनका अभिप्राय होगा कि पौने चार बजे तक कक्षा समाप्त हो जाए।

साधक ५— पौने चार बजे कार्य की घन्टी होती है, स्वामी जी! इसलिए उपाध्याय जी ने यह निवेदन किया था।

स्वामी जी — उसमें ऐसी स्थिति हो तो उसको तीन से लेकर पौने चार बजे तक कर सकते हैं, उनको बाधा न हो तो। ऐसा ही है?

साधक ५— हाँ जी! उसमें बाधा नहीं है।

स्वामी जी — और जब आपको स्वाध्याय, ध्यान कार्य करते हुए अधिक थकान की अनुभूति हो रही हो, ध्यान आदि अच्छी तरह न हो रहा हो तो इसको दूर करने के लिए उस समय विश्राम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किया जा सकता है। ऐसे ही यदि रात्रि में किसी की नींद पूरी न होती हो तो और पहले सोकर उसकी पूर्ति की जा सकती है। जैसे कि मानकर चलिए यदि कोई व्यक्ति नौ बजे सोता है तो वह छः या सात घंटे सो जाए तो जहाँ तक नींद की कमी का प्रसंग है, वह तो नहीं रहेगा। कोई रोगी, बालक या अतिवृद्ध हो तो उसको छोड़ दो। क्या समझ में आ रहा है?

साधक ३— रात को ९ बजे सो जायें तो प्रातःकाल ४ बजे तक सात घंटे लगभग होते हैं, यह हमारे लिए पर्याप्त काल है।

स्वामी जी — हाँ जी! बोलिए। यदि अनिद्रा का रोग हो या व्यक्ति विचारों में लग जाए आदि-आदि कारणों से देर से नींद आती है, अन्यथा बुद्धि-पूर्वक प्रयत्न से व्यक्ति सो जाए तो शीघ्र नींद आ जाएगी। इसलिए नींद लेने के लिए विचारों को रोकना पड़ता है। दोहरा लो।

साधक ५— नींद लेने के लिए विचारों को रोकना पड़ता है।

स्वामी जी — यदि किसी विषय में विचार तीव्रता से चलते रहें और आप सोना चाहेंगे तो नींद नहीं आएगी। यदि आप विचारों को रोकना जानते हैं, विचारों को रोक लेते हैं तो नींद न आने की स्थिति हटा सकते हैं, नींद ला सकते हैं। इसके अतिरिक्त कभी-कभी रात्रि में किसी विशेष कारण से नींद नहीं आई हो तो दिन में सोकर भी उसको पूरा किया जा सकता है। क्यों जी! क्या समझ में आया? अर्थात् आपको यदि किन्हीं कारणों से रात्रि में नींद नहीं आई और उसका प्रभाव आपके शरीर पर लग रहा हो तो दिन में सोकर उसको दूर कर सकते हैं।

अन्य कोई बात बाधा करने वाली, संशोधन वाली बात हो तो रख सकते हैं। अच्छा! जैसे कि इन्होंने बताया कि ताली न मिलने पर क्षोभ आ गया तो यदि आपके साथ भी ऐसी घटना होती है तब आपको भी क्षोभ होता है या नहीं? कोई अपना अनुभव सुनाएगा?

साधक २— उपेक्षा कर देते हैं।

स्वामी जी — एक उदाहरण लेकर चलते हैं। मान लिया कि आपका करदीप (टार्च) रखा था और दूसरे व्यक्ति को करदीप के पास कुछ कार्य करना था। वह करने लगा और इधर-उधर हाथ लगाने से आपका करदीप धड़ाम से गिर गया तथा उसका शीशा टूट गया। अब उस व्यक्ति ने तो ध्यान नहीं दिया कि यहाँ करदीप रखा है। अतः ध्यान से काम करना चाहिए और असावधानी से कार्य किया तो उस समय आपको क्षोभ होना चाहिए या नहीं होना चाहिए?

साधक ३— नहीं होना चाहिए। कोई बात नहीं, जो हो गया, हो गया।

स्वामी जी — यहाँ क्या करना चाहिए? पचास रुपये या जितनी की हानि हो गई और उस व्यक्ति ने ध्यान नहीं दिया, यहाँ केवल यही मुख्य कारण था। बिना ध्यान के कर डाला तो अब आपको कुछ कष्ट या क्षोभ होगा या नहीं? आप क्या करोगे?

साधक ७— असावधानी के कारण हानि करने वाले को पश्चात्ताप करना चाहिए और हमको उसे क्षमा कर देना चाहिए।

स्वामी जी — क्या करेंगे आप? सोचने का ढंग क्या बनाएँगे?

साधक २— भिन्न-भिन्न व्यक्तियों को देखकर भिन्न-भिन्न भावना होगी।

स्वामी जी — अच्छा!

साधक २— जैसे अपना निकट का व्यक्ति है और थोड़ा अधिक बड़ा है।

स्वामी जी — तो क्षोभ कम होगा।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– क्षोभ नहीं होगा, इतना होगा कि ठीक नहीं किया। अन्दर से बुरा तो मान लेंगे, केवल प्रकट नहीं करेंगे।

स्वामी जी – अच्छा ! बुरा मानना, यह अच्छा है या बुरा है, इसको देखो ! बुरा है, तो इसको रोकने का काम हमको करना पड़ेगा। क्यों जी ?

साधक ५– स्वामी जी ! यह बात समझ में नहीं आई, उन्होंने जो कहा कि बुरा मानेंगे। इससे क्या कह रहे हैं ?

स्वामी जी – हाँ ! बुरा लगेगा, ऐसा कहा। आपने क्या कहा – बुरा लगेगा, ऐसा कुछ ?

साधक २– अर्थात् उस व्यक्ति को हम बुरा मान लेते हैं कि इसने अच्छा नहीं किया, ध्यान नहीं रखा।

स्वामी जी – अब व्यक्ति को जो हम बुरा समझते हैं, यह बात भी आनी चाहिए या नहीं, यहाँ पर यह देखना है। तो आपको पता होना चाहिये कि ऐसी बातें भी नहीं आनी चाहिएँ, क्योंकि ये योग में बाधक हैं।

साधक ७– नहीं आनी चाहिए क्योंकि....।

साधक ३– यहाँ यह जानना चाहिए कि इससे त्रुटि हुई, मुझसे भी हो सकती है, किसी से भी हो सकती है। त्रुटि हुई है, इसके लिए उसको समझाना चाहिए कि भाई ! सावधान रहना। इतना ही सोच सकते है और आगे नहीं।

स्वामी जी – ऐसी घटना होने पर किस प्रकार से सोचना चाहिए; यह एक विज्ञान है।

साधक ४– स्वामी जी ! ऐसा सोच सकते हैं कि उससे एक भूल हो गयी है। अब मैं उसके प्रति द्वेष उत्पन्न करके दूसरी भूल क्यों करूँ ?

स्वामी जी – हाँ ! यह एक हेतु बनेगा कि उससे तो भूल हुई और मेरी एक हानि हो गई उस पर मैं और दुःख उठाऊँ, यह तो मेरी मूर्खता ही होगी। अपने लिए दुःख उत्पन्न करना हानि- कारक है। यह मेरा कर्त्तव्य नहीं है। अब बताओ, परिणाम क्या निकला, उस घटना को लेकर हम दुःखी हो गये। भाई ! वह दुःख हमने ही तो उत्पन्न किया अपने अन्दर। क्या समझ में आया ?

साधक २– इस दुःख की अनुभूति नहीं होती।

स्वामी जी – नहीं ! होती कैसे नहीं, भाई ! मानसिक दुःख तो होता है या नहीं होता ?

साधक ३– होता है।

स्वामी जी – मानसिक दुःख होता है। उस समय क्षोभ होता है।

साधक ३– चित्त की शान्ति भंग होती है।

साधक २– अपनी वस्तु यदि नष्ट हो रही हो, कठिनाई से पुनः मिलने वाली है; ऐसी स्थिति होने पर तो दुःख की अनुभूति होती है, पर जब यह स्थिति हो कि वस्तु तो सरलता से पुनः मिल जाएगी या कार्य में कोई विशेष बाधा नहीं आनी है तब तो दुःख नहीं होता है किन्तु व्यक्ति को बुरा मान लेते हैं।

स्वामी जी – मान लो थोड़ी देर के लिए वस्तु मिल ही जाएगी, इसको हटा देते हैं। परन्तु प्रश्न है कि वहाँ दुःख हो या नहीं ?

साधक २– वहाँ उस व्यक्ति को ही लक्ष्य बनाकर कह देते है। वस्तु की उपेक्षा कर देते हैं। वह तो गई सो गई।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – नहीं ! बात यह है कि उसने बिना सोचे-विचारे असावधानी से झट वस्तु को तोड़ डाला। अब उस घटना से वस्तु टूटने पर जो दुःख होता है, वह नहीं होना चाहिए। वहाँ यदि दुःख होता है तो अच्छी स्थिति नहीं है। वहाँ हमको करना क्या है? ऐसी घटना पर दुःखी न हों, यह करना है।

साधक २– इसके लिए क्या विचार करना होगा?

स्वामी जी – इसमें विचारों की अनेक धाराएँ चलती हैं, जिसमें एक तो यह विचार करना होता है कि उसने तोड़ी सो तोड़ी, वस्तु तो टूट-फूट गई, पर अब और दुःख उठाऊँ अपने लिये, इससे तो वस्तु कभी बनने वाली है नहीं। दूसरी बात यह है कि मैं दुःख उठाऊँ तो मुझे अतिरिक्त दुःख भोगना पड़ेगा। क्या समझ में आया? मैं अपने विचारों से दुःख पैदा करूँ, भाई ! इतनी मूर्खता क्यों करूँ? वस्तु तोड़े वह और दुःखी होऊँ मैं ! ऐसा क्यों करूँ? नहीं करूँगा मैं। एक दूसरी बात यह है, इससे कुछ तो समझ में आयी होगी।

अर्थात् इस ढंग से सोचना है कि हमको दुःख चाहिए? नहीं। हम यदि दुःख नहीं भोगना चाहते हैं तो इस दुःख को नहीं होने दो, यही तो उपाय है, वस्तु तो उसने तोड़ ही दी है।

साधक २– जब दूसरे की वस्तु तोड़ देते हैं तब भी दुःख होता है। उसमें क्या करना है ?

स्वामी जी – दूसरे की अर्थात् ?

साधक २– जैसे कि किसी ने अभी हमारी वस्तु तोड़ दी। इसी प्रकार कालान्तर में हमने किसी की वस्तु तोड़ दी। अब वहाँ पर भी हमको दुःख होता है। तो वहाँ क्या करें?

स्वामी जी – मैं बताता हूँ। उस दुःख को भी रोकना है। देखिए, सिद्धान्त है कि हम दुःखी होना नहीं चाहते हैं, चाहे कुछ भी हो। इसको समझ के चलेंगे। चाहे अपनी हानि हो, चाहे दूसरे की हानि हो, उस पर दुःखी होना हमारा धर्म नहीं है।

साधक १– स्वामी जी ! जैसे इन्होंने बात रखी कि हम किसी की वस्तु तोड़ देते हैं।

स्वामी जी – तब भी दुःखी नहीं होना है।

साधक १– तो ग्लानि नहीं उत्पन्न करेगा?

स्वामी जी – हम कहते हैं कि आप सीधे मानिए कि यह भूल है। दुःख उठाने की कोई बात ही नहीं है। बात वही आएगी, वहाँ पर दुःख भोगना हमारा काम नहीं है। आप उदाहरण लेंगे ईश्वर का। क्या ऐसी घटना में ईश्वर भी कुछ क्षोभ करता है?

साधक ३– नहीं करता है।

स्वामी जी – ईश्वर का जो स्वभाव है वैसा हमारा स्वभाव होना चाहिए।

साधक १– स्वामी जी! ईश्वर सदा न्याय पक्ष में रहता है। पर हम कभी अन्याय करते हैं, इस स्थिति में उसके प्रति हमें ग्लानि अनुभव नहीं होनी चाहिए?

स्वामी जी – एक बात है, ग्लानि कहो या मान लो कि आपसे दोष हुआ है। एक भाव है खिन्नता का, वह भी हमें नहीं करना है। हमने दोष को दोष मान लिया है, यहाँ तक सीमा आ गई। हम दोष को दोष मानते हैं। आप समझे?

हमारा प्रसंग चल रहा था कि वस्तु के नष्ट आदि हो जाने पर क्या-क्या सोचना चाहिए? उसमें दूसरी बात थी स्वयं भी दुःखी नहीं होना और दूसरे को बुरा नहीं समझना चाहिए। अब तीसरी बात हमने लेनी है कि इस वस्तु का स्वामी ईश्वर है। यह मेरी वस्तु ही नहीं है तो अपनी न मानने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर दुःख की कमी होती चली जाएगी। ईश्वर की वस्तु को अपनी मानने पर दुःख बढ़ने की स्थिति है और अपनी न मानकर ईश्वर की मानने से स्थिति सुधर जाएगी।

और सुनो अन्य कारण! यदि यह वस्तु नष्ट नहीं होती, बची रहती तो मुझे उससे सुख मिलता। क्या समझ में आया? क्यों? यही बात है न? भाई! मैं दुःखी क्यों हुआ? इसलिए दुःखी हुआ कि मुझे सुख मिलता। इसका समाधान है, अब वह देखता है कि जो सुख मिलता उसमें परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख, गुणवृत्तिविरोध दुःख मिले हुए हैं और इसी सुख को तू खोज रहा है, इसके लिए तू दुःखी हो रहा है, यही तो मूर्खता की बात है। जो इससे सुख मिलेगा, उसमें चार प्रकार का दुःख मिश्रित है। क्यों? ऐसा सोचकर वह दुःखी होने से रुक जाएगा। कुछ कारण याद रहे आपको? कौन सा चल रहा है?

साधक ३– यह अधिक सूक्ष्म हो गया।

स्वामी जी – कौन-सा?

साधक ३– जो चार दुःख मिले हुए हैं। वे तो साधन थे हमारे?

स्वामी जी – साधन तो रहे, उसका निषेध नहीं कर रहे हम। बात है, वह जो सुख का अंश है, जो सुख हमको मिलता है, उसके विरुद्ध कार्य होगा तब दुःख होगा और यदि हम कहेंगे कि वह सुख ही नहीं चाहिए तो सुख मिलने की स्थिति में जब विरुद्ध कार्य होगा तब भी दुःख नहीं होगा। साधन के रूप में तो चाहिए किन्तु सुख के लिये नहीं चाहिए।

साधक २– पुनः एक पक्ष है कि ईश्वर का मानकर चलने पर भी दोष बढ़ने की सम्भावना दिखती है। ईश्वर की वस्तु मानकर हम ऐसा कर सकते हैं कि चलो! जैसे दूसरे की वस्तु बिगाड़ देते हैं, तोड़ देते हैं तो कुछ नहीं होता और ऐसे ही आज ईश्वर की वस्तु हमने तोड़ दी तो कोई बात नहीं।

स्वामी जी – नहीं! वहाँ तो दूसरे नियम चलेंगे। वह सब सुलझ जाएगा, उसमें कोई ऐसी बात नहीं है। अर्थात् दूसरे की वस्तु के विनाश का हमको अधिकार नहीं, इस प्रकार सबका समाधान हो जाएगा।

हम इन बातों को लेकर चल रहे हैं कि इस प्रकार सोचना चाहिए। यहाँ एक बात और सोचेंगे कि जो वस्तु उत्पन्न हुई है, वह नष्ट तो होनी है। इसलिए भाई! वह जो उत्पन्न हुई थी वह नष्ट तो किसी से हो ही सकती थी, तो इससे हो गयी, इसमें क्या बात है। तो इससे दुःख नहीं बढ़ेगा।

साधक १– और मेरे स्वरूप में इससे कोई हानि नहीं हुई?

स्वामी जी – हाँ! यह भी इसके साथ जोड़ेंगे। जैसे आपने व्यास भाष्य में पढ़ा तो होगा न। यह चित्र वहीं से खींचा गया है। इसलिए तो खींचा जाता है वह चित्र। उसने सारा विवरण दिया कि व्यक्ति ऐसे-ऐसे सोचता है – **व्यक्तमव्यक्तं वा सत्त्वमात्मत्वेनाभिप्रतीत्य तस्य संपदमनुनन्दत्यात्मसंपदं मन्वानस्तस्य व्यापदमनुशोचत्यात्मव्यापदं मन्वानः, स सर्वोऽप्रतिबुद्ध इति**। यो.द.व्या.भा. २/५।

भावार्थ – जो व्यक्त अर्थात् चेतन पत्नी, पुत्र, परिवार, पशु आदि पदार्थों तथा अव्यक्त धन-सम्पत्ति, कार, कोठी आदि को अपनी आत्मा का स्वरूप मानकर उनकी वृद्धि में अपनी वृद्धि तथा उनकी हानि में अपनी हानि समझता है वह नासमझ ही है।

साधक ३– उस जड़-वर्ग को आत्मा का अंग मानता है।

स्वामी जी – जहाँ यह प्रसंग आ खड़ा हुआ कि आत्मा चेतन है, मैं जीवात्मा चेतन हूँ। मेरा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो कोई अंग भंग हुआ नहीं। इसमें काई ऐसी बात हुई नहीं। आगे और बढ़ जाओ। देखो ! जीवात्मा अल्पज्ञ है। उससे टूट सकता है, यह कोई नई घटना तो है नहीं।

साधक ५– अल्पज्ञ है।

स्वामी जी – आई बात समझ में ? जीवात्मा अल्पज्ञ है।

साधक १– त्रुटि हो सकती है।

स्वामी जी – भाई ! उससे त्रुटि हो गई तो कोई अद्‌भुत बात थोड़ी हो गई। दुःखी नहीं होना है। अच्छा ! मुझसे भी तो होती है। क्या समझ में आया ? मैं अपने पर तो क्रोध करता नहीं और दूसरे पर करता हूँ। यह तो ठीक नहीं है। तो तत्काल इसका प्रयोग करके रोक देंगे। अब विराम ॥

२२ यज्ञीयोपदेश

प्रयोग : आषाढ़ कृ. २/२०६०-१५/७/०३

योगाभ्यास करने वाले व्यक्ति को अत्यन्त सावधान रहना पड़ता है। यदि इतनी सावधानी न हो तो योग में प्रगति, विकास होने की सम्भावना नहीं है। जब हम मन्त्र पाठ करेंगे तो मन्त्र पाठ करना, उसके एक-एक शब्द का अर्थ करना, ईश्वर को सम्बोधित करना, स्वयं को ईश्वर-समर्पित रखना, ये करने के कार्य हैं और उस जप-उपासना काल में अन्य विषयों को न उठाना, यदि असावधानी से उठ जाएँ तो उनको रोक देना; ये कार्य चलते रहते हैं। अब हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे-

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात् ॥

अभी हमने जो प्रयोग किया उसमें विधि-विधान क्या है, प्रयास कैसे करते हैं ? हम जब ओम् बोलते हैं तब उसका एक अर्थ ले लेते हैं - सर्वरक्षक। उस काल में उसको मन में रखते हुए ईश्वर को सम्बोधित करते हैं - हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। पुनः बोलते हैं - भूः हे ईश्वर ! आप प्राणों के भी प्राण हैं। ऐसे शब्द के साथ अर्थ करते जाते हैं, ईश्वर को सम्बोधित भी करते रहते हैं। यह स्थिति बनी रहती है।

अब एक स्थूल प्रयोग करेंगे ध्यान का, भक्ति का, उपासना का। यह प्रयोग जैसे साधारण व्यक्ति के लिए उपयोगी है वैसे ही उच्च कोटि के विद्वान् या योगाभ्यासी के लिए भी उपयोगी है। एक व्यक्ति जो मन्त्रों को नहीं जानता, उसकी योग्यता इतनी कम है कि मन्त्रों का पाठ करके ईश्वर की उपासना नहीं कर सकता। परन्तु उसको, यदि जिस स्तर की भाषा का प्रयोग करता है, उस स्तर पर सिखाया, बतलाया जाए कि देखो ! ईश्वर ऐसा है। जिसकी हम पूजा करते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्य समाज के दूसरे नियम को लेकर कहा - यह ईश्वर का स्वरूप है, ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव ऐसे हैं। ईश्वर सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता है। मोटी भाषा में उसको बतलाया जा सकता है कि ऐसा समझकर अपने स्वरूप का ध्यान करना - हम आत्मा सत्-चित् भी हैं। छोटे से हैं और एकदेशी हैं। एक थोड़ी सी जगह में रहते हैं। थोड़ी-सी हममें शक्ति है, थोड़ा-सा हममें ज्ञान है, बिना ईश्वर की सहायता के हम कुछ कर नहीं सकते। पुनः यह शरीर जो है, ये इन्द्रियाँ हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश है, भोजन आदि खान-पान है, इनकी रचना प्रकृति से ईश्वर ने की है। ये हमारे साधन हैं।

फिर उसको सिखाएँगे। अब ध्यान में बैठो, संध्या करो, उस काल में आप यदि कुछ शब्दों से जप करना चाहते हैं तो ऐसे बोलो - एक विशेष धुन के रूप में बोलते हैं, दूसरा साधारण धुन के रूप में बोलते हैं और एक में कोई धुन दिखाई नहीं देती। तो जब धुन के रूप में बोलेंगे, तब ऐसे बोलेंगे -

आप मेरे साथ बोलेंगे और ध्यान देंगे। मिलकर बोलना है। ओम् सच्चिदानन्द।

लम्बा सांस लेंगे और बोलेंगे - ओम् सच्चिदानन्द।

पहले हम बोलते हैं ओम् सच्चिदानन्द, पुनः अर्थ करते हैं - हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं। यह है भावना।

अब हम धुन को बदलेंगे और पाठ करेंगे -ओम् सच्चिदानन्द। ओम् सच्चिदानन्द।ओम् सच्चिदानन्द।

अब रुकेंगे आप। यहाँ भिन्न-भिन्न प्रकार की स्थितियाँ हैं जैसे कि एक स्थिति है जिसमें बोलते-बोलते अर्थ करते हैं। दूसरी स्थिति है जिसमें बोलकर रुक जाते हैं तब पुनः स्वास लेकर अर्थ का विचार करते हैं-हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सत्-चित्-आनन्द-स्वरूप हैं। इसके साथ सामान्य कार्य यथा ईश्वर को सम्बोधित करना, स्वयं को समर्पित रखना और अन्य विचारों को न उठाना, उठा लिए जाएँ तो पुनः रोक देना आदि करने होते हैं।

अब जिसको विशेष धुन नहीं आती जैसे कि माता जी बैठी हैं, थोड़ा-बहुत पढ़ना जानती होंगी तो उनके लिए है कि ऐसे पाठ करो - ओम् सच्चिदानन्द! हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सत्-चित् आनन्द स्वरूप हैं।

जब इस वाक्य का प्रयोग बार-बार करने से अच्छा अभ्यास हो जाए, उसके पश्चात् इसके साथ-साथ अगले शब्दों का प्रयोग भी बढ़ाते हैं। तब बोलते हैं - ओम् सच्चिदानन्द! हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सत्-चित् आनन्द स्वरूप हैं। ओम् निराकार! हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक और रंग-रूप से रहित हैं। ओम् निराकार! हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, रंग-रूप से रहित हैं।

इस प्रकार से जितनी-जितनी उसकी क्षमता, योग्यता बढ़ती जाती है उतना-उतना प्रयोग बढ़ाता जाता है। आर्य समाज के दूसरे नियम का अन्त तक प्रयोग करता है। इस प्रयोग को साधारण व्यक्ति भी कर सकता है। इससे भी वही उपलब्धि होगी। इस प्रयोग को मध्य कोटि, उच्चकोटि का योगाभ्यासी, विद्वान् भी कर सकता है। इसमें कोई बाधा नहीं है।

ये प्रयोग हैं। इस काल में आपसे भी पूछताछ होगी। आपको समझ में आया या नहीं आया?

साधक ८ - हाँ जी!

स्वामी जी - और बीच में जो माता जी बैठी हैं उनको समझ में आया या नहीं?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये जो ईश्वर की भक्ति, जप, ध्यान, योगाभ्यास करने वाले अनेक सम्प्रदायों के करोड़ों लोग हैं, उनको यदि मोटे रूप में विशुद्ध ईश्वर का स्वरूप जैसा कि मैंने वर्णन किया, सिखा दिया जाए और ध्यान में प्रयोग करें तथा व्यवहार में यम-नियम का पालन करें। पुनः उसी के साथ देशभक्ति और परोपकार जोड़ दिया जाए तो भारत की बहुत अधिक उन्नति हो सकती है। आप को प्रयोग समझ में आ गया? आप बोलेंगे -

साधक ७- हाँ जी!

स्वामी जी - अच्छा! एक बात आपने सुनी थी, वह स्मरण है? यदि पाठ करते-करते कोई संशय उभर जाए अथवा उभार लिया जाए, तब क्या करते हैं? आप में से कोई बताएगा कि तब हम क्या करते हैं?

साधक ४- शब्द-प्रमाण का आधार लेकर उस संशय को हटा कर....।

स्वामी जी - अपनी स्थिति का सम्पादन करते हैं। जैसे कि बात करते-करते संशय को उभार लिया। अब हम तत्काल शब्द-प्रमाण को लाकर, जिसको कि पहले परीक्षापूर्वक सिद्ध कर चुके हैं, उससे सशंय को हटा देते हैं। क्या समझ में आया?

जिस विषय को प्रमाणों से परीक्षा पूर्वक सिद्ध कर चुके हैं, जिन सिद्धान्तों को निर्णीत कर चुके हैं, वे हमारे पास तैयार हैं। अब उनका प्रयोग करते हैं।

यदि दर्शन का कोई अंश आपको स्मरण हो, जिसमें यह बात कही गई कि जहाँ-जहाँ पर संशय हो, वहाँ-वहाँ पर ऐसे समाधान कर लेना चाहिए। क्या याद है आपको? हाँ जी! बोलो, आलस्य तो नहीं आ रहा? प्रसंग है कुछ याद?

साधक ३- नहीं।

स्वामी जी - नहीं है, तो सुनो! प्रसंग था कि आप कहते हो कि संशय की परीक्षा करो। तो संशय नाम का एक वस्तुतत्त्व है। तो पूर्वपक्षी ने कहा - संशय नाम का कोई वस्तुतत्त्व है ही नहीं, इसलिए संशय हो ही नहीं सकता। किससे पूछूँ? हाँ जी! पूर्वपक्षी ने क्या कहा? संशय हो ही नहीं सकता, क्या कहता है वह!

साधक ५- संशय हो नहीं सकता।

स्वामी जी - क्यों नहीं हो सकता? अब पता चलेगा कि आप दर्शन को दोहराते हैं या नहीं, पढ़ते हैं या नहीं। और बोलो, किसी को याद हो। कैसे याद नहीं। ऐसे प्रसंग याद करने ही होते हैं। न्याय जैसी विद्या न हो तो आप अज्ञान, अधर्म, अन्याय को प्रमाणों से धराशायी नहीं कर सकते। किसकी याद दिलाऊँ? क्यों जी? आचार्य ज्ञानेश्वर जी की याद दिला दूँ, इनको याद है या नहीं। सदा गंभीर रहने से आप ऊब न जाएँ, इसलिए मैं कभी-कभी रोचक बनाने की बात करता हूँ। साथ ही दूसरे लोगों को कुछ पल्ले पड़ जाएगा। उनका कहना था, अठारह-बीस वर्ष हो गए। न्याय दर्शन के पठन-पाठन से योगाभ्यास में कोई सिद्धि मिलती तो दिखती नहीं, पुनः इसको पढ़ने के लिए परिश्रम क्यों किया जाए? नहीं समझे आप? ऐसा उनका कुछ भाव था, यह मुझे झलकता है।

ऐसे ही आशीष जी का नाम लूँ? क्यों जी याद है आपको?

आशीष जी - याद है।

स्वामी जी - इनका कहना था? मैं दर्शन पढ़ना, न्याय, वैशेषिक पढ़ना नहीं चाहता, मैं तो योगाभ्यास करना चाहता हूँ। मुझे योग चाहिए। भगवान् चाहिए, मुझे इन दर्शनों से कुछ लेना-देना नहीं है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आपकी परीक्षा भी हो रही है और कार्य की सिद्धि के लिए आपको सुसज्जित भी किया जा रहा है। उस पूर्वपक्षी ने यह बात कही - समान धर्मों की सिद्धि होने से, विशेष धर्मों की सिद्धि होने से, विप्रत्तिपत्ति को जानने से और उपलब्धि-अनुपलब्धि की अव्यवस्था होने से निर्णय हो ही जाता है तो संशय क्यों होगा? अब याद आया आपको? नहीं आया हो तो दोहरा लो। संशय कैसे होगा, समान धर्म का पता चल गया - यह ठूँठ का धर्म है, यह मनुष्य का धर्म है, पुनः संशय होगा ही नहीं।

और पृथ्वी का विशेष धर्म है - गन्ध। यह ज्ञान हो गया तो संशय होगा ही नहीं। दो व्यक्ति बोल रहे हों, जिसमें एक कहता है - ईश्वर है और दूसरा कहता है - नहीं है। दोनों बोल ही रहे हैं तो संशय क्यों होगा? अब न्याय की बात चल रही है। आप की चर्चा नहीं है। एक कहता है यदि उपलब्धि की अव्यवस्था है, तो है, संशय क्यों होगा और अनुपलब्धि की अव्यवस्था है, तो है, यहाँ भी संशय क्यों होगा? अब आया बुद्धि में?

साधक २ – थोड़ा-थोड़ा आया। **यत्र संशयस्तत्रैवमुत्तरोत्तरप्रसङ्गः ॥** न्या.द.२/१/७।

सूत्रार्थ - जहाँ-जहाँ संशय हो, वहाँ-वहाँ प्रथम संशय को वस्तुत्त्व सिद्ध करके पुनः उसका समाधान करना चाहिये।

सम्पादक – यत्र यत्र संशयपूर्विका परीक्षा शास्त्रे कथायां वा, तत्रतत्रैवं संशये परेण प्रतिषिद्धे समाधिर्वाच्य इति, अतः सर्वपरीक्षाव्यापित्वात् प्रथमं संशयः परीक्षित इति ॥ न्या.द.वा.भा.२/१/७।

अर्थ – जहाँ-जहाँ शास्त्र या जल्प आदि प्रसंगों में संशय की उपस्थिति होने पर प्रतिपक्षी द्वारा उसके अस्तित्व का निषेध किया जाता हो, तो उसका खण्डन कर संशय करना चाहिए तथा उसका समाधान करना चाहिए। इसलिए सभी परीक्षाओं में संशय के सम्बद्ध होने से पहले संशय की परीक्षा कर ली।

स्वामी जी – नहीं आया हो, छूट गया हो तो पुनः पकड़ लेना। मैंने यह प्रकरण इसलिए उठाया कि न्यायदर्शनकार ने यह समाधान किया है कि संशय नहीं होता, इस पक्ष में पूर्वपक्षी ने जो हेतु दिया वह हेतु नहीं, हेत्वाभास है। इसलिए यदि कोई संशय का खण्डन करने लगे, संशय कोई वस्तु नहीं होती ऐसा कहे, तो उसका खण्डन कर देना चाहिए।

वस्तुतः संशय एक पदार्थ है। जब किसी भी पदार्थ में संशय हो तो इसी प्रकार से समाधान कर देना चाहिए। समझ में आया?

जहाँ यह कहा गया कि ईश्वर सर्वव्यापक है हम व्याप्य हैं, प्रकृति व्याप्य है ईश्वर व्यापक है, सृष्टि व्याप्य है ईश्वर व्यापक है, इसमें कभी संशय होने लगता है। इसी तरह सर्वज्ञ ईश्वर है, जिसकी मैं स्तुति कर रहा हूँ, वह पता नहीं है या नहीं है। जब ऐसे-ऐसे संशय हों तो प्रमाणों से जो सिद्धान्त परीक्षा करके रखा हुआ है, उसके द्वारा झट संशय को हटा देते हैं। अन्यथा यदि संशय उठा लेने पर आप संशय को नहीं हटा सकते, तो उपासना भी नहीं कर सकेंगे। दोहरा लो, क्या समझ में आया? नहीं तो पुनः भूल जाओगे आप।

यदि हम उसको तत्काल नहीं हटाते हैं तो वह हमारे ऊपर आरूढ़ हो जाता है, आक्रमण जैसा कर देता है, उस स्थिति में हम उपासना नहीं कर सकेंगे। अतः प्रत्येक क्षेत्र में पहले प्रमाणों से परीक्षा कर-करके हमको सुसज्जित होना पड़ता है। इन-इन विषयों को हमने परीक्षा करके देख लिया है, सुसज्जित कर लिया है, ये ठीक हैं और ये ठीक नहीं हैं; यह करना पड़ता है और जब-जब ऐसी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति आती है, तब-तब उसको ठीक करने के लिए इनका प्रयोग करते हैं। तब हम उपासना में लग जाते हैं।

यदि आप ऐसा करना नहीं जानते तो योग में आपको सफलता नहीं मिलेगी। यह तो मैंने योग की बात कही। व्यवहार काल में भी यदि पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा, जिनमें सारी इच्छाएँ आ जाती हैं, यदि वे उभार ली जाती हैं, तब व्यक्ति विचलित होने लगता है। उस समय व्यवहार काल में भी ऐसे ही निदान करना पड़ता है। अब दोहराओ। क्या समझ में आया।

ब्रह्मचारी – व्यवहार काल में पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा सम्बन्धित कोई विचार उभार लिए जाते हैं, तो उन्हें तत्काल प्रमाणों से परीक्षा करके रोक लिया जाता है।

स्वामी जी – आप अपने कमरे में उपासना के लिए बैठे हैं। कुछ देर में एक व्यक्ति बाहर से आया और आपको उपासना में बैठा देख वापस चला गया किन्तु द्वार खुला छोड़ गया और मक्खी, मच्छर आने लगे तथा आपको काटने लगे। अब आपके मन में आया कि वह तो बड़ा बुरा व्यक्ति है। द्वार खुला छोड़ दिया। यहाँ उपासना करने आए हैं या मक्खियाँ उड़ाने के लिए? अब आपको उसी समय इसका निवारण करना हो तो झट प्रयोग करने पड़ेंगे कि यहाँ पर मेरा क्या कर्त्तव्य है? आपने पढ़ा है इक्यासी प्रकार की हिंसा होती हैं। इसलिए यहाँ उसके प्रति जो द्वेष उत्पन्न कर रहे हैं तो आप अहिंसा को भंग करके हिंसा कर रहे हैं।

आपको पहले ही सावधानी से यह बात सूझ-बूझ में आ गई तो तत्काल आप नियन्त्रण कर लेंगे कि चलो ऐसा हो गया, द्वार खुला रह गया, मक्खियाँ इसलिए आ गई हैं। सब जान लें। जानने का निषेध नहीं है। ऐसा हो चुका है। कोई बात नहीं है। क्यों? कोई बात नहीं है, ऐसा निदान कर लेने पर द्वेष आगे नहीं बढ़ेगा। और उठकर तत्काल द्वार को बन्द कर दिया। हो गया बेड़ा पार। यदि आप द्वार बन्द नहीं करते हैं, मन की स्थिति को नहीं सुधारते हैं तो बस आएगा तूफान। आएगा और संस्कार डाल जाएगा द्वेष का। तो पुनः जैसे ही वह व्यक्ति याद आएगा, उसी के साथ द्वेष भी खड़ा हो जाएगा। अब बताओ तब क्या करोगे? कुछ आ रहा है समझ में कि नहीं आ रहा?

योग का क्रिया रूप क्या है? योग के साथ यम-नियम क्या हैं, इनका सन्तुलन कैसे रहता है दिनभर। **इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः** ॥ सांख्य. द. ४/१४। बोल तो लो कम से कम, क्या मतलब! अर्थ कौन करेगा?

साधक ३ – जैसे तीर चलाने वाला व्यक्ति अपने निशाने के प्रति अत्यन्त सावधान रहता है, वह लक्ष्य को प्राप्त होता है, वैसे ही जो व्यक्ति अपनी समाधि के प्रति तीर चलाने वाले की तरह अत्यन्त सावधान रहता है, उसकी समाधि भंग नहीं होती।

स्वामी जी – अब मैं बात कर रहा हूँ, आपको समझा रहा हूँ। सिखा रहा हूँ। यदि मैं अपने मन पर नियन्त्रण नहीं रखूँ तो दिल्ली की याद आ जाएगी। बताओ क्या करोगे। पुनः प्रचार के लिए चण्डीगढ़ गए तो बात करते-करते चण्डीगढ़ की याद आ जाएगी। आ जाएगी या ले आऊँगा?

अच्छा! वह स्वयं लाता है और मानता है कि आ गई। यह एक समस्या प्रायः सभी की है, चाहे वह अस्सी-नब्बे वर्ष का वृद्ध व्यक्ति है या पढ़ा-लिखा या उच्च-कोटि का साधक है या नहीं है। और आपकी भी यही होगी। क्यों? कोई नहीं मानता कि मैं चण्डीगढ़ की बात को स्मृति-पथ पर ले आया हूँ। वह यही मानता है कि यह बात स्वयं आ गई है और यह मान्यता व्यापक बन गई है। मैं स्वयं दोषी हूँ, यह नहीं दिखता उसको। अब बताओ क्या करोगे?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह व्यक्ति स्वयं त्रुटि करता पर अपनी त्रुटि नहीं मानता, उसको मन की त्रुटि मानता है और वह बीस, तीस, पचास वर्षों तक मानता ही रहता है। कभी यह ध्यान नहीं देता कि तू क्या कर रहा है?

कभी किसी तरह जीवात्मा मन में स्वयं विचार ले आता है और मानता है कि विचार आ गए। एक बार उसने हटा दिया और पुनः ले आया। अब उसे लगता है कि विचार आ गए। इधर ईश्वर-प्रणिधान वाला व्यक्ति क्या करता है? ईश्वर के सामने शिकायत करता है। क्या समझ में आया? नहीं आया। जितना बोला, उतना तो समझ में आ गया? क्या करता है! हे ईश्वर! यह मन इतना दुष्ट है कि मेरे न चाहते हुए भी विचार को ले आता है। मुझे ज्ञान दो, बल दो, इससे मैं छुटकारा पाऊँ। यह शिकायत करता है।

ईश्वर तो बहुत बुद्धिमान् है। बहुत बुद्धिमान् अर्थात् उससे कोई भूल होती ही नहीं त्रिकाल में। वह ईश्वर के प्रति यह नहीं विचारता कि मैंने क्या किया, इसको ईश्वर जानता है। क्या गड़बड़ कर रहा है, यह इसको पता नहीं है। क्या समझ में आया? कड़ी समझ में नहीं आई?

साधक ३– वहाँ पर ईश्वर प्रणिधान नहीं हो रहा है, क्योंकि ईश्वर की आज्ञा का भंग हो रहा है।

स्वामी जी – सम्भवतः वह बात समझ में नहीं आई जो चली थी, जिस ढंग से।

साधक २– उसने जो भूल की है।

स्वामी जी – उसने जो भूल की है, उसको ईश्वर जानता है, किन्तु यह इसको पकड़ में नहीं आ रही है कि मेरी इस भूल को ईश्वर जान रहा है, पुनः शिकायत क्या कर रहा हूँ?

तू ही तो विचार उठाकर ले आया और तू ही स्वयं कहता है - हे ईश्वर! यह मेरा मन ले आया है। मुझे छुटकारा दो। मेरी सहायता करो। वह व्यक्ति यह बात नहीं जानता। परन्तु ईश्वर दयालु है और उसके साथ भी माँ की तरह व्यवहार करता है। जैसे कि छोटे बच्चे ने खिलौने-यन्त्र को दबा दिया और वह चलने लगा तथा दूर भाग गया। अब बच्चा अपनी माताजी से कहता है - माताजी देखो! यह इतना दुष्ट खिलौना लाए। यह तो भाग गया, कितनी दूर चला गया। तो क्या माँ नहीं जानती कि इसने स्वयं भगा दिया है?

साधक ३– जानती है।

स्वामी जी – तो बालक समझ नहीं पा रहा है कि मैंने यन्त्र दबा दिया है। माँ उसको लाकर पुनः देती है या नहीं देती है? तो ईश्वर भी दयालु है, वह जानता है कि हम यह जो कह रहे हैं कि मन विचार ले आया, यह इसकी भूल है।

यह हमारी जो स्थिति है उसका एक भाग है उपासना काल और दूसरा भाग है व्यवहार काल। उस व्यवहार व उपासना काल में जब संशय उत्पन्न कर लिया जाता है तब पूर्व परीक्षित निर्धारित विषयों से उनका हम समाधान कर लेते हैं और उपासना को भी ठीक कर पाते हैं। यदि योग मार्ग पर चलते हुए व्यवहार में यह स्थिति आती है तो वहाँ भी इसी प्रकार समाधान करते हुए हमको संभलकर चलना होता है।

यह स्थिति वही है **इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः**। और यह आपको दिनभर बनाकर रखनी पड़ेगी। योगी बनने के लिए यह अनिवार्य स्तर है। पीछे मैंने आपको एक उदाहरण दिया कि अभी आपको कुछ सिखा रहा हूँ, कुछ सुना रहा हूँ, परन्तु मैं यदि अपने मन पर नियन्त्रण करता हुआ न चलूँ तो कभी चण्डीगढ़ की बात और कभी मुम्बई की बात, तो कभी कलकत्ते की बात आ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाएगी। इतना ही नहीं, पचास-साठ वर्ष पहले की बात मेरे सामने आकर खड़ी हो जाएगी। हो जाएगी का अभिप्राय ?

साधक ३ – ले आएँगे।

स्वामी जी – मान लो आती रहेंगी, जाती रहेंगी और मुझे कोई आपत्ति नहीं दिखती तो समझना चाहिए कि मुझे यह पता नहीं कि क्या-क्या दोष उत्पन्न हो रहे हैं। कौन से उलटे संस्कार पड़ रहे हैं। वे आत्मा और मन पर क्या प्रभाव डालेंगे ?

पुनः उससे एक यह दोष हो रहा है कि बिना सोचे-विचारे ज्ञान ग्रहण करने और किसी भी विषय में मन को चलाने का अभ्यास है। क्या समझ में आया ?

दोष क्या आया ? पुनः ध्यान से सुनो – परीक्षा पूर्वक इस काल में यही कार्य करना है, अन्य नहीं। इसका यह फल होगा। इस प्रकार से विचार पूर्वक प्रत्येक कार्य को करना चाहिए था, परन्तु इसके विपरीत अभ्यास हो गया। होना यह चाहिए था कि मैं चण्डीगढ़ की बात याद कर रहा हूँ, मुम्बई की बात याद कर रहा हूँ तो इसका क्या परिणाम होगा, पहले इसको विचारकर पुनः उनको याद करूँगा।

अब आप ध्यान देंगे – बिना परीक्षा किए ज्ञान का ग्रहण कर लेना, बिना परीक्षा किए कर्म कर लेना, बिना परीक्षा किए उपासना कर लेना, ये स्थितियाँ योगी न बनने देने की हैं अर्थात् इस स्थिति में व्यक्ति चित्त-वृत्ति निरोधकर समाधि तक नहीं पहुँच सकता। जैसे-जैसे समय मिलेगा इसके उदाहरण देते रहेंगे, समझाते रहेंगे।

इसका विवरण देना कितना सूक्ष्म है। अकस्मात् व्यक्ति मानसिक स्तर पर ज्ञान और अज्ञान, शुभकर्म-अशुभकर्म, शुभ उपासना-अशुभ उपासना धारावाही रूप से करता रहता है और बिना परीक्षा के तीनों को करता रहता है। तो इन तीनों को परीक्षापूर्वक करना तथा बिना परीक्षा के किसी को नहीं करना। एक उदाहरण देकर समाप्त करूँगा – याद रखिए, आपके मन में ओम् सच्चिदानन्द का जप करते समय ईश्वर की सर्वव्यापकता में, सर्वज्ञता में सन्देह हो गया। अब यह संशय किसने किया, बतलाओ ?

साधक ३ – स्वयं ने।

स्वामी जी – एक बात – वह जो संशय किया गया, क्या अब उसके उठाने का काल है ?

साधक ३ – नहीं है।

स्वामी जी – काल भी नहीं है, ठीक है। और संशय को ग्रहण कर, संशय को मानकर संशय से प्रभावित होना – अब क्या समझ में आया ? कुछ कम आया समझ में। यह किसका कार्य है ? संशय उभरा और उससे प्रभावित हो गया। ठीक है। और ऐसा कब हुआ ? जब संशय को ग्रहण किया।

अब इसको कैसे हटाएँगे ? आपको ध्यान होगा संशय एक मिथ्या ज्ञान है। तो अब वह यह कहेगा कि मैंने बिना परीक्षा किए इसका ग्रहण कर लिया, आगे नहीं करूँगा। क्या कहता है ? आगे ग्रहण नहीं करना है। इसलिए संशय चाहे कैसा भी हो, बिना परीक्षा किए उसको ग्रहण करना ही नहीं है। आ गया समझ में ? संशय को नहीं उठाना है। यह स्थिति आप बनाएँगे तो मन पर, आत्मा पर अधिकार होगा, नहीं तो ये बलात् जैसे उग्र रूप में आ सकते हैं। अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२३ क्रियात्मक योगाभ्यास

मनोनियन्त्रण : आषाढ़ कृ. २/२०६०-१५/७/०३

आप मन पर नियन्त्रण रखते हैं या खुला छोड़े रखते हैं, कैसा रखते हैं? क्या अनुभव होता है?

साधक २– प्रायः नियन्त्रण रखते हैं।

स्वामी जी – कभी नियन्त्रण हटा तो पता चला कि नियन्त्रण हट गया है और पुनः उसी अवस्था में बिना परीक्षा के किसी भी ज्ञान-विज्ञान की बातें उठा लेना, बिना परीक्षा के किसी विषय में अपने आप को लगा देना। बिना परीक्षा के किसी की उपासना आरम्भ कर देना। इस प्रकार बिना परीक्षा के मानसिक क्रिया आरम्भ कर देना और क्रिया करने पर पता चलना कि कार्य ठीक नहीं हुआ। प्रायः हमारी यह स्थिति रहती है, इसको दूर करना है।

अब हम गायत्री मन्त्र से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे-

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यह मध्यम गति की स्थिति है। यह जो संविधान-नियम है कि पाठ करें और अर्थ सहित करें, ईश्वर-समर्पित रहें। तो क्या यह आपका कुछ होता दिखाई दिया या नहीं? आपने क्या अनुभव किया? हाँ जी!

साधक ३– पाठ के साथ अर्थ का विचार भी किया और समर्पण कहीं रहा, कहीं छूटा।

स्वामी जी – और अपना अनुभव बताइए, क्या रहा?

साधक २– बीच-बीच में ईश्वर का स्मरण नहीं रहा।

स्वामी जी – अब आपको यह पता चलेगा कि अपने मन, बुद्धि, अन्तःकरण या आत्मा पर आपका कितना अधिकार है, यह परीक्षण आपका सतत हो रहा है। आप इसका अनुभव कर सकते है। मन, बुद्धि, इन्द्रियों और आत्मा पर आपका कितना नियन्त्रण है, इसका आपको कोई अनुभव होता है या नहीं?

जब हम ध्यान करते हैं, जप करते हैं और बाधाएँ उपस्थित होती हैं तब क्या-क्या करते हैं और क्या-क्या उपाय करने हैं; यह पता होना चाहिए? मान लिया हमारे समक्ष एक बाधा आई, किसी सांसारिक वस्तु की स्मृति आ गई तो अब हम क्या उपाय करें, यह अनुभव होना चाहिए और इसको हटाने के ये नहीं, ये उपाय हैं, यह भी ज्ञात होना चाहिए। इससे क्या समझ में आया? अर्थात् सभी उपाय सब कालों में काम नहीं आते हैं।

साधक ३– सभी उपाए एक साथ काम में नहीं आते हैं।

स्वामी जी – दो धाराएँ हैं - एक यह है कि सभी उपाय एक काल में काम नहीं आते, और दूसरी यह है - व्यक्ति सामर्थ्य के अभाव में सभी उपायों से एक काल में काम नहीं ले पाता अर्थात् जब किसी उपाय से बाधा का निराकरण हो गया तो अन्य उपायों को काम में नहीं लाते किन्तु कुछ ऐसे उपाय हैं जिनका उपयोग करने में ही आप समर्थ नहीं होते हैं। मन को जड़ मानकर नियन्त्रण कर लेने पर प्रलयवत् अवस्था की अपेक्षा नहीं रहती है किन्तु ऐसा भी हो सकता है कि अभी आप प्रलयवत् अवस्था बनाने में ही समर्थ नहीं हैं। दोनों ही मनोनियन्त्रण के उपाय हैं किन्तु एक स्थिति में दूसरे की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आवश्यकता नहीं रहती और एक स्थिति में आवश्यकता रहते हुए उसका उपयोग नहीं कर सकते हैं।

एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें हम मन को नियन्त्रण में लाना चाहते हैं किन्तु विद्या, वैराग्य, अभ्यास कम होने के कारण ऐसा नहीं कर पाते और अन्दर एक बहुत बड़ा उद्वेग उत्पन्न होता है। ऐसा लगता है कि वह पदार्थ हमको अपनी ओर खींच रहा है। हम स्वयं को रोकना चाहते हैं पर रोक नहीं पाते। इस विषय में आपका क्या अनुभव है?

साधक ३ – हमारे पास विद्या, विवेक, वैराग्य और अभ्यास कम हैं।

स्वामी जी – आप इसका यह दृष्टान्त ले सकते हैं। मान लिया किसी व्यक्ति ने आपके साथ बिना कारण के कोई दुर्व्यवहार कर दिया, उससे आपको बहुत कष्ट हुआ। अब आपको क्रोध आ गया किन्तु आप उसको रोकना चाहते हैं। इसके लिए बल लगाने लगे परन्तु पुनरपि नहीं रुका। ऐसे ही राग अथवा द्वेष को बहुत उद्वेग से उत्पन्न कर दिया। अब उसको रोकने में बड़ी कठिनाई हो रही है, बहुत अधिक काल लग रहा है। तो कभी आप ऐसा अनुभव करते हैं?

साधक ३ – यह अधिक स्थूल अवस्था है।

साधक १ – उसको भी जड़ मान लेते हैं तब शीघ्र रुक जाता है।

स्वामी जी – जड़ मानना।

साधक १ – क्रोध को।

स्वामी जी – नहीं, क्रोध को स्वतः जड़ नहीं मानेंगे। वहाँ मन को जड़ मान लें, जिससे क्रोध उत्पन्न होता है और मैं आत्मा चलाता हूँ, ऐसा मान लें। इस अवस्था में व्यक्ति यदि सावधान हो जाए तो क्रोध को रोक देगा।

साधक १ – स्वामी जी! इतना सावधान न हो पाए, अपितु जो क्रोध की तरंग, लहर आ गई, उस स्थिति में क्रोध को जड़ मान लेते हैं तो भी सफलता मिलती है। ऐसा मुझे अनुभव होता है।

स्वामी जी – इसमें ऐसा है क्रोध को जड़ मानना कभी सिद्धान्त के विरुद्ध न हो जाए, यह देखने की बात है।

साधक १ – है तो एक प्रकार से मन का ही।

स्वामी जी – नहीं-नहीं। यहाँ तो आपको पहले सिद्धान्त का निर्धारण करना पड़ेगा। यह काम चलाने तक तो ठीक है, इससे भी कुछ न कुछ रुकेगा ही। परन्तु मुख्य बात है सिद्धान्त में दोष आ जाएगा।

साधक १ – स्वामी जी! सिद्धान्त में दोष नहीं आता पदार्थ मान लेने पर।

स्वामी जी – नहीं। एक बात माननी पड़ेगी कि क्रोध को जड़ मानने पर वह एक पदार्थ और उसके गुण होंगे।

साधक १ – वह तो गुण हो गया।

स्वामी जी – गुण हो जाएगा तब संगति नहीं लगेगी।

साधक १ – गुण और गुणी को एक मान लेंगे।

स्वामी जी – सीधा उसको जड़ कहेंगे तो उसमें संशय उत्पन्न हो जाएगा। क्या समझ में आया, बोलो-

साधक ३ – गुण को भी पदार्थ कह सकते हैं।

स्वामी जी – पदार्थ तो वैशेषिक की भाषा में गुण को भी कहते हैं। पर जब जड़ और चेतन का प्रयोग होता है तब अधिकतर....।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– द्रव्य का ग्रहण होता है।

स्वामी जी – हाँ ! इसका ध्यान रखना पड़ता है।

साधक ८– स्वामी जी ! शरीर में भारीपन हो और बुद्धि काम नहीं करती हो तब नियन्त्रण नहीं होता है।

स्वामी जी – हाँ। शरीर अस्वस्थ हो, रोग आदि के कारण निर्बलता हो, चोट लग गई हो या भयंकर भूख लगी हो आदि-आदि स्थितियों में मन पर हमारा नियन्त्रण उतना नहीं हो पाता है।

साधक ३– और उसमें अरुचि हो जाती है।

स्वामी जी – अभ्यास करते-करते, पर्याप्त अभ्यास हो जाने पर व्यक्ति रुग्णावस्था में, निर्बलता में, चोट आदि लगने पर भी पर्याप्त मात्रा में नियन्त्रण कर लेता है और बनाए रहता है। परन्तु कम अभ्यास होने पर, विवेक-वैराग्य की न्यूनता में, निर्बलता में, रुग्णावस्था में, चोट लगने पर, बहुत भयंकर भूख-प्यास आदि लगने पर व्यक्ति उतना नियन्त्रण नहीं कर पाता।

अब हम एक प्रयोग करेंगे - गायत्री मन्त्र को लम्बा बनाकर बोलते-बोलते अर्थ का विचार करेंगे। क्या समझ में आया ?

साधक ३– गायत्री मन्त्र को लम्बा करके बोलेंगे और बोलते-बोलते ही साथ-साथ अर्थ का विचार भी करेंगे।

स्वामी जी – और हम ध्यान देंगे उच्चारण, पदार्थ का विचार, ईश्वर को सम्बोधित करना और समर्पित रहना; ये बातें होती हैं या नहीं ?

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

कैसा रहा आपका प्रयोग ?

साधक ३– मैंने इतने काल में तीन बार चित्र देखे और तत्क्षण हटा दिये। अर्थ और समर्पण का भाव भी बना रहा। शेष ठीक चलता रहा।

स्वामी जी – तीन बार किसके चित्र देखे ?

साधक ३– कहीं किसी दूर स्थान पर चले गए थे। चित्र आया हटा दिया। जैसे ही चित्र की वृत्ति बनी, हटा दिया।

स्वामी जी – अब देखो! यहाँ इस चित्र को रोकने का एक उपाय प्रलयवत् अवस्था है। यहाँ भी दो स्थितियाँ हैं, प्रथम-जब आप जप कर रहे हैं तब पूर्वतः प्रलयवत् अवस्था सम्पादित किए हुए हैं तो चित्र को उत्पन्न ही नहीं होने देंगे। दूसरी स्थिति में यदि चित्र उत्पन्न कर चुके हैं तब प्रलयावस्था बनाकर तत्काल चित्र को समाप्त कर देंगे।

साधक ३– इतना सूक्ष्म काल होता है कि पता ही नहीं चलता कब आया और कब चला गया।

स्वामी जी – हाँ ! ये तो हमको भी पता है। हाँ जी ! मैंने जो दो अलग-अलग स्थितियाँ बतलाईं, आपको उनका अनुभव हुआ कि नहीं ? पहली स्थिति है - व्यक्ति प्रलयवत् अवस्था को ज्यों का त्यों बनाए हुए है और इतना सावधान है कि मन को विषय की प्रेरणा ही नहीं देता। चित्र देखने ही नहीं देता। दूसरी स्थिति - उसमें इतना नियन्त्रण नहीं कर पा रहा कि चित्र को उत्पन्न न होने दे। किन्तु चित्र को उठा लेता है और उठाते ही सावधान होकर प्रलयवत् अवस्था बना देता है। एक और तीसरी अवस्था में व्यक्ति चित्र उठा भी लेता है, देख भी लेता है और हटा भी देता है परन्तु उसको यह पता नहीं चलता कि कब मैंने मन को प्रेरणा देकर चित्र उठाया और हटा भी दिया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– प्रेरणा देना पकड़ में नहीं आता कि कौन-सा काल है उसका।

स्वामी जी – जैसे कि एक नियम है जहाँ प्रत्यक्ष-प्रमाण से वस्तुतत्त्व नहीं जाना जाता, वहाँ अनुमान-प्रमाण या शब्द-प्रमाण से जाना जाता है। वैसे ही एक नियम या सिद्धान्त है कि आत्मा जब तक अपने ज्ञान-विज्ञान सहित इच्छा नहीं करता, प्रयत्न नहीं करता तब तक मन में क्रिया नहीं हो सकती। इसलिए जब तक आत्मा इच्छा-प्रयत्न नहीं करेगा, चित्र नहीं आ सकता। मूर्छित अवस्था में चित्र नहीं आता है। क्या समझ में आया?

साधक ८– स्वामी जी! मूर्छित अवस्था में आत्मा के इच्छा-ज्ञान आदि काम नहीं करते हैं।

स्वामी जी – आपको यह पता चला कि मूर्छित अवस्था में चित्र नहीं आ सकता। तो क्यों नहीं आता? वही बात है। ठीक आ गया समझ में? इसलिए मै प्रेरणा करता हूँ, और नहीं करूँगा; यह हमारे पकड़ के क्षेत्र में है और हमको यहाँ तक पहुँचना है।

साधक ३– चित्र दिखते ही ऐसा लगा कि मैंने यह अनुचित किया। अतः उसको तत्काल हटा दिया। तो जब चित्र देखने की स्थिति बनी, जब वह क्रिया हुई, तब पकड़ में क्यों नहीं आती है?

स्वामी जी – क्यों जी! निद्रा तो नहीं आ रही, कुछ दुर्बलता तो नहीं आ गई? बड़ी देर से झुककर बैठे हैं या बुढ़ापा आ गया?

साधक ७– निद्रा आने की स्थिति नहीं है। गायत्री मन्त्र के जप और अर्थ चिन्तन में मन लग गया था, उसी को कर रहा था।

स्वामी जी – न न। उसको नहीं लेना, वह तो है, सो है। यह जो विज्ञान है, मंथन चल रहा है, महत्वपूर्ण तो यह है। वह तो एक भाग है कि मन कितना लगा, कितना नहीं। वह क्रिया रूप है और इसमें घटनाएँ देखनी हैं, कारण व कार्य का क्या सम्बन्ध है, कैसे वह उभार में आता है? जब तक इस विधि-विधान का पता नहीं है, तब तक व्यक्ति का विकास नहीं हो सकता। बुद्धिपूर्वक विकास हो, इसी के लिए ये सारी प्रक्रियाएँ बताई जा रही हैं। एक-एक प्रक्रिया वैज्ञानिक है अर्थात् प्रमाणों से सिद्ध प्रक्रियाएँ हैं। अनुमान-प्रमाण, शब्द-प्रमाण, ऋषियों के अनुभव से सब सिद्ध हैं। यदि हम ऐसा ही समझ सकेंगे तब औरों को सिखा सकेंगे, अन्यथा नहीं।

आपको इसका भी ध्यान रखना चाहिए कि हमारा एक कर्त्तव्य है - ईश्वर साक्षात्कार तक पहुँचें। इसी का दूसरा भाग है कि आपको यह योजना बनाकर चलना है कि हमने इस विद्या को इसी रूप में सिखाना भी है। यह हमारा धर्म है। मुख्य कर्त्तव्य है कि स्वयं सीखकर औरों को सिखाना है। जब सिखाने का दायित्व आप स्वीकार करेंगे तब बहुत ध्यान से पढ़ेंगे, बहुत ध्यान से लेखबद्ध करेंगे। बड़ी सावधानी बरतेंगे कि कहीं भूल न जाए। यदि वह भाग आपकी बुद्धि में नहीं है तो इतना ध्यान नहीं देंगे, न ज्ञान-विज्ञान के लिए इतना परिश्रम करेंगे, न लेखबद्ध करेंगे।

अब हम इस परिणाम पर पहुँच गए कि वह जो प्रेरणा देना, मन में क्रिया का होना, मन के द्वारा चित्र को लाना, चित्र को हटा भी देना, पुनः रोक देना, अति अल्प काल में यह सब हो जाता है आदि।

साधक २– स्वामी जी! ऐसा भी हो सकता है, मन की प्रेरणा के बिना भी वह चित्र आ जाए। जैसे कि हम घण्टी को याद करते हैं, तो उस घण्टी से सम्बन्धित जो क्रिया होती है, स्मृति में आ जाती है। जैसे कि भोजन की घण्टी बजी, हमको सुनाई दी तो उसी समय भोजन, भोजनालय, थाली आदि दिखाई दे जाते हैं। ऐसे किसी एक पदार्थ को देखते हैं तो उससे सम्बद्ध, उसके अनुरूप दूसरे पदार्थ भी उपस्थित हो जाते हैं, उनकी भी स्मृति आ जाती है। ऐसे ही जब कोई मन्त्र, शब्द आदि

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोल रहे हैं तो उस समय भी जो अर्थ वहाँ उपस्थित होता है, उससे सम्बन्धित जो उसी प्रकार के गुण, धर्म हो सकते हैं, उनकी भी स्मृति हो सकती है।

स्वामी जी – हो सकने वाली बात का हम निषेध नहीं कर रहे हैं, होती हैं, हो सकती है। किन्तु यहाँ लेना है मन की प्रेरणा के बिना स्मृति नहीं होती है।

साधक २– अर्थात् मन की प्रेरणा के बिना भी स्मृति हो सकती है।

स्वामी जी – ऐसा नहीं होगा, मन की प्रेरणा के बिना स्मृति नहीं होगी। मन स्वयं प्रयत्न नहीं करता। अतः थोड़ी देर के लिए मन को हटा देते हैं, सीधा आत्मा को लेकर चलें तो यही बात आएगी कि स्मृति को लाने में आत्मा ने प्रयत्न किया है। आत्मा के प्रयत्न के बिना ऐसा नहीं हो सकता। यदि हम मन और आत्मा को साथ लेकर चलें तब यह कहा जाएगा कि आत्मा बिना मन के क्रिया नहीं कर सकता। उस स्थिति में आत्मा मन को प्रेरणा देगा, पुनः मन स्मृति को उठाएगा, तब स्मृति आएगी। परन्तु किसी भी पक्ष में स्मृति स्वयं नहीं आएगी।

साधक २– जैसे कि हमने 'देवस्य' शब्द बोला तो देवस्य शब्द के हमें बहुत से अर्थ ज्ञात हैं। पढ़े हैं या सुने हुए हैं। ईश्वर, दाता, कामना करने योग्य आदि। तो जब 'देवस्य' शब्द बोलेंगे तब जितने भी अर्थ ज्ञात हैं, सब एक साथ उपस्थित हो जाएँगे।

स्वामी जी – न, ऐसा नहीं होगा। हम उसको नियन्त्रण में रखेंगे, जिसको चाहेंगे वही आएगा।

साधक २– हमने मन से दूसरे अर्थों को देख लिया, यह तो नहीं होगा?

स्वामी जी – न न। हमने यह करना है, जैसे कि 'देवस्य' का एक अर्थ 'प्रकाश स्वरूप' लेना है तो अन्य किसी अर्थ को नहीं आने देंगे। जब तक हमारा मन पर नियन्त्रण रहेगा तब तक दूसरे अर्थ नहीं आएँगे। किन्तु जैसे ही ढीला छोड़ देंगे तो जितने अर्थ हमने सुने हैं, पढ़े-पढ़ाए हैं, वे एक साथ उपस्थित हो जाएँगे।

साधक २– एक साथ उपस्थित होते हैं।

स्वामी जी – एक साथ का अभिप्राय?

साधक २– बिना प्रेरणा के।

स्वामी जी – नहीं। प्रेरणा मात्र का अभिप्राय है कार्य इतनी शीघ्रता से हुआ कि क्रम का पता नहीं चला। जैसे कि आपने अक्रमम् आदि प्रकरण पढ़े हैं अर्थात् इतनी तीव्रता होती है कि क्रम का पता ही नहीं चलता, एकदैव आते दिखते हैं। यदि आप नियन्त्रण रखेंगे और चाहेंगे कि मैं 'देवस्य=कामना करने योग्य' को ही रखूँगा, शेष को नहीं आने देना है, तब यदि अधिकार है तो अन्य कोई नहीं आएगा। कोई दूसरा नहीं आ सकता है।

साधक १– स्वामी जी! इसमें धारणा का अच्छा अभ्यास होना आवश्यक है, ऐसा अनुभव में आता है। उसके बिना तो नियन्त्रण करना कठिन है।

स्वामी जी – हाँ! तो धारणा अपना काम करेगी ही। यह तो उचित है कि साधनों का अपना-अपना भाग होता है। धारणा भी एक साधन है और इसका अपना स्थान है। धारणा में व्यक्ति एक जगह जमा हुआ होता है और तब जितनी बात को पकड़ पाता है, उतनी चलायमान स्थिति में नहीं पकड़ पाता। जैसे कि हमने एक जगह मन को जमा लिया तो विषयान्तर को छूते ही बड़ी तीव्रता से उसको पकड़ लेते हैं, जबकि बिना जमे इधर-उधर चंचलता की स्थिति में उतना नहीं पकड़ पाते, उतना नियन्त्रण नहीं हो पाता।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– धारणा में अधिक बल देना चाहिए, स्वामी जी !

स्वामी जी – हाँ ! ठीक है। बल तो देना चाहिए। किन्तु यहाँ हम कार्य-कारण को समझा रहे हैं। अतः अन्य अर्थ को क्यों लाए, हम इसको ढूँढ रहे हैं कि अन्य अर्थ आ जाने के क्या कारण हैं। उनका पता लगा रहे हैं, यदि उनका पता लगा लेंगे तो उस कारण को हम रोक देंगे। यदि कारण को रोक देंगे तो कार्य भी रुक जाएगा।

साधक ३– कभी ऐसी स्थिति होती है कि हम ध्यान कर रहे हैं, और अचानक समुद्र का चित्र दिख गया, इसको हटा दिया तो कोई नदी दिख गई। एक क्षण के लिए ऐसा होता है और तत्काल हटा देते है। पर ऐसा क्यों होता है ?

स्वामी जी – ये जीवात्मा की इच्छा, प्रयत्न से आते हैं।

साधक ३– इसमें आत्मा की इच्छा के साथ-साथ तीनों गुणों का कोई प्रभाव होता है ?

स्वामी जी – हाँ। आत्मा मन, बुद्धि, अहंकार, नस-नाड़ियाँ आदि की सहायता से काम करता है। एक तो यह जानना चाहिए और इनमें तमोगुण का भी सहयोग रहता है। मन के साथ इन्द्रियों में, नस-नाड़ियों में, बुद्धि में, इन गुणों का प्रभाव है, जो जीवात्मा को प्रभावित करता है। देखिए ! ध्यान में जब तमोगुण प्रधान होगा तो वहाँ आलस्य-प्रमाद आएगा। उस समय आप घण्टा भर प्रयत्न करके भी ठीक से जप नहीं कर पाएँगे। यह स्थूल उदाहरण मैंने दिया।

हमारे ऊपर इन गुणों का प्रभाव पड़ता है, इसका स्थूल उदाहरण यह है कि हम जो मन, इन्द्रिय, शरीर, बुद्धि का प्रयोग करते हैं तब वे अच्छाई का ग्रहण भी करवाते हैं, इसलिए उपयोगी हैं और इनके अन्दर जो दोष हैं, उनके कारण हम बुराई भी कर लेते हैं। स्पष्ट हो गया। यदि मन सात्त्विक है तब हम इससे तीव्रता से सोचते हैं और थोड़े से काल में कितने ही विषयों का मन्थन कर लेते हैं परन्तु मन में जब तमोगुण और रजोगुण होता है तब इससे झटाझट उलटा भी सोच लेते हैं, कर लेते हैं; जो हमारे ऊपर कुप्रभाव डालता है।

अच्छा ! आप इस प्रयोग को करते रहते हैं कि मन को किसी विषय में नहीं लगाना है।

साधक ३– करते हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! अब करके देख सकते हैं आप ? क्या प्रयोग करोगे – पहले इसको समझ लो आप।

साधक ३– इस समय ईश्वर, आत्मा और प्रकृति, तीनों में से किसी को भी विषय नहीं बनाना है।

स्वामी जी – अब आँख बन्द कर लो और जिस स्थिति का वर्णन किया गया, बताया गया कि अब मैं किसी पदार्थ को विषय नहीं बनाऊँगा, उसको करके देखो। यहाँ शंका हो सकती है कि क्या ज्ञान रहेगा ? तो जानना चाहिए कि हाँ ! मैंने अपने ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न को रोक दिया है। मैं किसी को विषय बनाकर नहीं विचारूँगा। यह ज्ञान रहेगा, शून्यता नहीं रहेगी।

प्रयोग आरम्भ .....। समय लगभग तीन मिनट।

अब हम रुकेंगे और आप में से कोई अपना अनुभव सुनाएगा।

साधक ३– दो मक्खियों के प्रभाव ने बाधित किया और एक-दो बार पुनः वह चित्र देखने की जो प्रक्रिया है, एक सेकेण्ड के लिए आई, उसको तत्काल रोक दिया और फोन की घण्टी भी सुनाई पड़ी। उसको भी रोक दिया। अधिक समय तक ठीक स्थिति बनी रही। कुछ सेकेण्ड के लिए कोई बाधा हुई, उसको हटा दिया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अब और कोई दूसरा सुनाएगा।

साधक २– मुख्यतः तीन विचार उठाए। एक तो यह था किसी व्यक्ति को बताने का प्रयत्न किया था कि मैंने विचार रोक लिया है। दूसरा उसको उत्साहित किया। तीसरे का ध्यान नहीं रहा।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप सुनाएँगे। बच्चा बोले तो उसको बाहर ले जाना। हाँ जी !

साधक ४– पूरे समय तक आँखों के सामने गाढ़ अन्धकार बनाए रखा। इसलिए चित्र कोई भी नहीं देखा। मन को मैंने रोक रखा है, इस ज्ञान को दोहराता रहा। दो-तीन बार बाहर की ध्वनियों में एक सेकेण्ड के लिए मन को भेजा और रोक लिया। अन्तिम लगभग आधे मिनट में सिर में खिंचाव की अनभूति होने से आगे प्रयोग को छोड़ दिया।

स्वामी जी – एक नवीन व्यक्ति जब इस स्थिति का सम्पादन करने लगता है तब उसका अभ्यास कम होने से, ज्ञान-वैराग्य कम होने से, उसके परिश्रम के आधार पर सिर में कुछ भारीपन हो जाना, थकान जैसी आ जाना, कुछ घुटन जैसा अनुभव करना आदि स्थितियाँ आती रहती हैं।

नया जो व्यक्ति है उसका इतना अभ्यास नहीं, इतना वैराग्य नहीं, इतना ज्ञान-विज्ञान नहीं होने से इस स्थिति के सम्पादन में बल लगता है। इसलिए ऐसी स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं और जो पुराना व्यक्ति है, वह पर्याप्त अभ्यास कर चुका है। वह अभ्यास करता ही रहता है। अतः उसका सिर भारी होना, थकान का अनुभव होना या कोई बाधित जैसा हो जाना, गला-सा घुटना आदि स्थितियाँ नहीं होतीं। हाँ जी !

साधक १– स्वामी जी ! एक बात पूछना चाहता हूँ। इन्होंने (साधक ४) जो यह बात बतलाई कि गाढ़ अन्धकार को देखता रहा। तो यह भी एक विषय की स्थिति मानी जाएगी अथवा नहीं ?

स्वामी जी – जब अन्धकार को देखेंगे तो विषय माना जाएगा। वह विषय बन जाएगा।

हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे क्या प्रयोग सिद्ध हुआ, कुछ अनुभूति होती है, कैसी स्थिति रहती है ?

साधक ७– एक विचार आया जिसको रोक दिया गया।

स्वामी जी – अच्छा ! ऐसी स्थिति बनाई आपने कि नितान्त रोक दिया। हाँ जी !

साधक ५– ऐसी स्थिति हस्तगत हुई थी कि मन नितान्त रोक लिया है किन्तु बाहर की ध्वनि के कारण और मन पर नियन्त्रण न होने के कारण वृत्ति उठा लेता था। इस प्रकार संघर्ष की स्थिति बनी रही।

स्वामी जी – ऐसे प्रयोगों की सफलता लम्बे काल तक विवेक-वैराग्य, सत्संग, स्वाध्याय, ईश्वरोपासना आदि करते रहने से सिद्ध होती है।

साधक १– प्रयोग के प्रारंभिक काल में एक 'स्वः' शब्द आया पर मैं यह पकड़ नहीं पाया कि मै लेकर आया हूँ। दूसरी बार 'धीमहि' शब्द आया, वहाँ भी पकड़ नहीं सका कि मैंने उठाया है।

स्वामी जी – यह भी एक स्थिति है। स्वः शब्द को आप ले आए और पता भी नहीं चला, यह आश्चर्य की बात है। भाई ! लाने वाला वही और उसी को पता न चले। अच्छा ! लोक में भी ऐसी भूलें होती हैं। जैसे कि ये ऐसे करते रहते हैं ऐसे काम।

क्या किया, मान लो पाकशाला से रोटी लाकर रख दी और भूल गए। पूछने पर कहा कि अभी लाता हूँ। तो उसने वह कार्य कर भी दिया और उसी समय उसको भूल भी गया। लोक में जब वृद्धावस्था आती है, शरीर जीर्ण-शीर्ण हो जाता है तब आपने देखा होगा कि किसी को कुछ देकर पुनः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे ही पूछते हैं कि क्या मैंने आपको यह वस्तु दे दी है? यह लौकिक दृष्टान्त है। जीवात्मा स्वः शब्द को लाया है। उसने इच्छा की है, प्रयत्न किया है क्योंकि कारण के बिना कार्य नहीं होता। पर वह स्वयं नहीं जान पा रहा है, मैंने इच्छा की है, स्वः शब्द को लाकर खड़ा किया है।

साधक १– प्रयोग काल में जब थोड़े काल के पश्चात् मैं सचेत हो गया, उसके पश्चात् कोई वृत्ति नहीं उठाई।

स्वामी जी – उस समय आप सावधान हो गए। इच्छा-प्रयत्न को रोक लिया आपने। जब तक अन्दर से इच्छा प्रयत्न रुके रहेंगे तब तक आप वृत्ति नहीं उठाएँगे। यदि आपके इच्छा, प्रयत्न नहीं रुकते तो ऐसे ही झट विचार ले आएँगे और पश्चात् पता चलेगा।

साधक १– बच्चे के रोने की ध्वनि तो आई किन्तु वृत्ति का रूप नहीं बना, मुझे ऐसा लगा।

स्वामी जी – अच्छा! शन्नो देवी.. मन्त्र के पश्चात् किस-किस मन्त्र का प्रयोग आप करते हैं?

साधक ३ – ओम् वाक् वाक्।

स्वामी जी – अब प्रयोग करके यह देखो कि आप क्या ईश्वर से प्रार्थना कर पा रहे हैं या नहीं?

ओऽऽऽम् ओम् वाक् वाक्। ओऽऽऽम् प्राणः प्राणः। ओऽऽऽम् चक्षुः चक्षुः। ओऽऽऽम् श्रोत्रम् श्रोत्रम्। ओऽऽऽम् नाभिः। ओऽऽऽम् हृदयम्। ओऽऽऽम् कण्ठः। ओऽऽऽम् शिरः। ओऽऽऽम् बाहुभ्यां यशोबलम्। ओऽऽऽम् करतलकरपृष्ठे॥

पाठ, अर्थ का विचार, ईश्वर को सम्बोधन कुछ रह पाया?

साधक ४ – ऊँचे स्वर से बोलने में प्रायः कठिनाई रही।

स्वामी जी – अलग-अलग स्थितियाँ रहती हैं। किसी को मानसिक में, किसी को कम बोलने में सुविधा रहती है और कोई ऊँचे स्वर में बोलता रहे तो स्थिति बनी रहेगी, अन्यथा बिगड़ जाती है। तो अपना-अपना स्तर होता है। अब विराम॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२४ ज्ञानखण्ड

विनाश-प्रक्रिया : आषाढ़ कृ. २/२०६०-१५/७/०३

आपको यह बात समझ में आ गई कि शरीर नाशवान् है। कोई संशय नहीं रहा अथवा बात समझ में अभी नहीं आई। आपका अनुभव क्या काम करता है? जब हम कहते हैं कि यह बात समझ में आ गई तो उसका अर्थ है कि व्यक्ति को शरीर नाशवान् दिखाई देना चाहिए। यह समझने का मापदण्ड है। अन्य लौकिक विषयों में ऐसा आप देख सकते हैं। क्या समझ में आया?

साधक ३– शरीर नाशवान् है, यह बात समझ में आ गई तो शरीर नाशवान् दिखाई देना चाहिए। किन्तु अभी तो ऐसा दिखता नहीं है।

स्वामी जी – जिस-जिस को दिखता हो, ध्यान से देखकर हाथ खड़ा करो। अब जिसको नहीं दिखता हो, वह अपना हाथ खड़ा करे। ठीक है। अब आपको जानना चाहिए कि शरीर नाशवान् है, यह पूरे दिनभर दिखाई देना चाहिए। इस विषय में एक शंका प्रायः होती है कि एक ओर हम कहते हैं कि शरीर नाशवान् दिखना चाहिए और दूसरी ओर यह कहते हैं कि शरीर से ध्यान करना है, जप करना है, शरीर में रहते हुए विचार करना है। तो यदि शरीर नाशवान् हो गया तब इसमें रहकर विचार, ध्यान, जप कैसे कर सकते हैं? यदि विचार कर सकते हैं तो नाशवान् नहीं है। यह शंका उभरती है या नहीं?

साधक ३– यह शंका मुझे अनेक बार होती है।

स्वामी जी – तो इस शंका का समाधान भी हमको कर लेना चाहिए। उत्पन्न पदार्थों की एक कार्य अवस्था है, एक कारण अवस्था है। यह शरीर पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के परमाणुओं से बना है। अब जब एक व्यक्ति शरीर को देखता है तब वह एक बार तो शरीर की कारण-अवस्था को देखता है और दूसरी बार कार्य-अवस्था को देखता है। इसमें जानना चाहिए कि जब शरीर पृथ्वी आदि परमाणुओं के रूप में था, वह इसकी कारण अवस्था है और यह कार्य अवस्था है, जिसमें हम बैठकर कार्य कर रहे हैं। अब हम आगे आने वाली कारण अवस्था को देख रहे हैं, जो अनुमान-प्रमाण से सिद्ध है, कोई कल्पना नहीं है। समझ में नहीं आया तो बोलो।

आप एक मोटा दृष्टान्त ले लो। यह घास हरी-हरी दिखाई देती है। आप बीकानेर के क्षेत्र में वर्षा होने पर जाएँगे तब आपको सब ओर हरा-भरा दिखाई देगा। किन्तु जब ऊष्ण काल में जाएँगे तब कहीं हरा-भरा नहीं दिखाई देगा। हरा-भरा एक पत्ता नहीं देख सकेंगे। केवल टिब्बे के पीछे टिब्बा, टिब्बे के पीछे टिब्बा, टिब्बे के पीछे टिब्बा दिखाई देगा। दूर-दूर तक कोई मार्ग दिखना कठिन हो जाएगा। क्या समझ में आया?

साधक ३– ग्रीष्म काल में कोई घास का एक पत्ता भी नहीं होगा।

स्वामी जी – अब जब आप वर्षा काल में जहाँ हरे-भरे घास के टीले देख रहे हैं वहीं जब आप ऊष्ण काल में जाएँगे, जब भयंकर लू चलेगी तब वहाँ एक पत्ता भी दिखाई नहीं देगा। पीछे जो कुछ हरियाली दिख रही थी, सब समाप्त।

ध्यान दीजिए एक वह अवस्था है जिसमें चारों ओर हरे-भरे घास हैं, यह सृष्टि की अवस्था है। दूसरी जिसमें एक भी हरा पत्ता नहीं, यह विनाश की अवस्था है। तो जैसे उस हरे-भरे घास

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्रलयवत् अवस्था को आप देख रहे हैं, ऐसे ही आप आँख बन्द करके देखें और आपको सत्य दिखाई देता है कि हाँ ! ऐसा ही होगा। जो बालक उत्पन्न हुआ है, उसको देखते जाएँ। आगे बढ़ते जाएँ देखते जाएँ, वह बड़ा हो गया, युवा हो गया और वृद्ध हो गया तथा उसके पश्चात् उसकी मृत्यु हो गई दाह-संस्कार कर दिया गया। पूरी राख बन गई और वह भी उड़ गई।

आरम्भ से लेकर विवेचन करते-करते राख के उड़ने तक की अवस्था में आप पहुँच गए। वह जीवित बालक राख की अवस्था में पहुँच गया। कालान्तर में राख भी नहीं दिखाई दे रही। अब आप अपने ऊपर लागू करके देखें कि क्या हमारी भी राख नहीं मिलेगी, यह अवस्था सत्य है या झूठ ? यह आप देखो !

साधक ३— यह अवस्था भविष्य में कभी होगी।

स्वामी जी— कभी भी होगी, इतना ही नहीं, यह सत्य है या नहीं, यह देखो आप। वह बात हमारे ऊपर भी शत-प्रतिशत सिद्ध हो जाएगी। उस अवस्था को झूठा नहीं कह सकते हैं। मनमानी कोई कुछ भी सोचता रहे परन्तु मृत्यु की अवस्था तो सत्य ही है। कोई उसका खण्डन नहीं कर सकता।

जब यह व्यक्ति और आगे बढ़ता है। उस बालक के जन्म से पूर्व की अवस्था की ओर बढ़ता है। बालक जहाँ से आया उसके माता-पिता ने जो कुछ खाया-पिया, उससे भी पूर्व अवस्था में जाएँगे तो वही पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के रूप में दिखाई देने लगेगा।

जिस समय आप मनुष्य मात्र को आदि अवस्था में ले जाएँगे। मनुष्य मात्र का जो सबसे प्रथम जन्म, जहाँ से उसका जीवन आरम्भ हुआ, उसके पूर्व सबको पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के परमाणुओं के रूप में पाएँगे। इसी प्रकार से जब आप मनुष्य मात्र को आगे-आगे अन्तिम अवस्था में ले जाएँगे, जहाँ कोई नहीं बचेगा और अन्त में भी पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के परमाणु हो जाएँगे। इसका कोई खण्डन नहीं कर सकता। यह कोई मनमानी बात नहीं है कि मान लो। ऐसी कोई बात नहीं है, अपितु प्रमाण से सिद्ध है, इसलिए मान लो।

आप जब इस स्थिति में पहुँचेंगे कि राख के रूप में भी मेरा शरीर नहीं रहेगा तब आप एक विशेष अनुभूति करेंगे। तब आपको लगेगा कि मैं और मेरा भी नहीं रहेगा, ऐसी स्थिति आ रही है। यहाँ एक बात ध्यान देने की है कि जो अवस्था निश्चित रूप से आने वाली है, जो घटना निश्चित रूप से घटने वाली है, शत्-प्रतिशत निश्चित है, तब वह घटना लाख वर्ष, करोड़ या अरब वर्ष में भी क्यों न घटने वाली हो, वह ऐसी दिखाई देती है कि आज ही घटित हो रही है। जैसे आज ही आ गई हो, ऐसी दिखाई देगी। करो विचार, क्या समझ में आया ? नहीं आया तो बोलो। हाँ जी ! बोलो !

वह घटना आएगी, यहाँ तक मानकर चलिए। आप यदि यह शत्-प्रतिशत सिद्ध कर लेते हैं कि मेरे सहित सारे शरीर नाशवान् हैं, तब सारी सम्पत्ति भी समाप्त हो जाएगी। जिस समय सब नाशवान् हैं, इसकी सिद्धि होगी, उस समय यह भी निश्चित हो जाएगा 'मैं और मेरे' नाम की वस्तु नहीं रहेगी। क्या रहेगी ?

आप नहीं मानते। आपके मन में बात नहीं बैठती तो क्या ये जो बड़े-बड़े महापुरुष चले गए, साधु-संन्यासी चले गए, स्वामी दीक्षानन्द जी भी नहीं रहे, स्वामी ओमानन्द जी भी नहीं रहे और स्वामी विद्यानन्द सरस्वती जी भी नहीं रहे। ये लोग बड़े विद्वान्, त्यागी, तपस्वी थे। अच्छा! इनके पास धन-सम्पत्ति थी या नहीं ? थी। आज वहाँ पर उनके नाम का तिल का एक दाना भी नहीं है। यह उस व्यक्ति का दाना है, आज वह इसका स्वामी है; आपको ऐसा एक भी उदाहरण नहीं

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिलेगा। यह तो आपके सामने की बात है। नहीं समझ में आया? एक वस्तुतत्त्व भी, जो उसका अपना कहलाता था, दोनों में कोई सम्बन्ध नहीं रहा। यह तो मैंने एक दृष्टान्त मात्र दिया किन्तु पूरे प्राणीमात्र की बात कर रहा हूँ। एक भी तिल का दाना उसका स्व हो और वह उसका स्वामी हो; यह खोजने से भी नहीं मिलेगा।

साधक ८– मैं जब कभी वहाँ जाता था तब यह देखकर डर लगता था कि जो पूरे गुरुकुल का स्वामी था, आज उसके सामने कोई नहीं है, सब तितर-बितर हो रहा है।

स्वामी जी – उससे तो डर लगता है, अपने-आप की जो धन-सम्पत्ति है, उस ओर देखो, उससे भी डर लगता है या नहीं, यह बताओ! जैसे कि अभी आपके पास जो कुछ है, ये सब उसी स्थिति में जा रहे हैं, जहाँ स्वामी ओमानन्द जी की गई। यहाँ डर लगता है या नही? यह बात जँचती है या नहीं? यह देखो!

साधक ८– जब तक समाधान नहीं किया था, तब तक डर लगता था। अब इसका समाधान कर दिया, अब इसमें डर नहीं लगता।

स्वामी जी – आप ध्यान देकर देखो, आँखें बन्द करके देखो! और ऐसी स्थिति उत्पन्न करो कि संसार के बड़े-बड़े राजा-महाराजा, विद्वान्, संन्यासी आदि सब के सब चले गए, चले जाएँगे और मैं और मेरा शरीर भी एक दिन चला जाएगा; ऐसी स्थिति आ रही है।

यहाँ न मैं रहूँगा, न मेरा कुछ रहेगा; यह स्थिति आपको दिखने लगे, ऐसी स्थिति का सम्पादन करो। अपने पूरे जीवन को लेकर देखो कि वास्तव में इसमें ननुनच नहीं है, इसमें कोई कल्पना नहीं है। वास्तव में यह शत-प्रतिशत सत्य है कि वह स्थिति आएगी जब यह शरीर विनाश को प्राप्त होगा, इसके परमाणु भी मेरे हाथ नहीं लगेंगे। मैं और मेरे नाम की कोई वस्तु नहीं मिलेगी। इतना ही नहीं, जो स्थिति वह अपने लिए देख रहा है, वही पूरे संसार के लिए देखेगा।

पहले अपने जीवन के विषय में इसको करके देखो।

प्रयोग आरम्भ .....। समय लगभग ३ मिनट।

बीच में शंका उभरती है तो उसका समाधान करो।

एकाग्रचित्त करके मन को ठहराकर अन्तिम निर्णीत रूप रखो कि वास्तव में कल्पना नहीं, शत्-प्रतिशत सत्य ही है कि यह शरीर परमाणु के रूप में परिवर्तित हो जाएगा और वह काल बीस-तीस-पचास वर्ष का या जितने का भी हो, एक सेकेण्ड के तुल्य दिखाई देने लगेगा।

इसी को विषय बनाकर रखना, विषयान्तर में अपने मन को नहीं लगाना।

अब आप रुकेंगे और अपना अनुभव बताएँगे।

साधक ३– वैसी स्थिति बनी नहीं। कल्पना से ही परमाणु-परमाणु हो जाएँगे। कोई भय लगना आदि स्थिति नहीं आई।

स्वामी जी – और कोई, हाँ जी!

साधक २– ऐसी स्थिति जब आ जाएगी, न देखने वाला, न दिखाने वाला, न सुनने वाला, न सुनाने वाला अर्थात् कोई व्यवहार नहीं होगा, सब अभाव हो जाएगा; ऐसी स्थिति रही।

स्वामी जी – एक स्थिति है कि व्यक्ति स्वयं को इस रूप में देखना चाहता है, क्या शत-प्रतिशत् यह बात सत्य है कि मेरा यह शरीर छिन्न-भिन्न होकर परमाणुरूप हो जाएगा? कुछ भी पता नहीं चलेगा और वह स्थिति आ रही है। दस वर्ष में, बीस वर्ष आगे बढ़ाते चले जाइए लम्बे काल

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में आए, परन्तु आज भी आ सकती है। यह निश्चित हो गया, आएगी ही। क्या समझ में आया ?

साधक ३ – यह तो निश्चित हो गया आएगी, पर आज तो नहीं आ रही है ?

स्वामी जी – अब वह स्थिति आएगी और चाहे जब आएगी, उस आई हुई स्थिति के अन्दर अपने-आपको देखो। जैसे आ गई हो। एक सिद्धान्त, निश्चित रूपेण विनाश की यह स्थिति आएगी, यह शत-प्रतिशत् निर्णय होता है या नहीं; इसको देखो।

साधक २ – ऐसा लगता है, जितना पीछे हम देख चुके हैं, किसी को मरते या जलाते हुए, तो वह सारी की सारी स्मृतियाँ आ जाती हैं। परन्तु मरते समय व्यक्ति को क्या अनुभूति होती है, इसकी कल्पना नहीं हो पा रही है।

स्वामी जी – हाँ ! इसके लिए उपमान या अनुमान-प्रमाण का प्रयोग करना होगा, उससे यह बात समझ में आती है। जैसे कि एक व्यक्ति मर गया। मरने से पूर्व वह रुग्ण था। उस स्थिति में दस, पन्द्रह दिन पूर्व ऐसी बातें करता था कि देखो ! यह मेरा परिवार है। मेरे न रहने पर इनकी देखभाल करना, इनकी रक्षा करना। इस प्रकार अनेक मोहयुक्त बातें करता था। जैसे कि राजा भोज के पिता के विषय में आया कि इस बालक भोज का अच्छी तरह पालन-पोषण करना। ऐसे वह अपने भाई, भोज के चाचा मुंज, को बता रहा था। तो यही सब बातें होंगी, किसी को मोह, दुःख आदि कम-अधिक रहेगा। व्यक्ति विशेष में सोचने का ढंग, बोलने का ढंग आदि बहुत विचारधाराएँ बदल भी जाती हैं। बड़ा-बड़ा परिवर्तन भी होता है। तो व्यक्ति के मन में ऐसी-ऐसी स्थितियाँ रहती हैं, इनको अनुमान-प्रमाण से जाना जा सकता है।

हम कम से कम इस स्थिति का अनुभव कर सकते हैं कि वह जो नहीं रहा, वही स्थिति हमारी भी आएगी, हम मानें या न मानें। इसको हम पकड़ लेते हैं।

अन्य क्या-क्या अनुभूतियाँ होती हैं, यह सांसारिक स्तर पर निर्भर करता है। किसी को कुछ, किसी को कुछ अनुभव होगा। किसी का कितना, किसी का कितना होगा; यह निश्चित नहीं है। विचारधाराएँ भिन्न-भिन्न होती हैं। पर इतना निश्चित है कि वह जो अन्तिम स्थिति है, शरीर का जो विनाश है, वह होगा। जैसे उसके शरीर के परमाणु दिखाई नहीं देते, वैसे हमारे शरीर के भी परमाणु दिखाई नहीं देंगे। इसमें सन्देह नहीं रहा, ऐसी स्थिति आई।

साधक ३ – इसमें एक शंका और होती है - एक तो विनाश की ऐसी स्थिति बना रहे हैं और हम सोच भी रहे हैं कि सब परमाणु-परमाणु हो गए हैं। विचार भी चल रहे हैं, तो यहाँ एक बाधा-सी होती है कि शरीर भी मेरा विद्यमान है, मन भी विद्यमान है। सब कुछ विद्यमान है और मैं इसको परमाणु बना रहा हूँ; यह विरोधाभास दिखता है।

स्वामी जी – हाँ ! यदि आप अनुमान-प्रमाण का प्रयोग करेंगे तो यह बात समझ में आएगी, क्योंकि अनुमान-प्रमाण तीनों कालों में प्रमेय की सिद्धि करता है। भूतकाल में हम थे, यह अनुमान-प्रमाण सिद्ध कर देगा। जीवात्मा कहीं शरीरधारी था, इसलिए आज है, आगे रहेगा, आगे नहीं भी रहेगा। अब आपने जानना है क्या इस अनुमान-प्रमाण से सिद्ध बात को हम सत्य मानें या असत्य; इसका निर्णय करना है। यह आपको करना पड़ेगा, क्या समझ में आया ?

साधक ३ – अनुमान से इसको मानना पड़ेगा कि मेरा शरीर एक दिन नहीं रहेगा और यह सत्य है।

स्वामी जी – वह जो बात बताई गई कि जहाँ-जहाँ 'मैं नहीं मानता हूँ' ऐसी स्थिति हो तब वहाँ पर प्रमाण को लाकर खड़ा कर देते हैं। वह अपने से कहता है - क्या प्रमाण से सिद्ध बात

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को तू नहीं मानता। यदि इस बात को नहीं मान रहा है तो इसमें कारण बताओ? क्या समझ में आया? अर्थात् जब आप प्रमाण-सिद्ध बात को नहीं मान रहे हैं, तब स्वयं से पूछेंगे कि मैं जो प्रमाण से सिद्ध बात को नहीं मान रहा हूँ, इसमें मेरे पास क्या उत्तर है। इसको अब ढूंढना आरम्भ करो, पुनः आपको यह पता चलेगा।

प्रमाण व्यक्ति को मनाने में विवश कर देता है, यदि हठता, दुराग्रह, लोभ-लालच, राग-द्वेष, भोग-विलास आदि से बाधित न हो तब। यदि उसको वापस संसार में ही जाना हो तो इस विषय को बिना निर्णय किए छोड़कर भाग जाएगा। क्या समझ में आया? जब वह यह कहेगा कि तीन काल में सत्य क्या है, मैं इसको जानना चाहता हूँ। इसके बिना मैं रुक नहीं सकता तब वह अपने-आप से पूछेगा कि यह बताओ जब अनुमान-प्रमाण से सैकड़ों बातें सिद्ध हैं, उनको तू क्यों नहीं मानता?

साधक २– इस काल में बीच में कोई ऐसा कार्य आ जाता है कि आवश्यक लगता है तो भी विचारना छोड़ देते हैं।

स्वामी जी – हाँ! ऐसा भी कर लेते हैं। बीच में कोई आवश्यक कार्य यथा पढ़ाई-लिखाई का आ गया तो उसको बहाना मिल जाता है और विचारना छोड़ कर उसमें लग जाएगा।

साधक २– प्रमाण सिद्ध को क्यों नहीं मानते हो, इसका तुम्हारे पास क्या उत्तर है; इसी काल में लगता है कि देखो! वह काम करना आवश्यक है। तो इसका कैसे निदान करेंगे?

स्वामी जी – इसको ऐसे मोड़ देंगे। 'देखो! काम करना है,' यह बात समझ में आई, मान लिया। वस्तुतः यह कहने के पीछे कारण यही तो है कि वह अभी निर्णय करने से बचना चाहता है। तो अब यहाँ से चलेगा कि उसके पीछे क्या होगा? जैसे कि आपकी इच्छा हुई, निर्णय करना चाह रहे थे, तो उसी समय लगा कि चलो, शौच हो आएँ, पुनः स्वाध्याय करेंगे, ध्यान में बैठेंगे। पुनः कहेगा - इनको करके बच जाओगे? इस प्रकार जहाँ भी जाएगा, वहाँ उसके पीछे लग जाएगा। वह छोड़ता ही नहीं उसको। यह सत्यग्राही व्यक्ति का ढंग है। वह छोड़ेगा ही नहीं।

जहाँ कहीं भी जाएगा, आपको मैंने सुनाया था कि जो सृष्टि के पत्ते-पत्ते को छानता है, उसको पीछे हटने की इच्छा ही नहीं होती है। वह यह देखता है कि कौन-सी जगह तू जाना चाहता है, जहाँ बच जाएगा? बता कौन-सी जगह है, जहाँ जाने पर तेरा शरीर सदा ज्यों का त्यों रहेगा? इस प्रकार वह उसके पीछे लग लिया। चलता गया, चलता गया और उसने पूरे संसार की दौड़ लगा ली पर ऐसा स्थान नहीं देख पाया, जहाँ शरीर नष्ट न हो। तब कहा - अब बता क्या करना है? यह तो मानना पड़ेगा।

साधक ३– वर्तमान में यह बात कि आज ऐसा हो जाएगा; अभी बुद्धि में नहीं बैठी है। ऐसा ही लगता है एक दिन हो जाएगा या कल हो जाएगा। (अभी तो नहीं होगा।)

स्वामी जी – वह पृथक् बात है किसी का आज निर्णय होगा, किसी का मासों में, किसी का वर्षों में, किसी का इस जीवन में न भी हो, ऐसे भी व्यक्ति आपमें से हो सकते हैं।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का दो मृत्यु देखते ही निर्णय हो गया। यह व्यक्ति के परिश्रम, संस्कार और उसकी सत्य-असत्य को जानने की रुचि पर निर्भर करता है। एक बात आपने सुनी थी कि यह सिद्धान्त जिसकी बुद्धि में शत-प्रतिशत बैठ गया कि "तीन काल में जो सत्य है, मैं उसको जानना चाहता हूँ, उसको मानना चाहता हूँ। तीन काल में जो असत्य है, उसको छोड़ना चाहता हूँ, इसके अतिरिक्त मैं कुछ नहीं करना चाहता।" इस सिद्धान्त को उद्देश्य बनाकर चलने वाला व्यक्ति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी भी विषय को, जहाँ तक जीवात्मा की शक्ति है, छोड़ ही नहीं सकता। उतनी दौड़ लगाएगा, जितनी उसके अन्दर सामर्थ्य है। जहाँ तक वह जा सकता है। जितना सत्य-असत्य का निर्णय कर सकता है, उतना करेगा। वह वहीं पर जाकर रुकता है। जब कर नहीं सकता, तब कोई बात नहीं, तब अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् होने से जीवात्मा को रुकना पड़ता है।

आप वहाँ क्यों नहीं जाना चाह रहे हैं क्योंकि अभी आपके मन में संशय है। अपने भीतर टटोल कर देख लो, यही मिलेगा। अभी आपने सुना था कि व्यक्ति इसका निर्णय करते समय यह काम करना है, वह काम करना है; इस प्रकार कहानी बनाकर उस स्थिति को छोड़कर कार्यान्तर में लग जाता है। तो इसका निदान यह है कि अब वह व्यक्ति कहता है - अच्छा ! व्यायाम भी करना है, स्वाध्याय भी करना है, तो व्यायाम करने के पश्चात् क्या होगा ? पुनः हम खाएँगे-पिएँगे, पुनः क्या होगा ? पुनः आगे क्या होगा, यह कब तक होता रहेगा ? इस प्रकार वह एक-एक विषय के साथ आगे चलता जाता है।

पुनः बता, एक दिन ऐसी स्थिति आएगी या नहीं, जब व्यायाम बन्द हो जाएगा, स्वाध्याय भी बन्द हो जाएगा, शौच आदि भी बन्द हो जाएँगे। हाँ ! एक दिन आएगा जब यह सब बन्द हो जाएगा। पुनः बचने की बात क्यों करते हो ?

यह विषय जो चल रहा है, शरीर अनित्य है और पूरा संसार अनित्य है; यह विद्या-विवेक का एक बहुत बड़ा भाग है। इसको न समझना, उलटा समझना अविवेक की स्थिति है, अज्ञान की स्थिति है और इसको जैसा का तैसा समझना विवेक की स्थिति है, ज्ञान की स्थिति है। जिस समय आपकी यह स्थिति आएगी, आप देखेंगे कि भोक्ता और भोग्य दोनों विदा हो जाएँगे। अब क्या समझ में आया ? नहीं आया ? बोलो !

साधक २ – एक समय यह स्थिति आएगी और सब के सब समाप्त हो जाएँगे।

स्वामी जी – सब के सब निश्चित समाप्त हो जाएँगे। भोक्ता और भोग्य दोनों ही समाप्त होंगे। शरीर या जीवात्मा जो आज भोक्ता रूप में उपस्थित हैं और जो गाजर-मूली, केला आदि भोग्य रूप में उपस्थित हैं, दोनों ही नहीं रहेंगे। ऐसा नहीं कि केवल भोक्ता शरीरधारी चला जाए, न रहे और गाजर-मूली आदि सदा के लिए बनी रहें। ऐसा नहीं होता। इसके आगे पृथ्वी आदि सबको समाप्त करेगा, किसी को नहीं छोड़ेगा। इसके उपरान्त जो भोक्ता और भोग्य का सम्बन्ध है, मैं भोक्ता हूँ यह भोग्य है; ये दोनों दिखाई नहीं देंगे। जब दोनों नहीं दिखाई देंगे तब ये जितने भी राग-द्वेष, सुख-दुःख, धर्म-अधर्म आदि दिख रहे हैं, जिसको षडर चक्र कहते हैं, वह टूट जाएगा।

अब ऐसी स्थिति में जाने वाला व्यक्ति जिसको डर नहीं लग रहा, डर से पार हो गया है। आपको तो डर लगता होगा ! जो डर से पार हो गया, अब वह ऐसी स्थिति को देखता है कि जो (नष्ट) होना था वह हो गया, अब क्या शेष रह गया ? पुनः डर किस बात का ? क्या समझ में आया ? सृष्टि की उत्पत्ति से लेकर प्रलय तक, विनाश के, डर के, भय के जितने स्थान थे, सबको अनित्य समझ लेने पर सारे विदा हो जाते हैं। अब आप अच्छी तरह सोचो।

साधक ३ – भय का कोई कारण नहीं रहा। सबको प्रलय में पहुँचा दिया।

स्वामी जी – अब वह व्यक्ति निर्भय होकर विचरता है। जिस समय उसने मृत्यु की स्थिति को अनुभव में लाने के लिए मनुष्य मात्र को सामने रखा, स्वयं को सामने रखा तब यह निर्णय आया कि न 'मैं' हूँ न कोई 'मेरा' है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब यहाँ एक छोटी-सी शंका उपस्थिति होती है कि मैं मर जाऊँगा, ठीक है ! और मेरा कुछ नहीं बचेगा, यह भी ठीक है। दोनों नहीं रहेंगे किन्तु मेरे मरने पर क्या होगा ? कुछ लोग मेरे लिए कहेंगे बड़ा दुष्ट व्यक्ति था और कुछ लोग कहेंगे बड़ा अच्छा व्यक्ति था। ऐसा होगा या नहीं होगा ?

साधक ३– कुछ लोग कहेंगे बहुत बुरा व्यक्ति था, कुछ कहेंगे अच्छा व्यक्ति था।

स्वामी जी – और कुछ कहेंगे हमें क्या लेना-देना उससे। उसको कहते हैं उपेक्षा। वह न बुरा कहेगा, न अच्छा कहेगा। क्या लेना-देना, जैसा था वैसा था।

साधक ३– पर वे भी नहीं रहेंगे।

स्वामी जी – वह अंश इसके आगे आएगा। जब यह बात हमारे सामने आती है कि बुरा कहने वाला भी नहीं रहेगा, अच्छा कहने वाला भी नहीं रहेगा और उपेक्षा करने वाला भी नहीं रहेगा; यह बात उस समय सिद्ध होगी जब सन्तति का विनाश होना मान लेंगे, नहीं तो नहीं होगी। दोहराओ, क्या समझ में आया ?

साधक ३– जिस समय सन्तति का विनाश कर देंगे।

स्वामी जी – तब तो हम यह बात मान लेंगे, अन्यथा हमारे मन में यह बात बनी रहेगी कि अन्य लोग जो बचे रहेंगे वे हमारे विषय में ऐसा सोचते रहेंगे कि वह अच्छा था आदि। जैसा कि प्रायः किसी मरे हुए व्यक्ति के बारे में लोग विचार करते रहते हैं। ऐसा होता रहेगा, ऐसी उसकी बुद्धि बनेगी; तब वह कहता है – नहीं ! बुरा कहने वाला, अच्छा कहने वाला, उपेक्षा करने वाला, ये भी नहीं रहेंगे। नहीं रहेंगे। पुनः कहने लगा – अच्छा! ये सब तो मर जाएँगे, पुनः पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा आदि तो रहेंगे ? तो यह सिद्ध किया कि वे भी नहीं रहेंगे।

अब इसकी आकाशवत् अवस्था उत्पन्न होगी और उस स्थिति में जाकर मनुष्य शरीर से लेकर पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा आदि पर्यन्त जो विनाश को प्राप्त होंगे, उनका भी सर्वथा विनाश हो जाएगा या कुछ बचेंगे ? यदि उसने वैदिक दर्शन शास्त्र, वैदिक परम्परा में अच्छी प्रकार से अध्ययन किया है तो वह इन मान्यताओं को लेते हुए यह सिद्ध करेगा कि जिन परमाणुओं से पृथ्वी आदि बनते हैं, उनका विनाश और उत्पत्ति भी नहीं होती।

इतना पढ़ने-पढ़ाने और सुनने-सुनाने पर भी व्यक्ति को, अन्तिम परमाणुओं का विनाश नहीं होता, इसकी सिद्धि की अपेक्षा रह जाती है। उसे प्रश्न उठाना पड़ेगा कि परमाणु की न उत्पत्ति होती है, न विनाश होता है; इसको माना जाए या नहीं ? पुनः उसे समाधान करना पड़ेगा। यदि इस प्रक्रिया को उसने प्रमाणों से बहुत बार सिद्ध किया हुआ है तब तो कम परिश्रम करना पड़ेगा, वह शीघ्र ही इस परिणाम पर पहुँच जाएगा कि जिनसे शरीर बना है, उन परमाणुओं का विनाशकाल में अभाव नहीं हो सकता तथा शरीर आदि के उत्पत्तिकाल से पूर्व उनका अभाव नहीं था। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२५ आत्मनिरीक्षण

रसना-अविरति, स्वानुभव : आषाढ़ कृ. २/२०६०-१५/७/०३

हाँ जी ! अब आप अपना आत्मनिरीक्षण सुनाएँगे !

साधक ८– लगभग दोपहर तक मनोस्थिति ठीक नहीं थी।

स्वामी जी – क्या कारण रहा ?

साधक ८– शारीरिक स्थिति कुछ अच्छी नहीं थी।

स्वामी जी – अच्छा !

साधक ८– प्रातः और सायंकाल की संध्या अच्छी प्रकार से हुई। किन्तु स्वाध्याय ठीक नहीं हुआ।

स्वामी जी – उसमें कोई प्रत्यक्ष कारण प्रतीत हो रहा था या परोक्ष ?

साधक ८– रुचि नहीं बन रही थी।

स्वामी जी – एक होता है शारीरिक, एक होता है मानसिक।

साधक ८– शारीरिक और मानसिक दोनों प्रतिकूलता रही।

स्वामी जी – मानसिक प्रतिकूलता को हटाने में तो यह उपाय है कि व्यक्ति उसके लाभों को देखता है। जैसे कि ऋषियों ने स्वाध्याय को एक बहुत बड़ा कार्य माना है। जब वह व्यक्ति स्वाध्याय के विवरण को पढ़ता है, स्वाध्याय करते रहने से ही मेरी रक्षा होगी; ऐसा लाभ देखता है तो परिणामस्वरूप मन में रुचि उत्पन्न हो जाती है। जब लाभ और हानि उसके समक्ष नहीं रहते तो उसकी अरुचि होती है। स्वाध्याय करने से लाभ, न करने की हानियाँ सामने रहीं तो व्यक्ति इस स्थिति में प्रयास करता है और यदि ऐसा न हो तो प्रयास बहुत कम करेगा अथवा नहीं करेगा।

साधक ८– स्वामी जी ! स्वाध्याय तो मैंने किया पर उसमें रुचि नहीं हुई।

स्वामी जी – तो और क्या कारण प्रतीत होता है ?

साधक ८– कारण तो मुख्य रूप से शारीरिक ही लगता है।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। देखना यह है कि जब शिथिलता बहुत अधिक होती है तब तो विवशता है हमारी, वहाँ कोई भी कार्य ठीक से नहीं कर पाते हैं। परन्तु जब सामान्य शिथिलता हो तो हम स्वाध्याय कर सकते हैं, उसमें उतनी बाधा नहीं रहती है। यह हमारा कर्त्तव्य है, शरीर इतना बाधित नहीं कर रहा है, ऐसा मानकर स्वाध्याय कर ही लेना चाहिए। मान लो अतिपीड़ा हो, ज्वर जैसी स्थिति हो, तब उसको छोड़ा जा सकता है।

साधक ८– विचार-शक्ति साथ नहीं दे रही, ऐसा अनुभव हो रहा था।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। कभी शारीरिक प्रभाव रहता है, कभी मानसिक। ये स्थितियाँ तो चलेंगी। किसी को मानसिक, किसी को शारीरिक, किसी को दोनों, किसी को कम, किसी को अधिक। इनके निवारण हेतु प्रयत्न करते रहना पड़ता है। उस समय ऐसा नहीं मानना चाहिये कि इन शारीरिक कष्टों के कारण कार्य नहीं हो रहा है, तो इनको छोड़ ही देते हैं। इससे क्या योगाभ्यास होगा ? वैसे भी कोई उपलब्धि तो दिखती नहीं, व्यक्ति को कभी ऐसा नहीं सोचना चाहिए।

अच्छा ! आपका भोजन पर नियन्त्रण रहता है या नहीं ? और भूख न लगने पर न खाना, भोजन

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खाते समय भूख बचाकर खाना अर्थात् जितनी भूख है उससे कुछ कम भोजन करना तथा भूख न होने पर भोजन न करना आदि प्रयोग आप करते हैं, नहीं करते या इसके विषय में कुछ सोचते ही नहीं हैं। कैसा रहता है?

साधक ३– मुझे तो रुचि ही नहीं होती है भोजन में। पुनः अधिक खाने का तो प्रसंग ही नहीं बनता।

स्वामी जी – जैसे कि जब स्वादिष्ट भोजन सामने हो और पूरी भूख न लग रही हो तब भी व्यक्ति स्वादिष्ट होने से खा लेता है। ये स्थितियाँ बनी रहती हैं। ऐसा इसलिए होता है कि जब स्वादिष्ट भोजन खाते हैं तब हमको सुख मिलता है। उस अवस्था में व्यक्ति भोजन खाते-खाते इतना नियन्त्रण नहीं कर पाता कि उसको भूख रह गई हो और भोजन उपलब्ध होते हुए भी वह रुक जाए। अन्यथा जब भूख दिखाई नहीं देती, तब रुकता है या पेट भर गया, ऐसा अनुभव करता है अथवा ऐसा कुछ डर लगने लगता है कि यदि अधिक खाऊँगा तो रोगी हो जाऊँगा; ऐसी-ऐसी स्थिति में वह रुकता है। आप ऐसा अनुभव कर सकते हैं।

खाते-खाते भोजन स्वादिष्ट लग रहा हो तो भी कुछ भूख रखकर खाने का जो नियम है, उसका वह पालन नहीं कर सकता किन्तु जब तक भूख नितान्त मिटी न दिख जाए तब तक वह नहीं रुकता। कभी ऐसा होता है भूख नितान्त न होने पर भी स्वाद आएगा, इसलिए स्वादिष्ट भोजन देखकर खा लेता है; इसको आप स्पष्ट देख सकते हैं।

साधक ४– स्वामी जी! यहाँ एक बार में ही भोजन लेना होता है, दुबारा नहीं लेते। इसमें जितनी भूख है लगभग अनुमान से उतना ही ले लेते हैं, वहाँ अतिरिक्त लेने की सम्भावना नहीं होती है।

स्वामी जी – यहाँ ऐसा होता हैं पहले ही मात्रा से अधिक भोजन ले लिया जाता है। यहाँ एक मनोविज्ञान काम करता है, आरम्भ में बहुत अधिक भोजन भी थोड़ा दिखाई देता है। उसको आप देख सकते हैं जैसे कि जब आधा-पौना भाग खा लेते हैं तब बचा हुआ भोजन पहाड़ जैसा बन जाता है, क्योंकि आरम्भ में तो भूख अच्छी होती है, तब ऐसा लगता है इतने से क्या भूख मिटेगी, और डाल लो, इस प्रकार अधिक ले लेता है। जब खाते-खाते पेट भर जाता है और शेष बचा रहता है, तब उसको देखकर घबराने लगता है पर सोचता है कि छोड़ता हूँ तो लोग बुरा मानेंगे, क्या करें! चलो, खा जाते हैं; इस प्रकार वह अधिक खा जाता है अर्थात् आरम्भ में भूल हो सकती है। उस समय भी व्यक्ति मात्रा से अधिक ले लेता है।

जिसने बहुत प्रयोग किए हैं और सन्तुलन बना लिया है वह व्यक्ति आरम्भ में बड़ी सावधानी से उचित मात्रा में भोजन ग्रहण कर लेता है। अतः सब एक जैसे नहीं होते हैं। पर कोई-कोई ऐसा होता है जो विशेष नियन्त्रण रखने वाला, बार-बार प्रयोग कर परिणामों को देखने वाला भोजन को लेते समय बड़े ध्यान से लेता है, प्रायः सब नहीं ले सकते।

कहने का अभिप्राय है कि हम जो खाते-पीते हैं घी, दूध आदि, इनसे अथवा अन्य इन्द्रियों के विषयों से जो सुख मिलता है, उस सुख को प्राप्त करने का इच्छुक व्यक्ति विवेक-वैराग्य को प्राप्त नहीं कर पाता। दोहरा लो, क्या समझ में आया?

साधक ४– इन्द्रियों के सुख को लेने वाला व्यक्ति विवेक-वैराग्य की प्राप्ति नहीं कर पाता।

स्वामी जी – नहीं कर पाता। एक साधारण-सी स्थिति होती है, उसमें वैराग्य का थोड़ा अंश होता है, उसका निषेध नहीं है। हम ऊँचे स्तर पर होने वाले वैराग्य की बात कर रहे हैं। यदि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसको प्राप्त करना चाहते हैं तो इन्द्रियों का सुख नहीं ले सकते। यदि इन्द्रियों का सुख लेते हैं तो ऊँचा विवेक-वैराग्य नहीं होगा।

आपको स्मरण हो, नहीं तो स्मरण कर लेना चाहिए। जो योगदर्शनकार ने ईश्वर-उपासना के विरोधी तत्त्व लिखे हैं, चित्त को विक्षिप्त करने वाले कारणों का वर्णन किया है, उनमें एक है अविरति। इन्द्रियों के भोगों में वैराग्य का अभाव अर्थात् राग रहना, वैराग्य का न रहना। राग का हो जाना है अविरति। तो यह अविरति ईश्वर की उपासना को उखाड़कर फेंक देती है। क्या समझ में आया ?

साधक ५ – अविरति ईश्वर की उपासना को उखाड़कर फेंक देती है।

स्वामी जी – आपको क्या अनुभव होता है बताओ। क्यों जी! अपने कानों से यह सुनने की इच्छा होती होगी कि आप बहुत अच्छे विद्वान् हैं। बहुत अच्छा बोलते हैं, बहुत अच्छा योग सिखाते हैं, यह सुनने की इच्छा होती है या नहीं ?

साधक ३ – यह इच्छा अभी वर्तमान में न्यून होती जा रही है।

स्वामी जी – होती तो है ?

साधक ३ – होती तो है।

स्वामी जी – इसी का नाम अविरति है। थोड़े से निरीक्षण-परीक्षण या पुरुषार्थ से व्यक्ति इन दोषों को जान नहीं पाता। इनको रोक नहीं पाता, इनको हटा नहीं पाता। सामान्य रूप से व्यक्ति कुछ पढ़-लिख लेता है, कुछ सोच लेता है, ध्यान कर लेता है, संस्थाओं में परोपकार के कुछ कार्य भी कर लेता है परन्तु इतने मात्र से बिना सूक्ष्म निरीक्षण-परीक्षण किए ये दोष समझ में नहीं आते। प्रायः व्यक्ति की ऐसी प्रवृत्तियाँ रहती हैं कि दूसरे के दोष देखने में निपुण बना रहता है जबकि उसे अपने दोष दिखाई नहीं देते। अपने दोष देखने में निपुण सर्वथा नहीं होता अपितु वह यहाँ तक आ जाता है कि अपने दोषों को दबाने और गुणों को प्रकट करने में लगा रहता है। यह प्रवृत्ति आप स्वयं में भी देख सकते हैं। आप अपने-आप को देखें तो ये दोष मिलेंगे।

उन दोषों को पकड़ो और उनको पुनः दूर करो। कालान्तर में यह अभ्यास हो जाएगा कि अपने ही दोषों को देखो, पकड़ो, रोको, निर्बल बनाओ और उनको हटाओ। दूसरों के दोषों को न देखो, न दूसरों में दोष निकालने की बात सोचो। इसके विपरीत दूसरों के गुणों के प्रकाशन में बल दो किन्तु अपने गुणों के प्रकाशन करने में बल मत दो अर्थात् मेरे अन्दर ये-ये गुण हैं, यह दिखाने की प्रवृत्ति बाधक है। यह शैली, पद्धति, रीति ऋषियों की है जो व्यक्ति इसको अपनाकर चलता है, वह अपने जीवन को सफल बना सकता है।

पढ़ाना-लिखाना, उपदेश देना, ग्रन्थ लिखना, संस्था चलाना आदि अच्छे कार्य हैं। परन्तु इतने मात्र से कोई शुद्धात्मा बन जाता हो या योग में गति कर लेता हो, यम-नियमों का पालन कर लेता हो, आत्मनिरीक्षण कर लेता हो, मन में आने वाली बुराईयों को पकड़कर उनको दूर कर लेता हो, निरभिमान की स्थिति को उत्पन्न कर लेता हो, ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति में पहुँच जाता हो, ऐसा कुछ नहीं होता। यदि आपने देखना हो तो साधारण व्यक्ति से लेकर ऊपर तक पहुँच जाओ। ये भयंकर दोष नीचे से ऊपर तक ज्यों के त्यों मिलेंगे। किसी समाज या संगठन को ले लो, सर्वत्र स्थिति इतनी बिगाड़ दी गई है कि प्रायः व्यक्ति वहाँ आते ही उसी धारा में बह जाता है, आकर उन्हीं जैसा बन जाता है।

यदि इनसे टक्कर लेनी हो तो अपना इतना उत्कर्ष करो, इतनी बुद्धि बढ़ाओ, इतना चरित्र ऊँचा

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठाओ, इतने वैराग्यवान् बन जाओ, इतने ईश्वर-उपासक बन जाओ, इतनी ईश्वर-प्रणिधान की सिद्धि कर लो कि कोई झुका न सके और ऋषियों ने जो लिखा है वही जानना-मानना और करना है, चाहे कोई हमको अच्छा या बुरा कुछ भी कहे; ऐसे बन जाओ। या पुनः वैसे ही बनना पड़ेगा जैसे आजकल के लोग बनते चले जा रहे हैं।

मैंने इतने काल में जो प्रयोग किए। गुरुकुल में जाने से पहले मेरे प्रयोग आरम्भ हो गए थे। गुरुकुल में क्या-क्या अवस्थाएँ होती हैं, क्या-क्या गतिविधियाँ होती हैं, वहाँ क्या-क्या कठिनाईयाँ होती हैं; हमारे सामने वे सारी थीं।

एक तो व्यक्तिगत कठिनाई जैसे कि भोजन की कोई व्यवस्था नहीं, विद्यालय में तीन घन्टियाँ चालीस-चालीस मिनट की होती थीं। विद्यार्थियों के साथ पृथक् से काम करना पड़ता था। कई बार पूरे दिनभर, कभी आधा दिन, कभी पौना दिन कार्य चलता रहता था और वह दैनिक सायंकाल का एक घन्टा निश्चित ही था। इस तरह घन्टे वाले के साथ, आधे दिन वाले के साथ, दिनभर वाले के साथ और अपनी घन्टी में पृथक् से काम करना होता था और भोजन में घी-दूध का कोई नाम नहीं था; यह बात थी।

ये सब बातें मैं बहुत कम बताता हूँ क्योंकि यह सब बताना उचित नहीं, परन्तु कई बार इसलिए बताना पड़ जाता है कि आपको कठिनाईयाँ समझ में आएँ। मेरा उद्देश्य संस्था का दोष दिखाना नहीं है। आपको समझाना उद्देश्य है। आप इतने उत्तम स्तर पर रहते हैं, इतने अच्छे साधन हैं, पढ़ाने वाले हैं, पुनरपि जितनी उन्नति होनी चाहिए, उतनी नहीं कर रहे हैं; इसलिए बताते हैं। दूसरी बात - अपने साथ तुलना करो। मेरे साथ अपना अध्ययन करो। उस काल में विद्यार्थी होते हुए भी ऊपर के अधिकारी, आचार्य-अध्यापक पद वाले सबको ले लो। उनमें से किसी की भी बात यदि सिद्धान्त के विरुद्ध होती थी तो मैं नहीं मानता था। किन्तु उग्रता से प्रतिषेध नहीं करता था, तीव्रता से खण्डन नहीं करता था अपितु कोमलता से बोलता था कि आचार्य जी ! अध्यापक जी ! यह बात तो सिद्धान्त के विरुद्ध है। उसके आगे वे चाहे नाराज हों, राजी हों, उसकी चिन्ता नहीं करता था। ऐसे बहुत से प्रयोग हुए हैं। गुरुकुल के विद्यार्थी तो ऐसा कर ही नहीं पाते थे। वे तो दिन को रात और रात को दिन कहने के लिए तैयार रहते थे। ऐसी स्थितियाँ थीं। एक और भाग सुनाता हूँ - हमको कोई बुरा बताता है, कोई मूर्ख कहता है, कोई दोषारोपण भी कर देता है। यह सब तो होता ही है किन्तु इनको सहन कर लेना, द्वेष न करना, उनके साथ झगड़ा न करना और प्रेम से सुन लेना; ये प्रयोग हमारे लिए सामान्य थे। आप इनको करके देखें, कितना कर पाते हैं। प्रायः व्यक्ति इनको सहन नहीं कर पाता, कोई मिथ्या आरोप लगाए तो आग बबूला हो जाता है। बाहर से रुक भी गया तो अन्दर से दहकता रहता है।

अब एक प्रयोग सुनाता हूँ, यह दूसरे ढंग का है। योगाभ्यास करने वाले व्यक्ति की स्थिति और उसका मानसिक स्तर कैसा रहता है, वैराग्य की स्थिति में कैसा रहता है; इससे सम्बन्धित है। जिस समय हम पंक्ति में बैठकर रोटी खाते थे। वहाँ एक तरफ खाने वालों में कोई एक मास में दो किलो, ढाई किलो और कोई तीन-तीन किलो घी खाने वाले भी होते थे। बड़े-बड़े ब्रह्मचारी, जिनके घर में सुविधाएँ थीं, वे थे। जितनी इच्छा हो उतना दूध पीते थे और दूसरी तरफ मैं जिसको न दूध, न घी देखने को मिलता था, पुनरपि अन्यों को खाते देखकर प्रसन्नता का अनुभव करता था। सोच सकते हैं, यह कैसी स्थिति थी? क्या समझ में आया? द्वेष की बात तो दूर रही, ऐसा लगता था - बहुत अच्छा है। उनको खाने को मिल रहा है, यह बहुत अच्छी बात है। प्रसन्न रहा, उससे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वेष की बात तो दूर, कभी यह मिले, वह मिले आदि कुछ भी नहीं आया मन में। क्या समझ में आया? आप थोड़े दिन तक इस स्थिति में खाकर तो देखो! कैसा लगेगा? रात को नींद आनी कठिन हो जाएगी।

साधक ६ – दिनभर काम करना?

स्वामी जी – और बड़े-बड़े काम करना। एक घण्टे का काम ऐसा था जिसमें मनों लक्कड़ फाड़ने होते थे। इतने मोटे-मोटे घन होते थे। छेनियाँ होती थीं छोटी पृथक्, बड़ी पृथक्। इतने भयंकर भारी-भारी घन उठा-उठाकर मारते थे। प्रतिदिन पचास-साठ व्यक्तियों का भोजन बनता था लक्कड़ों से और दोनों समय उनके लिए फाड़-फाड़कर रखते थे। इस कार्य में मेरे साथ और कोई एक ब्रह्मचारी होता था। यह तो एक घण्टे वाला कार्य था। दिनभर पृथक्। ब्रह्मचारियों के साथ वाले पृथक् थे।

अब समय-पालन की बात सुनो! मुझे बारह बजते ही काम के लिए जाना पड़ता था और मैं ऐसा देखता था कब घड़ी बारह बजा देगी? घण्टी लगते ही चल पड़ता था। घण्टी से पूर्व मान लो मैं 'भवति' शब्द लिख रहा होता और 'भ' लिख दिया तथा 'व' और 'ति' लिखना रह गया तो भी वहीं छोड़कर जाता था। यदि बारह बज गए तो अब नहीं लिखना है। क्या समझ में आया?

आपको जो मैं सिखाता हूँ, उसके पीछे अनुभव होता है। आप सोचते होंगे स्वामी जी कुछ जानते तो हैं नहीं। इनको व्यवहार तो आता नहीं। यों ही बोलते रहते हैं। जब आप मुझको कहते हैं कि वह यह कर रहा है, वह वह कर रहा है तो मैं कहता हूँ कि सहन करो। ऐसे में आप कहते हैं – नही-नहीं! ऐसा कैसे हो सकता है? आपको पता नहीं है।

जब मैं खेत में अकेला काम करता था, वहाँ की बात बताऊँ। जहाँ कोई काम कर रहा हो तो उसके पीछे कोई निरीक्षक तो होता ही है और वह इतना तो ध्यान रखता है कि कार्यकर्त्ता बैठा तो नहीं है, लेटा तो नहीं है। किन्तु मेरे सामने कभी किसी की ओर से यह बात नहीं आई, किसी ने कुछ नहीं कहा कि पीछे मैं काम नहीं करता या बैठा रहता हूँ। उस समय काम करने वाले को भी लगता है कि कोई देख नहीं रहा है तो चलो! थोड़ा विश्राम कर लें। नहीं आया समझ में? परन्तु मैं ऐसा नहीं करता था। यह नहीं सोचता था कि कोई मुझे देख रहा है या नहीं? मैं परमात्मा को देखता था और अपना काम मानकर पूरी शक्ति से काम करता था। थक जाने पर विश्राम करता था किन्तु यह चिन्ता नहीं करता था कि कोई देख तो नहीं रहा। ज्येष्ठ मास की भयंकर गर्मी में खेत की ओर निकल जाता था और उस समय मेरे शरीर पर अंगप्रोक्षण और एक लंगोट होता था। यह इसलिए सुना रहा हूँ कि आप लोगों को क्या तप करने को मिला है! आपने क्या तप किया है! नाम मात्र की बात है! इतने तप से यह योग सिद्ध होता तो बहुतों को हो जाता।

जिस अवस्था में मैंने अध्ययन किया उसमें कोई भी ब्रह्मचारी नहीं टिका, सारे भाग गए। गुरुकुल के पूरे इतिहास में मैं ही एक था जिसने इस अवस्था में रहकर अध्ययन किया। दूसरा कोई ब्रह्मचारी नहीं मिलेगा। गुरुकुल में जिस-जिस की ऐसी स्थिति आई, भागते गए। मैं अकेला टिका रहा।

साधक ७– सत्यनारायण जी बता रहे थे आजकल गुरुकुलों में पर्याप्त धन दिया जाता है तब भी अच्छी व्यवस्था नहीं हो पाती है।

स्वामी जी – सोचने का ढंग, पद्धति, विज्ञान बड़ा गम्भीर है। ध्यान देने की बात है इन परिस्थितियों में जमे रहने का कारण होता है आदर्श। वहाँ मेरे टिके रहने का एक कारण तो था – विवेक-वैराग्य की अनुभूतियाँ। जो आदर्श रूप में मुझे ले जा रही थीं। क्या समझ में आया?

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विवेक-वैराग्य की अनुभूतियाँ ही व्यक्ति को आदर्श रूप में ले जाती हैं। जिसमें ये होती हैं वह आदर्श व्यवहार करेगा। अहिंसा का पालन उसने करना है, सत्य ही उसने बोलना है। तो आदर्श का यह भाग मेरे साथ में था।

पुनः महर्षि दयानन्द जी के जो ग्रन्थ मिले थे वे मुझे इतने अच्छे लगते थे, शत-प्रतिशत ठीक लगते थे, एक-एक पंक्ति, एक-एक शब्द बस ! पत्थर की लकीर है, यह मानता था और मैं उसके आधार पर चलता था। एक भाग मेरा यह था।

साधक ७– स्वामी व्रतानन्द जी चित्तौड़ वाले को भी एक-एक पंक्ति पर श्रद्धा थी।

स्वामी जी – हाँ ! उनकी बात सुना देता हूँ। मैं स्वामी जी से मिलता रहता था, उनसे सीधी बात भी करता था। अच्छा ध्यान रखते थे, जो बता रहा हूँ उनको स्मरण भी होगा। जब मैंने स्वामी जी से एक बात कही थी सत्य ही बोलो, ऋषियों को आदर्श रूप में रखो। यद्यपि स्वामी जी हृदय से थोड़े से स्पष्ट थे, अन्दर की बात को कहने में देर कम लगाते थे, बहुत-सी कह देते थे। तब उन्होंने कहा - महाराज जी ! यह बात तो ठीक है, सत्य ही बोलना चाहिए, परन्तु संस्था के लिए मुझे झूठ बोलना पड़ता है। ऐसा वे बोलते थे।

वह घटना याद है, सुनी नहीं तो दुहराऊँ ? अपनी इस स्थिति (उपर्युक्त दुग्ध आदि साधनाभाव, कार्य बहुलता और वैराग्य) में रहते हुए एक दिन मुझे सूचना मिली कि गुरुकुल की ओर से आपको एक समय एक पाव दूध मिला करेगा। बस क्या था ? उसी समय मेरे लिए खतरे की घण्टी बज गई। क्या समझ में आया ?

साधक ३– कहीं राग न हो जाए।

स्वामी जी – मुझे आशंका होने लगी, डर लगने लगा कि कहीं दूध में राग न हो जाए ! और यह राग कभी ईश्वर की ओर से उखाड़ दे। यह घटना कोई अच्छी घटना नहीं थी मेरे लिए। आपको कैसा लगता है ? अध्यापक प्रताप जी को जब सुनाई तो आश्चर्य में पड़ गए और कहने लगे डर का कोई और कारण हो सकता है।

वे कहने लगे - डर, आशंका होना, संकोच होना आदि में यह भी कारण हो सकता है कि देखो ! एक पाव दूध का क्या देना। दूसरा कारण - आज दे रहे हैं कल बन्द कर दें, ऐसा न हो जाए। इतनी-इतनी बातें उठाई उन्होंने। मैंने कहा - इनमें से एक भी कारण नहीं है। वास्तविक कारण तो यही है कि राग हो गया तो वैराग्य को उठाकर फेंक देगा। ईश्वर की ओर से दूर ले जाएगा। यह आशंका थी। पुनः उन्होंने कहा तब तो बड़े आश्चर्य की बात हुई।

वस्तुतः न तो यह कारण था कि कहीं पुनः न मिले। न यह कारण था कि थोड़ा है। अन्य भी जितने हेतु उन्होंने दिए कि यह हो सकता है, यह हो सकता है ? मैंने कहा - इनमें से एक भी नहीं था।

साधक २– अभाव में जीने का अभ्यास हो गया होगा ?

स्वामी जी – अभाव में जीने का अभ्यास क्या करेगा ? दूध तो सबको अच्छा लगता है, घी तो सबको अच्छा लगता है। अभ्यास उसको क्यों रोकेगा ? अनजान हो, जिसने खाया नहीं हो, देखा नहीं हो, जंगल में रहता हो तब तो थोड़ी देर के लिए वह सोच सकता है दूध क्या होता है, पीना चाहिए या नहीं ? परन्तु हमारे जैसा जो पूरे जीवन दूध और रोटी की बात करता आया हो, देखता आया हो। भला वह क्यों लेने से डरेगा ? दूध-घी आदि वस्तुओं पर अभाव में जीने का अभ्यास लागू नहीं होगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– पुनः ऐसी स्थिति क्यों हुई? सामान्य स्थिति रहनी चाहिए थी।

स्वामी जी – ऐसा होता है जब हम वैराग्य की ओर बढ़ रहे होते हैं तब यह स्थिति उत्पन्न होती है। वैराग्य की ओर बढ़ते हुए को इनमें दुःख की अनुभूति होती है। इसके बारे में मुझे क्यों हुआ? यह वही तो स्थिति है –

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा॥ मनु.२/१६२।

वह कान का विषय है, यह रसना का विषय है। इसलिए मनु जी ने लिखा कि यदि व्यक्ति को सम्मान की इच्छा हो गई तो वह उसकी समाधि को उखाड़कर फेंक देगी। यदि रसना का राग हो गया तो हमको उखाड़ फेंकेगा, यह कारण ही तो है वहाँ पर। अब विराम॥

२६ यज्ञीयोपदेश

साध्य-साधन-साधक : आषाढ़ कृ. ३/२०६०-१६/७/०३

अब हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। आप एक स्थान धारणा के रूप में निर्धारित करें और वहीं अपने मन को, आत्मा को स्थिर करने का प्रयास करें। जब हम कोई केन्द्र बना लेते हैं तब जो बाधक विचार, जिनको हम उठा लेते है, उनको सरलता से पकड़ लेते हैं, समझ जाते हैं और रोक देते हैं। धारणा के अभाव में, चित्त की चंचल स्थिति में वे विचार इस रूप में समझ में नहीं आते, पकड़ में भी नहीं आते और रोकने में भी कठिनाई होती है।

ध्यान काल में ईश्वर साध्य है, प्राप्य है, मैं प्राप्त करने वाला हूँ, शरीर आदि प्राप्ति के साधन हैं। इस प्रकार पूरा विश्व तीन विभागों में विभाजित हो जाता है। इसके साथ – ईश्वर एक चेतन पदार्थ है, मैं जीवात्मा भी एकदेशी, अणु, अल्पज्ञ, चेतन पदार्थ हूँ, शेष प्रकृति-विकृति जड़ पदार्थ हैं; यह ध्यान रखा जाता है।

जब कभी व्यक्ति ध्यानकाल में असावधानी से मन को प्रेरणा देकर, विषय को उठाकर अपने अन्दर ले आता है, तब उसको पता चलता है कि विषय आ गया और उस समय प्रायः एक मान्यता बन जाती है कि मन विषय को ले आया है या विषय स्वतः आ गया। वहाँ पर यदि वह यह जानता-समझता है कि ऐसी बात नहीं है। मन विचारों को लाने वाला, हटाने वाला नहीं है। वस्तुतः यह जो ज्ञान का व्यापार है, इसको केवल ईश्वर कर सकता है या जीवात्मा कर सकता है। इनके अतिरिक्त मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर या अन्य कोई भी तत्त्व विचारों को लाना, उठाना आदि ज्ञान का व्यापार नहीं कर सकता है। यदि ऐसा जानता है तो यह संशय, भ्रान्ति हट जाती है कि विचार उठाने वाला मैं नहीं हूँ।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन सब बातों को अच्छी प्रकार से समझकर प्रयोग करने पर सफलता मिलती है। अब हम प्रयोग करेंगे। आत्मनिरीक्षण करते रहेंगे कि हम कितने सफल हो पाते हैं? प्रयोग में शब्द को लम्बा बनाकर हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे -

प्रयोग आरम्भ .....। समय लगभग ६ मिनट।

ओ३म् भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

अब आप रुकेंगे और बतायेंगे क्या स्थिति रही?

साधक २- धारणा देश में ही विशेष ध्यान लगा रहा, ईश्वर के प्रति, उच्चारण के प्रति गौण भावना हो गई।

स्वामी जी - जैसे कि धारणा बना कर हमने मन को वहाँ रखा और उसके आगे जो पाठ करना, शब्द का अर्थ और ईश्वर को सम्बोधित करना, ईश्वर-समर्पित रहना गौण हो गए।

साधक २- जी! स्वामी जी!

स्वामी जी - और कौन सुनाएगा। हाँ जी! आप सुनाएँगे -

साधक ७- प्रत्येक मन्त्र का अर्थ करता रहा।

स्वामी जी - उसमें यह देखना था जैसे कि आपने धारणा बनाई, एक केन्द्र बनाया और सब ओर से मन को हटाकर उस केन्द्र पर बाँधा या नहीं? यहाँ यह जानना चाहिए कि यदि केन्द्र पर मन को नहीं बाँधा तो धारणा के अन्दर दोष आ गया। अब आई बात समझ में? दोहराओ! धारणा का अर्थ है - **देशबन्धश्चित्तस्य धारणा**। यो.द. ३/१। किसी देश में चित्त को वृत्ति रहित कर देने का नाम धारणा है और उसको आप कर नहीं पाए, तो यह दोष आ गया।

दूसरी बात - धारणा के पश्चात् जब मन्त्रपाठ करने लगे तब 'ओम्' बोलते समय यह अर्थ नहीं किया कि हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक हैं; या नहीं हो पाया तो यह दोष आ गया। इसी के अन्तर्गत बीच में अन्य विषय उठा लिया तो दोष आ गया। इसी प्रकार मैं आत्मा सब कुछ ईश्वर-समर्पित कर यह कार्य कर रहा हूँ, सर्वव्यापक, सर्वज्ञ ईश्वर के समक्ष हूँ, यह अनुभूति नहीं कर पाना, उस काल में किसी सांसारिक विषय में रुचि हो जाना आदि दोष होते हैं, इनको नहीं होने देना चाहिए। होते हों तो दूर करना चाहिये। आपको यह जानना है कि हमारे इस प्रयोग में कौन-सा दोष आ गया? आप यदि उसको घुले-मिले रूप में देखते रहेंगे तब दोष पकड़ में नहीं आयेंगे। धारणा काल में दोष आया या मन्त्रपाठ किया, शब्द का अर्थ नहीं कर पाये, यह दोष आया या ईश्वर-समर्पित नहीं रह पाये, यह दोष आया? तो जब एक-एक क्षेत्र के दोष पकड़ पायेंगे तब उनको दूर करेंगे। ऐसे ही दोष का कारण ज्ञात होगा। यदि आप ऐसा कुछ नहीं करते तो स्थिति में सुधार नहीं होगा।

ठीक है आपने जप कर लिया, हो गया ध्यान? हाँ! हो गया। सब ठीक हो गया? हाँ! हो गया। तो इससे कुछ नहीं होना जाना है। यह पद्धति तो तुष्टि दोष की है अथवा आलस्य-प्रमाद की है। अश्रद्धा की है। अति विश्वास, अति श्रद्धा व्यक्ति की होती है, यह श्रद्धा ही ध्यान में ईश्वर के प्रति रुचि उत्पन्न कर देती है। यदि उसमें इतनी श्रद्धा, ऐसा विश्वास न हो तो कठिनाई हो जाती है।

हम ईश्वर के प्रति क्या सोंचे और ईश्वर हमारे प्रति क्या सोचता है; यह बात हमारी बुद्धि में सदैव रहनी चाहिए। ईश्वर अनादि काल से, आज भी, आगे भी सदा हमारे लिए ही सब कुछ करता है। लौकिक सुख व मुक्ति का सुख संपादन करने के लिए ही ईश्वर ये सब कार्य करता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है और उसके बदले में हमसे कभी कुछ नहीं लेता है। इसलिए यदि हम ईश्वर की आज्ञा का पालन करेंगे तो लौकिक सुख और मुक्ति का सुख, ये दोनों मिलेंगे तथा नहीं करेंगे तो गधा, घोड़ा, कीट-पतंग आदि की योनियाँ हमारे लिए तैयार हैं। जब व्यक्ति ऐसा सोचता है कि ईश्वर हमारा इतना हितैषी है कि हमारे लिए सब कुछ करता है तब तो वह ध्यान देगा कि मैं ईश्वर के साथ उचित व्यवहार नहीं कर रहा हूँ। जितना प्रेम ईश्वर में होना चाहिए, वह मेरे अन्दर नहीं है; यह दोष है। मैं ईश्वर से मिलना नहीं चाह रहा हूँ; यह दोष है।

इसलिये व्यक्ति को सोचना चाहिये कि सभी पदार्थों से महान्, सबसे अधिक हितकारी, सबसे अधिक गुणवान् जब तक ईश्वर नहीं दिखता तब तक हमारी स्थिति नहीं बनेगी। यदि मैं ईश्वर के साथ उचित व्यवहार नहीं करता हूँ तो उससे मिलने वाला ज्ञान, बल, आनन्द हमको नहीं मिलेंगे। अब आप बताएँगे, क्या स्थिति रही?

साधक ३— कुछ शारीरिक न्यूनताओं के कारण से बाधा रही। जब समर्पण किया तब अर्थ ठीक प्रकार से नहीं कर पाया। जब अर्थ का विचार किया तो समर्पण में कमी आई। ये कुछ बाधायें रहीं।

स्वामी जी — समर्पण की न्यूनता को हटाने के लिए एक सिद्धान्त यहाँ पर सहायक होता है कि मैं अपनी बुद्धि से, आत्मा को, मन को, बुद्धि को, शरीर को, विचारों को ईश्वर-समर्पित करूँ या न करूँ, उसको जनाऊँ या न जनाऊँ, उपस्थित करूँ या न करूँ; ये उपस्थित ही रहेंगे। चाहे मैं करूँ या न करूँ, इनको तो ऐसा ही रहना है। जब यह सिद्धान्त व्यक्ति की बुद्धि में आ गया तब पुनः इधर-उधर बचना आदि क्रियायें बन्द हो जाती हैं। आपको समझ में आया? क्या आया?

साधक ३— मैं ईश्वर के प्रति समर्पित होऊँ अथवा न होऊँ, जो मेरा ज्ञान है, वह सदा ईश्वर को ज्ञात ही है।

स्वामी जी — और मैं ईश्वर के साथ तीनों कालों में सम्बद्ध हूँ, असम्बद्ध कभी हुआ नहीं।

साधक ३— मैं मानूँ चाहे न मानूँ, वह तो सुनिश्चित है।

स्वामी जी — हाँ! मैं मानूँ चाहे न मानूँ, इसका ज्ञान रखूँ या न रखूँ, ईश्वर को यह कहूँ या न कहूँ कि आपके सामने उपस्थित हूँ; वस्तुतः यह तो अनादि काल से उपस्थित है, आज भी है और आगे भी रहेगा। जितना ज्ञान-विज्ञान है, वह ईश्वर को ज्ञात रहेगा। जितनी क्रियाएँ हैं, ईश्वर को ज्ञात रहेंगी। अच्छी या बुरी जितनी हम उपासना करेंगे, सब ईश्वर को ज्ञात रहेंगी और हमारी उपस्थिति भी ईश्वर के साथ आबद्ध रहेगी ही। जब यह स्थिति है, तब इस प्रकार बचना, टालमटोल करना, इधर की उधर, उधर की इधर करना, अपने-आप को ईश्वर के सामने मानने से बचना, ईश्वर को भूलकर इधर-उधर घूमना आदि सारी बातें व्यक्ति की अज्ञानता की बातें हैं। उसका सारा मन्तव्य अविद्या से जनित है।

साधक २— यदि हमारे सभी व्यवहारों को ईश्वर जान ही रहा है, तो इस प्रतीति को हम बनाए रखें, इसकी अपेक्षा क्या है?

स्वामी जी — इसकी अपेक्षा यह है कि एक तो यह वास्तविकता है। कोई कल्पना नहीं है। इसलिए वास्तविकता तो लगनी ही चाहिए। क्या समझ में आया? हमने कोई कल्पना नहीं की है कि ईश्वर मुझे देख-सुन-जान रहा है अपितु वह वस्तुतः देख-सुन-जान ही रहा है। वस्तुतत्त्व ही ऐसा है, इसमें हम क्या करें। जब वस्तुतः ईश्वर ऐसा ही है और उसको हम उसी रूप में नहीं देखेंगे तब वह हमको मूर्ख नहीं समझेगा तो और क्या समझेगा? जैसा इन जीवों के लिए मैं हूँ और जैसा मेरा स्वरूप है, वैसा यह मूर्ख जीवात्मा नहीं समझ रहा है। इसको एक प्रकार से मोटी भाषा में कहें तो ईश्वर हमसे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रुष्ट हो जाएगा, प्रसन्न नहीं होगा। जैसा मैं सर्वगुण सम्पन्न, जीवात्मा का हितैषी हूँ वैसा जीवात्मा मुझे समझे; ईश्वर यही तो हमें जनाना चाहता है। जीवात्मा ऐसा मुझे समझे। पुनः एक बालक अपने माता-पिता, आचार्यों के साथ जो व्यवहार करता है वही व्यवहार जीवात्मा मेरे साथ करे।

पुनः आगे बढ़ो - ईश्वर जीवात्मा के साथ सदा उपस्थित है और जैसे शिष्य के साथ गुरु उपस्थित होकर उसको ज्ञान देता रहता है वैसे ही ईश्वर हमारे साथ सदा उपस्थित रहते हुए हमको पात्र समझकर ज्ञान देता रहता है और उससे अज्ञान नष्ट होता रहता है। यदि ईश्वर की इस सहायता के अनुरूप हमारी उसमें प्रीति नहीं, आकर्षण नहीं हो तो वह हमको ज्ञान नहीं देगा। जब ज्ञान नहीं देगा तो हमारी अविद्या नष्ट नहीं होगी, बनी रहेगी। इसलिए यदि हम प्रणिधान की स्थिति में अति-प्रीति से रहते हैं तो ईश्वर हमको ज्ञान देता रहेगा और उससे अज्ञान, कुसंस्कार नष्ट होते रहेंगे।

यदि हम ऐसा नहीं करेगें तो संस्कारों से उत्पन्न अज्ञान हमारे ऊपर अपना प्रभाव डालता रहेगा। अविद्या हमारे ऊपर हावी रहेगी। दूसरी बात - यदि ईश्वर से प्रीति करेंगे तो ईश्वर से हमको आनन्द मिलेगा और उससे इन्द्रियों के सुख की इच्छा समाप्त हो जाएगी। यदि हम ऐसा करते हैं तो इतनी उपलब्धियाँ होती चली जाएँगी। इसके अतिरिक्त जब न्यायकारी ईश्वर हमारी बुद्धि में है, तो ज्यों ही बुरा सोचना आरम्भ करेंगे, उसी समय वह हमारे सामने आकर खड़ा हो जाएगा। यदि मैंने विपरीत सोचा तो दण्ड से नहीं बचूँगा। तो यह भी लाभ हमको होता है। और आप देखेंगे कि जीवात्मा इस स्थिति में ईश्वर के साथ आबद्ध रहता है तब सत्त्व- रजस्-तमस् पर उसका अधिकार रहता है। उनको नीचे दबा लेता है और जब ईश्वर से दूर रहता है तब सत्त्व-रजस्-तमस् जीवात्मा को दबा लेते हैं।

आपने एक शब्द सुना-पढ़ा होगा 'गुणातीत'। इसका अर्थ है गुणों से ऊपर हो जाना, गुणों पर अधिकार कर लेना, उनसे पार हो जाना। यह गुणातीत की अवस्था ईश्वर के सान्निध्य से ही आती है, नहीं तो नहीं आएगी। इतने लाभ, इतनी उपलब्धियाँ, इतने दोषों का निवारण होता है; जब ये बातें उसके मन में बैठ जाती हैं तब वह व्यक्ति सर्वस्व की आहुति दे देगा। यहाँ भी यह सब कुछ मेरा है और मैं समर्पित कर रहा हूँ; यह भावना उसमें नहीं रहेगी। यह सब ईश्वर का ही है और उसे समर्पित कर रहा हूँ; यह ऊँची भावना रहेगी।

एक स्थिति है - उस व्यक्ति का शरीर बलवान् है, वह विद्वान् है, बुद्धिमान् है, उपदेशक है, योगाभ्यासी है, सम्पत्तिशाली है; इन सबको अपना मानकर ईश्वर-समर्पित करना। इन सबको ईश्वर का मानकर ईश्वर-समर्पित करना, यह दूसरी स्थिति है। पहली स्थिति में वह लाभ नहीं होता है जो दूसरी स्थिति में होता है। ईश्वर का मानकर समर्पित करेंगे तो प्रणिधान बनेगा और ईश्वर स्वयं सहायता देगा। यदि अपना मानकर करेंगे तो ईश्वरप्रणिधान की सिद्धि नहीं होगी, ईश्वर ज्ञान देकर समाधि नहीं लगवाएगा आदि हानियाँ होंगी। इन बातों की पुष्टि के लिए आप वेद, दर्शन, उपनिषद्, ऋषिकृत ग्रन्थों को देख सकते हैं। वहाँ ये बातें लेखबद्ध हैं पर उतनी विस्तृत नहीं हैं। ऐसा विवरण कम मिलता है, जैसा समझाया जा रहा है। लेखक प्रायः विस्तार नहीं करना चाहता। वह यदि एक-एक बात को खोलता चला जाए, तो ग्रन्थ बहुत बड़ा हो सकता है।

अब हम स्थूल शब्दों में प्रयोग करेंगे। जिस पद्धति को सामान्य व्यक्ति, मध्य कोटि का और उच्च कोटि का व्यक्ति सरलता से अपनाता है, जप में उसी को लेंगे। उनको उपस्थित रखेंगे, बुद्धिमान् व्यक्ति पूर्व की बातों को स्मरण रखता है और अवसर आते ही उनका प्रयोग कर लेता है। जो ऐसा नहीं सोचता, उसको दुहरा दो तब तो वह ध्यान रख लेता है, अन्यथा पीछे क्या बताया गया था, वहाँ क्या करना चाहिए आदि बातों को भूल जाता है; आप ऐसा नहीं करना। अब हम

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओम् सच्चिदानन्द का प्रयोग करेंगे, पद्धति वही रहेगी -

प्रयोग आरम्भ .....। समय लगभग ५ मिनट।

ओऽऽऽऽम् सच्चिऽऽदानन्द।

नाक से श्वास लेते हैं, पुनः बोलते हैं - ओऽऽऽऽम् सच्चिऽऽदानन्द।

रुकेंगे। कभी हमको ऐसा लगता हो कि थोड़ा-सा इस पाठ को रुचिकर बनाएँ तो वैसा कर सकते हैं। उसके लिए धुन में परिवर्तन कर लेते हैं -

ओऽऽऽऽम् सच्चिऽऽदानन्द।

धुन को पकड़ना पड़ता है - ओऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द।

पूरा नीचे उतारें तो ओऽऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द। ओऽऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द। ओऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द।

अब हम यहाँ विशेष धुन को छोड़कर सामान्य विधि से जप करेंगे, जिसमें साधारण व्यक्ति बोलता है। वह पहले पाठ करता है पुनः अर्थ करता है। जैसे -

ओम् सच्चिदानन्द ! हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक, सत्-चित्-आनन्दस्वरूप हैं।

ओम् निराकार ! हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं, आकार से रंगरूप से रहित हैं।

ओम् निराकार ! हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक, रंग रूप से रहित हैं। अब विराम ॥

२७ क्रियात्मक योगाभ्यास

पुरुषार्थ, स्वानुभव : आषाढ़ कृ. ३/२०६०-१६/७/०३

त्र्यम्बकम् यजामहे... से उपासना का प्रयोग करेंगे। जब आप सज्जा करके उपासना का आरम्भ करते हैं तब ऐसा दिखता होगा कि मन अन्य विषय की ओर जाना चाह रहा है। ऐसी भी स्थिति आती होगी ?

साधक २ - बीच-बीच में मन हटने लगता है।

स्वामी जी - हाँ ! जैसे कि हम चाहते हैं कि **त्र्यम्बकम् यजामहे...** से ईश्वर की स्तुति- प्रार्थना-उपासना करें और आरम्भ कर देते हैं तब आरम्भ करते ही कोई अन्य विषय आ खड़ा हुआ। जैसे कि किसी की स्मृति आ गई। इसमें एक स्थिति है अधिकार पूर्वक विषय को लाना, दूसरा होता है बिना अधिकार के ले आना। तो यह बिना अधिकार वाली स्थिति है। जैसा आपके प्रयोगों में होता रहता है कि ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने लगे तो बीच में कोई विषय उठकर आ गया।

साधक ३ - मध्य में तो आते हैं।

स्वामी जी - आरम्भ में नहीं आते ?

साधक ३ - ऐसा पकड़ में नहीं आया।

साधक २ - यह सामान्य स्थिति नहीं लगती है। जैसे कि बाहर देखते समय प्रत्यक्ष अनुभूतियाँ होती हैं और वहाँ एक विषय से हटकर दूसरे विषय में जाना चाहते हैं तो चले जाते हैं। अन्दर ऐसा नहीं हो पाता। मानसिक रूप में जो विषय उठा लिया उसी को चलाते रहते हैं, हटा नहीं पाते। वहाँ भार प्रतीत होता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – और एक ऐसी स्थिति होती है कि जिसमें हम बैठते ही प्रलयावस्था का सम्पादन कर डालते हैं, पुनः कहीं जाने की स्थिति नहीं रहती।

साधक ३ – कभी ऐसा होता है कोई सज्जा विशेष नहीं की परन्तु ध्यान में बैठते ही ध्यान आरम्भ हो गया। और बहुत अच्छा लगा किन्तु कभी बहुत प्रयत्न करने के पश्चात् भी वह स्थिति नहीं बनती। कभी थोड़े प्रयास से ही स्थिति बहुत अच्छी बन जाती है।

साधक १ – स्वामी जी ! कभी बैठते ही मन धारणा केन्द्र की ओर चला जाता है। इसे हम नया कार्य कह सकते हैं, अनायास चला जाता है ? वहाँ से हम त्र्यम्बकम्.....आरम्भ करते हैं।

स्वामी जी – दो ही स्थितियाँ होंगी – एक अधिकारपूर्वक, दूसरी अनधिकारपूर्वक। जो अनधिकारपूर्वक किसी कारण से अभ्यास हो जाने से स्वभावतः जैसा बन जाता है, वह भी दूसरी अनियन्त्रित स्थिति है। जैसे कि मन चला गया या कहीं धारणा आदि बन गई।

अब हम इस विषय का आरम्भ करते हैं और उसी प्रकार से इसकी तैयारी करते हैं जैसे संसार के लोग अपने-अपने प्रमुख कार्यों में लगते हैं। उनको अनिवार्य समझते हैं और पूरा बल लगाते हैं। यह योजना और तैयारी आप संसार में देख सकते हैं। मेरी बात समझ में आई या नहीं आई ? जैसे कि एक व्यक्ति गृहस्थ आश्रम में जाने के लिए तैयारी करता है। वह विद्वान् बन चुका है, अब भारी योजना बनाता है। लाखों रुपये खर्च करके वह व्यक्ति लम्बा-चौड़ा व्यापार प्रारम्भ करके उसमें प्रातःकाल से लेकर सायंकाल तक लगा रहता है। धन कमाने के लिए कार्यकर्त्ताओं को ढूँढता है, सम्बधियों से सहयोग लेता है आदि-आदि। आपकी ईश्वर की प्राप्ति के लिए यदि ऐसी सज्जा, ऐसा प्रयत्न है तो आपकी स्थिति अच्छी मानी जाएगी और नहीं है तो स्थिति अच्छी नहीं मानी जाएगी। क्या समझ में आया ?

साधक ३ – जैसे गृहस्थी लोग, गृहस्थ की तैयारी करते हैं। कोई व्यापार करते हैं तो उसके लिए प्रातः से लेकर सायंकाल तक पुरुषार्थ करते हैं। इसी प्रकार यदि हम ईश्वर प्राप्ति के लिए उनके साधनों का संग्रह करने हेतु प्रातः से लेकर सायं तक प्रयत्नशील रहते हैं तब तो हमारी स्थिति अच्छी मानी जाएगी।

स्वामी जी – आप अपने लक्ष्य को पूरा करने के लिए तप, त्याग, कष्ट पूर्वक तन-मन-धन से लगे हुए हैं। यदि ऐसी स्थिति आपकी है तब तो प्रगति-विकास-वृद्धि होगी। यदि ऐसी स्थिति नहीं है तो बहुत थोड़ा विकास, थोड़ी सी उपलब्धि हो पाएगी। अन्य उदाहरण लेकर चलते हैं – आपने सुना होगा जहाँ भयंकर बर्फ के ढेर लगे होते हैं, थोड़ा-सा शरीर खुलते ही रक्त जम जाए। थोड़ा-सा ऊपर-नीचे, इधर-उधर होते ही व्यक्ति गिरकर मर जाए। चारों ओर जहाँ तोप के गोले चलते हैं, ऊपर से विमान बम बरसाते हैं। वहाँ पर हजारों सैनिक लोग मरने-मारने की स्थिति में खड़े रहते हैं और वर्ष भर खड़े रहते है। क्या समझ में आया ?

साधक ८ – एक ओर वहाँ के वातावरण की प्रतिकूलता।

स्वामी जी – और दूसरी ओर सामने शत्रु तथा अपने परिवार के पालन-पोषण की चिन्ता रहती है। आप यह देखो कि उस स्तर पर आप परिश्रम कर रहे हैं या नहीं ? यह कसौटी है।

साधक ८ – स्वामी जी ! बीच-बीच में बाधक कारण उपस्थित होते रहते हैं।

स्वामी जी – बाधक तो वहाँ भी होते है और यहाँ भी होते है। ये बाधक तो दोनों के समान हैं, किसी के सामने अधिक तो किसी के सामने कम होते रहते हैं। वे लोग किसी और लोक से तो आए नहीं हैं, हमारे जैसे ही हैं। उनको भी कोई रोग, सिरदर्द, जुकाम या निमोनिया होता ही है, जैसे हमको होता है। एक और बात, आज जितनी खाने-पीने, रहने आदि की सुविधाएँ आपको

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपलब्ध है, उतनी उनको वहाँ नहीं है। यह तुलना करो, यह तुलनात्मक अध्ययन है। आपको जो सुविधाएँ हैं, उनको उस स्तर पर, वे चाहे जितना बल लगाएँ, उपलब्ध नहीं हो सकतीं। आपका उस स्थिति में रहना कठिन है, जिसमें वे रह रहे हैं। कैसे पानी भरकर रखते हैं, एक-एक बूंद पानी को बचाए रखते हैं। उन्हें सरकार को एक-एक सुई का हिसाब देना पड़ता है। मान लो एक सूई खो जाए तो उनको दण्ड भरना पड़ेगा।

अब तुलनात्मक अध्ययन करो। यद्यपि उनका जीवन स्तर अति कठिन है परन्तु उनके कार्य से ईश्वर-प्राप्ति का कार्य अधिक कठिन है। इसको साथ में जोड़लो। अब देखो! उनकी अपेक्षा अतिकठिन कार्य के लिए आप उनके जितना भी परिश्रम नहीं कर पा रहे हैं तो उसकी सिद्धि कैसे हो पाएगी? आपने पढ़ा-सुना होगा कि इन्द्र नाम का व्यक्ति जो कि विद्वान्, योग्य, युवा था और आचारवान् होगा, वह इस विद्या को सीखने के लिए देवों के प्रतिनिधि के रूप में भेजा गया। वह जब एक सौ एक वर्ष या कितने काल रहा? याद है कुछ? एक सौ एक वर्ष तक आचार्य के अनुशासन में रहा। वहाँ जो काम बताया जाता होगा, वही करता भी होगा। अब इतने दिनों में सिद्धि मिली, ऐसी कथा है। तो आप इतना परिश्रम कर लोगे? इतना समय लगा लोगे? करके देखो, लगाकर देखो।

बार-बार इन बातों को दुहराने से, इनको समझने से व्यक्ति के मन-बुद्धि-विचार के अन्दर एक स्थिति बनती है। वह सोचता है कि जब ऐसी बात है तब तो मेरी स्थिति उतनी नहीं है, उतना तप मैं नहीं कर रहा हूँ, उतना परिश्रम मैं नहीं कर रहा हूँ, उतनी रुचि मुझमें नहीं है। ये सब दोष हैं। यदि दोष हैं तो इनको दूर करो। इन दोषों को कौन दूर करेगा? जिसका अनुभव भी नहीं है। जो तुलनात्मक अध्ययन नहीं कर सकता, वह इन दोषों को कैसे जानेगा और बिना जाने दूर क्या करेगा? वह नहीं कर सकता। किन्तु जिसको अनुभूति होती है कि हाँ! वास्तव में यह दोष है और इनको दूर करना चाहिए। पुनः वह व्यक्ति अपने-आपको बदलता है, परिवर्तित करता है।

दूसरा दृष्टान्त ले लो। आपका तन-मन-धन, सामर्थ्य, शक्ति उस स्तर पर लगना चाहिए, आपका उस स्तर पर प्रयत्न होना चाहिए, आप उस स्तर पर तप-त्याग करें, जिस स्तर पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने किया, योगी की गवेषणा के लिए जीवन लगाया। ऐसा सुना जाता है कि स्वामी दयानन्द जी ने लगभग पैंतीस वर्ष इसकी खोज की। उस बीच वह काल कैसे लगता था, कहाँ-कहाँ लगता था, उसका संकेत उनके स्व-रचित जीवन चरित्र में दिया है। तो कैसे-कैसे रहे, किस-किस काल में किस-किस परिस्थिति में रहे, क्या-क्या खाया-पिया, उनके पास क्या व्यवस्था थी, कौन गुरु था, उनकी खोज कैसे करते थे? उसमें कितना परिश्रम लगा होगा? क्या आप उतना परिश्रम करते हैं? आत्मनिरीक्षण कर लो।

आपको पता चलेगा कि आप उनसे बहुत दूर हैं। आपके हाव-भाव, विचारों का हम भी अध्ययन कर लेते हैं, ऐसा न मानना कि दूसरे व्यक्ति हमारे जीवन को पढ़ नहीं सकते। जिसने सब कुछ किया है, आपके हाव-भाव, आचार-विचार, खाना-पीना, उठना-बैठना आदि को वह झट पकड़ लेगा। उसे पता चल जाता है कि यह व्यक्ति इस स्तर पर है।

अब मैं आपके साथ अपनी आरम्भिक अवस्था की तुलना करुँ? बुरा तो नहीं लगेगा? मैंने जो इसके ऊपर परिश्रम किया, उसमें सर्वप्रथम तो स्वयं किया। कोई देहधारी गुरु नहीं मिला था। और पीछे का इतिहास सुनो! आप तो आधुनिक ढंग से या गुरुकुल में दर्शन, व्याकरण आदि पढ़े-लिखे हैं जबकि मैंने तो विधिपूर्वक बारह खड़ी भी नहीं पढ़ी थी। क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः, ये भी तो नहीं पढ़े थे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और सुन लो ! जिन लोगों में मैं रहा, जिस परिवार में यह शरीर उत्पन्न हुआ, वहाँ कोई पढ़ा-लिखा नहीं था। दादे का दादा भी एक अक्षर नहीं जानता होगा। अक्षर ज्ञान की जहाँ कोई परम्परा नहीं, हम वहाँ से आए हैं। दूसरी बात - उस परम्परा में माता-पिता को कोई अता-पता नहीं कि गृहस्थ आश्रम क्या होता है? संतानोत्पत्ति क्या होती है? बालक का निर्माण कैसे होता है? उसको संस्कार कैसे दिए जाते हैं आदि कोई बात नहीं थी। वैदिक रीति, विधि-विधान से तो दूर का भी सम्बन्ध नहीं था। बाल्यावस्था से ही दुष्ट से दुष्ट बालकों में रहा। गाली दो, ये करो, कुछ भी ऊट-पटांग करो, न कोई देखने वाला, न समझाने वाला था। ऐसी अवस्था में हमको रखा गया। वहाँ पर जो-जो बुरे काम थे, उनको हम अच्छे मानकर करने लगे। वही हमारे लिए अच्छे थे और ये सारी स्थितियाँ चलते-चलते लगभग अठारहवें वर्ष तक पहुँच गई थीं।

अब आप अपनी स्थिति को मेरे साथ मिला लो। आपके पढ़ने-लिखने, खाने-पीने की कैसी व्यवस्था रही? आपका तो मुझे कम पता है, अपनी बताता हूँ - तब अंग्रेजों का राज्य था और एक बार दो वर्ष तक वर्षा आदि न होने के कारण अकाल पड़ गया। उस समय मेरी अवस्था लगभग बारह या ग्यारह वर्ष की थी। तो उसमें क्या होता था? दस-बारह किलोमीटर की दूरी पर एक कच्ची सड़क बन रही थी।

कार्य देखने के लिए एक अध्यक्ष होता था, जिसको मेट बोलते थे। वही काम करवाता था। तसले-टोकरी में मिट्टी उठा-उठाकर सड़क के लिए डालनी होती थी और नियम था कि जो टोकरी भरकर पूरे दिन भर मिट्टी डालेगा उसको चार पैसे मिलेंगे। पूरे दिन में चार पैसे ! क्या समझ में आया? बारह-पन्द्रह किलोमीटर दूर जाकर मिट्टी डालो और वहाँ से सायंकाल लौटकर घर आओ। पुनः उन्हीं पैसे से खाना-पीना, घर के कार्य आदि। कुछ समझ में आया? यह घटना है। सारी घटनाएँ तो सुना भी नहीं सकते। इसके पश्चात् आगे बढ़ जाइए तब बारह खड़ियों का सीखना, पुनः भारत का विभाजन होना आदि चलता रहा। इसके पश्चात् भी ऐसी कोई बात सामने नहीं आई कि मुझे कोई गांव से हटाकर गुरुकुल भिजवा दे और कुछ भोजन-वस्त्र आदि का प्रबन्ध कर दे। गांव में रहते हुए मुझे सिखाने वाले किसी गुरु का नाम-निशान नहीं था। सारी खोज स्वयं करनी पड़ रही थी। पास में एक पैसा नहीं, घर वाले विरोधी, सारा गांव विरोधी और ऊपर से यह पागल हो गया, इसको मारो-पीटो आदि कहने वाले; यह स्थिति थी।

कई वर्षों तक इसी प्रकार खोज करते-करते गुरुकुल पहुँचे। गुरुकुल की स्थिति पहले सुना ही दी। गुरुकुल में लगभग नौ वर्ष का एक इतिहास है जिसमें एक भानाराम जी थे जो कभी-कभी थोड़ा-सा घी दे दिया करते थे। लोगों को इस बात का भ्रम हो जाता है कि वे मेरा प्रबन्ध कर रहे थे। प्रबन्ध नहीं किया था यद्यपि व्यक्ति अच्छे थे, प्रबन्ध करना चाहते थे किन्तु उनके पास भी इतना धन नहीं था कि सहायता कर सकते। इसलिए कभी थोड़ी-सी सहायता घी की कर दिया करते थे। उनके अतिरिक्त अन्य किसी ने भी कोई प्रबन्ध नहीं किया। गुरुकुल का दस रुपये का मासिक खर्चा था भोजन का, उतना भी देने वाला कोई नहीं था। और गुरुकुल की जो कठिनाइयाँ थीं, वहाँ जो कुछ हुआ, आपने थोड़ा सुना ही है। तो इतने काल में आप देखेंगे कि मैंने ईश्वर प्रदत्त शक्ति से जो परिश्रम किया, उसके सामने मेरी दृष्टि में आज आप जितना परिश्रम कर रहे हैं, वह नाममात्र है।

जब व्यक्ति के पास साधन नहीं होते है तब परिश्रम करने के लिए तैयार होता है और जब व्यक्ति के पास साधन होते हैं, सिखाने वाला होता है, तब पुरुषार्थ कम करता है। प्रायः व्यक्ति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उतना पुरुषार्थ नहीं करता, जितना करना चाहिए। ऐसे बहुत कम लोग होते हैं जो साधन सम्पन्न होते हुए पूर्ण पुरुषार्थ करते हों। यद्यपि साधनहीनता में भी पूरा पुरुषार्थ करने वाले लोग कम ही होते हैं। यह भी एक स्थिति है। आ गई बात समझ में? तो जब आप तुलनात्मक अध्ययन करेंगे तब पता चलेगा कि ईश्वर की प्राप्ति करने-कराने के लिए कितना त्याग, परिश्रम, सावधानी और किस प्रकार की स्थिति सम्पादित करनी चाहिए, जिससे हम सफल हो जाएँ। अब प्रयोग करेंगे। एक शारीरिक परिश्रम है दूसरा वाचनिक और तीसरा मानसिक। आपको इनमें से जो सुविधाजनक हो, उसको करो। अनुकूलता हो तो साथ-साथ बोलें, नहीं तो सुनें। एक विधि है साधक ने पाठ किया और पुनः रुककर एक-एक शब्द का अर्थ किया जैसे कि -

ओ३म् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्।।

त्र्यम्बकम् - हे ईश्वर! आप जीवात्माओं के, सत्त्व-रजस्-तमस् प्रकृति के, महतत्त्व से लेकर पूरी सृष्टि के अध्यक्ष, संचालक हैं। तीनों को व्यवस्था में रखते हैं, तीनों के स्वामी हैं। **यजामहे** हम आपकी पूजा करते हैं, आपकी भक्ति करते हैं, आपकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं, ध्यान करते हैं और व्यवहार काल में आपकी आज्ञा का पालन करते हैं। आपके आदेश के अनुसार हम दैनिक कार्यों को करते हैं। यम-नियम आदि व्रतों का प्रयोग व्यवहार में करते हैं।

सुगन्धिं पुष्टिवर्धनम् - हे ईश्वर! आप सुगन्धि और पुष्टि बढ़ाने वाले हैं। संसार में औषधि, वनस्पति, खेती आदि के रूप में हमको भौतिक सुगन्धि का जो लाभ हो रहा है, उन सबको आपने बनाया है और आपके ही बल-सामर्थ्य से इनकी वृद्धि होती है। हे ईश्वर! हम जी रहे हैं, जीवित हैं, हमारा शरीर पुष्ट हो रहा है। हम जो खाते हैं उनसे आन्तरिक रस-रक्त आदि धातुएँ बनती हैं, इनसे हमारा शरीर पुष्ट होता है तथा बाहर से जल, वायु, सूर्य आदि के द्वारा हमारा शरीर पुष्ट होता है। इस प्रकार पुष्टि के करने वाले भी आप ही हैं।

उर्वारुकमिव बन्धनात् - हे ईश्वर! जैसे खरबूजा पक जाने पर आनन्दप्रद, सुखप्रद हो जाता है, उसी प्रकार आपकी सहायता से हमारा जीवन भी आनन्दप्रद हो जाए और खरबूजा पकने पर जैसे डंठल से स्वतः दूर हो जाता है, बलपूर्वक उसको तोड़ना नहीं पड़ता, वैसे ही आपकी सहायता से हम सब जन्म-मरण के बन्धन से दूर हो जाएँ।

मृत्योर्मुक्षीय मामृतात् - हे ईश्वर! मुझे मृत्यु से हटा दीजिए और आपका जो नित्यानन्द है, मोक्ष सुख है उससे हम दूर न हों।

यह एक प्रयोग पूर्ण हुआ। इसके आगे साधक यदि ध्यान और जप में आधा घण्टा, पौन घण्टा, एक घण्टा या इससे अधिक समय लगाना चाहता है तो वह ऐसे प्रयोग करता है। इसी प्रकार से मन्त्र पाठ करता है, अर्थ करता है। अब आपको क्या समझ में आया और क्या नहीं आया देखिए?

साधक ३ - ऐसे मन्त्र बोलकर पश्चात् उसका अर्थ और भावार्थ करते हुए मन सरलता से लग जाता है, ऐसा अनुभव में आया।

स्वामी जी - एक तो यह देखना है कि इस स्थिति में मन में विक्षेप कैसे आते हैं, कितने आते हैं या नहीं आते हैं?

साधक १ - मन्त्र का अर्थ यदि पूर्व निर्धारित हो और वाक्य यदि स्मरण हों तब अर्थ करते समय धारणा की स्थिति बनी रहती है। ऐसा मुझे अपने विषय में लगता है। और यदि वाक्य को बना रहा हूँ या अर्थ को विचार-विचारकर विस्तार कर रहा हूँ तो धारणा मस्तिष्क के क्षेत्र में चली जाती है और बीच-बीच में टूटती है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – ऐसी स्थिति में, जिस मन्त्र का प्रयोग आप करते हैं, उसका अर्थ अच्छे प्रकार से परिपक्व कर लेना चाहिए।

साधक १– स्वामी जी ! जैसा अभी आपने भावार्थ का विस्तार किया, इस स्थिति में बुद्धि का प्रयोग करना पड़ता है और उससे हृदय की धारणा में बाधा आती है।

स्वामी जी – उसमें इतना कर सकते हैं जिस स्थिति में ध्यान करने में बाधा न आती हो, उसी स्तर को रखें।

साधक २– सामान्य रूप से मन्त्र बोला और उसका भावानुवाद किया, तब तक विशेष बाधा नहीं आती है। जब भावना बनाने लगते हैं जैसे कि आप सृष्टिकर्त्ता हैं, तब कुछ दिखाई नहीं देता। वहाँ से कठिनाई होने लगती है।

स्वामी जी – तो इन्होंने बतलाया कि शब्दार्थ करने तक तो कठिनाई नहीं होती परन्तु जब एक-एक शब्द का अर्थ करते हुए ईश्वर के साथ जोड़ना चाहते हैं, उस समय कठिनाई की अनुभूति होती है। तो इसमें कारण है अभ्यास की न्यूनता। ऐसे ही मन्थन की न्यूनता, वैराग्य की न्यूनता तथा ईश्वर के प्रति श्रद्धा की न्यूनता आदि कारण हैं। यह सारी न्यूनताएँ वहाँ रहती हैं। इन कारणों को हटाने के लिए उपासना से भिन्न काल में विचार करना चाहिए तथा शब्द-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण आदि से विषय की सिद्धि और पुष्टि करनी चाहिए। इसमें व्याकरण आदि का भी सहयोग मिलता है। जिसकी इतनी क्षमता है, भाषा-विज्ञान पर जिसका कुछ अधिकार है, वह यदि मन्थन करके सिद्ध करे कि 'त्रि' शब्द कैसे सिद्ध हुआ 'अम्बक' शब्द कैसे बना तो उसे सरलता होगी। किन्तु जो इतना नहीं कर सकता, वह शब्दों का सीधा अर्थ पकड़े।

साधक ८– कुछ मन्त्र जिनके अर्थ सरल हैं उनको तो साथ-साथ बोलते हुए कर लेते है। अन्यों का पूरा मन्त्र बोलने के पश्चात् पुनः रुककर अर्थ करते हैं।

स्वामी जी – उन कठिन मन्त्रों को कंठस्थ किया जाए और अतिक्ति समय में उनके अर्थों पर विशेष चिन्तन-मनन किया जाए। उनको अपने जीवन का अंग बना लिया जाए। आपने देखा होगा कि जब व्यक्ति के सामने ऊँचा उद्देश्य होता है, तब कितनी ही कठिन भाषा क्यों न हो, परिश्रम करके सबको रटकर, मन्थन करके, कंठस्थ कर डालता है। क्योंकि वह मानता है कि ये मन्त्रार्थ मेरे लिए स्वाभाविक बन जाना चाहिए। जैसे हम अपनी भाषा में किसी शब्द को बोलते हैं तो उसके अर्थ का आभास होने लगता है, वैसा ही यहाँ पर हो जाए, तब मैं अपने लक्ष्य पर जा सकूँगा। जब आप इतना परिश्रम करके उन मन्त्रों को ऐसा बना लेंगे जैसे कि बोल- चाल की भाषा होती है, तब अधिक बल नहीं लगेगा और अस्वाभाविकता नहीं रहेगी।

साधक ८– स्वामी जी ने अघमर्षण मन्त्र का जो अर्थ किया है वह तीनों मन्त्रों का मिला-जुलाकर किया है और कुछ लम्बा भी है, इससे वहाँ कुछ कठिनाई होती है।

स्वामी जी – कठिनाई को ऐसे दूर करें। जितने मन्त्रों के अर्थ सामान्य हो चुके हैं, उनका प्रयोग करते रहना और जिनके अर्थ सामान्य नहीं हुए हैं, उनमें से एक-एक मन्त्र को एक-एक दिन में तैयार करते जाएँ। वहाँ जो आपको समझ में नहीं आता, वह मुझसे या किसी अन्य से पूछ लें। इस प्रकार पक्का करते जाएँ। जहाँ-जहाँ संशय हो, पूछते जाइए। पक्का हो जाने पर प्रयोग में लेते जाएँ।

साधक ८– स्वामी जी ! धीरे-धीरे ऐसी स्थिति हो रही है कि कुछ मन्त्र जिनके अर्थ सरल हैं उनका तो साथ-साथ करते हैं। शेष रुककर कर लेते हैं।

स्वामी जी – हाँ ! तो ऐसा करते रहें और दूसरे विद्वानों के जो लेखबद्ध अर्थ हैं, उनकी सहायता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लें और सबको सामान्य बना दें।

साधक ३– पहले तीन कार्य जो करते थे मन्त्रों का उच्चारण, अर्थ, ईश्वर को सम्बोधित करना और अब चार हो गए ईश्वर के समर्पित रहना। जब ये चारों काम एक साथ करते हैं, तब अधिक भार पड़ता है।

स्वामी जी – जिस समय आप एम.ए, बी.ए आदि की परीक्षा देने जाते हैं या साक्षात्कार के लिए जाते हैं, तब आपसे कोई प्रश्न पूछा जाता है, उस समय क्या ऐसा नहीं होता? आप उत्तर देते समय पूछने वाले व्यक्ति को सम्बोधित करते हैं। वह आपसे दर्शन के या इंग्लिश के जटिल वाक्य भी पूछता है, ऐसा आप जानते हैं और मैं उसके सामने खड़ा होकर सुन रहा हूँ, ऐसा मानते भी हैं। (कौन पूछ रहा है, क्या पूछ रहा है, कहाँ खड़ा हूँ, क्या उत्तर दे रहा हूँ; ये सब एक साथ ही तो किए जाते हैं।) संसार में इस काम को प्रतिदिन हर कोई करता है, यह कोई नई घटना तो नहीं है। नई घटना कुछ नहीं है, अपितु कारण है आपने इसके ऊपर ऐसा परिश्रम नहीं किया है। आपने इसके लिए तन-मन-धन नहीं लगाया है। आपने अभ्यास नहीं किया है। आपने इसको सबसे ऊँचा काम नहीं समझा है और इसका जितना बड़ा फल है आपके मन में उतना नहीं है, उससे कम है।

आपको जो कठिन दिख रहा है, लोक में ऐसे कार्य अनेक होते रहते हैं। आप देख सकते है, भौतिक-विज्ञान की खोज करने वाले की कभी-कभी मृत्यु भी हो जाती है तो भी दूसरे उस खोज में लगे रहते हैं। वस्तुतः यहाँ तो यह बुद्धि काम कर रही है, लोग यह समझते हैं कि यह जो भक्ति नाम की वस्तु है, इसमें बल लगाना नहीं होता है, इसमें तप की ऐसी कोई बात नहीं, जैसी इच्छा हो कर लिया करो और आरम्भ करते ही भगवान् मिल जाएगा। यहाँ न तो पढ़ने-पढ़ाने की कोई बात होती है, न कोई परीक्षा देनी होती है, न इसमें कोई ज्ञान-विज्ञान का कार्य होता है। भला भक्ति में ऐसी कोई कठिनाई झेलने की आवश्यकता होती है कि मन को रोको, यह करो, वह करो। तो लोगों की बुद्धि में लगभग ऐसी उलटी बातें भरी पड़ी हैं।

एक व्यक्ति भौतिक वैज्ञानिक बनने के लिए तीस-पैंतीस वर्ष लगाता है। लाखों रुपये लगाता है और एड़ी से चोटी तक का बल लगाता है, पसीना आ जाता है। वास्तविक रूप में आप जब ऐसे परिश्रम करके देखेंगे तब पता चल जाएगा कि कितना सरल या कठिन है। परन्तु आपका या प्रायः सबका तो मन यही बना हुआ है कि ऐसे ही हो जाएगा। ऐसे ही आनन्द मिल जाएगा।

अच्छा! अब प्राणायाम मन्त्र प्रयोग करेंगे। इसका अर्थ तो स्मरण होगा? पहले बोलकर देखो –

ओ३म् भूः। ओ३म् भुवः। ओ३म् स्वः। ओ३म् महः। ओ३म् जनः। ओ३म् तपः। ओ३म् सत्यम्।

ऐसा हो सकता है किसी को यह प्रयोग रुचिकर लगे तो वह इसको लम्बा भी बना सकता है। दूसरी बात – आप इसको मन में बोलकर देखें वहाँ चाहें तो लम्बा बनाएँ, छोटा बनाएँ या बड़ा बनाएँ, आपकी स्वतन्त्रता है। तो एक बार इसको मन में बोलकर देखते हैं। एक बार शब्द और एक बार अर्थ या पूरे मन्त्र को एक बार बोलकर अर्थ करो।

प्रयोग आरम्भ .....समय लगभग एक मिनट।

अब आप रुकेंगे। आप जो कह रहे थे एक साथ कई कार्य करने से अधिक भार पड़ता है या थकान हो जाती है तो उसका एक यह उपाय है उसको रोककर स्थिति परिवर्तित कर लो। जैसे कि आप बौद्धिक अथवा शारीरिक स्तर पर थक गए तो विश्राम कर लो। दूसरा उपाय है कि कठिन कार्य को छोड़कर दूसरे सरल कार्य में लग जाओ। यह भी स्थिति को परिवर्तित करता है। कभी ऐसी स्थिति हो तो ये प्रयोग कर सकते हैं। अब विराम॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२८

ज्ञानखण्ड

नाशवान् प्रेक्षण : आषाढ़ कृ. ३/२०६०-१६/७/०३

हमारा यह कार्यक्रम ज्ञान विषय से सम्बन्धित है। ज्ञान के प्रमुख तीन विषय होते हैं - ज्ञान, कर्म और उपासना। इनके भी क्रमशः तीन-तीन स्तर होते हैं स्थूल, सूक्ष्म और सूक्ष्मतम। इनमें से प्रथम स्थूल पर बल दिया जाता है। पुनः सूक्ष्म पर और उसके पश्चात् सूक्ष्मतम पर बल दिया जाता है। यद्यपि हमारा यह घण्टा ज्ञान प्रधान है किन्तु इसके साथ कर्म और उपासना के विषय भी साथ-साथ जुड़ते रहते हैं। उनको मिलाकर समझाया जाता है। अतः उनका आना आवश्यक होता है।

अब तक हम इन तीन में से ज्ञान विषय में प्रथम स्थूल स्तर पर जड़-पदार्थों के अन्तर्गत यहाँ तक पहुँचे कि शरीर नाशवान् है। अब आप में से बताएँगे कि ऐसे कौन-कौन हैं, जो दिनभर शरीर नाशवान् है, इस स्थिति को बनाए रख सकते हैं?

साधक ७ – प्रयत्न करें तो कर सकते हैं।

स्वामी जी – यह उत्तर नहीं है। यहाँ बहुत ध्यान देने की एक बात है, बड़ी सूक्ष्म बुद्धि से पकड़ने योग्य है कि विषय से हटकर कोई बात नहीं होनी चाहिए। आपकी यह बात विषय से हटकर है कि 'प्रयत्न करें तो कर सकते हैं'। यह हमारा विषय नहीं है। हमारा विषय यह है कि अब तक हमने जो शरीर नाशवान् है, इसको समझने-समझाने का प्रयास किया; उसके अनुसार क्या आप इस स्थिति को बनाने में समर्थ हो चुके हैं और दिनभर बनाए रख सकते हैं? वैसे अब तक तो आपका उत्तर यही था कि हम इस स्थिति में नहीं रह पाते हैं। इसलिए आपको इस बात पर विशेष ध्यान देना है कि समाधि लगाने के लिए, ईश्वर साक्षात्कार के लिए पूरे दिन, जब तक सो न जाएँ तब तक, शरीर को नाशवान् देखते रहना पड़ेगा। उससे आप बच नहीं सकते हैं। अच्छा! आपकी जो एक शंका उभरी थी कि शरीर को नाशवान् समझते रहें और व्यवहार भी करें, यह कैसे सम्भव है; क्या उसका समाधान हो गया? यदि नहीं हुआ हो तो पुनः दोहराऊँ। यह सीखकर व्यवहार में लाने का विषय है। इसलिए इसको जितनी ही बार दोहराओ, जितनी ही बार पूछो, जितना परिश्रम करो, उतना ही कम है।

साधक ७ – हाँ जी!

स्वामी जी – नहीं हुआ हो तो पुनः दोहराएँगे।

साधक ३ – अभी कमी है।

स्वामी जी – यहाँ कमी के दो विभाग हैं - एक तो प्रयोग नहीं कर पाना और दूसरा समझ में ही न आना। यदि समझ में नहीं आया हो तो पुनः पूछ सकते हैं।

साधक २ – सिद्धान्त समझ में आ गया है, वह स्वीकार भी हो गया है किन्तु इस बुद्धि का सातत्य कैसे बनाए रखें, यह समझ में नहीं आया है। जैसे कि किसी साधारण विषय को लगातार स्मृति में उपस्थित किए रह जाते हैं, वैसे इस विषय को नहीं रख पा रहे हैं। इसको छोड़ना पड़ता है।

स्वामी जी – तो ध्यान देंगे कि इसके कुछ कारण रहे हैं, जैसे कि आपने ऐसे लोग भी कम देखे होंगे जो इनका आचरण कर रहे हों। ऐसे व्यक्तियों का भी प्रायः अभाव ही रहता है जो ऐसा सिखाते हों। आपने स्वयं इस विषय में कोई गवेषणा नहीं की, उसी ध्येय को सिद्ध करने के लिए सर्वस्व नहीं लगाया। पुनः यह जो बताया गया कि तीन काल में जो सत्य है, उसको जान लूँ; इस

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पर आपने बल नहीं दिया है। इसको समझने का विशेष प्रयास नहीं किया। एक बार समझने के पश्चात् और दृढ़ता के लिए समय नही लगाया। पहले बहुत समय लगाया हो, इसी के लिए लम्बे काल तक लगे रहे, ऐसा भी नहीं हो पाया। जो कुछ समझ में आया, उसको व्यवहार में लाने के लिए अभ्यास नहीं किया।

'ठीक से समझ नहीं पाना' इसका एक दूसरा दृष्टान्त देता हूँ। आपको आज भी यह लगता होगा कि मन को जड़ समझना और उसमें ऐसी स्थिति उत्पन्न कर देना कि अन्य किसी विषय में मन को नहीं लगाना; यह कठिन है। ऐसा करना कठिन पड़ता है या नहीं?

साधक गण– कठिन पड़ता है।

स्वामी जी – इसमें भी वही कारण हैं, जो 'समझ नहीं पाना' के अन्तर्गत मैंने पहले गिनाए थे। आपको पता हो कि इसमें मैंने लगभग पचपन वर्ष लगाए। इतने दिनों तक खोज की। इसके विषय में वेद-दर्शन आदि ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ा-पढ़ाया, लंबे काल तक मैं प्रयोग करता रहा, तब जाकर ऐसी स्थिति सम्पादित हो पाई कि ऐसी स्थिति बनाई जा सकती है जिसमें किसी विषय को भी न सोचना सम्भव है। इतना परिश्रम, अध्ययन-अध्यापन, तप-त्याग, वैराग्य होने पर यह सिद्ध हो पाई। इसलिए आपका ऐसा कुछ भी नहीं होने से यह बात व्यवहार में नहीं आ रही है।

इसका एक अन्य कारण है कि आपका 'मृत्यु निश्चित है' यह शत-प्रतिशत अन्तिम रूप नहीं बन पाता। क्या समझ में आया? शरीर नाशवान् है; यह शत-प्रतिशत निर्णय नहीं हो पाता। आपको शत-प्रतिशत दिखता तो है पर वह वास्तविक स्थिति है नहीं, यह बात आपको पकड़ में नहीं आई। जैसे कि कल्पना करते हैं - हममें से किसी को आदेश मिला या ऐसी कोई घटना होने जा रही हो कि आज रात्रि के दस बजे निश्चितरूपेण हमको जलाकर राख कर दिया जाएगा। इसमें विकल्प नहीं है। बच नहीं सकते। तो जो व्यक्ति जीना चाहता है, उस समय उसकी जो स्थिति होती है, वही स्थिति मेरी हो जाएगी; क्या आपका ऐसा निश्चय होता है?

साधक ३– नहीं रहता है।

स्वामी जी – नहीं रहता है तो आपका ज्ञान ही अभी कच्चा है। बात समझ में आई या नहीं? उस समय जीने के इच्छुक व्यक्ति की जो स्थिति रहती है कि अनिवार्य रूपेण शत-प्रतिशत निश्चित है कि रात्रि के दस बजे अथवा कभी भी मृत्यु हो सकती है। यदि ऐसा निर्णय हम नहीं कर पाते हैं तो यह स्थिति बनाकर नहीं रखी जा सकती है। मृत्यु के अनिवार्य रूप से सिद्ध होने पर भी और सिद्ध न होने पर भी अर्थात् कारण उपस्थित न होने पर भी मानकर चलना होगा कि मृत्यु हो जाएगी। जैसे कि हमारे लिए आठ-दस बजे या अन्य कोई काल निर्धारित नहीं हो पाया जब कि हम जला दिए जाएँगे, तब भी वही स्थिति हम अपने विषय में बनाएँगे। जब हम ऐसा मानकर चलेंगे तब यह बात दैनिक जीवन में आएगी। ऐसा करना पड़ेगा। समझ में आया? अब आप ध्यान से बैठो और यह सोचो कि क्या निश्चित है कि कल सूर्योदय होगा या कोई सन्देह है? क्या समझ में आया?

साधक ३– कल सूर्योदय होगा, इसमें कोई सन्देह नहीं है।

स्वामी जी – आप अपना बोलो!

साधक २– नहीं दिखता है।

स्वामी जी – अपना-अपना बताओ, किस-किस को निश्चय होता है कि कल सूर्योदय होगा ही। क्यों जी!

साधक ३– होगा।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – आपको कैसा लगता है ?

साधक २– हमें वह दृश्य ही दिखाई नहीं देता है कि कल होगा या नहीं। वह स्थिति सामने नहीं आती है।

स्वामी जी – जब इतनी मोटी स्थिति सामने नहीं आती है तो सूक्ष्म कैसे आएगी ? यह तो मोटा-सा उदाहरण है, यह भी समझ में नहीं आता ? आप इस बात को ध्यान में रखिए कि हमने यह समझना है कि तीन काल में सत्य-असत्य क्या है। मेरा खाना-पीना, जीना, सब कुछ इसी के लिए है; यहाँ तक पहुँचना है। यह तो एक उदाहरण है किन्तु वास्तव में शरीर नाशवान् है ही; यह शत-प्रतिशत उसकी बुद्धि में बैठ जाए और दिनभर बना रहे।

अब दूसरा उदाहरण लेंगे। इसके लिए आप यह सोचेंगे कि यह शरीर ईश्वर का है, मेरा नहीं। यह धन-सम्पत्ति ईश्वर की है, मेरी नहीं। यह भूमि ईश्वर की है, मेरी नहीं। अब यहाँ आएँगे, प्रमाणों से सिद्ध करेंगे कि यह शरीर, इन्द्रियाँ, भूमि, विद्या आदि वस्तुएँ ईश्वर के हैं, यह मानना सत्य है या मेरी हैं, यह मानना सत्य है ?

साधक ३– यह सब ईश्वर का है, यह मानना सत्य है।

स्वामी जी – अब अपना-अपना बताएँ, जैसी आपकी बुद्धि काम करती है।

साधक ८– यह जो कुछ है शरीर, भूमि, सम्पत्ति, विद्या आदि जितना भी है, सब ईश्वर का है।

स्वामी जी – अब आप ध्यान देना। कितने प्रतिशत ईश्वर का मानकर चल रहे हैं, यह आपके व्यवहार से पता चलेगा। यह तो शब्दिक ज्ञान है, आपने प्रमाणों से सिद्ध होने से मान लिया है परन्तु वस्तुतः मानते हों, ऐसा नहीं है।

साधक ८– ऐसा व्यवहार में नहीं है।

स्वामी जी – जैसे व्यवहार में यह सिद्ध नहीं हो रहा है, वैसे ही व्यवहार में मृत्यु भी दिखाई नहीं दे रही है, जिससे यह परिणाम आया कि हम शत-प्रतिशत सत्य को जानने के लिए जीवित हैं, पूरे सत्यग्राही हैं, पूरे असत्यत्यागी हैं; ऐसे आज तक नहीं बन पाए। इसलिए यह स्थिति नहीं बन पा रही है। मैंने क्या कहा; दोहरा लो।

साधक ५– हम पूरे सत्यग्राही और पूरे असत्यत्यागी आज तक नहीं बन पाए। इस कारण से यह स्थिति नहीं बन पा रही है।

स्वामी जी – यहाँ इस बात को प्रमाणों से सिद्ध करना कि शरीर, इन्द्रियाँ, नस-नाड़ियाँ, विद्या, धन-सम्पत्ति, भूमि ईश्वर की है और गृहस्थियों के लिए कहें तो ये बेटे-पोते सब ईश्वर के हैं और सिद्ध करने के पश्चात् मन-वचन-शरीर से शत-प्रतिशत मानते हुए दिनभर इसके अनुकूल व्यवहार करना है। एक मोटा दृष्टान्त लेते हैं - आप विद्यालय में रहते हैं। किसी को एक, किसी को दो और किसी को तीन-चार वर्ष हो गए। यहाँ सबको सारी व्यवस्था विद्यालय से उपलब्ध है। यहाँ जैसा कि आपको आरम्भ में बताया गया और आपने अच्छी तरह समझ लिया है कि विद्यालय विभाग में जितने भी प्रयोग करने योग्य साधन भवन, बिजली, पानी आदि हैं, सब विद्यालय के हैं। आप ऐसा मानकर चलने लगे हैं। अब आपसे पूछा जाए कि आप आज तक मान पाए हैं कि सब कुछ विद्यालय का है, तब आप कहेंगे कि हाँ ! मैं तो दिनभर ऐसा ही मानता हूँ। यह उदाहरण मैंने दिया।

साधक ३– यह तो सोचना ही नहीं पड़ता है, स्वतः ही सिद्ध है।

स्वामी जी – जैसे यह स्वतः सिद्ध है वैसे ही ईश्वर के लिए भी स्वतः सिद्ध होगा, यह सत्य है। इस उदाहरण से आप यह समझ पाए कि जैसे हम इस विद्यालय के संसाधन, उपकरणों को

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्यालय का समझकर सब उपयोग, रक्षा आदि करते हैं, ऐसा ही ईश्वर का मानकर किया जा सकता है। इसमें कोई आपत्ति नहीं आती है।

साधक १ – सभी वस्तुओं को ईश्वर का मानकर प्रयोग करने के लिए क्या उनको नाशवान् देखना अनिवार्य रहेगा अथवा बिना नाशवान् देखे भी ईश्वर का माना जा सकता है?

स्वामी जी – हाँ! जब ईश्वर का मानेंगे, उससे पहले नाशवान् सिद्ध करना पड़ेगा क्योंकि जब नाशवान् सिद्ध कर लेंगे, तब उत्पत्तिकर्त्ता होने से उनके साथ ईश्वर का सम्बन्ध अधिक जुड़ेगा।

साधक ७ – उनके साथ हमारा सम्बन्ध नहीं .....।

स्वामी जी – आप मत बोलो। बीच में अपनी बात नहीं करनी है, इससे बात घुल-मिल जाएगी और ठीक निष्कर्ष नहीं आ पाएगा।

तो जिस समय हम इसको नाशवान् सिद्ध कर लेंगे, उस समय यह भी सिद्ध होगा कि यह उत्पन्न हुआ है। पुनः प्रश्न उपस्थित होगा कि उत्पन्न हुआ है तो उत्पन्न किया गया है या स्वतः हुआ है? यहाँ ईश्वर का सम्बन्ध जुड़ेगा क्योंकि उसके द्वारा उत्पन्न किया गया है। क्या समझ में आया? जब हम न्याय की प्रक्रिया से सिद्ध करते हैं जैसे कि - शरीर नाशवान् है। यह क्या है?

साधक ३ – प्रतिज्ञा।

स्वामी जी – क्योंकि यह उत्पन्न होता है। यह क्या है? हेतु। व्याप्ति - जो-जो वस्तु उत्पन्न होती है वह-वह नाशवान् देखी जाती है। उदाहरण - जैसे घास, खेती आदि। उपनय - घास, खेती आदि की भाँति यह भी उत्पन्न होता है। निगमन - इसलिए यह घास, खेती की तरह उत्पन्न होने से नाशवान् है।

अब ऐसा कहते ही प्रश्न खड़ा हुआ कि शरीर नाशवान् है तो उत्पन्न भी हुआ है और उत्पन्न हुआ है तो स्वयं उत्पन्न हुआ या किसी के द्वारा किया गया है? तो ईश्वर के द्वारा उत्पन्न किया गया होने से इसके साथ ईश्वर का सम्बन्ध बनता है।

साधक १ – एक बार बुद्धि में सिद्ध कर लेने पर भी उसको दिनभर लेकर चलना पड़ेगा?

स्वामी जी – हाँ जी!

साधक ३ – एक बार सिद्ध कर लेने पर ईश्वर का दिखता रहे, ऐसा नहीं होगा?

स्वामी जी – नहीं। वहाँ ऐसा है व्यक्ति की उपासना अच्छी हो जाए, तब ईश्वर को सब कुछ का स्वामी मानने में घण्टे दो घण्टे के लिए कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। किन्तु जब उठकर चलेंगे और व्यवहार करने लगेंगे, तब धीरे-धीरे घण्टे दो घण्टे में स्थिति ढीली हो जाएगी। आगे बात-चीत करते-करते ईश्वर का मानना ही भूल जाएँगे। यद्यपि यह अवस्था भिन्न-भिन्न रहेगी, किसी की कितने काल तक, किसी की कितने काल तक रहेगी। प्रयास करने पर मात्रा बढ़ती जाएगी। धीरे-धीरे घण्टों तक स्थिति बनाए रखेगा। कभी ईश्वर को स्वामी मानता रहा, कभी थोड़ा असावधान हुआ और वह स्थिति हाथ से गई, पुनः अपना मानना प्रारम्भ कर दिया। पुनः प्रयास किया और अपना मानना छोड़कर ईश्वर का मानना आरम्भ किया। ऐसे स्थिति बनती-बिगड़ती रहेगी।

साधक १ – तो क्या उसमें यह कारण होगा कि वह पदार्थों को नाशवान् नहीं देख रहा है, इसलिए ईश्वर का नहीं मान पा रहा है?

स्वामी जी – हाँ! वहाँ यह हेतु रहता है क्योंकि एक पक्ष में वस्तुओं का स्वाभाविक रूप में उत्पन्न होना माना जाता है, जिसमें ईश्वर के साथ विशेष सम्बन्ध करने की आवश्यकता नहीं रहती है और दूसरे पक्ष में अन्यों के द्वारा उत्पन्न किया जाना माना जाता है, इसमें ईश्वर के सम्बन्ध की

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपेक्षा रहती है। आपका जो प्रश्न था कि नाशवान् वस्तुओं के साथ ईश्वर का सम्बन्ध कैसे जुड़ता है; इसका समाधान दूसरे पक्ष से होगा।

जैसे कि विकासवादी के मत में वस्तुएँ स्वयं उत्पन्न होती हैं और नष्ट हो जाती हैं, जबकि ईश्वर को मानने वाला पक्ष इसको स्वीकार नहीं करेगा। अब सृष्टि की अनित्यता के साथ, उसकी उत्पत्ति और उसका कर्त्ता जुड़कर आ रहा है। जैसे ही आप पूरी सृष्टि को नाशवान् सिद्ध करेंगे वैसे ही झट से यह प्रश्न उठ खड़ा होगा कि कभी यह उत्पन्न भी हुई थी और यदि उत्पन्न हुई थी तो कोई इसका कर्त्ता होगा? तो नाशवान् सिद्ध करते समय भी यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है और नाशवान् सिद्ध हो जाने के उपरान्त भी यह प्रश्न उपस्थित हो सकता है। अतः समाधान करना आवश्यक होता है।

एक अन्य बात - जैसे नाशवान् के साथ स्वयं उत्पन्न होना या उत्पत्तिकर्त्ता के होने का प्रश्न उपस्थित हो जाता है; ऐसे ही जब आप इस शरीर को नाशवान् सिद्ध करेंगे, तब इसके साथ 'मैं और मेरे' का प्रश्न भी उपस्थित हो जाता है और उसका भी समाधान करना पड़ेगा। जैसे कि जब आप समझने लगे यह शरीर चला जाएगा तो यह भी लगेगा कि यह शरीर तो मेरा है। मेरे पास जो धन-सम्पत्ति है वह भी चली जाएगी? वह धन-सम्पत्ति तो मेरी है। इस प्रकार आप 'मैं और मेरे' की बात सोचेंगे। तो इसका समाधान भी वही है - यह नाशवान् शरीर ईश्वर का है, मेरा नहीं है। वह नाशवान् धन-सम्पत्ति ईश्वर की है, मेरी नहीं है।

यहाँ दो स्थितियाँ हैं - मेरा शरीर नाशवान् है, एक स्थिति है। ईश्वर का बनाया हुआ, दिया हुआ शरीर नाशवान् है, यह दूसरी स्थिति है। तो ध्यान देंगे आप, यह वही प्रसंग है। जैसे हम इस विद्यालय के साधनों, भवन आदि के विषय में निश्चित रूप से मानकर चलते हैं और दिनभर मानते रहते हैं कि मेरा नहीं है विद्यालय का है; ऐसा ही ईश्वर का मानना और मानते रहना होगा।

अभ्यास करते-करते व्यक्ति का ज्ञान परिपक्व होता जाता है। संशय हटता जाता है और वह अधिक से अधिक समय इसी अवस्था में व्यतीत करने लगता है। इसी के साथ अब वह आगे बढ़ते-बढ़ते यहाँ तक पहुँच जाता है कि संसार में जो कोई भी वस्तु है, सब ईश्वर की हैं।

साधक ५— वह जो सम्पत्ति है उसको हमने जब प्रलयावस्था में पहुँचा दिया है तब हमारे सामने नहीं है तो हम उसके स्वामी भी नहीं हैं।

स्वामी जी — आपकी बात समझ में नहीं आ रही है, समझाने की भाषा बोलो।

साधक ५— आपने प्रलयावस्था का परिणाम बताया था कि उस समय न कोई स्व नाम की वस्तु रहती है, न कोई स्वामी नाम की।

स्वामी जी — मुझे कुछ सुनाई नहीं दिया। आप बता दो!

साधक २— इनका अभिप्राय लगता है कि जब हम प्रलयावस्था के द्वारा वस्तुओं की सत्ता समाप्त कर देते हैं तब कोई वस्तु ही नहीं रहती है, उस स्थिति में कौन किसका स्वामी और कौन किसका स्व रहेगा?

स्वामी जी — पहले मैंने एक बात बताई थी, वह आपको समझ में आई या नहीं कि वस्तु का एक कार्य रूप होता है और दूसरा कारण रूप। वस्तु इस रूप में रहती है, रहती क्यों नहीं? उसे कार्य-कारण रूप में देखो। नहीं आया तो पुनः समझ लीजिए। मैंने कहा कि वह वस्तु है, उसका यह एक रूप है, इसमें हम उससे कार्य ले रहे हैं और उसी का दूसरा कारण रूप है। वह कारण रूप से आई और निश्चिय से उसी में चली जाएगी। इस प्रकार दोनों रूपों में देखेंगे तब कोई बाधा नहीं आएगी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– नहीं आएगी।

स्वामी जी – बाधा नहीं आने वाली है। दोनों को साथ-साथ देख सकते हैं। शब्द-प्रमाण व अनुमान-प्रमाण से सिद्ध है कि वास्तव में यह शरीर उत्पन्न हुआ है और उत्पन्न होने से पूर्व पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश के परमाणु थे। दर्शन की भाषा में यह परमाणु रूप से आया और पुनः मिटकर उसी रूप में चला जाएगा। इसलिए हम उससे कार्य लेते हुए भी उसको परमाणुरूप में देखने का प्रयत्न करते हैं। वह भी इसकी एक स्थिति है। ऐसे करेंगे।

साधक ५– देखने की यह प्रक्रिया होगी कि जब जैसा हमारा प्रयोजन होगा उसके अनुसार हम बुद्धि बना लेंगे।

स्वामी जी – हम प्रयोग करते रहेंगे जैसे कि अब आपकी बुद्धि बनी हुई है कि यह संसार कार्यरूप है, इससे कार्य लेना है परन्तु इस समय आप इसको नित्य नहीं देखेंगे। क्या समझ में आया?

साधक ३– संसार को नित्य नहीं देखेंगे।

स्वामी जी – कार्य लेते हुए दोनों बातें सामने आती हैं - अनित्य देखो या नित्य। यदि आप अनित्य नहीं देखेंगे तो नित्य का दिखना आवश्यक हो जाता है।

साधक ५– स्वामी जी ! कई बार काम के लिए जब अनित्य देखेंगे उस समय चित्र दिखेगा अथवा नहीं?

स्वामी जी – आपकी बात का किसी को अनुवाद करना पड़ेगा। इनका बोला अनुवाद कर दिया करो। आपको बोलना नहीं, आता पुनरपि कम सीखते हैं। मैं भी तो बोल रहा हूँ, अन्य भी बोल रहे हैं, सुनने या समझने में किसी को कोई बाधा नहीं हो रही है। अक्षर, शब्द, वाक्य, विराम सबको सुनाई दे रहे हैं। एक आप ऐसी भाषा बोल रहे हैं जिसमें तीन बार बात बोलनी पड़ती है, पुनरपि कानों तक एक शब्द पहुँचता नहीं। अब कोई व्यक्ति यही तो कहेगा क्यों निरर्थक समय खो रहा है। इतना होने पर भी आपने अपनी भाषा के सुधार पर कोई ध्यान नहीं देना है। यह कोई विमान चलाने की बात तो है नहीं, सुनी हुई भाषा बोलनी है। नहीं आती हो तो सीख लो।

साधक ५– वस्तु को अनित्य मानते हुए कार्य लेंगे तब स्वामी जी ! हमको उसमें चित्र दिखेगा या नहीं।

स्वामी जी – बीच में इन्होंने क्या कहा वह सुनाई नहीं दिया।

साधक २– इन्होंने आपको सम्बोधन किया है। स्वामी जी ! इनका अभिप्राय है कि किसी भी कार्य वस्तु को अनित्य मानकर जब हम उनका प्रयोग कर रहे होते हैं तब उसकी अनित्यता हमारी बुद्धि में रहेगी या नहीं?

स्वामी जी – जब हम रखेंगे तब रहेगी। अनित्यता का चित्र इस रूप में रहेगा कि यह अनित्य वस्तु है और जैसे ही हम वहाँ से हटेंगे वैसे ही उसमें नित्यता का चित्र आ जाएगा। यह स्थिति पहले के संस्कारों के बल पर बन जाती है। आप कभी ऐसी स्थिति में भी जा सकते हैं जहाँ वस्तु को न तो नित्य सिद्ध करें, न अनित्य सिद्ध करें और कार्य लेते रहें। बीच में ऐसी कोई विचारधारा आ सकती है। परन्तु जब वस्तु के यथार्थ स्वरूप को देखने का प्रयास करेंगे तब हमारी वही पहले की मान्यता आ जाएगी। वह नित्य मानने की स्थिति एकाएक समाप्त हो जाएगी, ऐसा नहीं होगा। क्या समझ में आया? शरीर को जो हम जन्म से नित्य मानते आए हैं, वह बात छूमन्तर से हट जाएगी, ऐसी बात मत मानना। यह कोई सरल बात नहीं है और आपने जो नित्य को अनित्य सिद्ध किया है, वह भी बुद्धि में बना रहेगा; ऐसा भी नहीं है। थोड़े परिश्रम से यह सदैव बना रहे, इतना सरल नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान देंगे ! इस अनित्यता का व्यवहार में कहाँ प्रयोग होता है ? मान लीजिए जिस समय एक बहुत सुन्दर रूप हमारे सामने आया, उसी समय हमारे मन में वर्त्तमान जन्म के और पूर्वजन्म के संस्कार, जिसमें हम सुन्दर रूप का रस लेते रहे, वह जन्म-जन्मान्तर की वासना भी उपस्थित हो गई। इस स्थिति में सुन्दर रूप के आकर्षण से बचने के लिए सामने आए सुन्दर रूप को प्रलयवत् बना देते हैं। अब उद्वेग उत्पन्न ही नहीं होगा। प्रवृत्ति नहीं हो पाएगी।

ध्यान देना, कभी प्रलयवत् अवस्था बना लेने पर भी एड़ी से चोटी तक बल लगाने पर भी रूप बना रहता है और हम मन को रोक नहीं पाते हैं। इस स्थिति में दूसरा उपाय काम में आता है। वह है मन को जड़ समझना। मन को आपने जड़ समझने का बहुत प्रयत्न किया है अब इसका प्रयोग करें। जब आप प्रलय नहीं बना पा रहे हैं और बिना प्रलय किए वस्तु ठोस रूप में दिखाई दे रही है। उस समय मन को जड़ मानकर नियन्त्रित कर लेते हैं। उस रूप के आकार-प्रकार का आना रोक देते हैं। रोकने के भी दो ढंग हैं - प्रथम उस ओर से दृष्टि हटा लेना, दूसरा विषय को उभरने नहीं देना। यद्यपि मार्ग में चलते समय बाएँ-दाएँ दृष्टि जाएगी, सामने वाले को देखना होगा, वहाँ बचना तो पड़ेगा किन्तु उसको देखते हुए भी विषय के रूप में उभरने नहीं देंगे।

अब आप ध्यान देंगे। आकार-प्रकार सहित विषय बना रहेगा और आप मन को पूरा रोकेंगे तो वह रुक जाएगा परन्तु यह बहुत कठिन कार्य रहेगा। इसकी अपेक्षा प्रलयवत् बना देने से यह बहुत सरल हो जाएगा। तो विषयों को उपस्थित मानकर मन को नियन्त्रण में लाना, असम्भव तो नहीं, किन्तु बहुत कठिन कार्य है।

साधक १ – स्वामी जी ! जो हेयोपादेयशून्या की वैराग्य की स्थिति है, वह प्रलयवत् अवस्था बनाने के पश्चात् आती है या कब ?

स्वामी जी – वह विवेक नामक जो विज्ञान है वह पहले आएगा, पुनः वैराग्य आएगा, पुनः अभ्यास आएगा, उसके पश्चात् हेयोपादेयशून्या की स्थिति आएगी।

साधक १– पहले विवेक उत्पन्न हो गया कि यह अनित्य है। इसके पश्चात् हेयोपादेयशून्या की स्थिति आएगी।

स्वामी जी – पुनः वैराग्य आएगा, पुनः अभ्यास आएगा, उसके पश्चात् हेयोपादेयशून्या की स्थिति जुड़ जाएगी।

साधक १ – और यदि हम उस वस्तु को प्रलयवत् अवस्था में परिवर्तित न करके वर्तमान अवस्था में देखते हुए हेयोपादेयशून्या की स्थिति लाना चाहें, तो ला सकते हैं या नहीं ?

स्वामी जी – देखते हुए यह स्थिति लाना चाहें तो परिपक्व अवस्था में आ पाएगी। जब हमारा ज्ञान-विज्ञान, विवेक-वैराग्य, अभ्यास बहुत पक्का हो जाएगा, तब यह स्थिति ला सकते हैं।

साधक १ – जैसे कि सामने देख रहे हैं न दृष्टि बचाते हैं, न बचकर निकलते हैं; जैसा है वैसा सामने स्वीकार करते हैं। अब हेयोपादेयशून्या की स्थिति ला सकते हैं ?

स्वामी जी – समाधि का अभ्यास करते-करते जब अच्छी परिपक्व अवस्था हो जाएगी, तब यह स्थिति आ जाएगी।

साधक १ – तब हम प्रलयावस्था में परिवर्तन नहीं करेंगे।

स्वामी जी – उस विषय का ज्ञान पूर्ण स्पष्ट हो चुका है। उन धाराओं को जान चुके हैं कि अनित्य हैं, तब प्रलयवत् बिना बनाए हमारी स्थिति बन जाएगी। अब आप बुद्धि से अपने शरीर और पूरे विश्व के शरीरों को नाशवान् सिद्ध कर दो और यह दिखाई देने लगे कि ये सब शरीर नाशवान् हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ऐसी स्थिति को उत्पन्न करो। जैसे अब आप ध्यान में बैठकर आँख बन्द करके अपने शरीर सहित पूरे विश्व को देखें तो क्या आपको सारे नाशवान् दिखाई देंगे या नहीं? अनुभूति के साथ देखना है।

प्रयोग .....काल लगभग दो मिनट।

अब आप रुकेंगे, जैसा कि मैं अनुभव कर रहा था। मैं आँख बन्द करके बैठ गया और पूरे विश्व के पदार्थ जितने भी हैं, सबको प्रलयवत् बना दिया। उस अवस्था में भूत, भविष्य, वर्त्तमान की किसी भी वस्तु का कोई भी आकार-प्रकार या चित्र सामने नहीं आया। यह अनुभूति रही। मेरी बात समझ में आयी? आप अपना अनुभव बताएँगे।

साधक ३ – मैंने केवल शरीरों को ही प्रलयावस्था में पहुँचाया। मेरी ऐसी स्थिति बनी कि संसार में कोई भी मनुष्य नहीं है अर्थात् किसी के भी शरीर नहीं हैं। सब परमाणु हो चुके हैं; केवल इतना ही बनाया और आगे नहीं।

स्वामी जी – ठीक है और कोई अपना अनुभव बताएँगे –

साधक २ – आँख बन्द कर और खोलकर इस तरह से देखा कि एक बार तो सारे मनुष्यों से रहित पृथ्वी-पृथ्वी दिखती रही। परन्तु आँख खोलकर बनाने में यह कठिन रहता है, कभी चित्र दिख जाता है, कभी नहीं दिखता।

स्वामी जी – आरम्भिक अभ्यासी के लिए आँख खोलकर प्रलय की अवस्था बनाना कठिन है। आगे के अभ्यासी को छोड़ो, आगे का अभ्यासी तो चलते-फिरते, खाते-पीते यह अवस्था बनाए रखता है। और कौन सुनाएगा?

साधक १ – मैं तो अभी अपने शरीर से ही आरम्भ कर रहा था और यह चाह रहा था कि समय और अधिक मिले। दो मिनट में कुछ नहीं होता, कम से कम दस मिनट चाहिएँ।

स्वामी जी – आपमें से कोई सुनाना चाहे तो सुनाए –

साधक ७ – जैसा कि आपने बताया शरीर नाशवान् है उसी का अभ्यास कर रहा था।

स्वामी जी – इनको तो शब्द-प्रमाण से जो ज्ञात है, वह सुनाना है। हो सकता है इनका शरीर थोड़ा सा वृद्धावस्था के कारण या जैसे पहले से इन विषयों में आपके प्रयोग चलते रहे वर्षों तक, ऐसे इनके प्रयोग नहीं चलने से उतनी पकड़ नहीं बनती। क्योंकि जिसकी बुद्धि पूर्व से बनी हुई होती है या जो प्रयोग करता रहता है, वह जितनी गहराई से विषय को पकड़ता है, उतना दूसरा नहीं पकड़ पाता।

आपको इस विषय में एक विशेष बात बताता हूँ – जब हमने सभी मनुष्यों और पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश पूरी सृष्टि को विनाश की अवस्था में पहुँचा दिया, उसके पश्चात् अन्त में उनके चित्र बच जाते हैं। पुनः प्रत्येक चित्र को समाप्त करने की स्थिति आती है। यदि उनको भी न हटाया जाए तो वे चित्र यहाँ (ललाट) पर चक्कर काटते रहते हैं। कुछ समझ में आया?

साधक ३ – यही कि सब को प्रलय बना दिया पर जो उन वस्तुओं के चित्र हैं, वे स्मृति रूप में आ जाते हैं।

स्वामी जी – इस प्रलयावस्था के बनाने का भी एक क्रम है जिसमें पहले अपनी प्रलयावस्था बनाते हैं, पुनः परिवार, गांव-नगर, पुनः पूरे विश्व के प्राणिमात्र की बनाते हैं। आगे पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा आदि पूरे खगोल का प्रलय करते हैं। इस क्रम से सबसे धीरे-धीरे अपना सम्बन्ध हटते-हटते यहाँ (ललाट) पर एक अन्तिम चित्र रह जाता है। सारे चित्रों की समाप्ति के उपरान्त, किसी का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी हो, वहाँ कोई न कोई एक बिन्दु तो रहेगा, वह रह जाता है। उस बिन्दु को भी यहाँ सामने लाकर समाप्त करते हैं। मुख्य बात यहाँ पर है कि वह जो चित्र आ रहा है, वह क्यों आ रहा है? ध्यान देने पर पता चलता है कि मैं अभी बचा हुआ हूँ। जब तक अपने को बचाए रखते हैं तब तक यह चित्र बना रहता है। इसलिए इसको हटाने के लिए स्वयं को भी समाप्त कर देते हैं। क्या समझ में आया?

साधक १– अपना शरीर किस प्रकार से नष्ट करूँ?

स्वामीजी– अभी मैंने अपने आप को बचा रखा है, मैं मर जाऊँगा तो चित्र भी नहीं दिखेगा और मैं भी नहीं रहूँगा; दोनों ही नहीं होंगे। उसने जब अपने-आपको मिटाया, तब चित्र भी समाप्त हो गया।

साधक १– स्वामी जी! प्रारम्भ में अपने शरीर को नष्ट नहीं कर पाया?

स्वामी जी – कर पाया था। वह उभरकर पुनः आ जाता है। एक बार समाप्त कर देने पर भी, ऐसा नहीं है, वह वहीं जमा रहेगा। विचार, मन्थन करता-करता व्यक्ति पुनः वहीं पहुँच जाता है। उसकी पूर्व मान्यताएँ संस्कार के रूप में उभरकर पुनः आ जाती हैं। बहुधा वह पकड़ भी नहीं पाता। आगे चलकर इन सबको समाप्त करता है। अब विराम ॥

२१ आत्मनिरीक्षण

दोष-परित्याग-विधि : आषाढ़ कृ. ३/२०६०-१६/७/०३

आप लोगों ने अपनी भाषा में नाम मात्र सुधार करने का प्रयत्न किया है। इतना बताने पर भी आपकी भाषा वैसी ही है, न अक्षरों का पता चलता है, न शब्दों का, न वाक्यों का। इसके लिए आप विशेष प्रयत्न क्यों नहीं करते? आप ऐसी भाषा बोलो, जो यहाँ बैठे सभी व्यक्तियों को सुनाई दे। अक्षर, शब्द, वाक्य अलग-अलग सुनाई देने चाहिएँ। जबकि आप ऐसी भाषा बोलते हैं कि जिसको कम सुनाई देता है, उसको कुछ पता ही नहीं चलता। ऐसे ही अनेक शब्द घुल-मिलकर भावमात्र रह जाते हैं, पता नहीं चलता कि आप क्या कह रहे हैं। स्थिति यह है कि आपको कोई कितना ही बताए, आप वहीं के वहीं खड़े रहेंगे। भाषा के क्षेत्र में आपको जो बताया जा रहा है, उसके अनुसार यदि कोई प्रयास नहीं किया तो आप तीस वर्ष तक यहीं खड़े रहेंगे, कोई अन्तर नहीं आएगा। पता नहीं! आप ऐसी बुद्धि क्यों बनाए हुए हैं। यह दोष है, इसको कम करते जाना चाहिए, पर ऐसा प्रयत्न क्यों नहीं करते?

अब उपासना से सम्बन्धित एक बात - वह जो एक नियम है एक घण्टा प्रातःकाल, एक घण्टा सायंकाल उपासना करने का। उसमें कभी प्रातः काल पूरा एक घण्टा उपासना नहीं कर पाए, पौन घण्टा ही कर पाए तब उसकी पूर्ति के लिए सायंकाल सवा घण्टा उपासना कर सकते हैं। यदि आप ऐसी पूर्ति नहीं करते हैं तो दण्ड के रूप में एक समय का दूध बन्द कर दें। कल्पना कीजिए आज उसकी पूर्ति नहीं हो पाई, आज का दिन भी निकल गया, तो अगले दिन का दूध बन्द करें। आ गया समझ में?

साधक ६– हाँ जी!

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – आगे अन्य दोष न होवें, इसके लिए ईश्वर से डरकर स्वयं दण्ड लेना, ईश्वर से डरकर बुरा काम न करना, ईश्वर से डरकर अच्छे काम को न छोड़ना। पुनः अधिकारियों, गुरु, आचार्य से डरकर भी अच्छे काम करना, बुरे काम न करना तथा पुनः स्वयं से डरकर बुरे काम न करना और अच्छे काम न छोड़ना आदि कार्य करने होते हैं। जैसे कि जिस दिन व्यायाम नहीं करूँगा, उस दिन पूरा भोजन बन्द अथवा घी, दूध बन्द करूँगा। ऐसा दण्ड विधान बना लेते हैं तब स्वयं व्यायाम करते रहेंगे, छोड़ेंगे नहीं। अन्यथा जो व्यक्ति स्वयं अपने दोषों का दण्ड लेने के लिए उद्यत नहीं है, उसका सुधार नहीं हो सकता। आप देख लो, जैसे आज हमसे कोई दोष हो गया और कल भी वही दोष ज्यों के त्यों हो गए। इनमें कोई अन्तर नहीं किया तो यह भी एक नया दोष है। मान लीजिए तीन दोष हो गए थे तो आज दो हटा दिए, अब एक बचा। ऐसा अन्तर करना चाहिए। यदि ऐसा अन्तर नहीं करते हैं तो वे दोष कम नहीं होंगे। उलटा अभ्यास बन जाएगा और दण्ड लेने पर भी दूर नहीं होंगे। जब व्यक्ति स्वयं दण्ड लेता नहीं और दूसरा भी उसको दण्ड देता नहीं तो वे दोष होते रहेंगे और आगे चलकर नए-नए दोष व्यक्ति करने लग जाएगा। यह परिणाम निकलेगा।

व्यक्ति दोषों से कैसे बचता है, यह जानना आवश्यक है। व्यक्ति जब दोष करता है तब उसको माता-पिता, आचार्य दण्ड देते हैं। छोटा बच्चा हो तो माता की ओर से दण्ड मिलेगा, और बड़ा होने पर पिता की ओर से दण्ड मिलेगा, और बड़ा हो जाने पर आचार्य से दण्ड मिलेगा। जब इन तीनों से दोष का दण्ड मिलता है तब वह व्यक्ति दोष करने से बचता है, डरता है। आगे व्यक्ति समाज और राजा से दण्ड पाकर दोषों से बचा रहता है। आपने गांवों, परिवारों की परम्परा में पंचायतें देखी होंगी। जब कोई व्यक्ति गांव में दोष कर देता था तब उसको सब मिलकर दण्ड देते थे। जब ऐसे पंचायत की ओर से दण्ड मिलता था तब वह डरता था और दोषों से बचता था।

आपको गुजरात की एक घटना सुनाता हूँ। गुजरात के बड़े-बड़े नगरों में हमारा प्रचार का कार्यक्रम चलता रहता है। इस बार पन्द्रह दिनों के अन्तर्गत टंकारा, पोरबन्दर, जूनागढ़ आदि नगरों में यह योजना चली। एक दिन प्रचार करते-करते हम एक गांव में पहुँचे। उसका नाम तो अभी स्मरण नहीं है, कभी स्मरण कर बता पाऊँगा। तो वह गांव कसबे के ढंग का था। उसमें एक विद्यालय था जिसमें प्रचार का कार्यक्रम रखा गया था। जब हमने वहाँ की स्थिति, गतिविधियाँ पूछीं, तब गांव के लोगों ने बताया कि इस गांव में कोई शराब नहीं पीता, मांस नहीं खाता। यदि कोई चोरी से खा-पी ले और पता चल जाए तो गांव के सब लोग मिलकर उसकी पिटाई कर देते है। गांव यद्यपि कसबा जैसा है तो भी ऐसा काम करने वालों की गांव के सब लोग मिलकर पिटाई करते हैं, इससे लोग डरते हैं। अब वे मांस नहीं खा सकते, शराब नहीं पी सकते।

आपने सुना है कई राजाओं के नियम ऐसे कठोर होते हैं कि चोरी आदि करने पर हाथ कटवा देते हैं। तो राजा के डर से भी व्यक्ति दोष करने से बच जाता है। अब और आगे बढ़ो - जो व्यक्ति यह मानता है कि पाप का फल दुःख मिलता ही है और अच्छे कर्मों का फल सुख मिलता ही है, तो वह व्यक्ति यह भी मानता है दोष करने पर स्वयं दण्ड लूँगा। उस समय व्यक्ति स्वयं से डरता है। जैसे कि मैंने व्यायाम नहीं किया या कोई अच्छा काम नहीं किया तो भी दण्ड लूँगा, स्वयं को छोड़ूँगा नहीं। इस प्रकार व्यक्ति स्वयं से डरकर पाप से बचता है। आगे बढ़ो - जब व्यक्ति ईश्वर को न्यायकारी मानता है अर्थात् यदि मैं अच्छे कर्म नहीं करूँगा तब निश्चित रूपेण ईश्वर मुझे उसका दण्ड देगा। बुरा करूँगा तब ईश्वर उसका फल मुझे दुःख देगा ही। इस स्थिति में वह ईश्वर से डरकर बुरे कर्म नहीं करता।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब व्यक्ति के ज्ञान-विज्ञान का स्तर बहुत ऊँचा उठ जाता है, बहुत सुदृढ़ हो जाता है तब ज्ञान-विज्ञान ठीक स्थिर रहने के कारण विशुद्ध बना रहता है, तब वह बुद्धिपूर्वक बुरा कर्म नहीं करता। तो जब आप इस प्रकार से विचार करेंगे तब आपके दोष कम होते चले जाएँगे तथा गुण बढ़ते चले जाएँगे।

एक बात ध्यान देने की है। जब व्यक्ति बार-बार दोषों को छोड़ता है और अच्छे कर्मों को करता चला जाता है तब उसको सुख मिलने लगता है; पुनः बुरे कर्म छोड़कर अच्छे कर्म करना उसका स्वभाव बन जाता है। अच्छे कर्मों को स्वभाव से, प्रेम से, श्रद्धा से करने लगता है और बुरे कर्मों को स्वभाव से, बिना दबाव के वह छोड़ना आरम्भ कर देता है। (आप बूढ़े लोगो को नींद तो नहीं आ जाती। क्यों जी?)

यह प्रयोग ध्यान पूर्वक करने चाहिएँ। अच्छे कामों को करते जाओ, करते जाओ। यद्यपि पहले-पहले उनमें इच्छा कम होगी परन्तु कोई बात नहीं, कालान्तर में वही अरुचिकर कर्म, रुचिकर लगने लगेंगे। जैसे कि किसी को एक घण्टा उपासना रुचिकर नहीं लगती थी किन्तु करते-करते कालान्तर में उसको शान्ति मिलने लगी। बुद्धि का विकास होने लगा, राग-द्वेष कम हो गए। अब वही उपासना उसको अच्छी लगने लग गयी। प्रायः व्यक्ति में दोष का बहुत बड़ा भाग तो यह है कि वह अच्छे कर्मों को करके नहीं देखता और बुरे कर्मों को छोड़कर नहीं देखता है। इसलिए उसकी अच्छे कामों में प्रवृत्ति नहीं होती और बुरे कामों से निवृत्ति नहीं होती। क्या समझ में आया? दोहरा लो।

साधक १ – अच्छे कर्मों को करके नहीं देखता और बुरे कर्मों को छोड़कर नहीं देखता। इस कारण से उसकी अच्छे कर्म में प्रवृत्ति नहीं हो पाती और बुरे से निवृत्ति नहीं हो पाती।

स्वामी जी – यह एक बहुत बड़ा भाग है। व्यक्ति जब ईश्वर की उपासना करते-करते बुद्धिपूर्वक ऐसी स्थिति में चला जाता है, मान लो समाधि में चला जाता है तो वहाँ उसको आनन्द मिलता है, ज्ञान-विज्ञान मिलता है, उसके क्लेश समाप्त हो जाते हैं। इस अवस्था में वह व्यक्ति कहीं भी है, कुछ भी करता है, संस्था चलाता है, लेखन करता है, वह प्रचार करता है किन्तु ईश्वर की उपासना को नहीं छोड़ेगा। कारण? उसको सुख मिलने लगा। आगे बढ़ो तो यह भी कह सकते हैं कि उसको कोई एक करोड़ रुपए देने लगे और कहे कि आप ईश्वर की उपासना को छोड़कर हमारा इतना काम कर दिया करो तो भी वह कभी तैयार नहीं होगा।

आज आपके समक्ष अर्थवाद और भोगवाद का बहुत बड़ा तूफान उपस्थित है। यदि आप अपना स्तर उतना ऊँचा नहीं बनाएँगे तो यह केवल अर्थवाद, केवल भोगवाद, केवल अधिकारवाद आपको ऐसे घसीटकर ले जाएगा जैसे किसी को कोई बाल पकड़कर घसीटकर ले जाता है। आप चक्कर काटते रहना। दोहरा लो, क्या समझ में आ रहा है? ऐसा होगा। व्यक्ति की यह स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

एक दूसरी स्थिति है - व्यक्ति जब योग मार्ग पर चलना चाहता है, ईश्वर-प्राप्ति करना-करवाना चाहता है किन्तु ईश्वर प्राप्ति करने-करवाने के जो साधन हैं, उनका ऊँचे रूप में सम्पादन कर आचरण में नहीं लाता और जो विरोधी तत्त्व हैं, उनको नहीं छोड़ता, तब उसकी यह स्थिति होगी कि केवल अर्थवाद, भोगवाद, अधिकारवाद से बच नहीं सकता। वही जाकर पड़ेगा। वे उसको अवश्य घसीटेंगे। इसलिए जब व्यक्ति ध्यान, योगाभ्यास, धर्म, यम-नियम का पालन, विवेक-वैराग्य, आत्मनिरीक्षण, महापुरुषों का संग, ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ना, अतिपरिश्रम करना आदि उत्कर्ष बना लेता है तब ये अर्थवाद, भोगवाद, अधिकारवाद उसको दबा नहीं सकते। आप भी ऐसा कर लेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो ये आपको नहीं दबा पाएँगे और यदि ऐसा नहीं करेंगे तो निश्चित रूप से ये आपको दबाएँगे और आप घिसटते चले जाएँगे। भेड़ों में भेड़ की तरह मिलेंगे।

आप देख सकते है जब हम अपने ज्ञान-विज्ञान, धर्म-आचरण को ऊँचे स्तर पर ले जाते हैं तब उसका हमारे ऊपर एक विशेष प्रभाव पड़ता है। जैसे कि हम ऊँचे स्तर पर आत्मा-परमात्मा की सारी विद्या पढ़ते हैं और हमारा आचरण बहुत ऊँचा होता है, हमारी उपासना बहुत ऊँची होती है, दोषों को हमने हटाया होता है तथा ज्ञान, आत्मविश्वास, आनन्द की उपलब्धियाँ हुई होती हैं तब भोगवाद की ओर हम नहीं खिंचते हैं। इस प्रकार अपने विचारों से व्यक्ति भोगवाद की ओर नहीं खिंचता अन्यथा अपने विचार ही व्यक्ति को घसीटकर ले जाते हैं। पतन के दो क्षेत्र हैं - प्रथम हम स्वयं अपने-आपको नीचे गिराते हैं और दूसरा समाज, राजा, अन्य दुष्ट लोग हमको नीचे गिराते हैं। दोहराओ, क्या समझ में आया ?

साधक ५ – पहला भाग यह है कि हम स्वयं को नीचे गिराते हैं और दूसरा भाग हैं समाज हमको नीचे गिराता है।

स्वामी जी – समाज, राजा, बाहर का जो वातावरण है, वह हमको नीचे गिराता है। हम स्वयं को नीचे कैसे गिराते हैं; यह विद्या प्रत्येक व्यक्ति को आनी चाहिए। (इसका ज्ञान प्रत्येक व्यक्ति को होना चाहिए।) सोचो, विचारो और बताओ क्या समझ में आया ?

साधक १ – हम स्वयं को नीचे कैसे गिराते हैं, यह विद्या प्रत्येक व्यक्ति को आनी चाहिए।

स्वामी जी – यदि यह विद्या नहीं आती तो अपने-आपको स्वयं वह व्यक्ति नीचे गिराए बिना रह ही नहीं सकता। ऐसा हो ही नहीं सकता कि वह गिरने से बच जाए। शब्द-प्रमाण को लेना हो तो गीता को स्मरण कर लो ! क्या पाठ है ?

साधक ३ – **उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्। आत्मैव ह्यात्मनो बन्धुरात्मैव रिपुरात्मनः ॥** गीता६/५।

भावार्थ – अपने कल्याण के लिए स्वयं प्रयत्नशील रहे, नीचे की ओर गिरने से स्वयं को बचाता रहे। सतत अपना सुधार करनेवाला स्वयं अपना मित्र बना रहता है, इसके विपरीत अपना अहित करनेवाला स्वयं अपना शत्रु होता है।

स्वामी जी – आत्मा ही आत्मा का बन्धु है, आत्मा ही आत्मा का शत्रु है। कैसे ? जब आत्मा स्वयं को सुखों से बांधने वाला होता है तब वही आत्मा का बन्धु है। जब इसने ज्ञान-विज्ञान, उपासना, परोपकार आदि से अपने जीवन को, समाज को, राष्ट्र को ऊँचा नहीं उठाया, अपने कर्त्तव्यों को छोड़ दिया तब यह अपना शत्रु बन गया। अर्थात् अपना धर्म छोड़ा तो शत्रु बन गया और अपना जो कर्त्तव्य था ईश्वर की आज्ञा का पालन, ऋषियों का विधान, जब उनको इसने किया तो आत्मा ही आत्मा का बन्धु बन गया। इसलिए हम स्वयं अपने बन्धु-हितकारी और शत्रु-विरोधी कैसे बनते हैं; यह जानना चाहिए। एक साधारण व्यक्ति की जो स्थिति, गतिविधि है, उसमें आप देखेंगे कि वह अपनी हानि स्वयं करता रहता है। विविध प्रकार से अपने जीवन को नीचे गिराता है परन्तु दूसरे लोगों को दोषी सिद्ध करने का प्रयास करता है अर्थात् अपनी उन्नति में दूसरों को बाधक अधिक मानता है और स्वयं को बाधक बहुत कम मानता है। अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३० यज्ञीयोपदेश

पुरुषार्थ प्रयोग : आषाढ़ कृ. ४/२०६०-१७/७/०३

हम सबको यह जानना चाहिए कि विशुद्ध वेद-विद्या और लाखों ऋषियों ने अपना जीवन समर्पित करके जो खोजपूर्ण ग्रन्थ बनाये तथा विशेषकर योगविद्या का स्वरूप जिसे उन्होंने समझ कर अपने जीवन में उतारा और पुनः पूरे विश्व के कल्याण के लिए अपने ग्रन्थों में लिख दिया; वे सब आज हमको उपलब्ध हो रहे हैं। आज हम उस विद्या को सुन रहे हैं, ऐसा समझना चाहिए।

इस योग विद्या से, ब्रह्म विद्या से, ईश्वर साक्षात्कार से हमको क्या मिलेगा? इनके माध्यम से हम समाज व अन्य प्राणियों को क्या लाभ पहुँचा सकेंगे? अर्थात् इस विद्या से हमारे जीवन व समाज, राष्ट्र और विश्व की कृतकृत्यता होती है, पूर्ण सफलता मिलती है और इसको प्राप्त न करने से हम, समाज व पूरा विश्व विफल हो जाते हैं। यदि आप ऐसा समझेंगे, जानेंगे तो आप सर्वस्व की आहुति देंगे, बिना किसी लौकिक स्वार्थ के सब तप-त्याग करने के लिए तैयार हो जाएँगे और यदि ऐसा नहीं समझेंगे तो आप इस स्थिति से ठीक विपरीत दिशा में चले जाएँगे। हाँ जी! क्या समझ में आया?

साधक ४ – ईश्वर-प्राप्ति का लक्ष्य बनाएँगे और उसके अनुसार जीवन का निर्माण करेंगे तभी हम समाज, देश आदि के लिए सर्वस्व का त्याग करने के लिए तैयार हो सकेंगे।

स्वामी जी – हाँ जी! आपको क्या समझ में आया?

साधक ५ – जब हमें यह बात समझ में आ जाएगी कि इस ब्रह्म विद्या से ही स्वयं के जीवन की कृतकृत्यता हो सकती है और इसी से सफलता मिल सकती है और इसी विद्या से समाज, राष्ट्र और विश्व सफल हो सकता है तभी हम इस विद्या के लिए तन-मन-धन से समर्पित हो सकते हैं। यदि यह बात हमें समझ में नहीं आती है तब न तो हमारा जीवन सफल हो सकता है और न ही समाज, राष्ट्र और विश्व सफल हो सकता है।

स्वामी जी – यह परिणाम है। यह दृश्य, यह निश्चयात्मक ज्ञान यदि आपके मन में रहता है तब आप तन-मन-धन से इसकी सिद्धि के लिए प्रवृत्त रहेंगे और इसके विपरीत आचरण से आपकी यह स्थिति नहीं बन पाएगी।

एक उदाहरण - जैसे कि लोक में कोई व्यक्ति केवल अपनी लौकिक स्थिति को सुव्यवस्थित करने के लिए, अपने परिवार को सुखी बनाने के लिए पच्चीस-तीस वर्ष तक घोर परिश्रम करता है तब वह अच्छा योग्य व्यक्ति बन पाता है। वह दस वर्ष या बारह वर्ष का था उसी समय से वह जानता है कि यदि मैंने अपनी योग्यता बना ली तब मैं और मेरा परिवार साधन-सम्पन्न होकर सुखपूर्वक रहेगा। यदि मैंने अपनी इतनी योग्यता नहीं बनाई तो मेरे परिवार की स्थिति ठीक नहीं हो पाएगी।

अब वह पचास-साठ वर्ष तक भी पूरा बल लगाकर जूझता है। बड़े-बड़े कारखाने खोलता है। व्यवसाय करता है। इसको तो आप समझ गए होंगे, यह लोक में देखा जाता है। नहीं समझे तो पुनः दोहराता हूँ। जब वह व्यक्ति छोटे से सुख के लिए, क्षणिक सुख के लिए, चार प्रकार के दुःख-मिश्रित सुख को भोगने के लिए साठ वर्ष लगाता है तो इस नित्य सुख के लिए दुःख-रहित सुख के लिए कितना परिश्रम करना पड़ेगा? उससे हजार गुना अधिक करना पड़ेगा। नहीं आया समझ में?

जब उस साधारण व्यक्ति को लौकिक क्षणिक सुख के लिए, जिसमें चार प्रकार का दुःख भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अनिवार्य रूप से भोगना पड़ता है, उसके लिए तन-मन-धन सहित साठ वर्ष लगाने पड़ते हैं; तो जो ब्रह्म-प्राप्ति रूपी नित्य और दुःख-रहित सुख है, उसके लिए कितना अधिक परिश्रम करना पड़ेगा? कल्पना करके सोचो! आ गया समझ में?

साधक ७– बहुत अधिक करना चाहिए।

स्वामी जी – जब व्यक्ति तुलनात्मक अध्ययन करता है तब वह समझता है कि लोक में क्षणिक और जिसमें चार प्रकार के दुःख संमिश्रित हैं, उसके लिए इतना परिश्रम करना पड़ता है; तो जो मैं ईश्वर को प्राप्त करूँगा और समाज, राष्ट्र, विश्व को करवाऊँगा तब मुझे कितना परिश्रम करना चाहिए, कितना त्याग करना चाहिए, कितनी सूझ-बूझ से मुझे कार्य करना चाहिए? जब आप ऐसे विचारकर चलेंगे तो निश्चित रूप से वह स्थिति आएगी। आप उतना ही परिश्रम करेंगे तो आपको सफलता मिलेगी। इसमें कोई मतभेद नहीं, विकल्प नहीं है।

हजारों बड़े-बड़े वैज्ञानिक और लाखों अरब-खरबपति, राजा-महाराजा एड़ी से चोटी तक लगे हैं कि मुझे लौकिक सुख मिल जाए, सांसारिक सुख मिल जाए। यहाँ यह सुख एक पक्ष में तो न्यायपूर्वक, धर्मपूर्वक मिलता है और दूसरे पक्ष में अन्यायपूर्वक, अधर्मपूर्वक भी मिलता है। परन्तु आज लोक में यह सीमा नहीं रही है कि न्यायपूर्वक सम्पत्ति को उपार्जित किया जाए, न्यायपूर्वक ही धन कमाकर सुख भोगा जाए। कोई-कोई व्यक्ति हो सकता है जो इस मर्यादा का पालन करता हो।

अन्याय की स्थितियाँ बाढ़ के रूप में चल रही हैं। ऐसी स्थिति में आप यदि स्वयं को इतना परिपक्व नहीं बना पाते या नहीं बनाना चाहते हैं, अपितु आलस्य-प्रमाद करते हैं तो वर्त्तमान स्थिति से टकराकर आप योगी बन जाएँ; यह सम्भव नहीं है। क्या समझे? यह असम्भव है। इसलिए आपको ऐसी स्थिति सम्पादित करनी पड़ेगी। आपको यहाँ तक पहुँचना पड़ेगा।

एक बात का ध्यान रखना। विशेष योगियों को छोड़कर यह पूरा संसार भटका हुआ है किन्तु इन भटके हुए संसार के प्रति ईर्ष्या न कर लेना। क्या समझे आप? उनके प्रति द्वेष न करना, उनको दीन-हीन न मानना, उनसे घृणा न करना, उनको छोटा न मानना। यदि ऐसा पुट आपके मन में आ गया तो आप, कड़वी भाषा में कहूँ तो धराशायी हो जाएँगे। आप इस मार्ग पर चल नहीं सकते।

जो योगी बनना चाहता है उसके हाव-भाव इनके प्रति ऐसे उभरने चाहिएँ कि ये भटके हुए लोग हैं, ये इसलिए भटक गए कि इनको माता-पिता, गुरु, राजा ने कोई ऐसी विद्या नहीं सिखाई-पढ़ाई। अतः पता नहीं होने से इनको जो ठीक लगता है, उस पर ये चल रहे हैं। अपने विषय में ये मानते हैं कि हम शत-प्रतिशत ठीक हैं, इसलिए भी ऐसा कर रहे हैं। तो अब आपको सोचना है कि मैं स्वयं इस मार्ग पर चलता हुआ इनको कैसे बचाऊँ? कुछ समझ में आया? योगाभ्यासी को लौकिकों के लिए कैसे सोचना चाहिए, दोहरा लो। एक बार सुन लेने से तो काम चलने वाला है नहीं। लाख बार दोहराएँगे, वर्षों तक दोहराएँगे तब जाकर स्थिति बनेगी। थोड़े काल में यह स्थिति बनने वाली नहीं है।

आपको सोचने के दोनों ढँग तो आ गए समझ में। योगाभ्यासी ऐसा (हितकारी भाव से) भी सोच सकता है और वैसा (द्वेषपूर्ण) भी सोच सकता है। उसको वैसा नहीं सोचना चाहिए जिसका निषेध किया है। उसको वैसा सोचना चाहिए जिसका विधान किया है। विहित रूप में सोचने से वह योगी बन जाएगा, उस स्थिति में पहुँच जाएगा।

कभी-कभी कोई व्यक्ति अकारण, स्वार्थ-अज्ञानता से योगाभ्यासी के ऊपर मिथ्या आरोप लगा देता है और योगाभ्यासी उस झूठे आरोप को, बिना कारण के आरोप को सहन नहीं कर पाता है, तब समझ लेना वह वहीं विफल हो जाएगा। क्या समझ में आया? अच्छा! उस समय आप क्या

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करोगे? कोई आपके ऊपर बिना कारण के मिथ्या आरोप लगाता है, अज्ञानता से लगाता है, जान-बूझकर लगाता है, अपने स्वार्थ के लिए लगाता है और आपके मना करने पर भी मान ही नहीं रहा है तब आप क्या करोगे? कैसे अपनी शान्त स्थिति बनाओगे?

साधक २– सहन करना पड़ेगा।

स्वामी जी – पड़ेगा या करना चाहिए? दोनों धाराओं में अन्तर है। क्या? भई! यह तो सहन करना ही पड़ेगा; इस धारा वाला व्यक्ति योगी नहीं बन पाएगा, इस स्थिति वाला व्यक्ति योगी नहीं बन पाएगा। सहन करना ही चाहिए, सहन करना मेरा धर्म है, सहन करना तप है, जब मैं यही नहीं करूँगा तो योगी कैसे बन पाऊँगा? यहाँ एक प्रश्न आता है इस मिथ्या आरोप की सहनशीलता के सिद्धान्त को ठीक कैसे माना जाए? तो उसका समाधान इस प्रकार से करता है कि मैंने पढ़ा है, सुना है कि पूरा संसार अनादिकाल से, आज और आगे भी ईश्वर के ऊपर मिथ्या आरोप बिना कारण के लगाता आया है और ईश्वर आनन्द से उन्हें सहता आ रहा है। क्या समझ में आया? दोहराओ!

साधक ५– ईश्वर का स्वभाव भी इसी प्रकार का है और यदि हमें उसको प्राप्त करना है तब उसके स्वभाव को हमें भी अपनाना होगा।

स्वामी जी – एक अन्य बात - यदि यह स्वभाव बुरा होता तब ईश्वर भी इस स्वभाव को नहीं अपनाता। अब क्या समझ में आया? यदि यह कार्य बुरा होता तब ईश्वर भी इसको स्वीकार नहीं करता। दूसरे पक्ष में अहिंसा आदि व्रतों का सार्वभौम रूप में पालन भी ऐसे ही हो सकता है। इस समाधान से व्यक्ति अपने-आप को बचाता, अपने को नियन्त्रण में रखता हुआ चलता जाता है। ये योगाभ्यासी के लिए, ईश्वर-साक्षात्कार करने वाले के लिए अनिवार्य नियम रहते हैं। हम उस पक्ष को यहाँ पर विशेष मन्थन के रूप में नहीं लाते जहाँ कभी-कभी अन्यायपूर्वक, बिना किसी कारण के भी अपने स्वार्थ से कोई व्यक्ति हमको मारने लगे, चोट पहुँचाने लगे, आघात पहुँचाने लगे तब अपनी रक्षा करना, उससे बचना, उस व्यक्ति को रोकना; इसका निषेध नहीं है। समझ में आई बात या नहीं आई, दूसरी भी आ गई?

यद्यपि यह प्रतिक्रिया सामान्य रूप से सबके लिए सदा उचित नहीं होती किन्तु जो अधिकारी है, जिसकी स्थिति अच्छी हो गई है, वह किसी त्रुटि करने वाले को, दोष करने वाले को यदि उसके भले के लिए दण्ड देता है तो ऐसा करना योग में बाधक नहीं है। क्या समझ में आया? वहीं पर पहुँच जाओ, कहाँ पर? आपको पता ही नहीं चलेगा कहाँ पर पहुँचोगे। हाँ जी!

साधक ८– ईश्वर भी इसी प्रकार ...।

स्वामी जी – इसको ईश्वर के साथ जोड़ेंगे। जैसे कि गदहा, घोड़ा, सूअर आदि भयंकर योनियों को देखकर व्यक्ति डरता, घबराता, दुःखी हो जाता है और कहता है कि हे भगवान्! मैं ऐसा न बन जाऊँ। ऐसा भयंकर दण्ड देने वाला भगवान् ही है परन्तु उन जीवों का कभी बुरा नहीं चाहता, उनके साथ कोई द्वेष की स्थिति नहीं बनाता। वस्तुतः यदि कोई अधिकारी व्यक्ति या न्यायाधीश न्याय-पूर्वक दण्ड का उपयोग करता है, तब उसमें बुराई नहीं है। वह अच्छाई है। यह सन्तुलन है। ऐसा योगाभ्यासी कर सकता है।

परन्तु ध्यान देना। नया साधक नया-नया योगाभ्यास करने वाला, नया-नया यम-नियम का पालन करने वाला ऐसा नहीं कर सकता। यदि कोई व्यक्ति उसके ऊपर बिना कारण के कुछ दोष आरोपित करे, कुछ ऐसी-वैसी चेष्टा करे, तब उसको तत्काल दण्ड देने की बात न करे। मैं दण्ड दूँगा और अपनी स्थिति बनाए रखूँगा; इस भ्रम में नहीं पड़ जाना चाहिए। कुछ बात समझ में आई?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको मैं बार-बार कहता हूँ, शुद्ध ऊँची भाषा बोलो। भले ही उतना सूक्ष्म उच्चारण नहीं कर पाते। पर ऐसा तो बोलो कि कम से कम सुनने वाले को अक्षर, शब्द, वाक्य पकड़ में आ जाए। अर्थात् बोलना सीखो, इतना तो आपको समझ में आए, मैं यह चाहता हूँ।

अब हम प्रयोग करेंगे। गायत्री मन्त्र से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। यह मैंने जो चित्र आपके सामने रखा; यह व्यवहार का चित्र है, कर्म का क्षेत्र है। अब उपासना के क्षेत्र में हम क्या करते हैं, उसको देखो! अब हम गायत्री मन्त्र का पाठ करते हुए एक-एक शब्द का अर्थ भी करेंगे। ईश्वर को सम्बोधित करेंगे और ईश्वर-समर्पित रहेंगे। अन्य विषयों को नहीं उठाएँगे। यह ध्यान की स्थिति है -

प्रयोग आरम्भ.....समय लगभग १ मिनट।

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

यह मध्यकोटि का उच्चारण है। पाठ करना, एक-एक शब्द का अर्थ भी करना। ईश्वर को सम्बोधित करना और स्वयं को ईश्वर-समर्पित रखना। ये कार्य चलते रहें। हाँ जी! इस पाठ में आपकी कैसी स्थिति रही।

साधक ३- उच्चारण के साथ अर्थ किया, तब समर्पण छूट गया। जब समपर्ण को ठीक से किया, तब अर्थ ठीक प्रकार से नहीं हो पाया।

स्वामी जी - इन्होंने अपनी स्थिति का वर्णन किया। इन्होंने बतलाया कि जब मैंने अर्थ किया तब ईश्वर-समर्पण छूट गया और ईश्वर-समर्पित होने का प्रयास किया तब अर्थ छूट गया। परन्तु यह कोई नई घटना नहीं है। अभी आप सबकी यही गतिविधियाँ रहेंगी। इसलिए दोषों को हटाते जाओ और स्थिति सम्पन्न करते जाओ। कालान्तर में अर्थ के साथ-साथ ईश्वर-समर्पण भी रहेगा, ईश्वर को सम्बोधित भी करेंगे, अर्थ का विचार भी करेंगे। सब साथ-साथ सम्पन्न हो जाएगा।

अब हम वह प्रयोग करेंगे जिसको एक साधारण व्यक्ति भी कर सकता है, मध्यम स्तर का भी कर सकता है और उच्चकोटि का विद्वान् भी कर सकता है। सबके लिए समान उपयोगी होगा। इसके लिए जप की विधि, थोड़ा बहुत ईश्वर के स्वरूप को भी जानना होता है। जैसे कि - हे ईश्वर! आप सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार, अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता हैं। मैं जीवात्मा सत् भी हूँ, चित् (चेतन) भी हूँ। मेरे लक्षण **इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति**। न्याय द. १/१/१०। मैं एकदेशी हूँ, अल्पज्ञ हूँ, कर्म करने में स्वतन्त्र हूँ, फल भोगने में आपके आधीन हूँ। अब मैं आपकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करना चाहता हूँ क्योंकि आपको पाकर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा, आनन्दित हो जाऊँगा।

अब वह ओम् सच्चिदानन्द! इस वाक्य का प्रयोग करता है और करने की पद्धति, इसके ढंग, रीति अनेक प्रकार की हैं - जैसे कि उसने ओम् सच्चिदानन्द का पाठ किया, पुनः रुककर कहा - हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सत्-चित्, आनन्द स्वरूप हैं। यह भावना कहलाती है।

अब आप प्रयोग करके देखिए। मेरे साथ मिलकर बोलने की क्षमता हो तो मिलकर बोलिए- ओम् सच्चिदानन्द! हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक सत्-चित्, आनन्दस्वरूप हैं। ओम् सच्चिदानन्द! हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक सत्-चित्, आनन्द स्वरूप हैं। यहाँ ध्यान देना, यदि इतना ही अर्थ करना हो, इतने को ही सम्भाल सकते हों, तब इतना ही रखें। यदि अर्थ का कुछ विस्तार कर अपने-आपको नियन्त्रण में रख सकते हों, तब विस्तार करें। उदाहरण - जैसे कि पाठ किया ओम् सच्चिदानन्द!

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। आप इस सृष्टि को बनाते हैं, इस सृष्टि का पालन करते हैं, आपने हमारे जीने की सारी व्यवस्था की हुई है। आपके कारण से ही हमारे शरीर में रस, रक्त आदि सारे धातु बनते हैं। आपके किए इस संविधान-व्यवस्था से सूर्य, चन्द्रमा आदि हमारी बाहर से रक्षा करते हैं। ऐसे यदि विस्तार करना चाहें, तब थोड़ा-सा कर सकते हैं। यदि विस्तार नहीं करना हो, तब इतना ही अर्थ करें कि आप सर्वरक्षक हैं।

कोई व्यक्ति इसी जप को धुन के रूप में करना चाहता है। उसकी क्षमता है अथवा उसको अच्छा भी लगता है तब वह थोड़ी-सी धुन को बनाएगा - ओ३म् सच्चिदानन्द ! नाक से अच्छे प्रकार से श्वास लेना है। ओ३म् सच्चिदानन्द ! ओ३म् सच्चिदानन्द ! यह धुन अपने रूप में, कुछ स्थिति में संगीत से मिली हुई है और यदि कभी-कभी व्यक्ति धुन को थोड़ा-सा और परिवर्तित करता या और थोड़ा-सा संगीत के ढंग से बोलता है, तब उसका प्रयोग भी हो सकता है।

अब हम धुन को थोड़ा-सा परिवर्तित करेंगे - ओऽऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द। ओऽऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द। आप अब रुकिए। अब आप मानसिक जप करके देखो। जैसा आपको अच्छा लगता है बिना धुन के अथवा धुनसहित और अर्थ भी करो। आरम्भ कीजिए मानसिक जप। ओम् सच्चिदानन्द ! का जप करना है। अब आप रुकिए। अब विराम ॥

३१ क्रियात्मक योगाभ्यास

साधनसंग्रह : आषाढ़ कृ. ४/२०६०-१७/७/०३

अपनी स्थिति को दृढ़ बनाए रखने के लिए योगाभ्यासी प्रारम्भ में सज्जा करता है। वह जिस लक्ष्य पर पहुँचना चाहता है उस लक्ष्य की पूर्ति के लिए ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में अनेक प्रमाणों से अपनी मान्यता की दृढ़ स्थिति बनाता है। ईश्वर के विषय में संशय या भ्रान्ति नहीं उठाता है, यदि उठा लेता है तो तत्काल उसका समाधान करता है। ऐसी स्थिति बनाकर ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव कैसे हैं, इसको जानने के लिए आरम्भ करता है -

सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है, वह इस वाक्य का अर्थ करता है - सब सत्य विद्या अर्थात् यह प्रसिद्ध है कि विद्या अनन्त है। अच्छा ! पहले आप क्या मानते हैं ? आपको यह बात जँचती है या नहीं कि विद्या अनन्त है। ज्ञान अनन्त है। विद्या की सीमा नहीं है। यदि इस काल में उसको सिद्ध करने की आवश्यकता पड़े तो प्रमाणों से सिद्ध करता है। जब सिद्ध करने की अपेक्षा नहीं रहती तब वह सीधा कहता है - हे ईश्वर ! आपमें अनन्त विद्या है। यहाँ अन्य पुरुष के स्थान में मध्यम पुरुष का प्रयोग करता है। हे ईश्वर ! आपमें सब विद्याएँ हैं। आप अपने स्वरूप को, जीवात्माओं के गुण-कर्म- स्वभाव को, प्रकृति-विकृति अर्थात् पूरी सृष्टि को जानते हैं।

यदि इस अंश को और पुष्ट करना चाहता है तब वह बोलता है कि हे ईश्वर ! आपमें सब विद्याएँ हैं और सत्य विद्याएँ हैं। आप में जैसे सर्व विद्याएँ हैं वैसे हम जीवात्माओं में नहीं हैं। हम जीवात्माओं में जो ज्ञान होता है वह मिथ्या भी होता है, विपरीत भी होता है; आपमें कभी विपरीत

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान नहीं होता। हम जीवात्माओं में संशयात्मक ज्ञान होता है, आप में कभी संशयात्मक ज्ञान नहीं होता है। हम किसी विषय में कुछ भी नहीं जानते हैं, आप सभी विषयों को सर्वथा जानते हैं। हमारा ज्ञान का स्तर निर्णीत रूप में हो जाने पर भी पुनः भ्रान्ति, संशय और अभाव की स्थिति में चला जाता है। हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे। मैंने क्या कहा ? आपको सावधान रहना पड़ेगा। इधर-उधर नहीं सोच सकते, अन्यथा पकड़ नहीं पाएँगे।

साधक ७ – हमारा ज्ञान पृथक् है। परमात्मा का पृथक् ज्ञान है। हमको संशय होता है परमात्मा को संशय नहीं होता है।

स्वामी जी – अब आप बोलेंगे।

साधक ५ – हमारा ज्ञान भ्रान्ति, संशय और अभाव की स्थिति में जा सकता है, ईश्वर का ऐसा नहीं होता है।

स्वामी जी – आप बताएँगे उन्होंने जो बात कही उससे आपको क्या समझ में आया ?

साधक ६ – हमारा ज्ञान जो है.....।

स्वामी जी – भाषा जमकर बोलनी है। एक-एक अक्षर, शब्द सबको सुनाई दे, एक व्यक्ति को लाभ हो और दूसरे चुपचाप बैठे रहें, ऐसा नहीं करना।

साधक ६ – हमारे ज्ञान का स्तर निर्णीत होने पर भी संशयात्मक हो जाता है, ईश्वर का नहीं।

स्वामी जी – कैसे ?

साधक ६ – जैसे कि यह शरीर ईश्वर का दिया हुआ है, यह निश्चयात्मक ज्ञान हो गया, पुनरपि संशय हो सकता है या हो ही जाता है, हम इसे अपना मान लेते हैं।

स्वामी जी – ईश्वर के निर्णय में ऐसा परिवर्तन कभी नहीं होता है। जीवात्मा और ईश्वर के ज्ञान में अन्तर होता है, इससे एक और बात सिद्ध होती है कि जीवात्मा का स्वरूप और ईश्वर का स्वरूप, दोनों भिन्न-भिन्न हैं। अब आप बोलेंगे ?

साधक ४ – जो ज्ञान की स्थितियाँ हैं उससे पता चलता है कि ईश्वर और जीवात्मा के स्वरूप में भेद है।

स्वामी जी – सबको समझ में आया ? नहीं आया हो तो पुनः सुनो ! जिस समय साधक सज्जा कर रहा था, उस समय ईश्वर की तुलना में अपनी स्थिति का वर्णन करते हुए उसने कहा कि हम जीवात्मा और ईश्वर के ज्ञान में अन्तर है। हमारे ज्ञान में भ्रान्ति होती है किन्तु ईश्वर के ज्ञान में कभी भ्रान्ति नहीं होती। हम रस्सी को सांप और सांप को रस्सी बार-बार समझ लेते हैं। ईश्वर को किसी भी विषय में ऐसी भ्रान्ति कभी नहीं होती। यह रस्सी है या यह सांप है; ऐसा संशय हम जीवों के ज्ञान में होता है, ईश्वर के ज्ञान में नहीं। जीव किसी विषय में सर्वथा नहीं जानता, ज्ञान शून्य होता है, ईश्वर का ज्ञान किसी भी पदार्थ के विषय में कभी शून्य नहीं होता। समझ में आ गया ? ऐसा कोई पदार्थ नहीं, पदार्थ के ऐसे कोई गुण-कर्म-स्वभाव नहीं, ऐसी कोई क्रिया नहीं, ऐसा कोई विज्ञान नहीं, ऐसी कोई उपासना नहीं, ऐसी कोई स्थिति नहीं, जो ईश्वर के ज्ञान में कभी न रहती हो। इससे यह भी सिद्ध हुआ कि हमारे और ईश्वर के ज्ञान में जो अन्तर है, वह सदा रहता है। अतः ईश्वर हमसे भिन्न वस्तु है, हम ईश्वर से भिन्न हैं; यह सिद्ध हो गया।

पढ़े-लिखे विद्वान्, बुद्धिजीवी, लेखक, व्याख्याकार या संस्था चलाने वाले अथवा साधना करने वाले भी सैंकड़ों नहीं हजारों लोग इस बात को मानते हैं, प्रचार करते हैं कि ब्रह्म के अतिरिक्त अन्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई वस्तु नहीं है, अन्य कोई पदार्थ नहीं है। यह व्यापक मान्यता है और इससे पता चलता है कि ज्ञान के क्षेत्र में व्यक्ति कहाँ-कहाँ उलझता है।

अब मैं इस बात को भौतिक वैज्ञानिकों के साथ जोड़ता हूँ। जो वैदिक परम्परा को मानने वाले हैं उनको पृथक् कर दें, शेष देश-विदेश में जितने भौतिक वैज्ञानिक हैं, वे सारे के सारे ईश्वर नाम की वस्तु जानने योग्य है, उसको जानना चाहिए, उसकी कोई सत्ता है, वह हमारे लिए उपयोगी है आदि मानने के लिए तैयार नहीं हैं। ज्ञान के क्षेत्र में यह एक बहुत बड़ी भूल है।

हम चल रहे थे आर्य समाज के प्रथम नियम - सब सत्य विद्या .... एक बात हो गई। अब दूसरी बात - और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं। तो साधक ईश्वर के समक्ष समर्पित होकर बात करता है - हे ईश्वर ! संसार में विद्या से जानने योग्य जितने पदार्थ हैं, उन सबका आदिमूल निमित्त कारण, बनाने वाला आपके अतिरिक्त कोई नहीं है। हे ईश्वर ! यहाँ उन पदार्थों की चर्चा है जो सत्त्व-रजस्-तमस् से बने हैं। आपने सत्त्व-रजस्-तमस् तीन प्रकार के सूक्ष्म द्रव्यों को लेकर महत्तत्त्व नामक पदार्थ की उत्पत्ति की, निर्माण किया। आपने महत्तत्त्व नामक पदार्थ से अहंकार नामक तत्त्व की उत्पत्ति की। अहंकार नामक तत्त्व से आपने एक मन, पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ, पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच तन्मात्र; इन सोलह पदार्थों की उत्पत्ति की। उसके पश्चात् आपने पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश की उत्पत्ति की। उन्हीं से यह शरीर बनाया।

यहाँ पर 'सब पदार्थ' इन शब्दों से ईश्वर का ग्रहण नहीं होता, जीवात्मा का भी ग्रहण नहीं होता और प्रकृति का भी ग्रहण नहीं होता। आ गया समझ में ? क्योंकि यहाँ ईश्वर को पदार्थों का आदि मूल कहा है। इसलिए जिन पदार्थों का आदि है, प्रारम्भ है, उन्हीं का ग्रहण है। उन्हीं का आदि मूल परमेश्वर है अर्थात् इन पदार्थों को बनाने वाला है। साधक सीधे शब्दों में कहेगा - हे ईश्वर ! आप इन पदार्थों को रचने वाले हैं, बनाने वाले हैं। पुनः आगे कहता है - यह सब कुछ आपने अपने लिए बनाया हो, ऐसा नहीं है; अपितु हमको लौकिक सुख तथा अपने नित्यानन्द की प्राप्ति कराने के लिए, इन दो मुख्य उद्देश्यों को पूरा करने के लिए यह रचना की है पुनः साधक बोलता है -

हे ईश्वर ! पूरे संसार को, अभी जिसका वर्णन किया गया, इसको हम जीवात्माएँ नहीं बना सकते। कोई कहे कि जीवात्मा बुद्धिमान् बनकर, बढ़ते-बढ़ते आगे चलकर ईश्वर बन जाता हो और पुनः सृष्टि की रचना करता हो, तो ऐसा भी नहीं है। वे नहीं बना सकते। क्योंकि सृष्टि जब नहीं बनी थी तब कोई भी जीवात्मा शरीरधारी नहीं था और सब के सब मूर्छित पड़े थे। पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र, जल, वायु आदि की रचनारूप जीवित रहने का वातावरण और शरीर के बिना जीवात्मा कुछ भी नहीं कर सकता, लेशमात्र भी नहीं कर सकता।

प्रसंगवशात् साधक यहाँ एक निराकरण करता हैं कि यह जो माना जाता है कि सृष्टि सत्त्व-रजस्-तमस् से अपने-आप उत्पन्न हो गई; यह बात भी ठीक नहीं है। क्योंकि सत्त्व-रजस्-तमस् परमाणु सब जड़ हैं। उनमें ज्ञान-विज्ञान ही नहीं है। अतः वे कभी मिलें और किसी उद्देश्य को लेकर सृष्टि बनायें; यह सम्भव नहीं है। जैसे कि सत्त्व-रजस्-तमस् के परमाणु आपस में कहें कि हम सब मिलकर ये बीज बनाएँ - आम, केला, सोना, चाँदी आदि विविध रचनाएँ करें, जिससे लोगों को लौकिक सुख और मुक्ति सुख मिलेंगे। जड़ पदार्थ ऐसा नहीं सोच सकते। समझ में आ गया ? पुनः एक उदाहरण लेते हैं - जैसे कि यह भवन ईंट-पत्थर-लोहे के सरिए आदि से बना हुआ है। तो क्या खान में पड़े हुए लोहे के कणों ने सोचा कि चलो, हम सारे कण मिलकर लोहा बनें और पुनः लम्बे-लम्बे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सरिएँ बन जाएँ। उसके पश्चात् ईंटें हमारे साथ आकर मिल जायेंगी और वानप्रस्थ का भवन खड़ा हो जाएगा। वहीं पर बैठकर लोग योग-विद्या सीखेंगे और आनन्द प्राप्त करेंगे। जड़-वर्ग द्वारा ऐसा विचारपूर्वक कार्य कभी भी नहीं हो सकता।

इसी से सम्बद्ध एक अन्य पक्ष का साधक समाधान करता है - कुछ लोग यह कहते हैं कि पहले अभाव था, कुछ भी नहीं था, उस अभाव से भाव बन गया है। परन्तु यह भी ठीक नहीं है अभाव से कभी भाव उत्पन्न नहीं होता है और न भाव से अभाव उत्पन्न होता है। अभाव से भाव उत्पन्न होने वाली बात को बुद्धि स्वीकार नहीं करती। जैसे कि यह रुमाल है, इसको हमने जलाकर राख बना दिया और आकाश में फेंक दिया। अब बुद्धिमान् ध्यान में बैठकर विचार करता है कि रुमाल राख बन गया, राख परमाणु बन गई। क्या आगे उन परमाणुओं का अभाव हो गया? उसके मन में यह बात नहीं बैठती कि होनेपन के स्थान में न होनापन उत्पन्न हो जाए। किसी की शक्ति नहीं है कि उस होनेपन को न होनेपन में बदल दे।

इस विषय में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने खुले मन से एक बात कही कि असम्भव कार्य को ईश्वर भी नहीं कर सकता। प्रायः लोग इस बात से डरते हैं और कहते हैं कि ईश्वर के लिए कुछ मत कहो। आ गया समझ में? करोड़ों लोग यह मानते हैं कि ईश्वर सर्वशक्तिमान् है! इसलिए वह (उलटा-सीधा) सब कुछ कर सकता है। इस पर स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने कहा - यदि ईश्वर की सर्वशक्तिमत्ता की यह व्याख्या करते हो, ऐसा अर्थ करते हो तो क्या ईश्वर अपने आप को मारकर दूसरा ईश्वर बना सकता है? बताओ? वस्तुतः ईश्वर के वास्तविक स्वरूप के सम्बन्ध में लोगों की बुद्धि काम नहीं करती हैं। वे कैसे ईश्वर को जान सकेंगे और दूसरों को बता सकेंगे, कैसे ईश्वर को प्राप्त कर सकेंगे और करा सकेंगे? देश-विदेश में अरबों-खरबों रुपये खर्च करके आश्रम बना रहे हैं और 'योगा-योगा' करते हुए सबको अन्धकार में ले जा रहे हैं। कहाँ जाना था, कहाँ पहुँच गए?

इसी को समझाने की दृष्टि से किसी ने तर्क किया - यदि तुम ईश्वर को सर्वशक्तिमान् मानते हो तो यह बताओ कि क्या ईश्वर ऐसा पहाड़ बना सकता है जिसको वह नहीं उठा सके? आया समझ में? यदि वैसा बना नहीं सकता तो सर्वशक्तिमान् नहीं रहा और यदि वैसा बना लिया पर उठा नहीं सकता तो सर्वशक्तिमान् नहीं रहा। अर्थात् यह परिणाम निकलकर सामने आया कि अभाव से भाव की उत्पत्ति कोई भी नहीं कर सकता और भाव से अभाव की उत्पत्ति भी कोई नहीं कर सकता।

हम विचार कर रहे हैं ईश्वर की उपासना के विषय में। यहाँ एक प्रसंग और आया कि कोई कहता है सृष्टि अनादि काल से अपने-आप बनी-बनाई आ रही है। कभी बनी नहीं। सूर्य-चन्द्रमा आदि लोक-लोकान्तर अनादि और अनन्त हैं। अब साधक इस प्रकार से समाधान करता है कि सृष्टि अनादि और अनन्त है; यह बात बुद्धि में नहीं बैठती। क्योंकि जो वस्तु तोड़ने से टूटती है, छिन्न-भिन्न हो जाती है, खण्ड-खण्ड हो जाती है, वह अनादि नहीं हो सकती। आ गया आपको समझ में? यह सृष्टि बनी-बनाई है; यह पक्ष खण्डित हो गया। सृष्टि अभाव से भाव रूप में आती है; यह पक्ष भी खण्डित हो गया। परमाणु स्वतः मिलकर सृष्टिरूप बन जाते हैं; यह पक्ष भी खण्डित हो गया। जीवात्माएँ बना लेते हैं; यह पक्ष भी खण्डित हो गया। तो कितने पक्ष खण्डित हो गए? आपको पता नहीं चला कितने हो गए। आप ध्यान से सुनते नहीं हो इसलिए पता नहीं चला। बैठे-बैठे आराम से सुनते रहते हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्काल समझना, उसका उत्तर देना, याद रखना, लिखना, टेप रिकार्ड करना; यह आपका उत्तरदायित्व है। इतनी महत्त्वपूर्ण विद्या है और इस स्थिति में आपकी बुद्धि में कैसे आएगी? यदि ऐसा है तो जब आपसे कोई प्रश्न पूछा जाएगा तो उसका क्या उत्तर दोगे? यदि अपनी कॉपी में नहीं लिखते हैं तो दूसरों को क्या बताएँगे? सिखाने वाला भी जिस परिणाम पर पहुँचाना चाहता है वहाँ आपने जाना नहीं है तो यहाँ क्या करने बैठे हैं?

भाषा इतनी सूक्ष्म नहीं है जो कि समझ में नहीं आती हो। ऐसा विषय भी नहीं है जो आपने बार-बार सुना न हो, बार-बार पढ़ा न हो। पुनरपि आप उसको ध्यान से नहीं सुन रहे हैं। उसको कंठस्थ नहीं कर रहे हैं। दुहरा नहीं रहे हैं। आपके मन में यह नहीं है कि मुझे सुनाना पड़ेगा। आपके मन में यह भी नहीं है कि इसको लिखूँ और साधना काल में इसका प्रयोग करूँगा और याद नहीं करेंगे तो आपको दण्ड मिलेगा, दो चार डण्डे लगेंगे; यह भी नहीं है। यदि ऐसा कुछ भी मन में नहीं है तो क्यों याद करेंगे। परन्तु कोई कारण तो है जिससे आप तत्काल नहीं पकड़ रहे हो, याद नहीं कर रहे हो, दुहरा नहीं रहे हो। इसलिए सावधान हो जाओ। उन कारणों को ढूँढो और दूर करो। उपासना में क्या-क्या प्रयोग होते हैं, इस बात को इतने पक्ष उठाकर समझाने का प्रयास किया गया।

साधक ने जब उपासनाकाल में यह मन्थन आरम्भ किया कि ईश्वर कैसा है? तब उसने कहा कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के पहले नियम में आपका लक्षण ऐसा किया - सब सत्यविद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सब का आदि मूल परमेश्वर है। आप ध्यान देंगे, जिस समय यह स्थिति उसके सामने आई, उस समय उसका स्वस्वामि-सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो गया। दोहराओ क्या परिणाम निकला?

साधक ५- जिस समय साधक के सामने यह स्थिति आती है कि सब सत्य विद्याओं और पदार्थों का आदि मूल परमेश्वर है, तब साधक का स्वस्वामि-सम्बन्ध छिन्न-भिन्न हो जाता है।

स्वामी जी - पूरे विश्व के दो भाग - एक विद्या और दूसरा पदार्थ। तो समस्त विद्याओं का आदि मूल, उसको रखने वाला, हमको देने वाला परिपूर्ण ईश्वर है और सृष्टि के सारे पदार्थ जो निर्मित होते हैं, बनते हैं, उसका निर्माता, स्वामी भी ईश्वर है। जब यह ज्ञान हुआ तब 'मैं और मेरा' का सम्बन्ध, जो बन्धन का कारण है, वह टूट गया। अब यदि वह सत्यग्राही है तो आज से मन में बैठा लेता है, आगे से मैं इनको अपना नहीं मानूँगा किन्तु ईश्वर का मानकर प्रयोग करूँगा, यह परिणाम निकलता है। जब स्व-स्वामि-सम्बन्ध हटता है तब अभिमान विनाश को प्राप्त होता है, यह दूसरा परिणाम आता है। कारण? पहले स्व-स्वामि-सम्बन्ध होता है, पीछे उससे अभिमान उत्पन्न होता है। आगे बढ़िये, जिस समय यह परिणाम निकला तब ध्यान देंगे उस समय उपासक को सबसे प्रिय वस्तु कौन-सी लगेगी? ये देखो!

साधक ७- परमात्मा लगेगा।

स्वामी जी - तो परमात्मा सबसे प्रिय क्यों लगेगा, इस पर ध्यान दो। हाँ जी! बोलो!

साधक ४- हमारे लक्ष्य की पूर्ति के लिए जो भी आवश्यक सुख के साधन हैं, उनका बनाने वाला ईश्वर है और उसके लिए जो आवश्यक विद्या है, उसका भी देने वाला ईश्वर ही है।

स्वामी जी - और जो नित्य आनन्द मिलेगा, उसका भी देने वाला ईश्वर है तथा जो लौकिक सुख है, उसका भी देने वाला ईश्वर है। अब आपको पता चल गया कि ईश्वर के तुल्य या अधिक धरती पर कोई पदार्थ तीनों कालों में नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप ध्यान देंगे कि जिस समय व्यक्ति का मंथन इस रूप में होते-होते निर्णय पर पहुँचता है, उस समय उसको ईश्वर जैसा प्रिय, ईश्वर के तुल्य, ईश्वर से बढ़कर कोई पदार्थ नहीं लगता। इतना ही नहीं, उस पर इतना अधिक प्रभाव पड़ता है कि दूसरी वस्तुओं की सत्ता विलुप्त होने की स्थिति में पहुँच जाती है। उस समय पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा आदि जितनी भी बाधाएँ होती हैं, कोई नहीं ठहरती।

और जो पहले ध्यान नहीं लगता था अब वह इतना अच्छा लगने लगता है, इतना आकर्षण होने लगता है कि कोई उसको उपासना से धक्के देकर हटाना चाहे तो भी नहीं हटेगा। इतना आकर्षण हो जाता है।

अब देखो, सब का आदि मूल परमेश्वर है, यह सिद्ध कर लिया और नास्तिकता के मुख्य-मुख्य मत को लेकर एक-एककर सबको उड़ा दिया। उसके पश्चात् जो उसके अपने अन्दर के दोष स्वस्वामि-सम्बन्ध, अभिमान आदि थे, उनको भी खण्डित कर दिया।

अब वह कहता है कि जिसका आदि मूल परमेश्वर है, वह संसार पहले ऐसी स्थिति में था - प्रकृति परमाणुरूप में पड़ी थी, जीवात्माएँ सुषुप्ति में थे और वही स्थिति अब आगे आ रही है। वह स्थिति भले ही करोड़ों वर्षों में आएगी, परन्तु आएगी, यह निश्चित है। निश्चित होने से आने वाली प्रलय अवस्था उसको अभी दिखने लगी। अब वह क्या करता है? जो पहले की प्रलय अवस्था है और जो आने वाली प्रलय अवस्था है, उन दोनों को यहाँ लाकर खड़ा करता है। (एक साथ जोड़ देता है) इससे जो वर्त्तमान काल है वह भी प्रलयवत् हो जाता है। पदार्थमात्र का प्रलय हो जाता है।

अब ध्यान देंगे। एक ओर तो ईश्वर से इतना प्यार हुआ, उसमें इतना आकर्षण हुआ कि उसके तुल्य या उससे अधिक अन्य कोई नहीं रहा। दूसरी ओर सबका स्वामी भी ईश्वर को मान लिया तथा नास्तिकों के पक्ष भी खण्डित कर दिए और अब उसको कोई पदार्थ भी दिखाई नहीं देता, तो उसके लिए केवल ईश्वर रह गया है। अब वह उसी ईश्वर को जाने और उसका बन जाए, उसको अपना बना ले; यह स्थिति आएगी।

पुनः वेद की भाषा में क्या होगा?

यदग्ने स्यामहं त्वं, त्वं वा घा स्या अहम्। स्युष्टे सत्या इहाशिषः॥ ऋ. ८/४४/२३।

हे ज्ञानस्वरूप ईश्वर! मैं तू बन जाऊँ या तू मैं बन जाए। आगे कहा - हे ईश्वर! तब तेरे आशीर्वाद पूरे हो जाएँगे। यह प्यार की भाषा है, वस्तुतः दोनों कभी भी एक नहीं बनते।

तो आशीर्वाद क्या है? जीवात्मा को लौकिक सुख मिले और ये अन्त में ईश्वर को प्राप्त कर लेवे और अन्यों को प्राप्त करा सके। यह है ईश्वर का आशीर्वाद। अच्छा! चलो, अब आप उपासना करके देखो।

इतने मन्थन सहित यह ज्ञान आपने प्राप्त किया, इस ज्ञान के बिना वैराग्य नहीं। वैराग्य के बिना अभ्यास नहीं और अभ्यास के बिना मन पर अधिकार नहीं।

अब हम प्रयोग करेंगे **त्र्यम्बकं यजामहे ...** का।

सम्पादक - प्रयोग पूर्ववत् प्रवचन संख्या २५ में देखिए।

प्रयोगकाल लगभग ४ मिनट। अब विराम॥

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३२ ज्ञानखण्ड

नश्वरता : आषाढ़ कृ. ४/२०६०-१७/७/०३

अब हम मन्त्र पाठ करेंगे। आप पाठ करते समय इस बात पर ध्यान देंगे कि जिस ईश्वर की हम स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने जा रहे हैं, वह जीवों में, प्रकृति में और पूरी उत्पन्न सृष्टि में व्यापक है और ये सब व्याप्य हैं। इसमें कोई संशय अथवा भ्रान्ति नहीं है। इस रूप में हम ईश्वर को सम्बोधित करेंगे -

ओं भूर्भुवः स्वः .....।

अब आप अपने मन को, बुद्धि को स्थिर करके इस बात का अनुभव करने का प्रयास करें कि वास्तव में मेरा शरीर अथवा इस रूप में कहें कि ईश्वर ने जो शरीर हमको बनाकर दिया है, यह नाशवान् है और इसमें कोई संशय नहीं है। यह कोई कल्पना नहीं है।

जैसे मेरा शरीर नाशवान् है, इसी भाँति पूरे विश्व के शरीर नाशवान् हैं। यदि इसमें कोई संशय है तो क्यों? ऐसी कौन-सी बात है जो आपको इनके विनाश को अस्वीकार करने के लिए बाधित कर रही है? ऐसे कौन से विचार हैं जो इस निर्णय को होने नहीं दे रहे हैं; उनको देखिए।

निर्णय काल में अन्य विषय को न उठाइये, यही एक विषय रखिये। मन जड़पदार्थ है, हम आत्मा मन-इन्द्रियों को चलाते हैं। यहाँ अन्य कोई भी हमको बाधित करके हमारे मन को विषयान्तर ले जाने वाला नहीं है; ऐसा जानना चाहिए।

प्रयोग आरम्भ.....। समय लगभग ५ मिनट।

इसी शरीर में धारणा, ध्यान, समाधि का अभ्यास करेंगे।

अब आप रुकेंगे और आप अपना अनुभव सुनाएँगे, कैसी स्थिति रही?

साधक ३— मैंने अपने शरीर से लेकर सारे मनुष्यों के शरीर और इन सब को ज्ञानपूर्वक तोड़ते-तोड़ते अन्तिम स्थिति में पहुँचा दिया। उस काल में अन्य कोई वृत्ति, विचार, चित्र दिखाई पड़ा हो, ऐसा मेरे ज्ञान में नहीं आया।

स्वामी जी — आपके ज्ञान में यह निर्णय हुआ कि निश्चित रूपेण अपना शरीर और पूरे विश्व के शरीर नाशवान् हैं, इसमें कोई संशय नहीं है। ऐसी स्थिति आई? आप सुनाएँगे -

साधक २— मैं अपने शरीर में मृत्यु के लक्षण को ढूँढने का प्रयास करता रहा परन्तु कोई लक्षण पकड़ में नहीं आया। अतः मुझे मृत्यु पर विश्वास नहीं हो पाया। यद्यपि शब्द-प्रमाण व आपके वचन मुझे सिद्धान्तरूप में स्वीकार हैं, उन पर मुझे कोई आपत्ति नहीं है। परन्तु जब अपने शरीर में मृत्यु के किसी लक्षण को देखना चाहता हूँ तब उसकी प्रतीति नहीं होती। इसलिए मुझे 'मृत्यु होगी' इस बात पर विश्वास नहीं होता है।

स्वामी जी — अच्छा! तो आपको यह अनुभूति हुई कि यह बात शब्द-प्रमाण और अनुमान प्रमाण से तो सिद्ध है किन्तु यह प्रतीति नहीं हुई कि वास्तव में मेरी मृत्यु होगी।

साधक २— ऐसा कोई लक्षण दृष्टि में नहीं आया।

स्वामी जी — ऐसा कोई लक्षण दृष्टि में नहीं आया जिससे मृत्यु दिखाई देती हो।

साधक २— जिसके कारण मैं विश्वास कर लूँ कि ऐसा होगा ही।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अच्छा ! इस स्थिति में एक ध्यान देने की बात है कि 'मृत्यु होगी ही' यह तो निर्णय नहीं आया परन्तु 'मृत्यु नहीं ही होगी', इसको उठाकर देखो वहाँ पर, वह कैसे सिद्ध है? 'मृत्यु होगी ही नहीं', यह भी एक पक्ष है और जब आप इसको सिद्ध करने की बात सोचेंगे तब तुलनात्मक स्थिति आएगी और टकराव होगा। जब इनमें से एक पक्ष का निर्णय करना चाहेंगे तब वहाँ आप पर बल पड़ेगा।

साधक २– मृत्यु नहीं होगी अर्थात् किसी भी कार्य का कारण होता है और उसकी प्रतीति भी होती है। यहाँ कारण की प्रतीति नहीं हो रही है। इसलिए कारण नहीं है। कारण नहीं होने से मृत्यु रूपी कार्य नहीं होगा।

स्वामी जी – उसमें देखना पड़ता है कि जब यह पक्ष है कि 'मृत्यु नहीं होगी' तो इसमें प्रमाण क्या है, यह भी विचारना चाहिए। भाई ! दो ही पक्ष हैं हमारे सामने, एक – शरीर का विनाश होगा, दूसरा – शरीर का विनाश नहीं होगा। तो दोनों पक्ष अपने-अपने प्रमाण उपस्थित करेंगे। जब न्याय दर्शन की प्रक्रिया से चलेंगे तब सिद्ध हो जाएगा कि विनाश होगा या नहीं?

साधक २– पंचावयव से हो जाता है।

स्वामी जी – यदि पंचावयव से सिद्ध हो जाता है, तब अपने-आपको मनाने में विवश कर देना पड़ता है। क्या समझ में आया? आपको स्वयं को मनाने में विवश कर देना पड़ेगा। जब प्रमाण से कोई वस्तु सिद्ध होती है और स्वयं नहीं मानते हैं तब स्वयं को मनाने के लिए विवश कर देना पड़ता है। व्यक्ति अपने-आप से कारण पूछता है। यदि तू मानता नहीं है तो कौन से प्रमाण हैं तुम्हारे पास, जिससे यह सिद्ध किया जा सके कि मृत्यु नहीं होगी, सदा रहेगा यह शरीर। तब कहेगा – प्रमाण नहीं मिल रहे हैं। तो पुनः मान। अन्यथा तेरी हठता, दुराग्रह या मूर्खता हुई या नहीं? यह कहेगा अपने-आप से। यह मूर्खता हुई तो अड़ियलपन हो गया यह।

यदि हम यह मानते हैं कि प्रमाणों से जो सत्य सिद्ध हो जाए, उसको सत्य स्वीकार कर लेना चाहिए और प्रमाणों से जो असत्य सिद्ध होता है, उसको असत्य स्वीकार करना चाहिए। यदि ऐसा न करे तो अपने-आप पर पूरा बल डालकर वह बात स्वयं को मनवानी पड़ेगी। क्यों जी ! यहाँ अभिमान, हठता, दुराग्रह, लोभ-लालच या भोगों के संस्कार आदि कुछ तो कारण होंगें, उन कारणों को हटा देना चाहिए।

साधक २– बलपूर्वक जब मनाते हैं तब तो स्वीकार कर लेते हैं कि हाँ ! मैं मर जाऊँगा किन्तु स्थिति छोड़ते ही पुनः पूर्ववत् हो जाते हैं, मृत्यु का निषेध कर देते हैं।

स्वामी जी – वह पृथक् बात है। कितनी देर तक स्थिति रहती है, यह अभ्यास का विषय है। पहले तो हम मनवाने के स्तर पर पहुँचते हैं। मान जाने के पश्चात् उसको बनाए रखने की बात करते हैं। क्योंकि यह विद्या माता-पिता ने नहीं सिखाई, पुनः जहाँ आधुनिक विद्यालयों में पढ़े वहाँ शिक्षकों ने भी नहीं सिखाई, समाज के लोग सिखाने वाले हैं नहीं और आपने भी बैठकर इसका अभ्यास नहीं किया। तो इसके संस्कार न बनने के कारण, अभ्यास न होने के कारण, शरीर को नाशवान् मानना कठिन पड़ रहा है। जबकि यह निश्चित बात है, एक स्थिति है।

प्रमाणों से सिद्ध को स्वीकार कर लेना ठीक है और स्वीकार करने में संशय, भ्रान्ति न होना यह भी एक स्तर है, पर अब वर्त्तमान में नाशवान् दिखना; यह इससे ऊँची स्थिति है। दोहराओ और बोलो। इसमें अन्तर समझ में आया, नहीं आया?

साधक २– नाशवान् दिखना, मानने से ऊँची स्थिति है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – सिद्धान्त रूप से मानने में न संशय है, न भ्रान्ति है; यह एक स्तर है परन्तु ऐसा दिखने लगना, यह ऊँचा स्तर है। अन्तःस्थिति में शत-प्रतिशत् लग जाना; यह ऊँची स्थिति है। उदाहरण जैसे कि आज रात दस बजे हमको बिजली से जला दिया जाएगा; इसमें कोई विकल्प नहीं है, शत-प्रतिशत सत्य है। राख हो जाना भी सत्य है और इसको कोई बचा नहीं सकता। यहाँ घटना को मानने में कोई छिद्र नहीं है। तो जैसी यह स्थिति है ऐसी ही व्यक्ति की बुद्धि में आनी चाहिए किन्तु नहीं आती है। अन्तर समझ में आया, नहीं आया ?

एक तो आप सिद्धान्तों को प्रमाणों से मानते है। इसमें आपको सन्देह नहीं है। परन्तु वह शत-प्रतिशत घटना जो आज राख हो जाएगी, वह दिखाई नहीं देती। इसकी अपेक्षा घटना का भी दिखाई दे जाना, यह उससे ऊँची स्थिति है। इससे आगे ऐसी स्थिति दिखाई देना और पूरे दिन अनुभूति का विषय ज्यों का त्यों बने रहना, यह और ऊँची स्थिति है।

साधक ३ – वह कौन-सी स्थिति कहलाएगी जो हमने तैयारी करके उपासना काल में सब शरीरों को तोड़-तोड़कर ज्ञानपूर्वक समाप्त कर दिया ?

स्वामी जी – आपको ऊँचा बोलना पड़ेगा। दूसरों को सुनाई दे, मुझको भी सुनाई दे, सब को सुनाई दे, क्या कह रहे हो आप ?

साधक ३ – और ऊँचा नहीं बोल पाऊँगा।

स्वामी जी – चलो, आप इतना ही बोलो।

साधक ३ – ज्ञानपूर्वक उपासना काल में अपने शरीर से लेकर संसार के सब शरीरों को परमाणुरूप में देखने का प्रयास करना, कोई शरीर नहीं रहा, सूर्य-चन्द्रमा को भी पूरा मिटा दिया। अब इस स्थिति में एक घण्टे तक ईश्वर का ध्यान करना और कोई चित्र नहीं आ रहा, वृत्ति भी प्रायः नहीं बन पा रही है तो यह कौन-सी स्थिति कहलाएगी ?

स्वामी जी – कौन-सी स्थितियों में से ?

साधक ३ – एक तो संशय रहित अवस्था बना ली, वहाँ कोई वृत्ति नहीं उठ रही, संसार भी नहीं दिख रहा। वह स्थिति हो जाएगी। उसको ज्ञान में बनाकर देख रहा है।

स्वामी जी – हो जाएगी, यहाँ आप एक परिणाम पर पहुँच गए। एक उस पदार्थ का जो अन्तिम स्तर है, वह निर्णय की स्थिति है। उस पदार्थ का निर्णय रूप क्या रहेगा, आप उस पर पहुँच गए।

साधक ३ – और कुछ दिख नहीं रहा, कोई वृत्ति नहीं आ रही, कोई चित्र नहीं आ रहा और ईश्वर के ध्यान करने में बड़ी सरलता है ? (यह कौन-सी स्थिति कहलाएगी ?)

स्वामी जी – यह जो ईश्वर का ध्यान कर रहे हैं, यह एकाग्रता की स्थिति कहलाएगी। यहाँ से एकाग्रता आरम्भ होती है। आपने इस स्थिति में आरम्भ किया – ओम् सच्चिदानन्द ! यह लेकर चल रहे हैं तो एकाग्रता की स्थिति सम्पादित की जा रही है। इसमें भी पहला-दूसरा स्तर होता है और ऊँचा-ऊँचा होता चला जाता है।

साधक ३ – वहाँ वृत्तियाँ उठती नहीं है। कोई चित्र भी नहीं आते है जैसे सब कुछ परमाणुरूप हो गया है। कोई आकृति नहीं रही, कोई बाधा नहीं रही। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए, तब क्या कहेंगे ?

स्वामी जी – ईश्वर को विषय बनाकर **तज्जपस्तदर्थभावनम्**। यो. द. १/२८। के अनुसार ईश्वर का ध्यान कर रहे हैं, यह स्थिति बनेगी। जैसे कि आपने ओम् का जप किया तो वह सर्वरक्षक पदार्थ आपकी बुद्धि में रहना चाहिए। यह ध्यान की स्थिति है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३ – संसार को कल्पनापूर्वक प्रलयवत् बना दिया। अब वृत्तियों से जो बाधा होती थी वह नहीं रही। जीवात्मा के विषय में या ईश्वर के विषय में बाधा नहीं रही।

स्वामी जी – ठीक है।

सम्पादक – प्रश्न स्पष्ट नहीं हो रहा था। अतः समाधान विषयान्तर हो जाने से प्रकरण आगे नहीं चल पाया, रुक गया। प्रश्न था कि वहाँ वृत्तियाँ उठती नहीं है। कोई चित्र भी नहीं आते है जैसे सब कुछ परमाणुरूप हो गया है। कोई आकृति नहीं रही, कोई बाधा नहीं रही। ऐसी स्थिति उत्पन्न हो जाए, तब क्या कहेंगे? यहाँ अन्तिम वाक्य 'तब क्या कहेंगे' के स्थान में आना चाहिए था कि वह कौन-सी अवस्था या स्तर कहलाएगा? पुनः उसका उत्तर होगा – वह एकाग्रावस्था ही है या उसी का उच्चतम स्तर है। पुनः प्रश्न होगा कि उस अवस्था में और क्या करना चाहिए? तो जप-ध्यान आदि करना चाहिए यह उत्तर आ गया।

स्वामी जी – अब आप बताएँगे –

साधक ६ – स्वामी जी! मैंने अपने शरीर को विचारपूर्वक नाशवान् सिद्ध किया और शव के रूप में देखा, इस प्रकार मृत्यु का आभास हुआ।

स्वामी जी – आपका अभिप्राय है कि मृत्यु आपको निश्चित दिखाई देने लगी। तो जानना यह है कि जैसे आज सायंकाल रात्रि दस बजे किसी व्यक्ति को बिजली से जला दिया जाएगा और उसकी राख भी मिलनी कठिन हो जाएगी तथा उसके सारे सम्बन्ध कट जाएँगे, मैं और मेरा नाम की वस्तु नहीं रहेगी। क्या इस स्तर पर कुछ दिखाई दिया?

साधक ६ – ऐसा अनुभव नहीं हो पाया।

स्वामी जी – तो उसमें कुछ कमी रही। हाँ जी!

साधक ८ – स्वामी जी! मैंने उत्पन्न होने से पूर्व और मृत्यु के पश्चात् की स्थिति को देखने का प्रयास किया तथा वेद मन्त्र में जो वर्णन आता है कि ईश्वर ने सृष्टि की रचना की, इन पर विचार किया।

स्वामी जी – वह आपने विषयान्तर छेड़ दिया। विषय दिया गया था कि शत-प्रतिशत मेरी मृत्यु निश्चित है, इसमें कोई संशय नहीं, कोई विकल्प नहीं है; आपको यह निर्णय लेना था। मन्थन के पश्चात् जिसमें स्वयं को निर्णय लेना होता है जिसको निदिध्यासन बोलते हैं, वह करना था अर्थात् मेरी मृत्यु निश्चित है, यह आपको अपने मन में, ज्ञान में बैठाना था। अन्य कुछ नहीं देखना था कि वेदमन्त्र में क्या कहा है। इसके अतिरिक्त आपको कुछ नहीं छेड़ना था। हाँ जी –

साधक ४ – शब्द-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण और स्वयं संसार में जो मृत्यु की घटनाएँ देखी हैं, उनके आधार पर मैंने अपनी तथा अन्य परिचितों तथा प्राणियों की मृत्यु को देखने का प्रयास किया परन्तु अन्त में जब अपने विषय में समय का निर्धारण करने लगा कि मेरी मृत्यु कब हो सकती है तो ऐसा लगा कि अभी नहीं, कुछ वर्षों के उपरान्त मृत्यु होगी।

स्वामी जी – अच्छा! यह एक व्यक्ति की स्थिति है। यह निर्णय हुआ किन्तु इसमें दोष रह गया। यहाँ इस निर्णय पर पहुँचना चाहिए था कि यदि मेरे शरीर का कोई भी विनाशक कारण है तो हमारी मृत्यु होगी। भले ही अभी न हो किन्तु कालान्तर में होगी और यदि वह कारण अभी उपस्थित हो जाए तो इसी क्षण मृत्यु हो सकती है, क्योंकि प्रत्यक्ष प्रमाण से यह बात सिद्ध है। इस प्रकार उस निर्णय को ठीक कर लेना चाहिए। दोहराओ! क्या समझ में आया? क्या सिद्ध है? मृत्यु किसी भी क्षण में हो सकती है; यह प्रत्यक्ष-प्रमाण से सिद्ध है। इसलिए इसको ज्यों का त्यों मानना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्यान दीजिये ! मृत्यु के विषय में दो प्रकार का निर्णय होता है। आज नहीं, कल नहीं, वर्षों में न हो किन्तु कभी न कभी मृत्यु होगी। कालान्तर में शरीर के सामर्थ्य आदि समाप्त हो जाने पर एक ऐसा समय आएगा, जब यह शरीर नहीं रहेगा। एक तो ऐसे उसकी बुद्धि में बात बैठती है। दूसरे प्रकार से - इतने साल के पीछे शरीर नहीं रहेगा, यह तो ठीक है परन्तु घटना विशेष से इसी क्षण मृत्यु हो सकती है, आज भी ऐसी घटना घट सकती है और आज ही मृत्यु हो सकती है। यहाँ 'कभी न कभी मृत्यु होगी' इसकी अपेक्षा 'कभी भी मृत्यु होगी', इस पक्ष को मानना चाहिए। यहाँ तक पहुँचना चाहिए। क्या समझ में आया? सारी स्थितियों में मृत्यु निश्चित रूपेण होगी, यह मानना चाहिए। अभी हो या आगे हो यह गौण है, मुख्य बात है 'होगी'। इस होने वाली स्थिति को स्वीकार करता है। आगे बढ़ो। सब की जो मृत्यु की स्थिति होगी, उसमें सारे आकार-प्रकार अभाव को प्राप्त हो जाते हैं। एक भी दिखाई नहीं देता है। एक तो उनके आकार-प्रकार का दिखाई देना और दूसरा दिखाई नहीं देना, ये दोनों पक्ष समझ में आये या नहीं?

साधक ८- हाँ जी !

स्वामी जी - ऐसी स्थिति है जिसमें सबकी मृत्यु हो जाने पर कोई भी आकार-प्रकार दिखाई नहीं देता। मृत्यु के साथ प्रलय जैसी स्थिति बन जाती है पर दूसरी स्थिति में व्यक्ति आकार-प्रकार को मिटा नहीं पा रहा है या मिट नहीं रहे हैं। दोनों स्थितियों का अनुभव करो। बात तो दोनों समझ में आईं?

अब हम इसके आगे बढ़ेंगे। जिस समय मनुष्य, पशु, पक्षी आदि के शरीरों को हमने विनाश की अवस्था में पहुँचा दिया। अब उससे आगे चलकर यह स्थिति आई कि ये जो पृथ्वी, सूर्य, चन्द्रमा, अरबों-खरबों लोक-लोकान्तर हमारे सामने हैं, इनके विषय में हम यह जानना चाहते हैं कि ये समस्त लोक-लोकान्तर भी विनाश को प्राप्त होंगे? इनका विनाश होगा या नहीं होगा? यद्यपि एक (जैन) समुदाय इनको नाशवान् नहीं मानता। वह ऐसा मानता है कि ये अनन्तकाल तक रहेंगे। वह यह भी मानता है कि ये सूर्य आदि मूलतः कभी उत्पन्न हुए हों; ऐसा नहीं है। जब ऐसी बात है तो हम भी उनके समान मान सकते हैं कि ये न तो कभी उत्पन्न हुए हैं, न कभी नष्ट होंगें। क्या समझ में आया? मान सकते हैं या नहीं? बोलो !

साधक २- यदि एक पक्ष ऐसा मानता है तो हो सकता है हम भी उसके पक्ष को स्वीकार कर रहे हों।

स्वामी जी - उनकी मान्यता ठीक है; ऐसा हम भी मान सकते हैं। यह कोई ऐसी बात नहीं है कि कोई बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसा मानता ही न हो, केवल हमने कल्पना कर ली हो अपितु हजारों लोग ऐसा ही मानने वाले हैं। इसलिए हमको इसका समाधान करके चलना होगा। इस बात को सिद्ध करना होगा कि ये लोक-लोकान्तर आमूल-चूल समाप्त हो जाएँगे और कभी निश्चित-रूपेण इनका कोई रूप नहीं था, एक परमाणुरूप था; इस स्थिति में हमें पहुँचना है। जैसे हमने अपने शरीर की मृत्यु का निर्णय किया वैसे ही सूर्य-चन्द्रमा, पृथ्वी आदि के विषय में भी वही कसौटी और वही निर्णय करने की स्थिति में हमको पहुँचना पड़ेगा। शब्द-प्रमाण और अनुमान-प्रमाण के आधार पर जैसा कि हम इनको नाशवान् और उत्पन्न मानते हैं तो क्या आपको ऐसा निश्चय हो गया है या नहीं?

साधक ३- जब हम विचार करते हैं प्रलयवत् अवस्था बनाते हैं तब तो सारे ब्रह्माण्ड को तोड़ देते हैं। पृथ्वी, सूर्य, लोक-लोकान्तर सब परमाणु हो गए। विचार करते-करते ऐसा हो जाता है, परन्तु व्यवहारकाल में नहीं होता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ जी ! अब आप क्या समझते हैं ? भाषा को ढंग से बोलिए और रुक-रुककर बोलिए। एक-एक शब्द, पूरी बात सबको सुनाई दें।

साधक ६ – शब्द-प्रमाण से यह सिद्ध है और हमें भी निश्चित अनुभव होता है तथा प्रायः स्थिति भी बना लेते हैं।

स्वामी जी – आप भूमि की तुलना अपने शरीर के साथ कीजिए। जैसा कि एक दृष्टान्त हमने दिया था कि एक व्यक्ति को यह आदेश मिला कि आज दस बजे रात्रि में उसको जला दिया जाएगा और वह राख के रूप में चला जायेगा, पुनः राख उड़कर परमाणु के रूप में चली जाएगी। यह निश्चित बात है, इसमें कोई विकल्प नहीं है; ऐसा ही इस भूमि आदि को देखना है। आप बताएँगे इन सूर्य, भूमि आदि लोक-लोकान्तरों के विषय में क्या समझ में आया ?

साधक ५ – उपासनाकाल में ऐसा लगता है कि शरीर की भाँति ये सूर्य आदि भी नष्ट हो जायेंगे किन्तु ऐसा रह नहीं पाता। पुनरपि प्रयास करता हूँ कि यह स्थिति बनी रहे।

स्वामी जी – शब्द-प्रमाण से, अनुमान-प्रमाण से आपको यह सिद्ध करना पड़ेगा कि ये सूर्य और पृथ्वी तथा अन्य लोक-लोकान्तर जितने भी हैं, सब नष्ट हो जायेंगे। अपने वैज्ञानिक अरबों आकाशगंगा बताते हैं और एक आकाशगंगा में कितने सूर्य मानते हैं ?

साधक ३ – सौ अरब।

स्वामी जी – आपको पक्का स्मरण है या कच्चा है ?

साधक ३ – ऐसा ही बताते हैं।

स्वामी जी – एक आकाशगंगा में सौ अरब सूर्य हैं तथा उन सूर्यों के ग्रह-उपग्रह, जैसे कि पृथ्वी के हैं तो उन सभी को मिलाकर कितने होंगे ? आगे इन वैज्ञानिकों ने ऐसी-ऐसी आकाश-गंगायें कितनी खोज ली, यह भी पूछ लो। आकाशगंगाएँ कितनी खोजी हैं ?

साधक ३ – दस खरब।

साधक २ – दस अरब आकाशगंगायें।

स्वामी जी – आप इन मोटी-मोटी बातों को थोड़ा-सा लेखबद्ध भी कर लिया करें। लेखबद्ध होने से आपके कार्य में आएँगी और दूसरों को बताने में आएँगी। जो बातें सिद्ध हैं, वे लेखबद्ध होती हैं तो उनसे काम लेते रहते हैं, अन्यथा भूल जाते हैं। पुनः उनसे न तो अपना कार्य कर सकते हैं, न दूसरों को कुछ बता सकते हैं और उस विषय में कोई निर्णयात्मक बात नहीं कर पाते हैं।

तो एक आकाशगंगा में सौ अरब सूर्य हैं और ऐसी-ऐसी दस अरब आकाशगंगाएँ खोज डाली हैं। अब ध्यान देने की बात है जहाँ तक मेरी बुद्धि काम कर रही है, वर्त्तमान को लेकर कह रहा हूँ, आगे क्या होगा कह नहीं सकता और निर्णय भी नहीं दे रहा हूँ, किन्तु एक संभावना बता रहा हूँ कि ये वैज्ञानिक, यह सृष्टि कहाँ तक है, वहाँ जाकर देख लें या अन्तिम छोर तक पहुँच जायें, ऐसी आशा कम है।

अभी पिछले दिनों एक समाचार पत्र में निकला था, मुझसे यदि भूल नहीं हुई हो तो, कि इसी सूर्य के पास वाले अपने पड़ोसी सूर्य का एक ग्रह खोजा गया है। वह इतनी दूरी पर था, जहाँ तक मुझे स्मरण है, उस ग्रह से प्रकाश अपनी गति से चलकर हमारे पास पहुँचे तो उसको डेढ़ सौ वर्ष लगेंगे। मैंने क्या कहा, दोहराओ !

साधक ३ – इस सूर्य के पास किसी दूसरे सूर्य का एक ग्रह खोजा गया है। उसमें से यदि प्रकाश चले तो वह धरती पर डेढ़ सौ वर्षों में पहुँचेगा।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – मुझे ऐसा याद है वह बता रहा हूँ, उस समाचार पत्र में कोई मोड़-तोड़ हो तो आप देख लेना। तो वह प्रकाश डेढ़ सौ वर्षों में यहाँ पहुँचेगा। अब कितनी दूरी होगी वहाँ तक? पर स्मरण रखना, जो व्यक्ति यह गवेषणा करता है, वह यह मानता है कि मैं यह जानना चाहता हूँ कि ये सूर्य-चन्द्र आदि जितने लोक-लोकान्तर हैं, ये निश्चित रूपेण उत्पन्न हुये हैं और निश्चित रूपेण विनाश को प्राप्त होंगे। वह इसको जानकर छोड़ता है और यह हमारे वश की बात है, ऐसा नहीं समझना कि हम नहीं जान सकते हैं। हाँ! ये कहाँ तक हैं, यह तो हम न भी जान पायें, इसको हटा देते हैं किन्तु इतना तो हम जान सकते हैं कि ये उत्पन्न हुये हैं या नहीं और विनाश को प्राप्त होंगे या नहीं? इसको हम जान सकते हैं।

अब एक प्रयोग करेंगे। अभी-अभी एक ऐसी अवस्था थी जिसमें आपने लोक-लोकान्तरों के विनाश अनुभव करने का प्रयत्न किया, उसमें शरीर का अभाव भी था। तो अब आप यह बताइये कि कि वह अवस्था आपको दिख रही है या नहीं? क्या समझ में आया? उसको देखना है। क्या देखोगे?

साधक ३ – जन्म से पहले ...।

स्वामी जी – गर्भाधान से पहले, माँ के पेट में आने से पहले की जो स्थिति थी, जिसमें शरीर का आरम्भ ही नहीं हुआ था। उस समय एक-दो परमाणु भी शरीर के रूप में नहीं थे, क्या यह बात आपको जँचती है या नहीं? इसको देखिए।

साधक ३ – जँचती है।

साधक २ – ऐसा तो लगता ही है क्योंकि उसकी कोई स्मृति नहीं आ रही है।

स्वामी जी – क्यों जी! बोलो। यह आता है समझ में?

साधक ३ – हाँ जी! यह समझ में आता है कि पहले यह नहीं था।

स्वामी जी – जैसे हम अपने शरीर के विनाश को देखते हैं वैसे उत्पत्ति से पहले इसके अभाव को भी देखना चाहिए। क्या समझ में आया?

साधक ३ – वैसे ही ये सूर्य, चन्द्रमा भी नहीं थे।

स्वामी जी – हाँ जी!

साधक २ – अर्थात् वहाँ पर अभावरूप दिखता है। था ही नहीं कुछ, ऐसा लगता है।

स्वामी जी – नहीं! शरीर नहीं था। इसका उत्तर यह बनेगा कि शरीर जिन परमाणुओं से बना, वे तो थे। उनको वहाँ मानना ही चाहिए।

साधक २ – वह वृत्ति भी नहीं आती। सर्वथा अभाव था, यह वाली वृत्ति आती है।

स्वामी जी – सर्वथा शरीर का अभाव था, इतना तो ठीक हो गया। पर शरीर के कारणों का भी अभाव था क्या? इसका निर्णय करो। बोलो!

साधक ६ – कारणों का भी अभाव दिखता है।

स्वामी जी – अच्छा!

साधक ६ – शब्द-प्रमाण से तो सिद्ध है परन्तु ऐसा लगता है कि कारण भी नहीं थे।

स्वामी जी – तब तो आपको विशेष निर्णय करना पड़ेगा। यदि कारणों का अभाव था तो वह बना किससे? यह अपने से पूछो। तब आपको समझ में आएगा। समय हो गया? तो हम यहाँ तक पहुँचे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७– अभाव से भाव की उत्पत्ति नहीं हो सकती।

स्वामी जी – चलो ! हाँ ! आप स्मरण रखिये, यह विशुद्ध वैदिक विद्या है, विज्ञान है। शुद्ध ज्ञान, शुद्ध कर्म, शुद्ध उपासना है। यदि आप इन तीनों को समझ लेते हैं और व्यवहार में ले आते हैं तब समाधि की प्राप्ति में कोई बाधा नहीं आयेगी, कोई विकल्प नहीं रहता है कि समाधि न मिले। समाधि से आगे ईश्वर का प्रत्यक्ष न हो, यह भी नहीं हो सकता। अवश्य ही प्रत्यक्ष होगा; यह मानकर चलिए। अब विराम ॥

३३ आत्मनिरीक्षण

अभ्यास : आषाढ़ कृ. ४/२०६०–१७/७/०३

अब आप अपना आत्मनिरीक्षण सुनाएँगे –

साधक ८– अपने व्यवहार में ग्लानि की अनुभूति वाली वृत्ति से युक्त उपासना सम्पन्न की तथा दिन में गर्मी बढ़ने के कारण और वैचारिक शक्ति के अभाव में स्वाध्याय आदि के नियमपालन में सन्तोषजनक स्थिति नहीं बन पाती है।

स्वामी जी – ऐसा तो शरीर के अस्वस्थ होने से होता है। अतः शरीर को स्वस्थ करने और रखने के लिए आपको विशेष प्रयास करना पड़ेगा। दिनचर्या के पालन के सम्बन्ध में ऐसा कर सकते हैं कि यदि अधिक थकान हो, शरीर उतना कार्य नहीं कर पाता हो, तब आप उस कार्य को कम करें। हाँ जी ! अब आप सुनायेंगे –

साधक ६– वृत्तयः उत्थापयामि निरोधयामि च।

स्वामी जी – आपने संस्कृत संभाषण करते हुए क्या अशुद्धि की, वह पकड़ में आई ? वृत्ति शब्द का प्रयोग अशुद्ध था या नहीं ?

साधक ६– ध्यान नहीं दिया।

साधक २– वृत्तयः उत्थापितवान् ऐसा कुछ बोला था। वृत्तीः उत्थापितवान् ऐसा होना चाहिए था।

स्वामी जी – आगे इस पर ध्यान देना है, भाषा अशुद्ध नहीं होनी चाहिए। भाषा विद्या-प्राप्ति का एक साधन है। यदि आप संस्कृत भाषा को अच्छी प्रकार से पढ़ेंगे-लिखेंगे, बोलेंगे और पढ़ाएँगे तब यह सरल और शुद्ध होती जाएगी। भाषा के बोलते रहने से वह स्वाभाविक जैसी निकलने लगती

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भाषा का अभ्यास किया हुआ हो तब शुद्ध निकलती है और अनभ्यास होने पर अशुद्ध निकलती है। शीघ्रता से वाक्य नहीं बना पाते हैं। जैसे कि आपको अभी एक-एक वाक्य बनाने में समय लगता है, विशेष ध्यान रखना पड़ता है। अतः आप ध्यान देंगे, परिश्रम करेंगे तब आपका ज्ञान संस्कृत भाषा के क्षेत्र में बढ़ता जाएगा। आगे चलकर वह बहुत सरल दिखाई देगी। पुनः वेदमन्त्रों को, दर्शनों के सूत्रों व भाष्यों को समझने-समझाने में, किसी के साथ संस्कृत में संवाद करने में और लेख आदि लिखने में अनेक प्रकार की उन्नति होगी। यदि ध्यान नहीं देंगे, परिश्रम नहीं करेंगे तब आप न तो शुद्ध संस्कृत भाषा बोल सकेंगे, न शुद्ध लिख सकेंगे और न पढ़ा सकेंगे। ऐसे ही दर्शनों के सूत्रों, उनके भाष्यों तथा वेदमन्त्रों की व्याख्याओं को आप विशेष रूप से समझ नहीं पाएँगे।

अब दूसरी बात। आप अपने दैनिक जीवन में क्या कभी ऐसा अनुभव करते हैं कि मैं जो कुछ सोच रहा हूँ, विचार कर रहा हूँ, वह सब ईश्वर के सामने कर रहा हूँ? ऐसा अनुभव कब-कब करते हैं या कितना करते हैं? अपना-अपना अनुभव सुनायें! हाँ जी!

साधक ४— कभी-कभी कर पाते हैं।

स्वामी जी — आपको पता नहीं चलता कि वह स्थिति है या नहीं अथवा छूट गई? छूटने के पश्चात् ऐसा अनुभव नहीं होता?

साधक ४— आलस्य-प्रमाद-वशात् छोड़ देते हैं, भूल जाते हैं, पुनः लम्बे काल के पश्चात् ध्यान आता है कि मैंने जो प्रक्रिया आरम्भ की थी, वह छोड़ दी है।

स्वामी जी — हाँ जी! आपकी कैसी स्थिति रहती है?

साधक ७— उनकी आज्ञानुसार ही हम चल रहे हैं।

स्वामी जी — यहाँ देखना यह है कि हमारा अनुभव क्या कहता है? क्योंकि जब कोई बात पूछी जाती हैं तो उसका अभिप्राय होता है कि उसका प्रायोगिक स्तर क्या है? प्रयोग में क्या भूल हुई, क्या न्यूनता-अधिकता रही; यह सारी काट-छाँट सूक्ष्मता से देखनी पड़ती है। इसलिए जब आपसे पूछा गया तो यह बताना चाहिए था कि मैं दिन में इतने काल तक ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति में रहता हूँ, इतने काल में स्थिति टूट जाती है और टूटने पर पुनः उसको इतनी देर में बना पाता हूँ। कई बार बनाने का प्रयत्न करता हूँ, बनती नहीं है या बनने पर मेरी स्थिति कुछ दूसरे प्रकार की हो जाती है। आपको इस प्रकार से प्रयोग की सूक्ष्मता का विशेष अध्ययन करना पड़ेगा। हाँ जी! अब आप अपना बताइए -

साधक ६— स्वामी जी! प्रायः ईश्वर-प्रणिधान का प्रयास आजकल चल रहा है। कभी-कभी वृत्तियाँ उठा लेता हूँ। पुनः थोड़ी देर में ध्यान आता है या विचार कर लेता हूँ कि मैं क्या चाहता हूँ? तो उन विचारों को रोककर पुनः ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति में आने का प्रयास करता हूँ।

स्वामी जी — और जी! आपकी क्या स्थिति रहती है?

साधक ८— ईश्वर को भूला-सा रहता हूँ।

स्वामी जी — अच्छा! क्या ईश्वर को याद करने में थकान होती है?

साधक ८— विचार नहीं कर पाते।

स्वामी जी — कोई बात नहीं। जब शरीर के अन्दर रोग होता है और रोग से जो दुःख होता है तो उसी के विषय में व्यक्ति सोचता रहता है कि कब यह दूर होगा? पता नहीं यह रोग दूर होगा या नहीं? पुनरपि शरीर है तो प्रायः छोटे-बड़े रोग होते रहते हैं। और यदि कभी शरीर ठीक है पर मानसिक

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति राग-द्वेष, काम-क्रोध, लोभ आदि व्यक्ति को जमने नहीं देते हैं। ये मानसिक रोग हैं।

साधक ८– विचार-शक्ति की ही दुर्बलता है, स्वामी जी ! एक बार यह ठीक हो जाए तो सारी स्थितियों पर नियन्त्रण जैसा बन जाए।

स्वामी जी – हाँ ! तो प्रयत्न करते रहो। ठीक होने की बात सोचो। ऐसा मत मान लेना कि ठीक नहीं होगा।

साधक ८– रोग के कारण शरीर में गर्मी बढ़ गई है। यदि यह ठीक हो जाए तब पुरुषार्थ में सुविधा हो जाएगी।

स्वामी जी – गर्मी तो वर्षा के एकाएक रुक जाने से बढ़ जाती है और ये गर्मी के दिन भी हैं। अब यदि वर्षा होती रहे तब तो ठण्ड बनी रहेगी और ज्यों ही वर्षा रुकेगी वैसे ही गर्मी लगने लगती है।

साधक ८– बाहर की गर्मी कारण नहीं है, स्वामी जी ! शारीरिक कारण है।

स्वामी जी – इसके ऊपर बाहर की गर्मी का कुछ न कुछ प्रभाव तो पड़ता है।

साधक ८– इसका तो इतना नहीं लगता परन्तु जैसे कि यहाँ भोजन में तेल का प्रयोग हो रहा है, उससे भी गर्मी बनती है।

स्वामी जी – खाने-पीने की दृष्टि से प्रतिकूलता हो तब तो उसको हटाया जा सकता है अथवा दूसरे पक्ष में किसी वैद्य को दिखाना हो, ऐसा भी कर सकते हैं।

साधक ८– इसके लिए ब्राह्मरसायन का प्रयोग कर रहे हैं, परन्तु गर्मी की मात्रा अधिक बनने से उसका प्रभाव भी नहीं पड़ रहा है।

स्वामी जी – यदि आपको औषधि का पता है तो उसका प्रयोग करते रहें और आवश्यकता पड़े तो किसी वैद्य से पूछा जा सकता है। ऐसे कुछ न कुछ तो अपने शरीर को ठीक रखने के लिए करना पड़ता है।

साधक ८– स्वामी जी ! मैंने आपको जो संकेत किया था, वह एक कारण है।

स्वामी जी – तो कोई बात नहीं। भोजन के व्यवस्थापक को बता देते हैं। विनोद जी ! इन्होंने यह सुनाया था कि शाक में तेल का प्रयोग होता है जो मेरे अनुकूल नहीं होता, इसलिए छौंक आदि में तेल का प्रयोग न करके घी का करवाएँ। ठीक है !

तो जब शरीर में रोग होते हैं, बुढ़ापा भी आता है, मन में रोग होते है, मन की स्थिति भी बिगड़ती है। ऐसी स्थितियों में निराशावादी न होना, चिन्ता नहीं करना, डरना नहीं। अपना प्रयास पूरा करना। भोजन का है तो भोजन में ध्यान देना, औषधि का है तो औषधि में ध्यान देना। दिनचर्या में सोने-जागने में कमी-अधिक करना हो तो वैसा कर लें। किसी वैद्य या डॉक्टर को दिखाना हो तो उसको दिखा सकते हैं।

साधक ८– और तो ठीक है, यही एक बाधा है।

स्वामी जी – तो लगे रहना चाहिए। कभी ऐसा नहीं मानना चाहिए कि यह घटना केवल मेरे साथ ही हो रही है। क्या समझ में आया ? ऐसा नहीं सोचना चाहिए। लाखों-करोड़ों लोगों के साथ पता नहीं क्या-क्या घटनाएँ हो रही हैं। यह तो आप जानते हैं।

साधक ८– वे तो सहन करते हैं, अन्य उपाय भी कर रहे हैं।

स्वामी जी – बस ! यह हमारा काम है – उपाय करना, सहन-शक्ति रखना। आशावादी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बनकर लगे रहने से सफलता मिलती है। यह पृथक् बात है कि कभी कम मिलती है तो कभी अधिक मिलती है। ऐसे ही ध्यान, ईश्वर की भक्ति भी करते रहने चाहिएँ। बैठकर नहीं कर सकते तो लेटकर करो। उसके करते रहने से भी चिन्ता कम होती है।

साधक ८– जो कार्य करने का विचार करती है, वही बुद्धि शून्य हो जाती है।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। आपको जब थकान की स्थिति होती है तब विश्राम कर लें। उस समय बल न लगाएँ। ऐसी स्थिति में विश्राम करने से भी शरीर स्वस्थ होता है। ठीक नींद आने से, विश्राम ठीक होने से शक्ति का एक भाग उभरकर आ जाता है, उससे भी शरीर स्वस्थ होता है। एक मानसिक तनाव होता है, उसको नहीं उभारना चाहिए। दुःखी नहीं होना चाहिए, निराशावादी नहीं होना चाहिए। ये मानसिक तनाव की बातें हैं।

हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे कि आपकी दिन में ईश्वर प्रणिधान की क्या स्थिति रहती है ?

साधक ५– स्वामी जी ! उपासना काल में तो ईश्वर-प्रणिधान बनाकर रखता हूँ और दिनचर्या में बीच-बीच में प्रयास करता हूँ तथा आगे बढ़ाने का विचार रखता हूँ।

स्वामी जी – आपने पढ़ा होगा कि जो विद्यार्थी ब्रह्मचर्य आश्रम में है, विद्या पढ़ रहा है, उसके लिए ऋषियों ने एक कर्त्तव्य बतलाया कि वह वेद आदि शास्त्रों के पढ़ने में परिश्रम करता रहे। दूसरी बात बतलाई कि वह ब्रह्मचारी-विद्यार्थी ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध जोड़े रखे, ईश्वर में ही रमण करता रहे। तीसरे भाग में बतलाया कि मन-इन्द्रियों को उलटे मार्ग से हटाकर, अच्छे मार्ग में चलाता रहे। ये ऋषियों की मान्यताएँ हैं, उनकी यही परम्परा है। **ब्रह्मणि वेदे वा चरितुं शीलं यस्य स ब्रह्मचारी।** कहाँ पढ़ा है ?

साधक ३– आपसे सुना है।

स्वामी जी – क्यों जी ?

साधक २– व्याकरण से निष्पत्ति की है।

स्वामी जी – नहीं। जैसे कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने लिखा, ऐसा कोई स्थल स्मरण हो ? **ब्रह्मणि वेदे वा चरितुं शीलं यस्य स ब्रह्मचारी।** (ऋग्वेदादि भा. भू. वर्णाश्रम विषय।) लगभग ऐसा वाक्य है और सम्भवतः ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में हो सकता है। ऐसा कुछ ध्यान है। वेदों के पठन-पाठन में जो तल्लीन रहता है, ईश्वर की उपासना में जो तल्लीन रहता है और हम अपनी ओर से जोड़ेंगे या ऋषियों के दूसरे प्रकरण से लेंगे तो जो मन-इन्द्रियों को अधिकार में रखकर सन्मार्ग पर चलता है, वह ब्रह्मचारी है।

तो अभ्यास करते रहने से आपका ईश्वर-सान्निध्य बनेगा। आप ध्यान देंगे, जितने-जितने अंश में ईश्वर के सान्निध्य में, ईश्वर-प्रणिधान में, ईश्वरोपासना में या ईश्वर के साथ जुड़े हुए रहेंगे, उतने-उतने अंश में प्रगति, विकास, उन्नति होते रहेंगे और अविद्या, अधर्म, काम, क्रोध, लोभ आदि जितने भी दोष हैं, ये दूर होते रहेंगे। आपने योग दर्शन में इस विषयक कुछ पढ़ा हो और स्मरण हो तो सुनाओ, कौन-सा प्रसंग है ?

साधक २/३– शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा .....अमृतभोगभागी ॥ यो.द. व्या. भा. २/३२।

स्वामी जी – यह ईश्वर-प्रणिधान का फल वर्णित है और जहाँ पर यह प्रसंग आया **ईश्वर-प्रणिधानाद्वा।** यो.द. १/२३। उस प्रकरण में ईश्वर-प्रणिधान से क्या फल होता है ? तो क्या उत्तर दिया ? **ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥** यो.द.१/२९। यह सूत्र बनाया।

साधक ३– समाधिसिद्धिरीश्वरप्रणिधानात्। यो.द.२/४५।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – यह तो यम-नियम के प्रकरण में पढ़ा है। वहाँ जो **ईश्वरप्रणिधानाद्वा** के प्रसंग में ईश्वर का नाम, उसके जप की विधि और जप वा ईश्वर-प्रणिधान का जो परिणाम होगा, उस विषय में क्या बताया ?

साधक ३ – **ततः प्रत्यक्चेतनाधिगमोऽप्यन्तरायाभावश्च ॥**

स्वामी जी – यहाँ प्रत्यक्चेतना से ईश्वर का और जीवात्मा का ग्रहण किया। अर्थात् ईश्वर का साक्षात्कार होता है और अपना भी साक्षात्कार होता है तथा **व्याधिस्त्यानसंशयप्रमादालस्याविरति-भ्रान्तिदर्शनालब्धभूमिकत्वानवस्थितत्वानि चित्तविक्षेपास्तेऽन्तरायाः । दुःखदौर्मनस्याङ्गमेजयत्वश्वासप्रश्वासा विक्षेपसहभुवः । तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः ।** यो.द. १/३०-३२ । इन विघ्न और उपविघ्नों को हटाने के लिए एक ही ईश्वर की उपासना करनी चाहिए।

कुछ व्याख्याकारों ने 'एकतत्त्व' से कोई बना हुआ प्राकृतिक पदार्थ लिया है। क्या समझ में आया ?

साधक ५ – कुछ व्याख्याकारों ने तत्प्रतिषेधार्थमेकतत्त्वाभ्यासः सूत्र के 'एकतत्त्व' से कोई प्राकृतिक पदार्थ लिया है।

स्वामी जी – 'एकतत्त्व' कोई प्राकृतिक पदार्थ और उसके ऊपर एकाग्रता करो तब ये विघ्न दूर होंगे; ऐसी व्याख्या कुछ व्याख्याकारों ने की है परन्तु महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने 'एकतत्त्व' से ईश्वर का ग्रहण किया है। ऐसे अन्य व्याख्याकारों ने भी ईश्वर का ग्रहण किया है। विराम ॥

३४ यज्ञीयोपदेश

विधि : आषाढ़ कृ. ०५/२०६०-१८/०७/२००३

अब हम एक वेद मन्त्र से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। आप ध्यान देंगे कि ध्यान करना, जप करना, संध्या करना, योगाभ्यास करना; सब अर्थ सहित होता है। वाक्य का अर्थ कुछ भी न हो, यह ठीक नहीं है और वाक्य का अर्थ अशुद्ध होना भी ठीक नहीं है। वाक्य का अर्थ ठीक हो, यही उचित है। अब आप सुनाएँगे, क्या समझ में आया ?

साधक ३ – ध्यान करते समय हम जो मन्त्र बोलते हैं या कोई वाक्य बोलते हैं, उनका अर्थ बोलना उचित है और वह अर्थ ठीक हो, वह अर्थ अशुद्ध नहीं होना चाहिए। उसका उचित अर्थ ही होना चाहिए। तब हमारा ध्यान ठीक होगा।

स्वामी जी – ध्यान करने वाले कुछ लोग प्रायः यह कहते हैं कि कुछ भी न करना। न वाणी से बाहर बोलना, न मन से कुछ पाठ-उच्चारण करना; उसका नाम ध्यान है। कुछ लोग यह कहते हैं कि पाठ तो करना चाहिए किन्तु शब्दार्थ करना कोई आवश्यक नहीं है। तो ये दोनों ही मान्यताएँ ठीक नहीं हैं। ऐसी स्थिति में ध्यान और समाधि की सिद्धि नहीं होती है। इसलिए हम पूर्वोक्त विधि से अर्थ-उच्चारण सहित प्रयोग करेंगे। मन्त्र है –

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥ अथर्व. १०/८/४४ ।

हाँ जी ! क्या आप इसका अर्थ कर सकते हैं ?

साधक ४ – हाँ जी !

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – क्या अर्थ करोगे, करके दिखाओ।

साधक ४– अकामो कामना रहित अर्थात् अपने लिए किसी भी प्रकार की कामना से रहित **धीरः** धैर्यवान् **अमृतः** मृत्यु से रहित **स्वयम्भूः** अपने स्वरूप से सिद्ध **रसेन तृप्तः** आनन्द से परिपूर्ण न **कुतश्चनोनः** किसी भी प्रकार की न्यूनता से रहित **तमेव विद्वान्** इसी ईश्वर को जानकर न **बिभाय मृत्योः** हम जीवात्माएँ मृत्यु आदि के भय से रहित होती हैं। **आत्मानं** परमात्मा को **धीरम्** धैर्यवान् को **अजरम्** जरा आदि से रहित को **युवानम्** सदा एकसमान शक्तिरूप रहने वाले ईश्वर को।

स्वामी जी – आ गया समझ में? अब प्रयोगकाल में इसको इसी रूप में बनाए रखना। **अकामो** ईश्वर में अपने लिए व्यक्तिगत पूर्ति की कोई इच्छा नहीं है। ईश्वर कामनाओं से रहित है किन्तु जीवों को लौकिक सुख देना और मोक्ष का आनन्द देना; यह कामना ईश्वर में है। यदि इस बात को दूसरे लोग समझ जाएँ तो बड़ा भारी परिवर्तन हो जाएगा। विशेषकर भौतिक वैज्ञानिक यदि यह समझ जाएँ कि ईश्वर एक पदार्थ है, एक वस्तु है और वह स्वयं कामनाओं से रहित, परिपूर्ण है, किन्तु जीवों के लिए वह लौकिक सुख और नित्य मोक्ष सुख देना चाहता है तो सारे वैज्ञानिक स्वयं ईश्वर को पाने के लिए तथा अन्यों को प्राप्त करवाने के लिए तैयार हो जाएँगे। समझ में न आने से उनकी यह विपरीत स्थिति बनी हुई है।

दूसरा वर्ग एक अन्य भूल कर रहा है। वह सोचता है कि ईश्वर के लिए अच्छे से अच्छा भोजन हलुवा आदि बनाकर उसे खिलाया जाए, इससे ईश्वर प्रसन्न हो जाएगा और हमारी कामनाओं को पूर्ण कर देगा। इसके लिए वह ईश्वर की मूर्ति बनाकर रखता है और तरह-तरह के भोजन-वस्त्र आदि से सत्कार-पूजा का नाटक करता रहता है। यह वह आस्तिक वर्ग है, जो ईश्वर को मानता है पर मिथ्या रूप में मानता है। इसी का परिणाम आया कि ईश्वर को न मानने वाले तथा विपरीत रूप में मानने वाले दोनों वर्ग स्वयं आनन्द से वंचित हैं और इन्होंने अपने पीछे चलने वाले व्यक्तियों को भी आनन्द से वंचित कर रखा है। यह इनकी स्थिति है। अब हम प्रयोग करेंगे –

प्रयोग धुन के रूप में कर सकते है और बिना धुन के भी कर सकते हैं। इसी को बोलकर और मन से भी कर सकते हैं। पहले हम धुन के रूप में प्रयोग करेंगे। हमारी धुन कुछ संगीत के रूप में होनी चाहिए। यद्यपि संगीत न जानने वाले भी कोई न कोई धुन तो बनाते ही हैं, भले ही संगीत के नियम के अनुरूप न हो। पर वे गाते हैं, अर्थ सहित गाते हैं और उनको लाभ भी होता है। अतः संगीत की धुन आए या न आए, लाभ तो होता ही है।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥

और यदि इस धुन को पूरा करना हो तो इससे ऊँचे स्वर की ओर ले जाएँगे।

अकामो..... धीरमजरं युवानम्॥ प्रयोग काल लगभग ४ मिनट।

अब रुकेंगे। आपमें से कोई ऐसा अनुभव कर पाया कि अर्थ होता रहा और गाते रहे हों। हाँ जी! आप बताएँगे –

साधक २– ऐसी स्थिति बनी रही। अर्थ भी बना रहा, गायन भी करता रहा, प्रणिधान भी बनाया, साथ-साथ प्रार्थना भी करता रहा।

स्वामी जी – इन्होंने एक उपलब्धि की, एक सफलता की स्थिति में अपना प्रयोग देखा, जो-जो इसमें वर्णन किए जाते हैं – पाठ भी करो, अर्थ का विचार भी करो, ईश्वर को सम्बोधित भी करो, अपने-आप को ईश्वर समर्पित भी रखो। ये उपलब्धियाँ इन्होंने सुनाईं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि एक व्यक्ति साधारण भाषा में मन्त्र का प्रयोग करता है। तब वह भी अर्थ का विचार करता है। अब हम सामान्य स्थिति में बोलेंगे जैसे -

अकामो.....धीरमजरं युवानम् ॥

या तो रुक रुक कर बोलो अथवा साधारण रूप में जैसे वेद का पाठ कर लेते हैं, वैसे एक-एक शब्द बोलेंगे -

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः ।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम् ॥

ऐसा पाठ किया साधक ने और पुनः अर्थ करता है - हे ईश्वर ! आप कामनाओं से रहित हैं। ऐसे ही वह अन्त तक अर्थ करता चला जाता है।

अब आप मन-मन में पाठ करेंगे - **अकामो.....धीरमजरं युवानम् ॥**

मन-मन में पाठ करेंगे और एक-एक शब्द का अर्थ करेंगे। पाठ के साथ पूर्व में ओम् शब्द भी लगाना चाहिए। जैसे ओम् हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं और पुनः **अकामः** आप कामना से रहित हैं। ऐसे अधिकार-पूर्वक एक-एक शब्द का अर्थ करते चलिए। इस अवस्था में आप प्रलयवत् स्थिति को सम्पादित कर लेते हैं तो जप में विशेष बाधा उपस्थित नहीं होगी। जो प्रलयवत् स्थिति नहीं बना सकते, वे ज्यों का त्यों एक-एक शब्द का अर्थ करते जाएँ।

अब आप रुकेंगे और आप अपना अनुभव सुनाएँगे कि ईश्वर मेरे पास में उपस्थित है जैसे पिता पुत्र के पास में उपस्थित हो; क्या ऐसी अनुभूति हो पाती है या नहीं ?

साधक ६ – हो पाती है। पर पूरे समय नहीं रह पाती। बीच-बीच में वृत्तियाँ बाधित करती रहती हैं।

स्वामी जी – स्थिति का जमना, अनुभव होना और जब वह स्थिति हट जाए तब पुनः प्रयत्न करके वैसा ही बना लेना; ऐसे प्रयत्न चलते रहने चाहिएँ। पुनः नहीं रहती, पुनः वैसा ही बना लेते हैं। इसका नाम अभ्यास है। ऐसे करते रहना पड़ता है। ऐसी स्थिति बनाने के लिए यदि आप संसार को प्रलय की अवस्था में ले जाना चाहते हैं तो वैसा बना लें। जैसा कि सिखाया जाता है - जहाँ से संसार बना अर्थात् प्रकृति से आगे महत्तत्त्वादि से बनाते-बनाते मनुष्य आदि प्राणी पर्यन्त ले आओ और पुनः तोड़ते-तोड़ते वहीं प्रकृति तक पहुँचा दो। तब पूरे विश्व का कोई आकार-प्रकार दिखाई नहीं देगा। प्रलय जैसी स्थिति सामने आएगी। उस अवस्था में ईश्वर को पिता की भाँति वर्त्तमान देखने में सरलता हो जाती है। आपको बात समझ में आ गई ? न आई हो तो पुनः पूछिए।

मैंने यह अभ्यास लम्बे काल तक किया। अब मैं इस पूरे संसार को प्रलय जैसी स्थिति में पहुँचा दूँ तो कोई आकार-प्रकार दिखाई नहीं देगा। सरलता से ऐसा बना लेता हूँ, कोई प्रभाव, कोई दबाव, कोई बल, कोई विवशता नहीं होती। किन्तु जब नया व्यक्ति इस प्रलय की स्थिति को बनाता है और यदि वह थोड़ा-सा असावधान हो जाए तब उसको पुनः संसार दिखने लगता है। पुनः उसे हटाता है, पुनः दिखने लगता है। स्मृति-वृत्ति के आधार पर ऐसा होता रहता है। कालान्तर में अच्छी स्थिति बन जाती है।

आप ध्यान देंगे - आज से दस या पन्द्रह वर्ष पूर्व आपके समक्ष कोई घटना घटी थी। उसको आपने अच्छी प्रकार से देखा था। जब आप मन्त्र का जप करने लगते हैं - ओम् भूर्भुवः स्वः, इतना बोलते ही आपको वह दस या पन्द्रह वर्ष पूर्व की घटना झट सामने दिखाई देगी। अब न तो यह

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पता चला कि आपने कब इच्छा की, न यह पता चला कि मन को कब प्रेरणा दी, न यह पता चला कि मन में स्थित संस्कार के कारण स्मृति उठा ली। कुछ पता नहीं चलता, केवल वह घटना ज्यों की त्यों दिखाई देती है और वह स्मृति में आते ही आपको प्रभावित कर देती है। दोहराओ, क्या समझ में आया?

ऐसे ही कोई वाक्य हमने दस-पन्द्रह या बीस वर्ष पहले सुना था और जब हम ध्यान में बैठे तब वही बीस-तीस, पचास और बढ़ जाइए आगे अस्सी वर्ष का भी क्यों न हो, वह वाक्य झट स्मृति में आ जाता है और हमको प्रभावित कर देता है। आपकी ऐसी अनुभूतियाँ हैं या नहीं?

साधक ३ – हाँ जी! ऐसा होता है।

स्वामी जी – एक दृष्टान्त। यदि किसी व्यक्ति ने पचास, साठ अथवा अस्सी वर्ष पहले किसी बहुत सुन्दर व्यक्ति को देखा हो और वह उसको बड़ा अच्छा लगा हो। उसमें देखने वाले को बड़ा रस आया था। उससे सुख की अनुभूति की थी और अब वह उस व्यक्ति से दूर हो गया है। मिले हुए कई वर्ष हो गए। अब तक कोई बात ही नहीं हुई थी, परन्तु उसका संस्कार बन गया। वह पचास-साठ या अस्सी वर्ष का जो संस्कार अन्दर विद्यमान था, आज साधक जब ध्यान में बैठा तो थोड़ी-सी असावधानी से उस संस्कार को जगा दिया और सुन्दर रूप को स्मरण कर लिया। अब उस संस्कार ने प्रभाव डाला और ध्यान को उखाड़कर फेंक दिया। वह कहने लगा – मुझे तो वही व्यक्ति चाहिए। वही अच्छा लगता है। इस प्रकार संस्कार ध्यान करने वाले को उसी पुराने सुन्दर व्यक्ति के पास पुनः घसीटकर ले गया। आ गया समझ में?

साधक ३ – अब तो ऐसा होता है कि कोई वृत्ति आई और तत्काल चली गई। रुक नहीं पाती या उसको रोकते नहीं हैं। उसका प्रभाव भी देर तक नहीं रहता है। एक क्षण के लिए प्रभाव हुआ, उसको हटा दिया; ऐसा होता है।

स्वामी जी – स्मृति-वृत्ति जितने काल तक रहेगी, उतना प्रभाव डालेगी। तत्काल हटा दें तो प्रभाव बहुत कम होगा। थोड़ी-सी देर रुकते ही जहर की तरह फैल जाएगी। विद्युत् की तरह फैलती है। यदि आपने स्मृति उठाई और उठाते ही हटा ली तब तो अधिक प्रभाव नहीं डाल पाएगी, थोड़ा डालेगी। यदि आपने एक-दो-तीन सेकेण्ड रख ली, बस! बिजली की तरह फैल जाएगी। यदि क्रोध का स्मरण कर लिया तो सारा शरीर पसीना-पसीना हो जाएगा।

एक और ऐसी स्थिति है कि हम मन को प्रेरणा देते हुए यह भी नहीं जान पाते हैं कि मैं प्रेरणा दे रहा हूँ। हम स्वयं उस विषय की इच्छा करते हुए यह नहीं जान पाते कि मैं उसकी इच्छा कर रहा हूँ। न मन को प्रेरणा देने का पता चलता है, न इच्छा करने का पता चलता है और न विषय के साथ जुड़ने का पता चलता है। बस! चित्र दिखाई दे जाता है। पुनः व्यक्ति कहता है – यह आ गया। आप पीछे वाले भी सुन लो, कभी सोचो कि केवल ब्रह्मचारियों के लिए हैं। वह क्या कहता है?

साधक १ – आ गया।

स्वामी जी – कितना भी समझाओ परन्तु वह मानने को उद्यत नहीं होता कि स्मृति मैंने उठाई है। अब इसको समझने के लिए न्यायदर्शन या अन्य दर्शनों का आश्रय लेते हैं। जैसे कि हम कहते हैं यह जो पचास वर्ष का रूप या वाक्य सामने आया है, वह अपने-आप नहीं आया, उसको हम लाए हैं। यहाँ हमको पता नहीं चला कि कब मन को चलाया और पचास वर्ष वाले उन संस्कारों को जगाकर रूप को ले आए। तो न्यायकार कहेगा भाई! बात सुनो। यहाँ प्रत्यक्ष-

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रमाण काम नहीं देगा, यहाँ अनुमान-प्रमाण से काम लेना होगा। वह आपको समझाएगा कि चेतन पदार्थ में अपनी इच्छा होती है। चेतन पदार्थ, ज्ञानवान् पदार्थ जब आँख, नाक, मन आदि को चलाएगा तो प्रयत्न करेगा ही। इसके बिना कोई भी क्रिया मन, इन्द्रियों में हो नहीं सकती। दोहरा लो, क्या समझ में आया? आपने अनुमान से क्या सोचा?

साधक ५– अनुमान से यह सोचा कि आत्मा की इच्छा और प्रयत्न के बिना मन, इन्द्रियों आदि में कोई भी क्रिया नहीं होती।

स्वामी जी – कोई क्रिया-गति इस प्रकार की नहीं होती जिससे वे चित्र को लाकर रख दें। यह अनुमान-प्रमाण से सिद्ध है। प्रत्यक्ष हो या नहीं, आवश्यक नहीं है। आ गई बात समझ में? अब वह आगे बढ़ता है। प्रयोग करते-करते उसको अपनी इच्छा उस विषय के प्रति उठती हुई या उठाई जाती हुई दिखाई देने लगती है। अब क्या अन्तर पड़ गया? देखो! पहले जब अनुमान-प्रमाण, काम कर रहा था तब उसमें इच्छा दिखाई नहीं देती थी, प्रयत्न दिखाई नहीं देता था। मैं चला रहा हूँ, यह भी दिखाई नहीं दे रहा था। अब उसको यह सब दिखाई देने लगे। कैसे?

अब ध्यान दो। जहाँ-जहाँ भी इच्छा होती है, वहाँ-वहाँ जीवात्मा अपने पीछे लग जाता है। क्या समझ में आया? जब इच्छा उठाता है तब कहता है – मैं ज्ञानवान् हूँ, मैं इच्छा करता हूँ, मैं प्रयत्न करता हूँ। अतः यह भी मैंने उठाया है, अब नहीं उठाऊँगा। आगे पुनः उठाता है और कहता है – यह भी मैंने उठाया है और नहीं उठाऊँगा। इस प्रकार वह अपने पीछे दिनभर लगा रहता है। कोई भी इच्छा अपने विरुद्ध नहीं उठने देता। उठते ही रोक देता है। यह स्थिति आ जाती है। आगे चलकर संशय, भ्रान्ति दोनों नहीं रहते अर्थात् विचार स्वयं उठते हैं या मैं उठाता हूँ, उलटे ज्ञान मैं स्वयं करता हूँ या हो जाते हैं; ऐसी कोई स्थिति नहीं रहती। वह कहता है – नहीं! मुझे भ्रान्ति नहीं है, मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि ये विचार मैंने उठाए हैं। किस हेतु से? **विमृश्य पक्षप्रतिपक्षाभ्यामर्थावधारणं निर्णयः**। न्याय.१/१/४१। यह तो याद होगा? पक्ष-प्रतिपक्ष उठाकर उसने निर्णय किया है – मैं चेतन आत्मा हूँ। संसार में चेतन=ज्ञानवान्, इच्छा, प्रयत्न करने वाला एक ईश्वर है और दूसरा मैं जीवात्मा हूँ, अन्य तीसरा कोई भी नहीं है। अब ईश्वर इच्छा करता नहीं है कि मैं उस रूप को देखूँ और जड़वर्ग में सांख्य के अनुसार चौबीस तत्त्व आ गए, वे सारे जड़ होने से नहीं देख सकते, न विचारों को ला सकते हैं और न आत्मा को प्रेरित कर सकते हैं। अब शेषवत् अनुमान से क्या बचा? देखने वाला या इच्छापूर्वक विचारों को लाने वाला कौन सिद्ध होता है? स्वयं जीवात्मा।

इस प्रकार हमारे ये प्रयोग चलते रहते हैं, दिनभर ये स्थितियाँ बनी रहती हैं। अब विराम॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३५ क्रियात्मक योगाभ्यास

प्रयोग : आषाढ़ कृ. ०५/२०६०-१८/०७/२००३

जब व्यक्ति उपासना आरम्भ करता है तब ईश्वर के विषय में, आत्मा के विषय में, प्रकृति-विकृति के विषय में विचार करता है। वह इनके स्वरूप के विषय में निर्धारण करता है कि ईश्वर, मैं जीवात्मा या सभी जीवात्माए और प्रकृति तथा प्रकृति से बना संसार; ये सब कैसे हैं? इसके लिए आर्य समाज का पहला-दूसरा नियम, पुनः योगदर्शन के क्लेशकर्म.... आदि सूत्र और इनसे सम्बन्धित वेदमन्त्रों को इकट्ठा करता है। वह इनसे ईश्वर के विषय में पुष्टि करता है, निर्धारण करता है कि वेद में ईश्वर का स्वरूप ऐसा है और ये-ये ऋषि ईश्वर को ऐसा मानते हैं तथा ऐसा मनवाना चाहते हैं। ऐसे ही व्यक्ति अनेक प्रमाणों से जीव और प्रकृति या अन्य किसी विषय का निर्णय अथवा पुष्टि करता है, तब वह विषय या सिद्धान्त अधिक दृढ़ हो जाता है।

अब हम प्रयोग करेंगे - आप ध्यान से एक केन्द्र बनाकर यह संकल्प करें कि अब मैं अपने मन को अमुक स्थल पर स्थिर करके ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करूँगा। अब प्रयोग काल में क्या-क्या बाधाएँ आती हैं, उनको जान लेना चाहिए तथा उन बाधाओं के क्या-क्या कारण हैं, उनको भी जान लेना चाहिए। प्रयोग होते जाते हैं, व्यक्ति को बाधाओं का अधिक-अधिक पता चलता जाता है। उपायों का तथा उनके प्रयोग कैसे होते हैं, इसका भी अधिकाधिक परिज्ञान होता जाता है।

अब प्रयत्न करेंगे कि हमारी स्थिति अच्छी से अच्छी बने। आप यह ध्यान रखेंगे कि क्या-क्या बाधाएँ आती हैं तथा उनको हटाने के उपाय क्या हैं?

प्रयोग आरम्भ.....समय लगभग तीन मिनट।

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ अथर्व. १०/८/४४।

अब आप रुकेंगे और दूसरा प्रयोग करेंगे। आप में से किसी के पास यदि ब्रह्मविज्ञान पुस्तक हो तो इस मन्त्र को निकालकर अपने भौतिक वैज्ञानिक को दे दो। इससे उनको देखने में सुविधा हो जाएगी।

अब हम मानसिक प्रयोग करेंगे। जिनको मन्त्र कंठस्थ है, वे मन में प्रयोग करेंगे और जिनको नहीं है, वे पुस्तक से निकालकर सामने रख लेंगे और उसका अर्थ नीचे धीरे-धीरे मन में देखते जाएँगे। उस काल में मन में दूसरी वृत्ति आए तो उसको रोकते रहेंगे। आरम्भ कीजिए -

प्रयोग आरम्भ ....समय लगभग दो मिनट।

अब आप रुकेंगे और सुनाएँगे कि मानसिक जप करते समय कैसी स्थिति रही?

साधक ४- उच्चारण, अर्थ का चिन्तन और ईश्वर-समर्पण सतत बनाए रखा किन्तु धारणा की स्थिति ठीक नहीं रही। कारण है कि मेरा पूर्व का अभ्यास मस्तिष्क में धारणा बनाने का है और इस समय मैंने हृदय प्रदेश में बनाने का प्रयास किया तो बीच-बीच में पूर्वाभ्यास के कारण धारणा मस्तिष्क में चली जाती थी। मैं पुनः उसको हृदय प्रदेश में लाता था।

स्वामी जी - इसके लिए ऐसा करना है कि आपका मस्तिष्क में अभ्यास है तो वहीं धारणा बनाएँ और वहीं ठीक धारणा बनती है तो उसी का अभ्यास करते रहें। कालान्तर में अभ्यास बढ़ते-बढ़ते आपका मन पर अधिकार हो जाएगा तब हृदय में धारणा बनाने में कोई कठिनाई नहीं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगी। अब आप बताएँगे, क्या स्थिति रही ?

साधक ६– पूरे मन्त्र का अर्थ नहीं कर पाया और ईश्वर-प्रणिधान सहित कुछ-कुछ शब्दों के अर्थों सहित ईश्वर-समर्पण रखने का प्रयास किया। बीच-बीच में वृत्तियाँ भी उठाता रहा। पहले और अन्त में स्थिति कुछ अच्छी रही किन्तु बीच में कुछ अधिक व्यवधान हुआ।

स्वामी जी – तो जब वह वृत्ति उठाई गई, उसमें कारण क्या था ?

साधक ६– अभ्यास की कमी दिखाई दी।

स्वामी जी – एक ध्यान देने की बात है वृत्तियाँ जो उठाई जाती हैं, उसमें आपके कोई लौकिक प्रयोजन होंगे। क्या समझ में आया ? एक विषय को छोड़कर दूसरे विषय में मन को लगाने के पीछे कोई न कोई उद्देश्य होता है अर्थात् आप कहीं सुख और सुख-साधन की गवेषणा कर रहे होंगे या दुःख और दुःख के साधन को हटाने की बात सोच रहें होंगे। क्या पकड़ में आया ?

साधक ६– जी ! ऐसा प्रतीत तो नहीं होता है।

स्वामी जी – हाँ ! वह साक्षात् पकड़ में नहीं आता। अनुमान-प्रमाण से आप उसको जान सकते हैं। जैसे कि जब एक विषय को छोड़कर अन्य विषय को उठाते हैं तब जीवात्मा संस्कारों के साथ जुड़कर सुख और सुख के साधनों की प्राप्ति के लिए तथा दुःख और दुःख के कारणों को हटाने के लिए मन को प्रेरणा देता है। भले ही उसको पता चले न चले, परन्तु कारण यही होता है। हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे, कैसी स्थिति रही ?

साधक ५– स्थिति लगभग ठीक रही स्वामी जी ! बीच में दो या तीन वृत्तियों को क्षणभर के लिए लाया और यह पता भी चल गया कि मैं इन-इन विषयों को लाया हूँ और उन्हें तत्काल रोक दिया।

स्वामी जी – वृत्तियाँ जब लाकर खड़ी कर दी तब पता चला होगा या ....।

साधक ५– स्वामी जी ! खड़ी करने के बाद ही पता चला।

स्वामी जी – वृत्तियाँ व्यक्ति ले आता है और ले आने के पश्चात् उसको पता चलता है कि वह विषय को ले आया है। अच्छा ! आपके पास संध्या की पुस्तक रहती है ? तो आपको पहले संकेत दिया था कि जो भी यहाँ से सम्बन्धित आवश्यक पुस्तकें हैं; उनको साथ रखा करें। जैसे कि संध्या की या ऋग्वेदादि भाष्यभूमिका, सत्यार्थ प्रकाश, पंचमहायज्ञविधि आदि। इनमें कभी भी, कोई भी बात देखनी पड़ती है या अमुक बात इसमें कहाँ लिखी है, इसमें क्या लिखा है, तब सामने रखी हो तो इनको तत्काल देख लेते हैं। अब हम प्राणायाम मन्त्र का प्रयोग करेंगे। क्या आप सबको चारों प्रकार के प्राणायाम करने आते हैं या नहीं ?

साधक ४– आते हैं। करते नहीं हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! आते हैं किन्तु प्रयोग नहीं करते। तो इनमें से जब हम बाह्य प्राणायाम करते हैं तब पहले मूलेन्द्रिय को ऊपर संकुचित करना होता है, इसका तात्पर्य है मलद्वार को ऊपर संकुचित करना। बस, इतना ही मुख्य है। संकुचित होता है या नहीं, यह कोई आवश्यक नहीं है। हो जाए तो ठीक है।

पुनः प्राण को हम बाहर निकालते हैं।

बाहर निकालकर बाहर ही रोक देते हैं। यथा शक्ति रोके रहते हैं। जब घबराहट होती है तब मूलेन्द्रिय के संकोच को छोड़ देते हैं और धीरे-धीरे नाक से अन्दर श्वास लेते हैं। श्वास की पूर्ति हो जाने पर समझना चाहिए कि एक प्राणायाम पूरा हो गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसी प्रकार से दूसरी बार प्राण को बाहर निकालते हैं और बाहर ही रोक देते हैं, यथाशक्ति रोके रहते हैं। जब घबराहट होती है तब धीरे-धीरे नासिका के माध्यम से श्वास को अन्दर लेते हैं। श्वास की पूर्ति हो जाने पर यह दूसरा प्राणायाम हो गया।

इसी प्रकार से तीन प्राणायाम प्रातःकाल और तीन सायंकाल करें। ऐसे अभ्यास किया जाता है। अब आपको सुविधा हो तो बाह्य प्राणायाम करें, अन्यथा सामान्य श्वास-प्रश्वास लेते रहें परन्तु मन में प्राणायाम मन्त्र का प्रयोग करते रहें। जिसको कंठस्थ नहीं हो, वह अपने सामने अपनी पुस्तक रख सकता है। अब आप मन में बोलेंगे -

अब आप ओम् भूः को बोलकर अर्थ करेंगे कि हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक और प्राणों के भी प्राण हैं। ओम् भुवः हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक और सब दुःखों से छुड़ाने वाले हैं। यह रीति-पद्धति मानसिक जप में रहेगी। यदि अनुकूल हो तो आप प्राणायाम करें, नहीं तो श्वास-प्रश्वास को स्वाभाविक रूप में लेते-छोड़ते रहें। धारणा बनाने का प्रयास भी करते रहिए। आरम्भ करें -

प्रयोग आरम्भ .....। समय लगभग ५ मिनिट।

अब आप रुकेंगे और बताएँगे कि प्राणायाम की कैसी स्थिति रही ?

साधक २- प्रथम बात तो यह रही कि पहले जो हे ईश्वर ! आप प्राणों के भी प्राण हैं यह शब्दार्थ करता था, उसका अभी थोड़ा-सा अधिक अर्थ स्पष्ट हुआ और पता चला कि कैसे प्राण हमारे लिए प्रिय हैं। आपकी महिमा इससे भी अधिक है। इस विशेष अर्थ की अनुभूति हुई। शेष आगे के अर्थों में भी थोड़ी-सी स्पष्टता और गहराई आई। प्राणायाम भी साथ-साथ कर रहा था। अर्थ चिन्तन भी कर रहा था।

स्वामी जी - हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे कि कैसी स्थिति रही ?

साधक ३- स्थिति अच्छी थी। अर्थ का विचार और समर्पण भी अच्छी प्रकार से हुआ। मोर की ध्वनि कई बार आई जिससे थोड़ी बाधा हुई। शेष स्थिति अच्छी बनी रही।

स्वामी जी - आपने यह कह दिया होता कि मैंने मोर की ध्वनि सुनी, यह थोड़ी-सी बाधा उपस्थित की; तो कैसा रहता ?

साधक ३- स्वामी जी ! यह बात बिलकुल ठीक है। कि मैंने ....।

स्वामी जी - मैंने बीच में बाधा खड़ी की। मोर की ध्वनि सुनी, यह भाषा बना देने पर कैसा रहता है ? भाषा का एक प्रकार है - बीच में बाधा आई, मैंने मोर की ध्वनि सुनी। अर्थात् मोर की ध्वनि ने बाधा खड़ी की। भाषा का एक दूसरा प्रकार है - मैंने बीच में बाधा खड़ी की कि मोर की ध्वनि को सुना। यह मेरा दोष है, इसका प्रबल भाव यह है। उस पहले वाक्य का प्रबल भाव है कि जो मोर की ध्वनि से बाधा हो गई, वह किसी और ने की, हमने नहीं। जब कि हमने स्वयं बाधा खड़ी की। सबको अन्तर समझ में आ गया ? भाषा बोलने में जो परिवर्तन आता है, उससे परिणाम में बहुत अन्तर आता है।

एक व्यक्ति जब दस वर्ष का था तभी से वह संध्या करने लगा और चालीस-पचास वर्ष तक करता रहा। परन्तु उसे यह सिखाया गया था कि मन चंचल है, संध्या में नहीं लगता और वह प्रतिदिन यही अभ्यास करता रहा। परिणाम यह हुआ कि उस व्यक्ति का जो विकास होना था, मन को रोकना था, मन को वश में करना था, ध्यान लगाना था; वह पचास वर्षों तक ज्यों का त्यों रहा, उसमें कोई विकास नहीं हुआ। यह सिद्धान्त-रूप में अशुद्ध मानकर चलने से हुआ। उस

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति को यदि आरम्भ में यह सिखा दिया जाता कि मन एक जड़ पदार्थ है और आत्मा चेतन पदार्थ है। वह आत्मा ही मन, इन्द्रियों और शरीर को चलाता है। यह मत मानो कि मन अपने-आप चला जाता है। अब यदि वह इसका प्रयोग करता रहता तो वास्तव में पचास वर्ष में कहाँ से कहाँ पहुँच जाता। कल्पना करो संध्या में उसकी कितनी प्रगति हो गई होती?

प्रशिक्षण न मिलने से सभी स्थानों पर संध्या आदि के विषय में यही स्थिति, गतिविधि चल रही है। डॉक्टर, इंजीनियर, भौतिक वैज्ञानिक आदि बनने के लिए जैसा प्रशिक्षण दिया जाता है वैसा प्रशिक्षण सन्ध्या आदि के लिए नहीं दिया जाता है। डॉक्टर, इंजीनियर या वैज्ञानिक बनने के लिए एक-एक अक्षर को रटाया जाता है, सिखाया जाता है। पहले घर में माता बच्चे को सिखाती है, पुनः पिता सिखाता है, तत्पश्चात् विद्यालय में अध्यापक सिखाते हैं। पुनः विदेश जाकर स्वयं विशेष प्रशिक्षण लेता है। इसके लिए विशेष प्रयास करता है, दिन-रात लगा रहता है तब जाकर उसको शल्य चिकित्सा, शरीर को कैसे चीरना-फाड़ना चाहिए या स्वस्थ बनाना चाहिए आदि भलीभाँति समझ में आने लगता है। ऐसा होता है या नहीं? ऐसे ही योग विद्या को सीखने-सिखाने हेतु प्रशिक्षण और प्रयास की अपेक्षा होती है। जब इतना प्रयत्न करते हैं तब यह योग विद्या प्राप्त होती है। अतः इसके लिए उतना ही परिश्रम करें, इसको उतना ही मूल्यवान् समझें और उतना ही श्रद्धा-विश्वास रखें, तब जाकर सफलता मिलेगी।

उदाहरण के लिए देखो! जब आप संध्या कर रहे हैं, जप कर रहे हैं, तब श्वास-प्रश्वास स्वभावतः जैसा चल रहा है वैसा ही चलेगा जैसे कि सोते समय चलता रहता है। उसकी ओर कोई ध्यान नहीं देना है। ईश्वर की बनाई हुई व्यवस्था से स्वभावतः हमारा शरीर श्वास-प्रश्वास का लेना-छोड़ना करता रहता है। ध्यान के समय कुछ लोग इस स्वाभाविक श्वास-प्रश्वास के विषय में हस्तक्षेप करते हैं, अपनी विशेष प्रक्रिया का विधान करते हैं, जो कि ध्यान में अनुकूल नहीं होती है। वे कहते हैं कि श्वास लेते समय इतने काल में 'अ' बोलो, इतने काल में 'उ' बोलो और इतने काल में 'म्' बोलो आदि प्रयोग ध्यान में उपयोगी नहीं होते हैं। इसलिए यदि आपको ध्यान में बाधा न पड़ती हो तो केवल नाक से लम्बा श्वास लो और छोड़ो। क्या करोगे?

साधक ३- लम्बा श्वास लेना और उसको धीरे-धीरे लम्बा करके छोड़ेंगे।

स्वामी जी - देखो! हमने श्वास बाहर निकालना है और थोड़ा बल लगाकर बाहर निकाल दिया। थोड़ा-सा रोका और पुनः अन्दर लेना आरम्भ किया। पूरा अन्दर ले लिया। थोड़ा रोका और पुनः अधिकारपूर्वक बाहर निकाल दिया। कुछ रोका और लेना आरम्भ कर दिया। पूरा भर दिया। इस प्रकार से लम्बा श्वास लेने व छोड़ने से हमारे शरीर की शुद्धि होती है। क्या समझ में आया?

आपने इस बात का विशेष ध्यान रखना है कि जब यह कहा जाए कि समझ में आया या नहीं, तब आप मौन न रहें। यदि मौन रहते हैं और समझ में भी नहीं आता है तब मैं यह समझ लूँगा कि आपको समझ में आ गया। इसलिए हाँ या न में उत्तर दिया करो? अब आया समझ में?

साधक २- आ गया।

स्वामी जी - कई बार समझ में भी नहीं आता और व्यक्ति न तो 'हाँ' करता और न तो 'न' करता है, बस! सुखपूर्वक मौन बैठा रहता है। इसलिए भाव जानने के लिए कोई नियम तो बनाना ही पड़ेगा। आपको ज्ञात हो कि जब क्रियात्मक रूप में विद्या सिखाई जाती है तब विद्यार्थी चुप नहीं रह सकता। उसे शिक्षक को अपना स्तर बताना पड़ेगा और शिक्षक के स्तर को पकड़ना पड़ेगा।

एक व्यक्ति आपको मल्लयुद्ध की विद्या सिखा रहा हो और आप उस समय गूंगे की तरह बैठे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहो। जब वह कहे कि ऐसे दाव लगाते हैं, यहाँ से ऐसे पकड़ते हैं तब आप पंगु बनकर बैठे रहो, कोई भी उत्तर नहीं दो तो वह सिखाने वाला क्या मानेगा? ऐसा ही यहाँ समझें। आपसे जब यह पूछा गया कि क्या समझ में आया, तब किसी ने कुछ भी नहीं बोला, तब क्या माना जाए कि आपको ठीक से समझ में आ गया या अभी समझ में नहीं आया?

साधक ३– जी! एक स्थिति और आती है कि आपने कोई बात पहले ही बहुत बार बता रखी है। वह बात समझी हुई है तो उसके लिए कुछ नहीं बोलते हैं।

स्वामी जी – उसमें भी वही बात है। जिसको पहले से ही कोई बात समझ में आ रही हो और पुनः वही बात बताई गई तब भी वह 'हाँ' संकेत करे। अन्यथा, कल्पना करते हैं, जब उस व्यक्ति से सीधा पूछा जाए, तब उत्तर दे और जब सीधा न पूछा जाए, तब चुप रहे; उस स्थिति में बताने वाला अन्यों के विषय में क्या मानकर चले?

साधक २– यह बात अभी पकड़ में नहीं आई।

स्वामी जी – कौन-सी श्वास-प्रश्वास की?

साधक २– नहीं, जो पूछने की बात है वह।

स्वामी जी – आपसे ऐसा सीधा (नाम लेकर) प्रश्न पूछा जाए कि क्या समझ में आ गया, तब आपको उत्तर देना है। एक नियम तो यह बन गया।

साधक २– हाँ जी! स्वामी जी!

स्वामी जी – दूसरा - आपको पहले से समझ में आया हुआ है, अब भी आ गया है किन्तु सामूहिक रूप में पूछा गया कि बात समझ में आई? तब आप सब चुप रहे, तब मुझे यह मानना चाहिए कि इन सबको बात समझ में आ गई है। एक यह दूसरा विभाग बन गया और जब बात समझ में नहीं आई तब आप कहेंगे कि मुझे अभी समझ में नहीं आई। ये तीन धाराएँ पूछने-बताने की बन गईं। अब और कोई बनानी हो तो ढूंढ लो।

साधक २– तीन धाराएँ पर्याप्त हैं अर्थात् जब व्यक्तिगत रूप में पूछ रहे हैं तब तो समझने पर भी उत्तर देना ही है और जब सामूहिक रूप में पूछते हैं वहाँ पर भी यह स्थिति रहती है कि व्यक्ति यदि समझ रहा है कि मैंने जान लिया, तब वह नहीं बोलता। तीसरे में जिसको संशय आदि रह गया हो, तब वह स्वयं पूछ लेगा।

स्वामी जी – कभी-कभी सुनने वाला यह मान लेता है कि मुझे समझ में आ गया जबकि वास्तव में उसको उलटा समझ में आया हुआ होता है। इसका आपको ध्यान रखना चाहिए।

साधक ३– मान लें, कभी उसने उलटा समझ लिया और वह मानता है कि मैंने समझ लिया है। तब उसको हटाना उसका कार्य होगा।

स्वामी जी – तो चलो! ऐसे श्वास-प्रश्वास का प्रयोग करने से हमारे शरीर की शुद्धि होती है। मान लो, यदि ध्यान में ऐसे श्वास-प्रश्वास लेने से बाधा पड़ती हो तो श्वास-प्रश्वास इस रूप में नहीं लेना चाहिए।

साधक ३– इसमें लाभ होता है। ऐसा अनुभव करता हूँ।

स्वामी जी – और सुनो! जब हम प्राणायाम करते हैं, उस समय शरीर में जो अशुद्ध वायु अवरुद्ध रहती है, रुकी हुई रहती है, तब प्राणायाम करते-करते वह वायु ऊपर से या नीचे से निकल जाती है; यह परिणाम होगा। क्या समझ में आया? 'क्या आया' कहने पर आपको उत्तर देना पड़ेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५– जब हम प्राणायाम करते हैं तब शरीर के अन्दर जो अशुद्ध वायु रुकी हुई होती है वह या तो मुख से निकल जाती है या नीचे मलद्वार से निकल जाती है।

स्वामी जी – जब वायु के अन्दर रुक जाने से पीड़ा होती है और हमको पता चल गया कि वायु अन्दर रुकी हुई है तब हम विधिपूर्वक प्राणायाम करना आरम्भ करते हैं। इससे, सबकी तो छोड़ दीजिए, किसी-किसी की पीड़ा समाप्त हो जाएगी।

साधक ५– स्वामी जी ! इसमें कौन से प्राणायाम का प्रयोग करना है ?

स्वामी जी – व्यक्ति को कभी कोई, कभी कोई अनुकूल हो सकता है। वैसे इसमें प्रायः आभ्यन्तर प्राणायाम का प्रयोग करना चाहिए। इसकी विधि – जैसे कि आसन पर बैठ गए। अब हमने प्राण को अन्दर ले लिया। (पूरक)। कुछ काल रोककर निकाल दिया (रेचक); यह एक प्राणायाम हो गया। ऐसे ही दूसरा। समझ में आ गया ?

साधक ५– जी !

स्वामी जी – हो गया। अच्छा ! तो अब श्रवण, मनन, निदिध्यासन और साक्षात्कार; ये चारों प्रयोग विशेष रूप से परिश्रम के साथ, तप-त्याग के साथ समय लगाकर करें। जब आप नियम भंग करते हैं, उसके लिए कुछ दण्ड लेते जाएँ, जैसे कि हमने एक नियम बना दिया कि आपको मेरी आज्ञा के बिना किसी व्यक्ति से बात-चीत नहीं करनी है और आपने कर ली। अब आपको दण्ड दिया जाएगा कि आधा घण्टा तक घास काटना है अथवा आधा घण्टा तक खेती का काम करना है या आधा घण्टा तक आश्रम के दाएँ-बाएँ की शुद्धि करनी है। उससे एक तो गायों के लिए चारा मिल जाएगा, हमारे लिए शाक (सब्जी) तैयार हो जाएँगी, शुद्धि हो जाएगी और आपको दण्ड भी मिल जाएगा। इस रूप में दोनों कार्य हो जाएँगे। परन्तु नियमों को आलस्य-प्रमाद से या जान-बूझकर भंग करते रहना आदि आपकी गतिविधियाँ रहीं, तो आप का विकास कम से कम होगा, अधिक नहीं हो सकता अर्थात् आप पूरी शक्ति से नियमों के पालन में तत्पर रहें। अब विराम ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

३६ ज्ञानखण्ड

शरीरविनाश विधि : आषाढ़ कृ. ५/२०६०-१८/७/०३

अपने शरीर को जानने की दृष्टि से आपको यह कहा जाए कि यह शरीर नाशवान् है। यह पृथ्वी, जल, वायु, अग्नि, आकाश से बना है। आयुर्वेद की दृष्टि से इसमें सात धातुएँ हैं और आठवां ओज भी माना जाता है। इस शरीर में इन धातुओं के अंश मल भी हैं। यह उत्पन्न हुआ है, पहले नहीं था और पृथ्वी आदि से बना है। आप इन बातों को लेकर इस शरीर के विषय में धारणा, ध्यान, समाधि लगाने का प्रयत्न करें। पुनः यह बताएँगे कि इस एक विषय को बनाए रखने में आपमें से कौन-कौन समर्थ हैं?

शरीर का स्वरूप क्या है? इसके उपादान कारण क्या हैं? इसके अन्दर शरीर को सुरक्षित रखने वाले कौन-कौन से अंग हैं? भोजन से रस आदि बनने और मल आदि परित्याग के कितने विभाग हैं? यह शरीर निश्चित रूपेण नाशवान् है। एक समय ऐसा था जब यह नहीं था। अतः यह उत्पन्न हुआ है और आगे पृथ्वी आदि परमाणु के रूप में चला जाएगा। इन बातों को विचारते हुए, मनन करते हुए आप अपनी ऐसी स्थिति बनाएँ कि वह दैनिक जीवन में बनी रहे। इस प्रकार विचार करते हुए केवल एक विषय 'शरीरमात्र' ही बना रहे; ऐसे प्रयोग कीजिए। शरीर में ही धारणा, शरीर में ही ध्यान, शरीर में ही समाधि लगाने का प्रयत्न करें। इस प्रकार शरीर को जानने का प्रयास करते हुए इसकी अन्तिम निर्णीत स्थिति को प्राप्त करें।

सावधानियाँ - एक तो यह ध्यान रखा जाए कि शरीर के अतिरिक्त और कोई विषय न उठाया जाए। उठाया जाए तो उसको रोक दिया जाए। कितने काल तक विषयान्तर बना रहता है, उसका परिज्ञान रखें। विवशता से आप रोक पाते हैं या सरलता से आप रोक देते हैं; इत्यादि अनुभूतियाँ करके देखें।

प्रयोग आरम्भ ....समय लगभग नौ मिनट।

अब आप रुकेंगे और अपनी अनुभूति का वर्णन करेंगे -

साधक ३— मैंने शरीर को ही विषय बनाया और अपने ज्ञानानुसार अन्य कोई विचार ग्रहण नहीं किया और यह जन्म से पहले पृथ्वी आदि परमाणु के रूप में था। यह आगे भी इसी रूप में परिवर्तित हो जाएगा अर्थात् शरीर पहले भी नहीं था, मृत्यु के बाद भी नहीं होगा। यह विषय मैंने बनाया था।

स्वामी जी — अब आप सुनाएँगे।

साधक ६— मैंने भी यही विषय रखा।

स्वामी जी — गूंज की आवाज को कम होने दो। प्रत्येक शब्द अलग-अलग सुनाई दे, ऐसा प्रयास करें।

साधक ६— शरीर के बारे में ही विचार किया। जन्म से पूर्व और मृत्यु पर्यन्त, यह भी जानने का प्रयास किया कि मैं शरीर की अनित्यता का अनुभव करूँ किन्तु वैसा दिखाई नहीं दिया। केवल शरीर अनित्य है, नाशवान् है, यही निश्चय हुआ। एक बार खट-खट की आवाज सुनी। पुनः कोई वृत्ति आयी हो किन्तु प्रायः पकड़ में नहीं आई। एक-दो बार बहुत सूक्ष्म रूप से आपको सुनाने का ध्यान भी आया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – मध्य में अपने मन को जब विषयान्तर किया तब उसको रोक दिया या नहीं, क्या रहा ?

साधक ६– तभी रोक दिया।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे –

साधक २– बाल्यकाल से लेकर वृद्धकाल पर्यन्त शरीर की स्थिति पर विचार किया। जन्म के द्वारा इस शरीर का निर्माण हुआ और भोजन के पचने से इसके अंग-प्रत्यंग बन रहे हैं। उसके पश्चात् शरीर में दो-तीन ऐसी भी कमियाँ हुई हैं जिनकी क्षतिपूर्ति भविष्य में कभी नहीं होगी। इस आधार पर शरीर, शरीर के विनाश की एक स्थिति का पता चला परन्तु इसके उपरान्त इस प्रकार के वितर्क आरम्भ हो गए कि मैं अभी यह विचार कर रहा हूँ। वास्तविक स्थिति को क्यों नहीं देख पा रहा हूँ? दूसरा ईश्वर से प्रार्थना की कि इसको मैं कैसे जान पाऊँगा। यह भी अनुभव किया, विचार आया कि अभी मुझे वास्तविकता को केवल अपनी ओर से देखने का प्रयत्न करना चाहिए। प्रार्थना आदि नहीं करनी चाहिए। शरीर को पूर्णतः समाप्त नहीं कर पाया।

स्वामी जी – अन्त में जैसे कि समाप्त करना और समाप्त करके देखना।

साधक २– वहाँ तक स्थिति नहीं हो पायी।

स्वामी जी – आपको बोलने में कठिनाई हो तो बता देना। अब आप सुनाएँगे –

साधक ४– जन्म से लेकर के शरीर का विकास और उसके निर्माण की प्रक्रिया पर विचार किया और उसमें जो रोग आदि आते हैं, उन पर विचार किया। और आगे वृद्धावस्था पर विचार कर रहा था। अभी मृत्यु और उसके पश्चात् की स्थिति पर विचार नहीं कर पाया। बीच में एक-दो बार ध्वनि में मन को भेजा, पुनः उसको रोक दिया।

स्वामी जी – एक स्थिति होती है – इस प्रकार अभ्यास करते-करते व्यक्ति जब यह समझ जाता है कि मन जड़ पदार्थ है, मैं आत्मा इसको चलाता हूँ। तब वह ऐसी स्थिति में पहुँच जाता है जिसमें थोड़े प्रयास से, बिना अधिक कठिनाई के शरीर को विचार का विषय बनाने में सफल हो जाता है। अब आप बोलेंगे –

साधक ५– शरीर की स्थिति ठीक प्रकार से न बनने के कारण प्रयोग करने में सफल नहीं रहा। आपने जैसा बताया था उसी प्रकार से विचारने का प्रयास किया पर जो अनुभूति आनी थी, वह नहीं आई। बीच में दो-तीन वृत्तियाँ आई। शरीर के विषय में अन्त तक विचार नहीं किया था जैसे कि यह शरीर नाशवान् है और जहाँ तक पहुँचना था, वहाँ तक नहीं पहुँच सका।

स्वामी जी – यहाँ इस बात का ध्यान रखें कि अभी आपको प्रशिक्षण की दृष्टि से पाँच, दस, पन्द्रह मिनट तक अभ्यास करवाया जाता है। जब आप अपने कमरे में शान्ति से बैठकर लम्बे काल तक विचार करेंगे, तब आपको अनुभूतियाँ होंगी। क्योंकि उस समय विचार करने से रुकना या आरम्भ करना, इसमें आप स्वतन्त्र होते हैं। इस प्रकार दूसरे काल में समय लगाकर इन प्रयोगों को करके देखना चाहिए। हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे –

साधक ७– यह शरीर है जन्म से पहले नहीं था। नाशवान् है, पांच भूतों का संघात है। अन्न आदि भोजन से इसका पोषण होता है। इन्द्रियों के द्वारा जीवात्मा शरीर के कार्य चलाता है। अन्त में बूढ़ा हो जाता है और मर जाता है तब इसे जला दिया जाता है। आगे प्रलयवत् अवस्था में हो जाता है। ऐसा पंचमहाभूत से जो शरीर बना हुआ था, वह उसी में समा जाता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – तो जब आप अपने शरीर और अन्यों के शरीर को नाशवान् स्थिति में, प्रलय की स्थिति में देखने में समर्थ हो जाते हैं तब एक ऐसी स्थिति का अनुभव करने लगेंगे जिसमें अपने और दूसरों के शरीरों, भोजन, फलों आदि खाद्य पदार्थों को विद्यमान मानते हुए व्यक्ति की उनके भोग की जो प्रवृत्ति होती है, वह नहीं होगी। कौन दोहराएगा ?

साधक ३– अपने शरीर के विद्यमान होते हुए और अन्यों के शरीरों के विद्यमान होते हुए सांसारिक पदार्थों को भोगने की, फल आदि का उपभोग करने की इच्छा बनी रहती है। जब व्यक्ति अपने शरीर को नाशवान् सिद्ध कर देता है, तब ऐसी इच्छा नहीं रहती।

स्वामी जी – आपको यह बात कुछ समझ में तो आ गई। पूरी स्थिति यह होती है कि विषय अनुभूति के रूप में समझ में आए और व्यवहार में उतर जाए। जो हमारे पाँच इन्द्रियों के विषय हैं, जिनका हम भोग करते हैं। जिनमें व्यक्ति की रुचि, प्रवृत्ति होती है कि मैं इनका भोग करूँ। उनको जब विद्यमान मानकर चलते हैं तब वे पदार्थ हमको भोग्य के रूप में दिखाई देते हैं और स्वयं को भोक्ता के रूप में देखते हैं। किन्तु जब दोनों को नाशवान् सिद्ध कर प्रलय कर देते हैं तब न तो शरीर दिखाई देता है और न कोई भोग्य पदार्थ। जब भोगा जाने वाला और भोगने वाला दोनों नहीं दिखेंगे, तब भोग की रुचि, प्रवृत्ति, राग नहीं रहेगा।

इसके अतिरिक्त जो दुःख है, दुःखदाई पदार्थ हैं जिनसे द्वेष, ईर्ष्या, जलन उत्पन्न होती है। वह भी उस समय दिखाई नहीं देंगे। पदार्थों को विद्यमान मानते समय विषयों की ओर जो बलात्, उद्वेग से मन का जाना या भेजना होता है, पुनः उसको रोकने के लिए पर्याप्त मात्रा में जो प्रयास होते हैं, वे नाशवान् सिद्ध कर प्रलय कर देने पर नहीं होते हैं।

विषयों में दोनों प्रकार से प्रवृत्ति होती है प्रत्यक्ष-प्रमाण के आधार पर तथा संस्कारों के आधार पर। प्रत्यक्ष-प्रमाण से तो व्यक्ति ऐसे ही देखता है जैसे चित्र देख रहें हैं या मैं आपके शरीर को देख रहा हूँ और प्रत्यक्ष मानकर वस्तु को भोग्य व स्वयं को भोक्ता मानकर उसकी ओर प्रवृत्त होता है। जब कोई व्यक्ति खाद्य पदार्थों में रस ले रहा है तो उसके चित्त पर इसके संस्कार पड़ रहे हैं और पिछले जन्म-जन्मान्तरों में भोग किया, उसके भी संस्कार पड़े हुए हैं। दोनों संस्कार मिलकर उसको स्मृति कराने में सहायक होते हैं। इस स्थिति में वह प्रत्यक्ष प्रमाण से भी देखता है और स्मृति-वृत्ति से भी देखता है। इन दोनों अवस्थाओं में व्यक्ति स्वयं को भोक्ता और विषयों को भोग्य मानकर प्रवृत्त होता है।

अब दोनों अवस्थाओं में अन्तर देखिए ! पहली – प्रलयवत् अवस्था बनाकर मन इन्द्रियों को रोक देना और दूसरी – प्रलयवत् अवस्था न बनाकर विषयों को विद्यमान मानते हुए मन को जड़ समझकर रोकने का प्रयास करना, ये दो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ हैं। इन दोनों में इतना अन्तर होता है कि विषयों को विद्यमान मानते हुए मन को जड़ समझकर रोकना अधिक परिश्रम साध्य होता है जबकि प्रलयवत् अवस्था बनाकर रोकना सरल होता है। जब हमारे सामने विषय उपस्थित होता है तब उस विषय को रोकने में जो बल, प्रयास करना पड़ता है, उसकी अपेक्षा उसके प्रत्यक्ष न होने पर उतना प्रयास नहीं करना पड़ता। क्या अन्तर दिखाई देता है ?

साधक ३– आलम्बन के सामने आने पर मन को रोकने में जितना प्रयास करना पड़ता है, उतना आलम्बन के न होने पर नहीं करना पड़ता है।

स्वामी जी – उतना प्रयास नहीं करना पड़ता; यह बात स्पष्ट है या नहीं ? अब देखिए ! इस बात को कहने वाला जो योगदर्शन का सूत्र है, जिसमें यह प्रसंग उठाया है कि **हेतुफलाश्रयालम्बनैः**

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः ॥ यो.द.४/११। पुस्तकों को अपने पास रखिए। जब याद न हो तब उसमें देख लो। अब निकालो ! इस प्रसंग को पिछले सूत्र में आरम्भ किया है, उसको देखो। **तासामनादित्वं चाशिषो नित्यत्वात्** ॥ यो.द.४/१०। इसमें क्या कहा ?

साधक ३— वासनाओं का अनादित्व है, जीवात्मा की इच्छा के नित्य होने से।

स्वामी जी— यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है कि जो अनादित्व शब्द पढ़ा है, उससे एक संशय उत्पन्न होता है कि यदि वासनाएँ अनादि हैं तो उनको कैसे हटाया जा सकता है ? तब पुनः कहा - हेतु, फल, आश्रय, आलम्बन के आधार पर वासनाओं को हमने संगृहीत किया। इन कारणों से वासनाओं को हमने इकट्ठा किया है तो **एषाम् अभावे** इन आधारों के अभाव हो जाने पर **तदभावः** वासनाएँ हट जाएँगी। अब जो आलम्बन है, जिससे हमारी प्रवृत्ति होती है, यदि उसको प्रत्यक्ष रूप में न देखें अथवा उसकी प्रलय जैसी स्थिति बना दें, तब वर्त्तमान रूप में या स्मृति के रूप में जो आलम्बन हमारे सामने आता है, वह भी नहीं आएगा। आवृत्ति करो, क्या समझ में आया ?

साधक ५— जब बाहर की वस्तु को हम प्रलय की स्थिति में ले जाते हैं, तब स्मृति के रूप में भी वह आलम्बन नहीं आएगा।

स्वामी जी— और जो 'हेतु' शब्द का प्रयोग हुआ है, वह किस अर्थ में हुआ है ? कुछ स्मरण है तो उठाओ, बोलो। षडर चक्र। धर्माचरण करने से हमको सुख मिलता है और अधर्माचरण से हमको दुःख मिलता है और सुख भोगने पर राग और दुःख से द्वेष उत्पन्न होते हैं। तो ये धर्माधर्म, सुख-दुःख, राग-द्वेष और पुनः इन सबका कारण अविद्या है। तो आदि में अविद्या उनका कारण है और यह हटेगी तब, जब आप सुख भोगने की इच्छा-प्रवृत्ति को रोक देंगे। यहाँ अविद्या किस रूप में कार्य करती है ? व्यक्ति यह मानता है कि लौकिक सुख को भोगने पर मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा। लौकिक सुख भोगते-भोगते मैं पूर्ण सफल हो जाऊँगा। ये मेरी वासनाएँ, यह जो अभिलाषा है, नहीं रहेगी। इसलिए इसने प्रयास किया और यह प्रयास किया गया है अविद्या के होते हुए। दोहराइए, समझिए, जो समझ में नहीं आया हो, वह पूछिए।

साधक २— व्यक्ति वस्तु का भोग इसलिए करना चाहता है कि वह मानता है कि इससे मेरी कृतकृत्यता हो जाएगी।

स्वामी जी— ठीक है और आगे उसमें कारण क्या था ? वह जो क्रियाकलाप करता है वह अविद्या के आधार पर करता है। यद्यपि वहाँ केवल अविद्या ही होती हो, ऐसा नहीं है। वहाँ विद्या भी होती है। परन्तु मैं कृतकृत्य हो जाऊँगा, इसका निर्णय वह अविद्या और अविद्या-जनित संस्कार से करता है। पूर्ण सफल हो जाऊँगा, मेरी अभिलाषा, इच्छा पूरी हो जाएगी; ऐसा मानकर वह प्रयास करता है।

अब आप स्वयं को और विश्व को इस कसौटी पर कसकर देखिए तो पता चलेगा कि कुछ व्यक्तियों को छोड़कर पूरा विश्व इसी में क्रियाशील है कि मैं इस संसार के सुख को भोगकर कृतकृत्य हो जाऊँगा, पूरा सफल हो जाऊँगा, मेरी कामनाएँ पूरी शान्त हो जाएँगी। प्रत्येक व्यक्ति तन-मन-धन से इसी कार्य में लगा हुआ है। यदि आपको अनुभूतियाँ नहीं हुई हैं, वैराग्य नहीं हुआ या कम हुआ है तो आप भी ऐसे ही प्रवृत्त रहेंगे।

अब इसका निदान क्या है, इसके लिए पीछे चलते हैं। वहाँ सूत्रकार ने कहा - **हेतुफलाश्रयालम्बनैः संगृहीतत्वादेषामभावे तदभावः**। हेतु = धर्माधर्म, सुख-दुःख, राग-द्वेष तथा उनका मूल अविद्या। फल = जाति, आयु, भोग। आश्रय = भोगोन्मुख चित्त। आलम्बन = इन्द्रियों के रूप, रस आदि विषय। ये सब वासनाओं की विद्यमानता में कारण हैं। इनके न रहने पर वासनाओं का अभाव हो जाता है।

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् यदि आलम्बन, आश्रय, फल को एक-एक करके और अन्त में हेतु को समाप्त कर दिया जाता है तब प्रवृत्ति, संस्कार आदि सारे दोष समाप्त हो जाते हैं। वासनाओं का प्रमुख हेतु अविद्या है और उस अविद्या से जो लौकिक भोगों को भोगने के संस्कार पड़ते हैं, इस अविद्या को हटाने पर वे समाप्त हो जाते हैं।

संस्कार के विषय में दो बातें हैं - एक तो किसी वस्तु का प्रारम्भ में अनुभव करना कि मैं इससे पूरा तृप्त हो जाऊँगा, इसके संस्कार पड़ते हैं किन्तु मन्द होते हैं। दूसरा - कालान्तर में सुख पाने की इच्छा से पुनःपुनः भोग करता है, उससे पुनः संस्कार पड़ जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि उन संस्कारों से भोगने की इच्छा और तीव्र होती जाती है। आप कभी ध्यानावस्थित होकर देखें कि आपकी क्या स्थिति है? आपकी भी यही स्थिति होगी। ऐसा न मानना कि हम इस क्षेत्र से पूरे ऊपर उठ चुके हैं। ऐसी भूल मत कर देना। यह वासना कहाँ तक पीछा करती है, कहाँ तक इसका प्रभाव रहता है, यह बात आप दर्शनकारों के अनुभव से जान सकते हैं। इस प्रसंग में योगदर्शन में कहाँ पढ़ा है?

साधक ३- तीसरे पाद में।

स्वामी जी - स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्टप्रसङ्गात्। यो. द. ३/५१।

सूत्रार्थ - समाज में उच्च स्थान प्राप्त लौकिक व्यक्तियों अर्थात् राजा-महाराजा, धन-बल, ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्तियों के द्वारा निमन्त्रित किए जाने पर आसक्ति और अभिमान नहीं करना चाहिए, क्योंकि ऐसा करने से योगी के योग मार्ग से विचलित होने का अवसर उपस्थित हो जाता है।

वहाँ बताया कि चार प्रकार के योगी होते हैं। उनमें ऋतम्भरा प्रज्ञा को प्राप्त योगी के लिए विशेष सावधानी रखने की बात कही। सूत्रकार ने कहा कि बहुत बड़ा सम्मान या विशेष भोग सामग्री के सामने आने पर यदि योगी थोड़ा-सा भी असावधान होता है तो उसकी स्थिति नीचे गिर जाएगी। अब आप इसकी तुलनात्मक स्थिति का अनुभव अपने साथ करें कि आप बच सकते हैं या गिर सकते हैं। ये वासनाएँ व्यक्ति को इतने ऊँचे स्तर तक प्रभावित करती है। इसलिए थोड़ी-सी सन्तुष्टि की स्थिति आ जाने पर आप ऐसा कभी मत मान लेना कि मैं सुरक्षित हो गया। अब मेरी स्थिति ऐसी हो गई कि इनको रोकने के लिए प्रयास की आवश्यकता नहीं रह गई है।

अब हम विचार करेंगे कि इस अविद्या को हटाने के लिए क्या-क्या उपाय करने चाहियें? व्यक्ति क्या करता है, क्या सोचता है? वह देखता है मेरी रुचि इन भोगों में क्यों है? इसका कारण अविद्या आपको अभी बताया गया। पुनः वह देखता है कि इन सांसारिक सुखों के भोगने के विषय में सत्यकारी, सत्यमानी, आप्तपुरुषों ने क्या लिखा है? कभी-कभी जब आप्तों की बात मानने की स्थिति उपस्थित होती है तब उन पर सन्देह हो जाता है अथवा भ्रान्ति भी हो जाती है। मान लो, आपके समक्ष संशय उपस्थित हो जाए तो आप क्या करेंगे?

साधक २- यह बात मुझे अभी समझ में नहीं आ रही है; ऐसा मानेंगे।

स्वामी जी - हूँ।

साधक २- पुनः उसको छोड़ देना।

स्वामी जी - और थोड़ा-सा ऊँचा और स्पष्ट बोलना पड़ेगा।

साधक २- एक स्थिति तो यह है कि यह बात मुझे अभी समझ में ही नहीं आ रही है, यह मान लेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हूँ।

साधक २– दूसरा संशय हटाने के लिए और विशेष परीक्षण करेंगे, अन्य प्रमाणों से जांचना चाहेंगे। आप्तों को भी हटा नहीं देंगे अथवा यह भी मानेंगे कि हम दोनों में यदि विरोध है तो अपनी बात छोड़ देंगे और उनकी मान लेंगे।

स्वामी जी – तो जिस समय आप्तों के वाक्यों, शब्दों पर संशय होता है तब उसको भी हटाने की विधि व्यक्ति को आनी चाहिए। उस समय हम वहाँ सत्यवादी, सत्यमानी, सत्यकारी आप्तों की बात को मान सकें और अपनी बात को छोड़ सकें; ऐसी स्थिति बनानी पड़ेगी। अब विराम ॥

३७ आत्मनिरीक्षण

शरीरविषयक प्रयोग : आषाढ़ कृ. ५/२०६०-१८/७/०३

आपका शरीर कुछ अस्वस्थ हो तो आप न सुनाएँ, अन्य अपना आत्मनिरीक्षण सुनाएँगे –

साधक ८– स्वामी जी ! मैं भी सुनाऊँगा।

स्वामी जी – हाँ ! देख लेना कभी यह कहो कि मेरा शरीर और मनःस्थिति ठीक नहीं है।

साधक ८– प्रातःकालीन और सायंकालीन उपासना अच्छी रही। प्रातःकाल व्यायाम और स्नान के समय इच्छा हुई कि व्यायाम और स्नान के लाभ में ही मन को एकाग्र किया जाए, उनके महत्त्व के बारे में चिन्तन किया जाए और वैसा ही किया किन्तु आंशिक सफलता मिली। मन को जड़ जानकर वृत्तियों को रोकने की अपेक्षा, प्रलयावस्था का सम्पादन करके वृत्तियों को रोकना सरल है; यह अनुभव हुआ। प्रलय अवस्था के सम्पादन का महत्त्व तब समझ में आया, जब एक आलम्बन के कारण मन उथल-पुथल हो गया तो देर तक उसको सम्भाल नहीं पाया। पुनः दोपहर को न्यून भोजन करके प्रायश्चित किया। दोपहर पश्चात् निदिध्यासन काल में शरीर नाशवान् है, इस विचार को लेकर कार्य-कारण पर विचार करते हुए इस परिणाम पर पहुँचा कि वास्तव में शरीर नाशवान् है और देर तक इस स्थिति को बनाए रखने में सफलता मिली। सायंकाल व्यायाम नहीं किया। शेष दिनचर्या सामान्य रही।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक ७– स्वयं ईश्वर को इस प्रकार से समर्पित होकर कि अब सौंप दिया इस जीवन का सब भार तुम्हारे हाथों में, है जीत तुम्हारे हाथों में है हार तुम्हारे हाथों में। हे प्रभु ! बस ! एक

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Kanya Gurukula Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बार तुम्हें पा जाऊ मैं। अर्पण कर दूँ जगतीभर का सब प्यार तुम्हारे हाथों में। इस प्रकार समर्पित होते हुए कार्यक्रम दिनभर किया।

स्वामी जी – एक तो स्वास्थ्य को उत्तम, सुरक्षित रखने के लिए आपको भोजन के विषय में विशेष ध्यान देना पड़ेगा। उसके लिए उचित रूप में निद्रा भी लेनी पड़ेगी। मन, इन्द्रियों को वश में रखना होगा। ब्रह्मचर्य का पालन भी करना पड़ेगा। उसी का एक भाग उपवास स्वास्थ्य के नियमों में है। जब हम देखते हैं कि भूख कम है तब भोजन को बन्द कर देते हैं। भोजन को बन्द न करने में एक यह बात सामने आती है कि भोजन में जो आनन्द मिलता है, सुख मिलता है; उसको छोड़ना नहीं चाहते हैं। इसलिए व्यक्ति यह जानते हुए भी कि मैं रोगी हो सकता हूँ, तो भी भोजन खा लेता है। आप क्या अनुभव करते हैं, ऐसा होता है या नहीं होता? शरीर को आवश्यकता है, शरीर की रक्षा करनी है, बल बढ़ाना है; यह हेतु नहीं होता किन्तु खाने में स्वाद आता है, यह हेतु होता है। आपका क्या अनुभव है?

साधक ६ – स्वाद आता है।

स्वामी जी – खाते समय शरीर को जितने भोजन की आवश्यकता है, उसे वह जानता नहीं या जानता हुआ भी खाते-खाते स्वाद के कारण आवश्यकता से अधिक खा लेता है। ऐसा आपका अनुभव है या नहीं? आप इसको देख सकते हैं। खाते हुए व्यक्ति की दो भिन्न-भिन्न स्थितियाँ होती हैं। प्रथम हमारे पेट के अन्दर उभार आता है, फूलता है, उससे पेट की स्थिति का पता चल जाता है कि अब भोजन पर्याप्त हो चुका है किन्तु स्वाद बताता है कि अभी पूरा नहीं हुआ और खाना चाहिए। आप ऐसा अनुभव कर सकते हैं।

साधक ८ – स्वामी जी! प्रायः ऐसा होता है, जैसे कि यह पता चल गया भूख शान्त हो गई किन्तु सामने भोजन बचा रह गया है, तो भी खा जाते हैं क्योंकि कि दूसरे लोग यह न कहें कि देखो! पहले तो अधिक ले लिया और अब जूठा छोड़ दिया।

स्वामी जी – हाँ! यह भी आपत्ति आती है। इसके लिए मैंने आपको बतलाया था कि भोजन के समय भूख लग रही हो, उस काल में व्यक्ति अपनी आवश्यकता से अधिक भोजन ले लेता है। प्रारम्भ में उसे भोजन थोड़ा प्रतीत होता है और कालान्तर में खाते-खाते जब उसका पेट भर जाता है, तब वह कहता है कि अब इसको खाऊँ तो बुरा और न खाऊँ तो बुरा। यह स्थिति उत्पन्न होती है, इसको आप देख सकते हैं। इसलिए बुद्धिमान् व्यक्ति आरम्भ में ही देख लेता है कि थोड़ा लेना है, भले ही भूखे रह जाएँ। वह इस स्थिति से बच जाता है।

साधक ८ – स्वामी जी! जब ऐसी स्थिति हो, तब वह भोजन जो जूठा बच जाए, क्या वह ठीक है?

स्वामी जी – उसमें दो बातें हैं। जब जूठा भोजन आप खा नहीं सकते, तब एक पक्ष है कि भाई! लोग कहेंगे कि इसने जूठा छोड़ दिया, यह बहुत बुरा किया। इसलिए इसे खा ही जाना चाहिए; एक स्थिति। दूसरी स्थिति है - लोग यह कहेंगे और कहना भी चाहिए, अच्छी बात है। मेरे दोष बताएँगे, मुझे मार पड़ेगी, कोई बात नहीं। यदि मैं इसे खाऊँगा तब रोगी हो जाऊँगा। मुझे लाभ के स्थान पर हानि होगी और मैंने जो भोजन खाया है, वह भी नहीं पचेगा अधिक खाने के कारण। इसलिए इसे छोड़ देता हूँ; इस प्रकार छोड़ देना चाहिए। इसके पश्चात् कुत्ते, पक्षी आदि के लिए, वे जहाँ भी हों, उनको डाल देना चाहिए। इसके पश्चात् पुनः उसका दण्ड लेना चाहिए; यह दूसरा पक्ष ठीक है।

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– और पूरा खाने के बाद पुनः ईश्वर की मार भी पड़ती है।

स्वामी जी – वह तो सब होता है। वह भी देखता है कि अधिक खाने पर व्यक्ति के पेट में पीड़ा आदि के रूप में जो दुःख होता है, वह पीछे जानता है, क्या-क्या दुःख होता है।

साधक ७– खाने की अपेक्षा छोड़ देना अच्छा है।

स्वामी जी – छोड़ देने वाला पक्ष अच्छा है। यद्यपि दोष दोनों पक्षों में है परन्तु खा लेने की अपेक्षा न खाने का पक्ष अधिक अच्छा है। खाने की अपेक्षा न खाने से हानि कम होगी। हाँ जी!

साधक २– मान लो, भूख रखकर खाना हो तो और इतना खा सकते हैं; यह अनुमान कैसे लगाएँगे?

स्वामी जी – ऐसे अनुमान लगाना चाहिए कि जब यह लगने लगे कि एक रोटी से अधिक और नहीं खा सकता हूँ, तब रुक जाना चाहिए। इसका अभिप्राय होगा कि कुछ भूख रखकर भी भोजन बन्द कर दिया है। यहाँ एक बात ध्यान देने की है - रोटी तो छोटी-बड़ी भी हो सकती है। जैसे कि पुराने समय में माताएँ जब रोटी बनाती थीं तब अन्यों के लिए बनाती-बनाती अन्त में जो अपने लिए बनाती थीं, वह मोटी बनाती थीं और उसमें घी आदि डालकर पूरा सेक लेती थीं। जब चर्चा चलती थी कि आप कितनी-कितनी रोटी खाती हैं तब वे कहती थीं कि मैं तो केवल एक रोटी खाती हूँ। सुनने वाले सोचते थे - हाँ! यहाँ तो बहुत संयम है, बहुत कम खाती हैं। पर यह पता नहीं होता था कि वह एक रोटी कितनी बड़ी, लम्बी-चौड़ी होती थी। अतः जब आप देखते हैं तब सामान्य रूप से आपको रोटी का परिमाण देखना पड़ेगा, रोटी छोटी या बड़ी है, वह पृथक् बात है। यह तो पहले ही देखना होगी और उसके अनुसार लगभग एक या डेढ़ रोटी की भूख बची है, इस अनुभूति के आधार पर रुकना होगा। खाते समय अन्त में यह अनुभूति होती है कि इतना खाने की इच्छा अभी है। ऐसा दिखता है कि अभी भूख रह रही है, उस समय उसको बन्द कर देते हैं।

साधक २– ऐसा भी होता है कम खाते-खाते भी भूख कम हो जाती है तब थोड़ा भी अधिक खाने पर लगता है, अधिक खा लिया और बढ़ाते-बढ़ाते भूख बढ़ जाती है तब थोड़ा अधिक खाने पर भी लगता है, अभी कम है। तो भोजन की मात्रा पर्याप्त है, इसका निर्धारण कैसे होगा?

स्वामी जी – उसमें एक बात होती है। कुछ भूख कम होने से वह स्थिति उत्पन्न होती है। उसमें ध्यान देना पड़ता है कि कभी भ्रान्ति से ऐसा तो नहीं समझ लिया कि शरीर को अब आवश्यकता नहीं है। उसको यह अनुभव करना पड़ेगा। यदि शरीर को आवश्यकता है और मानकर चलिए उसको भोजन रुचिकर नहीं लग रहा है तो भी खा लेना चाहिए। जैसे कि औषधि इसलिए नहीं खाते है कि उससे हमारी भूख मिटेगी अपितु इसलिए खाते है कि उससे शरीर की आवश्यकता की पूर्ति होगी। यह स्वयं अनुभव करना पड़ेगा कि भोजन कम न हो जाए, शरीर की अपेक्षा से।

साधक ८– स्वामी जी! कई बार व्यक्ति ऐसे सोचता है कहीं मैं अधिक भोजन तो नहीं कर रहा, उसको और कम करता है किन्तु ऐसा करने से अगले भोजन के समय से पहले ही तीव्र भूख लग जाती है।

स्वामी जी – एक ऐसी भूख होती है जो सहन नहीं होती, उसमें तो जानना चाहिए कि पूर्व भोजन कम खाया गया किन्तु जो भूख सह सकते हैं, अच्छी भूख लगी, तीव्रता आई; वह ठीक लक्षण है। उसमें यह जानना चाहिए कि पहले ठीक मात्रा में भोजन किया है। अगले भोजनकाल से पहले यदि अच्छी भूख लगती है, वह इस बात का सूचक है कि हमने जो भोजन खाया है, उसकी मात्रा

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ठीक है। दूसरे पक्ष में, रोगी व्यक्ति को छोड़िए, स्वस्थ व्यक्ति को जब भूख ठीक नहीं लगती, तीव्रता नहीं आती, तब वहाँ समझना चाहिए कि पूर्व भोजन भूख से कुछ अधिक खाया गया था। यह अनुभव करते-करते अभ्यास हो जाता है।

अब आप आध्यात्मिकता पर ध्यान देंगे। ज्ञान-कर्म-उपासना की क्रियाएँ सतत होती रहती हैं अर्थात् ज्ञान और अज्ञान की प्राप्ति, ज्ञान और अज्ञान का परित्याग; यह क्रिया चलती रहती है। इसी प्रकार कर्म का अनुष्ठान मानसिक रूप में अच्छे कर्म को अच्छा मानकर करना, बुरा मानकर न करना। दूसरी स्थिति बुरे कर्म को अच्छा मानकर करना, बुरा मानकर छोड़ देना; यह क्रिया भी चलती रहती है। तीसरे वर्ग में शुद्ध उपासना को शुद्ध मानकर करना और अशुद्ध मानकर छोड़ देना। पुनः अशुद्ध उपासना को अशुद्ध मानकर छोड़ देना और शुद्ध मानकर करना; यह क्रिया भी चलती रहती है। कुछ आया आपकी बुद्धि में?

साधक २– ज्ञान, कर्म, उपासना की प्रक्रिया सदैव चलती रहती है।

स्वामी जी – दिनभर चलती रहती है। ज्ञान की प्रक्रिया, कर्म की प्रक्रिया, उपासना की प्रक्रिया कैसे-कैसे चलती हैं; इसमें व्यक्ति को बड़ा सावधान रहना पड़ता है। इनका संख्यान (हिसाब), विभाजन, ग्रहण, त्याग; उसको दिनभर बड़ी सावधानी से करना पड़ता है। इन तीनों के प्रकार को, रीति को जो व्यक्ति नहीं जानता और सावधान होकर कर्त्तव्यों को नहीं करता; तब योग जैसी स्थिति नहीं बन पाएगी।

एक लौकिक दृष्टान्त लेते हैं। मान लो, हमने या किसी व्यक्ति ने एक बहुत सुन्दर शरीर देखा और देखकर यह निश्चय किया कि यह शरीर अत्यन्त शुद्ध-पवित्र, मल-मूत्र से रहित है। ऐसा अनुभव किया और मान लिया कि वास्तव में मेरा यह ज्ञान ठीक है। यह है बिना परीक्षा किए अज्ञान को ज्ञान मानकर ग्रहण करना। अब दोहराओ क्या समझे?

साधक ५– एक सुन्दर रूप को देखकर मन में यह ज्ञान हुआ कि यह शुद्ध है, पवित्र है, मल-मूत्र से रहित है।

स्वामी जी – इसलिए मेरा ज्ञान इस विषय में ठीक है।

साधक ५– यहाँ पर अज्ञान को ज्ञान मानकर उसने ग्रहण कर लिया।

स्वामी जी – यह भूल उससे हुई है। दूसरे पक्ष में उसने सुन्दर शरीर को देखा और सब प्रकार से अध्ययन, मन्थन किया और इस निर्णय पर पहुँचा कि यह सम्पूर्ण शरीर मल-मूत्र से भरा हुआ है, अपवित्र है। यह शुद्ध ज्ञान है और उसने इस ज्ञान को परीक्षापूर्वक स्वीकार किया है। अब जो व्यक्ति इस प्रकार परीक्षापूर्वक ज्ञान का ग्रहण करता और परीक्षापूर्वक अज्ञान को छोड़ देता है, उसकी उन्नति हो जाएगी। वह व्यक्ति आगे बढ़ेगा और जो इसके विपरीत अज्ञान का ग्रहण और ज्ञान का परित्याग करेगा, उसका जीवन नीचे गिर जाएगा।

अब कर्म के क्षेत्र में चलो। कर्म के क्षेत्र में मानसिक रूप में बिना परीक्षा किए कर्म होते हैं, जैसे कि एक शुद्ध कर्म को अशुद्ध मानकर परित्याग कर देना तथा एक अशुद्ध कर्म को शुद्ध मानकर अपना लेना। उदाहरण बनेगा आपने आसन लगाना है, प्राणायाम करना है, पुनः जप करना है। ये शुद्ध कर्म हैं, किन्तु आपको बुरे लगे और आपने इनका परित्याग कर दिया अथवा आपके पास ऐसा कोई पदार्थ है जो आपके लिए अनावश्यक है और वह आपके पास नष्ट भी हो सकता है। अब किसी अन्य व्यक्ति को उसकी आवश्यकता है परन्तु आपके मन में आया कि यह नहीं देना चाहिए। अब क्या हुआ? उस व्यक्ति को वह पदार्थ देना चाहिए था परन्तु आपने नहीं दिया। यह बिना परीक्षा किए

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देने के स्थान पर नहीं देने को अच्छा मान लिया। ऐसे ही बिना परीक्षा के निन्दा आदि अशुभ कर्म को कर लेना और बिना परीक्षा के प्रशंसा आदि शुभ कर्म को छोड़ देना।

इसी के अन्तर्गत एक और विभाग होगा जैसे कि मान लिया दो-तीन शुभ कर्म एक साथ उपस्थित हो गये यथा एक उपासना, दूसरा स्वाध्याय और तीसरा लेखन। यहाँ पर तीनों के शुभ होते हुए भी किसको करना और किसको नहीं करने की बात आती है। इसका निदान है कि स्तर, काल या अवसर के आधार पर ग्रहण या त्याग करना चाहिए। आप योगविद्या सीख रहे थे, उस काल में एक भौतिक प्रयोग की बात बुद्धि में आई। अब झट आपने आध्यात्मिक विज्ञान को छोड़ दिया और भौतिक विज्ञान में आप लग गए। यहाँ जो विज्ञान जिस समय प्राप्त करना था, उस समय नहीं किया और जो नहीं करना था, वह आपने कर दिया। ऐसे ही ईश्वर की उपासना के स्थान में जीव या प्रकृति की उपासना करना अशुद्धोपासना का ग्रहण है तथा ईश्वर की उपासना के स्थान में ईश्वर की ही उपासना करना शुद्धोपासना का ग्रहण है। अब विराम ॥

३८ यज्ञीयोपदेश

उपासनाविधि : आषाढ़ कृ. ६/२०६०-१९/७/०३

उपासना के प्रारम्भ में योगाभ्यास करने वाला व्यक्ति ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन, वर्णन शब्द-प्रमाण से करने का प्रयत्न करता है। साधक यह विचार करता है कि मैं जिस ईश्वर को प्राप्त करना चाहता हूँ, वह कैसा है? पुनः ईश्वर के स्वरूप के सम्बन्ध में महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जो लिखा है "सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है" इसको स्वीकार करता है। साधक ईश्वर को सर्वज्ञ, सर्वव्यापक मानकर चल रहा है और इसी बात को ईश्वर के समक्ष रखता हुआ कहता है - हे ईश्वर! आपका स्वरूप ऐसा है आपमें सब सत्य विद्याएँ हैं। कोई ऐसी विद्या नहीं है जो आपमें न हो और आपमें जो विद्याएँ हैं, वे सब सत्य ही हैं। यदि वह और थोड़ा-सा विस्तार करना चाहता है तो तुलनात्मक रूप में आरम्भ करता है - हे ईश्वर! आप में सारी विद्याएँ हैं किन्तु हम जीवों में सारी विद्याएँ नहीं हैं। आप में जो ज्ञान विद्यमान है वह कभी असत्य ज्ञान के रूप में नहीं जाता अर्थात् मिथ्या ज्ञान आपको कभी नहीं होता किन्तु मैं तथा मुझ जैसी अन्य जीवात्माएँ इस मिथ्या ज्ञान से बच नहीं पाती। आपका ज्ञान कभी संशयात्मक नहीं होता, वह निर्णयात्मक ही रहता है, किन्तु हम जीवों का ज्ञान संशय रूप को प्राप्त होता रहता है। समस्त सत्य विद्याएँ और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं आप उन सबका आदि मूल हैं। हे ईश्वर! यह संसार कितना सूक्ष्म से सूक्ष्म, और स्थूल से स्थूल है; इसे मैं नहीं जान सकता। कितने लोक-लोकान्तर हैं, कितनी योनियाँ हैं, कहाँ तक हैं; इसे मैं नहीं जान सकता। इस पूरे संसार को, समस्त पदार्थों को आपने ही बनाया है। आप इन बनाए हुए पदार्थों की रक्षा भी स्वयं ही करते हैं।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप ध्यान देंगे - साधक की बातों के साथ यह जो वर्णन हो रहा है कि सारे पदार्थ आपने बनाए और इनके स्वामी और पालक आप हैं; तो उस समय साधक को देखना चाहिए कि मैं ईश्वर के समक्ष जैसी बात करता हूँ, क्या मेरी मान्यता वैसी बनी है या नहीं बनी? यदि नहीं बनी तो क्यों नहीं बनी? यदि यह सत्य ही है, प्रमाणों से सिद्ध है तब मैं इसी को मन, वाणी और शरीर से ग्रहण करूँगा, विपरीत को नहीं करूँगा। इस स्थिति का सम्पादन साधक को करना ही पड़ता है।

यदि यह स्थिति आपकी नहीं बनती तो आप भी उन्हीं सामान्य लोगों की तरह होंगे जो लोक में लिखते, व्याख्या करते रहते हैं कि सबका आदि मूल ईश्वर है, परन्तु उनके जीवन में ये बातें होती हों; ऐसा नहीं मिलता। यदि आप भी उसी स्तर पर मात्र बातें करेंगे तब समझ लेना कि ईश्वर की दृष्टि में आप भी पात्र नहीं बन पाएँगे। इसका परिणाम होगा कि ईश्वर आपको जो विशेष सहायता देता, विशिष्ट ज्ञान-विज्ञान देता; वह नहीं देगा और आप ईश्वर-साक्षात्कार की स्थिति में भी नहीं पहुँच पाएँगे।

एक बहुत बड़ा कारण है व्यक्ति के समक्ष, जो ईश्वर प्राप्ति में बाधक है। वह है ईश्वर की आज्ञा से विरुद्ध मान्यताएँ। वे क्या-क्या हैं, उनको व्यक्ति को जानना ही पड़ता है। साधक इतनी बातों को कैसे जाने, इसके लिए ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करता है। वह बिना धुन के ही इस मन्त्र का प्रयोग करता हुआ कहता है - हे ईश्वर! आपने वेद में अपना स्वरूप बतलाया है -

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ अथर्व. १०/८/४४।

हे ईश्वर! आप में अपनी न्यूनता की पूर्ति की कोई कामना-इच्छा नहीं है। आपको ऋषि पूर्णकाम मानते हैं किन्तु हम जीवों के लिए आपने सृष्टि की रचना की है, जिससे हम जीवों को लौकिक सुख तथा आपका नित्य आनन्द भी मिले; ऐसी कामना, यह इच्छा आप में है। जब साधक इस रूप में स्तुति कर रहा होता है तब यदि ईश्वर-समर्पण हटता-सा दिखता है तो वह उसको तत्काल बना लेता है। यदि वर्णन करते-करते मन को विषयान्तर कर लेता है, तब उसको पुनः उसी स्थिति में ले आता है।

अब आप इस मन्त्र का प्रयोग मानसिक रूप में करेंगे। वहाँ भी पहले पाठ करो और धीरे-धीरे सरलता से जितना अर्थ कर सकते हैं, उतना करें। यह आपकी योग्यता के ऊपर निर्भर करता है। आरम्भ कीजिए।

- मन में मन्त्र को बोलिए और मन, इन्द्रियों पर नियन्त्रण, आत्मा पर नियन्त्रण रखिए।
- धैर्य से मानसिक पाठ, अर्थ का विचार करते चलिए।
- ईश्वर को सम्बोधित करने का प्रयास कीजिए।
- कौन-कौन सी बाधाएँ उपस्थित की जाती हैं, उनका भी ध्यान रखिए।

अब हम प्राणायाम के विषय में विचार करेंगे। प्रथम प्राणायाम की परिभाषा - आसन के सिद्ध हो जाने पर श्वास-प्रश्वास की गति को यथाशक्ति रोक देना प्राणायाम कहलाता है। मानकर चलें आप प्राणायाम कर चुके हैं, तब आवश्यकता न हो तो न करें। इसकी विधि को ध्यान में रखें यथा -

- प्रारम्भ में मूल इन्द्रिय को ऊपर संकुचित करना।
- पुनः प्राण को बाहर निकालना।
- बाहर प्राण को निकालकर यथाशक्ति रोक देना और जब घबराहट हो तो मूल इन्द्रिय के संकोच को छोड़कर धीरे-धीरे प्राण को अन्दर ले लेना।

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

◆ प्राण की पूर्ति हो जाने पर, आवश्यकता पूरी हो जाने पर समझना कि एक प्राणायाम हो गया है।

◆ प्राणायाम करते समय मानसिक जप करते रहना।

अब प्रयोग करेंगे मानसिक प्राणायाम मन्त्र का। मन में बोलेंगे ओम् भूः। हे ईश्वर! आप प्राणों के भी प्राण हैं। जीवन को देने वाले हैं। आप आत्मा, मन, बुद्धि, अन्तकरण के संचालक हैं। शरीर, इन्द्रियों के संचालक है। ये शक्तियाँ शरीर, इन्द्रियाँ, मन सब आप प्रदत्त हैं। ये हमने नहीं बनाए। न हम इनकी रक्षा कर सकते हैं।

◆ ईश्वर के समक्ष इस रूप में रहिए कि यह सारे साधन आपने ईश्वर से लिए हैं और उनका प्रयोग कर रहे हैं।

◆ जब वृत्तियाँ उठा ली जाएँ, विविध विचार तरंगे उठा ली जाएँ, तब तत्काल प्रलयवत् अवस्था बना सकते हैं जिससे समस्त वृत्तियाँ रुक जाएँगी। कोई आकार-प्रकार, लम्बाई-चौड़ाई के रूप में कोई पदार्थ दृष्टि में नहीं आएगा। नए साधक के समक्ष पुनःपुनः आकार-प्रकार आते रहते हैं और वह उनको पुनःपुनः प्रलयवत् स्थिति में पहुँचाता रहता है। आप भी ऐसा ही करते रहें।

◆ अब आप ध्यान से देखें कि कौन-सा ऐसा पदार्थ है, जो उत्पन्न हुआ है और आकार-प्रकार से नितान्त रहित है? ऐसा कोई पदार्थ नहीं है। बने हुए जितने पदार्थ हैं, वे सब उत्पन्न होते हैं या किए जाते हैं और कालान्तर में उनकी सारी रूपरेखा छिन्न-भिन्न होकर परमाणु रूप में परिवर्तित हो जाती हैं। क्या यह नहीं होगी? होगी। क्या यह नहीं थी? निश्चित रूपेण थी। इन दोनों मान्यताओं के बीच में वर्तमान काल प्रलयवत् हो जाता है।

अब आप रुकेंगे। साधक ने तीन प्राणायाम किए अथवा जितनी आवश्यकता थी, उतने किए। यदि ध्यान में बाधा पड़ती है, तब वह केवल लम्बा श्वास-प्रश्वास लेता-छोड़ता है किन्तु अधिकार-पूर्वक प्राण को निकालना, अधिकारपूर्वक प्राण को लेना; यह स्थिति रहती है। आप उसको देख सकते हैं जैसे कि -

◆ प्रथम एक बार श्वास लेकर बाहर निकाल दिया, पुनः धीरे-धीरे लेना आरम्भ करता है। अब पूरा अन्दर भर दिया।

◆ अब छोड़ना आरम्भ करता है और पूरा बाहर निकाल दिया।

◆ अब पुनः अधिकारपूर्वक लेना आरम्भ करता है।

यदि ध्यान में बाधा पड़ती हो तब इसका प्रयोग ध्यान काल में नहीं करना चाहिए। अन्यकाल में कर सकते हैं। वस्तुतः इससे हमारे शरीर की शुद्धि होती है। प्राण के ऊपर हमारा अधिकार होता है। यह लम्बा श्वास-प्रश्वास अन्दर के वायु को प्रभावित करता है। आपको समझ में आ गया और कैसा-किसका प्रयोग रहा। मन्त्र के प्रयोग में क्या स्थिति रही? हाँ जी! आप सुनाएँगे -

साधक ३- अच्छी प्रकार से अर्थ और समर्पण के साथ ध्यान नहीं कर सका।

स्वामी जी - हूँ।

साधक ३- उसमें कुछ बाह्य बाधा रही, जैसे कि मक्खी का बार-बार तंग करना आदि कारणों से बाधा उत्पन्न हुई। यदि यह बाधा न होती, तब मै अच्छी प्रकार से स्थिति बना सकता था।

स्वामी जी - इस बाधा को दूर करने के लिए आप अपनी चादर रखिए और उससे स्वयं को ढक लें। उससे मच्छर, मक्खी की समस्या दूर हो जाएगी।

अब हम प्रयोग करेंगे एक स्थूलरूप में, किन्तु इसका अर्थ यह न लेना कि यह किसी व्यक्ति-

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विशेष के लिए होता होगा, अपितु ऐसा मानना चाहिए कि सभी के लिए होता है। स्थूल रूप में जिसमें शब्दों का अर्थ कठिन नहीं है जैसे कि आर्य समाज के दूसरे नियम का प्रयोग करते हैं। इसका प्रयोग उच्चकोटि का योगाभ्यासी भी कर सकता है और साधारण व्यक्ति भी कर सकता है।

आरम्भ करेंगे सर्वशक्तिमान्। धुन के रूप में बोलेंगे। जब मिलकर बोलो, तब अगले व्यक्ति के साथ मिले हुए रहने का प्रयास करना है।

ओ ऽ ऽ ऽ म् सर्वशक्तिमान्।

नाक से श्वास लेते हैं।

अब हम धुन में कुछ परिवर्तन करेंगे। **ओ ऽ ऽ ऽ म् सर्वशक्तिमान्। ओ ऽ ऽ ऽ म् सर्वशक्तिमान्।** हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सर्वशक्तिमान् हैं। इस सृष्टि के बनाने में, इसका पालन करने में, इसका प्रलय करने में, वेदों का ज्ञान देने में और जीवों को उनके ज्ञान, कर्म, उपासना का फल देने में किसी की सहायता नहीं लेते।

साधक गण – आप सर्वरक्षक, सर्वशक्तिमान् हैं। इस सृष्टि के बनाने में, इसका पालन करने में, इसका प्रलय करने में, वेदों का ज्ञान देने में और जीवों को उनके ज्ञान, कर्म, उपासना का फल देने में किसी की सहायता नहीं लेते।

स्वामी जी – अब विराम ॥

३१ क्रियात्मक योगाभ्यास

इच्छाप्रयत्नानुभूति-प्रयोग : आषाढ़ कृ. ६/२०६०-१९/७/०३

आपको आत्मा की, स्वयं की अनुभूति होती है अथवा क्या स्थिति रहती है? हाँ जी! बोलिए –

साधक ३– मैं शरीर से अलग कुछ हूँ। जो मैं हूँ 'अहं अस्मि' की अनुभूति होती है। वही मैं आत्मा हूँ, मन से अलग। उसी को आत्मा मानते हैं, जो सब व्यापार बन्द होने के पश्चात् 'मैं हूँ' की अनुभूति सतत रहती है। उसका स्थान हृदय मानते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी! अपनी आत्मा के विषय में अपनी अनुभूति सुनाइए –

साधक ४– प्रलय अवस्था के सम्पादन करने पर हलकी-सी अनुभूति होती है कि मैं अणु स्वरूप, निराकार आत्मा हृदय प्रदेश में हूँ। इस तरह की हलकी अनुभूति होती है।

स्वामी जी – अनुभूति में भी एक ऐसी अनुभूति होती है जिसमें लगता है कि मैं अपना जो अनुभव कर रहा हूँ, वह स्वयं से कुछ दूर होकर कर रहा हूँ। दूसरी अनुभूति होती है जिसमें लगता है कि मैं ठीक अपने स्वरूप के साथ सम्बद्ध होकर अनुभव कर रहा हूँ। क्या समझ में आया?

साधक ३– मैं अपने से दूर होकर स्वयं को अनुभव कर रहा हूँ अथवा अपने से सम्बद्ध होकर स्वयं को अनुभव करना। दोनों अलग स्थितियाँ हैं।

स्वामी जी – जैसे कि यह अंगुली है। तो यह अंगुली है और हमको दूरी पर दिखाई देती है। दूसरी स्थिति में – यह अंगुली है और अपने से सम्बद्ध होकर दिखाई देती है। ऐसे ही एक स्थिति में आत्मा स्वयं से सम्बद्ध होकर यह अनुभव करता है कि मैं शरीर, इन्द्रिय, मन आदि से

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अलग चेतन तत्त्व हूँ और दूसरी स्थिति में आत्मा अपने स्वरूप से बिना सम्बद्ध हुए यह अनुभव करता है कि मैं इनसे अलग हूँ। आपको इसमें क्या अन्तर समझ में आया? दोनों में थोड़ा अन्तर देखो।

साधक २– जैसे कि मैं अपने सामने आपको देख रहा हूँ और अपने-आपको भी देख रहा हूँ। यद्यपि मैं शरीर सहित अपने को देख रहा हूँ। तो आपको जो देख रहा हूँ वह असम्बद्ध स्थिति है और अपने को जो देख रहा हूँ वह सम्बद्ध स्थिति है। यह दोनों में अन्तर है।

स्वामी जी – हाँ। अच्छा! जिसमें अपने से सम्बद्ध होकर जानता है वह अति निकट और विशुद्ध ज्ञान है और जिसमें अपने से दूर जानता है वह ज्ञान है पर (नाममात्र) ढीला सामान्य ज्ञान है। एक है कुछ ज्ञान ही न होना।

साधक ३– अज्ञान की स्थिति है।

स्वामी जी – मैं हूँ, मैं जानता हूँ, मैं अनुभव करता हूँ, मैं विचारता हूँ, मैं इच्छा करता हूँ और इन सब चौबीस तत्त्वों से पृथक् हूँ। यहाँ तक हुआ, पर निकट जाकर अपना स्वरूपमात्र अर्थात् चेतन मात्र होकर अनुभूति करना; ऐसा नहीं होता है।

साधक २– अभी जो स्थिति बताई कि स्वरूप ज्ञान का नहीं होना, इसका क्या उदाहरण है?

स्वामी जी – कैसे जैसे?

साधक २– अभी एक स्थिति आई कि सम्बद्ध होकर देखना, यह अधिक विशुद्ध है। दूसरी स्थिति है कि कुछ दूर से देखना, यह सामान्य ज्ञान है।

स्वामी जी – यह सामान्य ज्ञान है।

साधक २– एक तीसरी स्थिति में ज्ञान है ही नहीं।

स्वामी जी – एक में ज्ञान है ही नहीं। भले ही यह ठीक है कि व्यक्ति वहाँ शब्द-प्रमाण से मानता तो है, स्वीकार कर लेता है पर उसमें अनुभूति का थोड़ा-सा भी अंश नहीं बनता।

साधक ३– उसमें जो घुला-मिला है बुद्धि, मन; सब पता नहीं क्या होता है?

स्वामी जी – शब्द-प्रमाण से और अनुमान-प्रमाण से जानता है।

साधक २– आत्मा का मानना ही नहीं है यह।

स्वामी जी – नहीं। साधक शब्द-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण से आत्मा को तो मानता है, किन्तु आत्मा अनुभूति का विषय नहीं बनता। जब पुनः थोड़ा-सा अपने आश्रय से विशिष्ट ज्ञान होने लगता है कि 'मैं हूँ', यह अनुभूति का विषय है। 'मैं हूँ' उसको यह अनुभूति हो रही है। अच्छा! जब कहता है कि मैं जानता हूँ किसी भी विषय में; इसका अर्थ है मैं ज्ञानवान् हूँ। जब कहता है मैं इच्छा करता हूँ; इसका अर्थ है वह इच्छा को देखता है। पुनः आगे बढ़ेंगे। जब मैं आँख को खोलकर किसी विषय में लगाता हूँ, उसको देखता हूँ; यह है आँख को चलाना। ऐसे ही आगे बढ़ेंगे तब पुनः अनुभव होगा मैं मन को चलाता हूँ। यह साधक की बुद्धि में आने लगेगा कि मैं मन को चलाता हूँ। यहाँ वह अपने प्रयत्न को जान रहा है।

यह व्यक्ति शब्द-प्रमाण, अनुमान-प्रमाण वाले से ऊँचे स्तर का व्यक्ति है। हम यह जो बात कहते हैं कि आत्मा अपने से दूर तो है नहीं, वह अपने उसी साक्षात् स्वरूप का अनुभव करता है। आत्मा को जानने की इसकी यह विशिष्ट स्थिति है। इस उच्चस्तरीय साधक को इतना बोध रहता है कि आत्मा केवल सत्-चित् या ज्ञानी है और इस काल में अन्य विषय हटा देता है। अन्य विषयों का विचार नहीं करता है। जैसे कि यह कहा जाता है - आत्मा को वश में करो। तब इन्द्रियों को वश में करो, मन को वश में करो, बुद्धि को वश में करो; ऐसा नहीं कहा जाता है। वहाँ इन सब

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से हटकर कहा जाता है कि जब मैं इन सबका संचालक हूँ तो इनको नहीं चलाऊँगा। बुद्धि को नहीं चलाऊँगा, अहंकार को नहीं चलाऊँगा, मन को नहीं चलाऊँगा, इन्द्रियों को नहीं चलाऊँगा, शरीर को नहीं चलाऊँगा अर्थात् इनसे अलग होकर संचालन कार्य बन्द कर देता है। जैसे कार चलाने वाला कहता है कि कार नहीं चलाऊँगा तो कार से नहीं जुड़ता है, उससे सम्बन्धित सारी क्रिया छोड़ देता है। तब कार वहीं की वहीं खड़ी रहती है। ऐसे ही जब आत्मा अपने-आप को समझ लेता है तब इन्द्रिय आदि से नहीं जुड़ता, उनसे सम्बद्ध कोई क्रिया नहीं करता, अपने-आप में स्थिर हो जाता है। इसी स्थिति को कहते हैं - स्वयं को वश में कर लिया। स्वयं को अन्य विषयों से रोक दिया।

अब वह कहता है कि मैं जो आत्मा हूँ, मैं इन सब से अलग हूँ और विचार करना या मन को किसी विषय पर चलाना या इच्छा करना; ये सब मेरे आधीन हैं। अब किसी भी विषय में मन को चलाना, न चलाना; सब नियन्त्रण में आ गया। यह जो सभी विषयों से रोक देने की स्थिति उत्पन्न होती है, वह पूरी तरह इसी अवस्था में उत्पन्न होती है। इससे पूर्व की जो स्थिति है, उसमें प्रयत्नपूर्वक रोकता है। कभी स्थिति बनती है, कभी उखड़ जाती है। स्वयं विषय को उठा लेना, पुनः उसको रोकना; यह क्रम पूर्व की अवस्था में चलता रहता है।

आप जब पंखा चलाते हैं, बिजली जलाते हैं तब मन से इच्छा करते है, आँख से देखते है और हाथ से बटन दबा देते हैं। इसलिए यदि आप यह जानना चाहते हैं कि इच्छा कैसे उत्पन्न होती है तो उस समय आप जान सकते हैं। ऐसे ही इच्छा होने पर प्रयत्न कैसे आरम्भ होता है, इसको भी इस उदाहरण से समझ सकते हैं।

अच्छा ! यह एक प्रयोग करो। आप अपने घुटने पर हाथ रखो, पुनः यह देखो कि हमने हाथ को उठाना है और हाथ को उठाना आरम्भ करो। अब आप देखो कि अन्दर से ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न कैसे उत्पन्न हो रहे हैं। अब हाथ नीचे रखिए; इच्छा, प्रयत्न के बिना उठाकर देखिए तो हाथ नहीं उठेगा। इच्छा, प्रयत्न हैं तब हाथ उठेगा। आत्मा अन्दर इच्छा, प्रयत्न नहीं करता है तब हाथ नहीं उठेगा। आप करके देख लो। इससे आप इच्छा, प्रयत्न को पकड़ सकते हैं।

साधक २— इच्छा का तो पता चलता है। प्रयत्न वहाँ से यहाँ तक आया, इसका पता नहीं चलता है। यहाँ हाथ उठने लगता है, वहाँ पुनः हमें उठने का पता चलता है किन्तु बीच का भाग ....।

स्वामी जी — हाँ ! तब इच्छा का तो पता चल जाता है।

साधक २— इच्छा का पता चलता है।

स्वामी जी — मैं हाथ को उठाऊँ - यहाँ इच्छा है, इसका पता चलता है। मैं जानता हूँ, इसका भी पता चलता है।

साधक ५— मैंने ऐसी इच्छा की।

स्वामी जी — हाँ ! जैसे मैं इच्छा करता हूँ, इससे यह ज्ञान होता है कि मैं ज्ञानवान् हूँ। ज्ञानरहित नहीं हूँ क्योंकि वहाँ इच्छा को जानने की क्रिया तो हो रही है। जो इच्छा को जानता है, वह ज्ञानी मैं हूँ। पुनः इस इच्छा को आगे बढ़ाने के लिए जो प्रयत्न चलता है, वह हम कैसे करते हैं ? यद्यपि अनुमान-प्रमाण से ज्ञात है कि प्रयत्न के बिना कार्य हो ही नहीं सकता। जैसे इच्छा के बिना कार्य नहीं हो सकता। ज्ञाता के बिना इच्छा नहीं हो सकती।

अच्छा ! ज्ञाता की अनुभूति होती है 'मैं हूँ' और इच्छा की अनुभूति होती है कि 'इस इच्छा को मैं करता हूँ'। जो प्रयत्न चलता है, उसका भी ज्ञान होना चाहिए। इसका क्या उदाहरण बनेगा ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri Vedic Virtual Library Collection

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जैसे हम किसी वस्तु को धक्का देंगे, यहाँ चुम्बक का उदाहरण ले सकते हैं। यहाँ जीवात्मा, मन, इन्द्रियाँ और नाड़ियाँ जुड़ी हुई हैं। ये सब प्रयत्न की सहायता से हाथ को उठाने का काम करते हैं। तो उस समय चुम्बकीय प्रयत्न की भाँति इस प्रयत्न को समझ सकते हैं। जीवात्मा मन के साथ जुड़ा। मन हाथ के साथ और जुड़े-जुड़े धक्का देकर हाथ को उठा दिया। यहाँ कोई देशान्तर क्रिया नहीं हुई जैसे चुम्बक के द्वारा बिना देशान्तर गए सुई खींच ली जाती है या विपरीत चुम्बक फेंक दिया जाता है। यद्यपि चुम्बक जहाँ का तहाँ खड़ा रहता है। यह बिना प्रयत्न के तो हो ही नहीं सकता। यह खींचेगा तभी तो होगा। जैसे चुम्बक एक स्थान पर रहते हुए, बिना गति किए हुए, अपने प्रयत्न से खींचने या धक्का देने की क्रिया कर लेता है। ऐसे ही जीवात्मा मन के साथ जुड़ा हुआ मन को धक्का दे देगा।

इस स्थिति में ध्यान देने पर प्रयत्न का ज्ञान हो सकता है। वर्णोच्चारण शिक्षा में एक प्रसंग है, शब्द कैसे उत्पन्न होता है, उससे आत्मा के द्वारा किए प्रयत्न का ज्ञान हो सकता है।

साधक २– वह श्लोक है -

आत्मा बुद्ध्या समेत्यार्थान् मनो युङ्क्ते विवक्षया। मनः कायाग्निमाहन्ति स प्रेरयति मारुतम्। मारुतस्तूरसि चरन् मन्दं जनयति स्वरम् ॥ वर्णो. शिक्षा।

भावार्थ – आत्मा बोलने की इच्छा से अर्थों को बुद्धि द्वारा ठीक से जानकर मन को प्रेरित करता है। मन जठराग्नि को प्रेरित करता है। जठराग्नि प्राण वायु को प्रेरित करती है। प्राण वायु नाभि से ऊपर उठता हुआ हृदय, कण्ठ आदि प्रदेशों में तत्-तत् वर्णों के स्थानों से टकराकर उस-उस वर्ण को उत्पन्न करता है।

यहाँ पर जो क्रिया बतलाई, वह पकड़ में आ रही है कि आत्मा बुद्धि से अर्थों को संगत करके उसकी प्राप्ति के लिए कैसे प्रयत्न करता है? उदाहरण ले लो। जैसे कि एक प्याऊ वाला है। उसके पास पानी है और वह लोगों को पानी पिलाता है। इधर हम प्यासे हैं और उस प्याऊ वाले के पास जाकर पानी की याचना करते हैं। तो यह क्रिया कैसे सम्पन्न होती है? यहाँ हम = आत्मा ने ज्ञान से अर्थों का विचार किया अर्थात् हमने बुद्धि से अर्थ को जाना कि यह पानी पिलाने वाला व्यक्ति है, इसके पास में पानी है, मैं इससे पानी की याचना करूँ तो दे सकता है। यहाँ व्यक्ति के पास में पानी है, इससे याचना करनी चाहिए आदि मानसिक क्रियाएँ हैं और इनका परिज्ञान भी मन-बुद्धि के बिना नहीं हो पाता। क्या समझ में आया?

साधक पानी है इसका भी ज्ञान.....।

स्वामी जी इस व्यक्ति के पास में पानी है, यह ज्ञान भी बिना मन, इन्द्रियों के नहीं हो पाता है।

साधक पहले भी उसने उसके पास से पानी पी रखा है। उसी स्मृति के आधार पर कि यह पानी है, पीने योग्य है, उसके पास है और मांगने पर पिला देता है। अतः पुनः मांगना चाहिए; इस ज्ञान को बना लिया।

स्वामी जी इसका अभिप्राय है कि पूर्व की स्मृति है। यह प्रत्यभिज्ञात्मक ज्ञान हो गया। यहाँ तो पहले से ऐसे प्रयोग हो चुके हैं परन्तु कहीं पहले के प्रयोग नहीं होते और नई वस्तु सामने आ जाती है, उस स्थिति में उसका ज्ञान कैसे होगा?

साधक अनुमान लगाना पड़ेगा।

स्वामी जी नहीं-नहीं। जब कोई वस्तु सामने आ गई तब यहाँ से चलेगा। वह पहले आँख से देखेगा कि यह क्या है? पर आँख से देखना भी बिना अन्दर के प्रयत्न के नहीं हो सकता। वह

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञानी है। वह इच्छा वाला है। उसके पास में मन भी है और उसको बाहर से दिखाने का उपकरण आँख उससे जुड़ा है। वहाँ उस पदार्थ के विषय में पूर्व स्मृति कारण नहीं है।

साधक ३– जैसे कि नया पदार्थ है।

स्वामी जी – हाँ ! नया।

साधक ३– अब इसको कैसे जानेंगे ?

स्वामी जी – यद्यपि हानिकारक है या लाभदायक है; यह एकाएक नहीं जान पायेगा, यह पृथक् विषय है किन्तु उसके आकार-प्रकार से जान सकता है कि यह नई है।

साधक ३– यह तो प्रत्यक्ष हो गया। इन्द्रिय का अर्थ से सन्निकर्ष हुआ और वस्तु का ज्ञान हो गया कि यह नई है।

स्वामी जी – हाँ! सन्निकर्ष होगा किन्तु सन्निकर्ष होने में पहले प्रयत्न तो चलेगा ? वह तो अन्दर से ही चलेगा।

साधक २– तब वह व्यक्ति मन से इतना संकल्प करेगा।

स्वामी जी – हाँ। सन्निकर्ष के लिए मन से इच्छा करेगा। पुनः मन को प्रेरणा देगा। पुनः मन आँख को प्रेरणा देगा। पुनः आँख उसके साथ जुड़ेगी तब ज्ञान होगा कि यह पदार्थ है।

साधक २– ऐसा हो सकता है कि मान लिया वह सामान्य रूप से देखते हुए रास्ते में चल रहा था। चलते-चलते कोई वस्तु उसके सामने आ गई। उस स्थिति में, वस्तु है, ऐसा ज्ञान तो स्वतः हो ही गया। इसके बाद अब पुनः वह संकल्प करेगा कि हाँ ! यह एक ऐसी वस्तु है।

स्वामी जी – क्या है ? क्या नहीं है ? यह अलग बात है। वस्तु तो सामने आ गई।

साधक २– उसके आधार पर आगे जानता जाएगा कि यह ऐसा है, यह ऐसा है। पहले केवल सत्ता का ज्ञान होगा।

स्वामी जी – केवल सत्ता का पता चलेगा। अब हमने यह देखना है कि यह जो हम ज्ञान-कर्म-उपासना के लिए जो ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न करते हैं, उनको नियन्त्रण में कैसे रखना चाहिए। इसके लिए हमने इस प्रक्रिया पर **आत्मा बुद्ध्या.....** आदि के माध्यम से विचार किया था कि आत्मा बुद्धि से अर्थों को जानकर मन को प्रेरणा देता है। अब यह अलग विषय है कि आत्मा के द्वारा मन को प्रेरणा देते हुए नहीं देख पा रहे हैं या मन के द्वारा इन्द्रियों को प्रेरणा देते हुए नहीं देख पा रहे हैं। यहाँ कार्य करते हुए देखने का अभिप्राय एक तो यह है कि आत्मा ऐसे मन को चलाता हुआ दिखाई दे जैसे बाहर कार को चलाते हुए चालक दिखाई देता है। ऐसा तो दिखना सम्भव नहीं। ऐसी आत्मा की कोई क्रिया दिखाई नहीं देती है।

अब उसकी दूसरी स्थिति यह रह गई कि चुम्बक की तरह एक जगह उपस्थित होता हुआ आत्मा मन को धक्का दे सकता है। मन को चला सकता है। पुनः मन इन्द्रिय को चला सकता है। आगे क्रिया के लिए त्वग् इन्द्रिय और उसके साथ नाड़ियाँ सहयोग देती हैं। परन्तु त्वग् इन्द्रिय कितना सहयोग देती है और नाड़ियाँ कितना सहयोग देती हैं, यह अन्वेषणीय है। इतना तो निश्चित है त्वग् इन्द्रिय ज्ञान के लिए सहयोग करेगी, क्रिया के लिए तो नहीं।

साधक ३– वह तो पूरे शरीर में व्यापक है।

स्वामी जी – हाँ ! व्यापक अर्थात् जहाँ तक स्पर्श होगा, वहाँ तक तो त्वचा इन्द्रिय का ही सहयोग मिलेगा। जैसे कि यहाँ से हाथ उठने लगा तब उठाते हुए त्वचा से अनुभूति होगी और रखते हुए भी त्वचा से अनुभूति होगी।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– यदि यहाँ पर प्राणवायु काम करना बन्द कर दे, तब अनुभूति नहीं होगी।

स्वामी जी – हाँ ! तो वहाँ यह कारण है। अब आया प्राण का स्थान। हमारी एक नाड़ी है, वह ज्ञान का काम करती है। जैसा कि सुनते है ज्ञान तन्तु ज्ञान का काम करते रहते हैं और क्रियाशील तन्तु क्रियाओं को करते हैं। परन्तु वे कौन-कौन से हैं, कितने हैं। यह तो सूक्ष्म विषय हैं। इनको जानना बहुत कठिन है। अभी हम इतना लेते हैं कि यह प्राण अपना काम करता है, नस-नाड़ियाँ अपना काम करती हैं। परन्तु मैं जीवात्मा इच्छा कर रहा हूँ और इच्छा करके हाथ को उठा रहा हूँ; यह अनुभूति करने का अभ्यास करना है। अब आप अपना हाथ उठाते हुए अनुभूति करने का प्रयास करें कि मैं कैसे इच्छा करते हुए हाथ को उठा रहा हूँ।

यह अनुभूति कर सकते है या नहीं ? प्रयास करके देख लो ! ध्यान से अन्दर देखो कि हाथ को उठाने के लिए इच्छा होती है या नहीं ? क्या बिना इच्छा के हाथ उठता है ? इच्छा दिखाई देती है या नहीं ? आपको कुछ दिखती है ?

साधक २– इसका कोई स्वरूप स्पष्ट नहीं होता है। उठाते समय हाथ को मैं उठा रहा हूँ, ऐसा ज्ञान तो होता है किन्तु आगे लगता है कि अपने-आप ही हाथ उठ गया। आगे साथ-साथ अनुभूति नहीं रहती।

स्वामी जी – यह तो हमारा पूर्व का जो अभ्यास बना हुआ है, उसके कारण होता है। बाल्य अवस्था से ही हमको इन विषयों का यह विज्ञान इस रूप में नहीं सिखाया गया। ऐसे प्रयोग नहीं कराए गए। इसलिए जैसे पहले के संस्कार हैं, वैसे ही वे काम करते रहेंगे और देर तक करते रहेंगे। जैसे कि आप सब कुछ पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने, सीखने-सिखाने पर भी मन को जड़ मानकर अधिकार-पूर्वक प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं। आप मन पर अधिकार-पूर्वक, अपना अनुशासन रखते हुए, उससे क्रिया नहीं कर पा रहे हैं। बिना अनुशासन के, बिना अधिकार के क्रिया होती रहती है।

जब आप ध्यानावस्थित होकर थोड़ा-सा अपना केन्द्र बनाकर रखेंगे, आत्मा के लिए एक जगह बनाकर रखेंगे और वहाँ से हाथ उठाएँगे, तब आपको अपनी इच्छा दिखाई देगी। हाथ उठाने में मन से इच्छा दिखाई देगी, आँखों से या अन्य किसी इन्द्रिय से नहीं। अन्य उदाहरण - आप अपने कमरे में आसन पर बैठे हैं और उसी समय दूसरे कमरे में रहने वाले किसी व्यक्ति से मिलना चाहते हैं। इसके लिए जब आप उठकर चलने लगे तब आप अन्दर देख पाएँगे कि उससे मिलने के लिए अन्दर इच्छा हो रही है। यहाँ जीवात्मा पहले इच्छा को उभारेगा और पुनः शरीर उठकर चलेगा, दूसरे व्यक्ति से जाकर मिलेगा।

अब इसको ईश्वर के साथ उपासना के क्षेत्र में जोड़ो। आपने शरीर में केन्द्र बनाया। यह जाना कि मैं आत्मा चौबीस तत्त्वों से पृथक् छोटा-सा चेतन अणु हूँ। अब आप ईश्वर के साथ सम्बद्ध होना चाहते हैं। ईश्वर की स्तुति करना चाहते हैं और कहते हैं - हे ईश्वर ! आप सर्व- शक्तिमान् हैं। अब आपको जैसे हाथ उठाते समय, हाथ उठाने की अपनी इच्छा दिखाई दे रही थी, वैसे ही आपको ईश्वर से मिलने की अपनी इच्छा दिखाई देगी।

अब आप दूसरी ओर देखिए। ईश्वर से हटकर अन्य विषय की जो आप स्मृति उठा लेते हैं जैसे कि कोई गा रहा है। उस समय यदि आप ईश्वर में बहुत तल्लीन होंगे तब वह सूक्ष्म रूप से गाया जाने वाला गाना आपको प्रभावित नहीं कर सकेगा अथवा एक सीमा तक सुनाई ही नहीं देगा। आप क्या समझ पाए ?

जब आप ईश्वर की उपासना में तल्लीन हुए, तब सूक्ष्मरूप से गाया जानेवाला कोई गीत एक सीमा

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक आपको सुनाई ही नहीं दिगा। यह प्रयोग लोक में सिद्ध है, एक यह स्थिति है। किन्तु जब उसकी धुन तीव्र होगी, मान लें ध्वनि-प्रसारक-यंत्र के माध्यम से तीव्र होगी। उस समय भी एक सीमा तक आपका ध्यान ईश्वर में जमा रहेगा। पुनः अधिक तीव्रता आने पर वह शब्द आत्मा को प्रभावित करेगा। अब आप देखेंगे कि उस ध्वनि की ओर जाने की हमारी इच्छा उत्पन्न हो रही है। यदि आप यहीं इस इच्छा को पकड़कर रोक देते हैं तब तो पुनः वह हमें सुनाई नहीं देगी, अन्यथा इच्छा को न जान पाए, न ही रोक पाए तो ईश्वर की ओर से हटकर ध्वनि सुनने में लग जाएँगे।

एक दूसरा दृष्टान्त लेते हैं। मान लिया किसी समय आप **त्र्यम्बकं यजामहे** का जप कर रहे है अथवा **ओं सच्चिदानन्दः** चल रहा है। उसी समय पास में एक व्यक्ति का व्याख्यान होने लगा। वह बहुत अच्छे ढंग से वेद-मन्त्र की व्याख्या करने लगा। आपको सुनाई देने लगा - **यो भूतं च भव्यं च....।** जो भूत, भविष्य और वर्त्तमान इन तीनों कालों का ज्ञाता है। अब जप करते हुए आपकी क्या स्थिति हो सकती है?

साधक २- सुनने की होगी।

स्वामी जी - क्यों जी! क्या स्थिति हो सकती है, अपनी-अपनी बताओ।

साधक ३- अपना छोड़कर उसके साथ चल पड़ना, एक यह भी स्थिति होती है।

स्वामी जी - एक तो अपने 'ओम् सच्चिदानन्द' को तो छोड़ देना।

साधक ३- उसके साथ चल पड़ना।

स्वामी जी - उसमें रुचि होना, एक बात है। वह रुचिकर लगा, तब वहाँ जो रुचि थी ईश्वर में, वह तो मन्द हो गई और इसके सुनने की रुचि तीव्र हो गई। हाँ जी! आलस्य को हटाओ। मुँह धो लो। रात को नींद नहीं आती क्या?

साधक ५- नींद आई थी। स्वामी जी!

स्वामी जी - क्या समझ में आया? एक स्थिति है - ईश्वर के अन्दर जो उसका प्रेम था, वह कम पड़ गया और 'यो भूतं च भव्यं च' यह बड़ा अच्छा लगा, इसमें रुचि बढ़ गई। बढ़ते ही ईश्वर की उपासना छूट गई। उसको सुनने लग गया।

साधक ३- उसको सुनता हुआ अब ईश्वर की उपासना में मन लगा ले।

स्वामी जी - सुनता हुआ कैसे लगाएगा?

साधक ३- अपना छोड़ दिया। उस शब्द को सुनता हुआ ईश्वर में अपने आपको लगा लिया।

स्वामी जी - नहीं-नहीं, आप करके देखो। एक नया व्यक्ति है, पुराने को छोड़ दो। नया व्यक्ति जब कहता है - ओम सच्चिदानन्दः हे! ईश्वर आप सर्वरक्षक, सत्-चित्त आनन्द स्वरूप हैं। उसका जप यह चल रहा है और इस ओर जब वह यो भूतं च भव्यं च का अर्थ सुनने लग गया तब जप नहीं चल पाएगा।

साधक २- जो अच्छा लगेगा, उसमें जाएगा।

स्वामी जी - जो अधिक रुचिकर होगा, उसमें भी जाने की दो स्थितियाँ होंगी। एक विवशता से जाना, दूसरा जान-बूझकर जाना। एक में तो अधिकार पूर्वक जाएगा और तब रहेगा कि अब मैं ईश्वर की उपासना को बन्द करता हूँ और इस मन्त्र का अर्थ सुन लेता हूँ। दूसरी स्थिति में वह जाना तो नहीं चाहता, कहता है - उपासना का काल है, कैसे जाऊँ! पर उसको तीव्र रुचि, इच्छा होने से जैसे बलात् वहाँ पर खिंचा जा रहा हो, वैसे जाना पड़ रहा है। यहाँ विवशता से वह ईश्वर की उपासना छोड़ रहा है और व्याख्यान सुनना चाहता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– ऐसा भी हो सकता है यदि उपासना के समय तीव्र ध्वनि सुनाई दे रही है, जो उसके लिए बाधा ख़ड़ी कर रही है। अब वह निश्चय करता है कि चलो ! कुछ काल के पश्चात् उपासना कर लेंगे। उपासना में तो कुछ प्रगति हो नहीं रही है, इसलिए व्याख्यान को ही सुन लें, उपासना तो पश्चात् कर लेंगे।

स्वामी जी – यह एक पृथक् विषय बन गया। यह निश्चित हो गया कि उपासना तो होगी नहीं, इसलिए चलो ! थोड़ी देर के लिए इसी को सुन लेता हूँ।

एक और स्थिति है - जब वह कहता है मैं उपासना ही करूँगा, व्याख्यान नहीं सुनूँगा। भले ही ध्वनि आती रहे, परन्तु विषय नहीं बनने दूँगा। अब वह बलपूर्वक ओम् सच्चिदानन्द बोलता रहेगा और प्रतिपक्ष बनाता रहेगा कि सुनूँगा ही नहीं। ध्यान ही नहीं दूँगा। ध्वनि होती रहे किन्तु विषय नहीं बनने दूँगा। ऐसा होगा। दोनों में अन्तर आया समझ में ?

साधक ३– तो कई बार ध्वनि टकराती है, चोट-सी लगती है तब वृत्ति बनती है। उसको हम सुनना नहीं चाहते हैं। जैसे कि मोर की ध्वनि कान में टक्कर-सी मारती है। चोट-सी लगती है। तब पुनः वृत्ति बन जाती है।

स्वामी जी – चोट-सी तब लगती है जब तीव्र हो। किन्तु इसी स्थिति में वह कहता है कि ध्वनि भले ही सुनाई दे, पर विषय को ग्रहण नहीं होने दूँगा। ध्वनि आती रहे, उसको विषय नहीं बनाऊँगा। क्या कह रहे हैं, इस अर्थ पर जाना ही नहीं है। विषय नहीं बनाना है, विषय नहीं बनाऊँगा। अतः विषय नहीं बनाता है। तो जिसका इतना अधिकार है, वह विषय नहीं बनाएगा और जिसका इतना अधिकार नहीं है, वह विषय बनाने से नहीं रहेगा। वह मन को नहीं रोक पाएगा। यह दोनों में अन्तर है।

साधक ८– अथवा वह अपनी ध्वनि उससे ऊँची कर दे, जिससे वह बाधक न बने।

स्वामी जी – कुछ भी करे। वह विषय नहीं बनने देगा। दूसरा चाहे कितना ही चिल्लाता रहे। ध्वनि सुनाई दे, पर विषय नहीं बनने देना। ये स्तर उपासना काल में आपके सामने प्रतिदिन तारतम्य से आते ही रहेंगे। कोई नई घटना नहीं है। ऐसे आएँगे।

कभी-कभी उपासना करते-करते ऐसा विषय उपस्थित हो गया कि उपासना पर ही संशय खड़ा कर दिया। जैसे ही उपासना आरम्भ करते हैं, सन्देह उभरने लगता है। इस स्थिति में एक व्यवस्था करनी पड़ेगी। अब व्यक्ति पहले उपासना को रोक देता है। यह अधिकार पूर्वक रोकना है। इस प्रकार उपासना को बन्द करके प्रमाणों से उपासना को सिद्ध करके संशय को दूर करता है। पुनः आगे यथावत् उपासना आरम्भ करता है। कुछ समझ में आया ?

साधक ८– हाँ जी !

स्वामी जी – यह है अधिकार पूर्वक आवश्यक समझकर संशय का दूर करना। यहाँ संशय का दूर करना आवश्यक समझा गया, सामान्य स्थिति में नहीं। वह इतना बाधित कर रहा था कि उपासना नहीं होने दे रहा था। तब उस काल में वह कहता है कि अब थोड़ा-सा रुककर प्रमाणों से इस संशय को दूर कर लें और रुककर प्रमाणों से संशय को दूर करता है और पुनः उपासना आरम्भ कर देता है।

एक और स्थिति है। अब जब संशय हटाकर उपासना करने लगा, एक अन्य वितर्क खड़ा हो गया कि अच्छा ! इतने जटिल संशय का समाधान हो गया ! इस प्रकार इन-इन हेतुओं से इसका समाधान हो जाता है ! चलो, इसको अन्यों को पढ़ायेंगे। एक ओर उपासना करनी है, दूसरी ओर संशय बड़ा रोचक लग रहा है। किसी को पढ़ाने-बताने के योग्य दिख रहा है। अब एक ओर

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर की उपासना की इच्छा और दूसरी ओर संशय के विषय में विचारने की इच्छा; यह बाधा खड़ी हो गई। कुछ अन्तर आया समझ में या नहीं आया ?

साधक २– एक ओर तो उपासना की इच्छा है, दूसरी ओर संशय का निवारण है।

स्वामी जी – यहाँ संशय निवारण के विषय में वह विवश नहीं है। वह स्वयं इच्छा कर बैठा है कि संशय वाला विषय बहुत अच्छा है। समझे, नहीं समझे ? यह बहुत अच्छा है, वह उसमें इच्छा कर बैठा। आप यह देखेंगे कि बाधा कहाँ खड़ी होती है ? एक ओर ईश्वर की इच्छा है और दूसरी ओर अन्य विषय की इच्छा। जब ये दो इच्छाएँ उठा देता है तब बाधा खड़ी होती है, पुनः उपासना नहीं हो पाती है। आप यह देख पाएँगे उपासना में। (इसका निदान भी वही है। विषय नहीं बनने देना है)

साधक ३– अब क्योंकि उठाकर उसको तत्काल रोक देते हैं, उसको चलाते नहीं हैं। विषय नहीं बनाते हैं।

स्वामी जी – नहीं ! कई बार ऐसा होता है उपासना में जो विषय उठाते हैं, वह बुरा नहीं लगता, बहुत आवश्यक दिखता है। जैसे कि आप उपासना में बैठे और कोई भिक्षुक आ जाए। अब आपको लगने लगा देखो ! बेचारा कितना भूखा, नंगा है। क्या करें ? ओ हो ! इसको कुछ दिलाना चाहिए। स्वामी जी से कहो, आचार्य जी से कहो। इतना निर्धन है कि शरीर पर कपड़ा भी नहीं, पैरो में जूता भी नहीं, खाने को रोटी भी नहीं है। आपने बहुत ध्यान दिया उस पर। करुणा आ गई और पुनः उपासना में बैठ गए। अब क्या होगा ? समझ में आया ? (हँसते हुए!!)

साधक ३– वह विषय बार-बार आएगा।

स्वामी जी – नहीं समझे बात को। बहुत अच्छा लगा, वह कोई पाप तो है नहीं। अब वहाँ एक इच्छा निर्धन की सहायता की है कि यह दिलाओ, वह दिलाओ। दूसरी इच्छा उपासना की; यह बाधा आकर खड़ी हो जाएगी। समझ में आया या नहीं ? कुछ तो आया होगा।

अच्छा ! आपको इस मन्त्र का अर्थ आता है – **तद्विष्णोः परमं पदं....।** आता है कुछ ?

साधक ३– आता है।

स्वामी जी – तो बोलकर देखो ! आप ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे और इसके अर्थ को लेकर ईश्वर को सम्बोधित करेंगे। अन्य पुरुष का प्रयोग चला **तद् विष्णुः** परन्तु हम कहेंगे- हे ईश्वर ! आप विष्णु व्यापक हैं। आपके स्वरूप को विद्वान् लोग देखते हैं। इस प्रकार मध्यम पुरुष में बदल देंगे। जब ईश्वर से सीधा सम्बन्ध करेंगे तब ऐसा बदल सकते हैं।

ओ३म् तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः। दिवीव चक्षुराततम्॥ ऋ. १/२२/२०।

समय हो गया होगा। हाँ ! उन्होंने एक बात चलायी थी कि रविवार के दिन दो कक्षाओं का अवकाश करना चाहते हैं तो वह सबको ठीक लगता है ?

साधक गण – हाँ जी ! हाँ जी !

स्वामी जी – अब विराम॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४०

ज्ञानखण्ड

प्रलयावस्था : आषाढ़ कृ. ६/२०६०-१९/७/०३

आप आसन पर अधिक से अधिक कितने समय तक बैठ सकते है। हाँ जी ! आप बताएँ।

साधक ३– एक घण्टा। कभी कुछ उससे अधिक और कभी बीच में बदलना भी पड़ जाता है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक २– एकाग्रता होने पर दो-ढाई घण्टे हो जाते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! आपका।

साधक १– सवा-डेढ़ घण्टे तक।

स्वामी जी – सवा ?

साधक २– सवा से लेकर डेढ़ घण्टे तक।

स्वामी जी – सवा से लेकर डेढ़ घण्टे तक और आप बताएँगे। एक आसन पर सुखपूर्वक कितनी देर तक बैठ जाएँगे। हाँ जी !

साधक ६– पैंतालीस मिनट तक।

स्वामी जी – अच्छा !

साधक ४– लगभग बीस मिनट या आधा घण्टा।

स्वामी जी – हाँ जी।

साधक ८– दो घण्टे ....।

स्वामी जी – मेरा प्रयोग है, तीन घण्टे तक बैठ लेता हूँ। जैसे यह आसन है। इस पैर को चपटा करें अथवा पंजे को अन्दर ले लेते हैं। इसमें भी अन्दर ले लेते हैं। मैं स्वस्तिक आसन में ऐसे बैठता हूँ। क्यों जी ! आप बहुत थोड़ा बैठ पाते हैं या दर्द हो जाता है।

साधक ४– पैर शून्य हो जाते हैं।

स्वामी जी – सीधा न बैठने से भी व्यक्ति थोड़े समय तक बैठ पाता है। क्या समझ में आया।

साधक २– सीधा न बैठने पर भी व्यक्ति कम...।

स्वामी जी – सीधा बैठने से अधिक लम्बे काल तक बैठ सकता है और टेढ़ा बैठने से थोड़े काल तक बैठता है तथा दर्द होता है, कठिनाई होती है। सीधा बैठने से हमारे शरीर का भार रीढ़ की हड्डी के तल भाग में अधिक रहता है। यहाँ टखनों आदि स्थलों में कम आता है और ऐसे टेढ़ा होने पर अधिक भार यहाँ आ जाता है। रक्त की गति अवरुद्ध होती है, पीड़ा होती है, तब वह व्यक्ति देर तक नहीं बैठ सकता। अपने शरीर के भाग को, रीढ़ के भाग को, इस भाग को व्यक्ति ढीला छोड़ता है। जब वह ढीला छोड़ता है तब पुनः यह आगे की ओर झुक जाता है और वह ध्यान से देखता रहे तब पता चलेगा कि अब भी मैं टेढ़ा ही बैठा हूँ। पुनः उसको ठीक करता है। सीधा बैठने में बल लगता है, शक्ति लगती है।

अब आप यह देखेंगे कि जैसे शरीर नाशवान् है, उत्पन्न होता है; उसी प्रकार से यह भूमि, सूर्य,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चन्द्र आदि सभी लोक-लोकान्तर उत्पन्न होते हैं और विनाश को प्राप्त हो जाते हैं। विनाश की वह स्थिति कैसी होगी, उसको देखो। शरीर की जैसी स्थिति होती है, उसी प्रकार की इस भूमि, सूर्य, चन्द्रमा आदि की होगी। क्या आपको शरीर की भाँति भूमि नाशवान् दिखाई देती है? जिसको दिखाई देती है, वह अपना अनुभव सुनाए। हाँ जी! आप सुनाएँगे।

साधक २– एक स्तर पर शरीर की...।

स्वामी जी – थोड़ा-सा जमकर। हाँ!

साधक २– एक स्तर पर शरीर की नाशवान् स्थिति दिखाई देती है। एक स्तर पर भूमि और सूर्य दोनों की तथा अन्य लोकों की भी ...।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ३– मैं भी जब विचार करता हुआ शरीर को नाशवान् देखने का प्रयास करता हूँ। उसके आगे यह पृथ्वी, सूर्य, लोक-लोकान्तर ये भी एक दिन प्रलय को प्राप्त होंगे। सूक्ष्म-सूक्ष्म-कण रूप में ये सब कुछ परिवर्तित हो जाएँगे। ऐसा ज्ञान, ऐसा अनुभव कुछ समझ में आता है।

स्वामी जी – शरीर को नाशवान् देखते समय तो जिस शरीर को हमने देखा था उसका अवसान हो गया, मृत्यु हो गई, दाह-संस्कार हो गया और हमने देखा कि उस शरीर के जो भाग, कण, परमाणु थे, वे इस संसार में कहीं भी दिखाई नहीं देते हैं। तब हमने जाना कि वह व्यक्ति पूरा का पूरा नहीं रहा। उसके शरीर के जो अंश, भाग, अवयव थे, निश्चित रूपेण सब छिन्न-भिन्न हो गए। विनाश को प्राप्त हो गए। किन्तु जब भूमि को इस रूप में देखने का प्रयास करते होंगे तब कुछ कठिनाई का अनुभव तो होता होगा।

साधक ३– ऐसा विचारते हैं कि आकाश में पृथ्वी का स्वरूप देखना। इसके अभी परमाणु संगठित हैं। यह शिथिल होंगे। कण-कण में बदल जाएँगे; ऐसा विचार करने से यह बात समझ में आती है कि एक दिन ऐसा हो जाएगा।

स्वामी जी – शरीर को नाशवान् देखना, समझना और विनाश की अवस्था में देखते रहना; इस रूप में देखने में क्या कठिनाई है या नहीं है। क्या होता है? आप बताएँगे –

साधक ५– शरीर की अपेक्षा से कुछ कठिनाई होती है पर प्रयास करने पर यह भी कारण रूप में जाएँगे, ऐसा समझ में आता है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बताएँगे। क्या स्थिति रहती है?

साधक ४– शरीर के उदाहरण को साथ में लेकर विचारने पर समझ में आ जाता है। जैसे शरीर की राख हो जाती है और वह उड़ जाती है और पुनः दिखाई नहीं देती है। इस प्रकार से पहले चिंतन करते हैं, पृथ्वी के विषय में इसी प्रकार की स्थिति बनाने का प्रयास करते हैं और हो जाता है।

स्वामी जी – आप बोलेंगे।

साधक ६– मेरे ज्ञान में भी इसके प्रति कोई संशय नहीं होता कि शरीरादि का विनाश होगा या नहीं।

स्वामी जी– एक बात आपको समझ में आई कि शरीर की भाँति पृथ्वी, सूर्य आदि लोक भी विनाश को प्राप्त हो जाएँगे और यह विनाश के रूप में दिनभर दिखते रहें; इसमें आपका क्या अनुभव है?

साधक ६– ऐसा अनुभव नहीं होता है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– ऐसा अनुभव नहीं होता है। उपासना काल में जब प्रलय की अवस्था बनाते हैं, उस समय होता है और जब व्यवहार काल में यही विचार करना मात्र उद्देश्य जैसे बनाते हैं तब कुछ काल तक स्थिति बनती है। अन्य समय में स्थिति ऐसी नहीं रहती।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे। व्यवहार काल में नहीं रहती क्या ?

साधक २– यह स्थिति केवल विचार करते समय ही रहती है। विचार छोड़ते ही यह स्थिति समाप्त हो जाती है।

स्वामी जी – और शरीर के विषय में भी प्रायः जब वह ध्यान देता है, मन्थन करता है, एकाग्र चित्त को बनाता है, उस समय तक शरीर नाशवान् दिखाई देता है। उस स्थिति के हटने पर पुनः शरीर नाशवान् दिखाई नहीं देता। यह स्थिति उसके सामने आती है। आप अपना अनुभव सुनाइए। ऐसा होता है पुनः, नाशवान् दिखाई नहीं देता। अनेक लोगों की स्थिति यह रहती है। उस काल में ध्यान में अवस्थित होकर जब मन्थन करते हैं, प्रमाणों के माध्यम से परीक्षण करते हैं तब शरीर नाशवान् दिखाई देता है। उस स्थिति के हट जाने पर चलते, घूमते, बैठते समय यह शरीर नाशवान् दिखाई नहीं देता।

साधक ३– ऐसा ही ज्ञान रहता है।

साधक २– गम्भीरता से विचार किया हुआ हो, तब थोड़ी देर तक यह स्थिति बनी रहती है।

स्वामी जी – वह व्यक्ति जब अधिक गम्भीरता से, अधिक सूक्ष्मता से, गहराई में पहुँचकर निर्णय करता है और अधिक समय लगाकर इसको देखता है तब यह कुछ अधिक समय रहने लगता है। यह इसकी स्थिति है। जब वह बहुत गहराई में जाता है और अधिक मन्थन करता है तब पुनः आगे चलकर उठते-बैठते, चलते-फिरते, जब तक रात्रि में सो नहीं जाता तब तक, पूरे व्यवहार में प्रलयवत् अवस्था देखता है। इसके साथ-साथ जैसे सभी शरीर नाशवान् और मृत्यु के मुँह में दिखाई देते हैं, वैसे भूमि, सूर्य आदि भी दिखाई देते हैं। इसका परिणाम होता है कि जो लौकिक भय हैं, डर हैं; व्यक्ति के वे भय दूर हट जाते हैं। संसार में रहने से व्यक्ति को जो विविध प्रकार के डर सताते हैं, वे नहीं सताते। इसके विपरीत जैसे ही वह शरीर, भूमि आदि को विद्यमान, नाशरहित देखना आरम्भ करता है वैसे ही डर, मान-अपमान, खाना-पीना, जीना-मरना; ये सारी बातें उसके साथ आ जाती हैं और व्यक्ति पुनः लौकिक स्थिति में आकर सांसारिक व्यक्तियों जैसा व्यवहार करने लगता है।

देखो ! जिस समय उसने यह सिद्ध किया था कि यह शरीर नाशवान् है और सभी शरीर नाशवान् हैं, उस समय वह आँख बन्द करके चलता, सोचता-विचारता था, किसी से बातें नहीं करता था। न हँसता था, न हँसाता था, न डरता था।

जिस समय वह इनको नाशवान् देखता है, उस समय के जो हाव-भाव होते हैं; स्थिति हट जाने पर वे नहीं रहते। अब जैसे कि उसका कोई परिचित व्यक्ति या मित्र आ गया तो वह उसकी ओर देखने लगता है। उससे पहले जैसी बातें करता है। स्वास्थ्य आदि पूछता है। जैसे पाँच-दस वर्ष पहले के हाव-भाव थे, वैसे ही करता है।

अब वह सोचता है यदि इसके साथ मैं इसी रूप में मौन रहता हूँ, कोई विशेष बात नहीं करता तब यह बुरा मानेगा। यह अप्रसन्न हो जाएगा और मेरे बारे में लोगों को कहेगा कि यह व्यक्ति तो नमस्ते तक भी नहीं करता। पागल की तरह आँख बन्द करके बैठा रहता है। पता नहीं इसको क्या रोग हो गया है ? ऐसी अवस्था में वह उस व्यक्ति से डरने लगता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि प्रलयवत् अवस्था बनी रहेगी है। तब नहीं डरता, तब नहीं सोचता कि यह क्या कहेगा, क्या मान होता है, क्या अपमान होता है। तब यह विचारधारा उसको प्रभावित नहीं करेगी। यदि वह लोक को पहले की भाँति देखने की स्थिति में आता है तब उसको डर लगने लगता है। मान-अपमान की बात आती है। ऐसा न करूँगा तब यह उलटा प्रचार हो जाएगा। जब व्यक्ति लौकिक स्तर पर आता है तब ऐसी बातें करता है। समझ में नहीं आया तो पूछिए।

साधक २– प्रलय की स्थिति को जब बनाए हुए है, उसी काल में उसका मित्रादि आ जाता है और यह बात आती है कि बातें न करूँगा तब यह अप्रसन्न हो जाएगा।

स्वामी जी – हाँ !

साधक २– ऐसी स्थिति में वह पुनः निश्चय कैसे करता है कि यह अप्रसन्न आदि हो जाएगा। वहाँ प्रलयावस्था तो चूँकि बनी रहती है ?

स्वामी जी – वस्तुतः ऐसी स्थिति ही नहीं आएगी। प्रसन्न होना न होना, सुखी होना, दुःखी होना आदि जितने भी लौकिक स्तर होते हैं, वे सारे उसने मृत्यु के आने पर समाप्त कर दिए। जन्म से लेकर मृत्यु तक जितनी घटनाएँ होती हैं लाभ-हानि, सुख-दुःख आदि, एक व्यक्ति का जीवन जिन वृतान्तों में होता है; वह सारा उसने समाप्त कर डाला। जब सारा वृतान्त समाप्त कर दिया तब उससे होने वाले प्रभाव उसके ऊपर नहीं होंगे। यदि उस वृतान्त को वह समाप्त नहीं करता तब लोक में जो प्रभाव होते हैं, उसके ऊपर होंगे। समझने का प्रयास करें। क्या समझ में आया ?

तब यह दृश्य ज्यों का त्यों होगा। जैसा कि मैंने आपको बतलाया ज्यों का त्यों सामने आएगा। जैसे व्यक्ति को डर लगता है, वैसा सर्वथा नहीं लगेगा। कल्पना कीजिए आपने अपने शरीर की स्थिति प्रलय जैसी बनाई हुई है और जंगल की ओर चले जा रहे है तो वहाँ पहले जो भेड़िए, शेर, डाकू, सांप आदि से डर लगता था, वह अब नहीं लगेगा।

साधक ८– क्या वह उस काल में अपनी सुरक्षा भी नहीं करेगा ?

स्वामी जी – एक स्तर ऐसा होता है, उसको अपनी सुरक्षा का भी बोध नहीं रहता, जितना रहना चाहिए। यह स्थिति होती है। आपने यह बात विवेक-वैराग्य श्लोक की पुस्तक में पढ़ी होगी **वैराग्यमेव.....** ।

साधक २– अभयम् ।

भोगे रोगभयं कुले च्युतिभयं वित्ते नृपालाद्भयं,
मौने दैन्यभयं बले रिपुभयं रूपे जराया भयम् ।
शास्त्रे वादिभयं गुणे खलभयं काये कृतान्ताद्भयं,
सर्वं वस्तु भयान्वितं भुवि नृणां वैराग्यमेवाभयम् ॥ वैराग्य श. ३१ ।

स्वामी जी – तो ऐसे गिनाते चले गए और अन्त में कहा – **वैराग्यमेवाभयम्** । जब व्यक्ति को विवेक होता है तब वैराग्य होता है और वैराग्य होने पर भय की स्थिति नहीं रहती है। उसी का वर्णन यहाँ पर हुआ है।

साधक ३– इस अवस्था में मान लिया कि दूर सामने कोई शेर खड़ा है तो उसको देखकर शेर हानि पहुँचा सकता है; ऐसा कुछ नहीं सोचेगा ?

स्वामी जी – वह एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें उसके हानि और लाभ समाप्त हो चुके होते हैं और वह अपनी व शेर की भी मृत्यु देख रहा होता है। एक स्तर ऐसा भी रहता है। आगे चलकर

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब उसकी स्थिति कुछ परिपक्व हो जाती है तब पुनः शरीर की सुरक्षा का ध्यान रखने लगता है। जिस स्थिति में वह प्रलयवत् अवस्था बनाता है तब यदि जीने की बात सोचने लग जाए तो उसकी प्रलयवत् अवस्था नहीं बन पाती। उस समय यह कठिनाई होती है।

इस सम्बन्ध में जब मैंने मन्थन, विचार किए थे तब पर्याप्त कठिनाई रही थी। मेरे सामने एक प्रसंग आया। जिस दिन वैराग्य हुआ उस स्थिति में पहुँचा, उस दिन जो कार्य करने-कराने, परिवार में रहने आदि का सम्बन्ध था; वह सारा समाप्त कर दिया। सब कुछ छोड़ दिया। तब न घर वालों से डर लगता था, न बाहर वालों से डर लगता था। कोई भी ऐसी वस्तु मुझे दिखाई नहीं देती थी, जो डर उत्पन्न कर दे। एक प्रसंग आया जैसे कि मैं भोजन खाने के लिए घर जाता था और वहाँ जाकर बैठ जाता था परन्तु मैं भोजन कभी माँगता नहीं था। यदि वे दे देते थे तो खा लेता था अन्यथा यों ही उठ जाता था। जितना देते उतना खाता, शेष नहीं माँगता था।

अब उठते-बैठते, चलते-फिरते सब कुछ करते हुए सब को नाशवान् देखता और मेरा सर्वस्व ईश्वर ही है, ऐसा मानता था। यह ईश्वर के प्रति मेरी स्थिति थी कि सोते समय सोने में कोई सुख नहीं होता था किन्तु सोना पड़ता था। उस समय जागरण की स्थिति बहुत अच्छी लगती है और उसी में ज्यों के त्यों रहते रहें, ऐसा लगता है। कोई भय नहीं, कोई डर नहीं। हानि-लाभ, मान-अपमान आदि कुछ भी नहीं सताता। ऐसी स्थिति को साधक यदि छोड़ता है, तब ये सारी बाधाएँ आकर उसको पीसने लगती हैं, पहले जिस लौकिक स्तर पर था, वही पुनः आ जाता है किन्तु वह उसको आने देना नहीं चाहता। अतः मैं अपने मित्रों व अन्य किसी को देखता ही नहीं था। स्त्री-पुरुष क्या होते हैं, नहीं देखना। बचने-बचाने के अतिरिक्त उनकी आकृति, व्यवहार भी नहीं देखता था। चलते समय ऐसे थोड़ा-सा रास्ता देख लिया और चलते रहे।

स्थिति बनाए रखने के लिए ऐसे देखना होता है जैसे एक आकाशवत् अवस्था में विचर रहा हो। उस समय एक ऐसी स्थिति दिखाई देती है जैसे केवल आकाश। जितने निर्मित पदार्थ हैं भूमि आदि किसी को नहीं देखता। जिस समय इस अवस्था का सम्पादन होता है, उस समय हमारे शरीर पर प्रभाव पड़ता है और एकाग्रता के कारण हमारा मस्तिष्क यहाँ (ललाट भाग) से प्रभावित होता है।

उस समय मेरे आन्तरिक कार्य थे कि मैंने ईश्वर का जो नाम अपनाया था, अन्दर-अन्दर उसका प्रयोग करता था। उस समय मैं परमात्मा नाम का प्रयोग करता था, ओम् का नहीं करता था। यह भूमि आदि पदार्थ जब मैंने प्रलयवत् बनाए तब एक विचार आया कि जब मैं नष्ट हो जाऊँगा, सबका विनाश हो जाएगा तब क्या कुछ भी नहीं रहेगा या कुछ रहेगा? तब उसका उत्तर यह आया था कि जिसको हम विनाश मानते हैं अर्थात् कुछ भी नहीं रहेगा; ऐसा नहीं है। अपितु ऐसा रहेगा कि उत्पन्न होना, नष्ट होना, उत्पन्न होना, नष्ट होना; यह चक्र चलता रहेगा अर्थात् अभाव नहीं होगा। बनना-बिगड़ना, बनना-बिगड़ना चलता रहेगा।

इन प्रयोगों में जहाँ यह शरीर नाशवान् है या नहीं; ऐसे विचारने लगे थे। तब इसके साथ-साथ शरीर है, शरीर बना है, नष्ट होता है और इसको कौन बनाता है? यह प्रसंग भी इसी में उभरकर पहले आ चुका था। जैसे कि यह शरीर उत्पन्न होता है, नष्ट होता है और शरीर को कौन बनाता है? मैं तो बना नहीं सकता। माता-पिता कहते हैं मेरा बेटा, मेरा बेटा आदि किन्तु वे भी नहीं बना सकते। तब यह प्रसंग वहाँ से आरम्भ हुआ था।

अब आप अभ्यास करते-करते पहले शरीर की स्थिति को देखो - कैसे उत्पन्न होकर नष्ट हो जाता है। इसका मोटा उदाहरण देखना हो तो घास की स्थिति देखो। आज यह हरी-भरी दिख

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रही है, कल सूख कर मर जाएगी। और देखना हो तो राजस्थान के बीकानेर के क्षेत्र में चले जाओ, वहाँ टीबों को देखो जिस पर उष्ण काल में घास का एक पत्ता तक दिखाई नहीं देगा। केवल टीबे के पीछे टीबा, टीबे के पीछे टीबा दिखाई देगा। उस मार्ग से यदि हजार व्यक्ति भी चले जाएँ तो कुछ समय पश्चात् उनके पैरों का कोई संकेत तक नहीं मिलेगा। कहाँ से गए, किस ओर से गए; इसका कोई अता-पता नहीं चलेगा।

सुना है अभी राजस्थान में खूब वर्षा हुई है। तो वहीं वर्षा काल में जाकर देखो ! वही टीबे आपको हरे-भरे दिखाई देंगे, पहले जहाँ घास का एक हरा पत्ता तक दिखाई नहीं दे रहा था। ग्रीष्म ऋतु में पुनः वही स्थिति आ जाएगी।

पुनः घास, पत्ते और शरीर में इतना अन्तर है कि शरीर अधिक काल तक चलने वाला है किन्तु इसकी स्थिति घास और पत्ते वाली ही है। इसी प्रकार जैसे शरीर के स्तर को नाशवान् सिद्ध कर देता है वैसे ही भूमि, सूर्य आदि के स्वरूप को भी नष्ट करने की बुद्धि उत्पन्न कर लेता है जिनका कि काल शरीर की अपेक्षा बहुत अधिक है।

यदि व्यक्ति के लौकिक प्रयोजन उभरते हैं जैसे कि विविध प्रकार के लौकिक उद्देश्य होते हैं - मैं यह करूँगा, वह करूँगा, ये सुख, ये सुख के साधन हैं, इनका सम्पादन करूँगा आदि-आदि। यदि व्यक्ति इन लौकिक सुख और सुख के साधनों में लग जाता है तब यह विचारधारा, विचार की प्रक्रिया हाथ से छूट जाती है जबकि उस ओर जब शरीर को नाशवान् सिद्ध करता है और लौकिक सुख और सुख-साधनों को नाशवान् सिद्ध करके रखता है तब इनमें कोई राग नहीं रहता। हाँ जी ! आपको आलस्य तो नहीं आ रहा ?

साधक ७- नहीं। शरीर को हम नाशवान् समझ रहे हैं।

स्वामी जी - हूँ।

साधक ७- संसार के सब पदार्थों में जो राग होता है, वह राग नहीं रहेगा।

स्वामी जी - जैसे शरीर को नाशवान् देखते हैं वैसे ही संसार के सुख और सुख साधनों को नाशवान् देखते हैं। जिस समय व्यक्ति यह देखता है कि यह शरीर, सुख और सुख के साधन वास्तव में नहीं रहेंगे, हाँ ! नहीं रहेंगे। आज मैं जिन सुख और सुख के साधनों का भोग कर रहा हूँ, वे नहीं रहेंगे। अच्छा ! जिस दिन ये जाएँगे तब बड़ा दुःख होगा। उसको यह दिखाई देने लगता है। कुछ समझ में आ रहा है ?

साधक ७- हाँ जी !

स्वामी जी - व्यक्ति चाहे लखपति या करोड़पति हो, जब यह देखता है कि सुख और सुख-साधन नहीं रहेंगे तब बड़ा दुःख होगा। इसलिए इसे अभी क्यों न छोड़ दिया जाए ? दुःख होगा जब ये नहीं रहेंगे तो अभी हटाओ इनको। क्यों जी ! आपको पकड़ में आई बात ?

पुनः वह सुख और सुख के साधनों को अनित्य देखता है। जब अनित्य दिखते हैं तब उनको भोगने की इच्छा नहीं होती। इसको ग्रहण करो, खाओ-पिओ, ऐसी इच्छा नहीं होती। यदि आपको इस विषय में इतिहास की बात या कोई वृत्तान्त सुनना हो तो नचिकेता का वृतान्त सुन सकते हैं। उसमें ऐसे-ऐसे बहुत से विवरण दिए हैं। ये आपको याद होंगे या दोहराने पड़ेंगे ? उसमें जो स्थितियाँ बताई गई हैं, वे सारी स्थितियाँ ऐसी होती हैं। जब इन्द्रियों के भोगों की बात सुनाते हैं तब कहता है कि इन्द्रियों के भोग तो सारे के सारे पत्ते की तरह उड़ जाते हैं। उसने यहाँ तक कह डाला कि गुरु जी ! ये आपके नाच-गाने आपके ही रहें, मुझे नहीं चाहिएँ। है कुछ स्मरण ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– हाँ जी !

स्वामी जी – जब आचार्य लौकिक सुन्दर-सुन्दर रूप वाले लोग और नाच-गाने उसको दे रहे थे, तब कहता है - ये नाच-गाने और सुन्दर-सुन्दर रूप वाली स्त्रियाँ मुझे नहीं चाहिएँ। आप अपने पास रखें। वस्तुतः इस विवरण से उस बात का, उस दृश्य का चित्र खींचा गया है कि जो आध्यात्मिक व्यक्ति होता है वह कैसे सोचता है, कैसे देखता है ?

अब महर्षि दयानन्द जी को ले लो। हमने जहाँ तक सुना है कि उनका परिवार माता-पिता धन-सम्पत्ति की दृष्टि से सुसम्पन्न थे। किसी प्रकार की कमी नहीं थी; ऐसा माना जाता है। तब भी वे इक्कीस वर्ष की अवस्था में उन सारे सुख और सुख के साधनों को छोड़कर क्यों भागते हैं ? इसलिए कि उनको मृत्यु दिखाई दे रही थी। यदि मृत्यु दिखाई न देती तब वे छोड़ते ही नहीं। जब व्यक्ति को सुख और सुख के साधन चाहिएँ और वे उसके पास हैं, तब वह क्यों भागेगा। किन्तु जब यह डर लगता है कि मृत्यु आ रही है तब सुख और सुख के साधनों को छोड़कर जंगल में भागता है। आप अब सांख्य को थोड़ा-सा साथ जोड़ दो। कहाँ पर जाओगे जहाँ यह प्रसंग आया है, सुख-दुःखी क्या पाठ है ?

साधक गण– श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ॥ सां. ४/५ ।

स्वामी जी – त्यागवियोगाभ्याम्। तब उसका क्या सार निकाला ? श्येन पक्षी देखा होगा आपने या जानते हैं। एक छोटे आकार का और एक कुछ बड़े आकार का भी होता है, जो चिड़िया आदि पक्षियों को झपट्टा मारकर खा जाता है।

साधक ७– यह तो बाज़ है।

स्वामी जी – कल्पना करते हैं उसने एक पक्षी को मार दिया अथवा कहीं से मांस का खण्ड लेकर चला। अब उसके पीछे दूसरे चील आदि बड़े-बड़े पक्षी लग गए। आक्रमण करने लगे और उससे छीनने लगे। उस समय यदि वह बाज़ उस मांस खण्ड को स्वयं छोड़ देता है तो आराम से रहता है, सुखी हो जाता है, मार नहीं पड़ती है। यदि वह पकड़े रहता है तब उसको मार-मार कर समाप्त कर देंगे या घायल कर देंगे और उस टुकड़े को छीन लेंगे।

तो यह प्रसंग मृत्यु के साथ जुड़ा है। मृत्यु की जो घटना है, वह बाज़ की भाँति है। त्याग करने से सुखी हो जाएगा अर्थात् यदि मृत्यु को स्वीकार कर लेता है तब सुखी हो जाएगा और यदि बलात् मारा जाएगा तब दुःखी होगा। खूब रगड़ा जाएगा या न चाहते हुए मरना पड़ेगा तब उसको बहुत दुःख होगा।

अब यह व्यक्ति सुख और सुख-साधनों को बुद्धि पूर्वक छोड़ देता है अर्थात् जैसे ही उसकी दृष्टि पदार्थों की ओर, लोक की ओर जाती है वैसे ही वह उन्हें नाशवान् देखना आरम्भ कर देता है और रुक जाता है। अन्यथा अन्त में बलात् मृत्यु छुड़वाती है तब उसको कष्ट होता है, दुःख होता है। अब विराम ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४१ आत्मनिरीक्षण

ज्ञानशोधन, स्वानुभव : आषाढ़ कृ. ६/२०६०-१९/७/०३

अब आत्म-निरीक्षण का कार्यक्रम प्रारम्भ होता है। हाँ जी ! आप सुनाएँगे।

साधक २— सायं उपासना में मैं ही सब कुछ करता हूँ, इस विचार की प्रधानता रखने से उपासना बहुत अच्छी नहीं हुई। बीच में निराशा वृत्ति उठाई, पुनः धैर्य रखा और उपासना में सफलता प्राप्त हुई।

स्वामी जी — समय-समय पर ऐसी स्थितियाँ उभरती रहती हैं। वस्तुतः उभार ली जाती है। यद्यपि भाषा में 'उभरती रहती हैं' ऐसा ही बोला जाता है। यही वाक्य भाषा में प्रचलित है। ऐसा ही सामान्य रूप से कहा जाता है, माना जाता है। परन्तु यदि इसका अर्थ सीधा अभिधा वृत्ति से लेते हैं तब आध्यात्मिक दृष्टि से समस्या खड़ी हो जाती है। जैसे कि निराशा उत्पन्न हो गई और उसको रोको। प्रयास कर रहे हैं, पुनरपि रुक नहीं रही है। यह जो प्रक्रिया है, यह मन को चेतन मानने की प्रक्रिया है। आपको समझ में आया? अतः हम इसको दूसरे ढंग से लेते हैं। हमें उसमें परिवर्त्तन करना होता है। यह पहले से भी व्यक्ति सोचकर रखता है कि मुझे वैसा वाक्य नहीं बोलना है जिसमें मेरा कर्तृत्व गौण होवे। इसलिए वह स्वकर्तृत्व-प्रधान वाक्य बोलता है जैसे कि मैंने निराशा उत्पन्न की।

पुराने विपरीत अभ्यास को हटाने के विषय में आपने पहले सुना, पढ़ा होगा कि चाहे जो कुछ हो गुणों की, उत्तम पदार्थों की प्राप्ति में और दोषों के निराकरण में भले ही हम लाख बार गिरें या उठें, तब भी निराशावादी नहीं होना है। यह पाठ सब जगह याद रखना होता है और दूसरा उपाय यह है कि इस निराशा को उठाने वाला मन नहीं है, बुद्धि नहीं है, इन्द्रियाँ नहीं है, ईश्वर नहीं है। कोई भी पदार्थ नहीं है, जो इस निराशा को उठा रहा है। अतः निराशा को उठाने वाला मैं हूँ। जब निराशा को उठाने वाला मैं हूँ तो आगे निराशा को नहीं उठाऊँगा। निराशावादी नहीं बनूँगा। इस प्रकार हम तत्काल उसको रोक देते हैं। अब आप सुनाएँगे -

साधक ४— प्रातः विलम्ब से जागरण किया।

स्वामी जी — यहाँ जैसा कि नियम है किन्हीं कारणों से एक व्यक्ति नहीं उठता है तो दूसरा उसको उठा देता है। आप सबमें ऐसा व्यवहार नहीं होता है?

साधक ४— नहीं।

स्वामी जी — हूँ। अब आप सुनाएँगे।

साधक ७— पीछे वालों की बारी नहीं आएगी क्या?

स्वामी जी — अच्छी तरह बोलो। क्या-क्या बताया?

साधक ७— पीछे खड़े रहने वाले हैं। बैठे भी हैं। इनकी भी बारी आनी चाहिए।

स्वामी जी — क्या कहा इन्होंने?

साधक २— इनका कहना है, जो पीछे लोग हैं उनका भी क्रम आत्म-निरीक्षण में होना चाहिए।

स्वामी जी — कैसे-जैसे?

साधक ७— उनसे भी पूछना चाहिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हमारे पास में इतना समय नहीं है कि इनका भी कर लें और उनका भी कर लें।

साधक ७– मेरे स्थान पर किसी और का कर लिया जाए।

स्वामी जी – आपने समझा नहीं। बात यह है कि हमने इन आठ निर्वाचितों पर बल, प्रयत्न लगाने की योजना निश्चित कर रखी है। अतः अन्य लोग बैठकर सुन सकते हैं। उनको बैठकर सुनने की स्वीकृति है। औरों के लिए यही नियम है कि उन्हें न बोलना है, न पूछना है, चुपचाप सुनना है। यदि उन्होंने कोई बात पूछनी हो तो उनको कक्षा से पृथक्काल में समय दिया जाता है। उस समय वे अपनी बात रख सकते हैं। इतना हो सकता है कि जब विद्यालय के ब्रह्मचारी आते हैं उनको बीस मिनट पृथक् से समय दिया हुआ है। ये भी उस समय बैठकर पूछ सकते हैं। यह व्यवस्था वाली बात हो गई।

जीवन का एक मोटा भाग है शारीरिक, जो ऊपर से दिखता है। दूसरा अत्यन्त सूक्ष्म भाग है – आन्तरिक, जिसमें आत्मा, मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, विचार आदि हैं। यह भाग इतना गम्भीर है कि थोड़ी गवेषणा, थोड़े अध्ययन, थोड़े योगाभ्यास से उसका पता नहीं चलता। इसी प्रकार योग, ब्रह्मविद्या का क्षेत्र भी इतना ही सूक्ष्म, गम्भीर है, यदि इस विषय को अच्छी प्रकार जानने वाला, बहुत अधिक सोचने वाला और समाधि का अभ्यास कर जिसने अपना अनुभव बहुत बढ़ाया हो, ऐसा बताने वाला हो तब तो उलझनें कम होंगी, अन्यथा सामान्य व्यक्ति तो और भी उलझन में डाल देगा। उसकी बातों को सुनकर व्यक्ति भ्रम में पड़ जाएगा या निराशावादी बन जाएगा।

ऐसी स्थिति बड़े से बड़े पढ़े-लिखे लोगों की भी हो जाती है, साधारण की ही नहीं। यदि उदाहरण लेना हो तो आप सैकड़ों, हजारों अपने-अपने ढंग के विद्वान् देख सकते हैं। अपने या अन्य मतों में अनेक विद्वान्, लेखक, प्रचारक हैं। सब प्रकार का ज्ञान-विज्ञान है उनको, भौतिक-विज्ञान भी किसी ने पढ़ा है। पर समाधि, आत्मा-परमात्मा के विषय में या योग के विषय में उनका ज्ञान भ्रमपूर्ण रहता है। विशुद्ध स्थिति होती ही नहीं। वहाँ उलझनें ऐसे ही खड़ी होती हैं।

साधक ७– वे परीक्षा करते ही नहीं?

स्वामी जी – उस ढंग से वे नहीं चलते जैसे महर्षि दयानन्द जी चलते थे। महर्षि दयानन्द जी तो ऐसे चलते थे कि हम गुरु की खोज में हैं और उनके मिलने से पूर्व भी अन्य जो हमको बताएगा उसकी बात बड़े ध्यान से सुनेंगे और जिसकी बात सत्य होगी, उसकी मानेंगे। उनको और किसी धन, मान आदि से कोई लेना-देना नहीं था। तब वे खोज कर सके। ऐसी स्थिति लोग नहीं बनाते तो खोज नहीं हो सकती।

साधक ७– अभिप्राय संशोधन नहीं करते।

स्वामी जी – हाँ! एक तो यह होता है कि जैसा सुन लिया, गुरु जी ने जो बता दिया, उसको आगे सोचना ही नहीं। एक होता है मिथ्या अभिमान कि मैं ही ठीक जानता हूँ। मेरा जो ज्ञान है, वह विशुद्ध है और अन्य लोग जो दूसरे मत में या दूसरे ढंग के हैं, वे सारे भ्रम में पड़े हैं। यह भ्रान्ति इनकी बुद्धि में काम करती है। अन्य कारण हैं – लोभ, सम्मान, धन और विविध प्रकार के सुख-साधन उनको उसी मत में रहने से मिल सकते हैं, अन्यत्र नहीं। अतः उस मत को वे नहीं छोड़ सकते।

मैं सुना रहा था कि आपके सामने भी उलझनें खड़ी होंगी परन्तु कम होगी; क्योंकि आपने पहले पुनः पुनः सुना है, बार-बार पढ़ा है, आपको बताया गया कि ऐसा होगा, वैसा होगा। बहुत-सी उलझनें आप सुलझा भी लेंगे। पुनरपि कुछ उलझनें ऐसी होती हैं कि वे रहेंगी। उलझनें इतनी गम्भीर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं कि इतना सिखाने पर, इतना पढ़ने-पढ़ाने पर भी रहेंगी। उतना गम्भीर है कि प्रथम तो व्यक्ति मार्ग को ही नहीं पकड़ पाता।

साधक ७– आज उपासना के समय एक उलझन मेरे सामने भी आई थी।

स्वामी जी – क्या ?

साधक ७– ऐसा हुआ जैसे कि यह पुस्तक विद्यमान है और मैं इस पुस्तक को मान लूँ कि यह है ही नहीं। तब क्या यह असत्य नहीं होगा ?

स्वामी जी – हाँ ! यह अशुद्ध ज्ञान है। क्योंकि प्रत्यक्ष-प्रमाण से यह सिद्ध है। परन्तु जब इसको प्रलयावस्था में देखेंगे तब इसका कारण रूप दिखाई देगा। यह प्रत्यक्षकार्य रूप हट जाएगा और परमाणु की सत्ता ज्यों की त्यों रहेगी। जब हम उसको प्रलय जैसी अवस्था में देखना चाहेंगे, उस समय भी दो बातें रहेंगी - प्रथम यह पुस्तक है, यह कार्य रूप है और दूसरा उसका कारण रूप होगा। एक स्थिति में यह पुस्तकीय अवस्था में रहेगी, दूसरी में पुस्तक नाम की वस्तु नहीं रहेगी। उसको जब हम अनुमान-प्रमाण से देखेंगे, उस समय उसके परमाणु रूप का ही अनुमान होगा, वहाँ यह कार्य रूप नहीं रहेगा। अब वर्त्तमान में कार्य रूप है।

साधक ७– जी !

स्वामी जी – यह ज्ञान ठीक है।

साधक ७– जैसे मैं सारे संसार को प्रलय रूप मान लूँ और संसार विद्यमान है।

स्वामी जी – हाँ ! तब उसके वही दोनों रूप रहेंगे। प्रत्यक्ष में उसको कार्य रूप में देखेंगे और अनुमान से कारण रूप में प्रलयवत् अवस्था में देखेंगे। सारे दर्शनकार इस बात का बहुत अच्छी तरह वर्णन करते हैं। कोई नई घटना नहीं है। दोनों धाराओं को लेते हैं। सारा का सारा यथावत् विवरण मिलता है। आपको यह सब बहुत सुनाया जाता है और लेखबद्ध है। कार्यकारण रूप व्यवस्था को न समझने से ऐसा होता है, लोग कहते हैं कि प्रलयवत् अवस्था क्यों बनाई जाए। प्रलयवत् अवस्था कोई योगी विद्वान् नहीं बनाता। तो ऐसा नहीं है, अपितु यह अज्ञानियों की कपोल कल्पना कही जानी चाहिए। वस्तुतः दर्शन की इस प्रक्रिया को न तो वे समझते हैं, न इसका प्रयोग करते हैं। अतः उनको लगता है कि यह किसी ने कल्पना कर रखी है। बस ठीक है भाई ! मान लो। इसको व्यंग्यात्मक भाषा में कहकर लोग हमारा मखौल उड़ाते थे। कहते थे कि यह तो आपका परमाणुतोड़वाद है।

साधक ७– जी !

स्वामी जी – यदि आपको विद्या नहीं आती होगी तब यही उलझन आपके सामने खड़ी हो जाएगी। एक ओर तो कार्य रूप और दूसरी ओर प्रलय रूप-कारण रूप; यह कैसे हो सकता है; यह उलझन खड़ी हो गई। इसको कोई विशेषज्ञ व्यक्ति सुलझा सकता है, सब नहीं सुलझा सकते। समझाने पर भी पकड़ने वाला भी योग्य हो, नहीं तो वह भी नहीं समझ पाएगा। जैसे कि किसी को कहो कि यह शरीर ईश्वर के हैं मेरा-तुम्हारा नहीं, इन्द्रियाँ ईश्वर की हैं तुम्हारी नहीं, बुद्धि, नस-नाड़ियाँ, भोजन, वस्त्र, अन्न ईश्वर का है तुम्हारा नहीं। घर ईश्वर का है तुम्हारा नहीं, बिजली आदि सब ईश्वर के हैं, हमारे तुम्हारे नहीं। तब वह कहेगा - यह क्या ? ये तो मूर्खता की बातें हैं। ऐसा मानें तो सारा उजड़ जाएगा। चोर चोरी करके ले जाएगा और हम रक्षा ही नहीं करेंगे। वह ऐसी बीस बातें उठा डालेगा। क्योंकि वह समझता नहीं है। आप समझ गए ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक विशेष बात - आज अपने मुमुक्षु जी के विचारों में कुछ परिवर्तन आया था और साथ में थोड़ी अधिक भावुकता जुड़ी हुई थी। पहले के जीवन से अब उनके विचार, उनकी बातें बदली हुई थीं। पहले जैसा हाव-भाव, बात करना, सोचना आदि था, अब वैसा नहीं मिलता। क्या समझ में आया ?

साधक २ – पहले के सामान्य जीवन की अपेक्षा अब की स्थिति में परिवर्त्तन हो गया है।

स्वामी जी – जैसे कि कोई व्यक्ति सोचता-सोचता सामान्य स्थिति से गम्भीर स्थिति में चला गया हो, ऐसी स्थिति थी। उन्होंने कारण यह बताया - प्रलयवत् अवस्था का सम्पादन हो गया। अब समझें, क्यों ऐसा हुआ ? उस अवस्था के सम्पादित होने से वह प्रभावित हो गए और जैसे भावुकता में व्यक्ति रोने को हो जाता है, वह स्थिति थी। अद्भुत अवस्था दिखाई देती थी। अभिप्राय आप नहीं समझे ? ये भी एक उच्च-कोटि के डॉक्टर हैं; यह तो आप मानते हैं। तो उनके अन्दर सुनने से प्रभाव पड़ा। उस समय यदि घर वाले देख लेते तो उनको पागल मान लेते। उनको चिन्ता हो जाती कि इसको क्या हो गया ? यह स्थिति डॉक्टर मुमुक्षु की बता रहा हूँ। यह अभी-अभी की बात है। मुझे सूचना मिली कि ये मुझे बुला रहे हैं, तब मैं गया। मैंने सोचा कोई रोग हो गया होगा जैसे कि अकस्मात् कुछ हो जाता है। मैं जब वहाँ पहुँचा तब ऐसे लिपट गए। मैंने कहा - नहीं, अधिक भावुकता मत करना, थोड़ी गम्भीरता में रहो। कोई आवश्यकता हो तो बताओ। आपके लिए दूध रखा है। उन्होने कहा - नहीं, मुझे दूध नहीं चाहिए। पुनः मैंने कहा - कोई बात नहीं, आराम से बैठो या लेट जाओ। ध्यान में बैठना हो तो बैठ सकते हैं पर अधिक भावुकता नहीं उठाना, गम्भीर रहना। जैसे उनके सारे हाव-भाव बदल गए, वैसे आपके बदल सकते हैं या नहीं ? उनको भी तो मैंने यह घटना सुनाई थी। स्मरण है, कौन-सी ?

साधक २ – अपने दूसरे साथी की।

स्वामी जी – ठीक! उनको भी मैंने सारा विवरण दिया था। जब विवरण सुनाया था तब उन पर भी प्रभाव पड़ा था। पहले तो वह भी मुझे एक मास तक पागल ही मानते रहे। मानते रहे, मानते रहे और मैं उनको बताता रहा - सब कुछ ईश्वर का है। सब नाशवान् है। उस समय बाहर के पदार्थों में मेरी कोई रुचि नहीं रही थी, मेरा जीवन ही बदल गया था। तब उन्होंने ध्यान दिया कि यह पागल तो नहीं हो सकता है। कोई ज्ञान-विज्ञान इसके हाथ लग गया है। कोई विशेष अवस्था होनी चाहिए। यह पागल की अवस्था तो नहीं है।

तब मैंने पुनः उनको विशेष रूप से यह सारा विवरण दिया, जो आपको दे रहा हूँ। उससे वे प्रभावित हो गए और ऐसे ही ध्यान में बैठने लगे। जब ध्यान में बैठने लगे, लम्बा-लम्बा काल लगाने लगे तब घर वालों ने सोचा भाई ! एक वह तो पागल हो ही गया, यह दूसरा भी पागल हो गया। अब उन्होंने डांट मारी, धमकाया - बनेंगे भगत। यह करेंगे, वह करेंगे। धमकी सुनकर उन्होंने बैठना छोड़ दिया। यह एक व्यक्ति की घटना है। ऐसे ही एक दूसरा भी था जो इससे अधिक प्रभावित हुआ। यह संसार अनित्य है, सब नाशवान् है; उसे समझ में आ गया। आगे की घटना है। एक छोटा पेड़ होता है करीर का। हरियाणा में उसको कैर बोलते हैं। करीर नाम है संस्कृत का। तब करीर के नीचे बैठकर, ध्यानावस्थित होकर यह शरीर नाशवान् है, यह मृत्यु को प्राप्त हो जाएगा आदि बातें सोचते-सोचते अति भयभीत हो गए।

मैंने आपको कारण बताया था, ऐसा क्यों होता है ? इसलिए कि जब व्यक्ति मृत्यु का अन्तिम निर्णय करना चाहता है तब बहुत प्रकार की मौत की घटनाएँ, मौत के बहुत से कारण आकर खड़े

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो जाते हैं अर्थात् वह ले आता है। जो सांप से डरता था, डाकू से डरता था या जो-जो डर के कारण थे उसके जीवन में, वे-वे वास्तविक रूप में घटित होते हुए दिखाई देने लगेंगे। इस कारण से उसने देखा कि यह काला सांप कैर की शाखाओं में लटक रहा है और मुझे काटने वाला है। वे भाग पड़े। वहाँ से चल पड़े, उठ गये झटपट। किन्तु आगे किसी से बात ही न करें तो उनकी स्थिति देखकर दूसरे ने मुझे बताया कि आज इनकी स्थिति ऐसी हो गई है कि किसी से कोई बात ही नहीं कर रहे हैं। पता नहीं क्या हो गया है?

मैंने जब उनसे पूछा तो उन्होंने मुझे वह सारी घटना सुनाई कि ऐसे-ऐसे काला सांप दिखाई दिया और मुझे काटने वाला था। मैंने कहा - वह कुछ नहीं था। वह तो जिससे हम डरते रहते हैं उसके संस्कार हमारे चित्त में होते हैं, वे ही उभर जाते हैं। जैसे स्वप्न में वस्तुएँ दिखती हैं, ऐसे ये दिखते हैं। घबराओ मत। कुछ भी चिन्ता नहीं करनी। यह उनको समझा दिया। ऐसे मुमुक्षु जी को समझाया। कहीं आप सारे के सारे ऐसे ही तो नहीं बन जाओगे और पुनः आपको भी समझाने में ही लग जाएँ। हाँ जी! क्या पूछना था?

अध्यापक जी- मुमुक्षु जी तीन-चार दिन से यह प्रश्न उठाते रहे कि यह प्रलयवत् अवस्था, यह संसार को विद्यमान मानते हुए कैसे हो सकती है? क्या यह कल्पना असत्य नहीं है? मैंने कहा - नहीं। यह संसार चार अरब बत्तीस करोड़ वर्ष के पश्चात् उस अवस्था में चला जाएगा या नहीं? चला जाएगा। वह स्थिति थी और अब कुछ वर्ष पश्चात् आगे आएगी कि नहीं? आएगी, तो उस अवस्था को अभी मान लेने में क्या आपत्ति है?

स्वामी जी - हूँ।

अध्यापक जी- इसके उपरान्त क्या-क्या हुआ, पता नहीं?

स्वामी जी - हाँ! तो उनको कुछ विशेष समझ में आया। विशेष बात समझ में आने पर व्यक्ति के ऊपर प्रभाव पड़ता है। उसमें यदि गम्भीरता कम हो जाती है तब किसी-किसी में भावुकता बहुत आ जाती है। सबके भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। बहुत भावुकता में व्यक्ति की बुद्धि का सन्तुलन थोड़ा बिगड़ सा जाता है।

साधक २- आत्मभाव-भावना।

स्वामी जी - हाँ! वह आया है योग दर्शन में 'आत्मभाव-भावना'। वहाँ बताया कि उसके रोंगटे खड़े हो जाते हैं जिसके पूर्व संस्कार उभर आते हैं। आध्यात्मिक विषय सुनने से जब उस व्यक्ति के पूर्व के संस्कार जग जाते हैं तो आँखों से अश्रुधारा बहती है। यह **विशेषदर्शिन आत्मभाव-भावनाविनिवृत्तिः**। यो.द. ४/२५। सूत्र के व्यास भाष्य में लिखा है।

तब यह बड़ा परिवर्तन होता है। जैसा कि आपको दृष्टान्त सुनाया जाता है किसी को फाँसी दिए जाने का आदेश मिला। ऐसे में वह स्थिति उत्पन्न होती है। यदि ध्यान दिया जाए तो वह परिवर्त्तन पूरा का पूरा जीवन ही बदल देता है और इसके पश्चात् यदि ध्यान न दिया जाए, प्रयास करके उस स्थिति को बनाए न रखा जाए तो पुनः हाथ से छूट जाती है।

आप कई किलोमीटर दूर प्रयत्न करते-करते किसी कोठी में मित्र से मिलने के लिए एक बार गए और वापस आ गए। किन्तु आपने आते-जाते समय रास्ते का कोई ध्यान नहीं रखा, किस गली या भवन के पास आपके मित्र का घर है, इसका आपको स्मरण नहीं रहा। अब आप दोबारा उस मित्र से लाभ उठाने के लिए चले गए और मित्र का घर ढूँढने लगे। अब आप देख रहे हैं कि सब

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोठियाँ एक जैसी ही हैं, किसमें जाएँ? वह कोठी मिल ही नहीं रही आपको। आप अन्यों से पूछने लगे मैं अपने मित्र से मिलना चाहता हूँ, पर उसकी कोठी नहीं मिल रही। उसने कहा - घर का क्या नम्बर है? नम्बर याद नहीं है। तो चक्कर काटते रहो। अब क्या हुआ? कारण को छोड़ दिया। जिस गली से जाना था, जहाँ जाना था, उसका कोई लक्षण उपस्थित नहीं रखा। उस मार्ग से हट गया और वहाँ जा नहीं सका।

तब पुनः क्या हुआ? एक पहचान यह थी कि वहाँ डाकखाना था। जैसे-तैसे आपने स्मरण किया कि डाकखाने से मैं ऐसे चला था, इतनी दूरी तक गया था। अब आप मार्ग पकड़कर धीरे-धीरे उस कोठी पर पहुँच गए।

समाधि वाले की भी यही स्थिति होती है। एक बार समाधि लगने के पश्चात् पुनः वह स्थिति नहीं ला पाता। तो पुनः समाधि लगाने के लिए साधक वैसा ही प्रयास करता है। कैसे-कैसे समाधि लगी थी, किन-किन हेतुओं से लगी थी। वह उनको दोबारा उठाता है। उन्हीं बातों को पुनः लेकर चलता है। ईश्वर-प्राणिधान को लाता है। प्रलयवत् अवस्था बनाता है और टूटी हुई समाधि को पुनः लगा लेता है। यदि वह धारा उसको समझ में न आए, उसके उपायों व क्रमों को स्मरण न रखें तो पुनः स्थिति नहीं बनेगी।

४२ यज्ञीयोपदेश

मेरा और ईश्वर का सम्बन्ध: आषाढ़ कृ. ७/२०६०-२०/७/०३

एक योगाभ्यासी साधक-साधिका जब उपासना में उपस्थित होते हैं या उपासना का प्रारम्भ करते हैं तब अथवा मध्य में भी यह प्रसंग उपस्थित हो जाता है कि मेरा और ईश्वर का क्या सम्बन्ध है? इसलिए प्रत्येक व्यक्ति इस बात का परिज्ञान कर लेवे कि मेरा और ईश्वर का क्या सम्बन्ध है। जिन पदार्थों की सहायता से व्यक्ति उन्नत होता है, उन्नति करता है, उन पदार्थों का और उनके साथ व्यक्ति का क्या सम्बन्ध है; इसका परिज्ञान कर लेना अनिवार्य रहता है। यदि योगाभ्यास करने वाला व्यक्ति ईश्वर के और अपने सम्बन्धों को नहीं जानता, नहीं समझता और उन सम्बन्धों के अनुसार ईश्वर के साथ व्यवहार नहीं करता तो उस व्यक्ति की उन्नति, कृतकृत्यता नहीं हो सकती। समस्त संसार के मनुष्य, जन-समुदाय यदि ईश्वर के साथ अपने सम्बन्धों का परिज्ञान नहीं रखते और ईश्वर के साथ उचित व्यवहार नहीं करते हैं तो उनको सफलता नहीं मिलती है। आप भी यदि ईश्वर के साथ अपने सम्बन्धों को नहीं जानेंगे और सम्बन्धों के अनुकूल व्यवहार नहीं करेंगे तो आपको भी सफलता नहीं मिलेगी। समस्त व्यवहार में उनको भंग न होने देना, हो जाएँ तब प्रायश्चित् कर पुनः प्रयास करना चाहिए।

ईश्वर ने वेदों में उपदेश दिया है कि जीवों के और मेरे परस्पर क्या-क्या सम्बन्ध हैं। ईश्वर ने ऐसा क्यों किया? इसलिए कि वह जानता है कि जीवात्माएँ मेरे गुण-कर्म-स्वभाव को जानें तथा मेरा और उनका परस्पर क्या सम्बन्ध है यह भी जानें, तब उनकी सफलता होगी। यदि मेरे साथ जीवों का जो सम्बन्ध है, उसको उन्होंने नहीं जाना तो वे विफल हो जाएँगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Arya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप बताएँगे कि क्या आप अपने और ईश्वर के सम्बन्धों को कुछ जानते हैं, उनके अनुरूप व्यवहार करते हैं?

साधक ६– प्रायः ऐसा व्यवहार नहीं कर पा रहे हैं।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ४– सम्बन्धों को शाब्दिक रूप से जानते हैं। किन्तु उस प्रकार से व्यवहार नहीं करते।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बताएँगे।

साधक ५– शाब्दिक रूप में जानता हूँ, पर उसके अनुरूप पूरा-पूरा आचरण नहीं कर पाता।

स्वामी जी – तब वह जो आचरण नहीं होता, उसमें क्या शब्द-प्रमाण पर पूरा विश्वास नहीं है और सम्बन्ध जानने पर व्यवहार ऐसा नहीं किया तब क्या उसकी हानि का परिज्ञान नहीं है या सम्बन्ध ठीक प्रकार से व्यवहार में लाने से जो लाभ होता है, क्या उसका परिज्ञान नहीं है? लौकिक सुख और सुख-साधनों के लिए आप आकृष्ट रहते हैं, लालायित रहते हैं। इसलिए ईश्वर के सम्बन्धों का प्रयोग नहीं होता और लोक में मान की इच्छा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा होती है, क्या वह उस सम्बन्ध को व्यवहार में नहीं उतरने देती? इत्यादि कौन-कौन से कारण उपस्थित रहते हैं? हाँ जी! आप सुनाएँगे, कैसा ज्ञान है?

साधक ७– परमात्मा से हमारा पिता-पुत्र का सम्बन्ध है, व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है पर उसको जीवन में नहीं उतारता।

स्वामी जी – यह जो जीवन में नहीं उतारने की स्थिति है, इसको दूर करना चाहिए। जिन-जिन कारणों से हम उन सम्बन्धों का प्रयोग नहीं कर पा रहे, उन-उन कारणों की गवेषणा कर उनको हटाना चाहिए। नियम यही रहेगा कि कारणों को जानना अर्थात् अमुक, अमुक कारण हैं जिनसे हम ईश्वर के साथ वेदों में बताए सम्बन्ध का प्रयोग नहीं कर पा रहे हैं। जब उन कारणों को हटाएँगे तब हमारा ईश्वर से उचित सम्बन्ध बनेगा और व्यवहार कर पाएँगे। तब हम ईश्वर की सहायता से प्रगति कर पाएँगे, विकसित हो जाएँगे, हमारी उन्नति होगी, ज्ञान-विज्ञान बढ़ेगा, अनेक गुण बढ़ेंगे और थोड़े काल में हम समाधि अवस्था में चले जाएँगे; यह परिणाम निकलेगा।

आप गम्भीरता से देखेंगे, सूक्ष्मता में जाएँगे तब पता चलेगा कि ईश्वर के साथ हमारे जो सम्बन्ध हैं वे क्यों नहीं रहते, क्यों कटे हुए होते हैं और वेद क्या कहता है, ऋषि क्या कहते हैं। तब आप समझ पाएँगे कि मेरा जीवन तो ठीक उलटा है।

जब पता चलेगा कि व्यक्ति का जीवन इतना उलटा है किन्तु वह आलसी, प्रमादी नहीं है, विषयासक्त नहीं है, लौकिक राग-द्वेष से दूर है तब महान् परिश्रम करेगा और अधिक परिश्रम से उन दोषों को हटाएगा। व्यक्ति का जीवन लोक में माता-पिता, परिवार, बन्धु, मित्र, राजा-प्रजा आदि से इतना जुड़ा हुआ रहता है कि वह ईश्वर के सम्बन्ध को भूल जाता है और भूला रहता है, वह इस स्थिति तक पहुँचता है।

यदि लोक में देखना हो तब उन लोगों को तो छोड़ दो जो ईश्वर को मानते ही नहीं, उनकी बात ही दूसरी है। वे केवल भोगवाद को लेकर चल रहे हैं। जो ईश्वर को मानते हैं, स्वीकार करते हैं, ऋषियों की बातों को सुनते हैं, पढ़ते भी हैं, पढ़ाते भी हैं, उनका सम्बन्ध भी ईश्वर से लगभग कटा हुआ रहता है। जब उनको कहो कि वानप्रस्थ की अवस्था आ गई है, अब सारा समय ईश्वर के लिए लगाओ तब कहेंगे कि मेरी रुचि ही नहीं है। आप देखेंगे व्यक्ति कोई त्याग ही नहीं करना चाहता। उनको ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने के लिए परिश्रम करना चाहिए, तन-मन-धन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगाना चाहिए किन्तु वे कहते है हमारा यह काम ही नहीं है। तो इतनी बड़ी भूल हो रही है।

इस ओर देखो। आप पढ़ते-पढ़ाते हैं, ये अच्छे कार्य हैं। परन्तु एक के पीछे दूसरा पढ़ा, दूसरे के पीछे तीसरा पढ़ने-पढ़ाने लगे। पुनः कुछ लिखने लग गए। एक पुस्तक लिख दी, पुनः अन्य आरम्भ कर दी। विद्यालय चला दिया। प्रकाशन करने लगे। यद्यपि ये अच्छे काम हैं पर इनके साथ-साथ या इनसे हटकर ईश्वर से सम्बन्ध जोड़ने के लिए तन-मन-धन नहीं लगाना, अन्य कोई प्रयास नहीं करना; यह पढ़े-लिखे बुद्धिजीवी, उपदेशक, संन्यासियों की बात है। यही कारण है कि विशुद्ध रूप में जैसे व्यक्ति की उन्नति होनी चाहिए, विकास होना चाहिए, सफलता मिलनी चाहिए, जीवन में विशेषताएँ आनी चाहिएँ, वे ईश्वर से सम्बन्ध कटने के कारण नहीं आतीं।

इसीलिए ऋषियों ने ईश्वर से सम्बद्ध रहने के लिए अपने ग्रन्थों में बहुत बल दिया। समझाने का बहुत प्रयास किया। जैसे कि ईश्वर-प्रणिधान करो। ईश्वर की ही सब वस्तुएँ हैं, ऐसा मानो। ईश्वर से ही अति प्रेम करो। ईश्वर के ही समर्पित हो जाओ। ईश्वर को ही प्राप्त करना चाहो, लौकिक फलों को नहीं आदि बातों पर बहुत बल दिया। इसलिए ये हमारे सम्बन्ध, मान्यताएँ और क्रियाएँ सुधरनी चाहिएँ।

अब हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना का प्रयोग करेंगे। मन्त्र लेंगे -

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे॥ ऋ. ८/९८/११।

सरल भाषा है। ईश्वर कहता है - हे जीवात्मा! तू मेरे लिए ऐसा कह, बोल। क्या? **त्वं हि नः पिता** तू ही निश्चित रूपेण हम सबका पिता है, पालक है, रक्षक है। **वसो** सबको बसाने वाले और सबके अन्दर बसने वाले, सबके आधार, अनन्त ऐश्वर्य वाले। पुनः कहा - **त्वं माता** पुनः माता शब्द का प्रयोग आया। तू ही हमारी माता है। **शतक्रतो** असंख्य क्रियाओं को करने वाले। ईश्वर की कितनी क्रियाएँ हो रही हैं? हमारे मन-वाणी-शरीर से होने वाले शुभ और अशुभ कर्म। किन-किन प्राणियों के क्या-क्या कर्म भुगाए जा चुके हैं। किन-किन प्राणियों को कौन-सी योनि में भेजना है आदि ईश्वर की इतनी क्रियाएँ हैं कि कोई मनुष्य उनको गिन नहीं सकता, असंख्य क्रियाएँ हैं।

अधा ते सुम्नमीमहे। अधा के दो अर्थ किए जाते हैं। एक - इसीलिए, दूसरा - अनन्तर। इतनी बात कहने के पश्चात् कि तू ही हमारा पिता है और तू ही हमारी माता है, इसके अनन्तर, आनन्तरीय में भी इसका प्रयोग होता है अर्थात् उसके पीछे, **ते** तुझसे **सुम्नम्** लौकिक सुख और मुक्ति का सुख **ईमहे** हम माँगते हैं।

आप जब उपासना करते हैं तब सम्बन्धों को स्मरण कर ईश्वर के साथ सीधा वार्तालाप करने का प्रयास करें। हे ईश्वर! तू ही हमारा पिता है, तू ही हमारी माता है। सब में बसने वाले, सबको बसाने वाले, आपकी असंख्य क्रियाएँ हैं। क्योंकि हम माता-पिता से ही कुछ माँगते हैं, इसलिए हम आपसे लौकिकसुख और मुक्ति का सुख माँगते हैं।

अब मन्त्र का प्रयोग करके देखो। ईश्वर को सम्बोधित करो। शरीर में एक केन्द्र निर्धारित करने से स्थिति सम्भली रहती है। जब कोई केन्द्र बना लेते हैं तब मन की तरंगों, वृत्तियों को रोकने में हमको सुविधा हो जाती है।

प्रयोग आरम्भ - समय लगभग ५ मिनट।

ओऽऽऽम् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे॥

अब आप इसका मन में प्रयोग करेंगे। मानसिक जप, धीरे-धीरे धुन से करो, बिना धुन के करो, कोई प्रतिबन्ध नहीं है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप रुकेंगे। एक सम्बन्ध ईश्वर का हमारा है व्याप्य-व्यापक। हम जीवात्माएँ व्याप्य हैं, एक देशीय हैं और ईश्वर सर्वव्यापक है, सर्वदेशीय है और विश्व की ओर ध्यान दो - अरबों-खरबों लोक-लोकान्तर=पूरी सृष्टि व्याप्य है, ईश्वर व्यापक है। सत्त्व, रज, तम जिनसे पूरा संसार बनाया जाता है=वह प्रकृति व्याप्य है, ईश्वर व्यापक है।

अब सम्बन्ध को सामने रखते हुए स्थूल भाषा में प्रयोग करेंगे 'सर्वव्यापक' और धुन को ठीक करेंगे।

ओ३३३म् सर्वव्यापक। ओ३३३म् सर्वव्यापक। ओ३३३म् सर्वव्यापक।

जब साधक या साधिका बोलते हैं तब प्रथम पाठ करते और रुक कर कहते हैं कि हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक और सर्वव्यापक हैं। पुनः - **ओ३३३म् सर्वव्यापक।** हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक और सर्वव्यापक हैं। कुछ विस्तार करना हो तो वे बोलते है - हे ईश्वर! जहाँ मैं हूँ, जीवात्माएँ हैं वहाँ पर आप विद्यमान हैं और जहाँ जीवात्माएँ नहीं हैं वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं। जहाँ सृष्टि है वहाँ पर आप विद्यमान हैं और सृष्टि जहाँ नहीं है वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं। प्रकृति जहाँ पर है वहाँ आप विद्यमान हैं और जहाँ पर प्रकृति नहीं है वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं। अब विराम॥

४३ आत्मनिरीक्षण

प्रश्नोत्तर : आषाढ़ कृ. ७/२०६०-२०/७/०३

हाँ जी! अब आप-अपने आत्मनिरीक्षण सुनाएँगे।

स्वामी जी - वृत्ति उभरने-उभारने में जो त्रुटि आई, वहाँ आपने क्या भूल की थी?

साधक ५ - स्वामी जी! उसमें धारणा की स्थिति ठीक नहीं बन पाई। उसमें कुछ बाधा आई।

स्वामी जी - जो बाधा आई वह क्या थी?

साधक ५ - वह वायु का कुछ प्रभाव था। जिसके कारण धारणा नहीं बन पाई।

स्वामी जी - आपको थकान जैसी स्थिति हो, तब पुनः आप से न सुनें।

साधक ८ - सुनाता हूँ, स्वामी जी!

स्वामी जी - हूँ।

साधक ८ - शारीरिक बाधा के कारण प्रातःकाल की उपासना अच्छी नहीं रही। सायंकाल की उपासना बहुत अच्छी रही। दिन में स्वाध्याय, निदिध्यासन, प्रलयावस्था के सम्पादन की बहुत अच्छी स्थिति रही। सायंकाल को बिना परीक्षा के एक असत्य बोला।

स्वामी जी - वह क्या बोला?

साधक ८ - उन्होंने मुझसे ईसबगोल के लिए पूछा था कि आपके पास है क्या? मैं प्रायः अपने पास रखता हूँ। पर जब देखा तो प्राप्त नहीं हुआ।

स्वामी जी - आपने यह कह दिया कि 'है'।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– हाँ जी !

स्वामी जी – तो क्यों कहा वैसा ?

साधक ८– मेरे को यह संस्कार था कि थैले में होगा ही, पर जब देखा तो पता चला कि वहाँ है ही नहीं।

स्वामी जी – आपको संशय नहीं हुआ कि कभी मैं 'हाँ' बोल दूँ और नहीं हो ?

साधक ८– यह विचार नहीं आया।

स्वामी जी – तो उसको रोकने के लिए यदि परिपक्व-ज्ञान न हो तब संशयात्मक ज्ञान हो तो देखना, विचारना पड़ता है और ऐसे बोलना पड़ता है कि मैं देखता हूँ, होगा तो आपको दे दूँगा।

साधक ८– ठीक है जी ! आगे से ऐसा ही प्रयोग करूँगा।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे ?

साधक ७– भगवन् ! आपकी असीम कृपा और आशीर्वाद से उपासना अच्छी रही। कभी-कभी मेरी उपेक्षा से, प्रमाद से मेरा मन हरियाणा में चला जाता है।

स्वामी जी – अच्छा !

साधक ७– तब पुनः वहाँ बात करने के पहले ही उसको समझा दिया जाता है। कहा जाता है – यह भावना बना ले मत कर बुरा किसी का। ओम् नाम गाले....। यह जिन्दगी बना लें, पैगाम है इसी का।

स्वामी जी – आपने जो मन को समझाने की बात कही, तो क्या वह कोई चेतन पदार्थ है जो उसको समझाते हैं ? चेतन को तो समझाना संगत है।

साधक ७– मेरे प्रमाद से चला गया। जब समझाया तो आ गया।

स्वामी जी – नहीं। समझाने का दृष्टान्त देना अशुद्ध है।

साधक ७– अच्छे काम में अपने मन को समझाना चाहिए।

स्वामी जी – आपने असावधानी से उसको चला दिया। अब आप कहेंगे कि असावधानी से मन को चला दिया। पुनः जब पता लगाया तब झट से रोक दिया। यदि ऐसा बोलने का अभ्यास नहीं बनाते हैं तो मन को चेतन मानने वाले पिछले संस्कार आपका पीछा नहीं छोड़ेंगे।

साधक ७– जी !

स्वामी जी – हाँ। जो संध्या करवाई जाती है या योग-प्रशिक्षण दिया जाता है या जहाँ ध्यान की बातें होती रहती हैं वहाँ प्रशिक्षण में एक बहुत बड़ा दोष रहता है। वहाँ यह नहीं सिखाया जाता कि हम आत्मा चेतन पदार्थ हैं और मन-इन्द्रियाँ, सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर ये सब चौबीस तत्त्व जड़ पदार्थ हैं। आत्मा मन को चलाता है, न कि मन स्वतः आता-जाता है। ऐसा प्रशिक्षण न होने से बीस, तीस, चालीस वर्षों में भी व्यक्ति मन को आधा मिनट रोक नहीं सकता।

एक तो व्यक्ति के अन्दर यह विचार सदा उपस्थित रहना चाहिए कि मैं शीघ्र से शीघ्र, विवेक-वैराग्य, अभ्यास को प्राप्त करके समाधि अवस्था में चला जाऊँ। इस तीव्र इच्छा के कारण व्यक्ति अधिक प्रयत्न करता है और उसकी शक्ति अपने लक्ष्य की प्राप्ति में अधिक मात्रा में लगती है। जब तीव्र जिज्ञासा, इच्छा से व्यक्ति समाधि को प्राप्त करना चाहता है तब उसका बल, शक्ति, समय उस ओर लगने से जो विरोधी कारण अविद्या, कुसंस्कार, व्यवहार में यम-नियमों के विपरीत कुछ बातें करना-कराना, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि दोष होते हैं, वे पर्याप्त मात्रा

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में उससे रुक जाते हैं। यदि वह इतना उत्साहित होकर तीव्र इच्छा करके पूरा प्रयास नहीं करता तब अविद्या, कुसंस्कार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि; ये अविद्या से जनित वासनाएँ तीव्र रूप में उभरती हैं।

आपने पढ़ा-सुना है, स्मरण होगा जो भाष्यकार ने कहा- **चित्तनदी नामोभयतोवाहिनी वहति कल्याणाय, वहति पापाय च** । यो.द.व्या.भा. १/१२। चित्त रूपी नदी दो क्षेत्रों में बहती है। एक तो पाप के लिए बहती है। जब पाप की ओर बहती है तब पापाचरण करवाती है या व्यक्ति पापाचरण करता है और पुण्य के क्षेत्र में विवेक की ओर बहती है तब व्यक्ति विवेक को प्राप्त कर लेता है। जब व्यक्ति मन को पुण्य के लिए बहा देता है तब पाप के लिए जो शक्ति का लगना, पाप की ओर इच्छा होना, पाप की तरंगे उभर जाना आदि दुर्बल पड़ जाते हैं। जब व्यक्ति ईश्वर के प्रति अधिक श्रद्धा रखता है, अधिक प्रेम रखता है, ईश्वर साक्षात्कार के लिए लालायित रहता है, उस स्थिति में व्यक्ति सरलता का अनुभव करता है। वह सरलता से ईश्वर की ओर चलता है और उसको विपरीत विरोधी जो कारण हैं अविद्या, कुसंस्कार, काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि अधिक बाधित नहीं करते।

इसलिए दर्शनकार ने यह प्रसंग उठाया कि **तीव्र संवेगानामासन्नः** ॥ यो. द.१/२१। जब व्यक्ति अधिक प्रेम से, अधिक प्रयत्न से, अधिक समय तक उपायों को ढूँढ कर उनको अपनाता और विरोधी कारणों को जानता, उनको दूर करता है तब उसके साधन विवेक-वैराग्य, अभ्यास उत्कृष्ट हो जाते हैं और वह शीघ्र समाधि को प्राप्त कर लेता है। यदि आपसे पूछा जाए कि आपमें से किसी के मन में यह बात है कि मैं इसी जीवन में समाधि को प्राप्त कर लूँगा और ईश्वर-साक्षात्कार तक पहुँच जाऊँगा तो क्या यह बात मन में रहती है?

साधक २– स्थूल रूप से तो मन में इच्छा रहती है पर जब अन्दर देखते हैं तो ऐसा नहीं लगता है।

स्वामी जी – हाँ जी! बोलो।

साधक ४– स्थूल रूप से इच्छाएँ शाब्दिक रूप में रहती हैं कि इस स्थिति को प्राप्त करना चाहिए। यही स्थिति सर्वोत्तम है किन्तु जो अन्य लौकिक योजनाएँ बनी हुई हैं, उनको देखते हुए ऐसा नहीं लगता कि ऐसा कर सकेंगे।

स्वामी जी – हाँ जी!

साधक ३– अभी तो मुख्य यही इच्छा रहती है और कोई लौकिक योजनाएँ प्रायः नहीं है। इसी को सिद्ध करने का मुख्य रूप से प्रयत्न जारी है पर कभी-कभी ऐसा लगता है कि भाई! यह बहुत कठिन है। पुरुषार्थ करने के पश्चात् स्थिति उपलब्ध होती है, पुनः छूट जाती है। बहुत कठिन है। पर कोई विकल्प नहीं है। अपने पास जितना भी सामर्थ्य है उससे यही काम करना है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे। कैसी इच्छा, कैसे विचार रहते हैं, मन में?

साधक ५– इसी जीवन में कर लूँगा, ऐसा विचार सामने आता है।

स्वामी जी – क्या आपके मन में, ज्ञान में ईश्वर-प्राप्ति मुख्य लक्ष्य बन चुका है या नहीं बना है।

साधक ५– अभी नहीं बना है, स्वामी जी! व्यावहारिक रूप में, सैद्धान्तिक रूप में तो है।

स्वामी जी – आप बताएँगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– स्वामी जी ! यहाँ आकर अब यह मार्ग स्पष्ट दिखाई देने लगा है। तो अब जितनी शक्ति-सामर्थ्य है, पूरी लगाएँगे। पर ऐसा लगता नहीं कि इस जन्म में पूरा हो पाएगा।

स्वामी जी – यह आभास तो रहता होगा कि उन्नति तो होगी ही या नहीं रहता ?

साधक ८– इतना निश्चित है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ६– अभी कुछ निश्चित योजना तो है पर जैसे पहले एक मात्र यही उद्देश्य था, वैसा नहीं रहा। अब कुछ अन्य योजनाएँ साथ में जोड़ दी गई हैं अर्थात् पहले एक ही उद्देश्य लेकर चलने का प्रयास था। अब उसमें कुछ और जोड़ दिया। इसलिए ढीला पड़ गया।

स्वामी जी – पुनः उसमें आप क्या करेंगे।

साधक ६– इसके लिए वैस ही प्रयास करता हूँ, ऐसी योजनाएँ बनाने का प्रयत्न करता हूँ कि वही लगन या तड़प हो जाए।

स्वामी जी – उसमें आप कारण देख पाएँगे। यह लोकैषणा, वित्तैषणा, पुत्रैषणाएँ जो हैं, वे आपको उस ओर लगने-लगाने में कारण बनी हुई हैं। यह कहो कि लौकिकसुख और सुख-साधन आपका प्रमुख लक्ष्य बनता जा रहा है और यह दुर्बल पड़ता जा रहा है। जहाँ तक मेरी बुद्धि काम करती है, आप सामान्य लोगों को छोड़ दो, विशिष्ट योग्यता वाले धार्मिक, विद्वान्, लेखक, उपदेशक, प्रवक्ता, संस्थाओं के संचालक आदि में से कोई विरला ही ऐसा होगा, जिसका मुख्य लक्ष्य ईश्वर-प्राप्ति करना व कराना हो। यह आप व्यापकरूप से अनुभव कर सकते हैं।

सब जगह यही कारण है जिससे कि उन लेखकों, विद्वानों, संचालकों का निज जीवन और उनके द्वारा जो समाज का जीवन बनना था, वह ढीला पड़ रहा है। जब उनका अपना जीवन ऐसा विशिष्ट नहीं बना जिससे कि वे समाज के सामने आदर्श बनें और समाज को बना सकें तब समाज की यह स्थिति नीचे गिरती-गिरती वहाँ पहुँच गई, जहाँ आश्चर्य होता है। यद्यपि अध्ययन, अध्यापन, उपदेश, लेखन, संस्था-संचालन आदि अच्छे काम हैं पर जब तक व्यक्ति ईश्वर की प्राप्ति को मुख्य नहीं जानता, मानता और लौकिक कार्यों को गौण नहीं मानता तथा सभी कार्यों को ईश्वर-प्राप्ति के लिए नहीं करता तब तक ऊँचे स्तर का अच्छा व्यक्ति कभी नहीं बन पाएगा। बनेगा ही नहीं। वह मान-प्रतिष्ठा, खाने-पीने की वस्तुओं, विविध लौकिक साधन-सुविधाओं आदि की इच्छाओं से घिरा हुआ वहीं चक्कर काटता रहता है।

निन्दा के रूप में नहीं, दृष्टान्त के रूप में कहूँ तो अभी आचार्य नैष्ठिक जी आए थे, उनको ले लो। यद्यपि उन्होंने इस बात को स्वीकार कर लिया। इस आदर्श को अब स्वीकार किया परन्तु व्यवहार अभी भी वैसा ही है। लम्बा काल हो गया, जब हमने उनसे इस कार्य को करने के लिए कहा था। जब दर्शनाचार्य की उपाधि प्राप्त की तब भी हमने कहा - अब पहले से आपकी गति पर्याप्त अच्छी हो गई है, अब आप यहाँ रहकर योगाभ्यास में गति करो, विकास करो। जो सीखा उसको अनुभव का विषय बनाओ। पढ़ाने की इच्छा हो तो पढ़ाते भी रहना। तब उन्होंने बताया कि मैंने योजना बनाई है कि वहाँ जाकर पूरा प्रयास करूँगा। गुरुकुल भी चलाता रहूँगा और अध्यापन आदि करता रहूँगा। सारी व्यवस्था ठीक हो जाएगी। परन्तु उलटा हो गया और परिणाम स्वरूप वे सांसारिक स्तर पर आ गए। ऐसा जब अनुभव करते हैं तब स्वयं बताते हैं कि अब तक वह स्थिति नहीं बन पाई। तो वही एषणाएँ यहाँ काम करती हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ तक परोपकार की बात है। समाज, राष्ट्र का भला करने की बात है। वह मुख्य को मुख्य मानने पर, अपनी योग्यता बन जाने पर अथवा योग्यता बनाते हुए करने पर अधिक उपकार करता है। अयोग्य अवस्था में व्यक्ति को यह भ्रम होता है कि अभी से मैं समाज का कार्य करूँगा तो कार्य अधिक होगा और मेरा प्रभाव भी अधिक होगा। वहाँ पर यह भूल है। आ गया समझ में।

साधक ८– स्वामी जी ! प्रलयावस्था की स्थिति का सम्पादन करने से जो भय लगता है, वह कब तक लगता रहेगा ?

स्वामी जी – नितान्त भय का हटना और मात्रा में भय हटाना, यह भिन्न-भिन्न स्थितियाँ हैं। नितान्त भयरहित स्थिति पर पहुँचने के लिए तो संस्कारों को दग्धबीज भाव करना पड़ेगा। ईश्वर साक्षात्कार कर, लम्बे काल तक, उसका अभ्यास करना पड़ेगा। ईश्वर, जीव, प्रकृति अनादि हैं, इसका अत्यन्त दृढ़ ज्ञान-विज्ञान हो जाना चाहिए। लोक में सुख और सुख-साधन की इच्छा समाप्त हो जानी चाहिए आदि ऐसी बहुत-सी बातें हैं, जिन्हें प्राप्त कर इस स्थिति में पहुँचते हैं कि नितान्त भयरहित अवस्था बनी रहे।

ऊँची स्थिति की तो बात ऐसी है और नीचे वाली स्थितियों में भी भय रहितता आती है। समाधिप्राप्त व्यक्ति जब समाधि में जाएगा तब भय नहीं लगेगा किन्तु उसकी एक सीमा है, समाधि भंग होने पर पुनः भय लगने लगेगा। ऐसे उतार-चढ़ाव, कम-अधिक भय का होना आदि समाधिअवस्था तक होते रहते हैं।

साधक ८– स्वामी जी ! नित्य और अनित्य पदार्थों के साथ जब यथायोग्य व्यवहार करना आ जाएगा तब निर्भयता की स्थिति आ जाएगी ?

स्वामी जी – हाँ ! यह तो उसके साथ जुड़ा हुआ है। जब यथायोग्य व्यवहार करते जाएँगे तब स्थिति आती चली जाएगी। आप जैसे-जैसे यथायोग्य व्यवहार करते जाएँगे, वैसे-वैसे स्थिति ऊँचे स्तर पर सिद्ध होती जाएगी। जैसे कि ईश्वर के विषय में ज्ञान-विज्ञान प्राप्त कर दिनभर व्यवहार काल में प्रणिधान में रहना। सब पदार्थों का स्वामी ईश्वर को मानना। लौकिक पदार्थों को अपना मानकर चलेंगे तब भय लगेगा और ईश्वर का मानकर चलेंगे तब भय नहीं लगेगा।

अब अपने विषय में इतना परिपक्व ज्ञान होना कि वास्तव में मैं जीवात्मा कभी उत्पन्न नहीं हुआ **कारणाभावात् कार्याभावः** । वैशे. १/२/१ । और नष्ट भी नहीं होऊँगा। इसके साथ यह अनुभूति होनी चाहिए कि बहुत अच्छी तरह देखा है कि संसार के सुख और सुख-साधनों में क्षणिक सुख है और उनमें चार प्रकार के दुःख मिश्रित हैं। अतः उनकी मुझे इच्छा नहीं रही। ऐसे सुख व सुख-साधनों की इच्छा भी समाप्त हो जाएगी और स्थिति ऊपर-ऊपर उठती जाएगी। हाँ जी !

साधक ८– स्वामी जी ! यदि कोई व्यक्ति प्रलयावस्था का सम्पादन करता है किन्तु उसका ज्ञान, कर्म और उपासना अशुद्ध है तब क्या वह इस विधान को जानकर स्थिति को सम्पादित कर सकता है ?

स्वामी जी – हाँ ! जब वह उसको आगे बढ़ाता जाएगा तब उसके ज्ञान, कर्म, उपासना सब ऊँचे होते जाएँगे। जो जैसा पदार्थ है उसको वैसा-वैसा जानता जाएगा, तब व्यक्ति के ज्ञान का उत्कर्ष होगा, पुनः कर्म का उत्कर्ष होगा, पुनः उपासना का भी उत्कर्ष होगा। ऐसे ही व्यक्ति ऊपर को उठता है और उसका विकास होता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– स्वामी जी ! कई बार ऐसा होता है हम कोई दायित्व ले लेते हैं और पुनः जब उसमें उलझ जाते हैं तब उसको छोड़ देना चाहते हैं, परन्तु सोचते हैं कि छोड़ देंगे तो लोग क्या कहेंगे ? ऐसी स्थिति में क्या करना चाहिए ?

स्वामी जी – उसके दो विभाग हैं - एक तो लौकिक ढंग का व्यक्तिगत उत्तरदायित्व होता है, दूसरा साधारण कोई समाज सेवा का। तो इसमें पहले को छोड़ सकते हैं परन्तु दूसरा समाजसेवा का कार्य कुछ न कुछ करना ही चाहिए। परन्तु वह सेवा इस रूप में हो कि उससे उपासना आदि बाधित न हो। यहाँ तक तो बिलकुल ठीक है। इसके आगे सामाजिक कार्यों में भी ऐसी स्थिति होती है, व्यक्ति उसमें इतना विस्तार कर देता है कि उपासना आदि के लिए समय ही नहीं निकाल पाता और संसार की ओर प्रगतिशील हो जाता है। ऐसे विस्तार को भी छोड़ सकते हैं। अब विराम॥

४४ यज्ञीयोपदेश

ईश्वर के साथ यथायोग्य व्यवहार : आषाढ़ कृ. ८/२०६०-२१/७/०३

जो व्यक्ति अभ्युदय = लौकिक उन्नति और निःश्रेयस = ईश्वर-प्राप्ति करना और करवाना चाहता है उसे विशेष ध्यान देकर प्रथम इस उद्देश्य को पूर्ण करने वाले जड़ और चेतन सभी साधनों को जानना चाहिए और पुनः उनकी प्राप्ति के लिए गवेषणा करनी चाहिए। उन साधनों की प्राप्ति के पश्चात् उनके साथ उचित सम्बन्ध बनाकर उनका प्रयोग करना चाहिए। यहाँ इस बात का भी ध्यान रखना चाहिए कि जो भी हमारे उद्देश्य को पूर्ण करने वाले साधन हैं उनका न तो दुरुपयोग करना चाहिए और न उनकी उपेक्षा करनी चाहिए।

जैसे कि उन साधनों में एक साधन है ईश्वर। ईश्वर हमारी उन्नति का सर्वश्रेष्ठ साधन है। ईश्वर हमारे दोनों प्रयोजनों अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि में सबसे महत्त्वपूर्ण है। अतः ईश्वर को जानकर उसके साथ यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए। ईश्वर के साथ हमारा माता-पिता, आचार्य, राजा, उपास्य, व्याप्य-व्यापक आदि अनेक सम्बन्ध हैं, जिन्हें हमने बार-बार पढ़ा है, सुना है।

अब आप आत्मनिरीक्षण के साथ बताएँगे कि क्या वे सम्बन्ध बने रहते हैं या टूटे रहते हैं या क्या स्थिति रहती है ? क्या उन सम्बन्धों के आधार पर उचित व्यवहार करते हैं ?

साधक २– सम्बन्ध बनाना भारभूत लगता है। उसके प्रयास में रुचि नहीं होती है।

स्वामी जी – जो कोई लौकिक व्यक्ति आपको सब कुछ देता हो, आपके ऊपर हजारों रुपयों का व्यय करता हो, क्या उसको स्मरण करने में आपको रुचि नहीं होती है ? क्या उससे सम्बन्ध बनाने में ऊबते हैं ? उससे सम्बन्ध रखने में कठिनाई होती है ? यदि नहीं तो ईश्वर के साथ ऐसा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्यों करते हैं? यदि ईश्वर के साथ इस प्रकार की बात मन में रहती है तो इसका अभिप्राय हुआ जो ईश्वर हमारे हित के लिए सर्वदा उद्यत है, जिसने सारे साधनों को उपस्थित किया है, उसको नहीं मानते हैं। ठीक है, सृष्टि का रचयिता है आदि सामान्य रूप में मान लेते हैं परन्तु वैसा प्रभावकारी नहीं मानते हैं जैसा कि अन्य लौकिक ऐश्वर्य सम्पन्न व्यक्तियों को मानते हैं। लोक में कोई अच्छा स्वभाव वाला व्यक्ति है या जिससे कुछ पढ़े-लिखे हैं, उनका जितना उपकार मानते हैं, उनकी जितनी सेवा करते हैं, उनका जितना सम्मान करते हैं, ईश्वर को उतना नहीं मानते हैं। ईश्वर के साथ उस स्तर पर व्यवहार नहीं करते हैं।

इस अवस्था में ऋषियों की बातों को पकड़कर गहराई में जाएँ। जैसे कि ऋषि ने कहा - सबके साथ प्रीतिपूर्वक यथायोग्य व्यवहार करना चाहिए, तो इसकी सूक्ष्मता को समझें अर्थात् जिसका जो स्तर है उसके साथ उसी स्तर का व्यवहार करना चाहिए। पहले उसके विषय में ठीक प्रकार से जानने का प्रयास करें, अन्यथा किसी वस्तु से सम्बद्ध ज्ञान में त्रुटि रही तो उसका उचित उपयोग नहीं ले सकेंगे। लौकिक सुख या मोक्ष की प्राप्ति में कौन-सा पदार्थ कितना साधक या बाधक है; व्यक्ति इसको प्रायः नहीं जान पाता। इस स्थिति में उससे उचित व्यवहार भी नहीं कर पाता है। व्यक्ति में ईश्वर के विषय में भी प्रायः यह दोष विद्यमान रहता है। यदि वह इस दोष को हटा दे तो ईश्वर के साथ उचित व्यवहार कर सकेगा। उचित व्यवहार करने पर ईश्वर की सहायता से दोनों प्रयोजन सिद्ध हो सकेंगे।

आप तुलनात्मक अध्ययन करें तो ज्ञात होगा कि ईश्वर हमारा जितना रक्षण, पालन, उपकार करता है, उतना जन्म देने वाली माता भी नहीं कर सकती, न किया है। इतना ही नहीं माता-पिता भी जितना उपकार करते हैं वह अपने सामर्थ्य से नहीं, अपितु ईश्वर के सामर्थ्य से ही कर पाते हैं। माता अपनी संतान के लिए जीवन लगा रही है, व्यक्ति केवल इतना ही देखता है, परन्तु पूर्ण रूप से इस बात पर ध्यान नहीं देता कि वह इतना सब अपने सामर्थ्य से कर रही है या उसके साथ ईश्वर का सहयोग जुड़ा हुआ है? ध्यान देने पर पता चलता है कि माता जो कुछ आवश्यक कार्य भोजन-पान, पालन-पोषण आदि कर रही है वह सब ईश्वर की तुलना में नाममात्र का है। यद्यपि माता का जितना योगदान है उतना मानना ही चाहिए, यह बात ठीक है, किन्तु शेष योगदान ईश्वर-प्रदत्त समझना चाहिए। जब इस प्रकार माता या अन्यों के उपकारों की ईश्वर के उपकारों से तुलना करते हैं तब यथार्थ बोध होता है, पुनः ईश्वर के साथ यथायोग्य व्यवहार होता है।

ज्ञान के क्षेत्र में ध्यान दें। क्या ईश्वर हमारे उचितानुचित व्यवहारों को नहीं जानता है? जानता है, परन्तु प्रायः व्यक्ति के मस्तिष्क में यह बात रहती है कि ईश्वर हमारे उचितानुचित व्यवहारों को नहीं जानता है। इसका परिणाम होता है कि ईश्वर के साथ हमारा यथायोग्य व्यवहार नहीं हो पाता है और हम दण्ड के भागी होते हैं। इस विषय में यह जानना चाहिए कि ईश्वर हमारे मन में विचार उत्पन्न होते ही जान लेता है और उसका निर्णय होते ही फल का निमित्तक कर्म के रूप में स्वीकार कर लेता है। हम ऐसा नहीं जानने के कारण मन में उलटे-सीधे विचार करते रहते हैं और प्रायः अनुचित निर्णय लेकर मानसिक पाप करते जाते हैं। अतः जो-जो बात, व्यवहार, ज्ञान, कर्म, उपासना ईश्वर के अनुकूल हों उन-उन को हमें ग्रहण करते रहना चाहिए और जो-जो ईश्वर के विरुद्ध बात, व्यवहार, ज्ञान, कर्म, उपासना हैं उनको छोड़ते जाना चाहिए।

अब ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना का प्रयोग करेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आप अधिकारपूर्वक शरीर में धारणा का निर्वाचन करके स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने का प्रयास करेंगे।

अब स्थूल प्रयोग करेंगे। अब आर्य समाज के द्वितीय नियम का प्रयोग करेंगे। आप यह मत मान लेना कि हम सब जानते हैं। व्यवहार के बिना सब अज्ञात ही रहता है। जितना बोल सकते हैं बोलें, शेष सीखने का प्रयत्न करें। उच्चारण के साथ-साथ अर्थ न हो पाता हो तो करके देखें। अब विराम ॥

४५ क्रियात्मक योगाभ्यास

विक्षेपनिवारण : आषाढ़ कृ. ८/२०६०-२१/७/०३

अब हम अघमर्षण मन्त्रों से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। क्या इन मन्त्रों का अर्थ आपको कुछ स्मरण है अथवा नहीं? यह पंखा भी अधिक ध्वनि करता है, इसको कम करने के लिए इसमें कुछ लगाएँ या क्या कर सकते हैं?

साधक – दो पर चल रहा है, इसको एक पर कर सकते हैं।

स्वामी जी – कम कर लोगे। करके देखो! पुनः तो ठीक हो जाएगा ...।

ओ३म् ऋ तञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः ॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी ॥
सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ऋ१०/१९०/१-३।

अब आप धीरे-धीरे **ऋ तञ्च ...** का अपनी इच्छा के अनुरूप मानसिक प्रयोग करके देखें और यदि साथ-साथ अर्थ होता है तब साथ-साथ करें, नहीं होता तब शान्ति से पाठ करें और पुनः एक-एक शब्द का अर्थ करें।

आप उपासना कर रहे है। संध्या के मन्त्रों का प्रयोग कर रहे हैं और विधि-विधान के अनुरूप आप मन्त्रों को लेकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर रहे हैं। अपना सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ने का प्रयास करेंगे और असावधानी से या किसी कारण से जो वृत्तियाँ उभार ली जाती हैं, उनको रोकते जाते है। आरम्भ करेंगे। पहले **ऋ तञ्च ...** मन्त्र का करेंगे।

प्रयोग आरम्भ – समय ५ मिनट लगभग।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप रुकेंगे। इसके अर्थ का आपको परिज्ञान कैसा है, यह आप सुनाएँगे –

साधक ७ – ऋ तञ्च ।

स्वामी जी – थोड़ा और ऊँचा बोलना।

साधक ७– ऋ तञ्च वेदों का **सत्यञ्च** कार्य जगत् को परम पिता परमात्मा ने वेदों को उत्पन्न किए, कार्य जगत् को उत्पन्न किया। अपने सामर्थ्य से ....।

स्वामी जी – अब आप इसी मन्त्र के एक-एक शब्द का अर्थ सुनाएँगे –

साधक ६ – ऋ तञ्च वेद ज्ञान **सत्यञ्च** कार्य जगत् **अभीद्धात्** ईश्वर की ज्ञानमय **तपसः** सामर्थ्य से **अजायत** उत्पन्न हुआ। **ततो** उसके पश्चात् **रात्र्यजायत** प्रलय रूपी रात्रि आदि उत्पन्न हुए। **ततः समुद्रो अर्णवः** पृथ्वी पर उपस्थित समुद्र और आकाश में उपस्थित जल उत्पन्न हुए।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे इस मन्त्र के एक-एक शब्द का अर्थ।

साधक ५ – ऋ तञ्च सत्यञ्च वेद ज्ञान को और रचित कार्य जगत् को **अभीद्धात् तपसः अध्यजायत** अर्थात् ज्ञान में सामर्थ्य से ईश्वर ने इन दोनों ...को उत्पन्न किया। **ततो रात्र्यजायत** और उसी ज्ञानमय सामर्थ्य से रात्रि अर्थात् प्रलय रूप रात्रि को उत्पन्न किया। **ततः समुद्रो अर्णवः** और उसी ज्ञानमय सामर्थ्य से पृथ्वी में स्थित समुद्र और अन्तरिक्ष में समुद्र को उत्पन्न किया।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक ४– ऋ तञ्च अर्थात वेद ज्ञान को **सत्यञ्च** और इस कार्य जगत् को **अभीद्धात् तपसः** अपने ज्ञानमय सामर्थ्य से **अजायत** ईश्वर ने उत्पन्न किया। **ततो रात्र्यजायत** उसके पश्चात् अथवा उसी ज्ञानमय सामर्थ्य से प्रलय रूपी रात्रि को भी परम पिता ने उत्पन्न किया। **ततः समुद्रो अर्णवः** उसके पश्चात् उसी ज्ञानमय सामर्थ्य से पृथ्वी पर स्थित जल राशि और अन्तरिक्ष में स्थित जल राशि परमपिता ने उत्पन्न की।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक ३– ऋ तञ्च वेद ज्ञान **सत्यञ्च** उत्पन्न जगत् **अभीद्धात् तपसः** ईश्वर के अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से **अजायत** उत्पन्न हुआ। **ततो रात्र्यजायत** उसी ईश्वर के अनन्त ज्ञानमय सामर्थ्य से प्रलय रूपी रात्रि उत्पन्न हुई। **ततः समुद्रो अर्णवः** उसी प्रकार के सामर्थ्य से पृथ्वी पर स्थित समुद्र और आकाशस्थ महासमुद्र उत्पन्न हुआ।

स्वामी जी – हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे।

साधक २– ऋतं ऋग्वेदादयः चत्वारो वेदाः, सत्यं कार्यं इदं जगत् सृष्टिः, अभीद्धात् सत्येश्वरस्य ज्ञानमयात् तपसः आन्तरिक सामर्थ्यात् अजायत उत्पन्ना। ततः ईश्वरादेव समुद्रो पृथिवीस्थं जलसमुदायं अर्णवः आकाशस्थं जलसमुदायं च अजायत उत्पन्नम्।

स्वामी जी – ध्यानकाल में आप इनका अर्थ कैसे कर पाए, क्या स्थिति रही ? आप बोलेंगे-

साधक ४– भावरूप में शब्दों का अर्थ रहा और ईश्वर को सम्बोधन करने की स्थिति सामान्य रही। अच्छे स्तर की नहीं रही।

स्वामी जी – आप जब ईश्वर को सम्बोधन करते हैं तब कभी संशय की स्थिति तो नहीं आती है ? जैसे हम किसी विद्यमान व्यक्ति या विद्वान् को सम्बोधित करते हैं तो वह व्यक्ति आँखों से प्रत्यक्ष दिखाई दे रहा होता है। अतः उस पर कोई संशय नहीं होता। किन्तु ईश्वर तो दिखाई नहीं देता और उसको सम्बोधित करते हैं तब वह पूरा-पूरा जंचता है या नहीं ? ऐसे संशय होता है या अनुमान-प्रमाण से शत-प्रतिशत ईश्वर को स्वीकार कर लेते हैं। हाँ जी !

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ४– संशय नहीं होता है।

स्वामी जी – हूँ। उसमें ध्यान से बोलेंगे। एक स्थिति है अनुमान-प्रमाण, शब्द-प्रमाण से संशय रहित अवस्था का होना और दूसरी स्थिति है व्यक्ति का ज्ञान संशय से युक्त होना। दोनों में से कौन-सा रहता है?

साधक ६– संदेह रहता है।

स्वामी जी – जैसे कि ओम् ऋतं च हे ईश्वर! आपने ही वेदों का ज्ञान दिया। आपसे ही वेद अभिव्यक्त, प्रकट हुए। यह सम्बोधन किया जा रहा है। उस समय क्या ऐसा तो नहीं लगता कि मैं जिस ईश्वर को सम्बोधित कर रहा हूँ वह पता नहीं, है या नहीं? आपको ऐसे देखना है।

साधक ६– नहीं। ऐसा तो नहीं है।

स्वामी जी – हाँ जी! आपको कैसा दिखता है? या आपने इस ओर कभी ध्यान ही नहीं दिया।

साधक ५– जैसा विश्वास व्यवहार में होता है कि वह सामने बैठा है, उसको सुना रहा हूँ ऐसा विश्वास कभी-कभी होता है। प्रायः उतना विश्वास नहीं बनता।

स्वामी जी – अपने अध्ययन के अनुसार इन्होंने बताया कि जैसे लोक में पिताजी, गुरुजी सामने बैठे हों और हम उनको सम्बोधित करते हैं तब उन पर जिस स्तर का विश्वास होता है वैसा ईश्वर पर कभी तो होता है और प्रायः नहीं होता है। अब आप सुनाएँगे –

साधक २– सम्बोधन की स्थिति प्रत्यक्ष वस्तु जैसी नहीं रहती है कभी भी। हर समय परोक्ष मानकर शब्दों से, अनुमानों से सिद्ध है, इसलिए मुझे भी ऐसा ही प्रत्यक्ष होना ही चाहिए। इस प्रकार की वृत्ति बनाकर किन्तु परोक्ष मानकर ही सम्बोधन करते हैं।

स्वामी जी – हाँ! ईश्वर के विषय में दोनों स्थितियाँ हैं। एक तो जिसको हम प्रत्यक्ष बोलते हैं, वह स्थिति समाधि में आती है। दूसरी समाधि से पूर्व की स्थिति है, वह प्रत्यक्ष तो नहीं होती किन्तु अनुमान-प्रमाण या शब्द-प्रमाण से प्रत्यक्ष जैसा ही निर्णय कराती है। इसलिए शब्द-प्रमाण में जैसा लिखा है व अनुमान-प्रमाण से जैसा सिद्ध होता है, वैसा ही हमारी बुद्धि में पूरी तरह से बैठना चाहिए। ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान्, सर्वव्यापक है, इस बात में हमको संशय न हो और हम यह मानें कि वास्तव में ईश्वर मेरे सम्बोधन को सुन रहा है। ऐसी स्थिति बना लें।

साधक २– वह दृष्टि नहीं रहती है, परीक्षणीय दृष्टि रहती है।

स्वामी जी – हूँ?

साधक २– 'ऐसा हो सकता है' यह परीक्ष्य दृष्टि रहती है। सिद्ध दृष्टि नहीं बन पाती।

स्वामी जी – तो इनका तात्पर्य है कि उस विषय में शत-प्रतिशत निर्णय नहीं है। जब ऐसा दिखता है तब यह दृष्टि बनानी चाहिए कि आर्य समाज के पहले-दूसरे नियम में, स पर्यगात् में, त्र्यम्बकं यजामहे में, अकामः धीरः में और योग-दर्शन आदि में ईश्वर जैसा वर्णित है वैसा ही निर्णीत रूप में शत-प्रतिशत मन में बैठना चाहिए। यदि संशय हो तो अब नहीं करके अर्थात् संध्या से भिन्न काल में बैठकर, उस संशय को पुनः उठाकर, उसका ठीक परीक्षण करके समाधान करना चाहिए।

अब संध्या के अतिरिक्त काल की बात सुना रहा हूँ। आप सन्देह हटाना चाहते हैं। संशय, भ्रान्ति दूर करना चाहते हैं तब ध्यान में बैठ गए और अनुमान-प्रमाण या शब्द-प्रमाण से परीक्षा करने लगे कि ईश्वर न्यायकारी है। अच्छा! न्यायकारी है, शत-प्रतिशत न्यायकारी है तो इसमें क्या प्रमाण है?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब इस ओर ध्यान दिया कि मनुष्य, पशु, कीट-पतंग के शरीरों की जो रचना है और उनमें भी मनुष्य का शरीर कितना अच्छा, उत्कृष्ट है। कैसी बुद्धि है हमारी ! हम कितना विकास करते हैं ! वैज्ञानिको ने आकाश-पाताल की खोज की और इधर ऋषि लोग कहते हैं समाधि होती है, ईश्वर का साक्षात्कार होता है। मनुष्य तो इतनी गवेषणा करता, परन्तु कुत्ते, गधे आदि के शरीरों में यह स्थिति कभी भी देखने को नहीं मिलती। यह बिना न्याय-व्यवस्था के हो नहीं सकता। व्यक्ति ऐसे उत्तर निकालता है।

मनुष्य और पशु आदि शरीरों में जो यह आकाश-पाताल का अन्तर है, भेद है; यह क्यों ? एक तो रचना और रचना में भी मनुष्य शरीर की विशेषता, उसकी विविधता, विचित्रता, उसका विकास, उसके सुख व सुख के साधन विशिष्ट क्यों हैं ? देखो ! मनुष्य भी खाता-पीता, बच्चे पैदा करता है और गधा भी खाता-पीता, बच्चे पैदा करता है। बकरी, चूहा भी खाते-पीते और बच्चे पैदा करते हैं किन्तु मनुष्य बहुत विकास कर सकता है, वे कुछ नहीं कर सकते। यह व्यवस्था स्वयं तो हो ही नहीं सकती; यहाँ तक आपको सिद्ध करना पड़ेगा।

ये जो मनुष्य के, चूहे के शरीर हैं, ये अपने-आप नहीं बन सकते हैं। यद्यपि आपको इसी में सन्देह होगा और इसी की परीक्षा करनी पड़ेगी। आप इस पक्ष में चले जाएँगे कि रचना स्वतः होती है। परन्तु प्रकृति सत्त्व, रज, तम स्वयं संसार की रचना कर ले, इस बात को बुद्धि मानती नहीं, चाहे कितना ही बल लगाइए। आप किस परिणाम पर पहुँचे, पता नहीं।

साधक ३— अपने-आप रचना हो सकती है, यह बात सर्वथा बुद्धि में नहीं बैठती।

स्वामी जी — यह तो निर्णय हो गया कि रचना स्वयं नहीं हो सकती किन्तु एक विकल्प हो सकता है कि मनुष्यों ने मिलकर रचना कर ली हो। विकास होते-होते सब जीवात्माएँ मिलकर कर लेते हों ? इसका समाधान करना होगा कि जीवात्माओं का जो शरीर है, इसकी पहले रचना हो और पुनः जीवात्मा विचार करे, पुनः बनाने की बात आएगी। क्या समझ में आया ? जीवात्मा कोई रचना करता है तो पहले उसका शरीर स्वस्थ-बलवान् होना चाहिए। नस-नाड़ियाँ ठीक होनी चाहिएँ क्योंकि सद्यः उत्पन्न हुआ शिशु भी कुछ नहीं कर पाता। इससे यह बात आई कि वर्त्तमान में सारे जीवात्माओं की जब इतनी शक्ति-सामर्थ्य है तो जब यह सृष्टि नहीं बनी थी तब वे क्या कर सकते होंगे। प्रलयावस्था में जीवात्मा रचना के विषय में क्या सोच पाते होंगे ? पड़े-पड़े सोच सकते हैं क्या ? नहीं सोच सकते। वस्तुतः उनको कोई अता-पता नहीं होता कि वे कहाँ पड़े हैं।

जीवों की स्थिति तो बिना शरीर के ऐसी रहती है और हमारे शरीर के साथ-साथ यदि सूर्य, चन्द्रमा, अग्नि आदि न हों तो हम एक मिनट भी जी नहीं सकते। बाहर ये जो अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि हैं, ये सब मिलकर, अनुकूल होकर हमारी रक्षा कर रहे हैं। जैसे यदि हम चन्द्रमा पर जाएँ और अपने साथ ऑक्सीजन न ले जाएँ तो वहाँ मर जाएँगे। यहाँ पृथ्वी पर हमारा जीवन सुरक्षित इसलिए है कि यहाँ अग्नि, पानी, वायु आदि विद्यमान हैं। सबको मिलाकर हमारे शरीर को जीवित रखा जा रहा है। यदि यह व्यवस्था न हो तो हमारा शरीर सुरक्षित नहीं होता। कोई खोज नहीं हो सकती। थोड़ी देर के लिए भी हम कुछ नहीं सोच सकते। तत्काल हमारा शरीर मर जाएगा।

आज वैज्ञानिक ईश्वर को माने या न मानें परन्तु वे ईश्वर की सहायता के बिना एक तिनका भी नहीं खोज सकते। उनकी जो गवेषणा होती है, वह ईश्वर की सहायता से ही होती है। इस प्रकार हमने अपने पक्ष को सिद्ध किया कि मनुष्य स्व शरीरों या सृष्टि की रचना नहीं कर सकते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि यह पक्ष उठता है कि रचना की बात छोड़ो। पहले कुछ नहीं था। अभाव से भावात्मक संसार उत्पन्न हो गया। सूर्य भी अभाव से भाव बन गया। अकस्मात् सब कुछ बन गया। अतः यह विचार करने का अवसर ही नहीं रहा कि ईश्वर ने संसार बनाया या नहीं बनाया। तो इसका भी समाधान होगा कि अभाव से भाव कभी हो नहीं सकता। अतः यह बात भी नहीं जंचती।

अब एक और पक्ष आता है कि यह सृष्टि अनादि काल से बनी-बनाई एक के पीछे दूसरी चली आ रही है। ऐसे ही यह सृष्टि अनादि, अनन्त है। परन्तु उत्पत्ति के कारण सृष्टि के पदार्थ अनादि नहीं हो सकते तथा क्षीण, नष्ट आदि अवस्था भेद होने के कारण नित्य नहीं हो सकते। इस प्रकार यह पक्ष भी खण्डित हो जाता है ।

तब हम इस निष्कर्ष पर पहुँच जाते हैं कि इन सारे पक्षों के असिद्ध होने से यही पक्ष सिद्ध होता है कि कोई विशेष अद्भुत व्यक्ति है जिसमें अनन्त ज्ञान, बल है और वह बुद्धिपूर्वक इस संसार की रचना करता है। रचना करने वाला जब रचना को करता है तब उसने बिल्ली, चूहा, गधा, मनुष्य बनाया तो किसी निमित्तपूर्वक ही ऐसा बनाया।

हम यह सिद्ध कर रहे हैं कि ये जो भिन्न-भिन्न रचना, साधन, विकास व सुख आदि हैं, इनका आधार ईश्वर है। इस प्रकार अनुमान-प्रमाण के आधार पर सोचते हैं तो हम उस स्थिति में चले जाते हैं कि वास्तव में ईश्वर है और वह न्याय करता है। अब हमको ईश्वर दिखाई नहीं देता, प्रत्यक्ष नहीं है तो भी कोई बात नहीं। अनुमान-प्रमाण से हम ऐसी स्थिति में चले जाएँगे कि ईश्वर है, इसके साथ ही वह कैसा है? उसका लक्षण क्या है? प्रमाणों से विचार करने पर इन दो विषयों में निर्णय हो जाता है कि ईश्वर है और ऐसा ही है। समझ में आया या नहीं आया?

साधक १ – उपासना काल में धारणा प्रदेश में ईश्वर को उपस्थित मानकर जब उपासना करते हैं तब कभी-कभी ऐसा लगता है कि मैं ईश्वर को एकदेशी मान रहा हूँ।

स्वामी जी – हूँ।

साधक १ – पुनः शब्द-प्रमाण से उसको सर्वव्यापक स्वीकार करते हैं। किन्तु धारणा प्रदेश में ऐसा लगता ही है कि मैं एकदेशी मानकर उपासना कर रहा हूँ। इसके निवारण के लिए कुछ उपाय बताएँ।

स्वामी जी – उसके लिए यह उपाय है कि जब आप एकदेशी मानकर प्रार्थना या उपासना कर रहे हैं और आपको लग रहा है कि मेरी यह मान्यता अशुद्ध व अनुचित है तो इस अशुद्ध ज्ञान को ही हटा देना चाहिए। यदि संशय है तब भी ठीक नहीं। वह भी हटाने योग्य है। जैसे कि आपको ऐसा प्रतीत हुआ मैं एकदेशी मान रहा हूँ तो क्यों मानू? मैं तो शब्द-प्रमाण के आधार पर सर्वदेशीय मानकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करूँगा। एकदेशीय का जो संशय हुआ, वह आपने स्वयं व्यक्तिगत उठाया है। अतः उसको हटाने का यही उपाय है आप पुनः संकल्प करें ऐसा मैं नहीं करूँगा। पूर्व अशुद्ध ज्ञान के स्थान पर यह शुद्ध ज्ञान लाना पड़ेगा।

साधक १ – नेत्रों को जब खोलकर विचार करते हैं तब तो ईश्वर की सर्वव्यापकता समझ में आती है किन्तु धारणा में जब केन्द्रित रहते हैं तो सर्वव्यापकता की वह स्थिति अनुभव में नहीं आ पाती।

स्वामी जी – उसमें कारण है कि आँख खोलकर देखते हैं तो आपको यह सारी विचित्र सृष्टि दूर-दूर तक दिखती है। इसलिए वह व्यापकता समझ में आती है। जब हृदय देश में केवल ईश्वर को देखने की बात सोचते हैं तब यह सृष्टि दूर-दूर तक नहीं दिखती है। अतः सर्वव्यापकता की वह स्थिति अनुभव में नहीं आ पाती। यह सन्देह उत्पन्न होता है।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– नहीं। वैसी अनुभूति सर्वव्यापकता की नहीं होती।

स्वामी जी – सर्वव्यापक न होकर एकदेशी की होने लगती है।

साधक १– लगभग एकदेशी या थोड़ा-सा ईश्वर, वैसी विस्तृत नहीं रहती।

स्वामी जी – हाँ ! जो यह लगा कि सम्भवतः मैं एकदेशी मानकर कर रहा हूँ; इसका अभिप्राय है संशयात्मक स्थिति है।

साधक १– कहीं मैं एकदेशी मानकर तो नहीं कर रहा हूँ; ऐसा कभी लगता है।

स्वामी जी – हाँ ! तो आप अपने ज्ञान को पकड़ेंगे। क्या करेंगे ?

साधक १– ज्ञान को पकड़ेंगे।

स्वामी जी – आपको समझ में आ रहा है या नहीं ?

साधक २– अर्थात् मैं ऐसा विचार रहा हूँ।

स्वामी जी – हाँ ! ऐसा मैं विचार रहा हूँ, अपने इस ज्ञान को पकड़ेंगे।

साधक १– ऐसा कभी-कभी होता है।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। जब भी वह आएगा तब उसका परीक्षापूर्वक समाधान भी करना चाहिए, करना ही पड़ेगा। यह कोई इतना गम्भीर विषय नहीं है कि इसका समाधान कर नहीं सकते, इसलिए छोड़ दें। जैसे कि शरीर में कितनी नस-नाड़ियाँ हैं, यह हमारे बस की बात नहीं है, छोड़ो इसको। यह ऐसी उलझन नहीं है। तो उस समय यह जो ज्ञान काम करने लगता कि कभी क्या मैं एकदेशी मानकर कर रहा हूँ तब उस ज्ञान को हटा देना चाहिए।

साधक १– किन्तु आँख खोलकर जो सर्वव्यापकता अनुभव में आती है, वैसी धारणा केन्द्र पर क्यों नहीं आती ?

स्वामी जी – वह इसलिए नहीं आती कि अन्तः स्थिति में ईश्वर को एक जगह पर देखने से व्यक्ति के मन में एक ऐसा भाव उत्पन्न होता है कि वह एक छोटा-सा बिन्दु जैसा पदार्थ है। यद्यपि किसी-किसी को यह उभारेगा, सबको नहीं। यह एक कारण है। तो व्यापक को इतना छोटा बिन्दु बनाकर ध्यान करेंगे तो यह बात सामने आएगी कि एक छोटी-सी वस्तु की मैं उपासना कर रहा हूँ।

मान लिया, जब ऐसा आभास होता है तब क्या धारणा बनानी चाहिए ? इसका समाधान है कि ऋषियों ने धारणा बनाकर ईश्वर की खोज करने का विधान किया है। इसमें शब्द-प्रमाण और अनुमान को लेकर खोज करने से हृदय में ईश्वर की उपलब्धि सरलता से होती है। जब यह समाधान हो जाएगा तब ईश्वर सर्वव्यापक, सर्वज्ञ है, इसका निश्चय होगा और एक जगह मन को रोककर उसका ध्यान कर सकते हैं। यदि ईश्वर जितना लम्बा-चौड़ा है, उतने में खोज करेंगे तो ऐसा नहीं कर पाएँगे। क्या समझ में आया ?

साधक २– सब जगह मानकर खोज करेंगे तब ....।

स्वामी जी – वह ध्यान स्थिर नहीं रह पाएगा। वह असम्भव बात है। जैसे कि सब जगह ईश्वर है और यदि हम अपने मन को सब जगह लगाने लगे तो कैसे लगाएँगे ?

साधक ३– जहाँ पर हम हैं, वहीं लगा सकते हैं।

स्वामी जी – नहीं ! देखना यह है, मान लो, कोई दूसरा पक्ष उठ गया कि ईश्वर सब जगह है और ईश्वर का ध्यान सब जगह मन लगाकर करना है तब क्या करेंगे ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– ऐसा लगता है कि दो बुद्धि हैं – प्रथम कि एक जगह ईश्वर है और दूसरी सब जगह ईश्वर है। ऐसा बुद्धिमात्र है।

स्वामी जी – हूँ।

साधक २– तब सभी जगह ईश्वर है, इस बुद्धि का आश्रय लेंगे; तब सब जगह ईश्वर है, यह अनुभूति होगी।

स्वामी जी – हूँ।

साधक २– अब हम सभी जगह जाकर एक-एक वस्तु को देखें, ऐसी अपेक्षा नहीं दिखती है।

स्वामी जी – हाँ तो ?

साधक २– तब केवल बुद्धि से मान लें कि ईश्वर सब जगह है, तब ऐसी ही प्रतीति होगी।

स्वामी जी – हाँ। हम कह रहे हैं कि ईश्वर एक वस्तुतत्त्व है और सब जगह है। उसी ईश्वर के एक देश में अपने मन को लगाकर ईश्वर का साक्षात्कार करने का हम प्रयास कर रहे हैं। इसमें ध्यान देना – ईश्वर वस्तु 'एक' है और सब जगह व्यापक है और आपको व्याप्य और व्यापक के सम्बन्ध में बताया गया है कि आप चेतन जीवात्मा जहाँ हैं। उसी स्थल पर ईश्वर विद्यमान है और जहाँ हम आत्माएँ नहीं हैं.....।

साधक ३– वहाँ पर भी विद्यमान है।

स्वामी जी – वहाँ पर भी है। पुनः हम दूसरे भाग में पूरी सृष्टि को लेते हैं। महत्तत्त्व से लेकर पूरा रचनात्मक जगत्, वहाँ पर ईश्वर है। जहाँ रचनात्मक जगत् समाप्त हो जाता है, वहाँ पर भी ईश्वर है। पुनः सत्त्व, रज, तम कारण प्रकृति जहाँ पर है, वहाँ पर भी ईश्वर है और जहाँ सत्त्व, रज, तम कारण प्रकृति नहीं हैं, वहाँ पर भी ईश्वर है। तो व्याप्य और व्यापक सम्बन्ध को भी हम साथ जोड़कर रखें तो सर्वव्यापक ईश्वर का ध्यान हम एक जगह पर कर सकते हैं, इसमें भी सहायता मिलती है।

यदि कभी मन में आता है कि क्या मैं एक जगह ईश्वर को मान रहा हूँ? तब समझना कि मेरी बुद्धि में एक संशयात्मक ज्ञान आ गया, क्योंकि ईश्वर सर्वव्यापक है, यह ज्ञान पहले से आपके मन में विद्यमान है। अब आप उस ज्ञान के विरुद्ध ज्ञान उठा रहे हैं। इसलिए अब आप अपने ही ज्ञान की परीक्षा करेंगे। यदि एक जगह मानकर करूँगा तो जो स्थिति होगी; सर्वव्यापक मानकर करने पर उससे भिन्न स्थिति होगी। यह दोनों ज्ञान पकड़ में आएँगे। यदि ईश्वर के विषय में सर्वव्यापक ज्ञान आपका काम करता है तो आप सर्वव्यापक मानकर कर रहे हैं; यह ज्ञान आपकी बुद्धि में होगा। यदि ईश्वर का ध्यान एक जगह मानकर करेंगे तब वह ज्ञान आपको दिखाई देगा। पुनः आप एकदेशी ज्ञान को हटाकर सर्वव्यापक ज्ञान को उपस्थित करेंगे।

साधक ७– स्वामी जी ! जैसे परमपिता परमात्मा सर्वव्यापक हैं।

स्वामी जी – सुनो-सुनो ! उनको बोलने दो।

साधक १– एक बार आपने यह बात बताई थी कि धारणा प्रदेश में व्यक्ति ईश्वर को आमने-सामने मानकर उसी पर केन्द्रित रहता हुआ उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करता है और बीच-बीच में ईश्वर सर्वव्यापक है, इस अनुभूति को पक्का करने के लिए बना सकता है। परन्तु वह मुख्य रूप से आमने-सामने लेकर ही चलेगा। ऐसा कुछ मैं आपका भाव समझ चुका हूँ। यहाँ प्रश्न उपस्थित होता है कि हमारा मन एक काल में एक कार्य को ही कर सकता है। इसलिए तब

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या तो व्याप्य-व्यापक अथवा पिता-पुत्र का सम्बन्ध बना पाएगा या सामने मानकर उसी पर केन्द्रित रहता हुआ उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेगा ?

स्वामी जी – हाँ ! वह सब यद्यपि क्रमशः होगा किन्तु मन की आशुगति के कारण पता नहीं चलता। तो ध्यान देंगे कि जिस समय आप यह देखेंगे कि ईश्वर सर्वव्यापक है और मैं उसका ध्यान कर रहा हूँ तब ईश्वर का एक ही गुण हमारे सामने है एकदेशी या सर्वदेशी। यद्यपि शेष सब गुण ईश्वर में विद्यमान हैं किन्तु उनका हम विचार नहीं कर रहे हैं, केवल एक गुण को लेकर विचार कर रहे हैं।

इसी बात से इसका भी निदान समझ लें कि जो आपने यह बात उठाई कि मैं क्या एकदेश में मानकर तो नहीं कर रहा हूँ। इसके सुधार के लिए आपको अपना ही ज्ञान पकड़ना पड़ेगा। यदि आप एकदेशी मान रहे हो तो ज्ञान पकड़ में आ जाएगा कि हाँ ! मैं एकदेशी मानकर कर रहा हूँ और वहीं उसको जानकर मन की तीव्र गति की सहायता से सर्वदेशी ज्ञान को उपस्थित किया जा सकेगा।

साधक १ – वहाँ पर उसे सर्वदेशी मानकर कैसे करेंगे ?

स्वामी जी – यह अलग विषय है हम सर्वदेशी मानकर कैसे करेंगे। इसका एक मोटा दृष्टान्त लेते हैं जैसे कि लोहे के गोले में भट्टे की अग्नि सब ओर से व्यापक है। तब आप, अग्नि लोहे के गोले में कैसे सब ओर से व्यापक है, उसका ध्यान करेंगे।

अथवा थोड़ी देर के लिए वायु को लो। वायु हमारे शरीर में भीतर और बाहर व्यापक है। जब हम इस पर विचार करेंगे तब वायु सर्वव्यापक है, यह बात हमारी बुद्धि में बैठ जाएगी। हम यहाँ वायु के केवल एक अंश को ले रहे हैं कि वह हमारे शरीर के अन्दर-बाहर विद्यमान है। उसमें अन्य क्या-क्या गुण हैं, इसको अभी नहीं छेड़ रहे हैं। इसी प्रकार ईश्वर का भी शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण से ज्ञान होता है कि वह सर्वव्यापक है और उसके विषय में हम विशेष जानकारी, विशेष गुणों को जानने के लिए, विशेष रूप को प्रत्यक्ष करने के लिए प्रयास करें तो निर्णय हो सकता है।

जहाँ तक मुझे समझ में आता है हमारे शरीर में एक और तत्त्व अग्नि भी व्यापक मानी जाती है या नहीं मानी जाती है ?

साधक ३ – व्यापक है।

स्वामी जी – अब अग्नि सारे शरीर में व्यापक है तब हम अग्नि का भी ध्यान कर सकते हैं अर्थात् अग्नि की भी खोज कर सकते हैं। जो शरीर में और बाहर भी अग्नि है, उसकी हम गवेषणा कर सकते हैं। इसी प्रकार आप स्वयं अपने लिए सोचेंगे कि मैं जीवात्मा एक अणु, इतना छोटा-सा कि बाल का एक टुकड़ा, जैसा कि समझाने के लिए बताया गया, उसके इतने-इतने खण्ड करो। इतना छोटा मैं हूँ, मैं एकदेशी हूँ, ईश्वर सर्वदेशी है और जहाँ मैं हूँ वहाँ ईश्वर भी है। अब मैं ऐसे सर्वव्यापक ईश्वर का ध्यान करूँगा और उसके लिए व्यापक बुद्धि बनाकर ध्यान करें।

साधक १ – व्यापक बुद्धि बनाने का क्या अभिप्राय है ?

स्वामी जी – ईश्वर सर्वव्यापक है।

साधक १ – वह धारणा में ही उस बुद्धि को बनाता है।

स्वामी जी – हाँ ! धारणा में यह बुद्धि बनेगी कि वह सर्वव्यापक है। ये जो केन्द्र हमने निर्वाचित किया, उसी में प्रकृति को ले लिया। पूरी सृष्टि को ले लिया। परमाणु आदि किसी को

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं छोड़ा, स्वयं जीवात्मा को भी ले लिया और इन सबमें ईश्वर व्यापक है। ऐसा मानकर धारणा स्थल पर ध्यान करेंगे।

साधक १ – स्वामी जी ! सम्बोधन के समय क्या स्थिति रहती है ?

स्वामी जी – सम्बोधन में वही रहेगी, शब्द-प्रमाण से ईश्वर शत-प्रतिशत सिद्ध है।

साधक १ – आप यह जो आमने-सामने वाली स्थिति बताते हैं, वह कैसे बन पाएगी ?

स्वामी जी – देखो ! यह तो एक शब्द का प्रयोग है आमने-सामने।

साधक ३ – तो चारों ओर अन्दर-बाहर लेना पड़ेगा।

स्वामी जी – यदि आमने-सामने का अर्थ लोक जैसा करेंगे तब भ्रान्ति भी हो सकती है। आप इसको 'सब जगह' अर्थ में लेकर चलें। आमने-सामने तो केवल समझाने के लिए कहा गया है जैसे कि लोक में दो व्यक्ति आमने-सामने बैठें और परस्पर सम्बोधित करते हों। आप यहाँ पर ऐसा करेंगे सर्वव्यापक ईश्वर को सम्बोधित करेंगे और ईश्वर को जो एक देश में देखेंगे वही हमारा आमना-सामना बन जाएगा। क्योंकि सर्वव्यापक मानते हुए हम ईश्वर को सर्वदेश में तो नहीं देख पाते। अतः जिस देश में देखेंगे वही ईश्वर का और हमारा आमना-सामना है। क्या समझ में आया ?

साधक २ – आमने-सामने में जैसे केवल विशेष अनुभूति होती है – हाँ ! हम इससे जुड़े है।

स्वामी जी – हाँ। जिससे हम जुड़ रहे हैं वह सर्वव्यापक है। आपने यह सुना है जब ईश्वर का प्रत्यक्ष करेंगे तब उसका निर्णय एक ही देश से करेंगे कि यह ईश्वर सर्वव्यापक है। वही इसका आमना-सामना है। जैसे कि हे ईश्वर ! आप सर्वव्यापक हैं; हम ऐसा एक ही देश से कर पाएँगे पर उस समय भी ईश्वर हमारी बुद्धि में सर्वव्यापक रहेगा, न कि थोड़े से एक देश में।

साधक ३ – सर्वतोमुख रूप में आमना-सामना होगा ही नहीं।

स्वामी जी – वस्तुतः ऐसा समझाने की दृष्टि से भाषा में कह दिया जाता है। कहीं व्यक्ति यह भूल न कर देवे कि ईश्वर को परोक्ष रूप में मानता रहे। व्यक्ति जो ईश्वर को परोक्ष रूप में मानता है, उसको हटाने के लिए ऐसा कहा जाता है। अभिप्राय है कि जैसे व्यक्ति पिताजी, गुरुजी से आमने-सामने बातें करता है, वैसे ही ईश्वर से करनी चाहिए तथा जब ऐसे बात करे तब वह उसे सर्वव्यापक मानकर बात करे। अब विराम ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४६ ज्ञानखण्ड

प्रलयावस्था : आषाढ़ कृ. ८/२०६०-२१/७/०३

क्या आपकी प्रलयवत् अवस्था बन जाती है? कई बार प्रलयवत् अवस्था बनाने या उसको स्वीकार करने में संशय उत्पन्न हो जाता है। यदि आपमें से भी किसी को ऐसा होता हो तो उसके विषय में कुछ पूछ सकते हैं।

साधक ८– स्वामी जी! आज इस स्थिति को सम्पादित करने के लिए प्रयास करता रहा, उसी प्रक्रिया को दोहराता रहा परन्तु संशय तो उत्पन्न नहीं हुआ किन्तु वह स्थिति भी नहीं बन पाई।

स्वामी जी – पहले कभी बनी भी थी?

साधक ८– हाँ जी!

स्वामी जी – अच्छा! कभी उस स्थिति का बन जाना, कभी न बनना, कभी देर में बनना और कभी उसमें संशय उत्पन्न हो जाना आदि स्थितियाँ स्वाभाविक रूप में बनती रहती हैं। अन्य ज्ञानों की भी यही स्थिति होती है। ईश्वर के विषय में यही होगा। कभी ईश्वर का पक्का परिपूर्ण निर्णय हो जाना, तो कभी न होना और कभी संशय हो जाना। सभी विषयों में हमारा ज्ञान इन भिन्न-भिन्न स्थितियों में रहता ही है।

अब मैं प्रलयवत् अवस्था बनाता हूँ। अब बना ली और मुझे इसके बनाने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। जैसे आपके लिए कठिन है, पकड़ में नहीं आती या बन नहीं पाती, बन जाए तो उखड़ जाती है; ऐसी कोई भी स्थिति हमारे सामने नहीं आती। यह पृथक् बात है कि चोट लग गई, बहुत पीड़ा हो रही हो, रुग्ण हों, बहुत अधिक गम्भीर स्थिति हो गई हो आदि विशेष स्थितियों में प्रलयवत् अवस्था के सम्पादन में कठिनाई हो सकती है। परन्तु जैसे अब स्वास्थ्य की सामान्य स्थिति चल रही है, इसमें कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ता। विशेष घटना होने पर तो प्रयत्न करना पड़ता है और जब भयंकर रोग हो जाए तब तो उसके सम्पादन में विफलता भी हो सकती है। कुछ समझ में आया? शंका हो तो पूछो?

एक और अवस्था – अब आँख खोलकर भी प्रलय की स्थिति को देखूँ अर्थात् किसी भी वस्तु को मैं उसके आकार-प्रकार में न देखना चाहूँ तो कोई कठिनाई नहीं पड़ेगी। जबकि एक नया व्यक्ति जब सबको प्रलय जैसी स्थिति में पहुँचा देता है तब भी उनके चित्र बलात् आते दिखते हैं। जैसे बलात् घुस जाते हों और पूरा बल लगाने पर भी हटते नहीं हैं।

एक दिन एक सज्जन ने यह बात कही कि प्रलयवत् अवस्था तो हम बना लेते हैं किन्तु ललाट के इस ऊपर वाले भाग में कुछ चित्र रूप में रह जाता है और मिटाने पर भी मिटता नहीं है। आपको समझ में आया कि यह चित्र यहाँ पर क्यों रहता है? किसी की भी आकृति यहाँ इस ओर बीच ललाट में रहती है, बाएँ-दाएँ नहीं रहती।

इसका कारण है जैसे पर्वत पर चढ़ते समय मार्ग बनाते जाते हैं तो सबसे ऊपर के शिखर पर थोड़ी-सी बाधा रह ही जाती है। ऐसी ही चित्रों की बाधा रह जाती है। वहाँ कारण रहता है कि व्यक्ति संस्कारवशात् स्वयं को पुनः जीवित कर लेता है। जब पुनः स्वयं को भी मार दे तो चित्र नहीं रहेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात् हमने स्वयं को, सभी सम्बन्धियों को, सभी मनुष्यों को मार डाला। सबको मारते-मारते चारों ओर से समाप्त कर दिया अर्थात् यह नाशवान् है, यह भी नाशवान् है; करते-करते सबको नाशवान् में बदल दिया। अब यह जो हमारी बुद्धि है, वह यहाँ (बीच ललाट में) बनती है अर्थात् हम यहाँ से सबको समाप्त करने की बात सोचते हैं। यही हमारे सोचने का साधन है। यह अवशिष्ट रह जाती है।

अन्य उदाहरण - जैसे कि कोई व्यक्ति नीचे से झाड़-झंखाड़ काटते-काटते मार्ग बनाता हुआ पर्वत पर चढ़ता जाता है और ऊपर चोटी पर जाकर अटक जाता है या आपने पहाड़ों पर सड़कें बनी हुई देखी होंगी, चक्करदार जैसी होती हैं और नीचे से ऊपर तक जाती हैं किन्तु बर्फीली चोटी से नीचे रह जाती हैं। चोटी पर पैदल ही चढ़ना पड़ता है। वहाँ यह थोड़ी-सी कठिनाई रह जाती है, वैसे ही यहाँ विचारों की थोड़ी-सी उलझन रह जाती है।

अच्छा ! पुनः वह उस चित्र-मात्र को समाप्त करना चाहता है। उसके लिए बहुत बल लगाता है परन्तु वह मिटता नहीं है। आपको पता हो कि वहाँ पर वह व्यक्ति अपन-आपको जीवित रख लेता है। इस स्थिति में चित्र में दिखने वाले और चित्र को देखने वाले दोनों की सत्ता दिखाई देती है। इस स्थिति में आकर यदि वह स्वयं को मार देता है तब चित्र नहीं देखेगा। स्वयं भी समाप्त हो जाता है और चित्र भी समाप्त हो जाएगा।

साधक २- स्वयं को कैसे मारा जा सकता है ?

स्वामी जी - स्वयं को वैसे ही मारेगा जैसे पहले यह दृष्टान्त दिया था कि हमने मरे हुए व्यक्ति को देखा, उसका दाह-संस्कार हो गया। उस स्थिति को देखते हुए यह निष्कर्ष निकाला कि निश्चितरूपेण मेरी मृत्यु भी ऐसे ही होगी। हमको मृत्यु से कोई बचा नहीं सकता। अब हमको उसमें कोई सन्देह नहीं रहा।

यदि दृष्टान्त को और निकट लाना हो तो ऐसा विचार करेंगे कि हमारी स्थिति आज ही उस व्यक्ति के समान होने वाली है जिसको आज जल जाना है अर्थात् कुछ काल के पश्चात् आने वाले समय को हमने वर्त्तमान में ही सम्पादित कर लिया। जैसी मरने वाले की स्थिति है वैसी बनाने में कोई कमी नहीं छोड़ी। अपने बाएँ-दाएँ के जो सगे-सम्बन्धी और अपना शरीर था उनको सर्वथा उस स्थिति में ले गया, जहाँ वे नहीं रहेंगे। न मैं और न मेरा कोई सम्बन्धी, मेरे साथ कुछ भी तो नहीं रहेगा। उनको ऐसी स्थिति में ले गया। जब ऐसी स्थिति बन जाएगी तब मन में अनुमान-प्रमाण से अपने शरीर सहित इन सबको परमाणु की स्थिति में मानने में कोई बाधा नहीं रहेगी।

साधक २- जब वह यह विचार करता है कि मेरे शरीर का कोई भाग नहीं बचा तब इससे पहले ही उसकी अपनी अनुभूति समाप्त हो जानी चाहिए थी। इस स्थिति को वह कभी देख ही नहीं पाएगा, जान ही नहीं पाएगा।

स्वामी जी - हाँ ! मैं बताता हूँ। यहाँ पर इस बात का ध्यान रखना है कि हम यह जानते- मानते है कि हमारा शरीर सुरक्षित है, इससे सारे कार्य हो रहे हैं। हम सब सोचते, विचारते हैं; इसका अभाव नहीं हुआ है। इस अवस्था में अनुमान-प्रमाण से केवल अपने-आपको उस स्थिति में ले जा रहे हैं।

सम्पादक - अनुभूति समाप्त तब होगी जब वास्तव में शरीर नष्ट हो जाएगा। अभी तो मात्र विचाररूप में देखा जा रहा है कि उस समय वास्तविक स्थिति क्या होगी।

स्वामी जी - यदि वैदिक रीति से सोचें तो आत्मा को, शरीर को, पुनः इन्द्रिय आदि सबको

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बौद्धिक रूप से पृथक्-पृथक् कर सकते हैं। इसमें भी शरीर को वर्त्तमान स्थिति में रखते हुए परमाणु की स्थिति में ले जाकर देखना चाहें तो अनुमान-प्रमाण से देख सकते हैं।

साधक २ – अनुमान-प्रमाण से जानेंगे।

स्वामी जी – हाँ !

साधक २ – जैसी स्थिति दूसरों की होती है, वैसी होगी।

स्वामी जी – हाँ ! दूसरे व्यक्ति से भी मिलाएगा वह।

साधक २ – वह अपने ही से जोड़कर तो नहीं देख सकता।

स्वामी जी – हाँ ! तो उसमें वह स्वयं और अन्य शरीर आदि सबको अनुमान-प्रमाण से प्रलय जैसी स्थिति में बदल देगा। जब बदल देगा तब वह यह भी चाहेगा कि मैं इसको ऐसे ही बदले रखूँ। यदि उसने बहुत गम्भीरता से विचारा है, बहुत अभ्यास कर चुका है, उसकी स्थिति अच्छी है तो उस स्थिति को वह ठहरा सकता है। कितनी देर तक ठहरा सकता है, यह पृथक् बात है।

एक अन्य बात - यदि उसने विशेष अभ्यास पूर्वक अन्तिम निर्णय नहीं किया है तो सबको मिटाते समय डर वाली स्थिति आएगी। वह लगभग सबकी आती है। किसी को डर की स्थिति कम आएगी और किसी को अधिक; क्योंकि जब यथार्थ में नाश देखता है, मरने पर सारे संयोग वियोग में चले जाते हैं, मित्र चले जाते हैं, परिवार चला जाता है, अपनी धन-सम्पत्ति चली जाती है तब डर वाली स्थिति आती है। जब बहुत अभ्यास हो जाए तब डर नहीं लगेगा, अन्यथा नए-नए व्यक्ति को तो जो डर मरने पर लगता है, वही लगने लगेगा।

डर के कारण एक व्यक्ति इससे हटना चाहता है। वह कहता है जब विनाश होगा तब देखा जाएगा, अभी क्यों निरर्थक इसमें पड़ें। वह अलग स्थिति है परन्तु यह व्यक्ति तो यह देखना चाहता है कि वास्तव में क्या होगा? यह केवल कहानी मात्र नहीं है, दो और दो चार का निर्णय है क्योंकि यहाँ तो वस्तुतः अन्तिम निर्णय करना होता है। अनुमान-प्रमाण से वह करेगा, उसके बिना रह नहीं सकता। निर्णय का इच्छुक व्यक्ति कहता है मुझे पीछे हटने की बात अच्छी नहीं लगती। मैं यह देखना चाहता हूँ कि अन्त में क्या होगा? अन्ततः उसको शत-प्रतिशत जंचता है। निश्चित होता है कि हाँ ! ऐसी स्थिति सब की हो जाएगी।

इसके पश्चात् जो पहले वाले संस्कार थे कि मैं हूँ, संसार चल रहा है; वे संस्कार मर गए हैं, ऐसा नहीं है। वे इस स्थिति के नीचे दब गए हैं। यदि वह व्यक्ति उनको थोड़ा भी अवकाश देता है तो वे तत्काल ज्यों के त्यों उभर जाएँगे और प्रलय की जगह, बना हुआ संसार पूर्ववत् दिखाई देने लगेगा। सब के सब चित्र और सब सम्बन्ध दिखाई देने लगेंगे। स्व-स्वामी सम्बन्ध दिखाई देने लगेंगे।

यदि बहुत अभ्यास करने के पश्चात्, वह जो चित्र मैंने खींचा था कि पर्वतारोही के समान अन्त में अटक जाता है, पुनः विशेष प्रयत्न से ऊपर चढ़ता है। जिसमें सारी सृष्टि को समाप्त कर देने पर अन्त में ऊपर वाले भाग में जो चित्र रह जाते हैं, उनका हमने कारण ढूँढा। यह ऊपर वाले क्यों नहीं हट रहे हैं? तब पता चला कि पहले के संस्कार जो बचे हुए हैं, वही दिख रहे हैं। यदि प्रमाण रूप में सूत्र लगाना हो तो वह है - **तच्छिद्रेषु प्रत्ययान्तराणि संस्कारेभ्यः**। यो.द.४/२७।

भावार्थ - विवेक ज्ञान का प्रवाह, मध्य-मध्य में टूट जाने पर व्युत्थान संस्कारों के कारण विवेक-ज्ञान से भिन्न सांसारिक ज्ञान उत्पन्न होते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे दबे हुए संस्कार बीच-बीच में उभरते हैं और विपरीत ज्ञान को उत्पन्न करते हैं क्योंकि वे एकदम मरते तो हैं नहीं। इस आधार पर उसने ध्यान देकर देखा तो पता चला कि यहाँ देखने वाला तो मैं ही हूँ और दिखने वाले चित्र हैं। तब उन दोनों को अर्थात् दिखने वाले चित्र और देखने वाले स्वयं को समाप्त करता है। अच्छा ! जब समाप्त करता है उस स्थिति में एक ऐसी विचित्र अवस्था दिखाई देती है जैसे आकाश की स्थिति। वैसे ही आकार-प्रकार, रंग-रूप कुछ नहीं दीखता। सब कुछ को समाप्त कर देने की जो स्थिति होती है, वह दिखती है। पुनः ऐसे देखते हुए क्या होता है ?

इसके पश्चात् जहाँ से यह चला था शरीर की नित्यता-अनित्यता को लेकर, वहाँ उसने ईश्वर के विषय में बहुत अधिक विचार किया था। आरम्भ में आपको सुनाया था, याद होगा, वहाँ नित्य-अनित्य के साथ में पूरा मन्थन चलता है कि शरीर किसने बनाया ? माता-पिता ने, मैंने या स्वयं बन गया आदि-आदि। जितने भी पक्ष हैं उन सबको उठा-उठाकर खण्डित करता है और ईश्वर की सिद्धि कर डालता है। ईश्वर ही इसको बनाता है, वही इसका संचालक है, वही इसका स्वामी है। मैं तथा अन्य कोई भी नहीं हैं। इस प्रकार स्वयं व संसार के अन्य लोगों का स्वामित्व हटा देता है। इस प्रकार वह पूरा मन्थन करके, ईश्वर को न मानने वाले सभी पक्षों को खण्डित कर, ईश्वर को सर्वस्व का स्वामी सिद्ध करता है और ईश्वर के प्रति वही श्रद्धा, विश्वास वाली स्थिति रखते हुए ईश्वर की खोज आरम्भ करता है।

अब ध्यान देंगे - यह उसके लिए एक विकट स्थिति होती है। यहाँ से आगे जाता है तो खाली मैदान दिखाई देता है। अब तक उसने ईश्वर के बारे जो कुछ जाना है, वह शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण से जाना है। ईश्वर की कोई अनुभूति उसे नहीं हुई है।

दूसरी ओर उस आकाशवत् अवस्था में पीछे जाता है तो संसार मरा दिखाई देता है। पीछे उसका कुछ भी नहीं बचा। उसके वश की बात नहीं है, बचता ही नहीं। यह तो अच्छी तरह निश्चित हो गया कि कोई भी बचने वाला नहीं है। बच जाने पर पुनः वही खाना-पीना और पहले जैसी मृत्यु। . पुनः मरने पर जो दुःख होता है, वही उसको दिखाई देता है। उसी प्रकार मेरा-तेरा, संयोग-वियोग, काम-क्रोध के आक्रमण, मान-अपमान उसके सामने खड़े हो जाते हैं। संसार के राग और द्वेष उसके साथ जुड़ जाते हैं। लोगों से डर लगता है कि यह ऐसा कहेगा, वह वैसा कहेगा, पागल कहेंगे आदि। पता नहीं कितनी बातें जुड़ जाती हैं। जबकि प्रलयवत् अवस्था में ये काम, क्रोध, लोभ, मोह आदि जो हैं, ये आक्रमण नहीं कर सकते। अतः इस स्थिति को छोड़ना भी नहीं चाहता, उसी को बनाए रखना चाहता है।

अब उसकी ऐसी स्थिति रहती है कि अभी ईश्वर की कोई उपलब्धि नहीं और यदि इस अवस्था को तोड़ता है तो भी बड़े संकट आकर खड़े हो जाते हैं। यहाँ जो शान्ति, बन्धनरहित अवस्था हाथ लगी, वह भी जाएगी। परन्तु ईश्वर के बिना शान्ति नहीं मिल रही हो, वैसी स्थिति बनी रहती है। अतः उसके लिए लालायित हो जाता है। अब क्या करे ? इस स्थिति में ओम् का जप आरम्भ करता है। यह तो पूरा निर्णीत हो गया कि ईश्वर ऐसा है। तो जो नाम निर्वाचित किया, पढ़ा-सुना, समझा, वह ओम् नाम ले लिया और उसका जप करने लगा। ओम् नाम के जप से वह ईश्वर से मिलना चाहता है, ईश्वर के साथ सम्बद्ध होना चाहता है।

ईश्वर के स्वरूप का विवरण जिसने नहीं पढ़ा हो, उसको थोड़ी देर के लिए छोड़ दीजिए। किन्तु जिसने पढ़ा है, चिन्तन-मनन किया है, उसके मन में संस्कार के रूप में वह विवरण रहता है। जैसे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि आपकी बुद्धि में आर्य समाज के पहले-दूसरे नियम, योगदर्शन, स पर्यगात् आदि वेद मन्त्रों से ईश्वर का चित्र खींचा हुआ है। उसी प्रकार वह शब्द-प्रमाण व अनुमान-प्रमाण के आधार पर ईश्वर का स्वरूप लेकर ध्यान के माध्यम से उसकी खोज करता है। ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति उसके सामने चित्र के रूप में आती है।

साधक १ – क्या स्थिति आती है?

स्वामी जी – आपने सुना है भक्ति विशेष? **ईश्वरप्रणिधानाद्वा**। यो.द.१/२३। वहाँ पर भक्ति विशेषात् या क्या पाठ है?

साधक २ – भक्तिविशेषादावर्तित ईश्वरस्तमनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण।

स्वामी जी – अनुकूल बनाया हुआ ईश्वर तम् योगिनम् अनुगृह्णात्यभिध्यानमात्रेण। यह स्थिति सामने आ जाती है।

साधक १ – स्वामी जी! भक्ति का क्या स्वरूप होता है?

स्वामी जी – जैसे हम दृष्टान्त बनाया करते हैं, वैसा होता है।

साधक १ – उस अवस्था में?

स्वामी जी – हाँ! उस अवस्था में जैसे भीड़ में लगभग तीन-चार वर्ष का बच्चा खो जाए तब उसको माता के ऊपर जैसा विश्वास होता है। वह समझता है माँ मिल जाए तो सब कुछ मिल जाए। इस प्रकार वह माँ के लिए लालायित होता है। उसको उस समय कुछ भी अच्छा नहीं लगता - न खाना, न पीना, न खिलौने, न लड्डू। आप जो भी कल्पना करो, उसे कुछ नहीं अच्छा लगता। अब बच्चे को माँ चाहिए, उसके अतिरिक्त कुछ नहीं चाहिए। ऐसे ही यहाँ केवल उसको ईश्वर चाहिए और कुछ नहीं चाहिए। अच्छा! यहाँ आगे बढ़ जाइए। इसको जीना भी नहीं चाहिए। जीवन को भी नहीं चाहता पर ईश्वर को चाहता है। यह भक्तिविशेष है। ईश्वर से इतना प्यार होता है भक्तिविशेष में।

यह दृष्टान्त उस भाव से मिलता हुआ है जिसके लिए कहते हैं - प्राणों से भी प्रिय। उस समय जीना क्या होता है, यह नहीं समझता। उस समय मृत्यु भी इसको ईश्वर की ओर जाने से रोक नहीं सकती। इसको ईश्वर इतना प्रिय लगता है कि उसके समान और कुछ भी अच्छा नहीं लगता।

आपको भी टोक दूँ सत्यनारायण जी! आप कुछ दूर बैठ गए हैं। मैं इसलिए टोकता हूँ कि नींद न आ जाए। आपको कुछ समझ में आए और टोकते रहने से व्यक्ति सावधान रहता है और यह पता चलता है कि वह सुन रहा है। वैसे भी आप कभी-कभी आते हैं।

अब हम इसको पुनः ऋषियों के साथ भी जोड़ेंगे। एक प्रसंग है ऋग्वेदादिभाष्य-भूमिका के वर्णाश्रम विषय के संन्यास आश्रम प्रकरण में। उसका भाव है - **यस्यैका लोकैषणा भवति तस्योभे पूर्वे पुत्रैषणावित्तैषणे भवतः। यस्य चेश्वरैषणास्ति तस्यैतास्तिस्त्रो निवर्त्तन्ते॥** जिस व्यक्ति में लोक = मान की एषणा = इच्छा है उसको पुत्र की भी इच्छा होगी, उसको धन की भी इच्छा होगी। जिसको पुत्र की इच्छा है उसको मान और धन की भी इच्छा होगी। जिसको धन की इच्छा है उसको पुत्र और मान की भी इच्छा होगी, परन्तु जिसको ईश्वर की एषणा होगी उसकी तीनों एषणाएँ नहीं होंगी। उसकी तीनों एषणाएँ शान्त हो जाती हैं। ये महर्षि दयानन्द जी के वाक्य हैं। बस! उसको ईश्वर ही चाहिए। तो आपको भी ईश्वर साक्षात्कार के लिए यहाँ तक आना पड़ेगा। यदि आपके लिए लोक में कोई बात रह गई हो तो आप यहाँ तक नहीं आ पाएँगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– स्वामी जी ! इस आकाशवत् अवस्था में कितना समय रहने के पश्चात् आपको ईश्वर का प्रत्यक्ष हुआ ?

स्वामी जी – वह मुझे स्मरण नहीं है। समय का पता नहीं चला। हाँ ! जहाँ तक अनुभूतियों का प्रसंग है, उसमें तो पहली स्थिति आई थी आकाशवत् अवस्था जो कि बहुत ही अच्छी लगी। बड़ी ही विचित्र थी। जिसमें कोई क्लेश, कोई राग नाम की वस्तु नहीं। मैं सोचने लगा कि यह क्या बात है ! मुझे पता नहीं था कि समाधि की स्थिति कैसी होती है या ईश्वर साक्षात्कार कैसा होता है। मैं तो इस स्थिति का अनुभव कर रहा था। तब मैं परमात्मा नाम का मानसिक जप करता था, बाहर बोलकर नहीं। तो बड़ी विचित्र अवस्था थी और बस ! उससे हटा नहीं जाता था; मेरी यह अनुभूति चल रही थी। पुनः आगे चलते-चलते 'सर्वव्यापक ईश्वर है' की अनुभूति हुई। वह कितने काल में हुई, उसका मुझे पता नहीं।

वहाँ एक यह भी अनुभूति थी। जब मैं ईश्वर के लिए लालायित हुआ, भले ही मैंने सबको मार दिया, पर यह स्वाभाविक ज्ञान मुझे हुआ कि ईश्वर है और सब कुछ उसी का है। इससे पहले एक तो मैंने यह सिद्धि की थी कि सब कुछ का जब मैंने विनाश किया, उस समय पहले मेरे मन में यह बात आई थी कि प्रलय का अभिप्राय है अभाव हो जाना, कुछ भी नहीं रहना। ऐसा मुझे कुछ स्मरण है। पुनः इसका उत्तर मिल गया था कि 'कुछ भी न रहना', यह नहीं हो सकता। इनका रूपान्तर होता है अर्थात् बनना-बिगड़ना, बनना-बिगड़ना; यह प्रक्रिया निरन्तर चलती रहती है।

पुनः यह जो स्थिति थी कि ईश्वर के अतिरिक्त कुछ भी अच्छा नहीं लगता। दूसरी कोई बात ही नहीं, अपितु वह झलक आती थी कि संसार का अभाव हो गया हो; ऐसा दिखाई देता था। वह स्थिति उसमें उभरती है। इसके उपरान्त ईश्वर सर्वव्यापक है, यह अनुभूति हुई। कितने दिनों में हुई, इसका पता नहीं पर उसमें ऐसा लगता है कि ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ ईश्वर न हो। आगे बढ़ो तो उस समय व्यक्ति अपनी सत्ता का भी अनुभव विशेष रूप से नहीं कर पाता। यह स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

साधक १– स्वामी जी ! उस समय अपनी सत्ता को शरीर के रूप में आप लेते थे अथवा जीवात्मा के रूप में ?

स्वामी जी – जीवात्मा के रूप में।

साधक १– उस समय आत्मा के विषय में क्या स्थिति रहती है ?

स्वामी जी – आत्मा के विषय में भी यह स्थिति बनती है कि 'मैं पृथक् तत्त्व हूँ और ईश्वर मुझसे पृथक् है' यह अनुभूति नहीं कर पाता। उस समय ईश्वर का इतना प्रभाव होता है।

साधक १– तो आप उस समय आत्मा को भी मानकर चलते थे अथवा नहीं ?

स्वामी जी – आत्मा को पृथक् से नहीं गिन रहा था। यद्यपि यह अनुभूति हो रही थी कि मैं ईश्वर की स्तुति कर रहा हूँ। यह ज्ञान-विज्ञान काम कर रहा था।

साधक १– मैं आत्मा कर रहा हूँ, यह भाव रहता था या शरीर कर रहा है, यह भाव रहता था ?

स्वामी जी – शरीर का भी, आत्मा का भी; दोनों का बोध रहता था। पर मैं आत्मा हूँ, शरीर नहीं; ऐसी काट-छांट नहीं कर पाता था। अच्छा ! कर भी नहीं सकते थे क्योंकि काट-छांट करते ही 'मैं और मेरे' की स्थिति उत्पन्न होने का संकट था। उधर जो संसार मिटाया था, उसके सामने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आने का भय रहता था। इनको उत्पन्न न होने देना हो तो सबकी सफाई करके चलना अनिवार्य था। मुख्य बात, ईश्वर के अतिरिक्त कुछ चाहिए भी नहीं था। यह ईश्वर-प्रणिधान की ऊँची स्थिति है। ईश्वर-प्रणिधान के भी दो भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। एक तो यह जो समाधि सिद्ध का स्तर है, दूसरा जो यम-नियमों में आया है।

साधक १ – स्वामी जी ! क्या अन्तर दिखता है दोनों में ?

स्वामी जी – इस समाधि सिद्ध की ऊँचाई अधिक है, यह पर-वैराग्य से सम्बद्ध है। वहाँ (यम-नियम) वाला अपर-वैराग्य से सम्बद्ध है।

साधक १ – नहीं समझा।

स्वामी जी – मान लो, आप अपर-वैराग्य में चले गए तो वहाँ जो ईश्वर-प्रणिधान बनेगा, वह मोटे रूप में बनेगा और उसका सम्बन्ध सम्प्रज्ञात समाधि से होता है तथा शब्द-प्रमाण से यह सिद्ध है कि ईश्वर अपने गुण-कर्म-स्वभाव के आधार पर वहाँ भी हमको सहायता देता है।

साधक १ – किस रूप में ?

स्वामी जी – हम ईश्वर की बहुत-सी बातों को मान चुके हैं। जैसे कि ईश्वर को सर्वस्व का स्वामी मानते हैं और उसकी आज्ञा का पालन करते हैं, यम-नियमों का पालन करते हैं। उस समय सम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था में भी जब हम ईश्वर-समर्पण करते हैं, तब वह हमको सहायता देता है।

साधक १ – पुनः सम्प्रज्ञात समाधि में ईश्वर को विषय बनाएँगे ?

स्वामी जी – नहीं ! सीधा विषय नहीं बनाएँगे, चित्त की एकाग्रता बनाएँगे। इसके लिए मान लीजिए कि हमने जीवात्मा को विषय बना लिया या अन्य कोई विषय बना लिया अथवा ईश्वर को ही विषय बनाकर ओम् का जप करने लगे। अब जब चित्त की एकाग्रता की दृष्टि से कोई विषय स्वीकार करने पर एकाग्रता बन जाती है तब हमको ईश्वर की सहायता मिलती है जब कि अभी ईश्वर की अनुभूति नहीं हुई है।

साधक १ – सत्त्वगुण को ईश्वर ही उभार देता है।

स्वामी जी – सत्त्वगुण भी उभरता है परन्तु यहाँ हमको ज्ञान की सहायता देता है।

साधक १ – सत्त्वगुण के माध्यम से अथवा साक्षात् ?

स्वामी जी – सत्त्वगुण के माध्यम से नहीं, साक्षात् भी देगा। हो सकता है साक्षात् देने की मात्रा कम हो किन्तु साक्षात् सहायता तो ईश्वर देता ही है। जब हम उसकी आज्ञा के अनुरूप परिश्रम करते हैं तो उस अंश में ईश्वर हमको ज्ञान की सहायता देता है। प्रमाण की दृष्टि से कहें तो उपासना का फल ज्ञान की वृद्धि। (स्तुति से ईश्वर में प्रीति, उसके गुण, कर्म, स्वभाव से अपने गुण, कर्म, स्वभाव का सुधारना; प्रार्थना से निरभिमानता, उत्साह और सहायता का मिलना; उपासना से परब्रह्म से मेल और उसका साक्षात्कार होना। सत्यार्थ प्र. सप्तम समु.।)

साधक १ – ज्ञान की वृद्धि।

स्वामी जी – और स्तुति का फल ईश्वर के प्रति प्रीति और ईश्वर के गुणों को लेने की तीव्र इच्छा। मैं भी वैसे गुण ले लूँ। यद्यपि साक्षात्कार तो नहीं है किन्तु जब यम-नियमों का पालन करने वाला व्यक्ति ऐसी स्थिति में पहुँचता है तब ईश्वर की दृष्टि से पात्र बन जाता है और उतने अंश में ईश्वर उसे सहायता देता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– लेकिन मुझे ईश्वर से सहायता मिली, ऐसी प्रतीति तो उसको नहीं होगी।

स्वामी जी – ईश्वर की ओर से मिला है या नहीं; यह काट-छांट नहीं करता। यद्यपि जो व्यक्ति काट-छांट करने की योग्यता रखता है, उसे भी ऐसी अनुभूति नहीं होती जैसे कि साक्षात् कोई वस्तु अपने अन्दर आ रही हो। परन्तु उसके अन्दर जो प्रसन्नता, एक प्रकार के विशेष सुख की अनुभूति जैसे कि बन्धन रहित अवस्था का अनुभव होना आदि अनुभूतियाँ होती हैं, वे बता सकती हैं कि हाँ ! मुझे ईश्वर की ओर से सहायता मिल रही है। इसमें भी दो बातें हैं - पहली सत्त्वगुण का प्रधान होना और दूसरी ईश्वर की ओर से सहायता मिलना। इसलिए यह निर्णय करना तो कठिन है कि इतना सत्त्वगुण की ओर से है और इतना ईश्वर की ओर से। पर इतना अवश्य है कि वहाँ सहायता ईश्वर देता है।

ईश्वर की सहायता भी दो स्तरों में उपलब्ध होती है। एक निम्न स्तर की और दूसरी बहुत ऊँचे स्तर की। जिस समय जीवात्मा की अपर वैराग्य की अवस्था होती है और ईश्वर-प्रणिधान भी प्रथम कोटि का होता है उस समय सहायता का स्तर निम्न होता है और जब परवैराग्य की स्थिति, जिसको **तत्परं पुरुषख्यातेर्गुणवैतृष्ण्यम्** सूत्र में कहा है अर्थात् जिसमें विवेकख्याति से भी वैराग्य हो जाता है, वह ऊँचा स्तर होता है और उसमें ईश्वर-प्रणिधान भी उत्तम कोटि का होता है, उसमें ऊँचे स्तर की सहायता प्राप्त होती है।

साधक १– स्वामी जी ! आपके अनुभव के अनुसार विवेकख्याति से वैराग्य कैसे होता है ?

स्वामी जी – उसमें एक ध्यान देने की बात है। मेरे अनुभवों को, उन सारी घटनाओं को लेकर जिनका समय-समय पर कथन होता रहा है, एक सिद्धान्त के रूप में व्याख्या या वर्णन करना या एक शास्त्रीय क्रम के रूप में देखना नहीं हो पाएगा। किसी का पूरा स्वरूप मिलेगा तो किसी का नहीं मिलेगा, क्योंकि शास्त्र की परिभाषाएँ निश्चित होती हैं। हम इन निश्चित परिभाषाओं के साथ अपनी अनुभूतियों को ऐसे मिलाते हैं जैसे कि यहाँ पर ऐसा लिखा है और हमने अनुभव किया तो हम कहेंगे कि हाँ ! यह जो यहाँ लिखा गया है, यह अनुभव मेरा इस रूप में हुआ है।

इसमें दूसरा कारण है हमने शास्त्र को लेकर अभ्यास नहीं किया। तब हमको सिद्धान्तों का कोई परिज्ञान नहीं था। शास्त्रों में इस स्तर का यह नाम है, इस समाधि की यह परिभाषा है आदि का कोई अता-पता नहीं था। इसलिए जब यहाँ की परिभाषाओं को उन अनुभूतियों के साथ ठीक-ठीक मिलाना चाहेंगे तो नहीं मिलेंगी।

हम तो अपनी स्थिति को आगे बढ़ाते गए, बढ़ाते गए। कालान्तर में जब पढ़ने-पढ़ाने की बात आई। सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका में इन स्थितियों को पढ़ने का अवसर मिला तब हम उनसे मिलान करने लगे। उसमें जैसे-जैसे समानता दिखती गई वैसे-वैसे हम कहते गए कि यह वह अवस्था है, यह वह अवस्था है। ऐसे मिला सकते हैं।

हमारा प्रसंग था कि किन-किन स्थितियों में क्या-क्या परिदृश्य आते हैं। एक तो मुख्य बात थी कि जब व्यक्ति विचार करता हुआ गम्भीरता में पहुँचने लगता है तब कई बार वह बहुत भयंकर रूप से डर जाता है। किन्तु प्रायः वही व्यक्ति डरता है जिसने अधिक मन्थन न किया हो, सारे संसार को छान-छानकर निर्णय न किया हो, सभी दिशाओं में, सभी पदार्थों में उत्पत्ति और विनाश की स्थिति का मन्थन करके निर्णय न किया हो।

मैं पीछे हटकर कहीं ऐसी जगह पर चला जाऊँ, जहाँ न मरूँ; ऐसा हो नहीं सकता या कोई

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

व्यक्ति कहीं बचकर नहीं जा सकता आदि का जिसने पूरा निर्णय कर लिया, वह डरता नहीं और न ही वह भागता है। उसको कोई संकट नहीं दिखता। दूसरे व्यक्ति को बड़ा संकट दिखता है कि यह नई दुर्घटना मेरे साथ हो गई। यह तो मृत्यु आ रही है! इससे अच्छा तो वहीं आनन्द से रह रहा था। अब यह व्यक्ति तो डरेगा, घबराएगा और कहेगा कि मैं तो इस मार्ग पर आने का नाम भी नहीं लूँगा। मैं तो ऐसा डरा हूँ कि इसको छेड़ूँगा ही नहीं। ऐसा भी हो सकता है, वह कहे कि प्रलयवत् अवस्था सिखा रहे थे और मैं तो उस भयंकर अवस्था में चला गया और संकट में पड़ गया। अतः मैंने उसको छोड़ ही दिया। यह क्या व्यर्थ की विपत्ति है? इससे तो यही अच्छा है कि व्यक्ति संसार में रहे, खाए-पिए, मौज उड़ाए, ऐसे ही हम रहेंगे। इसलिए मैंने तो छोड़ ही दिया, ये सब व्यर्थ की बातें हैं; ऐसे उसका खण्डन भी कर सकता है।

यहाँ जानने की बात है कि इस मार्ग में डर जाना, घबरा जाना आदि अच्छा नहीं है। उलझन में पड़ गए, बड़े संकट ने आकर मुझे घेर लिया आदि विचारधारा व्यक्ति को न लानी चाहिए, न रखनी चाहिए तथा इस सारे प्रसंग में ईश्वर के गुण, कर्म, स्वभाव, ईश्वर-प्रणिधान आदि सभी बातें जुड़ी रहनी चाहिएँ। जब व्यक्ति किसी वस्तु का स्वामी बन बैठता है तब जो संकट आते हैं, वे ईश्वर को स्वामी मानने में नहीं आते क्योंकि जो घटनाएँ घटती हैं, वो सब ईश्वर की होती हैं। जैसे कि हम समाधि की स्थिति में चले गए। बहुत अच्छी अवस्था आ गई और हमको आनन्द मिलने लगा। तो वह आनन्द भी ईश्वर का है। वहाँ भी 'मैं और मेरा' यह बात आकर नहीं जुड़ेगी और संकट हटते ही चले जाएँगे। यदि ईश्वर को सारा स्वामित्व न दिया जाए तो 'मैं और मेरा' जुड़कर तुष्टि दोष होगा और उसके पीछे अभिमान आदि दोष आकर खड़े हो सकते हैं। इसलिए सब सोच-विचार कर चलना है।

आगे चलकर मुमुक्षु जी बताएँगे कि क्या अनुभव होता है और क्या-क्या विचार आते हैं क्योंकि अब वे तो नई-नई अवस्था की खोज कर रहे हैं। आप सुन-सुनाकर भी न बदलें, ऐसा भी तो हो सकता है। वहीं के वहीं खड़े रहें, जहाँ अभी खड़े हैं। यदि आपने यह संकल्प कर लिया कि हमको केवल सत्य की खोज करनी है। तीन काल में सत्य क्या है, उसको जान लें और ग्रहण कर लें। तीन काल में असत्य क्या है, उसको जान लें और छोड़ दें; हमें यही चाहिए और कुछ नहीं चाहिए। और कोई बात ही नहीं है। तब आप आगे बढ़ जाएँगे। पुनः पीछे हटने वाले नहीं रहेंगे। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४७ आत्मनिरीक्षण

चित्तस्थिति-प्रेक्षण : आषाढ़ कृ. ८/२०६०-२१/७/०३

अब हम विश्वानि देव मन्त्र से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे।

हाँ जी ! माताजी को कुर्सी दे दो, वैसे तो बैठना कठिन होता होगा।

अब आप सुनाएँ -

साधक ८- स्वामी जी ! प्रातःकालीन उपासना में कुछ वृत्तियाँ उठाता रहा और बीच में अपने आप से यह भी कहता रहा कि एक तरफ तो ईश्वर को प्राणों से भी प्यारा समझते हो और दूसरी ओर वृत्तियों को उठा रहे हो। अतः ईश्वर की उपासना करते समय ऐसे विचार नहीं उठाने चाहिएँ।

स्वामी जी - स्वयं को आप समझाने लगे कि एक ओर तो तुम उपासना की बात करते हो और दूसरी ओर बाहर की वृत्तियाँ उठा रहे हो। ऐसा आपने स्वयं को समझाने का प्रयास किया।

साधक ८- हाँ जी !

स्वामी जी - अच्छा !

साधक ८- और मुझे अन्दर से ऐसा लग रहा था कि वृत्तियों को तो उठा ही रहा है और ऊपर-ऊपर ऐसे बोल रहा है।

स्वामी जी - अच्छा ! यह भी आपने देखा कि तू बात-बात बना रहा है। ईश्वर की उपासना की बात करता हैं और वृत्तियों को उठा भी रहा है। पुनः आपने क्या किया ?

साधक ८- पुनः कुछ देर के पश्चात् वृत्तियों को रोक दिया !

स्वामी जी - अच्छा !

साधक ८- सायंकाल की उपासना में व्यर्थ की वृत्ति उठाता रहा किन्तु उनको हेय कोटि में रखता रहा। वृत्तियों को रोकने में समर्थ नहीं हुआ। दोपहर पश्चात् निदिध्यासन के समय प्रलय अवस्था का सम्पादन किया। किन्तु पिछले दो-तीन दिन से उसमें जो सफलता मिल रही थी, आज उसमें कुछ कमी रही। प्रायः दिनचर्या सामान्य रही।

स्वामी जी - एक तो आप सब इस बात का ध्यान रखें कि कोई नियम भंग न हो। श्रद्धापूर्वक सावधानी से नियमों का पालन करें और वे जब भंग हो जाएँ तब उनका यथोचित दण्ड लें। इससे नियमों में आपसे जो त्रुटि होती है, वह न्यून हो जाएगी और इस पर विशेष ध्यान देंगे तब प्रायः दोषों से मुक्त हो जाएँगे। नियमों के प्रति श्रद्धा-विश्वास, प्रेम, तप-त्याग, सावधानी रखनी पड़ती हैं। ऐसी स्थिति में व्यक्ति की प्रगति, प्रवृद्धि होती जाती है।

आपको दिन में कार्य करते-कराते समय कभी क्रोध आ जाता है या नहीं ? आप अपना-अपना बताएँगे।

साधक ३- क्रोध तो नहीं आता पर क्षोभ होता है, कुछ खिन्नता होती है। क्रोध का रूप तो ऐसा समझ में नहीं आता है।

स्वामी जी - और आप अपना बताएँगे।

साधक ४- सूक्ष्म रूप से मानसिक द्वेष की तरंगे उठाता हूँ, अन्य कोई उग्रता या ऐसा कुछ नहीं।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – तो जो आन्तरिक द्वेष उठता है तब क्या करते हैं ?

साधक ४ – उसको रोक देता हूँ।

स्वामी जी – अब आप अपना बताएँगे।

साधक २ – प्रकट रूप में तो ऐसा नहीं आता पर अन्दर मन में लगता है कि हाँ ! द्वेष कर रहा हूँ बोलते समय।

स्वामी जी – तो यह... हाँ जी !

साधक १ – मानसिक स्तर पर कभी-कभी द्वेष की वृत्ति उठा लेता हूँ तब पुनः उसे शीघ्र ही दबा लेता हूँ, रोक लेता हूँ। किन्तु जब कभी स्वयं उपासना आदि में अथवा दिन में पुनः पुरुषार्थ करते हुए यदि वांछित सफलता नहीं मिलती है तब खिन्नता अनुभव होती है। खिन्नता के कारण कभी-कभी थोड़ा समय भी नष्ट होता है। पुनः उसको रोक देता हूँ।

स्वामी जी – और आपकी कैसी स्थिति रहती है सुनाओ ?

साधक ५ – शीरीरिक और वाचनिक रूप में यह पकड़ में नहीं आता, स्वामी जी ! किन्तु मानसिक रूप में द्वेष भाव को बीच में कभी-कभी उठा लेता हूँ, पुनः उनको रोकने का प्रयास भी करता हूँ।

स्वामी जी – इसकी दो स्थितियाँ रहती हैं। एक तो जिस समय में उठा, तत्काल पकड़कर उसको रोक दिया जैसे कि मन में राग-द्वेष उठा तब उसने पकड़ लिया और रोक दिया और दूसरी स्थिति में उठने के कुछ समय पश्चात् तक मन में ही रह गया। जैसे कि आप दूसरे कामों में लग गए और कालान्तर में आपको पता चला मैंने मन में कुछ द्वेष किया था। जब मैं बात कर रहा था तब मुझे क्रोध आ गया था। तो इनमें से आपकी कौन-सी स्थिति रहती है ?

साधक ५ – दोनों स्थितियाँ होती हैं। कुछ वृत्तियाँ तो तत्काल समझ में आ जाती हैं और उसी समय रोकने का प्रयास करता हूँ किन्तु कुछ कालान्तर में समझ में आती हैं।

स्वामी जी – कालान्तर में समझ में आना या दोष का पकड़ा जाना अधिक हानिकारक है किन्तु तत्काल दोष को पकड़ना अपेक्षाकृत बहुत अच्छी स्थिति है। जैसे कि मन में राग-द्वेष होते ही एक व्यक्ति तत्काल उसको पकड़कर रोक देता है। दूसरा व्यक्ति जैसे कि बात-चीत करते-करते उसके मन में क्रोध आ गया परन्तु वह दूसरे काम में लग गया। पुनः तीसरे काम में लग गया या किसी काम से कहीं और चला गया। अब छः-आठ, दस मिनट पश्चात् पुनः उसको स्मरण हुआ कि अरे ! उस समय वार्त्तालाप करते हुए मैंने मन में क्रोध कर लिया था। यह तो ठीक नहीं किया। यह व्यक्ति की निर्बल स्थिति है, ठीक नहीं है। जो तत्काल पकड़ने की स्थिति है, वह अच्छी है। एक अन्य उठने ही न देना, यह इससे भी अच्छी है। क्या अन्तर है, समझ में आया ?

साधक ५ – दोष को उठने ही नहीं देना, यह सबसे अच्छी स्थिति है।

स्वामी जी – उठने ही नहीं देना, यह ऊँची या सबसे अच्छी स्थिति है। दूसरी उठते ही रोक देना, यह पहली से निर्बल स्थिति है। तीसरी उठने के पश्चात् जितना भी अधिकाधिक समय बढ़ता जाएगा, उतनी-उतनी निम्नतम स्थिति मानी जाएगी। उसमें व्यक्ति की निर्बलता और हानि बढ़ती जाएगी।

क्रोध करने के पश्चात् जितने अधिक समय तक उस व्यक्ति को आभास नहीं हुआ, उसे पकड़ नहीं पाया, असावधान रहा कि मैंने मानसिक क्रोध किया है, उतना-उतना वह प्रमाद ग्रस्त होता जाएगा। आगे चलकर उस व्यक्ति को कई मिनटों और आगे कई घण्टों या अगले दिन स्मरण होगा कि कल कार्य करते समय मैंने क्रोध किया था।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप आगे बढ़ते जाइए। एक व्यक्ति ने किसी से कुछ बात कही, बड़ी दु:खदाई बात कही, असावधानी पूर्वक बात कही, अत्यन्त कटु और अनुचित बात कह दी और उसके पश्चात् वह व्यक्ति अपने किसी दूसरे काम में लग गया और एक सप्ताह तक अपने काम करता रहा। अब उस व्यक्ति के लिए जो अत्यन्त कठोर, अनुचित बोला था, एक सप्ताह के पश्चात् उसे स्मरण हुआ कि मैंने उस व्यक्ति को अनुचित बात कही थी। तो एक सप्ताह तक उसे यह बात स्मरण नहीं हुई। ऐसे ही यदि ध्यान नहीं देंगे तब यही बातें महीनों या वर्षों तक चली जाएँगी। कुछ समझ में आया?

साधक ८– हाँ जी!

स्वामी जी – ऐसे ही इनका स्तर बढ़ता जाता है।

साधक ८– अर्थात् त्रुटि भी करेंगे और पता भी नहीं चलेगा।

स्वामी जी – हाँ जी! वह बात मासों या वर्षों तक चली जाती है, अन्य किसी घटना के विषय में विचार करता है तब वह पकड़ में आती है कि उस काल में मैंने उस व्यक्ति के साथ ये अनुचित बातें की थीं या अनुचित कार्य किया था। ऐसे ये बातें मासों या वर्षों के लम्बे-लम्बे काल तक चली जाती हैं।

सम्पादक – एक ऐसी स्थिति होती है जिसमें व्यक्ति को दोष का तब तक पता ही नहीं चलता है जब तक कि वह उस दोष को स्वयं दु:खी होकर या दोष के रूप में किसी अन्य से न जान ले।

स्वामी जी – इसके लिए जो साधक दिनभर अत्यन्त सावधान रहता है, हम अभी उसकी स्थिति का वर्णन कर रहे हैं। उसकी स्थिति यह होती है कि क्रोध को आरम्भ ही नहीं होने देता है या क्रोध के आ जाने पर यथा शीघ्र रोक देता है। अर्थात् उठने ही नहीं देना, यह ऊँची स्थिति है। इसमें भी दो स्थितियाँ हैं एक तो प्रयत्नपूर्वक उठने नहीं देना और दूसरी बिना किसी विशेष प्रयत्न के स्वाभाविक, अनायास रूप में ही उठने नहीं देना, यह सबसे ऊँची स्थिति है।

साधक १– स्वभावत:।

स्वामी जी – स्वाभाविक रूप से उसकी यह जो स्थिति है कि बिना विशेष प्रयत्न किए उसे रोक देना; यह सर्वोत्तम स्थिति है। पुन: इससे निम्न स्थिति वह है जो कि मन में बात आई या उत्पन्न हुई उसे तत्काल वहीं रोक देना, और आगे बढ़ने नहीं देना; यह दूसरी स्थिति है। पुन: इससे निम्न तीसरी स्थिति है जिसमें मन में उठा और उठता गया, कालान्तर में रोक पाया। अब इसी के विभाग बनाते जाओ आधा मिनट, एक मिनट, घण्टा, दिन आगे बढ़ाते-बढ़ाते वर्षों तक विभाजित कर सकते हैं। पूरी बात समझ में आ गई?

साधक १– इन्हें ईश्वर को अर्पित कैसे करेगा? सभी प्रकार के कर्मों को ईश्वर-समर्पित करके फल संन्यास की बातें आती हैं।

स्वामी जी – क्या-क्या?

साधक १– यह जो मानसिक दुष्कर्म हो रहा है, इसको कैसे अर्पित करें और इसके फल से कैसे संन्यास लें?

स्वामी जी – इसका यह एक ढंग है कि क्रोध आ गया और उसको पकड़कर ईश्वर के सामने रख दिया।

साधक १– और फल संन्यास?

स्वामी जी – फल संन्यास का अर्थ यह होता है। आपका अभिप्राय है कार्य करना .....।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– और लौकिक फल की इच्छा न करना।

स्वामी जी – मैं बताता हूँ। मान लीजिए साधक ने किसी का उपकार किया। ठीक है! अब उसकी बुद्धि में रहना चाहिए कि मैंने ईश्वर के साधनों से यह कार्य किया। ये साधन ईश्वर के है, मेरे नहीं हैं; ऐसा उसे मानना चाहिए। यहाँ ध्यान देना है यदि वह मानता है ये साधन ईश्वर के है तब फल ईश्वर की ओर जाएगा और यदि मानता है कि ये मेरे साधन हैं तब फल उसका बनने लगेगा। दूसरी बात उसने जो उपकार किया, उसका लक्ष्य क्या बनाया? उसने यदि ईश्वर-प्राप्ति को लक्ष्य बनाकर ही परोपकार कर दिया तो यह फल संन्यास का सीधा रूप बन गया।

अच्छा! परोपकार करते समय यदि थोड़ी-सी सकामता की भावनाएँ उभारीं, थोड़ा-सा पुट आने लगा तो उसने झट पकड़ा और उसी क्षण ईश्वर के समक्ष रख दिया कि हे ईश्वर! मैंने यह जो सकाम कर्म करना आरम्भ किया है या जो सकामता का दबाव पड़ रहा है तो इससे आप मुझे बचाओ। अर्थात् अपने लिए करने की इच्छा सताने लगेगी तब ईश्वर से प्रार्थना करेगा कि हे ईश्वर! आप मुझे ऐसा ज्ञान दो कि मैं इससे बच सकूँ। यह कर्म सकाम न बन पाए। पुनः दूसरी बात कहेगा कि यह जो मैंने कर्म किया और उस पर अपना अधिकार माना, यह तो मिथ्या है। वस्तुतः यह तो मैंने आपके दिए साधनों से सम्पन्न किया है। जब आपके साधनों से किया तो फल मेरा कहाँ से हुआ? यह मेरा फल नहीं हैं। इसलिए इसको मैं अपना नहीं मानूँगा। ऐसे ईश्वर के सामने रखता है।

साधक १– मेरा फल नहीं हुआ।

स्वामी जी – हाँ! इस रूप में मेरा फल नहीं हुआ।

साधक १– किन्तु कर्त्ता तो वह है।

स्वामी जी – कर्त्ता होते हुए भी जिसके साधनों से सम्पन्न हुआ, उसका विशेष भाग माना जाएगा। इस दृष्टि से बोल रहा है। यदि उस दृष्टि से देखा जाए तो हमने जो फल का सम्पादन किया, उसमें हमारा भाग बहुत थोड़ा है।

साधक १– कार्य का सम्पादन?

स्वामी जी – हाँ! कार्य के सम्पादन का भाग हमारा बहुत कम है और ईश्वर का बहुत अधिक है। इसलिए वह इस दृष्टि से सोचता है कि यह जो कुछ हुआ है, सब आपके दिए हुए साधनों से हुआ है। वह आँख, नाक, हाथ, पैर, नस-नाड़ी, सूर्य-चन्द्रमा आदि सबको मिलाकर कहता है। इस दृष्टि से कहता है कि इस पर अधिकार तो आपका ही है। यदि वह सकाम भावना को उभारता है तो वह इस प्रकार से उसको रोकता है। दूसरी बात - वह पुनः देखता है कि मैं इसको सकाम कर्म की कोटि में लाता हूँ तो ईश्वर की प्राप्ति कैसे होगी? हे ईश्वर! यदि इस सकाम कर्म में लग गया तो उसके फल और साधनों में लग जाऊँगा, पुनः आपकी प्राप्ति तो होगी नहीं। यदि उसके मन में बलात् उस ओर जाने की प्रवृत्ति हो रही है तब वह सकाम कर्म करता हुआ ईश्वर से प्रार्थना करेगा और उसको ईश्वर के सामने ऐसे समर्पित करेगा।

साधक १– स्वामी जी! यह तो आपने शुभ कर्म का उदाहरण दिया है।

स्वामी जी – हाँ जी!

साधक १– प्रश्न तो अशुभ कर्म का था?

स्वामी जी – अच्छा!

साधक १– उसने जो भी कुछ कर्म किया, सब ईश्वर के साधनों से किया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – ठीक बात है।

साधक १ – तो क्या वहाँ पर भी ऐसे ही कहेगा कि यह जो मैंने क्रोध किया सब आपके साधनों से ही किया है। मैं इसका फल क्यों लूँ; इसका फल आप लो। ऐसी बात करेगा?

स्वामी जी – इस विषय में यह जानना है कि कोई व्यक्ति दुःख पाने के लिए कर्म नहीं करता अपितु वह जो भी कर्म करता है सुख पाने के लिए करता है। तो भले ही इसने अशुभ कर्म किया परन्तु प्रथम अपने लिए और सुखद मानकर ही तो किया? इसलिए अपनत्व हटाने के लिए समर्पित तो करेगा ही। यदि वह बुद्धिमान् है और जानता है कि अशुभ कर्म कर दिया और मुझे ईश्वर की ओर से दुःख रूपी दण्ड मिलेगा तो उसके सामने तो रखेगा ही। हाँ! तब ऐसे अर्पण करेगा कि मैंने बुरा कर्म किया, मुझे आपकी ओर से दण्ड मिलेगा। इससे मैं नहीं छूट सकता।

साधक ८ – वह चाहेगा कि मुझे इस कर्म का दण्ड मिलना ही चाहिए।

स्वामी जी – यह भी उसकी ऊँची भावना है कि मिलना ही चाहिए। वैसे तो ईश्वर फल देता ही है। इस स्थिति में यदि वह अनिच्छा करता है कि इसका दण्ड न मिले तब तो यह माना जाएगा कि उस व्यक्ति की ईश्वर के प्रति थोड़ी-सी श्रद्धा की कमी है अथवा दोष को छोड़ने की इच्छा कम है। तब वह उपेक्षा जैसी करता हुआ कहेगा कि मैंने जो यह कर्म किया उसका आपकी ओर से दण्ड तो मिलना ही है। यदि दोष को छोड़ने की तीव्र इच्छा होगी तब यही बोलेगा कि आपकी ओर से दण्ड मिलना ही चाहिए। ऐसे बोलने के ढंग में अन्तर आएगा।

साधक ६ – जैसे कार्य करते हुए यह मानना है कि मैं परोपकार कर रहा हूँ। उसमें कुछ सकामता है और प्रार्थना करने (बोलने मात्र) का भी अभ्यास मात्र बन गया है कि हे ईश्वर! तेरी शक्ति, तेरे ही साधनों से कर रहा हूँ। अर्थात् अन्दर आत्मा से अर्पण न होकर ऐसा कहना ऊपरी अभ्यास भी तो हो सकता है?

स्वामी जी – अभ्यास का दृष्टान्त देना पड़ेगा। जैसे?

साधक ६ – जैसे किसी कार्य में प्रवृत्त है, यह मानता भी है और उसका अभ्यास ईश्वर को समर्पित करने का बना हुआ है। वास्तव में समर्पण नहीं है, तब क्या समर्पण माना जाएगा?

स्वामी जी – जब वास्तव में समर्पण नहीं है और वह अभ्यास के कारण समर्पण करने के विचारों से समर्पित कर रहा है, ऐसी स्थिति में उस व्यक्ति का सम्बन्ध ईश्वर से कटा हुआ होता है। यहाँ समर्पण मिथ्या भी हो सकता है और सत्य भी। जिस स्थिति में ईश्वर के साथ सीधा सम्बन्ध तो नहीं होता है किन्तु शब्द-प्रमाण और अनुमान-प्रमाण से सम्बन्ध होता है। उस आधार पर यह कहना कि मैं ईश्वर के प्रति समर्पित कर रहा हूँ तब भी यह समर्पण सत्य है। किन्तु जब वास्तव में शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण से मेरे पास सर्वज्ञ, सर्वव्यापक ईश्वर है, उनके समक्ष रख रहा हूँ; यह नहीं मानता, केवल बोलता मात्र है तब उसका समर्पण मिथ्या है। वह परोक्ष रूप में ईश्वर की बात करता है कि मैं ईश्वर-समर्पित कर रहा हूँ, वस्तुतः ईश्वर से उसका कोई सम्बन्ध नहीं होता, केवल ऊपर से मानता है मैं ईश्वर-समर्पित कर रहा हूँ। हाँ जी!

साधक ८ – स्वामी जी! कोई त्रुटि कर देता है तो मुझे उस पर हँसी आ जाती है। इस विषय में प्रातःकाल विचार किया तो समझ में आया कि यह तो मेरी मूर्खता है। पुनरपि मैं आपके समक्ष इस विषय को रख रहा हूँ कि आप इस विषय को स्पष्ट करेंगे।

स्वामी जी – यह जो स्थिति है यह हानिकारक है। इसमें अनेक दोष हैं। जैसे कि ऐसे ही आपकी हँसने की स्थिति बनी रही तो जो गम्भीरता, मन आदि पर संयम, विवेक-वैराग्य की ओर प्रगति, मन

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की तरंगों को रोकने में सफलता मिलनी चाहिए आदि; ये उपलब्धियाँ नहीं हो पाएँगी। इसके साथ भूल होने से आप जिस पर हँसते हैं उसमें भी अनेक दोष आते हैं। जैसे कि उस व्यक्ति को मूर्ख समझना, उसके प्रति निरादर की भावना और प्रेम, अहिंसा के विरुद्ध हिंसाभाव का होना आदि।

साधक ८– हमारे हँसने से वह व्यक्ति दुःखी भी हो सकता है।

स्वामी जी – और इस प्रयोग से हमारा स्वभाव बिगड़ता है। आगे चलकर यह स्वभाव अधिक उग्र रूप में आ जाएगा पुनः सबके प्रति मखौल उड़ाना, व्यंग्यात्मक भाषा बोलना आदि करने लगेंगे। इससे धीरे-धीरे उस व्यक्ति का स्तर गिरने लगता है, आप देखेंगे कि लोक में गिरत-गिरते वह कहाँ का कहाँ चला जाता है। पता ही नहीं क्या-क्या कहने लगता है। यह बिगड़ने का एक ढंग है।

अच्छा ! अब एक प्रयोग की बात। मान लीजिए फल बांटा गया और आपने लेकर अपने स्थान में थाली में रख दिया कि पश्चात् खाएँगे और बाहर चले गए। आपके पीछे किसी ने असावधानी से आपसे बिना पूछे उठाकर खा लिया। अब आप बाहर से आए और सोचा कि फल खा लेता हूँ और थाली की ओर देखा तो फल नहीं था। किसी ने खा लिया। पुनः पता लगाने पर आपको पता चल गया कि उसने उठाकर खा लिया है।

तब आप सोचने लगे कि क्या किया जाए? कुछ कहूँ तो उसको बड़ा दुःख होगा। इसलिए कुछ नहीं कहना है। चलो, खा लिया तो कोई बात नहीं। यह क्या है? इस स्थिति को कहते हैं संतोष, उसका भाग है। उसको मिल गया और खा लिया, बहुत अच्छी बात हैं। संतोष की स्थिति 'जो मिल गया सो मिला, अधिक इच्छा नहीं करना'। अर्थात् जितना हो गया ठीक है और लाभ नहीं हुआ तो कोई बात नहीं।

इसके विपरीत क्षोभ की स्थिति होती है, जो नीचे जाने की स्थिति है। जैसे कि इसने मुझसे बिना पूछे या मेरा फल खा लिया, अच्छा नहीं किया। (अच्छा नहीं हुआ)। यह समझ में तो आ रहा है? व्यक्ति के भिन्न-भिन्न स्तर होते हैं। उस स्थिति में जब व्यक्ति ऊँचे स्तर की बात सोचता है, ऊपर जाता है, सन्तुष्ट होता है, प्रसन्नता का अनुभव करता है कि इसने खा लिया, इसको सुख मिला, बहुत अच्छा है तो यह उत्तम स्थिति है। यदि मान लो इसको भी क्षोभ होने लगता है तब पुनः क्या करता है? वह स्वयं को कहता है तू तो यम-नियम की बात करता है। तेरे मन में क्षोभ, असंतोष तो नहीं होना चाहिए। संतोष का पालन कर रहा हूँ और यदि मैं क्षोभ करता हूँ तब संतोष का पालन कहाँ हुआ? ऐसे उभरते ही वहीं रोकता है। समझ में आ रहा है या नहीं?

साधक ८– हाँ जी !

स्वामी जी – यही धारा और ऊपर जाती है। व्यक्ति जब ऊँचे स्तर पर पहुँच जाता है तब इससे भी ऊँचा स्तर बनाता है। जैसे कि आपने संतोष कर लिया तो स्थिति बड़ी अच्छी बनी रही। अब आपने देखा कि आप के मन में यह विचार आ रहा है कि अरे! मैंने इतना कार्य किया। लोगों को पता तो चलना चाहिए कि आज मेरा फल उसने खा लिया और हमको कोई क्षोभ नहीं हुआ। यह क्या है? वह इच्छुक है कि लोग मुझे कुछ कहें। समझ में आया?

साधक ८– वह अपनी प्रसंशा सुनने का इच्छुक है।

स्वामी जी – हाँ ! ये कहें कि भाई देखो ! इसका फल खा लिया था और इसके मन में कुछ भी क्षोभ नहीं, बड़ा प्रसन्नचित्त दिख रहा है। उसके अन्दर यह इच्छा उत्पन्न हुई है। यह स्थिति नीचे गिरने की है। परन्तु वह ऊँचा व्यक्ति है और अब वह कहता है कि इसने मेरा फल खा लिया किन्तु ऐसा न हो कि किसी को पता चल जाए। अब क्या समझ में आया?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– हाँ जी !

स्वामी जी – मेरी बात को पकड़ रहे हैं या ऐसे ही बैठे हो गूंगे की तरह।

साधक ८– वह लोगों में दूसरे की निन्दा भी नहीं चाहता है।

स्वामी जी – इस बात का लोगों को पता न चल जाए उसने इसका फल खा लिया। अन्यथा जिसने खाया उसको दुःख होगा।

अर्थात् वह यह चाहता है कि अन्य को पता न चले और जिसने खाया उसको भी न पता चले कि मैंने उनका फल खा लिया, अब मेरे प्रति उनके मन पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। वह ऐसा भी अनुभव कर सकता है। अतः यह और भी ऊँची स्थिति है कि किसी को पता न चले। अब विराम ॥

४८ यज्ञीयोपदेश

उपासनाविधि : आषाढ़ कृ. ९/२०६०-२२/७/०३

अब हम गायत्री मन्त्र से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। धुन के साथ मन्त्र का प्रयोग करेंगे और आप अध्ययन, परीक्षण-निरीक्षण करते रहेंगे कि मन्त्र पाठ, प्रत्येक शब्द का अर्थ, ईश्वर-सम्बोधन, ईश्वर-समर्पण की क्या स्थिति रहती है ?

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥

प्रयोग काल लगभग ४ मिनट।

अब आप अपना परीक्षण सुनाएँगे –

साधक ३– इस गति में ये चारों काम नहीं हो पाते हैं। कभी अर्थ हो पाता है, कभी समर्पण। कभी सम्बोधन छूट जाता है। मैं ये सारे कार्य इस गति में नहीं कर पाता हूँ। इसको लम्बा करके ...।

स्वामी जी – हाँ जी ! अब आप बोलेंगे क्या स्थिति रही ?

साधक ६– मन्त्रपाठ, अर्थ और समर्पण करने में थोड़ा आगे-पीछे कभी हो जाता था। ध्वनियाँ भी सुनता रहा। एक स्मृति भी उठाई और रोक दी।

स्वामी जी – हाँ जी ! अब आप बोलेंगे –

साधक ४– अर्थ सामान्य तथा भाव रूप में रहा और बाहर की ध्वनियों में मन को देखता रहा। उस समय ईश्वर-समर्पण टूट रहा था।

स्वामी जी – हाँ जी ! अब आप बोलेंगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५– पहले मन्त्र में स्थिति सामान्य रही, दूसरे में कुछ अच्छी रही, पुनः तीसरे में कुछ स्मृति वृत्ति उठाई और रोक दी। चौथे भाग में स्थिति उतनी अच्छी नहीं रही। कई बार शब्द को बोलने के पश्चात् अर्थ कर पाता था और कई बार-बीच में समर्पण की स्थिति कुछ क्षीण हुई।

स्वामी जी – अब हम प्रयोग करेंगे - एक शब्द को लम्बा बनाना और उतने काल में उस शब्द का अर्थ करना, इस रूप में करेंगे -

ओऽऽऽ म् भूऽऽर्भुवःऽऽ स्वःऽऽ। तत्सवितुऽऽ वरेण्यंऽऽऽ भर्गोऽऽ देवस्यऽऽऽ धीमहि ऽऽऽ। धियोऽऽऽ यो ऽऽऽ नःऽऽऽ प्रचोऽऽ दयाऽऽऽ त्॥

मन्त्र का उच्चारण काल लगभग चार मिनट।

स्वामी जी – हाँ जी ! अब आप बोलेंगे।

साधक २– सारे कार्य करता रहा। एक वृत्ति उठाई पुनः रोक दी। शेष सब ठीक रहा।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे, कैसी स्थिति रही ?

साधक ७– समर्पित होकर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना की। मन्त्र का भाव सहित अर्थ लिया।

स्वामी जी – तो उसमें यह ध्यान देना है कि भाव न लेकर शब्द का अर्थ करना है। जिस व्यक्ति में इतना सामर्थ्य नहीं है कि एक-एक शब्द का अर्थ कर पाए, उसका अभ्यास नहीं है तो उसके लिए सरलता की दृष्टि से भाव का प्रयोग उचित हो सकता है। परन्तु जो विशेष व्यक्ति, विशेषज्ञ, प्रगतिशील होगा वह चाहेगा कि मैं जिस शब्द को बोल रहा हूँ, उसी का अर्थ होगा, अन्य का नहीं। ईश्वर सम्बोधित किया जाएगा। मैं स्वयं ईश्वर-समर्पित रहूँगा।

आप न बोलिए, उदाहरण के रूप में पुनः प्रयोग सुनिए। जब उसने **धीमहि** बोला तब ईश्वर को सम्बोधित करते हुए धीमहि शब्द का अर्थ किया - हे ईश्वर ! आपके आनन्द को, आपके ज्ञान को, आपके बल को हम अपने जीवन में धारण करें। यहाँ उसने अर्थ भी किया, ईश्वर को सम्बोधित किया और बीच में कोई विषय भी नहीं उठाया। इस प्रकार यदि इसमें कोई बाधा आती है, वृत्ति उठा ली जाती है तो उसको पकड़कर पुनः रोक देना चाहिए। विधि आपको समझ में नहीं आई तो पूछो ?

जो लोग शंका उठाते हैं कि मन्त्र का पाठ करना, एक-एक शब्द का अर्थ करना आदि एक साथ कैसे हो सकता है ? यह तो ठीक नहीं दिखता, बहुत कठिन है। तो उसमें ऐसा समझना चाहिए कि हम मन्त्र पाठ भी करें, एक-एक शब्द का अर्थ भी करें; यह सब सम्भव है। जैसे कि एक दृष्टान्त - आप कभी ध्यान देकर देखो तब पता चलेगा कि आप मन्त्र को बोलते जा रहे हैं और संसार की बातों का विचार भी करते जा रहे हैं। **ओं भूर्भुवः स्वः।...** इस बार अतिथि अधिक आएँगे तब क्या करेंगे ? ऐसा होता है या नहीं ?

साधक ७– होता है।

स्वामी जी – यदि मन्त्रपाठ करते समय उसके अतिरिक्त संसार की बातों का विचार कर सकते हैं तब मन्त्रपाठ के साथ-साथ उसी के अर्थ का विचार क्यों नहीं हो सकता। समझ में आया या पुनः दोहराऊँ ? मन्त्र बोलता जाता है और संसार की बातों को अन्दर दोहराता रहता है और मन्त्र भी ज्यों का त्यों बोलता जाता है। आप ऐसा देख सकते हैं। जब मन्त्र बोलते समय संसार की बातें विचारी जा सकती हैं तब मन्त्र के एक-एक शब्द का अर्थ भी किया जा सकता है। इसलिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह उनका तर्क नहीं, अपितु कुतर्क है। इसलिए आप ऐसा प्रयोग कर सकते हैं, इसमें कोई बाधा नहीं है। यदि ऐसे प्रयोग करके न देखा जाए तो ठीक है पाठ होता रहेगा, कुछ संस्कार पड़ेंगे परन्तु इतने से प्रगति-विकास-उत्कर्ष नहीं हो सकता।

इस भारत देश में करोड़ों लोग हैं जो अपने-अपने ढंग से जप करते हैं, ध्यान करते हैं। तप-त्याग पूर्वक सीखकर योगाभ्यास में समय लगाते हैं किन्तु उनकी विधि ठीक न होने से उनका कोई विकास नहीं होता है। यह स्थिति आप पूरे देश में देख सकते हैं। परीक्षण करना हो तो किसी भी आश्रम, मठ में जाकर वहाँ के साधकों से पूछ सकते हैं कि आप किस विधि से जप करते हैं? आपको कितनी सफलता मिली है? आप समाधि तक पहुँचे या नहीं?

पुनः अधिकांश साधक आपको यही सुनाएँगे कि अभी हमको समाधि प्राप्त नहीं हुई है। यद्यपि कुछ लोग बताएँगे कि मेरी समाधि लग चुकी है परन्तु प्रायः वे भी ऐसे होते हैं जो समाधि तक पहुँचे नहीं होते हैं, परन्तु मान लेते हैं। वस्तुतः उनको समाधि का पता भी नहीं होता है। इसके अतिरिक्त यदि कोई उनसे आत्मा-परमात्मा व मन आदि का विवरण, व्याख्या समझना चाहे और पूछने लग जाए कि ईश्वर कैसा है, जीवात्मा कैसा है; तो उन मत-मतान्तरों में कोई भी ठीक-ठीक नहीं बता पाएगा। उनको शाब्दिक ज्ञान भी नहीं होता। बिना विधि के, बिना ज्ञान-विज्ञान के अभ्यास करने का यह परिणाम है।

इसकी तुलना में आप भौतिक वैज्ञानिकों को देखेंगे। उन्होंने पूरा परिश्रम किया, तन-मन-धन समर्पित कर दिया और सब कुछ झोंककर उन्होंने वह विधि खोज निकाली कि विज्ञान का आविष्कार कैसे होता है, कैसे किया जाना चाहिए? ऐसे नहीं होता तो, पुनः वैसे करो आदि विविध प्रकार से खोज करते जाते हैं। आगे भी गवेषणा करते-करते नई-नई विधियों का आविष्कार करते जाते हैं। आज उन्होंने प्रायः पूरे संसार को अपना शिष्य बना लिया है। पूरा संसार उनके पीछे चल रहा है।

किन्तु इधर योग के क्षेत्र में तीव्र बुद्धि वाला जिज्ञासु एक भी व्यक्ति सन्तुष्ट नहीं हुआ। इसलिए ये सारी बातें आपके समक्ष इस रूप में रखी जाती हैं कि ऐसे विधि-विधान से काम करो, जिससे विकास होवे। अपने जीवन में अनुभव करने लगें कि मन पर अधिकार हो गया, अब जहाँ चाहें वहाँ मन को लगा सकते हैं। ईश्वर-समर्पण का अभ्यास हो गया। उच्चारण के साथ-साथ प्रत्येक शब्द का अर्थ कर सकते हैं। कोई वृत्ति नहीं उठ पाएगी। ऐसी स्थितियाँ उपलब्ध कर ली हैं। आगे बढ़ेंगे तो हमने समाधि को प्राप्त कर लिया और अन्यों को भी यह विद्या सिखा सकते हैं।

अब हम एक प्रयोग करेंगे। आप सभी लम्बे काल से संध्या करते चले आ रहते हैं परन्तु अब तक शन्नो देवी बोलते हुए उसका अर्थ कर पाते हैं या नहीं, इसको देखेंगे -

ओम् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः॥

ओम् शन्नो देवीरभिष्टय आपो भवन्तु पीतये। शंयोरभिस्त्रवन्तु नः॥

अब देखो कैसे शब्दार्थ करना चाहिए - **शम्** सुख **नः** हमारे लिए, हे ईश्वर! हमारे लिए सुख प्रदान कीजिए। **देवीः** आप प्रकाश-स्वरूप हैं अथवा आनन्द-स्वरूप हैं, **अभिष्टये** मनोवांछित सुख के लिए। **आपः** हे ईश्वर! आप सर्वव्यापक हैं, सर्वत्र विद्यमान हैं। **भवन्तु** हूजिए **पीतये** पूर्ण आनन्द के लिए। **शंयोः** सुख की **अभि** सभी ओर से **स्त्रवन्तु नः** हमारे लिए वर्षा कीजिए। अथवा आप यह प्रयोग जब इस रूप में नहीं कर पाते हैं तो शान्ति से पहले पूरा मन्त्र बोलो - **ओम् शन्नो देवीरभिष्टय.....।** मन्त्र पाठ करके रुको। पुनः एक-एक शब्द का अर्थ करो! पूरी वैदिक सन्ध्या इसी रूप में करो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम 'सर्वाधार' शब्द का प्रयोग करेंगे। जप करने से पहले सर्वाधार शब्द का अर्थ अच्छे प्रकार से जान लेना चाहिए, उस पर मनन कर लेना चाहिए। जैसे कि सर्वाधार हे ईश्वर ! हम जीवों के, अरबों-खरबों लोक-लोकान्तरों के, प्रकृति के, पदार्थमात्र के आप आधार हैं। जब हम पाठ करेंगे, जप करेंगे तब हम बोलेंगे - 'ओम् सर्वाधारः' रुक जाएँगे और पुनः अर्थ करेंगे - हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक और सबके आधार हैं। ऐसे पाठ करेंगे, पुनः अर्थ करेंगे। इसके साथ आप जब रुकें तब नाक से श्वास ले लें और पुनः मन में कहें - हे ईश्वर ! आप सबके रक्षक और सबके आधार है अथवा सर्वरक्षक सर्वाधार हैं।

प्रयोग समय लगभग एक मिनट।

अब थोड़ा-सा और विभाजन करते हैं जिसको कठिनाई पड़ती हो, प्रथम उसने ओम् का पाठ किया हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं।

ओम् सर्वाधार ! आप सर्वरक्षक और सबके आधार है।

ऐसे प्रयोग करके देखने से व्यक्ति को पता चलता है कि कहाँ पर भूल हो रही है। स्मरण रखिए, आप जो भूल करेंगे वह आपके विकास में, ईश्वर-प्राप्ति में बाधक बनकर खड़ी होगी। ऐसा न समझना कि चाहे जैसा करते रहें, कोई अन्तर नहीं पड़ेगा। पाठ करो, अर्थ चाहे न करो, समर्पित हो या न हो, विशेष सोचो या न सोचो पर करते चले जाओ। यदि किसी के मन में यह भ्रान्ति हो तो उसका कभी विकास नहीं होगा। कभी समाधि प्राप्त होगी; ऐसा नहीं हो सकता। इसके साथ जो व्यक्ति जप, ध्यान, योगाभ्यास करते हुए अपने परिवार, समाज, मित्र, पड़ोसी के साथ यदि यम-नियमों का पालन, उसके अनुरूप व्यवहार नहीं करता है तो उसकी प्रगति या योग में प्रवेश नहीं हो पाता। अतः एक ओर ईश्वर के आदेशों का पालन, यम-नियमों का पालन; दूसरी ओर विधिपूर्वक जप, ध्यान, उपासना करना अनिवार्य है।

अब हम थोड़े-से ऊँचे स्वर से धुन में परिवर्तन करके पाठ करेंगे। ओऽऽऽऽम् सर्वाधार ओऽऽऽम् सर्वाधार। प्रयोग समय लगभग एक मिनट।

अब आप रुकेंगे - ऊँचे स्वर से बोलने में और ध्वनि भी अच्छी हो तो नए व्यक्ति को कुछ एकाग्रता में सफलता प्राप्त होती है। तब वह रुचि से बल लगाता है। उसको धुन अच्छी लगती है तब मोटे स्तर पर उसका मन बाहर से हटकर वहाँ लग जाता है। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४१ क्रियात्मक योगाभ्यास

पापविनाश : आषाढ़ कृ. ९/२०६०-२२/७/०३

आपकी दृष्टि में अघमर्षण मन्त्रों के द्वारा ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने से पाप कैसे दूर होते हैं? आप में से कोई बताएगा? हाँ जी!

साधक ८- ईश्वर सब जगत् को रचकर, अन्तर्यामी होकर जीवों के पाप-पुण्यों को देखते हुए, पक्षपात छोड़कर उचित न्याय देता है; यह निश्चय करके हम मन-वाणी-शरीर से पाप कर्म नहीं करते हैं।

स्वामी जी - और कौन सुनाएँगा? हाँ जी!

साधक २- जब हमारे कार्यों का निरीक्षण करने वाला कोई अधिकारी हमको देख रहा होता है, उस काल में हम उसके विरुद्ध कोई क्रिया नहीं करते हैं। इसी प्रकार से ईश्वर भी संसार की रचना करने वाला और हमारा व हमारे कार्यों का निरीक्षक, न्यायाधीश और हमारा स्वामी है; ऐसा जान लेने के पश्चात् एक तो हम कार्य करते हुए उसके विरुद्ध आचरण नहीं करेंगे। दूसरा - वह हमारे कर्मों को यथावत् जानकर उसके अनुरूप फल देता है। उचित कर्मों का उचित फल और अनुचित कर्मों का फल दण्ड रूप में पशु आदि योनि के रूप में देता है; यह जानकर भी हम पाप कर्मों को करने से अवरुद्ध हो जाते हैं। इस प्रकार से हमारे स्वनिरीक्षण से वर्त्तमान अनुचित कर्मों की निवृत्ति और किए हुए कर्मों का भी फल भोगने से निवृत्ति होती है। इस प्रकार ईश्वर को ऐसा जानने-मानने से पाप क्षीण होते हैं।

स्वामी जी - और किसी की समझ में क्या आया?

साधक ७- परमात्मा सर्वव्यापक है। इसलिए उससे छिपकर कोई भी बुरा काम नहीं किया जा सकता है। उसने सारे संसार को रचा है। वही सबका स्वामी है। यदि हम कोई पाप कर्म करेंगे तो वह हमें दण्डित भी करेगा।

स्वामी जी - हाँ जी!

साधक ४- स्वामी जी! यहाँ एक शंका है - अघमर्षण के जो मन्त्र हैं, उनमें मुख्य रूप से ईश्वर की रचना आदि गुणों का वर्णन है। उसकी व्यापकता और न्यायकारिता के विषय में 'मनसा परिक्रमा' में वर्णन है। तो पाप दूर होने की बात इन मन्त्रों की अपेक्षा 'मनसा परिक्रमा' मन्त्रों में अधिक उपयुक्त दिखाई देती है। इसका क्या समाधान है?

स्वामी जी - कौन-सी बात?

साधक ४- जो हेतु दिए गए कि ईश्वर व्यापक है, उसको उपस्थित मानना और उसकी न्याय व्यवस्था को देखकर बुरे कर्मों से बचना। ये जो दो बातें हैं, इनका सम्बन्ध 'मनसा परिक्रमा' मन्त्रों से कुछ अधिक लगता है।

स्वामी जी - हाँ! यहाँ इतना देखना है कि हम जिस न्यायकारी भाग को लेकर चल रहे हैं, उसका सम्बन्ध इन मन्त्रों से है। जैसे कि इसमें यह वर्णन आया कि ईश्वर इस सृष्टि को बनाता है और जैसे पूर्वकाल में सृष्टि बनाई थी वैसे ही वर्त्तमान सृष्टि को बनाया है। इससे यह बात जुड़ती है कि ईश्वर पिछली सृष्टि में किए कर्मों के बचे हुए फल भी वर्त्तमान सृष्टि में देता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यहाँ यह बात भी आई **मिशतो वशी** 'मिशतो' सहज स्वभाव व बिना कठिनाई के संसार को बनाता, चलाता और सबको वश में रखता है। वश में रखने से यह आया कि कोई भी व्यक्ति पाप-पुण्य करके बच नहीं सकता। इसमें एक और बात जोड़नी चाहिए कि ईश्वर संसार को बनाता है और पुनः प्रलय भी कर देता है और **यथापूर्वम्** शब्द से यह बात भी आती है कि ईश्वर के ज्ञान में परिवर्त्तन नहीं होता।

तो इन सब बातों का अभिप्राय निकला कि व्यक्ति जब ईश्वर के न्याय स्वरूप को जानता है तब उसके अनुरूप काम करता है अर्थात् पाप से बचता है। जैसे जो व्यक्ति सृष्टि को, इस संसार को अनित्य समझता है तब भी वह पापों से बचता है। व्यक्ति जब जानता है कि यह संसार नहीं था, यह बनाया गया और इसका प्रलय भी होगा तो उन विचारों को लेकर बुरे कर्म करने से बच जाता है।

ईश्वर को इस सृष्टि का रचयिता मानने में यह बात सामने आई कि यह संसार बना बनाया तो नहीं था और इस संसार को किसी मनुष्य ने नहीं बनाया तथा जो इसको बनाने वाला है वही इसका स्वामी भी है। इस विचार से स्वस्वामि-सम्बन्ध हटेगा। इतने बड़े संसार को सहज स्वभाव से बनाने के कारण ईश्वर सर्वशक्तिमान् सिद्ध होता है, इससे हम अपने किए पाप कर्मों के फल से बच नहीं सकते; यह भी हमारे मन में आता है। जब हम ऐसे वर्णन करते या सुनते हैं तब परिणाम-स्वरूप ईश्वर के प्रति प्रेम, श्रद्धा उत्पन्न होती है। तो इन मंत्रों का प्रयोग करते समय इस प्रकार से व्यक्ति को विचार करते हुए बुरे कर्मों को छोड़ना चाहिए।

कल (क्रियात्मक योग २१/०७/२००३) हमने अघमर्षण मन्त्र में से एक मन्त्र का अर्थ सहित प्रयोग किया था। आज अब शेष मन्त्रों का प्रयोग करते हुए प्रयास करेंगे कि मन्त्रों के शब्दों को बोलते हुए उनके अर्थ का भी विचार और ईश्वर को सम्बोधित करते रहें।

ओ३म् ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्.....।

हम दो प्रकार से मन्त्रों को बोलते हैं। एक प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में ओम् लगाना और दूसरा पूरे प्रकरण के आरम्भ में एक बार ओम् लगाना। तो आपका कौन-सा अभ्यास है?

साधक ७— प्रत्येक मन्त्र के आरम्भ में।

साधक गण — प्रति प्रकरण के आरम्भ में प्रयोग करते हैं।

स्वामी जी — दोनों प्रकार से प्रयोग करते हैं। ये तीनों मन्त्र एक प्रकरण के हैं, इसलिए प्रारम्भ में एक बार ओम् का पाठ करेंगे।

समुद्रादर्णवादधि.....। सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता.....।

अब आप इन्हीं तीनों मन्त्रों का प्रयोग मानसिक रूप में करेंगे और उसकी एक रीति यह होगी कि इसी गति में बोलते हुए मन्त्रों के शब्दों का अर्थ साथ-साथ करना। दूसरी रीति है कि मन्त्र का पाठ कर लो **ओम् ऋतञ्च सत्यञ्च..।** पुनः रुककर एक-एक शब्द का अर्थ करो।

आपको दोनों में से जो अनुकूल हो, उसको करो। आप यदि बोलते-बोलते कर सकते हैं तो वैसा करें। यदि ऐसा समझते हो कि बोलते हुए करना कठिन है और रुककर एक-एक शब्द का अर्थ करना सरल है तो ऐसा करें। अब आप सावधान होकर मानसिक प्रयोग आरम्भ करें -

साधक ८— स्वामी दयानन्द जी ने तीनों मन्त्रों के शब्दों का अर्थ यथास्थान पृथक्-पृथक् किया है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – वहाँ अन्त में तीनों मन्त्रों का अर्थ इकट्ठा दे दिया।

साधक ८– हाँ जी !

स्वामी जी – तो प्रायः एक व्यक्ति तीनों मन्त्रों को इकट्ठा अर्थ करने में समर्थ नहीं हो पाता और जो कोई इतना समर्थ हो, वह तीनों मन्त्रों का इकट्ठा अर्थ कर सकता हो, तो वह अलग बात है। यदि आप मानते हैं कि हम तीनों मन्त्रों को बोलेंगे, तत्पश्चात् एक साथ अर्थ करेंगे तो इस रूप में कर सकते हैं और एक-एक मन्त्र का साथ-साथ अर्थ करना चाहें तो ऐसा भी कर सकते हैं और एक मन्त्र को पूरा बोलकर उसका अर्थ करो, तत्पश्चात् दूसरे मन्त्र को बोलो उसका अर्थ करो, पुनः तीसरे मन्त्र को बोलो उसका अर्थ करो। इसमें से जो आपके अनुकूल हो, उसे आप करें। किन्तु साथ ही ईश्वर को सम्बोधित करने का प्रयत्न भी करें। आप यह भी देखेंगे कि आपकी रुचि, प्रीति ईश्वर में है या किसी लौकिक पदार्थ में। धैर्य-पूर्वक गम्भीरता से आरम्भ करें –

प्रयोग आरम्भ समय लगभग दो मिनट।

अब आप रुकेंगे और सुनाएँगे कि कैसी स्थिति रही ?

साधक ५– स्वामी जी ! मैं तीनों मन्त्रों का पाठ पूरा नहीं कर पाया। पहला मन्त्र पूरा करके दूसरे मन्त्र का अर्थ कर रहा था। अब तक स्थिति ठीक चल रही थी।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक ४– बीच में दो-तीन बार बाहर की ध्वनियों में मन को लगाया, पुनः रोक लिया। शेष अर्थ चिन्तन और ईश्वर-सपर्मण बनाए रखा।

स्वामी जी – जैसे आपने अपने मन को किसी दूसरे विषय में लगाया और पुनः रोक दिया। तो रोकने के पश्चात् पुनः लगा रहा, उखड़ गया या क्या रहा ?

साधक ४– थोड़े समय पश्चात् पुनः हटा। दो-तीन बार इस तरह से हुआ।

स्वामी जी – अच्छा ! जब वह मन उखड़ता है तब आभास होता है या उखड़ने के पश्चात् होता है ?

साधक ४– उखड़ने के पश्चात् आभास होता है।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे –

साधक ३– अर्थ के साथ समर्पण का भाव भी बना रहा किन्तु ईश्वर के प्रति जो श्रद्धा व प्रीति है, उसके प्रति लगाव कम रहा। ईश्वर के समक्ष मैं इन मन्त्रों का अर्थ कर रहा हूँ, प्रायः इस रूप में भावना को बनाए रखा और वृत्तियाँ उठाईं, ऐसा आभास नहीं हुआ।

स्वामी जी – हाँ जी ! अब आप बताएँगे।

साधक २– उस काल में रचना और रचयिता को न देखते हुए उससे सम्बन्ध बनाने का विशेष भाव उठा। शब्दार्थ आदि सामान्य रूप से करता जा रहा था। कोई कठिन नहीं है, ऐसा मानकर अभ्यास कर रहा था। विशेष ध्यान दोनों के सम्बन्ध बनाने पर था। निष्कर्ष अभी नहीं निकाल पा रहा था।

स्वामी जी – इन मन्त्रों का प्रयोग करते हुए इनका जो अर्थाभिप्राय है कि ईश्वर सृष्टि को बनाता, पालन और प्रलय करता है, इसको करते हुए आपका स्व-स्वामि-सम्बन्ध हटता है या नहीं हटता। इनका प्रभाव पड़ता है या कैसा रहता है ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– पृथक् से विचार करने पर या बहुत अधिक विचार करने पर ये दोनों विषय बन पाते हैं अन्यथा ये विषय नहीं आ पाते।

स्वामी जी – अच्छा ! आपका स्व-स्वामि-सम्बन्ध का स्तर दिन में उठते-बैठते, खाते-पीते, चलते-फिरते कैसा रहता है ?

साधक ७– त्यागभाव रहता है। विशेष लगाव नहीं रहता।

स्वामी जी – आप बताएँगे दिन में स्व-स्वामि-सम्बन्ध कैसा रहता है। ?

साधक ४– प्रायः अपनी वस्तुओं में स्व-स्वामि-सम्बन्ध बना रहता है। कभी सूक्ष्मता से विचारने पर कुछ समय के लिए टूट जाता है। कभी-कभी सामान्य चिन्तन करने पर ऐसा लगता है कि वह टूटा है, पर उस समय दो विचार एक साथ रहते हैं कि ये सारी वस्तुएँ ईश्वर की भी हैं और मेरे पास जो वस्तुएँ हैं, मेरी भी हैं। इस प्रकार से दोनों विचारधाराएँ साथ में बनी हुई प्रतीत होती हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! स्व-स्वामि-सम्बन्ध के विषय में आपका अब तक कितना स्तर बना, आप बताएँ।

साधक ३– पहले से तो प्रगति हुई है और जो वस्तुएँ मेरे अधिकार में हैं, वे यदि मुझ से पृथक् हो जाएँ तो ऐसा लगता है कि अब कष्ट नहीं होगा। इन वस्तुओं का, पदार्थों का स्वामी ईश्वर है, यह मेरा ज्ञान पहले की अपेक्षा बढ़ता जा रहा है। ऐसा अनुभव में आता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे स्व-स्वामि-सम्बन्ध=मैं और मेरा के विषय में –

साधक ५– उपासना काल को छोड़कर व्यवहार काल में कम समय के लिए ही मैं ईश्वर को स्वामी मानकर चल पाता हूँ, प्रायः स्वयं को ही शरीरादि का स्वामी मानता हूँ।

साधक ३– एक बात छूट गई थी।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ३– जो आन्तरिक गुण हैं विद्या इत्यादि, इनके प्रति मेरापन – ये मेरे हैं, यह भाव अभी भी पर्याप्त मात्रा में विद्यमान है। जड़ पदार्थों के प्रति तो कम हुआ है किन्तु जो विद्यादि पदार्थ हैं, उनके विषय में बना हुआ है।

स्वामी जी – विद्या, धर्म आदि हैं, उनके प्रति आपका स्व-स्वामि-सम्बन्ध अधिक है।

साधक ३– अधिक बना हुआ है।

स्वामी जी – अधिक बना हुआ है। हाँ जी !

साधक १– स्वामी जी ! एक ऐसी स्थिति है शरीर को नाशवान् आदि मानने के कारण व्यक्ति पदार्थों को अपना तो नहीं मान रहा है परन्तु अभी ईश्वर का भी उस स्तर पर स्वीकार नहीं कर पा रहा है। अभी ईश्वर के विषय में उतना प्रगाढ़ चिन्तन न होने से ये सभी वस्तुएँ ईश्वर की हैं, यह भी बुद्धि नहीं रहती किन्तु मेरी नहीं हैं, यह भाव अधिक रहता है; तो भी स्व-स्वामि-सम्बन्ध टूटा हुआ माना जाएगा अथवा बना हुआ माना जाएगा ?

स्वामी जी – इसको कह सकते हैं नाशवान् का एक भाग सम्पन्न हुआ, अभी पूरा नहीं हुआ है। क्योंकि जब वह अपने शरीर सहित अन्य सभी शरीरों, पूरी सृष्टि को नाशवान् देखता है तब यह भी दिखाई देता है कि जब मेरा शरीर नहीं बना था, तब कुछ भी नहीं था। तब मैं और मेरे की कोई बात ही नहीं थी। अर्थात् उसने, मैं और मेरे का जो सम्बन्ध था, उसको हटा दिया। यह पृथक् बात है कि वह सारा हटाया, कुछ हटा पर उस स्थिति में हटता है। इसी के साथ जब वह

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वस्तुओं को विद्यमान देखता है तब विचार करता है कि ये वस्तुए मेरी तो थी नहीं, इसलिए अब भी नहीं हैं। पुनः किसकी हैं? पुनः निर्णय निकालता है कि ईश्वर ने ही बनाया है तो ईश्वर ही सबका स्वामी है, ईश्वर की ही ये सारी वस्तुएँ हैं। इस प्रकार दोनों भाग सम्पन्न होते हैं।

केवल नाशवान् की स्थिति को देखने से भी कुछ मात्रा में स्व-स्वामि-सम्बन्ध घट सकता है। जैसे कि कोई व्यक्ति ईश्वर को नहीं मानता, रचयिता भी नहीं मानता और उसकी उपासना भी नहीं करता परन्तु जब उसको मृत्यु दिखाई देती है तब वस्तुओं से अपना अधिकार तो जाता हुआ देखता ही है। अतः उसका स्व-स्वामि-सम्बन्ध घटता है। परन्तु ईश्वर को स्वामी माने बिना हमारा स्व-स्वामि-सम्बन्ध पूर्णतया हटना असम्भव है। आपको कुछ अन्तर समझ में आया?

साधक ७– स्वामी जी! इन्होंने कहा कि मैं संसार की वस्तुओं को अपना तो नहीं समझ रहा हूँ।

स्वामी जी – किन्तु ईश्वर का ही है, ऐसा भी नहीं मान रहा है।

साधक ७– पुनः हम प्रमाणों से सिद्ध करेंगे कि किसको स्वामी मानें?

स्वामी जी – सुनो-सुनो! भाषा थोड़ी आपको वैसी (कोमल) बनानी पड़ेगी। क्योंकि भाषा बोलने में यदि उत्तेजना होगी, खण्डन का रूप होगा तो वह आपको प्रभावित करेगी। यदि आप कभी देखना चाहें तो आज जिस व्यक्ति ने यह समझा कि यह नाशवान् है, उसकी भाषा बदली हुई मिलेगी। उसकी भाषा पहले जैसी नहीं रहेगी। उसमें पहले जो उत्तेजना, खण्डन, उग्रता की स्थिति थी, वह जब मृत्यु को देखेगा तब वह स्थिति प्रायः नहीं रहेगी।

साधक ७– नम्र हो जाएगा।

स्वामी जी – वह बदल जाएगा। उसका प्रभाव यथाशीघ्र पड़ता है। दूसरी बात – जिस भाषा का प्रयोग आप बाहर बोलने में करते हैं, वैसी ही आपके मन में चक्कर काटती रहती है। मन में उत्तेजना और खण्डनात्मक विचार होंगे। जिससे मन में जो स्थिति बननी चाहिए, वह नहीं बन पाएगी। इसलिए भाषा का प्रयोग कैसा करना चाहिए, यह बहुत बड़ा विज्ञान है। बोलने में सूक्ष्म अभिमान का होना और वह सूक्ष्म अभिमान कहाँ तक जाता है? कल्पना कीजिए आपने बहुत प्रिय बोला, बड़ी नम्रता से बोला, जैसा बताया वैसा बोला। पुनः आपने विचार किया कि मैंने बहुत प्रिय बोला। तो वह अभिमान यहाँ आकर जुड़ेगा। आप नहीं समझे?

प्रिय बोलते समय भी यह देखना चाहिए कि क्या यहाँ मैं और मेरा का अभिमान होता है या नहीं? इसको पकड़ना पड़ता है। लोक में आप इस बात को देखेंगे जैसे कि एक व्यक्ति धार्मिक, विद्वान्, बलवान् और प्रतिष्ठित है। वह कभी सैकड़ों या हजारों लोगों के बीच में अपने से कुछ निम्न योग्यता वाले, निम्न विद्या वाले व्यक्ति के पैर छूकर नमस्ते करता है। यद्यपि लोग भी जानते हैं कि नमस्ते करने वाले की योग्यता सामने वाले से अधिक है, पुनरपि उन सबके सामने ऐसा कर रहा है तो इसका एक अभिप्राय यह निकलता है कि वह व्यक्ति अपने से कम योग्यता वाले व्यक्ति के पैर लोगों के बीच में इसलिए छूता है कि लोग कहेंगे – देखो! यह कितना निराभिमानी व्यक्ति है। अपने से कम योग्यता वाले व्यक्ति को सम्मान देता है। क्या समझ में आया? ऐसा नहीं होता क्या?

साधक २– नम्रता से ही अपने को बड़ा मानता है।

स्वामी जी – हाँ! नम्रता के आधार पर स्वयं को बड़ा सिद्ध करने की बात कर रहा है। यह अभिमान व्यक्ति का यहाँ तक जाता है। कुछ तो पकड़ में आया होगा?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – आ गया।

स्वामी जी – यहाँ मैं और मेरा पहले जुड़ता है। अभिमान उसके पीछे उभरकर आता है, दोनों का घनिष्ट सम्बन्ध है। दोहरा लो।

साधक ५ – यहाँ पर...।

स्वामी जी – यहाँ पर मैं और मेरा पहले आता है। पहले व्यक्ति उनका स्वामी बनता है और पुनः कहता है मैं इस दृष्टि से बड़ा हूँ, मेरे अन्दर ये वस्तुएँ हैं। मैं इस दृष्टि से महान् हूँ क्योंकि मुझमें इतनी विद्या है। मैं इस दृष्टि से महान् हूँ, मैं इतने धन का स्वामी हूँ, बलवान् हूँ।

अच्छा ! एक स्थिति है जब मैं और मेरा हट जाता है तब यह अभिमान उत्पन्न नहीं हो पाता। इसलिए वैज्ञानिक लोग जो ईश्वर को नहीं मानते, ध्यान देना, वे कभी अभिमान रहित नहीं हो पाते। कभी नहीं हो सकेंग।

साधक १ – स्वामी जी ! जो व्यक्ति अभी ईश्वर को सब कुछ का स्वामी नहीं मानता अथवा यदि कोई ईश्वर को ही नहीं मानता है तो उसकी क्या हानि हो सकती है ?

स्वामी जी – सृष्टि की रचना कोई नहीं करता आदि बातों को मानने पर स्व-स्वामि-सम्बन्ध बढ़ता चला जाएगा। सृष्टि को अनित्य मान लेने पर मैं और मेरा का भाव ढीला पड़ता जाता है। जब व्यक्ति बल पूर्वक अपन-आपको यह समझाता है कि तुम्हारे पास सुई तक नहीं रहेगी तो उसको समझने में सरलता हो जाती है।

जैसा कि इन्होंने (साधक तीन) ने बताया बाह्य वस्तुओं को तो ईश्वर का मान लेते हैं परन्तु आन्तरिक विद्या आदि सूक्ष्म वस्तुओं को कम मान पाते हैं। परन्तु आप देख सकते हैं कि भूमि, भवन आदि के समान ही विद्या से भी हमारा कोई सम्बन्ध नहीं था और आगे भी नहीं रहेगा। शरीरादि के नष्ट हो जाने पर तदाश्रित विद्या भी निश्चय से नहीं रहेगी। इस प्रकार मानकर चलने पर योग में सफलता प्राप्त होती है।

साधक १ – इसको अपना स्वरूप कैसे मान लेता है ?

स्वामी जी – पहले शरीर, चित्त आदि को अपना स्वरूप मानता है, पुनः उनसे विद्या, समाधि आदि जो भी उपलब्धियाँ होती हैं उनको भी अपना स्वरूप मान लेता है। इस प्रकार यह मेरी सिद्धि है, विद्या है आदि को स्वाभाविक रूप में अपना मान लेता है।

यद्यपि यह स्व-स्वामि-सम्बन्ध जटिल है, पुनरपि इसको हटाने का उपाय यही है कि साधक प्रथम संसार का ठीक-ठीक ज्ञान करे। पुनः अपनी अर्थात् जीवात्मा की असमर्थता को देखता रहे। इसके साथ, ईश्वर की सहायता से सारे कार्यों की सिद्धि कर पाता हूँ, यह अनुभूति भी बनाए रखे। इस प्रकार अभ्यास करते रहने से स्व-स्वामि-सम्बन्ध टूट जाता है।

स्व-स्वामि-सम्बन्ध को नष्ट कर देने पर ऐसी अनुभूति होती है कि शरीर में रहते हुए भी यह मेरा नहीं है, मैं किराए के भवन में रह रहा हूँ और कभी भी निकाला जा सकता हूँ। इस प्रकार की भावना बनाने से स्व-स्वामि-सम्बन्ध नहीं रहता। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५० ज्ञानखण्ड

प्रलयावस्था : आषाढ़ कृ. ९/२०६०-२२/७/०३

व्यक्ति जब संसार को प्रलयवत् बनाने में सफल हो जाता है तब उसका मन पर अधिकार हो जाता है। प्रलयवत् अवस्था बना लेने के पश्चात् विविध विषयों को उठाना और रोकने का प्रयत्न करने पर भी न रुकना आदि सारी घटनाएँ रुक जाती हैं। इसके विपरीत जब हम प्रलय की स्थिति नहीं बनाते हैं तब विषय हमारे सामने आते हैं और हमको प्रभावित करते हैं, खींचने लगते हैं। यद्यपि जीवात्मा ही सब का संचालन करता है। पुनरपि जब विषय सामने आते हैं और व्यक्ति उन्हें रोकना चाहता है, उसके लिए पूरा बल लगाता है तब भी स्थिति यह होती है कि विषय अन्दर प्रवेश कर जाते हैं।

आपने कभी यह प्रयोग किया हो तो आपको पता होगा। जैसे कि हमने कभी किसी विषय को रोक दिया। अब थोड़ा-सा इधर हुए कि वही विषय पुनः आकर खड़ा हो गया। हमने पुनः हटाया किन्तु पुनः आकर खड़ा हो गया। लोक में व्यक्ति की यही स्थिति सतत बनी रहती है।

एक पक्ष है जिसमें मन को रोका नहीं जाता है। उसका यह मानना है कि मन जैसा करना चाहे वैसा करने दो, जहाँ जाना चाहे वहाँ जाने दो। जैसा सोचना चाहे अच्छा-बुरा, वैसा सोचने दो। उसको रोकने का प्रयत्न ही नहीं करो, क्योंकि दौड़ लगा-लगा कर मन अन्ततः थक जाएगा और अपने आप ही रुक जाएगा।

अच्छा ! उनको ऐसा प्रशिक्षण दिया जाता है। उनके प्रशिक्षक ऐसा ही उपदेश करते हैं और लोगों को प्रभावित करते हैं। सुनने वाले को भी बड़ा अच्छा लगता है। साधना करने वाले जो मन को रोक-रोककर हार गए, पुनरपि मन नहीं रुका। विचार बलात् प्रविष्ट हो जाते हैं, तो उनके लिए यह बहुत सुविधा जनक स्थिति है। उन्हें लगता है कि यह तो बहुत अच्छी स्थिति है। अब हम मन को कभी नहीं रोकेंगे। अब उन्होंने मान लिया कि मन को जहाँ इच्छा हो जाने दो तो ही ठीक है। अब उनको कोई कठिनाई प्रतीत नहीं होती।

अब प्रश्न उठता है कि ऐसा क्यों सिखाया जाता है? तो हो सकता है सिखाने वाले को इसका परिणाम पता नहीं हो या वह सुनने वालों के मनोविज्ञान को जानता होगा कि ये इसी पद्धति में प्रसन्न रहेंगे अथवा इसके अतिरिक्त कोई दूसरी विधि ही उसे नहीं आती हो, इसलिए सिखाता होगा। जो भी हो परन्तु यह जो माना जाता है कि मन अपने-आप रुक जाएगा; यह निराधार, अप्रामाणिक बात है। भला जो पदार्थ आत्मा के प्रयत्न से चलता हो और आत्मा उसे न रोके तब वह स्वयं कैसे रुक जाएगा? क्या समझ में आया?

ब्रह्मचारी – मन आत्मा के द्वारा नियन्त्रित होकर चलता है। यदि मन को नियन्त्रित करने के स्थान पर स्वेच्छा पूर्वक विचरने के लिए छोड़ दिया जाए। तब वह स्वतः कैसे रुकेगा?

स्वामी जी – इसके साथ लोगों ने एक बात जोड़ी कि मन को बलपूर्वक विषयों से रोकना; यह अवैधानिक है। यह रीति अशुद्ध है, भला कोई वस्तु बलात् रुक सकती है। पुनः लोगों ने इसको व्यावहारिक रूप दिया कि बालकों को खुला छोड़ दो। उन्हें स्वेच्छापूर्वक कुछ भी करने दो। कहीं भी जाने दो। बलपूर्वक उनको न रोकना, न ही दण्ड देना।

आज आप देख सकते हैं। देश-विदेश में यह प्रचलन लोगों ने अपना लिया और बच्चों को पूरी छूट दे दी। कोई नियन्त्रण नहीं रखा। अब उसी का परिणाम निकला कि आज जितने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक-बालिकाएँ हैं या जो युवा पीढ़ी है, वे यहाँ तक बिगड़गए जिसकी कोई सीमा नहीं रही। यही परिणाम यहाँ भी निकलेगा। मन को खुला छोड़ने वाले व्यक्ति का मन इतना चंचल हो जाएगा कि उसकी कोई सीमा नहीं रहेगी।

अब आगे बढ़ो एक दूसरा पक्ष - इसमें व्यक्ति मन को रोकने की बात सोचता है और मन को रोकने का प्रयत्न करता है। मन को अशुभ विचारों से हटाकर शुभ विचारों में लगाने का प्रयास करता है परन्तु प्रयत्न करने पर भी मन शुभ विचारों में नहीं लगता व अशुभ विचारों से नहीं हटता; यह स्थिति है। तो इस प्रकार प्रयत्न करने पर भी व्यक्ति का मन स्थिर न होने पर वह निराशावादी हो जाता है। यहाँ आकर वह भी मानने लगता है कि मन को अधिकार में नहीं किया जा सकता। पुनः उसकी एक मान्यता यह बन जाती है कि मन एक चेतन वस्तु है और वह स्वयं चलता है। जिस प्रकार कोई चेतन व्यक्ति हमारी बात नहीं मानता, उसी प्रकार मन भी चेतन वस्तु है, अतः हमारी बात नहीं मानता है।

एक तीसरा पक्ष है जो यथार्थ तक पहुँचने का प्रयास करता है। उसमें प्रयास करने वाला व्यक्ति ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़ता-सुनता और विचार करता है और उस निष्कर्ष पर आता है कि मन चेतन वस्तु नहीं है, वह जड़ है। किन्तु जड़ वस्तु मानते हुए भी, इतने अध्ययन करने- कराने के पश्चात् भी, जड़-चेतन का विवेचन करने के पश्चात्, वस्तुओं के शब्दार्थ सम्बन्ध जान लेने के पश्चात् भी व्यवहार में सभी प्रयोगों में मन को चेतन मानकर ही चलता है। समझ में आ गया। क्या आया?

साधक ८- ऋषियों के ग्रन्थों में पढ़ता है कि मन जड़ वस्तु है किन्तु प्रयोग करते समय चेतन ही समझता है।

स्वामी जी - इस पक्ष में आप स्वयं को भी खड़ा देख सकते हैं। अपने जैसे हजारों लोगों को भी देख सकते हैं। अच्छा! अब आप बताएँगे कि आप स्वयं मन को चेतन मानकर चलते हैं या जड़ मानकर?

साधक ५- दोनों अवस्थाएँ होती हैं, स्वामी जी! जब विचारपूर्वक प्रयोग करता हूँ तब अनुभव होता है कि मन जड़ पदार्थ है, इसको मैं चलाता हूँ। जब इस प्रकार बिना विचार किए प्रयोग करता हूँ तब लगता है कि मन चेतन है। चेतन मानकर ही व्यवहार करता हूँ।

स्वामी जी - अब आप बोलेंगे। आपकी क्या स्थिति रहती है?

साधक ४- प्रायः उसको जड़ ही मानता हूँ। जड़ मानते हुए भी उसको अपनी इच्छा से लौकिकता के प्रभाव में रखता हूँ।

स्वामी जी - अब आप बताएँगे।

साधक ३- व्यवहार में ऐसा बहुत-सा काल होता है जहाँ पर चेतन मानकर ही व्यवहार होता है। सिद्धान्त रूप में जड़ मानते हैं परन्तु उसकी जो प्रक्रिया है उसको देखते हुए सिद्ध होता है कि चेतन मानकर ही चल रहे हैं।

स्वामी जी - अब आप इसको पढ़ते-सुनते जाएँगे और दिनभर प्रयोग करते रहेंगे तब जैसे-जैसे प्रयोग करते जाएँगे, वैसे-वैसे मन को चेतन मानकर प्रयोग करने की स्थिति कम होती जाएगी और जड़ मानकर किए जाने वाले प्रयोग बढ़ते चले जाएँगे। यह गतिविधि रहेगी। यदि आपने पूरा ध्यान नहीं दिया, पूरे तन-मन-धन से प्रयोग नहीं किए तब यह भी हो सकता है कि आज आप जिस स्थिति में खड़े हैं, पन्द्रह-बीस वर्ष के पश्चात् भी उसी में खड़े रहेंगे। यदि आप उचित प्रयत्न, उचित तप-त्याग नहीं करेंगे तब आज जो स्थिति है, वही वर्षों में भी रहेगी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७– एक शरीर में दो चेतन शक्तियाँ विद्यमान हों तो वहाँ पर विषमता आएगी। तब एक अपने अनुभव से चलाएगा और दूसरा अपने अनुभव से चलाएगा। इसलिए मन को जड़ ही माना जाए।

स्वामी जी – प्रमाणों से तो सिद्ध है ही। शास्त्रों में भी विस्तार से लिखा है परन्तु वैसा व्यवहार में नहीं दिखता। जैसे कि प्रमाणों से यह सिद्ध है कि ईश्वर आनन्द स्वरूप है किन्तु आप ईश्वर का आनन्द पा चुके हों, ऐसा तो नहीं है। है कोई आप में से, जो ईश्वर का आनन्द ले रहा हो? हजारों में एकाध व्यक्ति का मिलना कठिन है, जो अन्यों को बता रहा हो कि ईश्वर आनन्द स्वरूप है और स्वयं ईश्वर का आनन्द पा रहा हो, पाया हो। ठीक है, प्रमाणों से सिद्ध है कि ईश्वर आनन्द स्वरूप है। उसका नित्य आनन्द है, दुःख रहित आनन्द है, सब कुछ है पर प्रयोग में तो नहीं है। किसी को उपलब्ध तो नहीं है! मन के विषय में भी यही बात है। ऐसे कथन मात्र से लोक में यह दुष्प्रभाव पड़ा कि लोग मानने लगे ये सब कहने-सुनने की बातें हैं। ईश्वर ऐसी कोई वस्तु है, वह आनन्दस्वरूप है और उसको पाकर व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है; यह सन्दिग्ध है। इससे एक ऐसा बुद्धिजीवी वर्ग तैयार हुआ जो खुलकर घोषणा करने लगा कि ईश्वर है, उसका आनन्द मिलता है, मोक्ष होता है, समाधि लगती है, आदर्श रूप में यम-नियमों का पालन करो आदि केवल सुनने-सुनाने की बातें हैं। व्यवहार के अन्दर आने वाली बातें नहीं हैं। आज का बुद्धिजीवी वर्ग इस बात को मानकर चल रहा है।

सभी क्षेत्रों में यही स्थिति देखी जाती है। केवल योग या अध्यात्म में ही नहीं, जहाँ कहीं भी पहले कोई नियम बनाया जाता है और पश्चात् सबकी बुद्धि में यही बात आती है कि इसका पालन कोई नहीं करेगा। ऐसा आज समाज, राष्ट्र में आप देख सकते हैं। यह परम्परा, रीति-पद्धति अच्छी नहीं है।

यद्यपि ईश्वर, आत्मा और प्रकृति विषयक वैदिक मान्यताएँ, ऋषियों के प्रयोग, उनके लेख सत्य हैं पुनरपि उनको पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने वाले पूरे तन-मन-धन से जब तक अनुभवात्मक प्रयोग नहीं करते हैं तब तक वह शाब्दिक ज्ञान मात्र ही रहेगा। जबकि शाब्दिक ज्ञान का प्रभाव हमारे जीवन में अधिक नहीं पड़ता, बहुत कम पड़ता है। व्यक्ति का अपने ऊपर भी प्रभाव नहीं पड़ता और समाज के ऊपर तो पड़ता ही नहीं। यदि आप भी ऐसा ही करेंगे तब आपकी भी यही स्थिति बनी रहेगी। जैसे कि हमने शब्दों से जाना, हमने पढ़ा-पढ़ाया है, लेख लिखे, उपदेश दिए कि मन जड़ है, उसको हम चलाते हैं, पुनरपि हमारे सामने यह घटना घट रही है कि हमारे न चाहते हुए भी मन विषयों को उपस्थित कर रहा है। हम नहीं चाहते परन्तु विचार उठ रहे हैं। हम चाहते हैं कि एक घण्टा उपासना करें किन्तु ऐसा लगता है कि मन बीच-बीच में विषय को उठा देता है। संध्या होने ही नहीं देता, जमता ही नहीं। हम बैठे हैं और कुछ का कुछ आ रहा है। विचार पहले ही आ जाते हैं और आने के पश्चात् हमको पता चलता है कि मैं तो विचार ले आया। अब बताओ सुधार कैसे होगा? व्यक्ति विचारों को लाता रहेगा और वे उसको प्रभावित करते रहेंगे।

आप ध्यान देकर पता लगाएँगे कि ये विचार कैसे व कहाँ से आ गए? इसके लिए व्यक्ति शंका करता है, वह आगे बढ़कर सोचता है – इन विचारों को आने से पहले क्यों नहीं रोका जाता है? विचारों को रोकने लिए मन को क्यों नहीं रोका जा सकता? ऐसा क्यों नहीं होता? यही गवेषणा करते-करते इसके प्रयोग होते हैं। जब विचार आ चुके होते हैं तब व्यक्ति को पता चलता है और वह कहता है विचार आ गए, इनको हटाओ। दिनभर व्यक्ति की यही स्थिति बनी रहती है और उसका जीवन प्रभावित होता रहता है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपने सुना है, स्मरण होगा कि बिना परीक्षा किए ज्ञान का ग्रहण होता रहता है। यहाँ ज्ञान का अर्थ है मिथ्या ज्ञान, संशयात्मक ज्ञान, निर्णयात्मक ज्ञान आदि। बिना परीक्षा के मानसिक कर्म का ग्रहण होता रहता है। शुभ या अशुभ कर्म का ग्रहण होता रहता है। सकाम या निष्काम कर्म बिना परीक्षा के चलता रहता है। बिना परीक्षा के उपासना का ग्रहण या परित्याग अर्थात् जो उपासना करने योग्य नहीं है उसको करते रहना आदि चलता रहता है और व्यक्ति को पता भी नहीं चलता कि क्या हो रहा है? इनके उदाहरण तो याद होंगे आपको या दोहराने पड़ेंगे? क्यों जी! बताओ सबको समझ में आ गए तीनों उदाहरण।

एक मोटा दृष्टान्त लो। शरीर के विषय में प्रसंग चल रहा है। सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति प्रलय को लेकर। आप थोड़ा ध्यान देंगे तो पता चलेगा कि प्रायः व्यक्ति शरीर को नित्य मानकर चलता है। बिना परीक्षा के नित्य मानना, यह ज्ञान का ग्रहण है। क्या समझ में आया?

साधक ३– अज्ञान का ग्रहण है।

स्वामी जी – नहीं नहीं।

साधक ३– विपरीत ज्ञान का ग्रहण है।

स्वामी जी – हाँ! विशेषण जोड़ दो। पहले हमने सामान्य रूप से ज्ञान का दोनों प्रकार का अर्थ ले लिया था। यह अज्ञान है। वैसे हम इसको ज्ञान कहते हैं। है तो यह अज्ञान किन्तु इसको ज्ञान मानकर ग्रहण करते हैं, ऐसे व्याख्या बदल दो। कुछ आया समझ में? है तो यह अज्ञान किन्तु व्यक्ति इसको ज्ञान मानकर चल रहा है।

शरीर अनित्य है परन्तु व्यक्ति इसको नित्य मानकर चलता है और दिनभर इसी को मानता रहता है। यह बिना परीक्षा के अज्ञान का ग्रहण है किन्तु व्यक्ति परीक्षा नहीं करता कि मैं जो मानकर चल रहा हूँ, यह ठीक है या नहीं? मेरी मान्यता कि यह शरीर नित्य है, यह तो अज्ञान है, यह छोड़ने योग्य है; ऐसा निर्णय नहीं करता है। इसके विपरीत मानता रहता है कि यह शरीर नित्य है, यह ठीक है।

अब थोड़ा और आगे बढ़ जाओ। शरीर के विषय में किसी को कुछ सन्देह हो सकता है कि इसको तो अनित्य मानते ही हैं परन्तु भूमि, सूर्य, अरबों-खरबों लोक-लोकान्तरों के विषय में दृढ़ता से अज्ञान होता है। व्यक्ति उनको नित्य मानकर दिनभर विचार करता है। आप अपना अनुभव बताओ! आपका क्या है?

साधक २– नित्य ही मानकर चलते हैं।

स्वामी जी – अन्य बोलो! या आप ज्ञानी बने बैठे हो कि आपको इन बातों से कोई लेना-देना ही नहीं। हो सकता है आपके मन में ऐसा आता हो कि मुझे तो पता ही है। परन्तु वह आपकी पोथी के कारण होगा। आपके पढ़ने-लिखने का विषय होगा। आपको व्यवहार में आता-जाता होगा; यह नहीं माना जा सकता। आपने सृष्टि की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय का अध्ययन किया किन्तु यह बात भी एकदैव मानने योग्य नहीं है कि आपको उनका ज्ञान हो गया। आप इस भूल में न पड़ जाना।

जिस दिन यह ज्ञान परिपक्व स्थिति में बैठ जाएगा कि सारे शरीर, पूरी सृष्टि सूर्य चन्द्रादि लोक-लोकान्तर में एक भी बचने वाला नहीं है तो उसी दिन विवेक-वैराग्य की स्थिति उत्पन्न हो जाएगी। यह उसकी कसौटी है। इसमें कोई विकल्प व मतभेद नहीं है। आप यह मापदण्ड लगाकर स्वयं को देख लेना। यदि ऐसा नहीं दिखता हो तब समझना कि अभी आपको वास्तविक ज्ञान नहीं हुआ है।

इसके पश्चात् जब यह सृष्टि नहीं बनी थी तब इसकी जो प्रलय की स्थिति थी, वह तथा पुनः

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आगे जो प्रलयवत् की स्थिति आएगी, उन दोनों को साथ कर देने पर बीच का यह संसार सर्वथा लुप्त हो जाएगा। इस ज्ञान का होना और निश्चित रूप से मन में बैठ जाना तथा सतत बैठे रहना; जब यह स्थिति आ जाती है तब व्यक्ति का सांसारिक जीवन समाप्त होता है और मोटे रूप में कहें तो यहाँ से आध्यात्मिक जीवन आरम्भ होता है।

जिसको हम योग की स्थिति व क्षेत्र बोलते हैं, योग का जहाँ व्यवहार होता है, वह संसार से सर्वथा पृथक् दिखाई देता है। उसमें सोचने-विचारने का स्तर सामान्य लोगों से पृथक् दिखाई देता है। नया चिन्तन, नई स्थिति, नया ज्ञान-विज्ञान, नई घटनाएँ सब उसके जीवन में पृथक् दिखाई देती हैं। हो सकता है कि अभी आपको ये बातें इस रूप में नहीं समझ में आ रही हों। आप को लगता होगा कि ऐसा कैसे हो सकता है या सन्देह होना या ऐसा हो ही नहीं सकता; ऐसा लगता होगा। बताओ आपको कैसा लगता है?

साधक २— होता होगा; ऐसा लगता है।

साधक १— स्वामी जी! जो ये बातें आपने कहीं कि दिनभर ऐसी मानसिकता बनी रहती है; इस पर सन्देह होता है कि यह कैसे सम्भव है? गुणों का जो उतार-चढ़ाव व्यक्ति को इतना प्रभावित करता है कि वह दिनभर कैसे एक स्थिति में रह जाएगा? यहाँ सन्देह होता है।

स्वामी जी— हाँ! तो आपको बताता हूँ। जिस समय नींद आनी आरम्भ होगी, बीच में स्वप्न आएँगे, पुनः सो जाएँगे और तत्काल प्रातःकाल उठते ही स्थिति नहीं रह पाएगी। उस समय को छोड़ दो। परन्तु जिसने परिपक्व अभ्यास किया होगा वह उठते ही थोड़ी देर में इस स्थिति को बना लेगा और शेष पूरे काल बनाए रखेगा।

इसी प्रकार से समाधि का अभ्यास होने पर प्रातःकाल व्यक्ति उठने के पश्चात् तत्काल वह अपना सम्बन्ध ईश्वर से जोड़ लेता है। क्योंकि उसको सारी गतिविधियों का पता है। वह नया व्यक्ति नहीं है। तो उठते ही बस कुल्ला करना या जो भी कुछ करना हो करके तत्पश्चात् थोड़ी ही देर में ईश्वर के साथ आबद्ध हो जाएगा। उसकी वहीं से ईश्वर की उपासना आरम्भ हो जाएगी और चलती रहेगी। शौच या दातुन आदि जो कुछ भी करता रहेगा।

जब कोई विशेष घटना होगी चोट लग गई हो या कोई संक्रामक रोग का आक्रमण हो गया हो, भागदौड़ करनी पड़ रही हो, जान बचानी होगी; इस तरह की घटनाओं में तो वह स्थिति भंग होगी किन्तु सामान्य स्थितियों में समाधि की अवस्था भंग नहीं होगी। इसमें शब्द-प्रमाण भी होगा -

ब्रह्मचारी— **शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा स्वस्थः परिक्षीणवितर्कजालः।**
संसारबीजक्षयमीक्षमाणः स्यान्नित्यमुक्तोऽमृत भोगभागी॥ यो.द.व्या.भा.२/३२।

स्वामी जी— आप जैसे देख रहे हैं कि यह दिनभर की अवस्था है। जैसे कि दिनभर प्रलय-अवस्था बनाए रखना; यह बुद्धि में कुछ कम बैठता है। यही एक ऐसी अवस्था है जिसके कारण लौकिक व्यक्ति अपनी स्थिति को छोड़कर आध्यात्मिक क्षेत्र में नहीं उतर पाता। यही वह है जो आपके सामने कठिनाई आ रही है। अब थोड़ी-सी पुष्टि के लिए और सुनो! उपनिषत्कार ने यह बात कही। भाव बतलाता हूँ - जितने भी नदी, नाले हैं वे सारे नाम रूप को छोड़कर समुद्र में प्रवेश कर जाते हैं। ऐसा कुछ वर्णन आया है।

साधक २— **यथा नद्यः स्यन्दमानाः समुद्रेऽस्तं गच्छन्ति नामरूपे विहाय। तथा विद्वान्.....।**

स्वामी जी— **तथा विद्वान्नामरूपाद्विमुक्तः परात्परं पुरुषमुपैति दिव्यम्॥** मुण्डक. ३/२/८।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस वर्णन में यह 'नाम रूप विहाय' क्या वस्तु है? नाम है देवदत्त। रूप है यह साढ़े तीन हाथ का शरीर। ऐसे ही सारी सृष्टि नामरूप है। कुछ समझ में आया? नामरूप को छोड़कर विद्वान् पर से पर जो पुरुष है उसको प्राप्त होता है।

अब थोड़ा-सा उन स्थलों को छू लो जिनका दर्शनों, उपनिषदों में वर्णन आया है। जहाँ मनुष्य शरीर, पृथ्वी आदि को तोड़ते-तोड़ते अन्तिम अवस्था में चले जाते हैं और पुनः उनको बनाते-बनाते, जहाँ से चले, वहीं आ जाते हैं। जैसे कि जब सविचार, निर्विचार समाधि का प्रसंग चला था तब एक बात कही - **सूक्ष्मविषयत्वं चालिङ्गपर्यवसानम्**। यो.द. १/४५। जब पूछा कि सूक्ष्म विषय कहाँ तक जाता है? तब उन्होंने कहा - यह प्रकृति तक जाता है। यह क्यों बताना पड़ा उसको? इसलिए कि जो भौतिक पदार्थ हैं प्रकृति-विकृति, उनका विवेक कराना चाहता है। जड़ पदार्थों में यह जो सूक्ष्म विषय की स्थिति है उसका अन्तिम छोर प्रकृति है। कुछ समझ में आया? वहाँ पर भाष्यकार ने विवरण दिया है कि ऐसे चलते-चलते व्यक्ति यहाँ तक चला जाएगा।

पुनः दूसरा स्थल सांख्य का है। उसका प्रयोजन है पुरुष और प्रकृति का विवेक कराना। पुरुष = जीवात्मा और ईश्वर तथा प्रकृति, विकृति = संसार, इनका विवेक उत्पन्न कैसे हो?

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः। प्रकृतेर्महान् महतोऽहंकारोऽहंकारात् पञ्चतन्मात्राण्युभयमिन्द्रियं तन्मात्रेभ्यः स्थूलभूतानि पुरुष इति पञ्चविंशतिर्गणः। वह ऐसे विवरण देता हुआ यहाँ तक पहुँच गया। पुनः क्या किया? **स्थूलात् पञ्चतन्मात्रस्य। बाह्यान्तराभ्यां तैश्चाहंकारस्य। तेनान्तःकरणस्य। ततः प्रकृतेः**।सां. १/६१-६५। पुनः वह स्थूलभूतों से चला। स्थूल भूतों को तोड़ते-तोड़ते प्रकृति की ओर ले गया। तो यह मन्थन क्यों? ये सारा मन्थन, प्रलय क्या है, वर्त्तमान स्थिति क्या है, जड़ पदार्थों के कारण और कार्य की सारी स्थिति क्या है; इसको बताने के लिए है।

जब एक व्यक्ति सृष्टि की उत्पत्ति को देखना चाहेगा, तो जब संसार नहीं बना था, अपनी बुद्धि से वहाँ से सोचना आरम्भ करेगा। यद्यपि प्रकृति कैसी थी, कितनी लम्बी-चौड़ी थी, भले ही उसको यह साक्षात् ज्ञान न हो, पर शब्द-प्रमाण और अनुमान-प्रमाण के माध्यम से वह इनको सामान्य रूप से जान लेता है। पुनः सांख्यकार ने एक बात कही - **अचाक्षुषाणामनुमानेन बोधो धूमादिभिरिव वह्नेः**। सां. १/६०। क्या समझ में आया?

साधक २— जिन पदार्थों का सामान्य ज्ञान ..।

स्वामी जी — इन्द्रियों से जो पदार्थ नहीं जाने जाते, उनका विवेक अनुमान से करो। यदि हम प्रकृति का विवेक अनुमान से कर लेते हैं तो हमारी समाधि में कोई बाधा खड़ी नहीं होगी, कोई रुकावट होने वाली नहीं है। अतः कारण रूप जो प्रकृति है उसका विवेक अनुमान से करो और आगे स्थूल भूतों तक चले जाओ। पुनः स्थूल भूतों से विनाश की ओर जाना हो तो ऐसे ही उस ओर चले जाओ। अच्छा! जब आप दोनों धाराओं का ऐसे मन्थन करने लगेंगे तो पूरा संसार आपको प्रलय की स्थिति में ही दिखाई देने लगेगा।

आपने योगदर्शन में पढ़ा होगा दूसरे स्थलों में - **विशेषाविशेषलिङ्गमात्रालिङ्गानि गुणपर्वाणि। प्रकाशक्रियास्थितिशीलं भूतेन्द्रियात्मकं भोगापवर्गार्थं दृश्यम्**। यो.द. २/१८-१९। तो इसके भाष्य को देखो। इसमें वही विवरण दिया है। वास्तव में इसको समझने के लिए व्यक्ति को जितना प्रयास करना चाहिए, जितना परित्याग करना चाहिए जैसे कि लौकिक सुख और सुख साधनों को अनित्य समझना, उसके साथ जुड़ी हुई एषणाएँ - पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा; उनका भी परित्याग। जब व्यक्ति इस स्थिति में पहुँच जाएगा तब ये बातें समझ में आएँगी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अच्छा ! जब आप दिन में इस स्थिति को बना लेते हो कि जब संसार उत्पन्न नहीं हुआ तब ईश्वर व्यापक था। सत्त्व-रज-तम अपनी साम्यावस्था में पड़े हुए थे और जीवात्माएँ मूर्छित पड़ी थीं। यह स्थिति थी। पुनः ईश्वर ने उस प्रकृति को लेकर यह महत्तत्त्व नामक पदार्थ बनाया। तत्पश्चात् अहंकार, पुनः ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ आदि सूक्ष्म शरीर बनाया और तन्मात्रों से पृथ्वी जल, अग्नि, वायु, आकाश बना दिए।

आज हम इस स्थिति में हैं। अब आप यह जानना चाहें कि जब सारा उलटा होगा तब क्या होगा? कुछ समझ में आया? सारी स्थिति वहाँ जाएगी या नहीं जाएगी? आप पहले इसका निर्णय करो। वही स्थिति होगी या नहीं होगी? इसको देखो; मन में बैठती है या नहीं? इसमें सन्देह रहता है। व्यक्ति ने सुन तो लिया है, मान भी लिया है किन्तु निश्चितरूपेण ऐसी स्थिति होगी; यह बात बुद्धि में नहीं बैठती। लोक में शब्दों से, प्रमाणों से, युक्तियों से व्यक्ति मानता है कि शरीर नाशवान् है। कहता है कि मैं मानता हूँ। करोड़ो लोगों को इकट्ठा कर लो, कोई निषेध नहीं करेगा। प्रायः एकाध व्यक्ति को छोड़ो यदि वह दूसरे ढंग का होगा, अन्यथा कोई मना नहीं करेगा। किन्तु उनमें से जानता तो एक भी नहीं है। करोड़ों व्यक्तियों की बुद्धि में शरीर नाशवान् है, ये स्थिति ही नहीं रहती। आप क्या समझते हैं? है या नहीं? क्या यह नाशवान् है करोड़ों में एक व्यक्ति जानता है? नहीं जानता। सामान्य लोग भी कहते हैं कि शरीर नाशवान् है, यह तो जाएगा। इसके साथ ही सब कुछ जाएगा। लेख भी लिखते है, बोल भी लेते हैं किन्तु वह उनके मन में नहीं बैठती कि यह वस्तुतः जाएगा।

इसका यदि एक दृष्टान्त बनाएँ तब कुछ समझ में आ सकता है। मान लीजिए, जिस समय लौकिक व्यक्ति, जीने का इच्छुक व्यक्ति जो यह चाहता है कि मैं कभी मरूँ नहीं, सदा बना रहूँ। उसी समय किसी घटना को लेकर अकस्मात् उससे भूल हो गई। किसी से झगड़ा हो गया और उसने क्रोधित होकर उसको मार डाला। इसके पश्चात् सरकार ने उसे पकड़ लिया और न्यायालय से आदेश हो गया कि इस व्यक्ति को फाँसी दे दी जाएगी। इस स्थिति में उस लौकिक व्यक्ति का जैसे शत-प्रतिशत निर्णय हो गया कि मेरी मृत्यु होगी और जलकर राख हो जाऊँगा। उस स्थिति में जैसा वह मानता या अनुभव करता है वैसा मानने या अनुभव करने वाला करोड़ों व्यक्तियों में से कोई एक मिलना भी कठिन है। अब तो कुछ समझ में आया होगा? मान लो आज रात्रि के दस बजे आप ऐसी स्थिति में पहुँचने वाले हैं। तो क्या उस व्यक्ति की भाँति अपनी मृत्यु का अनुभव कर लेंगे? आप अपना अनुभव, अध्ययन सुनाओ। सीधी बात तो है अपने को इस स्थिति से जोड़ने की। बोलो क्या मानते हो?

साधक २– ऐसा नहीं मान पाते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ३– ऐसा नहीं मानते हैं।

स्वामी जी – जब आप ऐसा नहीं मानते हैं तो आपका यह ज्ञान ठीक नहीं है। इसको ठीक कर लो।

साधक १– स्वामी जी ! मानने का प्रयास करते हैं। मान भी लेते हैं। जब तक मानते हैं, सन्देह भी नहीं रहता। किन्तु उसको पकड़ कर रखना बड़ा कठिन हो जाता है।

स्वामी जी – देखो ! इसमें सन्देह नहीं है कि यह सबसे ऊँचा ज्ञान-विज्ञान है। सबसे आवश्यक है और सबसे कठिन है। इसलिए आपने सुना है यह जो उपनिषत्कारों ने कहा। उन्होंने

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात लिखी और प्रायः मानते हैं कि यह तलवार की धार है, छुरे की धार है। 'कठ' में यह प्रसंग आता है। आचार्य यम ने क्या कहा था? भाव सुनाता हूँ –

श्रवणायापि बहुभिर्यो न लभ्यः शृण्वन्तोऽपि बहवो यं न विद्युः ।
आश्चर्यो वक्ता कुशलोऽस्य लब्धाऽऽश्चर्यो ज्ञाता कुशलानुशिष्टः ॥ कठ. २/७ ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति । कठ. ३/१४ ।

इस विद्या को सिखाने वाला आचार्य और उनसे सीखने वाला शिष्य मिलना दुर्लभ है। यह प्राचीन काल की बात है। यदि इतना सरल होता तब आप आज समाधि को प्राप्त कर चुके होते। क्या समझ में आया? यह कार्य जितना कठिन है, उतना ही मूल्यवान् है, उतना ही महान् है। किन्तु इस ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करना असम्भव भी नहीं है। इस दृष्टि से भी तुलना करके देखो।

व्यक्ति के जीवन में बाधा का एक भाग ऐसा है, उसका अपने विचारों, अपनी मान्यताओं का एक ऐसा संग्रह होता है जो इस ज्ञान-विज्ञान को उभरने नहीं देता। अब विराम ॥

४१ आत्मनिरीक्षण

बाधा : आषाढ़ कृ. ९/२०६०-२२/७/०३

अब आप अपना आत्मनिरीक्षण सुनाएँ।

साधक ८– स्वामी जी ! यहाँ आने से पहले वैद्य जी ने एक औषधि बताई थी जिसका दो दिन प्रयोग किया था। पुनः मैंने सोचा यहाँ प्रयोग करके देखता हूँ क्या प्रभाव होता है। तो कल उसका कुछ प्रतिकूल प्रभाव रहा और आज बहुत ही अधिक प्रतिकूल रहा।

स्वामी जी – औषधि किस रोग की थी?

साधक ८– वैद्यजी ने शरीर को पुष्ट बनाने के लिए बताई थी।

स्वामी जी – अच्छा ! उसमें एक तो अधिक शक्तिशाली हो, यह कारण रहा अथवा उसमें कोई ऐसी वस्तु हो जो कुछ अनुकूल नहीं हो रही होगी। पुष्टिकारक थी तब तो बाधक नहीं होनी चाहिए?

साधक ८ – कल की अपेक्षा आज बहुत ही प्रतिकूल रहा।

स्वामी जी – तब आपने उसे लेना छोड़ दिया या नहीं?

साधक ८ – जी !

स्वामी जी – तो गोली के रूप में थी या कैसी?

साधक ८ – जैसे बोर्नवीटा होता है उसी की तरह यह ब्राम्हीवीटा थी।

स्वामी जी – अच्छा ! वह पुष्टि के लिए होती है तब तो प्रतिकूल नहीं होना चाहिए। हो सकता है उसमें कोई पदार्थ विशेष रहा हो या अधिक शक्तिशाली रही हो, पचने में भारी रहा हो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक ७ – भगवन् ! मैं और सत्यकाम जी एक कमरे में रहते हैं। तो मेरी भी आज दिनचर्या और उपासना हल्की रही। इसलिए मैंने घी और दूध का प्रयोग नहीं किया।

स्वामी जी – क्या बाधा आई थी ?

साधक ७ – दिनचर्या और उपासना शिथिल रही, इसलिए घी और दूध नहीं लिया।

स्वामी जी – इसलिए उपासना ठीक न होने का दण्ड लिया। अच्छा !

उपासना काल में जो बाधाएँ उपस्थित होती हैं, उनको जानना चाहिए। बाधा का एक रूप यह भी होता है कि जो साधन हैं उनका प्रयोग हम ठीक समय पर नहीं कर पाते। कुछ बाधाएँ ऐसी हैं जो शारीरिक हैं, शरीर में रोग का होना आदि। कुछ मानसिक बाधाएँ हैं जैसे कि आप कभी उपासना काल में ईश्वर को व्यापक और अन्य पदार्थों को व्याप्य मानकर उपासना करते हैं या नहीं करते। कैसा रहता है ?

साधक ३ – मैं अनेक बार करता हूँ।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ४ – ऐसा प्रयोग करता हूँ।

स्वामी जी – ईश्वर को व्यापक मानना भी एक बहुत बड़ा साधन है और उससे हमको सफलता मिलती है। ईश्वर को व्यापक और अन्य पदार्थों को व्याप्य मानने के विषय में यदि हम वर्गीकरण करना चाहें तो सभी पदार्थों को बौद्धिक रूप में इकट्ठा करके उनके तीन विभाग बन जाएँगे। एक वर्ग में एकदेशी जीवात्माएँ व्याप्य हैं और ईश्वर उनमें व्यापक है। दूसरे वर्ग में सत्त्व-रज-तम एकदेशी व्याप्य और उनमें ईश्वर व्यापक है। तीसरे वर्ग में सत्त्व-रज-तम से बने महत्तत्त्व से लेकर शरीर पर्यन्त पूरी सृष्टि एकदेशी व्याप्य और ईश्वर उन सब में व्यापक है।

पुनः उपासना में उनका प्रयोग इस प्रकार से होता है। वहाँ ईश्वर को सीधा सम्बोधन करते हुए कहते हैं - हे ईश्वर ! हम जीवात्माएँ जहाँ व्याप्य हैं वहाँ पर भी आप व्यापक विद्यमान हैं। जहाँ सत्त्व-रज-तम व्याप्य हैं वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं। जहाँ पर सृष्टि सूर्यादि लोक-लोकान्तर व्याप्य हैं वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं और जहाँ पर ये तीनों नहीं है वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं। क्या समझ में आया ? आप बालेंगे।

साधक ६ – जहाँ पर तीनों हैं और जहाँ सत्त्व-रज-तम व जीवात्माएँ आदि विद्यमान नहीं है वहाँ पर भी ईश्वर सर्वत्र व्यापक है।

स्वामी जी – भाषा को और स्पष्ट करो। धैर्यपूर्वक पृथक्-पृथक् बोलने का अभ्यास करो। क्या बताया आपने, पुनः बोलो ? अच्छी तरह से आप बता ही नहीं पाए।

साधक ६– ईश्वर व्यापक है। जहाँ पर सत्त्व-रज-तम विद्यमान हैं वहाँ पर भी और जहाँ पर तीनों नहीं हैं, वहाँ पर भी ईश्वर व्यापक है।

स्वामी जी – और।

साधक ६– जहाँ पर जीवात्माएँ हैं वहाँ पर भी ईश्वर विद्यमान है और जहाँ पर नहीं है वहाँ पर भी।

स्वामी जी – और।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ६– सृष्टि जहाँ पर विद्यमान है वहाँ पर भी ईश्वर है और उससे अधिक सर्वत्र विद्यमान है। ईश्वर सर्वत्र व्यापक है।

स्वामी जी – जहाँ सृष्टि नहीं, वह कौन-सी जगह है? जब उत्तर नहीं आए तब आप कहेंगे कि स्वामी जी! इसका उत्तर मुझे पता नहीं है। तब मैं समझूँगा कि कोई बात नहीं। अब आप बोलेंगे सृष्टि कहाँ नहीं है?

साधक ८ – मोक्ष धाम में नहीं है।

स्वामी जी – मोक्षधाम तो यहाँ भी बन जाएगा। यहाँ मुक्त जीवात्मा आनन्द भोगेंगी तब यह भी मोक्षधाम बन जाएगा। तो आपकी व्याप्ति कट गई। इसलिए बड़े दार्शनिक सोच-विचार के साथ बोलना पड़ता है।

विद्यालय का जो पहला वर्ग था। मेरे स्मरण से सतरह-अठारह वर्ष पहले, जिसमें अपने ज्ञानेश्वर जी, विवेक भूषण जी, जगद्देव जी, अर्जुन देव जी आदि दस का एक वर्ग था। उसमें इन्होंने भी प्रवेश लिया था। पुनः रुग्ण होने से चले गए। पश्चात् आपने कितने दर्शन पढ़े या नहीं, मुझे पता नहीं?

तो बड़ी सावधानी से ऐसा उत्तर देना पड़ता है कि वह खण्डित न हो। जब आप मोक्षधाम बोलेंगे तो मोक्षधाम तो यहाँ सृष्टि में भी है, सृष्टि भी है। हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ५ – वेद के अनुसार ईश्वर के चार पाद की कल्पना की गई है। तब वहाँ पर यह बात रहती है कि ईश्वर के एक पाद में यह पूरी सृष्टि है और तीन पाद खाली हैं। वे आनन्द से परिपूर्ण हैं। तो जो तीन पाद हैं वहाँ पर सृष्टि नहीं हैं परन्तु वहाँ भी ईश्वर है।

स्वामी जी – तो अब आ गया समझ में या नहीं आया? पता चल गया। हाँ जी!

साधक २ – जो मुक्त जीवात्माएँ हैं, वे तो वहाँ भी जा सकती हैं।

स्वामी जी – उसका अभिप्राय सृष्टि से बाहर हो गया।

साधक २ – जहाँ जीवात्मा नहीं है और जहाँ सृष्टि नहीं है, वहाँ आप हैं; ऐसा कहेंगे तो जीवात्मा से खाली स्थान होगा ही, ऐसा तो नहीं कह पाएँगे। जीवात्मा वहाँ पहुँच सकती है।

स्वामी जी – क्या क्या?

साधक २ – यदि हमने कहा कि जहाँ जीवात्मा नहीं है और जहाँ प्रकृति, संसार नहीं है, वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं।

स्वामी जी – ठीक बात है।

साधक २ – तो जहाँ पर जीवात्मा नहीं है वह देश निश्चित नहीं हो पाया। क्योंकि जीवात्मा तो सभी जगह हो सकती है।

स्वामी जी – नहीं। एक दूसरा दृष्टान्त दे रहा हूँ। जीवात्मा का कहीं हो सकना पृथक् बात है परन्तु कहीं पर जीवात्मा के रहते हुए भी बाँए-दाँए जगह खाली पड़ी रहती है। सृष्टि में देख लो अथवा बाहर का स्थान देख लो।

साधक २ – पर मुक्त जीवात्माओं के रहने का स्थान नियत नहीं है, इसलिए वे तो कहीं भी जाएँगी।

स्वामी जी – न न। आने-जाने की बात भिन्न है। सुनिये! पुनः सुनाता हूँ। जीवात्मा यहाँ जाए वहाँ जाए, थोड़ी देर के लिए इसको हटा दो। एक क्षेत्र को पकड़कर हम चलेंगे। मान लीजिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जीवात्मा यहाँ है तो अब बाएँ-दाएँ का स्थान तो खाली रहा? किन्तु ईश्वर तो वहाँ है ही। अब तो आ गया समझ में?

साधक २ – ठीक है।

स्वामी जी – तो ऐसा दृष्टान्त लेना चाहिए। ऐसे ही और आगे की बात करें, जो प्रसंग आपने उठाया कि जीवात्मा तो चाहे जहाँ कहीं जा सकता है। तो उसका उत्तर बनेगा कि ईश्वर तो अनन्त है। अतः जीवात्मा ईश्वर के सम्पूर्ण क्षेत्र को पार नहीं कर पाएगा। सर्वत्र पहुँच ही नहीं पाएगा। इसलिए वहाँ पर केवल ईश्वर ही रहेगा; यही बात आएगी।

साधक २– एक सीमा में रहेगा वह। वहाँ मुक्ति की भी सीमा होगी।

स्वामी जी – हाँ! वहाँ मुक्ति की सीमा होगी। क्योंकि वहाँ ईश्वर की अनन्तता की बात आ गई और जीवात्मा का सामर्थ्य बहुत थोड़ा है।

तो आपको यह पता चल गया कि जब इस रूप में कोई बात उभरकर आती है जैसे कि ईश्वर का सृष्टि से अन्यत्र होने का प्रसंग चल रहा है। तो ऐसे बहुत से प्रश्नों का उत्तर वेद-मन्त्रों से सिद्ध होता है। क्या समझ में आया?

साधक ६– ऐसे प्रश्नों का उत्तर वेद-मन्त्रों से आता है।

स्वामी जी – जैसा कि वेदमन्त्र में कहा गया – **पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥** यजु. ३१/३। जब यह बात आई कि ईश्वर कितना बड़ा है तब समझाने के लिए ईश्वर के चार विभाग बनाकर कहा कि ईश्वर के एक भाग में पूरी सृष्टि है और तीन भाग द्युलोक अर्थात् आनन्द स्वरूप ईश्वर ही वह लोक है। वहाँ सृष्टि नहीं है। वे खाली पड़े हैं और वहाँ भी ईश्वर है।

साधक ८ – स्वामी जी! वहाँ अवकाश तो होता होगा।

स्वामी जी – अवकाश होता है। बोलो! (हँसी)

साधक ८ – जानकारी के लिए पूछा।

स्वामी जी – हम जानकारी के लिए ही उत्तर दे देंगे। बोलो-बोलो!

साधक ८ – बस इतना ही पूछना था।

स्वामी जी – हाँ! अवकाश होता है। आगे और पूछ लो! अवकाश है क्योंकि अवकाश तो अभाव रूप है। वह कोई वस्तुतत्त्व नहीं है। वस्तु का अभाव है। किन्तु यह बात बुद्धि में बैठाना, अच्छी तरह समझ में आ जाना कि ईश्वर ऐसा व्यापक है उसको कोई रुकावट नहीं है। जीवात्माएँ जहाँ विद्यमान है वहाँ ईश्वर है और जहाँ जीवात्माएँ नहीं हैं वहाँ भी ईश्वर विद्यमान है। जहाँ प्रकृति सत्त्व-रज-तम है वहाँ भी ईश्वर विद्यमान है और जहाँ नहीं है वहाँ भी विद्यमान है। सृष्टि जहाँ है वहाँ और जहाँ नहीं है वहाँ भी ईश्वर विद्यमान है। इतना ही नहीं प्रलयावस्था में जब यह सृष्टि नहीं थी उस समय भी वह ईश्वर इसी प्रकार से व्यापक था। आज सृष्टि रचना होने पर भी इसी प्रकार से व्यापक है। आगे प्रलय होगा तब भी इसी प्रकार से व्यापक रहेगा। अब जीवात्मा सोचने लगा कि भाई! तीन काल में मैं ईश्वर से बाहर तो जा नहीं सकता। कहाँ जाएँगे? नहीं जा सकता। इसलिए चुपचाप ईश्वर के साथ बैठ जा। क्या आया समझ में?

साधक ८ – जीव उससे बाहर जा ही नहीं सकते।

स्वामी जी – तो चुपचाप ईश्वर के पास बैठते क्यों नहीं। क्या उलझन है? हाँ जी!

साधक ८– उलझन तो संस्कारों के कारण है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – संस्कार तो पैदा किए थे और जो वस्तु उत्पन्न की जा सकती है उसे मारा जा सकता है। यह उसका नियम है।

साधक ८ – ठीक है। समय लगेगा जी ! हमने अपनी मूर्खता को जान लिया है। अब धीरे-धीरे जैसा सामर्थ्य है उसके अनुसार आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे है।

स्वामी जी – ऐसी अद्भुत, बड़ी विचित्र अवस्था है कोई भी जीवात्मा, सत्त्व-रज-तम एक कण भी ईश्वर से बाहर नहीं था, न है, और न होगा। अब बताओ क्या करोगे ?

ऐसी अद्भुत बात है - न था, न है परन्तु इतना होते हुए भी ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति न एक थे, न एक हैं और न एक होंगे। यह नियम है। ऐसी विचित्र बात है या नहीं है ? तो व्यापक और व्याप्य का परिज्ञान करके जब हम ईश्वर की उपासना करते हैं तो जो बहुत बड़ी उलझनें, वृत्तियाँ, विविध बाधाएँ खड़ी होती हैं, उनका समाधान कर लेते हैं। जैसे कि कोई बाधा उपस्थित हुई, वृत्तियाँ आ गईं तो झट हम ईश्वर के पास जाकर खड़े हो गए और कहने लगे कि हे ईश्वर ! आप सब जगह व्यापक हैं। यहाँ भी हैं, वहाँ भी हैं। तब सब जगह जब ईश्वर विद्यमान है तो उससे अन्यत्र वृत्तियाँ कहाँ फैलेंगी ? पुनः उसने यह ज्ञान कर लिया कि चलाता तो मैं ही हूँ। यह ज्ञान उसकी बुद्धि में हो गया, अब वह नहीं चलाएगा। नहीं तो क्या होता है ईश्वर के पास में जाकर खड़े होकर भी मन को स्वयं चला देता है और पुनः उपालम्भ देता (शिकायत करता) है कि भगवान ! मन नहीं मानता। जब उसको पता चल गया कि मन चला गया, मन में विचार आ गया, यह मान्यता ठीक नहीं है; तो अब नहीं चलाता है। जब दृढ़ निश्चय हो जाता है तब विचार आ ही नहीं सकते।

कभी-कभी व्यक्ति सोना चाहता है पर नींद नहीं आती। किसी व्यक्ति ने उसके ऊपर चोरी का आरोप लगा दिया, अपने मित्र ने ही आरोप लगा दिया। मित्र के विरोध से अधिक दुःख होता है या नहीं होता ?

साधक ८ – जी !

स्वामी जी – जो घनिष्ट मित्र दोष लगाए तब अधिक दुःख होता है या नहीं होता ?

साधक ३ – वहाँ स्व-स्वामि-सम्बन्ध जुड़ा रहता है।

स्वामी जी – पुनः उसको दोहराता है कि उसने चोरी का या आचरणहीनता का आरोप लगा दिया !! अब क्या करें ? नहीं-नहीं। वह तो मित्र था। उसको ऐसा काम नहीं करना चाहिए था। इसको रोककर पुनः सोने की तैयारी करने लगा कि पुनः सोचने लगा कि मैं भी ऐसा करूँगा। इस प्रकार या तो उसको समझाने की तैयारी करेगा या उसके ऊपर भी दोष लगाने की योजना बनाने लगेगा। ऐसे एक न एक योजना चलाता रहेगा। उधर दो-तीन बज जाएँगे तब भी नींद नहीं आएगी। पुनः कहेगा सो जाओ क्या बात है ? पुनः सोने लगा कि कह उठा - उसने ऐसा दोष लगाया ही क्यों ? इस तरह उसको रातभर नींद ही नहीं आएगी।

अब यदि वह विचार करता है कि मेरी इच्छा के बिना यह सोचने वाला कौन है ? मैं नहीं चाहता कि ये विचार आएँ तब भी क्यों आ रहे हैं ? अब वह कहेगा - मन है। नहीं-नहीं। मन तो जड़-वस्तु है, सोचता है ही नहीं। मैं ही सोचता हूँ, अब सोचूँगा ही नहीं, अब सोऊँगा। तब वह सोचना बन्द करके सो जाएगा। मन की तरंगों को विविध प्रकार से उठाए जाने पर और उस भाषा में बोलें तो उठ जाने पर जो व्यक्ति इस प्रकार से रोकना जानता है - नहीं सोचना, वह व्यक्ति अनेक समस्याओं का समाधान कर लेता है।

इसी प्रकार जब ईश्वर के विषय में संशय उठा लिया कि हम जिस ईश्वर की उपासना, पूजा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या जिसकी प्राप्ति के लिए प्रयास कर रहे हैं, वह ईश्वर है भी या नहीं? अब संशय उठते ही ईश्वर की ओर से प्रेम हट गया, ध्यान हट गया। अब उसने सोचा कि यह संशय जो उठा, यह किसने उठाया? क्या अपने आप उठ गया? अब यहाँ भी वही उपर्युक्त उपाय काम में आता है कि ईश्वर के विषय में मैंने ही संशय उठाया है, अब नहीं उठाऊँगा। क्या समझ में आया?

साधक ३ – यह संशय अपने-आप उठ गया है?

स्वामी जी – यह जो संशय उठा है, यह अपने आप उठ गया या मन, इन्द्रियों ने उठाया? उसने यदि वास्तव में यह जाना, समझा है कि संशय उठाने वाला मैं ही हूँ तब वह यहाँ पर पहुँचेगा कि संशय मैंने उठाया है और यह मेरा दोष है। मैंने इसे क्यों उठाया? अब नहीं उठाऊँगा। ऐसे उसने हटा दिया। जब हटा दिया तब ईश्वर के प्रति जो संशय था, वह दूर हो गया और पूर्ववत् ईश्वर के प्रति प्रेम उत्पन्न हो गया। यदि वह ऐसे पकड़ना नहीं जानता तब संशय उसको छोड़ेगा नहीं। संशय हमारे ही कारण उठता है, हमारे ही द्वारा उठाया जाता है। अतः रोकना भी हमारे ही द्वारा होगा।

अब ऐसे ही मान लो एक भ्रान्ति हो गई कि ईश्वर है ही नहीं। यह उलटा ज्ञान किसने उत्पन्न किया?

साधक ८ – स्वयं ने उत्पन्न किया।

स्वामी जी – अच्छा! यह स्वयं अज्ञान को उत्पन्न करने वाला जीवात्मा क्या यह स्वीकार करेगा कि मैंने ही मिथ्या ज्ञान को उत्पन्न किया है। यह मेरी ही मूर्खता है। इसको मैं हटाता हूँ। क्या ऐसा प्रयोग करेगा?

साधक ८ – करना चाहिए जी। नहीं करेगा तब हानि उठानी पड़ेगी।

स्वामी जी – जब-जब जीवात्मा के द्वारा अज्ञान उत्पन्न कर लिया जाता है तब-तब परीक्षा पूर्वक जो निर्णय किए हैं, ऋषियों की बताई कसौटियाँ संगृहीत कर रखी हैं, उनसे समाधान किया करता है। उसको विविध प्रकार के निर्णय उपस्थित रखने होते हैं और भ्रान्ति उत्पन्न होते ही प्रयोग करने होते हैं। जैसे कि उलटा ज्ञान हो गया। अब वह क्या करता है? ईश्वर के विषय में भ्रान्ति क्यों है? हम पहले परीक्षा कर चुके हैं। ईश्वर के विषय में ऋषियों ने बहुधा परीक्षा की है। पुनरपि ऐसा उलटा ज्ञान है तो मैं इसको ठीक नहीं मानता।

ऐसे ही जीवात्मा के विषय में भ्रान्ति हो सकती है कि वह दिखता नहीं, भार नहीं, आकार नहीं, लम्बाई नहीं, चौड़ाई नहीं, मुँह नहीं, पैर नहीं, पेट नहीं। कहाँ है जीवात्मा? लोगों ने यों ही कल्पना कर रखी है। क्या समझ में आया? ऐसा होगा तब आप क्या करोगे?

साधक ८ – ऋषियों की बातों को देखेंगे कि उन्होनें क्या-क्या बताया है।

स्वामी जी – तो प्रसंग है यह मिथ्या ज्ञान क्यों है? इसका उत्तर है कि प्रत्यक्ष आदि प्रमाणों से बार-बार हम जिसको सिद्ध कर चुके हैं, मान चुके हैं, ऋषि भी ऐसा मानते आए हैं, उसी विषय में संशय होना मिथ्या ज्ञान है। जब ऐसा हो तब उसको हटा देना चाहिए।

अब दूसरी बात आत्मा के ऊपर आती है। आत्मा कहता है कि मैंने यह जो शंका उठाई है कि जीवात्मा कहाँ है? उसकी न कोई लम्बाई, न चौड़ाई, न आकार-प्रकार, न कोई मुख, न पैर, न पेट, ऐसा कोई नहीं है। यह मिथ्या ज्ञान है। पुनः इसका समाधान इस प्रकार से करता है – तब स्वयं कहता है मैं हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ। यदि जीवात्मा नहीं है तो यह ज्ञान कौन करता है? क्या समझ में आया?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७ – मैं हूँ, क्योंकि मैं जानता हूँ।

स्वामी जी – यदि जीवात्मा को नहीं मानते तो ज्ञान कौन करता है; यह बताओ? दूसरी बात जो कभी उलटा जानता है, कभी सीधा जानता है; वह कौन है? कभी किसी विषय में उलटा जानता है, कभी वास्तव में जैसा है वैसा जानता है और कभी संशय पूर्वक जानता है। ऐसा विविध ज्ञान रखने वाला कौन है? कभी कहता है – मैंने जो जाना, वह मिथ्या था। कभी कहता है – जो मैंने जाना था, वह ठीक था। यदि जीवात्मा नहीं है तो इस प्रकार का व्यवहार कौन करता है? ऐसे आत्मा स्वयं अपने सामने प्रश्न उठाता है और समाधान भी करता है। अब विराम ॥

५२ यज्ञीयोपदेश

विधि सज्जा : आषाढ़ कृ. १०/२०६०–२३/७/०३

योगाभ्यास करने वाला व्यक्ति आसन पर बैठकर यह विचार करता है कि इस आसन पर बैठकर मुझे क्या करना है? तब इसका उत्तर होता है कि मैं इस आसन पर बैठकर ईश्वर की प्राप्ति करना चाहता हूँ। पुनः वह सोचता है कि ईश्वर की प्राप्ति से क्या प्रयोजन सिद्ध होगा? तब वह निर्णय करता है कि ईश्वर की प्राप्ति से समस्त क्लेशों, बाधाओं व पीड़ाओं की निवृत्ति और दुःखरहित नित्यानन्द की प्राप्ति होगी।

पुनः वह देखता है कि व्यक्ति संसार में मन-वाणी-शरीर व अन्य साधनों से जो कुछ करता है उसका यही तो प्रयोजन रहता है कि मैं समस्त दुःखों से छूट जाऊँ और नित्यानन्द को प्राप्त हो जाऊँ। इस योगाभ्यास के अतिरिक्त जितने भी सांसारिक उपाय हैं, चाहे वह चक्रवर्ती साम्राज्य है, उससे भी समस्त दुःखों की निवृत्ति और नित्यानन्द की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए यही निर्णय उचित है कि ईश्वर-प्राप्ति को ही लक्ष्य मानकर चलना है।

पुनः साधक विचारता है हमने जिस ईश्वर को प्राप्त करना है, वह कैसा है? और ईश्वर के विषय में विशेष रूप से जानने का प्रयास करता है।

उसके पश्चात् साधक कहता है – मेरा स्वरूप क्या है? मैं कौन हूँ आदि। इसको भी जानने का प्रयास करता है।

पुनः वह विचार करता है कि शरीर-इन्द्रियाँ, मन-बुद्धि, नस-नाड़ियाँ आदि पूरा संसार; ये क्या हैं? जिससे ये शरीर आदि बने हैं वह प्रकृति सत्त्व, रज, तम क्या है? हमको उसका भी परिज्ञान होना चाहिए।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक तीन स्तरों में ईश्वर का चिन्तन करता है। ईश्वर के चिन्तन का एक स्तर अति गम्भीर है, दूसरा मध्य स्तर का है और तीसरा मोटे स्तर का है। जब वेद-मन्त्रों से ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन-निर्णय करता है, वह गम्भीर स्तर होता है। सामान्य लोग वेद-मन्त्रों से ईश्वर के स्वरूप को उतना नहीं समझ पाते हैं। साधक मध्यस्तर पर आता है तो दर्शनों में जैसा ईश्वर का वर्णन है, उसको सामने रखकर विचार करता है। पुनः उससे भी स्थूल रूप में आता है तो अपनी बोल-चाल की भाषा में, जिसको प्रायः सब समझते हैं, ईश्वर को समझने का प्रयास करता है

लोग जिस भाषा को प्रायः समझते हैं साधक उस भाषा में प्रयोग कैसे करता है? वह आर्य समाज के पहले-दूसरे नियम को लेता है। परन्तु ध्यान रखिए, व्यक्ति की यह जो स्थिति है यह सारा विवरण, मन्थन, चिन्तन सब ईश्वर-समर्पित होकर करने चाहिएँ। ईश्वर-समर्पण रखते हुए इसका विचार करना चाहिए। जैसे बोलकर अथवा मन से इस प्रकार से करते हैं - हे ईश्वर! आपको मैं प्राप्त करना चाहता हूँ। आपका स्वरूप महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने आर्य समाज के पहले और दूसरे नियम में वर्णित किया है। वह इस प्रकार से है- 'सब सत्य विद्या और जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं उन सबका आदि मूल परमेश्वर है'।

यहाँ अन्य पुरुष को मध्यम पुरुष बनाकर बात करता है। कैसे? मोटी भाषा में जिसको हम बोलते हैं सीधा अर्थात् आमने-सामने होकर बात करना। जैसे कि हे ईश्वर! 'सब सत्य विद्या' जितनी विद्याएँ संसार में हैं - आपके गुण, कर्म, स्वभाव को जनाने वाली, जीवात्मा को जनाने वाली और पूरा भौतिक विज्ञान, जिसको आजकल लोग पढ़ते-पढ़ाते हैं, वे सारी आप में हैं। आपकी विद्या में कोई असत्यता या भ्रान्ति नहीं होती। यदि साधक आगे बढ़ता है तो कहता है- हे ईश्वर! ये सारी विद्या हम में कभी नहीं होती। हम थोड़ा-सा ज्ञान रखते हैं। पुनः कहता है आपकी विद्या में भ्रान्ति नहीं होती। हमारी विद्या में भ्रान्ति व उलटा ज्ञान होता रहता है। हे ईश्वर! आपके ज्ञान में कभी संशय नहीं होता और हमारे ज्ञान में संशय होता है। पुनः कहता है - जो पदार्थ विद्या से जाने जाते हैं। हे ईश्वर! प्रकृति से जितने पदार्थ बनते हैं - महत्तत्त्व, अहंकार, सूक्ष्म शरीर, स्थूल शरीर, पृथ्वी आदि पूरी सृष्टि। ये सभी पदार्थ उत्पन्न होते हैं। आप ही इनके बनाने वाले हैं।

अब साधक देखता है कि अभी इतना ही वर्णन कर सकते हैं क्योंकि आगे वैदिक संध्या करनी है, जप भी करना है। अतः इतना वर्णन किया।

पुनः अपना वर्णन करता हुआ कहता है - हे ईश्वर! मैं जो आपको प्राप्त करना चाहता हूँ, वह मैं सत् हूँ, चित्त हूँ, एकदेशी हूँ, अणु हूँ, एक छोटे से कीट में भी मैं रह सकता हूँ। मेरी शक्ति थोड़ी-सी है। मैं जीवात्मा कर्म करने में स्वतन्त्र और फल भोगने में आपके आधीन हूँ। अभी मैं आपको प्राप्त करने वाला एक साधक के रूप में हूँ।

पुनः आगे वर्णन करता हुआ कहता है - हे ईश्वर! यह शरीर, इन्द्रियाँ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य, चन्द्रमा आदि पदार्थ और इनका मूल कारण जो प्रकृति नाम से बोला जाता है, उसी से पूरा संसार उत्पन्न होता है और आप उत्पन्न करते हैं। इसलिए आप साध्य हैं। मैं साधक हूँ और यह संसार साधन के रूप में है। यह निर्णय करता है।

इस ज्ञान-विज्ञान के साथ जो व्यक्ति ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करता है, वह सफल होता है। परन्तु इसके साथ-साथ बहुत-सी बातें उसको उपस्थित रखनी पड़ती हैं। जैसे कि ईश्वर-समर्पण करते समय उसके मन में होना चाहिए कि हे ईश्वर! शरीर, इन्द्रियाँ, नस-नाड़ियाँ, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सोना-चाँदी, सूर्य, चन्द्र आदि सभी पदार्थ आपके हैं। मेरे नहीं हैं। इस प्रकार स्व-स्वामि-सम्बन्ध का परित्याग कर साधक ईश्वर-समर्पित हो जावे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम गायत्री मन्त्र से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। आप में से जो बोल सकते हैं वे हमारे साथ बोलेंगे और जो नहीं बोल सकते वे मन-मन में बोलेंगे। अनुकरण करने वाले बताने वाले के अनुसार बोलने का प्रयास करें। यदि वैसा नहीं बोल सकते हैं तो मन में बोलते रहें।

हम एक रीति का प्रयोग करेंगे अर्थात् एक-एक शब्द को लम्बा बनाएँगे। क्योंकि ध्यान-जप की विधि ऋषियों ने इस प्रकार से बताई कि मन्त्र का पाठ करो, अर्थ का विचार करो, ईश्वर को सम्बोधित करो और स्वयं को ईश्वर के समर्पित कर दो। ये सब बातें शब्द को लम्बा बनाने से सुगमता से हो पाती हैं। यह एक नए साधक की स्थिति का वर्णन है। बहुत पुराना साधक तो सामान्य गति से पाठ करता हुआ भी इन कामों को कर लेता है।

अब हम प्रयोग करेंगे - आप बोल सकें तो बाहर बोलें; नहीं तो मन में बोलें और जब **ओम्** बोलेंगे तब अर्थ का विचार करें - हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। सबकी रक्षा करने वाले हैं। **भूः** आप प्राणों के भी प्राण हैं। जीवन प्रदान करने वाले हैं। **भुवः** आप सब दुःखों से छुड़ाने वाले हैं। **स्वः** आनन्द स्वरूप हैं। **सवितुः** पूरे संसार की उत्पत्ति करने वाले हैं **वरेण्यं** अतिश्रेष्ठ, ध्यान करने योग्य **भर्गः** सब क्लेशों को भस्म करने वाले, पवित्र शुद्ध स्वरूप हैं **धीमहि** हम आपके गुणों को धारण करें। ऐसे अन्त तक धीरे-धीरे चले जाते हैं।

प्रयोग आरम्भ -

ओऽऽ ऽऽऽ म् अर्थ का विचार करो। हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। **भूः ऽऽऽऽऽ** बोलते हुए मन में कहो - हे ईश्वर ! आप प्राणों के भी प्राण हैं। **भूऽऽ भुंवःऽऽऽ स्वःऽऽ ऽऽ। तत्ऽऽऽ सवितुरऽ ऽऽऽऽऽ वरेण्यं ऽऽऽ। भर्गोऽऽऽ देवस्यऽऽऽऽ। धीऽऽमहिऽऽऽ। धियोऽऽ योऽऽऽ नःऽऽ। प्रचोदयात्ऽऽ।**

यदि साधक इस प्रकार धुन के रूप में नहीं कर सकता, नहीं करना चाहता या अन्यों को बाधा पड़ती हो तब वह ऐसा मन में ही पाठ करता है। आप बाहर जैसे धुन में प्रयोग करते हैं, वैसे ही मन में भी कर सकते हैं।

अब हम प्रार्थना वाक्यों का प्रयोग करेंगे। प्रत्येक व्यक्ति को प्रार्थना की रीति, पद्धति, प्रकार जान लेना चाहिए। प्रार्थना का विधान इस प्रकार का है कि प्रथम गुणों की प्राप्ति, उत्तम पदार्थों की प्राप्ति के लिए यथाशक्ति पुरुषार्थ करो। पुनरपि वे गुण, पदार्थ प्राप्त नहीं होते तब पुनः ईश्वर से माँगो। अविद्या, अधर्म, अन्याय, झूठ, छल-कपट को छोड़ने का पूरा प्रयास करो और पुनरपि वे दोष दूर नहीं होते, पुनः ईश्वर से सहायता माँगो; यह रीति है। ऋषियों ने संकेत दिया कि जप के वाक्यों का ऐसे प्रयोग करो।

असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥ बृहद्. आ. १/३/२८।

ये जप, प्रार्थना के वाक्य हैं। तो हम इसमें क्या माँग करते हैं ? ध्यान रखें, साधक धुन में बोलकर तथा बिना धुन के बोलकर भी प्रयोग करता है।

ओम् असतो मा सद्गमय। हे ईश्वर! असत्य से हटाकर आप मुझे सत्य की ओर ले चलो।

ओम् तमसो मा ज्योतिर्गमय। हे ईश्वर ! अज्ञान से, अविद्या से हटाकर आप मुझे ज्योति, ज्ञान, विद्या की ओर ले चलो।

ओम् मृत्योर्मा अमृतं गमय ॥ हे ईश्वर ! मृत्यु, बन्धन आदि दुःखों से छुड़ाकर आप मुझे मोक्ष की ओर ले चलो।

यह प्रयोग बोलकर किया जा रहा है। यदि व्यक्ति इन वाक्यों को मन में बोलता है तो उसको मानसिक जप कहते हैं। वह मन में कर सकता है। किसी को बाधा नहीं पड़ेगी और कोई व्यक्ति

CC-0 In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धुन के रूप में प्रयोग करना चाहे तो धुन के रूप में प्रयोग कर सकता है। आप यदि बोल सकते हों, सुविधा हो तो बोलो, नहीं तो मन में प्रयोग करो।

ओम् असतो मा सद्गमय। तमसो मा ज्योतिर्गमय। मृत्योर्मा अमृतं गमय॥

यह बीच की भाषा कहलाती है। बहुत मोटी भाषा का प्रयोग, जिसको बुद्धिपूर्वक करने में सामान्य व्यक्ति को भी कोई बाधा पड़ने वाली नहीं है।

अब प्रयोग होगा **ओम् सच्चिदानन्द** का। अर्थ सहित **ओम्** का अर्थ करेंगे - हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक हैं, सत्, चित्, आनन्दस्वरूप हैं।

ओऽऽऽऽ म् सच्चिदानन्द। ओम् सच्चिदानन्द। ओम् सच्चिदानन्द।

अब हम कैसे सोचते हैं? एक रीति है पहले पाठ करो, रुक जाओ और पुनः कहो - हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक हैं। सत, चित, आनन्द स्वरूप हैं।

अर्थ का थोड़ा-सा विस्तार करना हो तो - हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक हैं। सबको जीवन देने वाले हैं। आपकी शक्ति से ही हम जीवित हैं। **सत्** सदा रहने वाले हैं। आपका कभी विनाश नहीं होता। **चित्** चेतन हैं। सब कुछ जानते हैं। **आनन्द** आनन्द स्वरूप, सुख स्वरूप हैं।

ऐसे उसका प्रयोग होता है। साधक की अपनी योग्यता के ऊपर है। वह एक ही अर्थ का प्रयोग करे अथवा दो, तीन का। जितने का चाहे कर सकता है। अब विराम॥

५३ क्रियात्मक योगाभ्यास

सन्ध्या-प्रशिक्षण : आषाढ़ कृ. १०/२०६०-२३/७/०३

आपमें से प्राणायाम सभी करते हैं या कोई नहीं करता। अपना-अपना बताइए। आप करते है?

साधक ३ - मैं कभी करता हूँ कभी नहीं करता।

स्वामी जी - क्यों?

साधक ३ - क्योंकि करने से मुझे कान में कठिनाई होती है। डॉक्टर ने मना किया है, नहीं करना। पुनरपि हलका-हलका करता हूँ, अधिक बल लगाकर नहीं करता।

स्वामी जी - अच्छा!

साधक १ - उपासना के अतिरिक्त काल में करता हूँ।

साधक ६ - मैं कभी-कभी करता हूँ। सिर में पीड़ा हो जाती है।

स्वामी जी - जब बल लगाते होंगे तब पीड़ा होती होगी।

साधक ६ - उसी समय नहीं होती है। जैसे आज प्रातः हो गई। सायंकाल की जगह प्रातः हो सकती है। प्रातः की जगह सांयकाल हो सकती है या कभी दिन में हो सकती है।

स्वामी जी - जब हलका प्राणायाम करेंगे बल न लगाएँ और थोड़ा करें तब तो सिर में पीड़ा नहीं होगी?

साधक ६ - तब भी थोड़ी-बहुत होती है।

स्वामी जी - आपको **प्राची दिग्** ..... इस मन्त्र का अर्थ स्मरण है। हाँ जी! आप सुनाएँगे एक-एक शब्द का अर्थ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७ – वह परमात्मा प्रातः रक्षा करने वाला है, दिग् .....।

स्वामी जी – तो वह कौन है जिनको नमस्ते कर रहे हैं। तेभ्यो नमो आदि से आपने किसका ग्रहण किया ?

साधक ७ – ऐसे परमात्मा को।

स्वामी जी – और योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः ..... का क्या अर्थ है ?

साधक ७– जो हमसे द्वेष करते हैं अथवा हम जिनसे द्वेष करते हैं। ऐसे को हम आपके न्याय रूपी सामर्थ्य पर छोड़ देते हैं।

स्वामी जी – उन व्यक्तियों को या द्वेष को।

साधक ७ – व्यक्तियों को। जिनसे हम द्वेष करते हैं अथवा जो हमसे द्वेष करते हैं। ऐसे कार्य को हम आपके न्याय रूपी सामर्थ्य में छोड़ देते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः .....आप क्या लेते हैं ?

साधक ५ – जो व्यक्ति या प्राणि हमसे द्वेष करते हैं और यं वयं द्विष्मः हम जिस व्यक्ति से द्वेष करते हैं। तम् उस द्वेष भावना को वो जम्भे दध्मः आपके न्याय रूपी जबड़े में रखकर नष्ट कर देते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बताएँ, दोनों में क्या अन्तर आया ?

साधक ८ – उन्होंने तो व्यक्ति के लिए कहा और इन्होंने जो उसकी बुराई है उसको परमेश्वर की न्याय व्यवस्था में छोड़ने को कहा।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बताएँगे, कौन-सा ठीक माना जाए या दोनों ठीक हैं ?

साधक ६ – जो (साधक ५) ने बताया वह मुझे ठीक लगता है।

स्वामी जी – अब आप बताएँगे कि आपको प्राची दिग् ..... आदि सारे मन्त्रों के शब्दार्थ स्मरण हैं ?

साधक ४– हाँ जी !

स्वामी जी – तो प्राची दिग् का क्या अर्थ लिया जाता है ?

साधक ४– पूर्व दिशा या हम जहाँ बैठे हैं उसके सामने की दिशा।

स्वामी जी – पूर्व दिशा अर्थात् जिधर सूर्योदय होता है वह दिशा अथवा जिस ओर हम मुख करके बैठे हैं, वह दिशा प्राची दिग् का अर्थ लिया जायेगा।

अच्छा ! अब हम प्रयोग करेंगे। आप ध्यान में, संध्या में मन्त्र का पाठ करते हुए ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करते हैं तब पहले मन्त्र बोलते हैं, पुनः रुककर अर्थ करते हैं या मन्त्र के साथ-साथ अर्थ करते हैं। यहाँ कौन-सी विधि ठीक रहेगी ? किस शैली से चलेंगे ?

साधक ३ – साथ-साथ चलने वाली।

स्वामी जी – ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥
(तीन आवृत्ति)

अब आप रुकेंगे। तो जब आप इसका प्रयोग करते समय कहते हैं 'प्राची दिग्' तब पूर्व दिशा की स्मृति आती होगी और 'आदित्या इषवः' से सूर्य स्मरण आता होगा। आप बोलेंगे, आता है या नहीं ?

साधक ४– आता है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ६– आता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – तो जब सूर्य को स्मरण करते होंगे तब ईश्वर से सम्बन्ध टूट जाता होगा ?

साधक १ – हम ईश्वर को ही सम्बोधित करते हैं, इनके चित्रादि नहीं देखते।

स्वामी जी – नहीं आया समझ में ?

साधक ४ – आ गया।

स्वामी जी – जब बोलेंगे - प्राची पूर्व दिशा में। तब दिशा की स्मृति आएगी। जब दिशा की स्मृति आएगी तब ईश्वर से सम्बन्ध कट जाएगा। तब क्या करोगे ? हाँ जी !

साधक २ – यहाँ पर सामने आप (ईश्वर) विद्यमान हैं, यह मुख्य अर्थ है। साथ में, जैसे कि दिशाओं का यहाँ जो वर्णन है, उसके लिए क्रमशः सभी दिशाओं में मानेंगे। अतः क्रम से एक-एक दिशा में मान रहे हैं। ऐसी भावना कर रहे हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप क्या समाधान करेंगे। अपना समाधान बताओ। दिशा तो याद आएगी। क्या समझे ?

साधक ५ – सामने का जो भाग है। वहाँ पर मन्त्र जो कहना चाहता है उसके अनुरूप भावना बनाता हूँ कि मेरे सामने की दिशा में दूर तक जितनी भी वस्तुएँ हैं। हे ईश्वर ! आप उन सबके स्वामी हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक ३ – यह सब बोलते हुए ये दिशाएँ, सूर्य आदि सब ईश्वर में व्याप्य हैं, ईश्वर इन सब में व्यापक है; मैंने आपसे ऐसा समाधान पहले जाना है। तब व्यापक का प्रभाव अधिक रखना और व्याप्य का गौण रखना। ऐसा इसका समाधान निकला है।

स्वामी जी – आप बोलेंगे, क्या समाधान करेंगे।

साधक ७ – परमपिता परमात्मा सर्वव्यापक हैं किन्तु हम कहेंगे - हे प्रभु ! आप सब दिशाओं की ओर से हमारी सब प्रकार से रक्षा कर रहे हैं।

स्वामी जी – जैसा कि विधान है प्रथम जप करो, पुनः अर्थ करो और ईश्वर-समर्पित रहो। इसमें जब हम केवल ईश्वर का ही ग्रहण करना चाहते हैं और दूसरी वस्तु का ग्रहण नहीं करना चाहते हैं किन्तु यहाँ दूसरी वस्तु का ग्रहण हो रहा है। अब आप क्या करेंगे ?

साधक ३ – आदित्याः अर्थ करेंगे ही, पर आदित्य व्याप्य है, उसमें ईश्वर व्यापक है। ऐसा मानकर चलेंगे और सिद्धान्त भी यही है।

स्वामी जी – आदित्या इषवः। आदित्य की किरणों जिसके इषु हैं। जब ऐसा कहेंगे तब आदित्य और उसकी किरणों आएँगे। जब आदित्य की किरण आदि आएँगे तो वहीं ईश्वर से सम्बन्ध कटेगा। हाँ जी ! बोलिए।

साधक ८ – स्वामी जी ! जैसे हम भोजन कर रहे हैं और भोजन करते समय यह भावना रखेंगे कि हे ईश्वर ! आपका दिया हुआ भोजन मैं ग्रहण कर रहा हूँ। जो भोजन से मुझे सुख मिल रहा है उसकी व्यवस्था आपने ही की है। इस प्रकार जब हम ईश्वर को मुख्य रखेंगे तब भोजन का प्रभाव गौण हो जाएगा। इसी प्रकार से इन दिशाओं का वर्णन करते हुए ईश्वर का जो मुख्य अर्थ है उसको मुख्य रखेंगे और दिशा आदि को गौण रखेंगे।

स्वामी जी – किसी को समझाना होगा तब क्या करेंगे। वैसे आपकी लोगों को सिखाने की योजना है या नहीं ?

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – योजना है।

स्वामी जी – आपका प्रथम काम है स्वयं सीखना। अपना स्तर, योग्यता इतनी बनानी है कि ईश्वर का प्रत्यक्ष कर सकें और दूसरा कार्य है कि आप औरों को प्रत्यक्ष करवा सकें। आप इन दोनों लक्ष्यों को लेकर चलें हैं या एक ही को?

साधक ८– दोनों को। स्वामी दयानन्द जी ने व्यवहारभानु में लिखा है कि पढ़ने की अपेक्षा पढ़ाने से विद्या अधिक आती है।

स्वामी जी – कभी-कभी सीखने वाला व्यक्ति इस पर अधिक बल दे देता है कि मैं पढ़ाऊँगा। पुनः यह होता है कि पढ़ाने पर तो ध्यान रखता है किन्तु आचरण का ध्यान छोड़ देता है। क्या समझ में आया?

साधक ३ – पढ़ाने पर अधिक ध्यान रखता है और आचरण को गौण बना देता है।

स्वामी जी – हाँ जी! आपको क्या समझ में आया?

साधक ५ – जब व्यक्ति इस बात पर अधिक ध्यान देता है कि मुझे पढ़ाना है तब वह पढ़ाने का काम तो करता है किन्तु आचरण को गौण कर देता है। उस पर ध्यान नहीं दे पाता।

स्वामी जी – उसका सुधार इस रूप में कर लेना चाहिए कि प्रथम मैं इस विद्या को पढूँगा तत्पश्चात् जीवन में उतारूँगा, पुनः दूसरे को पढ़ाऊँगा और उसके जीवन में उतरवाने का प्रयास करूँगा। उसका संतुलन ऐसे करना पड़ता है। तब यह दोष नहीं आता, नहीं तो वह आएगा। इस प्रकार से हमको अपने लिए, पुनः दूसरों के लिए समाधान करना आना चाहिए।

जब हम बोलते हैं **प्राची दिगग्नि...** तब प्रायः व्यक्ति दिशा का स्मरण करता है तब ईश्वर से उसका सम्बन्ध टूट जाता है और जब आदित्या इषवः बोलता है तब आदित्य व उसकी किरण का स्मरण करता है, उस समय ईश्वर से सम्बन्ध टूट जाता है। ऐसा होता है या नहीं होता?

साधक ७ – आदित्य की जो किरणें आती हैं, इनका स्वामी भी तो वही है। इनमें वही समाहित हो रहा है।

स्वामी जी – एक दृष्टान्त यह हो सकता है कि किसी व्यक्ति ने गुरुकुल बनाकर खड़ा किया। उसके सब साधन उपस्थित किए। करने वाला व्यक्ति बलवान्, धनवान्, बुद्धिमान्, धार्मिक और योगाभ्यासी है। अब कोई व्यक्ति उसकी प्रशंसा करने लगा कि आपने इतना बड़ा गुरुकुल बनाया। उसमें सब प्रकार की अच्छी से अच्छी व्यवस्थाएँ कीं। लाखों, करोड़ों रुपये व्यय किए। भोजन की बहुत अच्छी व्यवस्था की है। पुस्तकालय भी बहुत अच्छा बनाया है। गौशाला बनाई जिससे दूध मिलता है। ऐसे वर्णन कर रहा है। ठीक है! तो वहाँ पर जो प्रशंसा करने वाला व्यक्ति है उसका केन्द्र बिन्दु है निर्माता। अतः उसके गुणों का वर्णन करते समय व्यक्ति को सम्बोधित करते हुए वस्तुओं का नाम लेता चला जा रहा है।

यहाँ ध्यान देने की बात यह है कि प्रशंसक के द्वारा यह जो कहा जा रहा है कि आपने इतना लम्बा-चौड़ा गुरुकुल का निर्माण किया। पुस्तकालय आदि बनवाया। तो उस समय गुरुकुल के भवनों का आकार-प्रकार आदि जो भी कुछ है, उनका नाम लेते हुए भी उसका ध्यान व्यक्ति की ओर है, वस्तुओं की ओर नहीं है।

अब मान लो कोई दूसरा व्यक्ति भी गुरुकुल खोलना चाहता है और उससे प्रार्थना करता हुआ कहता है कि आपने इतना विशाल निर्माण किया है। मैं भी गुरुकुल का संचालन करूँगा। मुझे भी आप धन दीजिए। उस समय व्यक्ति का ध्यान, आकर्षण, प्रेम उसी की ओर रहेगा जिसको

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्बोधित कर रहा है। वहाँ ऐसा करना उचित है। इसके विपरीत यदि वह व्यक्ति बड़े-बड़े भवन, पुस्तकालय आदि का नाम बोलते समय, उस निर्माता की ओर ध्यान न देकर, भवन की ओर ध्यान रखता है तो वह बुरा मानेगा और कहेगा कि यह तो महामूर्ख है। यह मेरी बात तो कर नहीं रहा है, इसकी बुद्धि में केवल भवन ही भवन है। इसका मेरे से कोई सम्बन्ध है ही नहीं। यह बुद्धिमान् व्यक्ति नहीं है। ऐसा ही ईश्वर भी समझेगा या नहीं ?

साधक ८ – समझेगा।

स्वामी जी – एक बात - यह व्यक्ति ईश्वर को सम्बोधित करता हुआ ऐसे वर्णन करता है जैसे अभी-अभी सुनाया। दूसरी बात है कि योगाभ्यासी ईश्वर को सर्वव्यापक मानता है और सूर्य आदि को व्याप्य। इस स्थिति में व्यापक का ध्यान करने वाला व्यक्ति व्याप्य को भूल जाता है अथवा गौण बना देता है। आपको समाधान कुछ समझ में आया या नहीं ?

साधक ८ – ठीक है स्वामी जी !

स्वामी जी – तो ऐसे प्रश्न उठा लिए जाते हैं या हमारे मन में भी उठ जाते हैं तथा कोई जिज्ञासु व्यक्ति भी ऐसा पूछ सकता है। अतः इसका उत्तर अपने लिए, जिज्ञासु के लिए और आक्षेप करने वाले के लिए भी परिश्रम से खोजकर उपस्थित रखना पड़ता है। नहीं रखते हैं तो न अपना विकास होने वाला है और न जिज्ञासु को उत्तर देकर उनका विकास कर पाएँगे। आक्षेप का उत्तर देने के लिए भी आपके पास सामग्री नहीं होगी तो आप निरुत्तर होकर बाधित हो सकते हैं।

इसलिए आपको सारी तैयारी करनी होगी। आप सुनेंगे, विचारेंगे, प्रशिक्षण देंगे, शंकाएँ उभरेंगी, उनका समाधान करेंगे, पुनः इनको क्रियारूप में लाएँगे। यह सब करते हुए क्या-क्या बाधाएँ आएँगी। क्या-क्या उपाए आपके सामने आए। कैसे-कैसे सफलता मिलती जाती है या किस प्रकार से हम विफल हो जाते हैं आदि सभी स्थितियाँ आपके सामने आएँगी।

एक उदाहरण - कल्पना करें आपको कुछ अच्छा वैराग्य हो गया। संसार को प्रलयवत् बनाकर दिनभर रखने लगे। तब आप किसी संस्था में विद्यार्थियों के साथ या किसी आश्रम में अथवा किसी के घर में रहते हों और दिनभर आपकी आँख बन्द रहती है। उस समय कोई पूछता है कि रोटी खानी है तब आप इस प्रकार से (आँखें नीचे करके) बात करेंगे हाँ ! खानी है। चलते समय भी आँख बन्द करके चलेंगे। अब अन्य लोग कहेंगे कि यह तो किसी का मुँह ही नहीं देखता, आँख बन्द रखता है। सम्भवतः पागल हो गया है। प्रायः यही होता है। क्या समझ में आया ? ऐसा होता है या नहीं ?

साधक २ – होता है।

स्वामी जी – ऐसा ही होता है। यदि आप इस स्थिति में जाएँगे तब अधिक घनिष्ट, परिचित, मित्र, पड़ोसी और दूसरे दूर-दूर से कहेंगे कि यह पागल है। इसकी बुद्धि में कुछ अशुद्धि आ गई है। यह व्यक्ति अन्यों से पृथक् ही दिखाई देता है। जैसे पहले देखता था वैसे हाव-भाव नहीं रहे। अपने घनिष्ट मित्रों के साथ पहले जैसे हँसता बैठता था, मिलने पर नमस्ते करता था, हाल-चाल, भोजन-पानी पूछता था। अब उस प्रकार की कोई व्यावहारिकता ही नहीं रही। इधर आपको मृत्यु दिखाई देती है, प्रलय दिखाई देता है और ईश्वर के साथ आबद्ध होने की बात सोचते रहते हैं। तब लोग ऐसा सोचेंगे या नहीं ? लगभग ऐसे ही सोचते हैं। यदि अभ्यासी अधिक प्रतिष्ठित हो तब उसको और झंझट होता है। समझ में आया ? अधिक जाना-माना व्यक्ति हो और यदि उसकी यह स्थिति हो जाए तो उसको और अधिक डर लगता है। लोग कहते हैं। यह तो अधिकारी, उपदेशक, विद्वान्, जाना-माना व्यक्ति था और इसकी

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्थिति ही बिगड़ गई। ऐसा सुनकर उसको और डर लगता है। अच्छा ! जब आपकी यह स्थिति आएगी तब हो सकता है आप डरकर भाग जाएँ। इस स्थिति को छोड़दें। आप डरकर छोड़ सकते हैं या नहीं ?

इसका निदान यह है कि बोलने वाला जो सुनाता है और जो सुनता है; उन दोनों की ही सफाई कर देता है। इस प्रकार जब सब कुछ का विनाश करना आ गया - बोलने वाले का विनाश, ध्वनि का विनाश, सुनने वाले का विनाश। इस तरह वह सब का विनाश करता जाता है। तब कौन किसको कहेगा और कौन सुनेगा। दोनों ही नहीं रहे। ऐसे समाधान करता जाता है। कोई भी अब उसको प्रभावित नहीं कर सकता। यदि सुनाने वाले लोगों को खड़ाकर लेगा और वह सुनने वाला भी स्वयं खड़ा हो जाएगा तब लौकिक प्रभाव पड़ेंगे ही पड़ेंगे। कुछ बात समझ में आ रही है या नहीं ?

साधक ८- हाँ जी !

स्वामी जी - आपके सामने यह चित्र ज्यों का त्यों आना है। आप इससे बच नहीं सकते। पहले से ही डरकर हट जाओगे तो पृथक् बात है।

साधक ८ - स्वामी जी ! मैंने जब इन विषयों पर विचार किया तब मुझे ऐसा लगा कि संसार में जो बहुत उलझा हुआ है उसको और अधिक भय लगेगा और जो कम उलझा हुआ है उसको अपेक्षाकृत कम भय लगना चाहिए।

स्वामी जी - यह अन्तर तो रहेगा। मान-अपमान, राग आदि से जितना अधिक सम्बन्ध रहेगा उतना अधिक भय लगेगा। अच्छा ! मैंने जो आँख बन्द करने का अभ्यास किया था वह लम्बे काल तक गुरुकुल में भी चला। ठीक से पूरा तो याद नहीं, १८ या १९ वें वर्ष के लगभग स्थिति बन गई थी और दो-ढाई या तीन वर्ष तक इसी स्थिति में मैं गांव में रहा, पुनः उसी स्थिति में आगे गुरुकुल में चला गया।

अच्छा ! उससे पहले की घटना सुनाता हूँ। गांव में हमारी प्रसिद्धि थी। हमारी एक मण्डली बनी हुई थी।

साधक ८- भजन मण्डली।

स्वामी जी - भजन की, गाने-बजाने वालों की मण्डली, जिसकी अपने गांव ही में नहीं, आस-पास के गांवों में भी प्रसिद्धि थी।

साधक ६- लोग बुलाते थे।

स्वामी जी - लोग बुलाते थे हमको बजाने के लिए। तब हमारे पास में कभी एक या दो बीन बोलते हैं, जिसको सपेरे बजाते हैं, आपने देखें होंगे, वे होते थे।

साधक ८ - हाँ जी !

स्वामी जी - वे उसको बजाते हैं और सांप भी दिखाते हैं। हम एक छोटा घड़ा रखते थे। उस पर क्या बोलते हैं ?

साधक ८ - रबड़।

स्वामी जी - रबड़ रखते थे।

साधक ८ - ट्यूब की रबड़।

स्वामी जी - जैसे पहियों की होती है लम्बी-चौड़ी, उसको ट्यूब बोलते हैं। उससे घड़े को खूब कसकर और रस्सी से बाँधकर ढोलक बनाते थे बजाने के लिए। उस समय हमारे पास एक चिमटा या खरताल होता था। एक बैन्जू होता था और एक बाँसुरी होती थी। तब गांव में प्रसिद्धि

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो गई। यद्यपि हम भी इतने अच्छे तो नहीं थे किन्तु अन्य बाँसुरी बजाने वालों से हमको अच्छा माना जाता था। आचरण की दृष्टि से अभिप्राय है। खराब तो हम भी थे पर उतने नहीं। उनको लोग बहुत बुरा मानते थे और हमको उनसे अच्छा। तब लोग हमें अपनी बैठकों, घरों व अपने परिवार में बुलाते थे। हम वहाँ सायंकाल पूरी मण्डली के साथ जाते थे और एक-डेढ़ घण्टा बजा कर अपने घर आ जाते थे। ऐसा चलता था।

जब हमको वैराग्य हो गया और नितान्त सब कुछ छोड़ दिया तब जैसे कि कोलाहल हुआ। लोगों पर प्रभाव पड़ा कि ये तो बहुत बुरा हो गया। यह पागल हो गया। कितना अच्छा बजाते थे। बहुत अच्छा लगता था। इससे जितना अधिक प्रचार रहा, उतना सुनना पड़ा। इस तरह प्रसिद्ध व्यक्ति के ऊपर लोगों का अधिक प्रभाव पड़ सकता है।

साधक ८ – स्वामी जी ! प्रारम्भ में जब आपको यह प्रलयावस्था की स्थिति प्राप्त हुई, उस समय आपको अधिक भय लगता था या कम ?

स्वामी जी – पहले तो एक बात यह कि उन दिनों चारों ओर जो मार-काट चल रही थी, वह इसके उभार का बहुत बड़ा कारण रहा। देश का जो विभाजन हुआ जिसमें भारत से पाकिस्तान बना। तब चारों ओर नरसंहार चल रहा था। उसमें जो मार-काट लगातार चली, वह कितने महीनों तक चली, मुझे ठीक से स्मरण नहीं। प्रतिदिन किसी न किसी गांव के लोग काट दिए जाते थे। आज इस गांव के, कल उस गांव के। पंजाब के दूसरी ओर वाला भाग जो पाकिस्तान में चला गया, उसमें हिन्दू काटे जाते थे और इस ओर जो मुसलमान थे उन्हें काटा जाता था। चारों ओर मार-काट मची हुई थी। आज यहाँ काट दिए। कल वहाँ काट दिए। प्रत्येक गांव में थोड़े-थोड़े मुस्लिम परिवार भी थे जिनको हर क्षण यही डर बना रहता कि न जाने किस क्षण हमको भी गाजर-मूली की तरह काट दिया जाएगा। हर घड़ी, चौबीस घण्टे यह डर बना रहता था। किसी का विश्वास नहीं, कोई राजा नहीं, कोई न्याय नहीं, कोई रोकने वाला नहीं। जिसके मन में जो आता, वही करता था।

साधक ६ – आग लगा दो।

स्वामी जी – इस तरह स्थिति बिगड़ी हुई थी। अब बताओ, उस स्थिति में क्या करोगे ? यह जो भयंकर मारकाट चली, इससे उथल-पुथल हो गई।

अब आपके साथ ऐसी मार-काट हो या बौद्धिक रूप में यह स्थिति उत्पन्न करो, तब तो वैराग्य होगा। दो में से एक का होना आवश्यक है, नहीं तो आपको वैराग्य तो हो नहीं सकता है। तो इस परिस्थिति में बहुत अधिक डर लगता था।

यह प्रक्रिया महीनों इसी प्रकार चलती रही। पुनः विशेषकर गांव में उस समय जो आर्य समाजी लोग थे, उन्होंने एक योजना बनाई। समय-समय पर आर्य समाज का प्रचार होता रहता था जिससे उन्हें अनेक लोग जानते थे और उनका गांव में प्रभाव था। उन्होंने एक योजना बनाई कि ये सभी लोग तो अच्छे है और हम इनको मारना नहीं चाहते और जहाँ तक हमारा सामर्थ्य है न ही मारने देंगे। किन्तु ऐसे हमारी मानेगा कौन ? पुनः निर्णय हुआ कि यदि इनको बचाना है तो हिन्दू बना लो। क्या समझ में आया ?

तब सबने कहा यह उचित रहेगा। तब हमको हिन्दू बना लिया और चोटी रखवा ली। अब यह उथल-पुथल हुई कि भाई ! यह क्या हुआ ? ये तो मुसलमान थे अब हिन्दू बन गए। क्या बात है ? पहले जब ऐसा चलन में नहीं था या कम था कि हिन्दू बन जाते हैं। ऐसा होता है, यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुना तो था, किन्तु साक्षात् हो जाना बड़ी कठिन बात हो गई।

अच्छा ! उसके पश्चात् चलो भाई ! चोटी रखवा लें। अब हिन्दू बन गए। अब शायद मरने से बच जाएँ। क्या समझ में आया ? अब भी संशय बना रहा कि कोई क्यों छोड़ेगा ? किन्तु कुछ-कुछ सम्भावना बन गई कि बच भी सकते हैं।

आगे बढ़ते-बढ़ते स्थिति यह आई कि गांव में जब किसी ने सूचना दी कि अमुक ग्राम चढ़ाई करने आ रहा गया है तो सुनते ही सारे के सारे अपनी-अपनी जेली, लाठी, भाला, बन्दूक जो कुछ भी हाथ लगा लेकर सामना करने के लिए निकल पड़ते थे। उस समय हम भी उनमें सम्मिलित हो जाते थे। कभी ऐसा भी होता था कोई नहीं आ रहा होता था। मिथ्या सूचना मिलने पर भी भाग पड़ते और पुनः वापस आना होता था। तो ऐसे होते-होते मार-काट की स्थिति को धीरे-धीरे रोक दिया गया। जब स्थिति कुछ सामान्य हुई तो योजना बनी कि जो मुसलमान हिन्दू बनकर बच गए हैं वे चोटी कटाकर पाकिस्तान में रहने के लिए चले जाएँ। क्योंकि वहाँ के बचे हुए हिन्दु या हिन्दु बने हुए मुसलमान भारत में आने लगे। तब हमारे सामने भी यह बात आई कि घर वाले, पड़ोस वाले अन्य सभी पाकिस्तान जाएँगे तो तुम्हें क्या करना है ? मेरा निर्णय यह था कि जिसे जाना हो जाए, मैं नहीं जाऊँगा। जहाँ तक मुझे स्मरण है घर वालों ने पूछा था तब मेरा यही उत्तर था कि मै नहीं जाऊँगा। मैंने निर्णय कर लिया है।

इधर जब हिन्दू बने थे तब पूरे गांव में सारे मिलाकर २८-३० घर होंगे। सभी भिन्न-भिन्न व्यवसाय वाले थे। उनमें एक मैं और एक अन्य व्यक्ति थे जो हिन्दू बने रहना ही ठीक मानते रहे। यह बहुत अच्छा हो गया। व्यर्थ में जो यह मुसलमान है, यह हिन्दू है का पचेड़ा था, वह दूर हो गया। हम दोनों को छोड़कर शेष सब भयंकर दुःखी थे। हिन्दू बनकर तड़प रहे थे। इस प्रसंग में आपको बता दूँ कि यह वैराग्य में कैसे सहायक हुआ ? माता-पिता ने यह बताया था कि अल्लाह का नाम लिया करो। वे भी अल्लाह या खुदा का प्रयोग करते थे। पढ़े-लिखे थे नहीं। कुछ आता-जाता नहीं था। केवल अपना काम करना और जीवन चलाना जानते थे। सब ठीक है। तो जब वे कहते थे कि खुदा या अल्लाह का नाम लिया करो तब हमने सोचा कि ठीक है खुदा का नाम, अल्लाह का नाम लिया करेंगे। इसका यह प्रभाव हुआ कि खुदा है, अल्लाह है; ऐसा विश्वास हो गया। उस समय हम सोचते थे खुदा है, अल्लाह है, वह सबका स्वामी है तब तो कभी पशु खो जाने पर उसकी सहायता मिलनी चाहिए। वस्तु या पशु खो गया और मैं ढूँढता हूँ तब मिलना चाहिए। इस स्थिति में अल्लाह के नाम से मैं प्रार्थना करता था। समझ में आया ?

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – उधर अब स्थिति धीरे-धीरे यहाँ पर पहुँची कि जाने वाले जाने लगे और आने वाले आने लगे। इधर मेरा काम यही रह गया कि यह मरना-जीना क्या है ? जो सब मरकर चले गए, उनमें से किसी के साथ एक सुई भी नहीं गई। न कोई कुछ ले जाता है, न कोई कुछ लाता है। सभी मेरा-मेरा करते हैं परन्तु कोई कुछ बना नहीं सकता। यहाँ से यह प्रक्रिया आरम्भ हुई। समझ में आया ?

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – इससे कुछ पहले की बात है तब लगभग मैं अठारह वर्ष का था। उस समय गाँव में कोई-कोई हिन्दी के जानने वाले होते थे तब पढ़ाई-लिखाई में उर्दू चलती थी। अलीफ बे पे ते...। ऐसा कुछ बोलते हैं। कभी-कभी कानों में पड़ जाता था। जहाँ पढ़ाई होती थी उसको मदरसा बोलते थे। आजकल उसको स्कूल बोलते हैं। तब गांव के बच्चे उसमें थोड़ी-थोड़ी हिन्दी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा पढ़ते थे। तब मैं सोचता था कि ये लोग जो पढ़ते हैं, वह पढ़ाई क्या है? मैं तो पढ़ नहीं सकता। ऐसा मैं मानता था। क्या समझ में आया? मुझे लगता था मेरी तो सामर्थ्य नहीं, मैं तो पढ़ नहीं सकता और पता नहीं यह पढ़ाई क्या बला है?

साधक २ – पढ़ने की इच्छा होती थी?

स्वामी जी – इच्छा तो होती थी कि मैं भी पढ़ूँ। पर स्थिति नहीं थी। मैं वहाँ पढ़ नहीं सकता था। इच्छा तो होती थी कि हम उन्हीं की तरह पढ़ें, पर पढ़ नहीं सकता। आगे क्या हुआ? वह जिसको कायदा बोलते थे, बारह खड़ी वाली पुस्तक जिसमें अ का अनार, आ का आम पढ़ाते हैं। जैसे-तैसे वह मँगवाई या किसी से ले लिया। उसके साथ स्लेट बत्ती तो मिलनी असम्भव थी। उसको खरीदने के लिए पैसे कहाँ से लाते? तब एक उपाय निकाला। भूमि पर धूली को ठीक-ठाक करके अ का अनार, आ का आम निकालने (लिखने) लगे। पुस्तक में तो चित्र होते थे अनार के, आम के। यहाँ भूमि में बनाने लगे।

इसी तरह पता नहीं एक दिन या दो दिन लगे मैंने उन अक्षरों को रट डाला। क का कबूतर, ख का खरगोश। उसको रटने के पीछे मैंने सोचा अब क्या होगा? उस समय गांव में कोई एकाध व्यक्ति हिन्दी जानने वाला होता था। तो उसने कहा – एक-एक के बारह-बारह बनेंगे।

स्वामी जी – अच्छा!

अध्यापक जी – हाँ!

स्वामी जी – कैसे? पुनः उन्होंने वह लिखकर दिखाया – क, का, कि, की, कु, कू, के, कै, को, कौ, कं, कः। ऐसे ख, खा आदि। इनको भी कर लिया। अब आगे क्या करना होगा?

अध्यापक जी – अब इनको मिलाकर बोलेंगे – क म ल = कमल। र आ म = राम। ऐसे अक्षर मिला-मिलाकर पढ़ना-लिखना सीखा था। यह वैराग्य से कुछ पहले की घटना है।

साधक ८ – उस समय मार-काट नहीं हुई थी।

स्वामी जी – उस समय नहीं हुई थी। उसके पीछे हुई है। इतना ही अक्षर ज्ञान था। तो जब उधर लोगों का आना-जाना चल रहा था और इधर मृत्यु क्या है और मरने के पीछे क्या होता है? बस! यही प्रश्न मेरे सामने उपस्थित हो रहे थे। मैं अकेला एक-एक का उत्तर ढूँढने लगा। बताने वाला तो कोई था ही नहीं। कोई सिखाने वाला नहीं। न माता, न पिता, न दूसरा, न तीसरा, कोई भी नहीं। आपको इतना बताया-सिखाया जाता है, तो भी कूपमण्डूक की तरह वहीं के वहीं बैठे दिखाई देते हो।

साधक ८ – स्वामी जी! आपकी पृष्ठभूमि बहुत सुदृढ़ थी।

स्वामी जी – आपकी भी होगी। आपने उसको दबा रखा होगा। ये भी तो है।

साधक ८ – यदि आपको बताने वाला होता, तब तो बहुत अधिक प्रगति कर जाते।

स्वामी जी – यह बात तो ठीक है। तब तो बहुत अच्छा हो जाता। सब होता।

तो और सुनो! तब हम खेती करते थे और एक बैल रखते थे। उस बैल को लेकर खेत पर चले जाते और वहीं बाँधकर घास काटकर उसको डाल देते थे। उधर वह खाता रहता और मैं दिनभर जितना समय मिलता था, अपने इस चिन्तन के कार्य में लगा रहता था। कोई पूछने वाला नहीं। बस! स्वतन्त्रता से ध्यानावस्थित होकर एक-एक प्रश्न को लेता जाता और विचारता जाता था। दिनरात प्रश्नोत्तर चलते ही रहते थे। इस विषय में किसी को भी पता नहीं था। न मित्रों को, न घर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वालों को। मैं क्या कर रहा हूँ, क्या सोच रहा हूँ, किसी को कोई अता-पता नहीं था।

उसी काल में यह बात अनुभव में आई कि मैं मरना नहीं चाहता। सदा जीवित रहूँ; मेरी यही इच्छा थी। तब मैंने बहुत खोज की, बहुत गवेषणा की, परन्तु कोई ऐसा साधन नहीं मिला, कोई ऐसी वस्तु नहीं मिली जो मुझे मरने से बचा सके। यह उस शान्त वातावरण की चिन्तन की बात कर रहा हूँ। जब मरने-मारने की कोई आपत्ति नहीं रही थी तब की यह स्थिति थी। मैंने देखा कि मैं सदा जीना चाहता हूँ परन्तु कोई ऐसा साधन नहीं मिल पाएगा जो मुझे बचा लेगा। कल्पना करो कहाँ मिलेगा? पुनः मैंने विचार किया कि रावण है, राम हैं, कितने बड़े-बड़े लोग सुने जाते हैं। आज उनमें से कोई भी तो नहीं है। जब उनको बचाने वाला कोई साधन नहीं मिला तो मुझे कहाँ से मिलेगा? जब वे नहीं बच पाए तो मैं कैसे बच सकूँगा। ऐसे यह बात खण्डित होती जाती थी।

और भी मैं ढूँढता जाता कि क्या सदा जीने का कोई साधन है ही नहीं, मिलेगा ही नहीं? तो भी उत्तर यही आता था कि कोई उपकरण, कोई साधन नहीं हो सकता। अब भी जीने की मेरी खोज चलती रहती। जब-जब मरने की बात आती तब-तब मृत्यु से डर लगता किन्तु वही बात थी कि बचकर कहाँ जाएगा? पीछे लौट कर कहाँ जाएगा। जब यह बात सामने आई कि लौटकर पीछे जाने की जगह नहीं है तब क्या करें? तब यह बात आई कि चलो, आगे ही चलो। देख लो! मरने पर क्या होता है? यह स्थिति आई।

यह जो मैं आपको सुना रहा हूँ, यही प्रक्रिया ज्यों की त्यों लगभग चल रही थी। एक-एक बात को लेता जाता था और समाधान करता जाता था। अब ईश्वर के सम्बन्ध में उस समय मैं क्या सोचता था, वह बताता हूँ। मैंने उस समय ईश्वर के परमात्मा नाम का निर्वाचन कर लिया था। ईश्वर को परमात्मा नाम से स्मरण करता था।

साधक ८– आपको वह जानकारी कहाँ से मिली थी?

स्वामी जी – हमारे जो अड़ोस-पड़ोस के लोग थे, वे अधिकतर परमात्मा बोलते थे। यद्यपि कोई परमात्मा, कोई भगवान्, कोई राम, तो कोई कुछ कहता था किन्तु प्रायः परमात्मा बोला करते थे। तो वहीं से परमात्मा ले लिया। अच्छा! इसके पश्चात् मैं क्या करता था? थोड़ा-थोड़ा अन्धेरा हो जाने पर अपने घर वालों से छिपकर घर के किसी कोने में बैठ जाता था और बिना ध्वनि किए परमात्मा नाम का जप-पाठ किया करता था। किसी को पता न चल जाए मेरी बात का, इसका पूरा ध्यान रखता था। घर में अन्धेरे में बैठकर नाम लिया करता था। यदि कोई बीच में आ जाता तो उठकर खड़ा हो जाता था। तो ऐसे परमात्मा के नाम का ध्यान करता था। उसी समय यह भी मान्यता आई कि उसको अल्लाह, खुदा, राम या भिन्न-भिन्न नामों से कुछ भी कहते हैं, सब एक ही बात है। कोई किसी नाम से कहता है, कोई किसी नाम से कहता है किन्तु उसमें कोई अन्तर नहीं आता है।

तो उस समय विवेचन की प्रक्रिया का एक भाग तो यह था मृत्यु का प्रसंग। जो बड़ा गम्भीर है, इसके ऊपर प्रश्न-उत्तर चलते थे। कल्पना करके जितने भी पक्ष उठाए जा सकते थे, उठाकर उनके उत्तर ढूँढता जाता था। दूसरा भाग था यह शरीर, मैं जिसको मेरा कहता हूँ। मैं सुन्दर हूँ, मैं बलवान् हूँ, मैं धनवान् हूँ आदि-आदि; यह क्या वस्तु है? इसके ऊपर भी बड़ा मन्थन चला। भूमि, भवन, शरीर, धन-सम्पत्ति ये वस्तुएँ किसकी हैं? इस पर भी एक लम्बा गम्भीर प्रश्नोत्तर चला और अन्त में यह निर्णय निकला कि जो कुछ है, सब ईश्वर का है। शरीर, आँख, नाक, पैर, हाथ सब ईश्वर का है।

इसी से सम्बद्ध एक दिन की विशेष घटना जो मुझे स्मरण है उसको सुनाता हूँ। गवेषणा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करते-करते अच्छी तरह से यह सिद्ध हो गया कि सब कुछ ईश्वर का है। न मेरा, न तेरा और न मैं रहूँगा, न तू रहेगा। इस प्रकार मैंने सब समाप्त कर दिए। क्या समझ में आया। मैं और मेरा का सम्बन्ध नहीं रहा। अच्छा ! तब खेतों में बाजरे की फसल लगी थी और लोग उसमें से चिड़ियों, पक्षियों को उड़ाया करते थे। मैं भी वही काम करता रहता था। पक्षियों को उड़ाना क्या होता है, आप जानते हैं या इसकी व्याख्या करनी पड़ेगी ?

साधक ८ – जानते हैं।

स्वामी जी – जिस दिन यह सिद्ध हो गया कि न कुछ मेरा है, न तेरा, यह सब कुछ तो ईश्वर का है। उस दिन मैंने कहा जब तेरा है ही नहीं तो तू चिड़ियों को क्यों उड़ाता है ? और उस दिन के पश्चात् मैंने चिड़िया उड़ानी छोड़ दी। उड़ाई ही नहीं। पुनः यह प्रक्रिया चलती रही, चलती रही दिन-रात, लगभग छह मास तक। पुनः सामान्य स्थिति आई और आगे गुरुकुल जाने की योजना बनी।

तो उस दिन (ज्ञानखण्ड-२२/०७/०३) जो मैं आपको सुना रहा था कि कैसे वह स्थिति आती है, पूरे संसार की प्रलयवत् स्थिति बना डाली और कैसी अवस्था में पहुँच गया। जो कुछ मैंने आपको सुनाया सबको मार डाला और मारते-मारते भूमि आदि सारी सृष्टि को मार डाला। तो वह यही काल था। आप कहते हैं हमको समझ में नहीं आता। कोई कहता है हमको जंचता नहीं। आश्चर्य की बात है आपको क्यों नहीं जंचता !

साधक ८ – समझ में तो आता है मानसिक रूप में, किन्तु व्यावहारिक रूप में प्रयोग नहीं करते हैं।

स्वामी जी – तो शत-प्रतिशत यह निर्णय हो गया और एक आकाशवत् अवस्था दिखाई देने लगी। एक ओर सब कुछ ईश्वर का है। इसका स्वामी ईश्वर है और दूसरी ओर सारा का सारा संसार नाशवान् है; यह दिखाई देने लगा। अच्छा ! उसी समय की एक और विशेष बात जो मुझे स्मरण है। वह यह है कि जब मैंने सबको नाशवान् सिद्ध किया था, तब यह प्रश्न आकर खड़ा हुआ था कि सब कुछ नाशवान् है, परन्तु नाशवान् का अभिप्राय क्या होगा ? कुछ भी नहीं रहेगा। सब कुछ का अभाव हो जाएगा ? यद्यपि तब मेरी चिन्तन की शब्दावली गांव की ही होती थी। अब तो मैं भाषा की शब्दावली का प्रयोग करता हूँ। उस समय जैसे गांव में भाषा मिलती-जुलती रूप में बोलते हैं, कुछ हिन्दी कुछ ग्रामीण भाषा। तो वही रही। वैसे ही बोला करते थे। पुनरपि विचारने में कोई बाधा नहीं होती थी। तो यही उत्तर आया कि कुछ भी न रहे, यह नहीं हो सकता। प्रलय तो हुआ, गया सब कुछ, पुनरपि बनना-बिगड़ना तो रहेगा। सर्वथा अभाव नहीं हो सकता। यह निर्णय आया था।

अब धीरे-धीरे यह स्थिति बढ़ गई और जो विवेक और पुनः वैराग्य का भाग था, इसके साथ जुड़ गया। अब कोई भी संसार की वस्तु और वस्तु से होने वाला सुख नाम का पदार्थ मेरे सामने नहीं रहा।

साधक – समय।

स्वामी जी – हो गया समय। तो आपको समझ में आ गया कि कोई भी वस्तु, कोई भी पदार्थ मुझे चाहिए; यह प्रसंग ही नहीं रहा। न पुत्रैषणा, न वित्तैषणा, न लोकैषणा रही। सब समाप्त हो गए। बड़ी विचित्र अवस्था आई, जहाँ न माता-पिता, न परिवार, न भाई-बन्धु, न भूमि-भवन, न खाना-पीना। सर्वथा शून्य स्थिति आई। किन्तु वह स्थिति इतनी अच्छी थी कि जो सर्वथा क्लेश रहित, काम-क्रोध रहित, डर रहित थी। पूरी स्वतन्त्रता थी। जैसे व्यक्ति कारागार से छूट गया

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हो, ऐसी स्वतन्त्रता उस स्थिति में रहती है। अर्थात् एक ओर ईश्वर का पुट जुड़ा रहता था कि सब कुछ का स्वामी ईश्वर है और दूसरी ओर यह प्रलय की स्थिति बनी रहती थी। दोनों साथ-साथ चलते जाते थे। अब विराम से पूर्व एक बात -

आपको इस स्थिति में पहुँचाने के लिए इतना प्रयास करने पर, पढ़ाने पर, बताने पर, सिखाने पर भी आप इसको नहीं कर पाएँगे तो समझ लीजिए आपका कितना बड़ा दोष माना जाएगा? ठीक है! चलिए। अब विराम ॥

५४ ज्ञानखण्ड

ईश्वरानुभूति : आषाढ़ कृ. १०/२०६०-२३/७/०३

आपके मन में यह बात आती है कि जब कभी ईश्वर का साक्षात्कार होता होगा, तब वह किस आकार-प्रकार का लगता होगा। ऐसा कभी आता है मन में?

साधक ३ – नहीं आता। उसमें जो गुण हैं ज्ञान-बल आदि उसी रूप में होगा।

स्वामी जी – क्यों जी! कैसा दिखता है?

साधक ४ – ऐसा प्रश्न रहता है कि उस समय क्या अनुभूति रहती होगी?

स्वामी जी – जैसे कोई व्यक्ति किसी वस्तु के विषय में सोचता है कि यदि वह प्रत्यक्ष होता है तब उसका कोई आकार-प्रकार, रूप-रेखा तो होगी। ऐसा उसके मन में आता है या नहीं?

साधक ४ – यद्यपि यह जानते हैं कि ईश्वर निराकार है। अतः उसका कोई रूप-रंग होता होगा; ऐसा तो संशय नहीं आता। किन्तु जो अन्य गुण बताए जाते हैं उसी स्तर पर अनुभव होते हुए उसके विषय में संशय रहता है।

स्वामी जी – जैसे कि उपनिषत्कार ने यह बात कही कि ईश्वर इस रूप में आभासित होता है – **अग्निर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।**

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥

वायुर्यथैको भुवनं प्रविष्टो रूपं रूपं प्रतिरूपो बभूव।

एकस्तथा सर्वभूतान्तरात्मा रूपं रूपं प्रतिरूपो बहिश्च॥ कठ. ५/९-१०।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसने उदाहरण रूप में बताया कि ईश्वर ऐसा दिखायी देगा अथवा हम कहें कि जैसे भट्टे में जब ईंटें पकती हैं तब अग्नि ईंटों में दिखाई देती है। उस समय अग्नि की कोई लम्बाई-चौड़ाई तो पृथक् से दिखाई नहीं देती, पृथक्-पृथक् एक-एक ईंट की तरह। एक ही आकार-रूप में अर्थात् मात्र प्रकाश रूप में दिखाई देती है। अच्छा ! जब हम ईश्वर को देखेंगे, जानेंगे या प्रत्यक्ष होगा तो उस समय ईश्वर कैसा दिखाई देगा, आपको क्या उसका अनुमान लगता है ?

साधक ३ – सारा संसार व्याप्य और ईश्वर सब में व्यापक दिखाई देता है।

स्वामी जी – देखो ! यह भूमि है और बताते हैं सूर्य भूमि से कितने लाख बड़ा है ?

साधक ३ – १३ लाख गुणा बड़ा है।

स्वामी जी – और एक आकाशगंगा में उन्होंने कितने सूर्य बताए थे ?

साधक ३ – सौ अरब सूर्य।

स्वामी जी – सौ अरब सूर्य। एक आकाशगंगा में सौ अरब सूर्य और उन सूर्यों के पृथ्वी आदि ग्रह पुनः उनके उपग्रह। तो ऐसी-ऐसी दस अरब आकाश-गंगाएँ और हैं। और हैं का अभिप्राय – उन्होंने जो देखी हैं। अब आगे बढ़ो तो वेद क्या कहता है ? वेद कहता है यह संसार इतना बड़ा है, इसमें इतने बड़े-बड़े सूर्य आदि हैं किन्तु यह परमात्मा के एक अंश में रहता है।

साधक ४ – **पादोऽस्य विश्वा भूतानि।**

साधक ३ – **यत्र विश्वं भवत्येकनीडम्।**

स्वामी जी – क्या पाठ है ?

साधक ३ – **एतावानस्य महिमातो ज्यायांश्च पूरुषः।**
पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ यजु. ३१/३।

स्वामी जी – यह ईश्वर को समझाया गया। अब देखो ! ऐसा ईश्वर है जो प्रत्यक्ष होता है।

साधक ३ – या उसका एक भाग प्रत्यक्ष होता है। जीवात्मा को ईश्वर का सारा प्रत्यक्ष तो हो नहीं सकता।

स्वामी जी – यह न्याय पर छोड़ो। न्याय क्या कहता है ? सारा, एक क्या होता है ? (हँसी) इसका निर्णय न्याय करेगा सारा और आधा क्या होता है। स्मरण है या नहीं है ?

साधक २ – सारे का होता है।

साधक ३ – अवयवी-अवयवी का।

स्वामी जी – जब पूर्वपक्षी ने आक्षेप किया कि आप वृक्ष का जो प्रत्यक्ष करते हैं, वह तो अनुमान ही है। एक ही भाग को देखते हुए पूरे का अनुमान करते हैं। तब उसने खण्डन किया कि नहीं, यह अनुमान नहीं है, यह प्रत्यक्ष है। जब आप उसको एक कहते हैं, तब अंश का प्रत्यक्ष होता है; यह नहीं कह सकते आप। क्या समझ में आया।

साधक ३ – मैंने किसी नदी का थोड़ा-सा पानी पी लिया। उसमें थोड़े से जल का प्रत्यक्ष किया। मैंने पूरी नदी का तो नहीं किया ?

स्वामी जी – नदी एक है या कई हैं ? पहले तो आपको यह विचार करना पड़ेगा नदी खण्ड-खण्ड है या एक हैं ?

साधक ३ – नदी संज्ञा तो पूरे की है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – एक है तब पुनः पूरी नदी का प्रत्यक्ष हो गया। ऐसा ही ईश्वर है। तो ईश्वर में ज्ञान है, बल है, आनन्द है और ऐसा ही ईश्वर यहाँ पर है तथा सर्वत्र है। तब आप इस पर ध्यान दो कि जब ईश्वर का ऐसा प्रत्यक्ष होगा तब आपकी क्या स्थिति होगी? आप डर तो नहीं जाएँगे? कैसा लगेगा?

साधक ७ – आनन्द से परिपूर्ण हो जाएँगे।

साधक १ – स्वामी जी! सर्वव्यापकता की स्थिति समझ में आती है किन्तु जब तक ज्ञान, बल और आनन्द सीधा अनुभव में नहीं आएँगे, तब तक कैसे पता चलेगा कि यह ईश्वर का आनन्द है और उसका प्रत्यक्ष हुआ?

स्वामी जी – हाँ! यह बात तो ठीक है।

साधक १ – विशिष्ट ज्ञान, विशिष्ट आनन्द अनुभव में आना चाहिए।

स्वामी जी – हाँ! यह ठीक बात है। ऐसा होगा, जब प्रत्यक्ष होगा तब आपको विशिष्ट आनन्द आएगा और विशिष्ट ज्ञान भी मिलेगा।

साधक १ – जब साधक ज्ञान और आनन्द को विषय बनाएगा तभी वह मिलेगा अथवा सर्वव्यापकता को भी विषय बनाने से मिल जाएगा।

स्वामी जी – सर्वव्यापकता को विषय बनाने से? यह समझ में कम आया।

साधक १ – ईश्वर सर्वव्यापक है। इस स्वरूप वाले ईश्वर की जब साधक उपासना कर रहा है या उसका प्रत्यक्ष हो रहा है। अभी ज्ञान और आनन्द की उसने याचना नहीं की, इस स्वरूप वाली दृष्टि से ईश्वर को नहीं देखा है। तब मात्र सर्वव्यापकता प्रत्यक्ष होने से ज्ञान और आनन्द भी प्रत्यक्ष होगा क्या?

स्वामी जी – अभी भी आपकी भाषा ठीक उस स्तर पर नहीं आई, जहाँ उसका स्पष्ट अभिप्राय विदित होता हो। क्योंकि वह सर्वव्यापकता शब्द और वह आनन्द आदि शब्द अलग-अलग धारा में जा रहे हैं।

साधक १ – स्वामी जी! जैसे ईश्वर एक सर्वव्यापक, निराकार, चेतन तत्त्व है। तो एक निराकार, चेतन, ज्ञानवान् तत्त्व साधक को समझ में आ गया है और वह उस ज्ञानवान् तत्त्व का प्रत्यक्ष भी कर रहा है। क्या इस स्थिति में उसको आनन्द का भी अनुभव होगा, बिना आनन्द विषय बनाए हुए?

स्वामी जी – यहाँ बात पुनः उलझ गई। आनन्द विषय बनाए हुए इसका अर्थ और स्पष्ट होना चाहिए।

साधक १ – आनन्दस्वरूप ईश्वर की उपासना नहीं कर रहा है, केवल ज्ञानस्वरूप और सर्वव्यापक ईश्वर की उपासना कर रहा है, तब उससे ईश्वर आनन्द भी देगा क्या?

स्वामी जी – जब यह झलक आ रही है कि ईश्वर का प्रत्यक्ष कर रहा है तब आनन्द का प्रत्यक्ष हो ही जाएगा। जब आप कहेंगे कि वह ईश्वर का प्रत्यक्ष कर रहा है तब यह अभिप्राय तो स्वतः निकलेगा कि उसको आनन्द आ रहा है।

साधक २ – इनका अभिप्राय ऐसा लगता है कि सर्वव्यापकता कोई एक स्वतन्त्र गुण है। जब कि ऐसा नहीं है। वह तो ज्ञान, बल, आनन्द आदि का ही विस्तार मात्र है। अतः ईश्वर ज्ञान, बल आदि सब गुणों के सहित ही सर्वत्र प्राप्त होता हुआ 'सर्वव्यापक है'।

स्वामी जी – वह सारा का सारा व्यापक रहेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २ – उसकी परिधि जहाँ तक है, जितने क्षेत्र में है उसको ही हम व्यापक कहेंगे। इसी के साथ इनका कहना है कि ज्ञान, बल आदि को हमने विषय नहीं बनाया और सर्वव्यापकता अपने आप में कोई गुण नहीं है तो व्यापकता का ध्यान करने से बल आदि का कैसे ज्ञान हो जाएगा?

सम्पादक – साधक २ का आक्षेप व समाधान असंगत है। वस्तुतः सर्वव्यापकता एक स्वतन्त्र गुण है, साधक १ की यह मान्यता ठीक है। सर्वव्यापकता एक स्वतन्त्र गुण नहीं है, साधक २ की यह मान्यता ठीक नहीं है। दूसरी बात है - साधक १ का अभिप्राय है कि सामान्यतः जिसको समाधि का विषय बनाते हैं, उसी का प्रत्यक्ष होता है और जिसको समाधि का विषय नहीं बनाते, उसका प्रत्यक्ष नहीं होता है। इस नियम से यदि साधक सर्वव्यापकता और ज्ञान को समाधि का विषय बनाता है किन्तु आनन्द को विषय नहीं बनाता है तब सर्वव्यापकता और ज्ञान का तो प्रत्यक्ष होगा परन्तु आनन्द का प्रत्यक्ष नहीं होना चाहिए। इसका समाधान इस रूप में जानना चाहिए यद्यपि समाधि या उपासना में साधक जिस ज्ञान आदि एक गुण को लेकर प्रवृत्त होगा उसी की उपलब्धि होगी परन्तु सुख और दुख दो ऐसे गुण हैं जो स्वतन्त्र होते हुए भी अनुकूल व प्रतिकूल गुणों से सम्बद्ध होते हैं तथा परिणाम स्वरूप प्राप्त होते हैं। अतः ज्ञान, बल आदि अनुकूल गुणों के उपलब्ध होने पर सुख की अनुभूति भी हो जाती है तथा अज्ञान, क्रोध आदि दुर्गुणों की उपलब्धि होने पर दुःख की भी अनुभूति हो जाती है। अतः किसी भी गुण सहित ईश्वर की उपासना की जाएगी, उसके आनन्द गुण की अनुभूति तो ईश्वर की उपलब्धिमात्र से हो जाएगी परन्तु उसके ज्ञान आदि की उपलब्धि ज्ञान को विषय बनाने पर ही होगी। जैसे कि रूप, रस को विषय बनाने पर उससे विशिष्ट सुख की अनुभूति होती है।

स्वामी जी – अच्छा ! देखो ! आपएक मिश्री का डला ले लो और उसको आँखों से देखते हुए हाथ से पकड़कर जिह्वा से चूसो। अब वहाँ उसके रूप, रस और स्पर्श का ज्ञान हो रहा है जबकि आप कहते हैं मैं मिश्री के डले का प्रत्यक्ष कर रहा हूँ। इसमें क्या स्थिति है?

साधक २ – इसमें गुण के साथ सम्बन्ध है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक २ – यह जो मिठास है और यह यहाँ तक है। पहले मिठास की, पुनः यहाँ तक की अनुभूति होगी।

स्वामी जी – हाँ ! आप जब देखेंगे कि गुण और गुणी एक ही होते हैं। दोनों को पृथक्-पृथक् नहीं कर सकते। बताने के लिए गुण और गुणी की व्याख्या भिन्न-भिन्न रूप में की जा सकती है। जैसे कि यह मिठास (रस) गुण है चखने में आ रहा है, यह रूप गुण है जो आपको दिख रहा है या स्पर्श गुण है जो छूने में आ रहा है। किन्तु जितने क्षेत्र में मिश्री आप बोल रहे हैं ये सारे गुण उतने ही क्षेत्र में ज्ञात हो रहे हैं अर्थात् मिश्री और मिश्री के गुण एक ही हैं। क्योंकि गुण और गुणी पृथक्-पृथक् वस्तु नहीं है। तो जैसे आपका मिश्री का प्रत्यक्ष है ऐसा ही ईश्वर का प्रत्यक्ष होगा। इसके साथ जोड़ लो।

साधक २ – अभिप्राय यह होगा कि उसका आनन्द गुण ही फैले हुए रूप में केवल दिखेगा।

स्वामी जी – हाँ ! जैसे मिश्री की मिठास आप ले रहे हैं और उसका स्पर्श भी जान रहे हैं। ऐसे ही मिश्री में जो-जो गुण हैं वे सारे के सारे ही दिखाई देंगे। जो वस्तु ज्ञान-बल-आनन्द स्वरूप है उसमें जहाँ आनन्द दिखेगा, वहीं पर ज्ञान भी रहेगा, वहीं पर बल भी रहेगा।

अब एक मोटा दृष्टान्त लेते हैं - जीवात्मा समाधि में जाकर एक ऐसी स्थिति बनाता है जैसे कि पहले कोई समुद्र से बाहर खड़ा था। पुनः समुद्र में गोता लगाया और पनडुब्बी की भाँति अन्दर

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बैठ गया और अब चारों ओर समुद्र को देखने लगा। तो जैसे वहाँ उसको चारों ओर समुद्र ही समुद्र दिखाई देता है वैसे ही समाधि में बैठे व्यक्ति को सब ओर ईश्वर ही ईश्वर दिखाई देता है। यहाँ पर एक विशेष बात ध्यान देने की है कि समुद्र में जहाँ पर जीवात्मा है वहाँ स्वयं को देखता और अपने अन्यत्र चारों ओर समुद्र को देखता है परन्तु ईश्वर के विषय में ऐसा नहीं होता है। ईश्वर के विषय में तो अपने चारों ओर ईश्वर को देखता हुआ जहाँ पर जीवात्मा है वहाँ भी ईश्वर को ही देखता है, स्वयं को नहीं। क्योंकि ईश्वर व्यापक है और जब जीवात्मा व्यापक ईश्वर को देखने लगता है तब बिना विशेष अभ्यास के अपना स्वरूप नहीं देख पाता है। उसका अपना स्वरूप उससे ओझल हो जाता है।

बार-बार लम्बे अभ्यास के बिना, वह चाहे कि मैं ऐसे पृथक् दिखाई दूँ और ईश्वर ऐसे पृथक् दिखाई दे, ऐसा कभी नहीं हो पाएगा। प्रत्यक्ष रूप में ऐसे कभी दिखाई नहीं देगा। वह यह अनुभव करे कि यह ईश्वर है और यह मैं हूँ; ऐसा नहीं हो सकता। हाँ! लम्बे अभ्यास के पश्चात् ईश्वर के साथ-साथ स्वयं को देखने में कोई कठिनाई नहीं पड़ती। जब तक नया व्यक्ति है तब तक कठिनाई रहेगी।

साधक १ – केवल जब अपने-आप को विषय बनाएगा तब देख सकेगा।

स्वामी जी – यह स्थिति तो है स्वयं को विषय बनाएगा तब स्वयं को देखेगा किन्तु उसमें ईश्वर को नहीं जोड़ेगा। यह एक पृथक् स्थिति है। किन्तु जीवात्मा ईश्वर का प्रत्यक्ष करते हुए यह चाहे कि मैं अपने-आप को ईश्वर से पृथक् दूरी पर ऐसे देख लूँ तो नहीं देख पाएगा। जैसे हम विमान में बैठते हैं और विमान आकाश में उड़ रहा है। तब वह व्यक्ति विमान के बाहर तो नहीं रहेगा। तब वह देखता है कि यह विमान है और यह मैं हूँ। मैं विमान के अन्दर बैठा हूँ। विमान मेरे इस ओर भी है और उस ओर भी है, सब ओर है। ईश्वर के साथ स्वयं को भी पुराना अभ्यासी ऐसा देख पाएगा। कुछ समझ में आया?

साधक ३ – जैसे बाहर ईश्वर व्यापक है, पृथक् देखने की स्थिति नहीं बनेगी।

स्वामी जी – नहीं, हम विमान के बीच में बैठे हैं।

साधक ३ – ऐसे ही ईश्वर के बीच में जीवात्मा बैठा है?

स्वामी जी – हाँ-हाँ! ऐसे ही यह ईश्वर के बीच में बैठने का दृष्टान्त है। जब उसका ईश्वर के बीच में बैठने का अभ्यास हो गया तब दोनों को देख सकता है। उस परिपक्व स्थिति में वह देखता है कि यह मैं हूँ और यह ईश्वर मेरे साथ है। मैं एक छोटा सा पदार्थ हूँ और ईश्वर सर्वव्यापक है। जैसे विमान में बैठते हैं वैसे ईश्वर में मैं बैठा हूँ।

साधक ८ – ईश्वर है और उसमें मैं बैठा हुआ हूँ।

स्वामी जी – हाँ! अब यह जो संसार है, सूर्य, चन्द्रमा आदि के रूप में, पुनः प्रकृति को ले लो। इन दोनों ही अवस्थाओं में, जब सृष्टि बन गई तब, और पुनः प्रलय हो जाएगा तब, हमारी और ईश्वर की यही स्थिति थी और रहेगी; जैसे विमान का दृष्टान्त दिया। किसी भी काल में इससे भिन्न स्थिति नहीं होती है। इसलिए स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने व्याप्य और व्यापक दोनों के प्रसंग में समझाया। भाव सुना रहा हूँ कि देखो! प्रकृति, विकृति, जीवात्माएँ, जितने भी पदार्थ हैं, ये न कभी ईश्वर से पृथक् थे, न आज हैं और न आगे होंगे और पुनः यह भी कहा कि ये कभी एक भी नहीं थे, न एक हैं और न एक होंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्पादकीय – वैधर्म्य होने से जीव और ब्रह्म – 'न एक कभी थे, न एक हैं और न एक कभी होंगे।' स.प्र.समु. ७।

स्वामी जी – इस पृथक्त्व के विषय में इतनी स्पष्टता दूसरे ग्रन्थों में कम मिलती है। क्या समझ में आया? यों तो वेदों या अन्य आर्ष ग्रन्थों में भी पृथक्त्व कथन रहता ही है परन्तु शाब्दिक रूप में इतनी स्पष्टता नहीं मिलती। तो उन्होंने दोनों स्थितियाँ स्पष्ट बता दीं।

अब हमारा जो प्रसंग चला था कि ईश्वर जो है, वह कैसा दिखता है। पुनः उसको दोहराते हैं। आप मानकर चलो कि आपकी इतनी योग्यता हो गई कि आप समाधि में चले गए। उस समय 'मैं हूँ' या 'ईश्वर' या 'दोनों हैं' की उलझन उत्पन्न होगी। यदि आपने पहले अध्ययन किया, मनन किया, परीक्षापूर्वक निर्णय कर लिया कि वास्तविकता ऐसी ही है। ऐसा निर्णय आपने करके रख रखा है और अब वह स्थिति आपके सामने आ गई। तब आप क्या करेंगे? उन सुनी हुई, विचारी हुई बात को लेकर झट सुलझा लेंगे। उससे भ्रान्ति नहीं होगी, सन्देह नहीं होगा। नहीं तो वह व्यक्ति कहीं भी उलझ सकता है। यह असाधारण (बहुत ऊँची) स्थिति है।

आप तुलनात्मक अध्ययन करें कि भारत में ही नहीं, पूरे भूगोल में विविध मतों के मानने वाले करोड़ों लोग हैं जो ईश्वर को मानते हैं, उसकी उपासना करते हैं और मुक्ति को भी मानते हैं परन्तु आप यह देखेंगे कि सबके सब अद्वैतवाद को लेकर चल रहे हैं। यद्यपि वे अच्छे विद्वान्, प्रवक्ता, लेखक, संन्यासी, ब्रह्मचारी हैं, पुनरपि इस विषय को नहीं समझ पा रहे हैं। अन्य क्या बात है? यही तो उलझन है उनके सामने? और वे सन्तुष्ट भी हैं, आपने देखा होगा। समझ में आई बात?

साधक ८ – हाँ जी!

स्वामी जी – अर्थात् उन्होंने पूरा जीवन अध्ययन, अध्यापन, उपदेश में लगाया। सब कुछ किया, पर यह समस्या उनसे दूर नहीं की गई है। बड़ी कठिन है।

साधक ८ – स्वामी जी ने नव-वेदान्तियों को एक आँख का काणा कहा है।

स्वामी जी – ये तो मोटी-मोटी बातें हैं, इनको सब जानते हैं। आप अपने को देखो! आप काने हैं या दोनों आँखों वाले हैं? स्वयं को देखने में ध्यान दो। यदि आपने उस ओर ध्यान दिया तो आपकी बुद्धि उनके खण्डन-मण्डन में लग जाएगी। हमारा काम है समझाने के लिए बातों को रखना; ऐसा न समझकर आप उस ओर दौड़ लगाएँगे तब उलझकर खड़े हो जाओगे।

तो यही समस्या भौतिक वैज्ञानिक लोग भी उठा सकते हैं। क्यों जी!

साधक ७ – जी!

स्वामी जी – इन वैज्ञानिकों को समझाने के लिए, उत्तर देने की दृष्टि से आपको पूछ रहा हूँ। आप ईश्वर को व्यापक मानते हैं और वैज्ञानिक आपसे कहेंगे कि एक जगह दो पदार्थ रह नहीं सकते। अतः ईश्वर, परमाणु, प्रकृति और जीवात्मा ये सब एक जगह नहीं रह सकते हैं? तो उनको समझाने की दृष्टि से आप क्या उत्तर देंगे?

साधक ७ – परम पिता परमात्मा सर्वव्यापक है। सारी वस्तुएँ परमात्मा में हैं और परमात्मा सबके बीच में है।

स्वामी जी – न्याय दर्शन के पंचावयव से सिद्ध करो। आपकी यह परीक्षा की तैयारी है। जब आपके समक्ष ऐसे-ऐसे प्रश्न उठेंगे और आप उनका उत्तर दे देंगे तब तो माना जा सकता है कि आप वैज्ञानिकों को भी उत्तर दे सकते हैं। ऐसे ही कोई ब्रह्मचारी प्रश्न उठाएगा तो उनको भी समझा सकेंगे

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

या स्वयं आपके मन में प्रश्न उठ खड़ा हुआ तब समाधान कर सकेंगे, इसलिए यह उठाया है। इसका उत्तर अभी आपसे बना नहीं है। पंचावयव से उत्तर देना पड़ेगा।

अच्छा जी ! चलो, आप इसका उत्तर दो। अभी जो प्रश्न उठा कि सबके बीच ईश्वर व्यापक है, इसको पंचावयव से सिद्ध करो -

साधक ५ – कौन सा ? ईश्वर सर्वव्यापक है, स्वामी जी !

स्वामी जी – आपने हमारी चर्चा सुनी नहीं ?

साधक ५ – ध्यान नहीं है।

स्वामी जी – इसलिए सुनने वाले को ध्यान रखना पड़ता है कि जब मुझसे कोई बात पूछी जाएगी तब मैं क्या करूँगा ? यदि आपका यह ध्यान नहीं है तब आप बात को पकड़ोगे ही नहीं। आप तो आराम से बैठे हो। पूछ लिया तो ठीक है, नहीं तो बैठे हैं आनन्द से। यहाँ आप ऐसे तो नहीं बैठ सकते। जो भी बात हो, कभी भी पूछी जा सकती है। इस दृष्टि से सुनेंगे कि यदि यह बात मेरे ऊपर आए तब मैं क्या करूँगा ? तो अब बताओ ! पंचावयव से सिद्ध करो।

साधक ५ – तीनों वस्तुएँ एक ही स्थान पर कैसे रह सकती हैं ?

स्वामी जी – या प्रश्न कम समझ में आया ?

साधक ५ – दो बातें आई थीं, पहली बात आपने कही थी....।

स्वामी जी – इतनी बात नहीं बनानी है। यह कहा है कि ईश्वर सर्वव्यापक है, कोई स्थान उससे रहित नहीं है। इस पर भौतिक वैज्ञानिक प्रश्न उठा रहा है कि कोई भी दो वस्तुएँ एक जगह पर रह नहीं सकतीं। अतः जहाँ पर ईश्वर रहेगा वहाँ पर जीवात्मा और परमाणु नहीं रह पाएँगे। यदि रहेंगे तब ईश्वर में छिद्र हो जाएँगे। इसका उत्तर पंचावयव द्वारा किस तरह से देना है, वह देखो। दे सकते हैं तो ठीक है, नहीं तो दूसरे से पूछेंगे।

साधक ५– ईश्वर स्थान नहीं घेरता। इसलिए जीवात्मा और प्रकृति दोनों ईश्वर के अन्दर रह सकते हैं। हेतु - क्योंकि ईश्वर....।

स्वामी जी – हेतु तो आप पहले दे चुके।

साधक ५ – पहले तो प्रतिज्ञा होगी।

स्वामी जी – ध्यान देना। बोलना या सिद्ध करना भी व्यक्ति को सीखना चाहिए। यह हेतु तो आप पहले दे चुके। आपने न्याय में क्या दोष जाना है इस विषय में ? कौन-सा निग्रह स्थान है यह, कुछ स्मरण है ?

साधक ३ – विप्रतिपत्तिरप्रतिपत्तिश्च निग्रहस्थानम्।

स्वामी जी – वह तो निग्रहस्थान की परिभाषा हो गई। भेद बताना है। यह पहले जो हेतु दे दिया, यह कौन-सा निग्रहस्थान हुआ ? इसका लक्षण सूत्र बताओ। पंचावयव का प्रयोग क्रमशः होता है। वहाँ यदि व्यतिक्रम हो गया तो वह भी निग्रह स्थान में आता है। अब समझ में आया ?

साधक ३ – बिना क्रम के दे दिया।

स्वामी जी – पहले हेतु दे दिया, पुनः प्रतिज्ञा करने चले तो यह भी निग्रहस्थान है। क्यों, है या नहीं ? आ गया न समझ में ? हाँ ! चलो आगे बोलो -

साधक ५ – ईश्वर स्थान नहीं घेरता।

स्वामी जी – प्रतिज्ञा हुई है या नहीं हुई ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५ – प्रतिज्ञा है, स्वामी जी !

स्वामी जी – अच्छा !

साधक ५ – क्योंकि उसमें रूप, रस आदि विषय नहीं हैं। जिस-जिस पदार्थ में रूप, रस आदि विषय नहीं होते। वह-वह पदार्थ स्थान नहीं घेरते। जैसे जीवात्मा। जीवात्मा की भाँति ईश्वर है। इसलिए रूप, रस आदि विषय न होने से ईश्वर भी स्थान नहीं घेरता। इसलिए वह सर्वव्यापक है।

स्वामी जी – अच्छा और कौन बताएगा? किसी का तैयार हो तो बोलो। हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक ४ – प्रतिज्ञा – ईश्वर, जीव और प्रकृति तीनों एक ही स्थान में रह सकते हैं। हेतु – ईश्वर और जीव 'निरयव पदार्थ होने से। व्याप्ति – जो-जो पदार्थ निरवयव होते हैं, वे स्थान नहीं घेरते हैं और एक ही स्थान में रह सकते हैं। यहाँ वैधर्म्य से व्याप्ति देनी पड़ेगी – जो-जो पदार्थ सावयव होते हैं वे स्थान घेरते हैं और एक ही स्थान में नहीं रह सकते। उदाहरण – जैसे दो ईंटे। ईश्वर और जीव इस प्रकार के न होने से, निरवयव होने से स्थान नहीं घेरते और प्रकृति के साथ एक ही स्थान में रह सकते हैं।

स्वामी जी – स्पष्ट तो कम हुआ।

साधक १ – वैधर्म्य से उदाहरण कट सकता है।

साधक २ – हेतु में ही दोष है।

स्वामी जी – अवयव वाला जो हेतु दिया वह कटने की स्थिति में जा सकता है।

साधक २ – निरवयव सिद्धान्तविरुद्ध है।

स्वामी जी – हाँ ! प्रकृति अन्तिम में निरवयव हो जाती है और वह स्थान घेरती है। तो निरवयव का जो हेतु है वह कट जाता है।

साधक ३ – रूप, रस, गन्ध, स्पर्श वाला हेतु बनेगा कि जो इनसे रहित है।

स्वामी जी – हाँ बोलो !

साधक ५ – मेरी बुद्धि में यह स्पष्ट नहीं हो रहा है कि प्रतिज्ञा क्या है? ईश्वर सर्वव्यापक है; यह प्रतिज्ञा है अथवा ईश्वर स्थान नहीं घेरता है; यह प्रतिज्ञा है या ईश्वर-जीव-प्रकृति ये तीनों एक ही स्थान पर रह सकते हैं; यह प्रतिज्ञा है?

स्वामी जी – आपका सिद्धान्त है कि ईश्वर सर्वव्यापक है।

साधक ५ – स्वामी जी ! प्रतिज्ञा क्या है?

स्वामी जी – हाँ ! तो इस सिद्धान्त में, सर्वव्यापक मानने वालों के पक्ष में किसी ने आशंका की है कि ईश्वर सर्वव्यापक नहीं हो सकता।

साधक ५ – यही प्रतिज्ञा होगी?

स्वामी जी – वह यह बोलेगा ईश्वर सर्वव्यापक नहीं रह सकता। क्योंकि वह स्थान को घेरता है। जो वस्तु स्थान को घेरती है, उसके स्थान पर दूसरी वस्तु नहीं रह पाती। जैसे एक ईंट में दूसरी ईंट नहीं रह पाती। ऐसे ही ईश्वर भी ईंट की तरह स्थान घेरता है। तो ईंट की तरह स्थान घेरने से ईश्वर सर्वव्यापक नहीं है। उसने ईश्वर को इस रूप में उपस्थित किया। अब आप इसका उत्तर पंचावयव में देंगे।

साधक ५ – ईश्वर सर्वव्यापक है। यह प्रतिज्ञा।

स्वामी जी – हाँ-हाँ !

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५ – सर्वज्ञ होने से ...।

स्वामी जी – अच्छा !

साधक ५ – जो-जो पदार्थ सर्वज्ञ ..!!। (अटक गए।... निग्रहस्थान में।)

स्वामी जी – पुनः मार खा गए। (मृदुल हँसी) मार खाने चल पड़े हो। है न कुछ गड़बड़?

साधक ५ – जो-जो पदार्थ सर्वज्ञ नहीं होते..!!। (पुनः अवरुद्ध)

स्वामी जी – वे-वे ?

साधक ७ – वे.....।र

स्वामी जी – आप मत बोलो। उन्हीं को बोलने दो।

साधक ५ – वे-वे सर्वव्यापक नहीं हो सकते। जैसे न्यायधीश। न्यायधीश सर्वज्ञ नहीं है। न्यायधीश के समान ईश्वर नहीं है। इसलिए सर्वज्ञ होने से ईश्वर सर्वव्यापक है।

स्वामी जी – तो इन्होंने हेतु दिया है ईश्वर सर्वव्यापक है। क्योंकि वह सर्वज्ञ है। और जो-जो सर्वज्ञ नहीं होते वे स्थान को ...? (घेरते हैं।)

साधक ५ – नहीं जी !

स्वामी जी – तो ?

साधक ५ – वे सर्वव्यापक नहीं होते।

स्वामी जी – अच्छा! इस रूप में लिया है !

साधक २ – इनका जो सर्वज्ञता का हेतु आया है उससे सर्वव्यापकता सिद्ध नहीं है।

स्वामी जी – सर्वज्ञ सिद्ध करने से पहले सर्वव्यापक को सिद्ध करने की बात आएगी।

साधक २ – सर्वव्यापकता से पहले सर्वज्ञता सिद्ध करनी पड़ेगी।

स्वामी जी – सर्वव्यापक न हो तब वह सर्वज्ञ हो ही नहीं सकता।

साधक ४ – उसको अलग ढंग से देखेंगे।

स्वामी जी – चलो! ऐसे गम्भीर विषय होते हैं जिसमें अपने आप को भी समझाना पड़ता है और दूसरों को भी। इस विषय में ध्यान देना चाहिए कि सर्वव्यापक मानने वालों के ऊपर अद्वैतवादियों की ओर से यह आक्षेप किया जाता है कि यदि ईश्वर सर्वव्यापक है, प्रकृति-विकृति और जीवात्मा में रहता है तो ऐसा कहना ठीक नहीं है। क्योंकि एक स्थान में दो वस्तुएँ नहीं रह सकती हैं। जहाँ ईश्वर रहेगा वहाँ जीव व भौतिक पदार्थ, परमाणु नहीं रह सकते। जब ईश्वर ने सारा स्थान घेर लिया तब जीवात्मा भी उसी स्थान में रहे और प्रकृति भी वहीं रहे; ऐसा नहीं हो सकता।

दूसरा आक्षेप - इसी से यह भी सिद्ध है प्रकृति भी नहीं है। क्योंकि तुम्हारे मत में तो तीन तत्त्व अनादि माने जाते हैं ईश्वर, जीव और प्रकृति। प्रकृति जहाँ रहेगी वहाँ ईश्वर नहीं रह सकता। यदि ईश्वर रहेगा तो प्रकृति नहीं रह सकती। जब ईश्वर सर्वव्यापक हो गया तब प्रकृति भी नहीं रही। इस प्रकार से वह त्रैतवाद का भी खण्डन कर रहा है। कुछ समझ में आया? अब हमको समझना, समझाना है कि उनका यह खण्डन ठीक है या नहीं? इसकी तैयारी करनी है।सम्पादक – प्रकृति में उसके रूप, रस आदि के समान ही एक अवरोधक गुण होता है जिसके कारण प्राकृतिक परमाणु अपने स्थान में दूसरे प्राकृतिक परमाणु को नहीं आने देते हैं। यही स्थान का घेरना कहा जाता है। ईश्वर और आत्मा में ऐसा कोई गुण नहीं है। अतः ये दोनों स्थान नहीं घेरते हैं। इस स्थिति में तीनों एक ही स्थान में रह सकते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हमारा जो पिछला प्रसंग है कि शरीर नाशवान् है, इस सम्बन्ध में जो विचार किया तो आँख बन्द करके देखने पर क्या शरीर नष्ट हुआ दिखाई देता है? नष्ट दिखाई देने पर भी केवल अपना शरीर नष्ट दिखाई देता है या सभी शरीर नष्ट हुए दिखाई देते हैं? अथवा आप इस शरीर को नष्ट नहीं कर पाते? आपमें से कोई सुनाओ, कैसी स्थिति है?

साधक २ – नष्ट तो कर देते हैं किन्तु करने के पश्चात् पुनः आ जाता है।

स्वामी जी – एक बार जब आपने उसको नष्ट कर दिया तब उसके आकार-प्रकार सब बन्द हो गए। पुनः वही आकार-प्रकार दिखाई देने लगते हैं तब ध्यान देना है कि पुनः उसको वहाँ ले जाओ जहाँ एक स्थिति ऐसी आ रही है कि मैं देखने वाला ही नहीं रहूँगा। अर्थात् पुनः वहीं पर मन में जो यह ज्ञान है कि मैं भी तो नहीं रहूँगा, इस ज्ञान को उस नाश वाले ज्ञान के साथ जोड़ो। कुछ आई बात पकड़ में? आपने आकार नष्ट कर दिया और पुनः दिखाई देने लगा। जब पुनः दिखाई देने लगा तब उसके साथ यह जोड़ो कि उसको देखने वाला मैं भी तो नहीं रहूँगा।

साधक २ – इसके सहित भी वापस आ जाती है। एक बार यह स्थिति बना ली कि मैं भी नहीं देख सकता। पुनः उसके पश्चात् मैं देख रहा हूँ; यही लगने लगता है।

स्वामी जी – हाँ! हाँ! जैसे आप देखेंगे वैसे नाश भी तो आपके पीछे पड़ा हुआ है। आप देखते चले जाइए -चले जाइए। कल्पना करते हैं सौ वर्ष जीएँगे परन्तु एक दिन वह स्थिति पुनः आएगी जब आप नहीं रहेंगे। तब तो दिखेगा कि मैं नहीं रहूँगा। अन्त में यह स्थिति आएगी। तो आप जब ऐसा करते चले जाएँगे, देखते जाएँगे, हटाते जाएँगे। भले ही कुछ काल तक स्थिति वापस आती जाए पर एक दिन वह स्थिति निश्चित आएगी जिसमें न आप रहेंगे, न कोई चित्र रहेगा। इस सारी घटना को यहाँ ले जाओ।

अन्यों को समझ में नहीं आया हो तो पूछो। बात पकड़ में आई या नहीं? उसको ऐसे पकड़कर देखो। यह घटना आपके जीवित रहते हुए हो रही है। जैसे आप देखने वाले हैं तो अपने-आपको मिटाएँगे। पुनः दिखाई देगा। पुनः मिटाएँगे। पुनरपि दिखाई दे तब और आगे बढ़ो। बढ़ते-बढ़ते वहाँ तक जाना ही पड़ेगा जहाँ स्वयं और दूसरा भी निश्चित दिखाई नहीं देगा। इस प्रकार से आप दोनों को समाप्त करेंगे। अनुमान-प्रमाण से वह समय निश्चित है जब दोनों ही नाशवान् दिखाई देने लगेंगे; यह दृढ़ ज्ञान होगा।

साधक २– सारे को समाप्त कर दिया, ऐसी स्थिति आ गई। प्रकृति पृथक् हो गई, मैं पृथक् हो गया और ईश्वर भी पृथक् हो गया। अब उस स्थिति में लगता है यह काम तो हो गया। इतना करने के पश्चात् पुनः स्थिति चली जाती है।

स्वामी जी – हाँ! अब यहाँ पर क्या करना पड़ता है। जैसे स्थिति गई वैसे ही इसको पुनः वापस लाना पड़ता है। पुनः सिद्ध करना पड़ता है। उसको करना चाहिए। जैसे एक दूसरा दृष्टान्त लेंगे-

एक बार हमने यह सिद्ध कर लिया कि यह जो सुन्दर शरीर है वस्तुतः मल-मूत्र से भरा हुआ है। कैसे? मान लो कोई ऑपरेशन हो रहा हो तो उसमें सारा मल-मूत्र दिखाई देता है। कटे हुए व्यक्ति को देख भी सकते हैं। वह इतना भयंकर लगता है कि वहाँ खड़ा रहना कठिन हो जाता है। एक बार हम मुम्बई में उस स्थान में चले गए जहाँ पोस्टमार्टम होते है। वहाँ ऐसे-ऐसे शव रखे हुए होते हैं जो कोई आधा कटा, कोई पूरा कटा, टूटे-फूटे पड़े होते हैं। हम उनको जान-बूझकर देखने गए थे। तो ऐसे भयंकर-भयंकर मिले कि कोई ऐसे कटा, कोई वैसे कटा। कोई बूढ़े का,

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कोई दाढ़ी-मूँछ वाले का। अच्छा ! वहाँ हमारे साथ एक पुरोहित जी थे। उन्होंने जैसे ही वह दृश्य देखा कि एकदैव वहाँ से बाहर भाग गए, पर हम तो देखते रहे।

अब ध्यान देंगे। वह जो दृष्टान्त मैंने सुनाया कि ऐसी भयंकर स्थिति हमने देखी। परन्तु मान लीजिए, आधा-एक घण्टा बीत गया। अब क्या हुआ? पुनः सुन्दर शरीर सामने आते ही हमको प्रभावित करता है। उसमें आकर्षण हो जाता है। वही शरीर अच्छा सुन्दर दिखने लगता है। जब कि अभी-अभी कटे हुए बीभत्स रूप में सारा शरीर देख डाला था। ऐसा इसलिए होता है कि उस सुन्दर शरीर में कटे हुए शरीर वाली स्थिति नहीं देख पाते हैं।

अच्छा ! कटी हई स्थिति देखते-देखते ऐसा हो जाता है कि पूर्ण वैराग्य जैसा हो गया। किन्तु पुनः वही स्थिति ! आप देखेंगे कि उस समय जो ज्ञान हुआ था, अब वह हट गया। इस ज्ञान ने आपको प्रभावित किया। अतः अब यह करना है कि अपने बौद्धिक स्तर पर उस शरीर को काट डाला, फाड़ डाला, चमड़ा उतार दिया और अब टुकड़े देखने लगे। अब वैसी ही स्थिति हो गई जैसे कटे हुए शरीर को देखने से हुई थी। अब क्या करते हैं? जैसे ही वह स्थिति हटती है, वैसे ही काट डालते हैं। अर्थात् विनाश करते है पुनः दोबारा विद्यमान हो जाता है। पुनः प्रमाण से खण्डित करते हैं; यह तारतम्य बना रहता हैं। विपरीत स्थिति का आना, उसको खण्डित कर देना। यही प्रक्रिया निरन्तर बनी रहती है।

साधक २ – स्थिति बन गई अर्थात् पूरी हो गई। काट दिया सब कुछ समाप्त कर दिया। इतना होने के पश्चात् लगता है कि अब क्या करें? यह तो हो गया। इसी स्थिति को यदि बनाए रखें तब वह भारभूत लगती है।

स्वामी जी – मैं दूसरी बात बताता हूँ। आप यहाँ एक काम करेंगे कि आप ऐसी स्थिति में 'ओम् या गायत्री मन्त्र' का जप कर सकते हैं अथवा 'ओम् सच्चिदानन्द' नाम लेकर ईश्वर की खोज करने लगो। ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करो। जब ऐसी स्थिति बन जाए, उसके पश्चात् बस ! ईश्वर की खोज आरम्भ कर दें। इस ओर से संसार गया, साधन और सुख भी गए। हमने कुछ भी नहीं छोड़ा। जब सारा विनाश हो गया तब हमारी दृष्टि में वह स्थिति आ गई। आपने सूत्र पढ़ा होगा **कृतार्थं प्रति.....**। दोहरा लो।

साधक २ – **कृतार्थं प्रति नष्टमप्यनष्टं तदन्यसाधारणत्वात्**। यो. द. २/२२।

स्वामी जी – यह दृश्य उसमें दर्शनकार ने समझाया। आप समझे या नहीं? **कृतार्थं प्रति नष्टम्** इसको पृथक् कर दो। **अपि अनष्टम् तदन्यसाधारणत्वात्** क्या समझ में आया?

साधक ३ – अन्यों के लिए नष्ट नहीं हुआ है।

स्वामी जी – आपको अब दर्शनकार की बात समझ में आ गई? **कृतार्थं प्रति नष्टम्** संसार नष्ट हो गया। न सुख, न सुख का साधन रहे। **अपि अनष्टम्**।

साधक ३ – ये जीवनमुक्त के लिए है। अन्यों के लिए नष्ट नहीं हुआ है।

स्वामी जी – नहीं। इस प्रकरण से तो यह समझना है कि उसकी बुद्धि में संसार नष्ट हो जाता है। नष्टम् – नहीं रहा। **अपि अनष्टम्**। साधारण व्यक्ति के लिए तो भोग और भोग के साधन विद्यमान ही हैं।

तो हम क्या विचार रहे थे? उसमें ईश्वर का ध्यान। बस ! नष्टम् की स्थिति रहेगी, अब आपको लौटकर देखने के लिए न तो सुख रहे, न सुख के साधन। चाहिए भी क्या, जब कहीं कुछ

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहा ही नहीं। एक बात और, जब आपने अनित्यता के ऊपर विचार किया था तब यह बात आई थी कि मैं सुख और सुख साधनों का उपभोग करना चाहता हूँ, परन्तु वे नष्ट हुए दिखते हैं। क्या समझ में आया ?

व्यक्ति सुख और सुख-साधनों का उपयोग करना चाहता है और वे उसको विनाशवान् दिखते हैं तब बड़ा दुःख होता है। वह चाहता है कि सुख और सुख के साधन बने रहें, किन्तु बने नहीं रहेंगे, कितना भी बल लगाओ। अब उसको बड़ा कष्ट होता है। पुनः क्या करे? वह कहता है - उड़ाओ इनको, नष्ट कर दो। हमको नहीं चाहिए। यह स्थिति आती है। पुनः पीछे नाशवान् देखता है तो न सुख रहता है, न सुख का साधन। कहीं भी दृष्टि डालता है कुछ नहीं दिखाई देता। अब वही व्यक्ति पुनः ईश्वर की खोज आरम्भ करता है। अब विराम ॥

५५ आत्मनिरीक्षण

वचन-बाधा : आषाढ़ कृ. १०/२०६०-२३/७/०३

अब आत्मनिरीक्षण आरम्भ करते हैं। हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे।

साधक ५- स्वाध्याये किञ्चित् कालं नियोजतवान्। आर्यभाषायाः प्रयोगं कृतवान्।

स्वामी जी - संस्कृत-भाषण में आपको कोई त्रुटि दिखाई दी या नहीं? अन्य किसी को दी हो। किञ्चित् काल बनेगा या नहीं बनेगा ?

साधक ६ - कश्चित् बनेगा।

स्वामी जी - क्या बनेगा ? कश्चित् बनेगा दूसरे वाक्य में। यहाँ कर्मणि द्वितीया से कर्म में बना रहे हैं तो कञ्चित् कालम् बनेगा। किञ्चित् कालम् नहीं बनेगा।

सावधानी से बोलें, व्याकरण की अशुद्धियाँ कहाँ होती हैं, उनको पकड़कर शुद्ध करें और बोलते-बोलते कहाँ अटक जाते हैं, कहाँ अशुद्ध निकल जाता है आदि बातों का ध्यान रखें तो बहुत से दोष दूर हो जाएँगे। नहीं तो कोई भी भाषा हो, उसमें बहुत परिश्रम किए बिना, व्यक्ति के दोष दूर नहीं होते हैं। इसलिए भाषा को सीखने व सुधारने के लिए बहुत परिश्रम करना पड़ता है। अब जैसे कि आप अशुद्ध बोलते हैं और उसको पकड़ते ही नहीं। बहुत बार नहीं पकड़ पाते। तो ऐसा अभ्यास हो गया।

जब आप सावधानी से बोलेंगे। बोलते हुए सावधान रहेंगे। बोलने के पश्चात् भी उन वाक्यों को देखेंगे। बोलने से पहले सज्जा करेंगे, तब त्रुटियाँ दूर होती जाएँगी। कभी आपको किसी के साथ संस्कृत भाषा बोलनी पड़ गई तब आपको अच्छी सफलता मिलेगी। यदि ऐसी सज्जा, तैयारी नहीं की तब आप वहाँ सफल नहीं हो पाएँगे। या तो चुप होना पड़ेगा या अशुद्ध बोलते चले जाओगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आप सुनाएँगे -

साधक ८ – आज स्वाध्याय समय से कुछ कम किया। आज मैंने परोपकारणी सभा के अन्दर धर्मवीर जी को दूरभाष किया और यहाँ योग की कक्षा लगती है आदि चर्चा की।

स्वामी जी – आपने नियम भंग किया ?

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – उसका दण्ड लेना।

साधक ८ – जी ! पुनः सायंकाल की संध्या में जितना समय लगाता था, उससे कम समय लगाया। और कुछ गैस का भी प्रभाव रहा। सांयकाल की संध्या जैसी नियमित होनी चाहिए थी वैसी नहीं हो पाई।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ६ – शिरोवेदना के कारण दिनचर्या ठीक नहीं रही।

स्वामी जी – तो सिर में पीड़ा पहले कभी होती थी या अभी नई है ?

साधक ६– पहले भी हो जाती थी।

स्वामी जी – तो इस विषय में आचार्य बलदेव जी से बात की हो। उसका कारण पूछा हो, कुछ पता लगा था कि यह क्यों होता है ?

साधक ६– बौद्धिक परिश्रम करने से ही होता है।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक ७ – आर्यभाषा का प्रयोग किया। थोड़ा-सा हँसना-हँसाना हुआ।

स्वामी जी – यह जो नियम बनाया गया कि आप हँसो-हँसाओ नहीं। इसके पीछे कारण है कि यह जो हँसने-हँसाने का व्यवहार है, यह विवेक-वैराग्य की ऊँची स्थिति में बाधा डालता है। साधारण लोग जो लौकिक स्थिति में होते हैं, उनके लिए तो उपयोगी हो जाता है। जैसे कि जो लोग शिक्षण-शिविर में भाग लेने आते हैं, वे यदि थोड़ा हँस-हँसा लें या उनको कुछ रोचक बातें सुना दी जाएँ तो उनका मन लगा रहता है। कुछ सीख लेते हैं, अन्यथा ऊबकर भाग जाएँगे। वहाँ तो हँसने-हँसाने का कुछ ठीक उपयोग हो जाता है परन्तु जहाँ ऊँचे स्तर की विद्या सीखी जाती है। जहाँ पर अपर-वैराग्य, पर-वैराग्य, समाधि की बातें चलती हैं, वहाँ तो हँसना-हँसाना बाधक ही होता है। ऐसा विभाजन कर लेना चाहिए।

जब उन लोगों के लिए ऐसा किया जाता है कि ये हँसेंगे-हँसाएँगे, थोड़ा-सा रोचकता बनाएँगे तब प्रसन्नता रहेगी। ध्यान जमेगा और बहुत अच्छा लगेगा। किन्तु बोलना नहीं है, मौन रहना है। कोई कहीं का विवरण नहीं सुनाना है। कोई चर्चा नहीं छेड़नी है। किसी प्रकार की काट-छांट नहीं करनी है। हँसना भी नहीं है, हँसाना भी नहीं है तब वे घबराते हैं, दुःखी हो जाते हैं। उनको रहना कठिन हो जाता है। क्यों, जब आपके साथ में यह बात आ गई है तो आपको कैसा लग रहा है ?

साधक ६ – बिना हँसे अच्छा लगता है।

स्वामी जी – हूँ ! गम्भीरता से देखो, सूक्ष्मता से देखो, तब पता चलेगा कि जब हमको कोई लौकिक सुख मिलता है तब हम हँसते हैं। क्या समझ में आया ?

साधक ५– लौकिक सुख मिलता है तब हम हँसते हैं।

स्वामी जी – इससे यह भी पता चला कि जो लौकिक सुख मिला, उसमें और उसके साधनों

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में यदि राग उत्पन्न होता है तब यह बात वैराग्य से टकराएगी। निश्चय से टकराएगी। आप देख रहे हैं कि एक ओर तो पूरे संसार को प्रलय में बदल रहे हैं और दूसरी ओर आप उससे रस लेने जा रहे हैं। यह विरोधी विचार धारा है।

साधक ६ – जैसे स्वामी जी ! उन्होंने पीछे एक बात कही कि कमरे को ताला नहीं लगाया, खुला छोड़कर आ गया। पुनः कहा गया कि कोई कुछ ले जाए, तो उन्होंने कहा – सब ईश्वर का है। ईश्वर-प्रणिधान हो गया। तब मुझे इस बात पर हँसी आ गई। तो प्रश्न है कि सुख और सुख राग की बात कैसे आ गई ?

स्वामी जी – आपको वह जो हँसी आई है वह लौकिक सुख लेने के लिए आई है। यों ही हँसी नहीं आई। आप तब हँसे हैं जब उसने भूल की है और उसको जानकर आपको सुख मिला। दूसरी बात उसकी मूर्खता पर हँसे हैं।

साधक ६ – इसमें यह समझ नहीं पा रहे हैं कि उसके सुख में हँसे या उसके विनोद में।

स्वामी जी – कुछ भी हो। आपको हँसने में रस आया है, तभी तो आप हँसे।

साधक ६ – यही नहीं समझ पा रहे हैं।

स्वामी जी – यह कोई बहुत सूक्ष्म बात तो है नहीं।

साधक ६ – यों ही हँसी आ गई; ऐसा लगता है।

स्वामी जी – हँसी आ नहीं गई, हँसी लाई गई है। अब तक आपने सीखा नहीं कि जीवात्मा स्वयं हँसी करता है। अपने-आप हँसी आई होती तब रात्रि में सोते हुए भी आनी चाहिए। इसमें कई अंश हैं। एक तो आपने उसकी ऐसी स्थिति देखी कि यह व्यक्ति कैसी भूल करता है। दूसरी, इसकी बुद्धि में न्यूनता है। बोध अशुद्ध है। ईश्वर-प्रणिधान का यह तो अभिप्राय नहीं कि कमरे में ताला मत लगाओ। तब उसकी बुद्धि पर हँसी आई है। ऐसा भी होता है कि ओहो ! यह व्यक्ति तो ईश्वर-प्रणिधान में बहुत आगे बढ़ गया है। इसमें भी हँसी आ सकती है।

साधक ६ – ऐसा तो नहीं लगता।

स्वामी जी – नहीं। बिना कारण के कार्य नहीं होता। इसलिए इसको रोकना पड़ेगा। आप इसी प्रकार हँसते-हँसाते आगे बढ़ते गए तो व्यक्ति दिखाई देगा। पूरी सृष्टि, जो मिटाने की वस्तु थी, वह सामने आ जाएगी। पुनः वही पूर्व जैसी सोचने की धारा चल पड़ेगी। जैसे पहले सोचते-विचारते थे, वैसा ही अब सोचने-विचारने लग जाएँगे। वही वातावरण बन जाएगा, जिसे आपने पहले हटाया था। पुनः अब जो उत्तम वातावरण बनाया है, यह सारा बिगड़ जाएगा।

मैंने जो इन बातों के प्रयोग किए थे। मुझे पूरे वर्ष तो स्मरण नहीं हैं। पन्द्रह-बीस वर्ष लगाए या कितने दिनों तक ऐसे बोलना, हँसना ही नहीं, चलता रहा। बहुत लम्बे काल तक प्रयोग चले। दिनभर अपना या दूसरों का काम करना और किसी से बात ही नहीं करनी। बहुत लम्बे काल तक देखा गया कि ऐसा लगता था कि मैं जितना हँसूँगा उतना ही मुझे दुःख भोगना पड़ेगा। क्या समझे ?

साधक २ – जितना हँसूँगा उतना ही मुझे दुःख भोगना पड़ेगा।

स्वामी जी – उतना ही मुझे दुःख भोगना पड़ेगा। थोड़ी-बहुत समझ में आ रही है बात ? यहाँ तक कि दूसरे हँसते थे तब भी मैं उनको कह देता था कि आप जितना हँसते हैं आपको उतना ही दुःख भोगना पड़ेगा।

उस समय रास्ते में चलते समय थोड़ा-सा मार्ग देख लिया और चलते रहे, पुनः थोड़ा-सा देख

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिया और चलते रहे; इस प्रकार मैं चलता था। दूसरे विद्यार्थी मुझे देखकर कहते थे - (आँख नीची करके) देखो-देखो ! ऐसे हँसी उड़ाते, उपहास करते थे। जैसे किसी दीन-हीन के साथ होता है कि यह देखो ! कैसे रहता है, कैसा पागल जैसा व्यक्ति है आदि। अच्छा ! मुझे उससे कोई दुःख होता हो या मैं किसी से सूचना करूँ या ये ऐसा क्यों करते हैं; ऐसा कुछ भी नहीं। हाँ जी !

साधक १ – कभी-कभी अपनी अज्ञानता के ऊपर भी हँसी आ जाती है ?

स्वामी जी – वह तो आएगी। अज्ञानता पर हँसी तभी आएगी जब वैराग्य नहीं होगा।

साधक १ – जैसे मन को जड़ मानना चाहिए किन्तु मैं अभी तक चेतन मानकर चल रहा था। यह समझ आते ही पुनः हँसी आ जाती है।

स्वामी जी – आती है, जब तक उसमें लौकिकता का पुट है। जब ध्यान देंगे तब आपको यह पता चलेगा कि इस ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करने वाले के समक्ष विचारों की कितनी गहराइयाँ होती हैं। विचारों की कैसी-कैसी धाराएँ चलती हैं। सामान्य लोगों को यह पता नहीं चलता कि वह कैसी-कैसी स्थिति में रहता है। अन्यों के साथ कैसे बोलता है। खाना-पीना कैसे करता है। उसके सोचने का ढंग क्या है आदि। व्यक्ति को इन सब का पता ही नहीं चलता।

अच्छा ! जब तक पता नहीं चलता तब तक कोई भी व्यक्ति ऊँचे योग में प्रवेश भी नहीं कर पाता। यह तो मरकर पुनः जन्म लेना है। बस ! व्यक्ति मर जाएगा, पुनः दोबारा जन्म होगा। एक होता है माँ के गर्भ से जन्म लेना, दूसरा है पढ़-लिखकर विद्वान् बनना। जहाँ द्विज कहलाता है, यह दूसरा जन्म है और जहाँ अपने-आप को मारकर समाधि को प्राप्त होता है, वह है तीसरा जन्म। दोहराओ, क्या समझ में आया ?

साधक ८ – एक जन्म माता के गर्भ से।

स्वामी जी – एक जन्म माता के पेट से हुआ। विद्या पढ़-लिखकर विद्वान् हुआ, द्विज कहलाया; यह दूसरा जन्म हुआ। पुनः विद्यादि सहित अपने-आपको मारकर आत्मा-परमात्मा को जाना; यह हुआ तीसरा जन्म। जब स्वयं को सर्वथा मार देना और अपने सुख, सुख-साधन, खाना-पीना आदि सुख रूप में नितान्त छोड़ देना होता है तब तीसरा जन्म समझना चाहिए।

साधक ८ – स्वामी जी ! जैसे उन्होंने (साधक १ ने) पूछा था कि पहले मन को चेतन मानते रहे, अब हमें अनुभव में आने लगा कि मन जड़ है। तब जो हमारा पिछला चिन्तन है, उस पर हँसी आ जाती है। तब आपने यह बताया कि इसमें लौकिकता का पुट है। तो आपका यह उत्तर थोड़ा-सा समझ में नहीं आया।

स्वामी जी – हम देख रहे हैं कि यह व्यक्ति एक ओर अपने-आपको मौत के मुँह में डाल चुका है और दूसरी ओर हँस क्यों रहा है ? यह विरोधाभास नहीं है ? वस्तुतः वह मरा नहीं, अभी जीवित है। क्या समझ में आया ? व्यक्ति जीवित है, इसलिए इन लौकिक घटनाओं में रस ले रहा है। घटना कैसी भी हो, वह उसमें रस लेता है, अतः प्रसन्न होता है। जब इन लौकिक घटनाओं में रस आ रहा हो तब समझना राग है।

आप सुनो, विचारो, खोज करते जाओ। यदि इन सभी गतिविधियों को सुनकर, समझकर उसका प्रयोग करेंगे तब आप देखेंगे कि आज की अपेक्षा हमारा पहले का व्यवहार कितना विवेक-शून्य था। विवेक-वैराग्य की स्थिति के साथ लौकिक स्थिति की तुलना करने पर पता चलता है कि लौकिक अवस्था में व्यक्ति कितना बेसमझ, व्यवहार-शून्य होता है। यद्यपि लौकिक अवस्था में ठीक विपरीत दिखाई देता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानकर चलो कि आपमें से किसी को वैराग्य हो जाए। वैराग्य अर्थात् अपर-वैराग्य हो जाए। साधारण वैराग्य की बात नहीं चल रही है, वह तो आप में है। समाधि की स्थिति में पहुँचाने वाला वैराग्य तो आपमें मुझे दिखता नहीं। स्वयं आपको दिखता हो तो मुझे पता नहीं। तो समाधि को प्राप्त कराने वाले वैराग्य की स्थिति में जब आप पहुँच जाएँगे तब ये सारी बातें स्पष्ट हो जाएँगी। समाधि लगने पर यह पता चलेगा कि ऐसा क्यों कहा जाता था। क्योंकि जैसे ही आप इन बाधक विचारों को उठाएँगे, समाधि भंग हो जाएगी। इसलिए वहाँ पर स्पष्ट दिखता है कि ये-ये बाधक हैं। इन-इन घटनाओं को उपस्थित करने पर समाधि भंग हो जाती है।

मनु महाराज का एक उदाहरण ले लो। उन्होंने ब्राह्मण का लक्षण किया। ब्राह्मण को कैसा होना चाहिए? यहाँ पर विवेक-वैराग्य वाला व्यक्ति ब्राह्मण है। श्लोक है -

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव। अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ मनु. २/१६२।

भावार्थ - विवेकी योगी सम्मान से डरता रहे, अपमान को अमृतवत् चाहे।

अब यह कैसा विचित्र दृष्टान्त है। आप इसको देख लो। यह विवेक-वैराग्य को प्राप्त, योग-समाधि को छुआ हुआ व्यक्ति है। उसके लिए कह रहे हैं कि यह व्यक्ति सम्मान से तो विष के तुल्य डरता रहे और अपमान की इच्छा अमृत के तुल्य करता रहे। अब कसौटी पर कस कर देखो कि कैसी स्थिति है?

साधक १ – स्वामी जी! यह प्रारम्भिक योगाभ्यासी के लिए है अथवा समाधि प्राप्त व्यक्ति के लिए है?

स्वामी जी – जहाँ तक इसका क्षेत्र है ...।

साधक १ – प्रारम्भिक के लिए लगता है।

स्वामी जी – नहीं। बहुत प्रारम्भिक के लिए नहीं है। एक अच्छी स्थिति जिसकी हो गई है। एक तो परिपक्वता वाली है।

साधक १ – कच्ची स्थिति वालों की है।

स्वामी जी – हाँ! अभी पक्के को तो हटा दो। जिसने वह स्थिति अभी-अभी प्राप्त की है ...।

साधक १– अपर-वैराग्य की स्थिति तो नहीं है?

स्वामी जी – नहीं ..।

साधक १– डर रहा है अभी।

स्वामी जी – नहीं।

साधक १ – हेयोपादेय-शून्या नहीं है।

स्वामी जी – नहीं, वह नहीं है। बात यह है, वह जो बोलने वाला बोल रहा है कि ऐसा करे; इसको ध्यान में रखो। कौन करे? ब्राह्मण शब्द का प्रयोग है। अर्थात् वह योगी विद्वान् जो संप्रज्ञात-समाधि को प्राप्त कर चुका है।

साधक १ – उसके लिए डरना तो नहीं बनेगा।

स्वामी जी – नहीं-नहीं (रुको तो)। बात यह है कि जिसको संप्रज्ञात-समाधि प्राप्त हो चुकी है, मनु उसी को सावधान होने के लिए कह रहे हैं।

साधक १– सावधान कर रहे हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ ! उसी को सावधान करने के लिए कहते हैं – देखो सम्मान को तो विष के तुल्य समझो और अपमान की ही इच्छा करते रहना। इससे स्थिति नहीं बिगड़ेगी। अन्यथा यदि सम्मान की इच्छा कर ली तो स्थिति बिगड़जाएगी। यह इस एक स्तर की बात है।

एक स्वाध्याय-शील सज्जन थे दीपचन्द जी आर्य, आर्ष साहित्य ट्रस्ट दिल्ली वाले। उनके यहाँ सत्संग होता था। पढ़ते-पढ़ाते भी थे आदि-आदि। एक बार उन्होंने कहा कि यह श्लोक मुझे समझ में नहीं आ रहा है कि ऐसा करता कौन है या यह होता क्यों है, जिसके लिए मनु ने ऐसा कहा ? मैंने कहा – क्यों करना चाहिए और किसके साथ यह घटना होती है, वह आपको मैं बताता हूँ – जो व्यक्ति विवेक-वैराग्य को प्राप्त हुआ। जिसने लोकैषणाओं को ठुकराया, इन्द्रियों के विषय छोड़दिए। जीवन रक्षा के लिए अपेक्षित साधनों को छोड़ कर, शेष सुख और सुख साधनों का परित्याग कर दिया। अब यदि वह व्यक्ति सम्मान की इच्छा करने लग जाए और अपमान से डरने लग जाए तो उसका स्तर एकदैव गिरेगा।

मानकर चलिए जिसने संप्रज्ञात-समाधि को प्राप्त किया। उसने इसके लिए पहले सम्मान को ठुकराया है, नाममात्र भी छोड़ा नहीं। उसके पास में 'मैं और मेरा' नहीं रहा। सम्मान और अपमान, इन दोनों को उसने उड़ा दिया। अब वह व्यक्ति देखता है कि स्वयं मैंने इन तीनों एषणाओं को ही छोड़कर इस स्थिति का सम्पादन किया था। अब पुनः यदि उन्हीं में से एक इस सम्मान की इच्छा करता हूँ और अपमान से कुछ द्वेष करता हूँ तो वह स्थिति बनी कैसे रहेगी ? और यदि पुनः वे एषणाएँ उभरती हैं तब मेरा वही लौकिक स्तर हो जाएगा, जो पहले था।

साधक १ – जी ! आपने अभी एक बात कही कि इन्द्रियों के विषयों को छोड़ देता है। इसका क्या अभिप्राय है ?

स्वामी जी – क्या अभिप्राय का अर्थ ? नहीं, जीवन का विषय होगा।

साधक १ – इन्द्रियों का विषय छोड़देता है।

स्वामी जी – पुनः दोहराना ?

साधक १ – इन्द्रियों के विषयों को भी छोड़ देता है।

स्वामी जी – हाँ ! उस वाक्य का यह तात्पर्य था कि इन्द्रियों से जितने सुख लिए जाते हैं, उनको ठुकरा देता है, छोड़ देता है। यह सम्मान भी कर्णेन्द्रिय का विषय है। इसलिए इसको भी छोड़ देता है।

अब और दर्शनकार की भाषा के साथ में जोड़ लो। **स्थान्युपनिमन्त्रणे सङ्गस्मयाकरणं पुनरनिष्ट प्रसङ्गात्**। यो. द. ३/५१। क्या समझ में आया ? चार प्रकार के योगी आए, उनमें **ऋतम्भरा प्रज्ञा** को प्राप्त योगी के लिए यह बात आई कि वह व्यक्ति यदि असावधान हो जाए, तब पुनः अनिष्ट हो सकता है। आप ऐसा न समझना कि थोड़े से परिश्रम से हम इस अविद्या को, कुसंस्कारों को, वासनाओं को, तीन एषणाओं को हटा देंगे। ऐसा मत समझ लेना। दोहरा लो।

साधक ५– ऐसा हम न समझें कि थोड़े ही पुरुषार्थ से इन वासनाओं को, इन अज्ञानताओं को, इन कुसंस्कारों को हटा देंगे।

स्वामी जी – ऐसा मत मान लेना। एक यह भूल होती है व्यक्ति की कि वह ऐसा मान लेता है कि यह तो हो जाएगा। भाई ! अब तो हमने घर छोड़ दिया है। अब तो सिद्धि हो ही जाएगी। सांख्य में यह तुष्टि दोष में आया होगा।

(हाँ जी ! विनोद जी ! इसके लिए अपना दण्डा तैयार रखा करो।)

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो क्या समझ में आया ?

साधक २ – व्यक्ति मान लेता है कि यह तो....।

स्वामी जी – कि भाई ! अब तो हमने घर छोड़-छाड़ दिया है। पारिवारिक सम्बन्ध तोड़ दिए हैं। अब तो अपने आप सिद्धि हो ही जाएगी। यह तुष्टि दोषों में है। आपको अपनी अविद्या को हटाने में, दुर्बल करने में, दग्धबीजभाव स्थिति को लाने में बहुत लम्बा समय लगेगा। आगे बढ़ो तो जैसे-जैसे आपका स्तर ऊँचा बनता जाएगा, वैसे-वैसे समाधि लगती जाएगी और दोषों का दर्शन, दोषों का स्वरूप, कैसे-कैसे उनकी तहें लगी हुई हैं, आपको दिखती चली जाएँगी। समाधि का अभ्यास करते-करते जो सूक्ष्म दोष पकड़े जाते हैं, वे बिना समाधि के नहीं पकड़े जा सकते हैं। दोहरा लो क्या समझ में आया ?

साधक २ – हमारे जो समाधि स्तर के दोष हैं वे बिना समाधि लगाए .....।

स्वामी जी – पकड़ में नहीं आते। अच्छा जी ! अब विराम ॥

५६ यज्ञीयोपदेश

उपासना-सज्जा : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२४/०७/२००३

एक साधक मानसिक रूप में, उपासना में बैठने से लगभग दस-पन्द्रह-बीस मिनट पूर्व या आधा घण्टा पहले ही, उपासना करने की तैयारी करने लगता है। उसमें उसकी मनःस्थिति ऐसी रहती है कि अब मै ईश्वर की उपासना करूँगा, जिससे क्लेशों से छूटकर सुख को प्राप्त होऊँगा। इस रूप में उसके मन में आकर्षण होता है और वह उपासना को पूरा करने का प्रयत्न करता है।

जब साधक उपासना में बैठता है तब ईश्वर के स्वरूप का चिन्तन-मनन, उसकी अपनी आत्मा के स्वरूप का मन्थन-विचार तथा प्रकृति-विकृति अर्थात् सृष्टि के स्वरूप का चिन्तन-मनन करता है। स्वरूप के चिन्तन में वह जानना चाहता है कि वह पदार्थ कैसा है। पुनः शब्द-प्रमाण में जैसा वर्णित है उसी को वहाँ उपस्थित करता है। उसी आधार पर वह ईश्वर के साथ सीधा सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है। यद्यपि ऊँचे स्तर के साधक का तो दिनभर ईश्वर के साथ सम्बन्ध बना रहता है। कभी असावधानी या किन्हीं अन्य कारणों से सम्बन्ध टूट जाता है तो तत्काल जोड़ लेता है। नवीन साधक तो प्रायः सम्बन्ध तोड़ देता है जिसके कारण पुनः सम्बन्ध की स्थापना करने या जोड़ने में उसको अधिक परिश्रम करना पड़ता है और अधिक कठिनाई भी होती है।

अब उपासना में बैठकर साधक ऐसे सोचता है - प्रथम आर्यसमाज के प्रथम नियम के द्वारा ईश्वर का स्वरूप उपस्थित करता है कि **सब सत्य विद्या.....**। इसी सिद्धान्त को लेकर बोलता है कि हे ईश्वर ! सारी सत्य विद्याएँ आप में हैं। उनका आधार, उनको रखने वाले और उन्हीं में से हमको देने वाले केवल आप हैं, कोई अन्य नहीं है। जो कोई पदार्थ इन विद्याओं से जाने जाते हैं उनका निमित्त कारण, उत्पन्न करने वाला अन्य कोई नहीं, अपितु आप ही हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुनः वह समय के अनुरूप आर्य समाज के दूसरे नियम को लेता है - आप का स्वरूप ऋषि ने बताया कि आप सच्चिदानन्द स्वरूप, निराकार, सर्वशक्तिमान्, न्यायकारी, दयालु, अजन्मा, अनन्त, निर्विकार अनादि, अनुपम, सर्वाधार, सर्वेश्वर, सर्वव्यापक, सर्वान्तर्यामी, अजर, अमर, अभय, नित्य, पवित्र और सृष्टिकर्त्ता हैं। आपकी ही उपासना करने योग्य है।

आगे साधक वर्णन करता है - हे ईश्वर ! योगदर्शनकार महर्षि पतंजलि ने आपका स्वरूप बताया कि **क्लेशकर्मविपाकाशयैरपरामृष्टः पुरुषविशेष ईश्वरः**। हे ईश्वर ! आप अविद्या आदि क्लेशों से रहित हैं, पाप कर्मों से आप रहित हैं। आप शुभ कर्म ही करते हैं, लौकिक सुख-दुःख भोगने से रहित हैं और भोगों के जो संस्कार पड़ते हैं वे आपमें नहीं पड़ते। आपका स्वरूप हम जीवों से भिन्न है, विशिष्ट पुरुष हैं। **तत्र निरतिशयं .....**। आपका ज्ञान निरतिशय असीमित है। आपके ज्ञान के तुल्य या अधिक किसी का भी ज्ञान-विज्ञान नहीं है। **स पूर्वेषामपि.....**। हे ईश्वर ! जितने गुरु पहले हुए, आज हैं, आगे होंगे उन सबके गुरु विद्या पढ़ाने वाले आप ही रहे हैं। **तस्य वाचकः प्रणवः**। ऋषि ने कहा - आपका नाम ओम् है। आप ईश्वर प्रणव के वाच्य हैं, प्रकाश्य हैं। आप एक पदार्थ हैं, वस्तु हैं। **तज्जपस्तदर्थभावनम्**। ऋषि ने इसमें जप की विधि बताई। अब साधक देखता है कि अभी हमारे पास समय है तो और थोड़ा वर्णन किया जा सकता है। अब वह कहता है - हे ईश्वर ! आपने स्वयं वेद में अपना वर्णन करते हुए बताया कि मेरा यह स्वरूप है -

स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम्।

कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥ यजु. ४०/८।

यद्यपि साधक अपने समय के अनुसार इन शब्दों का एक-एक अर्थ भी कर सकता है।

अब साधक अपने विषय में वर्णन करता है - हे ईश्वर ! मैं जीवात्मा सत् हूँ, चित् हूँ, एकदेशी हूँ, अल्पज्ञ हूँ। ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न मेरे गुण हैं। कर्म करने में स्वतन्त्र हूँ और फल भोगने में आपके आधीन हूँ।

पुनः साधक प्रकृति-विकृति का वर्णन करता है - **सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः .....**। प्रकृति से आपने महत्तत्त्व बनाया, महत्तत्त्व से अहंकार बनाया, अहंकार से मन, पुनः ज्ञानेन्द्रियाँ, कर्मेन्द्रियाँ, पंचतन्मात्र रूप सूक्ष्म शरीर; ये अठारह पदार्थ बनाए। पंचतन्मात्रों से पृथ्वी आदि पाँच भूत बनाए। इन सब को आपने बनाया है, ये स्वयं नहीं बने हैं।

अब यह वर्णन साधक पर क्या प्रभाव डालता है? इस प्रकार के वर्णन करने से साधक के सामने ईश्वर के विषय में भ्रान्ति नहीं रहती। वह ईश्वर के प्रति श्रद्धा, रुचि तथा सन्देह-रहित अवस्था को उत्पन्न करता है। अपने आत्मा के विषय में सन्देह रहित अवस्था को उत्पन्न करता है। प्रकृति से विकृति, यह जड़ वर्ग पहले कैसा था और किसने ऐसा बना दिया; इस विषय में सन्देह की निवृत्ति करता है।

अब साधक स्वयं को साधक, ईश्वर को साध्य और शरीर आदि प्रकृति को साधन मानता हुआ जप आरम्भ करता है और प्रयोग के लिए **त्र्यम्बकं यजामहे** मन्त्र को लेता है।

यहाँ एक विशेष बात जानने योग्य है कि साधना काल में विवेक, वैराग्य और अभ्यास तीनों ही उपस्थित रहने चाहिएँ। इन तीनों का प्रयोग होता रहता है। इसलिए यदि तीनों में से एक विवेक हट जाए तो योगाभ्यास, ध्यान, साधना नहीं हो पाएगी। यदि वैराग्य हट जाए तब भी साधना नहीं हो पाएगी और यदि अभ्यास, प्रयत्न हट जाए तब भी साधना नहीं हो पाएगी। तो इन बातों को ध्यान में रखते हुए अब हम प्रयोग करेंगे। आरम्भ कीजिए। प्रथम धुन के रूप में चलेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग आरम्भ... समय लगभग ३ मिनट।

ओम् त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्योर्मुक्षीय मामृतात्॥

अब आप रुकेंगे और ध्यान से सुनेंगे। साधक पाठ करके मन्त्र के अर्थ को करता हुआ ईश्वर के साथ सम्बन्ध जोड़ने का प्रयास करता है। ईश्वर को सम्बोधित करता हुआ कहता है - **त्र्यम्बकम्** हे ईश्वर! जीवात्माएँ, सत्त्व-रज-तम प्रकृति और महत्तत्त्व से लेकर शरीर पर्यन्त पूरी निर्मित सृष्टि, इन तीनों के आप अध्यक्ष, संचालक, स्वामी और इनको अपनी व्यवस्था में रखने वाले हैं। **यजामहे** हम सभी आपकी ही पूजा करते हैं, उपासना करते हैं, भक्ति करते हैं, ध्यान करते हैं। यद्यपि हम दो समय आपकी उपासना करते हैं परन्तु पूरे समय सभी व्यवहारों में समाज, राष्ट्र, विश्व के साथ, मित्रों-सम्बन्धियों के साथ तथा परस्पर अध्यापक-विद्यार्थी, विद्यार्थी-विद्यार्थी, पति-पत्नी आदि सब आपकी आज्ञा का पालन करते हैं। जैसे वैरभाव छोड़कर प्रीति से वर्त्तना, प्रेम से रहना। छल-कपट झूठ को छोड़कर, सत्य का व्यवहार लेन-देन में करते रहना; ये करते हैं। **सुगन्धिं पुष्टिवर्द्धनम्** आप सुगन्धि और पुष्टि को बढ़ाने वाले हैं। **उर्वारुकमिव बन्धनान्** हे ईश्वर! जैसे खरबूजा पकने पर आनन्दप्रद हो जाता है वैसे हमारा जीवन भी आपकी सहायता से आनन्दप्रद हो जाए। **मृत्योर्मुक्षीय** खरबूजा जैसे पकने पर डण्ठल से स्वतः ही दूर हो जाता है, तोड़ना नहीं पड़ता। आपकी सहायता से, आपके दिए ज्ञान-विज्ञान से हम भी जन्म-मरण रूपी डण्ठल से छूट जाएँ। **मामृतात्** आपके नित्य आनन्द से दूर न होवें।

साधक ने यह प्रयोग किया। वह पाठ करता है, अर्थ करता है, पाठ करता है, अर्थ करता है। पुनःपुनः ये प्रयोग चलते रहते हैं। यदि हमने इसको मन में करना हो तो ये प्रयोग मन में भी होते हैं।

आप कहते हैं कि जब हम मानसिक या बोलकर जप करने लगते हैं तब बाहर की ध्वनियाँ, जैसे कि पक्षी बोल रहे हैं, किसी ने द्वार खटखटा दिया आदि-आदि बाधित करती हैं। ध्यान लगने नहीं देती हैं। उस स्थिति में आप यदि ईश्वर में अत्यन्त तल्लीन हो जाएँ, ईश्वर में अति प्रेम से लग जाएँ और शब्द का अर्थ भी साथ-साथ करते रहें तब ये बाहर की जितनी भी साधारण ध्वनियाँ हैं, जो ये बाधक दिख रही हैं, कोई विशेष बाधा नहीं डालेंगी।

अब आप मानसिक रूप में प्रयोग करेंगे इसी **त्र्यम्बकं यजामहे** का। पहली पद्धति का प्रयोग करेंगे। पाठ करें, एक-एक शब्द का अर्थ करें। यही प्रक्रिया लगातार चलती जाएगी। ईश्वर को सम्बोधित करें किन्तु जीवों की व्याप्यता और ईश्वर की व्यापकता; प्रकृति की व्याप्यता, ईश्वर की व्यापकता; सृष्टि की व्याप्यता, ईश्वर की व्यापकता को ध्यान में रखें। जीवात्माएँ जहाँ हैं वहाँ भी ईश्वर है और जहाँ नहीं है, वहाँ भी ईश्वर है। जहाँ सृष्टि है वहाँ ईश्वर है और जहाँ नहीं है वहाँ भी ईश्वर है। जहाँ प्रकृति है वहाँ भी ईश्वर है और जहाँ नहीं है वहाँ भी ईश्वर है। भूतकाल में भी सदा ईश्वर व्यापक थे और ये व्याप्य थे। आगे भी ईश्वर व्यापक और ये व्याप्य रहेंगे। आप इसको साथ लेकर चलें। जब व्याप्य और व्यापक को साथ लेकर चलेंगे तब मन की तरंगों को रोकने में पर्याप्त सुविधा हो जाएगी। आपको कठिनाई का अनुभव कम से कम होगा। अति प्रेम एक भाग है। शब्दों का अर्थ, यह दूसरा है। ईश्वर को व्यापक और इन तीनों वर्गों को व्याप्य मानना; इसको साथ जोड़कर रखिए।

अब आप **त्र्यम्बकं यजामहे** का मानसिक प्रयोग करेंगे। स्वयं को व्याप्य ईश्वर को व्यापक देखते जाना। पूरी सृष्टि को व्याप्य ईश्वर को व्यापक देखते जाना। यदि विपरीत ज्ञान हो तो उसको रोकते जाना। यह जो पक्षी बोल रहा है; आप जब ईश्वर की ओर अति ध्यान देंगे, बहुत प्रेम करेंगे तब

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बाधा नहीं डालेगा। यदि बाधा न हो तो सृष्टि को प्रलयवत् अवस्था में भी ले जा सकते हैं। अभ्यास हो तो वह साधन भी उपयोगी रहता है। उसका भी उपयोग इस समय होता है। यद्यपि उस अवस्था की सिद्धि, मनन, निश्चित करना आदि दूसरे काल में किया जाता है। आरम्भ कीजिए -

प्रयोग आरम्भ .....। समय लगभग ५ मिनट।

अब आप रुकेंगे और आप अपना अनुभव बताएँगे कि कैसी स्थिति रही?

साधक ६ – पहले स्थिति अच्छी रही। पुनः धीरे-धीरे बीच में कुछ ध्वनियाँ सुनता रहा।

स्वामी जी – जो ध्वनि सुनाई देती है उसको रोकने के लिए एक उपाय है ध्वनि की ओर ध्यान ही नहीं देना। दूसरा उपाय है - मन जड़ पदार्थ है, उस पर संयम के अभ्यास से बलात् ध्वनि को रोक देना। तीसरा उपाय है - ईश्वर में अति प्रेम हो जाना। तो उस अवस्था में इनके प्रयोग होते हैं। अब आप प्रयोग करेंगे - ओम्।

साधक १ – बताना चाहता हूँ।

स्वामी जी – हाँ!

साधक १ – ईश्वर को व्यापक देख सका, परन्तु अपने आप को व्याप्य नहीं समझ सका।

स्वामी जी – उसमें क्या बाधा आई?

साधक १ – अपनी ओर विशेष ध्यान नहीं दे पाया। ईश्वर को ही विषय बनाया, तो अपना विषय नहीं रह पाया।

स्वामी जी – तो कम से कम ईश्वर विषय बना रहा, यह भी एक अच्छी स्थिति बनी। भले ही हम यह निर्धारित नहीं कर पाए कि मैं एकदेशी भी हूँ। अपने को साथ-साथ नहीं देखा पर ईश्वर के अन्दर तो रहे। इसलिए उसको व्यापक मानकर ध्यान करते रहे तो यह भी एक अच्छी स्थिति रही क्योंकि आरम्भ में हमने जो व्याप्य और व्यापक का निर्धारण किया था उसका ईश्वर के ध्यानकाल में एकाएक बन जाना या बना रहना नये साधक के लिए आवश्यक नहीं है। क्या समझ में आया? कालान्तर में वह स्थिति बन पाएगी।

अभी जब हम जप कर रहे हैं और ध्यान के बीच में हमको उसकी आवश्यकता नहीं पड़ रही है तो कोई बात नहीं, ईश्वर से तो जुड़े हैं। यह पृथक् बात है जिसकी परिपक्व अवस्था हो चुकी है, वह बहुत स्वतन्त्र हो चुका है, उसका मन पर पूरा अधिकार है, वह ऐसी अवस्था बना लेता है। वह वहीं पर ईश्वर के समक्ष उसकी स्तुति आदि करता हुआ कहे - हे ईश्वर! मैं एकदेशी हूँ और आप सर्वव्यापक हैं तो उसको कोई बाधा नहीं होती है। एक पुराने ऊँचे स्तर के व्यक्ति को इस प्रयोग में कोई बाधा नहीं पड़ेगी। दोनों की स्थितियाँ भिन्न-भिन्न होती हैं।

साधक १ – मन्त्र के अन्तिम भाग में जब **उर्वारु कमिव** का अर्थ आदि कर रहा था तब थोड़ा-सा यह भाव उभारा कि छूटना या विवेक तो मुझे स्वयं ही करना पड़ेगा अर्थात् विवेक करके छोड़ देने का पुरुषार्थ तो मुझे स्वयं ही करना पड़ेगा। जो ईश्वर मेरे सम्मुख उपस्थित हैं, ये इसमें कितनी सहायता करेंगे या नहीं करेंगे; यह थोड़ा-सा सन्देहात्मक भाव वहाँ पर था।

स्वामी जी – उसमें यह विषय नहीं उठाना चाहिए कि पुरुषार्थ मुझे करना पड़ेगा। कहीं सन्देह प्रबल हो जाए तो पृथक् बात है, उसका समाधान तत्काल कर लेना होता है। नहीं तो पहले इसको उठाया ही न जाए, यही अच्छा है। ध्यान देने की बात है कि हमारा पुरुषार्थ करने का सिद्धान्त पहले से निश्चित रहना चाहिए कि जब हम जैसा पुरुषार्थ करेंगे, निश्चित रूपेण ईश्वर वैसी सहायता देगा। दोनों सिद्धान्त पहले से ही निर्धारित रहने चाहिएँ। अब मैं जो प्रार्थना कर रहा हूँ, यह पुरुषार्थ

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के साथ कर रहा हूँ। इसके लिए मैंने दैनिक जीवन में भी परिश्रम किया है। अतः ईश्वर सहायता देगा ही। ऐसे इस बात में कोई विकल्प या सन्देह नहीं उठाना चाहिए।

अब प्रयोग करेंगे **ओ३म् ऋ तञ्च सत्यञ्च्.....।** मन्त्र का। ध्यान दो, अब आपको प्रत्येक शब्द का अर्थ आता है या नहीं आता? अर्थ आना चाहिए।

ओ३म् ऋ तञ्च सत्यञ्चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥

अब रुकेंगे। आप ध्यान दें, इस गति से ईश्वर को सम्बोधित करते हुए, उस शब्द का अर्थ कर पा रहे हैं या नहीं?

अब प्राणायाम के सम्बन्ध में कुछ विचार करेंगे। आपको तथा इन ब्रह्मचारियों को चारों प्रकार के प्राणायाम आते हैं या नहीं?

साधक १ – स्वामी जी! विधि पता है।

स्वामी जी – पता तो है! उसका प्रयोग करते हैं या नहीं?

साधक १ – अन्तिम प्राणायाम का प्रयोग नहीं करते हैं।

स्वामी जी – अच्छा! तो व्यक्ति को प्रयोग करके निश्चय कर लेना चाहिए कि कौन-सा प्राणायाम हमारे लिए अनुकूल है और कौन-सा प्रतिकूल। प्रयोग करने से व्यक्ति को जो अनुकूल या प्रतिकूल होता है, उसका पता चल जाता है। जो अधिक अनुकूल नहीं हो या कम अनुकूल हो, उसको बन्द कर देना चाहिए। प्राणायाम से अतिरिक्त श्वास-प्रश्वास का जो प्रयोग है, जैसे कि लम्बा श्वास लेना और छोड़ना। इससे भी हमको लाभ होता है। सामान्य स्थिति में श्वास जहाँ नहीं आता-जाता, लम्बा श्वास लेने और छोड़ने से वह वहाँ तक पहुँच जाता है।

श्वास-प्रश्वास का प्रयोग पेट में बढ़ी हुए वायु को कम करने के लिए भी होता है। परन्तु उसका प्रकार दूसरा होता है। जैसे कि आप के पेट के अन्दर कुछ अधिक वायु भर जाती है और बाहर निकलती है, जिसको डकार कहते हैं। कभी ऐसा होता है कि डकार नहीं आता है अथवा डकार से पूरी वायु बाहर नहीं निकलती तब उद्विग्नता-सी होती है। उस समय हम कुछ और श्वास अन्दर ले लेते हैं। पुनः वही श्वास अन्दर वाली वायु से मिलकर उसको बाहर निकाल देता है।

अच्छा! इस श्वास को लेने की भी दो विधियाँ हैं। एक तो सामान्यतया सीधे नाक से लेते हैं और दूसरा विशेष स्थिति में नाक और कण्ठ के माध्यम से भी लेते हैं। बहुत अधिक भाग दौड़ में तो मुंह से भी लेते हैं उसकी चर्चा हम नहीं कर रहे हैं। यहाँ दो ही ग्राह्य हैं नाक और कंठ वाले। इनमें नाक से लिया हुआ श्वास अनुकूल रहता है और कंठ वाला उतना अनुकूल नहीं रहता है। कुछ समझ में आया? आपको सम्भवतः इस क्षेत्र में दोनों विधियों का पता नहीं होगा।

देखिए! ऐसे हम नाक से श्वास लेते हैं। हमने अच्छी तरह ले लिया। ऐसे नाक से लिया हुआ अनुकुल पड़ेगा और ऐसे मुँह से लिया हुआ उतना अनुकुल नहीं पड़ेगा। कुछ समझ में आया? यद्यपि इन दोनों प्रकारों से डकार नहीं आता।

एक दूसरे प्रकार से नाक और कण्ठ के कुछ विशेष ढंग के प्रयत्न से जब श्वास लेते हैं तब डकार बनता है और उससे अन्दर की बढ़ी वायु को निकाल देते हैं। कुछ समझ में आया या करके दिखाऊँ?

साधक ८ – या पुनः डकार भी लेते रहते हैं?

स्वामी जी – देखो! डकार की भाँति वायु निकलने की ध्वनि, जो नाक और कण्ठ की सहायता से लेते हैं। कुछ समझ में आया? उस नाक वाले श्वास की भाँति यह श्वास हमारे अन्दर नहीं पचेगा। इससे पेट भर जाएगा। अतः इसका उपयोग केवल वायु निकालने के लिए होता

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। जब इसी की मात्रा को आगे बढ़ाते हैं तो अन्दर भरकर पुनः बाहर निकल जाता है।

आपको मात्रा बढ़ानी आती है? देखो! अन्दर गया हुआ श्वास है जो भर गया था, वह धीरे-धीरे, कम हो जाएगा। कुछ तो पता चला होगा या नहीं चला? कण्ठ और नाक के बल से लिया जाता है और कभी मुँह से छोड़ते हैं। वैसे तो नाक से छोड़ना चाहिए। पर जब बहुत प्राण भर जाता है तब नाक से काम नहीं चलता तब मुँह से निकालना पड़ता है। जैसे कि दो पहलवान् बड़ी भयंकर कुश्ती कर रहे हों तब पाँच-दस मिनट में इतना श्वास अपेक्षित होता है कि नाक से पूरा नहीं कर सकता। वह मुँह से पूरा होगा। आप तीन किलोमीटर दूरी तक दौड़ लगाइए तब आप देखेंगे कि नाक से श्वास लेकर काम नहीं चल सकता। वहाँ तो कुत्ते की तरह श्वास लेना ही पड़ेगा। यह तो आ गया होगा? कुश्ती करके देखी है कि नहीं? अत्यधिक बल का कोई काम करेंगे तब उसमें यही स्थिति बनेगी। पर सामान्य स्थिति में नाक से ही लेना और छोड़ना चाहिए।

वह जो मैंने बताया नाक और कण्ठ के बल से लिया जाता है उसका एक और उपाय है पेट की सहायता से भी लिया जाता है। पेट को घुमाकर लेना और निकालना होता है। जिसको नौली क्रिया बोलते हैं उसी तरह हम घुमाते जाते हैं। देखो! अब यह अन्दर जा रहा है। अब नाक से काम नहीं चला तब उसी श्वास को मुँह से लेते और निकालते हैं। नाक से चल जाए तो ठीक है पर प्रक्रिया आई समझ में? ऐसे पेट को घुमाते हैं।

कुछ समझ में आया या नहीं आया। मुँह से लेंगे तो अधिक बाधित करेगा। नाक से इतना बाधित नहीं करेगा जितना मुँह से करता है। अब यह अन्दर की वायु बाहर निकल रही है। पेट को घुमाते जाते हैं और वह निकलता जाता है। कुछ काल में अन्दर वायु कम होता चला जाएगा। भरी हुइ वायु जो है वह कम होती चली जाएगी और वायु के कारण से दाएँ-बाएँ जो दर्द रहता है वह भी समाप्त हो जाएगा।

पर आप कभी उलटा-सीधा मत कर लेना। एक घुमाई है बाएँ से दाएँ और दूसरी घुमाई जो होगी दाएँ से बाएँ की ओर पेट का घुमाना। घुमाना आता है?

यह है हमारा पेट। अब इसको ऐसे घुमायेंगे। अब वायुदाब कम होता जा रहा है।

अब वह बढ़ा हुआ वायुदाब रुक गया। यह बहुत-सा चिकित्सा का विभाग ह, वायु से हम क्या-क्या काम लेते हैं, प्राणायाम से क्या-क्या काम लेते हैं, खाने-पीने से क्या-क्या काम लेते हैं आदि।

जब हमारा वह वायु का रोग उभरता था, तब आयुर्वेद की चिकित्सा चल रही थी। परन्तु रोग रुका नहीं, आगे बढ़ गया। यद्यपि उसमें आयुर्वेद की औषधी से काम लिया जाता था परन्तु वायु रुकने से जो बाधा पड़ती थी, वायु के कारण जो रोग उभार में आता था, उसका शमन नहीं होता था। तब मैं इसी विधि से रात्रि में कई-कई घण्टे बढ़े हुए वायु को निकालने का प्रयास करता और उसके कारण से रोग आक्रमण नहीं कर पाता था। इसलिए सहयोगी बन गया।

सम्पादक – यद्यपि पूज्य स्वामी जी महाराज ने प्रसंगवशात् अपना एक अनुभूत प्रयोग बताया है, परन्तु यह व्यक्तिगत विधि है। कोई सामान्य या शास्त्रीय विधि नहीं है। अतः सबके लिए सामान्य रूप से करने योग्य नहीं है। किसी को ऐसा कोई वायुरोग हो तो यह प्रयोग किया जा सकता है पुनरपि साक्षात् सीखकर ही करना चाहिए। अन्यथा ऐसे प्रयोगों में प्रायः हानि की ही सम्भावना रहती है। अब विराम॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५७ क्रियात्मक योगाभ्यास

पुरुषार्थ : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२४/०७/२००३

उपासना के प्रसंग में हम **तदेजति तन्नैजति.....।** इस मन्त्र का प्रयोग करते हैं। आपको इस मन्त्र का अर्थ स्मरण है? पहले अर्थ को देख लो, पुनः प्रयोग करेंगे।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ यजु. ४०/५।

मन्त्र का शब्द है **तदेजति** तत् का अर्थ है ईश्वर, **एजति** का अर्थ होता है चलायमान होता है, स्थानान्तरित होता है। किन्तु जब हम इसको णिजन्त बना देंगे, पुनः अर्थ बदलेगा। **तद् एजयति** का अर्थ होता है वह सारे संसार को चलाता है, व्यवस्थित रखता है।

किन्तु जब हम **तदेजति** का सीधा शब्दार्थ करने लगेंगे तब इसको एक पूर्वपक्षी के रूप में उपस्थित करेंगे कि जो व्यक्ति ईश्वर के स्वरूप को ठीक से नहीं जानते, नहीं समझते, वे यह मानते हैं कि **तदेजति** ईश्वर चलायमान होता है। अब आपको क्या समझ में आया?

साधक ८- जो व्यक्ति ईश्वर के स्वरूप को .....।

स्वामी जी - ठीक नहीं जानते, नहीं समझते, वे यह मानते हैं कि **तदेजति** ईश्वर अवतार लेता है। स्थानान्तरित होता है। जगह बदलता है। उनके पक्ष में **तदेजति** का अर्थ है ईश्वर चलायमान होता है। यथावत् शब्दार्थ करने पर यह अर्थ आएगा। पुनः इसी के साथ अगला **तन्नैजति** शब्द को जोड़ेंगे तब अर्थ होगा कि आप ईश्वर को जैसा समझते हैं वह ठीक नहीं है, अपितु **तन्नैजति** वह ईश्वर चलायमान नहीं होता है। यह अर्थ बन जाता है।

अर्थात् पहला शब्दार्थ हुआ - **तदेजति** ईश्वर चलायमान होता है यह ठीक नहीं किन्तु **तन्नैजति** वह ईश्वर चलायमान नहीं होता है। दूसरा शब्दार्थ हुआ - **तद् एजयति** वह सारे संसार को चलाता है, व्यवस्थित रखता है किन्तु **तन्नैजति** वह स्वयं चलायमान नहीं होता है। अब दोनों पक्षों को विचारकर देखो, समझ में आया कि नहीं? आ गया समझ में। **तदेजति तन्नैजति.....।** हम यहाँ तक पहुँचे।

तद् वह ब्रह्म। **दूरे** जिस व्यक्ति के जीवन में अज्ञान, अविद्या, अधर्म, छल-कपट हैं। जिस व्यक्ति का जीवन संयम से उलटा है, उसके लिए ईश्वर की प्राप्ति बहुत दूर है। अथवा यदि इस रूप में कह दिया जाए कि अज्ञान आदि ग्रस्त व्यक्ति को कभी ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती तो इसमें कोई अतिशयोक्ति नहीं। यद्यपि अज्ञान आदि दोष जब तक रहेंगे, तब तक ईश्वर नहीं मिलेगा किन्तु अज्ञान आदि दोष व्यक्ति के जीवन में सदा तो रहेंगे नहीं, दूर करने पर कभी तो दूर होंगे ही। सदा तो अविद्या रहती नहीं। प्रयास करने वाले की कभी न कभी हटती ही है। अतः प्रयास करने वाली सभी जीवात्माएँ मोक्ष को प्राप्त होती हैं। आप क्या मानते हैं?

साधक १ - हाँ। स्वामी जी! सभी एक प्रकार से मोक्ष की ओर ही बढ़ रहे हैं। संसार के भोगों को भोग-भोगकर उनसे दुःखी होते हैं। पुनः मोक्ष की ओर प्रवृत्ति हो ही जाती है।

स्वामी जी - कब होती है, इसका निश्चय नहीं होगा। इसको अब होगा, उसको तब; ऐसा नहीं कह सकते परन्तु कभी न कभी निश्चय से मोक्ष होगा, इतना कह सकते हैं। शीघ्र होती है, प्रायः होती है; ऐसा तो नहीं होता। आप यह देख रहे हैं कि वर्त्तमान काल में ऐसी स्थिति बना दी गई है, ऐसी मान्यता खड़ी कर दी गई, ऐसे पाठयक्रम बना दिए गए कि व्यक्ति को ईश्वर का

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोध ही नहीं है। ईश्वर होता है, हो सकता है या उसके लिए कुछ करना चाहिए; ऐसा कुछ भी नहीं है। न पढ़ा जाता है, न पढ़ाया जाता है।

चलो ! हमारा प्रसंग था **तद्दूरे** जो अज्ञानी, अधर्म आचरण करने वाला, पक्षपाती, छली-कपटी झूठा व्यक्ति है उसको ईश्वर प्राप्त नहीं होता अर्थात् कितने काल में होगा; यह नहीं कह सकते। उसके लिए ईश्वर की प्राप्ति कठिन है, दूर है। उसके विपरीत **तद्वन्तिके** जो धार्मिक, विद्वान्, यम-नियमों का पालन करने वाला, निष्काम कर्म करने वाला है, उसको ईश्वर शीघ्र मिल जाता है। ठीक हो गया।

साधक १ – स्वामी जी! ऐसा भी अर्थ करते हैं कि वही ईश्वर दूर भी और वही ईश्वर निकट भी है।

स्वामी जी – हाँ ! वह अर्थ भी हो सकता है किन्तु तब व्याख्या ही दूसरे ढंग से करनी पड़ेगी। उसके लिए आरम्भ से शब्दों की संगति लेनी पड़ेगी। **तद्दूरे तद्वन्तिके** को जोड़ना पड़ेगा। इसके बिना यह अर्थ नहीं करेंगे। आगे है **तदन्तरस्य सर्वस्य** यह तीसरी बात आ गई। यह हमारा शरीर है, इसमें बड़ी सूक्ष्म नाड़ियाँ हैं और उनसे सूक्ष्म इन्द्रियाँ हैं, उनसे सूक्ष्म मन है, उससे सूक्ष्म अहंकार है, उससे सूक्ष्म महत्तत्त्व है, उससे सूक्ष्म प्रकृति है और उससे सूक्ष्म जीवात्मा है। अन्दर से अन्दर, जो सबसे अन्दर है, उसके अन्दर भी ईश्वर विद्यमान है। **तदन्तरस्य सर्वस्य** अब दोहराओ ! क्या समझ में आया ?

साधक २ – अन्दर है

स्वामी जी – अन्दर से अन्दर जहाँ जीवात्मा है वहाँ भी है; इससे सिद्ध हो रहा है। क्या समझे दोहराओ ?

साधक ५– जहाँ जीवात्माएँ हैं वहाँ भी ईश्वर है।

स्वामी जी – **तदन्तरस्य सर्वस्य** अन्दर रहने वाले सूक्ष्मतम पदार्थों में भी ईश्वर विद्यमान है। उनको दूर पड़ता होगा, पास में बैठाया करो।

सत्यनारायण जी – कम सुनता है।

स्वामी जी – हाँ ! हाँ ! कोई बात की नहीं। आपको जहाँ सुनता हो वहाँ बैठा करो। बस! और गर्मी लगे तब पंखा चलवा लेना।

तो हम कहाँ चल रहे थे ? अन्दर से अन्दर की बात आई। यह मोटा शरीर है, इसमें मोटी-मोटी हड्डियाँ हैं, पुनः इतने ज्ञान-तन्तु बने हैं कि उनकी गणना करना कठिन है। पुनः आगे चलोगे तब इन्द्रियाँ हैं। जिनको, जहाँ तक मेरा ज्ञान काम करता है, वैज्ञानिक भी नहीं पकड़ पाए कि उनका आकार-प्रकार क्या है ? इतनी सूक्ष्म हैं। उनसे भी आगे चलेंगे तो अहंकार, उससे सूक्ष्म होगा। उससे आगे चलेंगे तो महत्तत्त्व उससे सूक्ष्म होगा। उससे आगे चलेंगे तो प्रकृति सत्त्व, रज, तम उससे सूक्ष्म होगी, उससे आगे चलेंगे तो जीवात्मा उससे सूक्ष्म होगा। तो अन्दर से अन्दर जो पदार्थ हैं उनके अन्दर भी ईश्वर विद्यमान हैं।

पुनः **तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः** बाहर की ओर बढ़ा। बाहर यह शरीर, इसके आगे भूमि, इस पर अपना यह आश्रम, आगे यह गुजरात, पुनः भारत देश, उससे आगे बढ़ो अन्य सारे देश या पूरा भूगोल। उससे आगे जाओ तो दूर से दूर जहाँ तक लोक-लोकान्तर पूरी सृष्टि है, उन सब में भी ईश्वर विद्यमान है।

जब साधक को इसका पता चलता है, उसको समझ में आ जाता है तब उसको कितना विश्वास

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होगा। वह इससे कितना प्रभावित होगा? इसमें यह बात आई कि भाई! ईश्वर तो तीनों कालों में खड़ा है। आज तक न चला और न कभी चलेगा।

तो आपको पता चला कि ईश्वर तीन काल में मेरे पास खड़ा रहता है और मैं उससे मिल नहीं पा रहा हूँ? आश्चर्य की बात है या नहीं? न कभी ऐसा कोई स्थान, काल था जहाँ ईश्वर नहीं था। आज भी ऐसा कोई स्थान नहीं है, जहाँ ईश्वर न हो। आगे भी मैं जहाँ रहूँगा वहाँ भी ईश्वर रहेगा ही और जहाँ मैं नहीं रहूँगा वहाँ भी रहेगा। आज मैं जहाँ पर हूँ वहाँ भी ईश्वर है और जहाँ मैं नहीं हूँ वहाँ भी ईश्वर है। भूतकाल में भी ऐसा ही था और आगे भी ऐसा ही रहेगा। तीन काल में जहाँ मै हूँ वहाँ ईश्वर रहता है। जहाँ मैं नहीं हूँ वहाँ भी ईश्वर रहता है। मेरे पास में खड़ा ईश्वर किसी काल में दूर हो ही नहीं सकता और उसको मैं पा नहीं रहा; आश्चर्य की बात तो यह है। आप क्या सोचते हैं? भला ऐसा ईश्वर है और आप उसको न पा सकें या पाना नहीं चाहते, पा नहीं रहे हैं तो यह कितनी बड़ी भूल मानी जाएगी? आप बताओ?

वैसे तो जब निर्णय हो जाता है कि वास्तव में कही गई बात ठीक है तब व्यक्ति का सन्देह हटता है तथा उसके अन्दर विश्वास उत्पन्न होता है और उसको यह भी लगेगा कि ईश्वर का जैसा-जैसा वर्णन किया है वैसा ही प्रमाणों से सिद्ध है तब तो उससे मिलने की बात शीघ्र ही होनी चाहिए। जब हमारे अन्दर यह स्थिति आएगी तब हम भी जिन-जिन कारणों से ईश्वर को नहीं पा रहे हैं उनकी खोज करेंगे और हटाएँगे तथा जिन-जिन कारणों से ईश्वर की प्राप्ति होती है उसको उपलब्ध करेंगे।

मान लिया हमको आनन्द की अपेक्षा न होती और न ईश्वर आनन्द स्वरूप होता तब उसकी खोज नहीं करते। परन्तु हमको आनन्द चाहिए और यह सिद्ध हो गया कि वह आनन्द स्वरूप है, ज्ञान स्वरूप है, उसमें अनन्त आनन्द, अनन्त ज्ञान है, तब उसकी खोज क्यों न करें? यह बात जंच गई कि ईश्वर तीन काल में आनन्द स्वरूप है तब हम उसकी खोज करेंगे। ऐसे ही वह अनन्त बलवान् है, दयालु है, न्यायकारी है और इतना परोपकारी है कि हमसे लेता कभी नहीं, हमको देता ही देता है तो उसकी ओर आकर्षण अवश्य होगा। इतनी बातें उसके साथ आईं। तब पुनः क्या? यही कि अब भी आप ईश्वर को पाना नहीं चाह रहें हैं, यह दोष है। बस! यह बात हमारे सामने आती है।

हम सब ऐसे हैं जैसे द्व्यणुक अथवा परमाणु कह देते हैं। वे बहुत छोटे हैं। उतने ही क्षेत्र में जीवात्मा रहता है। जीवात्मा इतना छोटा होता है। तो इतने छोटे स्थान में, इतने छोटे आकार में, आकार का अभिप्राय क्षेत्र में, जीवात्मा रहता है, पुनरपि ईश्वर वहाँ विद्यमान है और यह उसको मिल नहीं रहा है। अब बताओ क्या बात है? यह आश्चर्य की बात है या नहीं?

साधक १ – अपने स्वरूप में स्थिति न होना एक बहुत बड़ा कारण है।

स्वामी जी – हाँ! वह तो सूक्ष्म कारण है। उसका भी अभिप्राय है अपने स्वरूप को न समझना। दूसरा कारण यह भी है ईश्वर के स्वरूप को न समझना। यहाँ पर दोनों ही कारण खड़े हैं। अब मैं एक मोटी बात बताता हूँ। इतना सीखने, पढ़ने-पढ़ाने, सुनने-सुनाने पर भी आपको ईश्वर प्रत्यक्ष क्यों नहीं होता? इसका छोटा सा उत्तर भी सुन लो - जो-जो ईश्वर- प्राप्ति के साधन हैं उनको आप पूर्णरूपेण प्रयोग में नहीं ला रहे हैं और जो-जो ईश्वर-प्राप्ति के बाधक हैं उनका आप परित्याग नहीं कर रहे हैं। इसलिए ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो रही है।

साधक ५– ईश्वर प्राप्ति के जो-जो साधन हैं हम उनका प्रयोग नहीं कर रहे हैं और ईश्वर प्राप्ति में जो-जो बाधक हैं उनको हम छोड़ नहीं रहे हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – वाक्य में एक और विशेषण लगा लें तब और अच्छा रहेगा। इससे आपके कथन में थोड़ी-सा अन्तर आ जाएगा। उसमें ऐसे विशेषण जोड़ो कि ईश्वर प्राप्ति के जो-जो साधन हैं उनको हम पूर्णरूपेण प्रयोग में नहीं ला रहें हैं और जो-जो बाधक हैं उनका पूर्णरूपेण परित्याग नहीं कर रहे हैं। इसमें व्याख्या पूरी हो जाएगी।

अब आप गवेषणा करते जाएँ, खोज करते जाएँ कि कहाँ, कौन-कौन-सी कमियाँ रह गई हैं? बताए व सिखाए गए साधनों में से किन-किन का प्रयोग नहीं कर पा रहें हैं और बाधक के रूप में हमने क्या-क्या खड़ा कर रखा है? ऐसे आप गवेषणा करेंगे तो बहुत-सी बातों को पकड़लेंगे कि ये-ये सुनाए व पढ़ाए गए साधन हैं जिनका प्रयोग नहीं कर रहे हैं और ये-ये वे बाधक हैं जिनको हम छोड़नहीं रहे हैं।

साधक ७ – ईश्वर-प्राप्ति के जो साधन हैं यदि उनको हम पूर्णरूप से अपनाएँगे तब बाधक तो स्वयं ही हट जाएँगे। उसके पश्चात् पुनः क्या बचेगा?

स्वामी जी – आपको अभी और कहना पड़ेगा?

साधक ८ – इनका अभिप्राय है कि जब हम ईश्वर-प्राप्ति के साधनों को अपना लेंगे तब बाधक तो अपने-आप ही हट जाएँगे।

स्वामी जी – ठीक है अपना लेंगे, यह एक स्थिति है। परन्तु जो बाधक हैं उनको छोड़कर अपनाएँगे या उनको रखते हुए ही अपनाएँगे?

साधक ७ – जिस समय अपनाएँगे उस समय स्वयं हटते भी जाएँगे।

स्वामी जी – नहीं-नहीं। पहले इस बात को पकड़ो कि वे जो बाधक आज उपस्थित हैं, उनको छोड़कर अपनाएँगे या बिना छोड़े ही अपना लोगे?

साधक ७ – छोड़ने ही पड़ेंगे।

स्वामी जी – छोड़ने पड़ेंगे। इसके लिए बहुत लम्बा युद्ध करना पड़ेगा। थोड़े से काल की बात भी नहीं है। इसलिए ऋषियों की बात स्मरण रखिए। क्या पाठ है? **न ोपदेशश्रवणेऽपि कृतकृत्यता परामर्शादृते विरोचनवत्**। सांख्य. ४/१७। कुछ समझ में आया?

साधक ८ – केवल श्रवण मात्र से ....।

स्वामी जी – मुक्ति नहीं होती **परामर्शादृते विरोचनवत्**। श्रवण, मनन, निद्धिध्यासन, साक्षात्कार इन चारों के किए बिना, केवल श्रवणमात्र से कृतकृत्यता नहीं होती। दृष्टान्त दे दिया विरोचन का। क्योंकि विरोचन और इन्द्र ये दोनों आत्मा को जानने गए थे आचार्य के पास। जहाँ तक मुझे स्मरण है आचार्य का नाम सम्भवतः प्रजापति था। उसने घोषणा की थी कि ब्रह्म महान् है, उसकी प्राप्ति से व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है। उस प्रसंग का भाव सुना देता हूँ। विरोचन स्वार्थी लोगों अर्थात् केवल खाने-पीने, दण्ड-बैठक मारकर ज़ीने वालों का प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया था। स्वार्थियों ने कहा - भाई विरोचन! प्रजापति ने उद्घोष किया है कि ईश्वर को जानने वाले का जीवन कृतकृत्य हो जाता है। हमारे प्रतिनिधि के रूप में जाकर वह विद्या सीखकर आओ। इधर परोपकारी देव लोगों ने इन्द्र से कहा कि प्रजापति ने जो घोषणा की है कि ब्रह्म को जानने वाला व्यक्ति कृतकृत्य हो जाता है। तो आप हमारे प्रतिनिधि के रूप में उस विद्या को सीखकर आओ। दोनों चले गए। वहाँ गुरुजी के पास पहुँचकर निवेदन किया - गुरुजी! हम दोनों आपसे ब्रह्मविद्या सीखने आए हैं। तब गुरुजी कहा - ठीक है। जाओ, बत्तीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करो। कहीं प्रकरण लम्बा न हो जाए, इसलिए संक्षेप से सुना देता हूँ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बत्तीस वर्ष तक आज्ञाओं का पालन किया होगा, वेद, वेदांगों को पढ़ा-पढ़ाया होगा। गुरु के आदेश का पालन किया होगा तथा जो भी गुरुकुल के नियम होंगे, उनका पालन किया होगा। ऐसे चलते-चलते बत्तीस वर्ष के पश्चात् प्रजापति ने पूछा - बताओ, क्या परिज्ञान हुआ? तब विरोचन कहने लगा कि महाराज! मैंने तो आत्मा का स्वरूप जान लिया है। यही जो आकार-प्रकार है, यही आत्मा का स्वरूप है। खाना-पीना और सुखी रहना ही चरम उद्देश्य है। मैं तो जा रहा हूँ। इसके पश्चात् वह चला गया। वह स्वार्थी व्यक्तियों का प्रतिनिधि था।

अब जब इन्द्र को पूछा कि भाई! तुम्हें भी आत्मा का ज्ञान हो गया? तब उसने कहा - महाराज जी! यह जो शरीर है यह तो नाशवान् है। इसको आत्मा कैसे मान सकते हैं? इसलिए जितना हमने जाना इसको आत्मा का ज्ञान नहीं मान सकते। तब गुरु जी कहने लगे पुनः बत्तीस वर्ष तक और ब्रह्मचर्य का पालन करो। पुनः बत्तीस वर्ष के पश्चात् इन्द्र को पूछा तो इन्द्र ने कहा - मुझे तो अब भी ज्ञान नहीं हुआ कि आत्मा-परमात्मा क्या है? तब गुरु जी बोले कि बत्तीस वर्ष तक और ब्रह्मचर्य का पालन करो। इस प्रकार तीन बत्तीस कितने वर्ष हो गए?

साधक ४ - छयानवे।

स्वामी जी - छयानवे। अब छयानवे वर्ष के पश्चात् पुनः इन्द्र को पूछा तो इन्द्र ने कहा - मुझे तो अब भी ज्ञान नहीं हुआ। तब गुरु जी ने कहा - पाँच वर्ष तक और ब्रह्मचर्य का पालन करो। कुल कितने वर्ष हो गए?

साधक ४ - एक सौ एक।

स्वामी जी - इतने वर्ष में इन्द्र को ज्ञान हुआ था। वह जो कि प्रतिनिधि के रूप में गया था तो बड़ा बलवान् व्यक्ति होगा, बुद्धिजीवी रहा होगा, बड़ा सुयोग्य होगा।

साधक ७ - और देवताओं का प्रतिनिधि था।

स्वामी जी - तो मैं आपको सुना रहा था कि सुनने मात्र से कृतकृत्यता नहीं होती है। दोष इतने शीघ्र नहीं जाते हैं। इसलिए ऋषियों ने बल दिया कि यदि व्यक्ति आगम काल, स्वाध्याय काल, प्रवचन काल, व्यवहार काल के रूप में परिश्रम नहीं करेगा तो सफल नहीं होगा। पुनः वही बात आएगी व्यवहार काल में दोषों का परित्याग करना होगा। **विश्वानि दुरितानि परासुव। यद् भद्रं तन्न आसुव।** यदि हम पूरे विस्तार से इसका अर्थ देखेंगे तब यह होगा कि जो-जो लौकिक सुख और सुख के साधन हैं तथा जो मोक्ष सुख और मोक्ष सुख के साधन हैं उनका नाम भद्र है। इसके विपरीत जो दुःख और दुःख के कारण हैं उनका नाम? 'अ' लगा दो।

साधक ८ - **अभद्रम्**।

स्वामी जी - यह कहो दुःख और दुःख के कारण अभद्र हैं। अब इसको मुक्ति के साथ कैसे जोड़ेंगे? जो-जो लौकिक सुख और मुक्ति सुख के बाधक हैं वे-वे **अभद्रम्** हैं। ये ही **दुरितानि** हैं। आ गया समझ में? इसलिए हम कारणों को दो भागों में बाँटकर चल रहे थे। एक तो ईश्वर-प्राप्ति के साधन हैं और दूसरे ईश्वर-प्राप्ति के...।

साधक ८ - बाधक हैं।

स्वामी जी - बाधक हैं। दोनों ही के लिए व्यक्ति को पूरा प्रयास करना पड़ेगा। दोनों के लिए प्रयास करना अनिवार्य रहेगा।

हमने यह जो कथा सुनाई, भला इतने वर्षों तक एक व्यक्ति ने कितना तप किया, कितना संयम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में रहा, गुरुजी की आज्ञा का कितना पालन किया, तब जाकर उसको सफलता मिली। अतः हमको भी उतना परिश्रम करना पड़ेगा। यह इसलिए करना होगा कि हमारे चित्त के ऊपर अज्ञान, कुसंस्कार, जन्म-जन्मान्तर की वासनाएँ बैठी हुई हैं और साथ में शरीर का, इन्द्रियों का, बुद्धि का, तमोगुण आदि का प्रभाव लगातार जुड़ा रहता है। इसलिए इनको हटाने के लिए यह संघर्ष करना पड़ेगा और जो साधन हैं उनको अपनाना पड़ेगा। अब हाँ जी !

साधक १ – स्वामी जी ! जीवात्मा में कुसंस्कार या वासनाएँ रहती हैं क्या ?

स्वामी जी – 'में' शब्द का प्रयोग न करके 'के साथ' जोड़ दो।

साधक १ – उसमें तो नहीं रहती।

स्वामी जी – दर्शनों की भाषा में 'में' शब्द का प्रयोग कम होता है। क्या समझे ?

साधक १ – कुसंस्कारों का अधिष्ठान् हो सकता है ?

स्वामी जी – उसके ऊपर प्रभाव रहता है, यह सीधा अर्थ ले लो। एक वस्तु ऐसी होती है जो किसी के साथ घुल-मिल जाती है, यह वैसा नहीं है। इन वस्तुओं के जीवात्मा के ऊपर संस्कार पड़ते हैं। मान लो कि किसी को उलटा देख लिया तो इस पर उलटा संस्कार पड़ जाएगा।

साधक १ – जीवात्मा पर कैसे पड़ जाएगा ?

स्वामी जी – जैसे कि मैं देखने वाला हूँ किन्तु मेरे उपकरणों ने उलटा दिखाया तो मैं उलटा देख रहा हूँ। अब मेरे ऊपर ऐसा ही संस्कार पड़ गया।

साधक १ – मेरे ऊपर संस्कार, मैं तो शुद्ध स्वरूप हूँ।

स्वामी जी – नहीं। आप शुद्ध स्वरूप होते हुए अज्ञान से अशुद्ध हो जाते हो।

साधक १ – मैं इसलिए तो अशुद्ध हो जाता हूँ कि मन के साथ तादात्म्य कर लेता हूँ।

स्वामी जी – वह एक भाग है। मुख्य बात है संस्कार दोनों पर पड़ते हैं। कोई व्यक्ति ऐसा मान सकता है केवल मन पर ही पड़ते हैं।

साधक १ – ऐसा ही है।

स्वामी जी – न न। हम कहते हैं संस्कार आत्मा पर भी पड़ते हैं। शब्द-प्रमाण देखना हो तो महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का ले सकते हैं। वे ऐसा मानते हैं कि संस्कार आत्मा पर पड़ते हैं और मन पर भी पड़ते हैं।

साधक १ – आत्मा पर संस्कार पड़ने से तो उसका स्वरूप परिणामी हो जाएगा।

स्वामी जी – परिणामी क्यों होगा ? उलटा जानने और न जानने से परिणामी होना नियम नहीं हैं। किसी वस्तु को जानने से कोई परिणामी नहीं हो जाता। क्या समझ में आया ? जानने से परिणामी हो जाता हो, ऐसा नियम नहीं है। लोग तो जानने में ही परिणामी मान लेते हैं। जैसे सुख-दुःख की अनुभूति का ही निषेध करते हैं। उनका मानना है कि सुख-दुःख जीवात्मा नहीं भोगता। यदि भोगेगा तो परिणामी हो जाएगा। यह भी एक संकट है न ? आपने भी कहीं पढ़ा-सुना हो ?

साधक १ – संस्कार पड़ रहा है। अर्थात् उसमें परिणाम हो रहा है !

स्वामी जी – पहले यह देखो ! जीवात्मा जो सुख भोगता है, उससे क्या हो जाता है ?

साधक १ – वह तो उसका अपना स्वाभाविक धर्म है भोगना। जब भोक्ता है तब भोग सकता है।

स्वामी जी – जब भोगता है तब उसको अनुभूति होती है। जब अनुभूति हुई तब उसका संस्कार बनेगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – स्वामी जी ! वही संस्कार जीवात्मा पर बनेगा कि मन पर बनेगा।

स्वामी जी – दोनों पर बनेगा। जब मन के द्वारा भोगेगा तब मन पर बनेगा और मन को थोड़ी देर के लिए हटा दो, केवल आत्मा से भोगेगा तब आत्मा पर पड़ेगा। आप थोड़ा असम्प्रज्ञात समाधि की ओर बढ़ें, तब उसमें इसका थोड़ा-सा अंश मिलेगा। जैसे कि मानकर चलिए जीवात्मा ने मन की वृत्तियों को रोक दिया और सीधा मन के द्वारा ईश्वर का आनन्द तो लेता नहीं। वहाँ उसका चित्त काम तो करता है किन्तु सीधा ईश्वर से सम्पर्क करने में जीवात्मा प्रधान होता है। जीवात्मा असम्प्रजात समाधि में ईश्वर के ज्ञान से ही ईश्वर के आनन्द को ग्रहण करता है। अब जब असम्प्रज्ञात समाधि टूट गई। टूटने के पीछे नीचे सम्प्रज्ञात में उतर आया। पुनः विक्षिप्त में आ गया, पुनः तमोगुण में आकर सो गया आदि आदि। अब जब उठता है तब पुनः स्मरण करता है कि मुझे ऐसी स्थिति मिली थी जहाँ आनन्द ही आनन्द था। यह संस्कारों के कारण स्मृति होती है। मन से आनन्द लिया नहीं, पुनः मन में संस्कार कैसे पड़ेगा ?

साधक १ – वह चित्त से जुड़ा हुआ ही था।

स्वामी जी – चित्त तो गौण था।

साधक १ – स्वामी जी ! जीवात्मा पर संस्कार पड़ने का योगदर्शन में भी कोई प्रमाण आता हैं क्या ?

स्वामी जी – यह तो पृथक् बात हैं। इसको तो देखकर बताएँगे। योगदर्शन की बात पृथक् है। हमने तो महर्षि दयानन्द जी का सिद्धान्त सुनाया कि वे ऐसा मानते हैं। इस बात को तर्क से सिद्ध करने की बात सोच रहे थे जैसे कि ईश्वर का साक्षात्कार मन से नहीं माना जाता, यह सिद्धान्त तो मान्य है या नहीं ? पहले इसको देखो कि सीधा मन से ईश्वर का साक्षात्कार नहीं माना जाता है।

साधक १ – स्वामी जी ! महर्षि दयानन्द जी की बातें भी दोनों प्रकार की हैं।

स्वामी जी – आत्मा वाले पक्ष में विरोध तो नहीं मिलता ?

साधक १ – दोनों ही प्रकार की बातें हैं। मन से आनन्द भोगता है; ऐसा मिलता है।

स्वामी जी – उसका तात्पर्य मै बताता हूँ। वहाँ मन शब्द का अर्थ ज्ञान लेंगे और उसके द्वारा ईश्वर की प्राप्ति होती है। उससे चित्तवृत्ति का निरोध होता है आदि आदि। अतः हम यह तर्क से सिद्ध कर रहे थे कि असम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा सीधा चित्त से ईश्वर के आनन्द को ग्रहण नहीं करता है। आपको क्या समझ में आया ?

साधक २ – असम्प्रज्ञात समाधि में जीवात्मा ...।

स्वामी जी – जैसे सीधा चित्त प्रधान रूप से बाहरी विषयों को लेता है, ऐसा वहाँ नहीं होता है। वहाँ ईश्वर की अनुभूति करने में, ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान प्रधान रहता है। वहाँ जो आनन्द की अनुभूति हुई उस अवस्था में चित्त तो गौण है। भले ही चित्त जीवात्मा के साथ रहता है तो चित्त पर संस्कार के रूप में प्रभाव पड़ सकता है, हम उसका निषेध नहीं कर रहें हैं। जीवात्मा के साथ जो चित्त रहता है उस विषय में योगदर्शन में क्या कहा ? चित्त जब जीव के साथ जुड़ता हैं, तब जीव जैसा हो जाता है।

साधक २ – याश्चित्तवृत्तयस्तदविशिष्टवृत्तिः पुरुषः ।

स्वामी जी – नहीं। एक मूल सूत्र ही है **द्रष्टृदृश्योपरक्तं .....** आगे क्या आया ?

साधक २ – द्रष्टृदृश्योपरक्तं चित्तं सर्वार्थम् । यो. द. ४/२३।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – यह जो सर्वार्थता की बात आई कि मन जिसके साथ जुड़ जाता है उसी के जैसा बन जाता है। इन्द्रियों के साथ मिला तो इन्द्रियों जैसे बन जाता है और जीवात्मा के साथ जुड़ेगा तब जीवात्मा जैसा चेतनवत् बन जाएगा।

साधक ३ – क्षीणवृत्तेरभिजातस्येव मणेर्ग्रहीतृ.....तत्स्थतदञ्जनता समापत्तिः ।

स्वामी जी – इसलिए वहीं जीवात्मा के साथ चित्त रहता है। जीवात्मा के साथ आबद्ध रहने से चित्त पर भी संस्कार पड़जाय तो यह पृथक् बात है। परन्तु ईश्वर के साथ जीवात्मा का सीधा सम्बन्ध तो ज्ञान के माध्यम से होता है। सीधा, जिसको अनुभूति बोलते हैं। तो उस अनुभूति का आनन्द जिसमें आया, उस समाधि अवस्था की चर्चा है। वहाँ जीवात्मा में संस्कार पड़ना मुख्य है।

साधक १ – संस्कार की परिभाषा क्या है ?

स्वामी जी – वह वस्तु जिसकी अनुभूति हुई, उसकी छाप रह जाना।

साधक १ – जीवात्मा पर छाप रह गई।

स्वामी जी – छाप का अभिप्राय ज्ञान का संस्कार रहेगा।

साधक १ – वह तो नैमितिक हो गया।

स्वामी जी – हाँ ! नैमित्तिक होगा।

साधक १ – बात तो जीवात्मा के स्वाभाविक स्वरूप की चल रही है।

स्वामी जी – ऐसे नहीं चलता। संस्कार तो नैमित्तक ही होंगे। उसी की चर्चा है।

साधक १ – स्वाभाविक स्वरूप से तो वह पृथक् ही है।

स्वामी जी – उस विषय को नहीं ले रहे हैं। स्वाभाविक पृथक् वाली चर्चा नहीं कर रहे हैं। हमारी तो मुख्य चर्चा संस्कार के ऊपर थी। संस्कारों से पृथक् वाली बात तो ठीक ही है। उसमें कोई बाधा नहीं है पर हमने कहा था संस्कार उस पर पड़ते हैं। अविद्या के संस्कार पड़ते हैं। अधर्म के संस्कार पड़ते हैं। उसमें अच्छी वस्तु भी आती है जैसे ईश्वर के आनन्द का मिलना, ईश्वर से विद्या का मिलना और बुरी वस्तु भी आती है जैसे तमोगुण से काम-क्रोध का मिलना। तो दोनों रूप आते हैं। इसलिए ऋषि ने कहा जीवात्मा स्वभाव से शुद्ध है, पवित्र है परन्तु अधर्म आदि से वह मलिन हो जाता है। क्या समझ में आया ? अविद्या से, अधर्म से वह मलिन हो जाता है। पर दोनों का स्वभाव पवित्र है। कहाँ लिखा है ?

साधक ८ – सत्यार्थ प्रकाश के सप्तमसमुल्लास में।

स्वामी जी – तो हमारी बात थी **तदेजति तन्नैजति** से उपासना करते समय साधक इसका उपयोग कैसे करता है; इसको अच्छी प्रकार से जानना समझना चाहिए। मन्त्र का कोई अंश ईश्वर के कभी किसी स्वरूप की पुष्टि करेगा, कभी किसी की। परन्तु सुनते-सुनते ऐसा कोई अंश शेष नहीं रहेगा जिससे ईश्वर के विषय में कोई सन्देह रह जाए। क्या समझ में आया ? मन्त्रों को ऐसे समझते-समझते भिन्न-भिन्न क्षेत्रों में हमारा ज्ञान बढ़ता जाता है, जिससे हमारी विविध प्रकार की जो शंकाएँ होती हैं, संशय होते हैं, वे समाप्त हो जाते हैं। जैसे कि **तदेजति तन्नैजति** पर एक बात आई कि वह चलाता है, पर चलता कभी नहीं। अच्छा ! ऐसी कोई वस्तु है संसार में, जो कभी न चलती हो। किसी को याद हो तो बताओ। क्या ?

साधक २ – देश, काल, ईश्वर।

स्वामी जी – ईश्वर को छोड़ दो। ईश्वर को छोड़ कर लेना है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २ – आकाश।

स्वामी जी – आकाश वस्तु नहीं और जो उत्पन्न आकाश है वह चलता-फिरता है।

साधक २ – जो उत्पन्न नहीं है।

स्वामी जी – वह आकाश नहीं है। वह वस्तु का अभाव हो गया। वह वस्तुतत्त्व में नहीं आएगा। वस्तुतत्त्व के रूप में काल भी व्यावहारिक वस्तु है। यह भी वैसा वस्तुतत्त्व नहीं है जैसा ईश्वर, जीव, प्रकृति हैं। इनके जैसा तत्त्व नहीं है। काल एक व्यावहारिक पदार्थ है।

साधक २ – यदि व्यावहारिक मानेंगे तब सत्ता कहाँ से मानेंगे?

स्वामी जी – काल से हम कुछ काम लेते हैं न।

साधक २ – इसकी सत्ता पुनः किस-किस आधार पर मानेंगे?

स्वामी जी – किसकी सत्ता?

साधक २ – काल की।

स्वामी जी – इसको ऐसे मानेंगे कि हम इसके सहारे से व्यवहार करते हैं।

साधक २ – वह तो काल्पनिक हो गया। ज्ञानमात्र से मान रहे हैं।

स्वामी जी – अच्छा! आपको एक बात पुनः सुनाता हूँ। स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने जहाँ एक बात कही, पहले हम वहाँ जाएँगे। उन्होंने कहा – तीन पदार्थ अनादि हैं। वहाँ तीन में काल नहीं आता। दिशा भी नहीं आती। वहाँ ईश्वर, जीव, प्रकृति ये तीन पदार्थ ही अनादि हैं।

साधक २ – सृष्टि रचना के प्रकरण में एक अन्य स्थान पर भी लिखा है – 'जगत् की उत्पत्ति के पूर्व परमेश्वर, प्रकृति, काल और आकाश तथा जीवों के अनादि होने से इस जगत् की उत्पत्ति होती है। इनमें से एक भी न हो तो जगत् भी न हो।' सत्यार्थ प्र.अष्टम समु.। यहाँ काल पूर्वतः विद्यमान माना है। अतः वह नित्य स्वतन्त्र पदार्थ होना चाहिए।

स्वामी जी – हाँ! तो इसको निमित्त कारण मानते हैं। परन्तु जैसा ईश्वर, जीवात्मा एक चेतन पदार्थ और प्रकृति एक जड़ पदार्थ है; इस स्वरूप वाला काल या दिशा कोई पदार्थ नहीं है।

साधक २ – इस रूप में नहीं है किन्तु उसका व्यवहार होता है।

स्वामी जी – उसका व्यवहार होता है। उसको तो व्यवहार काल में द्रव्य मान लिया गया, ऐसा जानना चाहिए। जैसे कि आप यहाँ खड़े हैं; इसको पूर्व दिशा कहते हैं। अब आप उस ओर जाकर खड़े हो जाएँगे तब यही पूर्व दिशा नहीं रहेगी।

साधक १ – सापेक्ष व्यवहार हो रहा है।

स्वामी जी – ठीक है, पूर्व नहीं रही।

साधक ३ – देश को मानने से यह होगा। देश को मानने से पहले किसी भी दिशा को नहीं माना जा सकता है।

स्वामी जी – हाँ! तो मेरा अभिप्राय है ईश्वर, जीव, प्रकृति के समान देश, काल कोई द्रव्य नहीं हैं।

साधक २ – इस तरह का तो नहीं हैं।

स्वामी जी – ये ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति जैसे द्रव्य नहीं हैं।

साधक २ – ये निष्क्रिय हैं। ये उस तरह के नहीं हैं।

स्वामी जी – हाँ! तो वह हमारे काम में आते हैं, यहाँ पर उनका व्यवहार होता है। हम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समय का पता लगाते हैं कि इतने मिनट हो गए। इतने घण्टे का वेतन मिलेगा। काल का बहुत व्यवहार होता है परन्तु काल को हम ईश्वर की तरह चेतन द्रव्य देखने लगें या जीव की तरह देखने लगें अथवा प्रकृति जड़ की तरह देखने लगें तो भी नहीं मिलेगा।

साधक २ – स्थायित्व तो मानना ही पड़ेगा।

स्वामी जी – नहीं। स्थायित्व तो इसलिए है कि उसकी उत्पत्ति और उसके निमित्त, उपादान कारण आदि कुछ भी नहीं हैं। अच्छा ! बताया जाता है कि काल की गणना लोग अपनी बुद्धि से सूर्य के आधार पर करते हैं।

साधक २ – गणना तो उसके विभागों की करते हैं लेकिन किसी भी क्रिया का आरम्भ तब तक नहीं माना जा सकता है जब तक उससे कोई बिन्दु स्थापित न किया जाए।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। चलो ! हम कहाँ चल रहे थे ?

साधक ८ – ईश्वर की तरह देश या काल कोई वस्तुतत्त्व नहीं हैं।

स्वामी जी – हाँ ! यह था कि यदि काल को आप ऐसा मानकर चलेंगे जैसा कि यह रिक्त स्थान है तो ऐसा नहीं है। ये दिशाएँ तो रिक्त स्थान के आधार पर बनती है। वह रिक्तता कोई द्रव्यात्मक वस्तु तो है नहीं, अभावात्मक है। यदि आप ऐसा कहें कि रिक्त स्थान के बिना परमाणु नहीं रह सकते। अतः वस्तुतत्त्व है तो ऐसा नहीं है। वह अभावात्मक है इसीलिए तो परमाणु उसमें रह पाते हैं। स्वाभाविक बात है कि जो ठोस द्रव्य रहेगा, वह किसी स्थान पर रहेगा। परमाणु हो चाहे प्रकृति, वह किसी स्थान में ही रहेगा। परन्तु स्थान का अर्थ है अभावात्मक पदार्थ। उसी को आकाश कहते हैं। एक अन्य आकाश जो है वह तो उत्पत्ति धर्म वाला है। वह अभावात्मक पदार्थ नहीं है, वह स्थान घेरता है। इसलिए आकाश वैसा पदार्थ नहीं, जैसा कि ईश्वर, जीव, प्रकृति हैं।

इन तीनों के अतिरिक्त भी अन्य कोई ऐसी वस्तु नहीं जो देशान्तर में न जाती हो और तीनों कालों में रहती हो। पहले भी था, अब भी है और आगे भी होगा। अर्थात् ईश्वर के अतिरिक्त ऐसा खड़ा हुआ कोई द्रव्य तीनों कालों में चेतन या जड़ रूप में नहीं मिल पाता।

चलो ! अब हम मन्त्र का प्रयोग करते हैं। पहले मन्त्र का पाठ करेंगे –

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥

ऐसे पाठ किया, पुनः साधक कहता है – **तदेजति तन्नैजति** हे ईश्वर ! आप पूरे संसार को चलाते हैं, परमाणुओं को पकड़ते हैं, इकट्ठा करते हैं, महत्तत्त्व बनाते हैं, सृष्टि का पालन करते हैं, पुनः इसे बिगाड़कर प्रलय कर देते हैं। आप ही सारे संसार को चलाने वाले हैं परन्तु आप कभी तिलभर भी एक स्थान से दूसरे स्थान में नहीं जाते, कहीं नहीं जाते। अच्छा ! जब यह ज्ञान होता है तब व्यक्ति की बुद्धि में कितना दृढ़ निश्चय होता है। बैठकर कभी चिन्तन करो तब पता चलेगा। ऐसा ईश्वर मेरे साथ अनादि काल से है, आज भी है और अनन्त काल तक रहेगा, पुनरपि मैं उसका आनन्द नहीं ले रहा हूँ। न इसकी विद्या को प्राप्त कर रहा हूँ, यह क्या बात है; ऐसे सोचता है।

साधक १ – या ईश्वर दे नहीं रहा है ?

स्वामी जी – यह सोचने का ढंग अशुद्ध है। ऐसी भाषा बोलनी चाहिए कि मैं नहीं ले रहा। मैं इसको पकड़ नहीं पा रहा हूँ। अथवा वैसा ही बोलना हो कि ईश्वर मुझे दे नहीं रहा तब वहाँ मानना होगा कि मुझसे कुछ दोष हो रहे हैं। अन्यथा वही बात आएगी कि ईश्वर की मनमानी है। वह जब, जहाँ देना चाहता है देता है और जब, जहाँ नहीं देना चाहता है तब नहीं देता।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। यही दूसरे लोग मानते हैं। अज्ञानतावशात् आस्तिक व्यक्ति भी ऐसा सोच सकता है किन्तु जानकार तो कहेगा वास्तव में मुझसे कोई भूल हो रही है।

साधक ७ – मैं अभी पात्र नहीं हूँ।

स्वामी जी – वैदिक धर्म को जानने वाला ऐसा सोचेगा कि मैं अभी पात्र नहीं बना। इसलिए सन्देह न हो, भ्रान्ति न हो तो यह मानना पड़ता है या मानना चाहिए कि मैंने अपने लिए कोई न कोई ऐसी रुकावट खड़ी कर रखी है जिससे ईश्वर मुझे आनन्द नहीं दे रहा, मैं ईश्वर को देख नहीं पा रहा हूँ। अच्छा ! आपसे पूछता हूँ कि ऐसे ईश्वर को जानकर आप समर्पित क्यों नहीं हो जाते ?

साधक १– स्वामी जी ! समर्पण करना नहीं आता।

साधक २– बुद्धि में नहीं बैठती बात। यदि ठीक से बैठ जाए तो सब हो जाएगा एक ही साथ।

स्वामी जी – कम से कम इतना तो आपने मान रखा होगा कि ईश्वर की प्राप्ति असम्भव नहीं है।

साधक २–....बुद्धि से तो नहीं है।

स्वामी जी – क्यों जी ! ईश्वर की प्राप्ति करना-कराना असम्भव तो है नहीं; यह बात तो मान ली होगी या अभी तक समझ में नहीं आई। सम्भव है या नहीं, क्या लगता है ?

साधक १ – योगदर्शन के अनुसार पूरी विधि, अनुष्ठान किया जाए तो सम्भव है।

स्वामी जी – नहीं ! उसका निषेध नहीं है, उसको तो जोड़ा हुआ है। एक व्यक्ति पहले सम्भव ही नहीं मानता है। इसलिए पहली बात है सम्भव मानना। पुनः देखना कि उसमें कौन-सी कमी रह गई। कौन-कौन से उपाय हैं जिनकी कमी के कारण ईश्वर हमको नहीं मिल रहा उनकी खोज करना।

साधक १ – स्वामी जी ! कमियों के अन्दर सम्प्रज्ञात समाधि का क्षेत्र भी दिखाई देता है। यह भी बहुत बड़ी कमी रह रही है जिसके कारण हम प्राप्त नहीं कर पा रहे हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! अब मन्त्र बोल लो और ध्यान में देखो –

एक धुन के रूप में हम बोलेंगे –

ओ३म् तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।

ऐसे साधक पाठ करता है और पुनः अर्थ करता जाता है। तो अब आप पूरा बल लगाओ। एक बात का ध्यान रखना कि यदि आपकी कोई बल-शक्ति, लोक के लिए बच गई तब ईश्वर साक्षात्कार तक आप नहीं पहुँच सकते। क्या समझ में आया ? दोहरा लो।

साधक ८– कोई लोक की शक्ति यदि बच गई, जिसको हम ...।

स्वामी जी – ऐं ! ऐं !!

साधक २ – यदि लोकप्राप्ति के लिए कोई इच्छा रह गई है, उसमें हम बल लगाना चाह रहे हैं तब ईश्वर-साक्षात्कार तक हम नहीं पहुँच सकते।

स्वामी जी – तब ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो पाएगी। यह बहुत बड़ा बाधक है। लौकिक सुख और सुख साधनों के लिए यदि कोई बल-सामर्थ्य लगाने का आपका विचार रह गया हो तो पुनः ईश्वर की प्राप्ति नहीं हो पाएगी। यह बाधक है। चलिए ! अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५८ ज्ञानखण्ड

संस्कार : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२४/०७/२००३

मनुष्य, पशु, वृक्ष, भूमि आदि सभी नाशवान् पदार्थ हैं और आप जब इनको नाशवान् सिद्ध करते हैं, तब आपके समक्ष क्या कठिनाई उपस्थित होती है या नहीं होती? आप अपना-अपना अनुभव बताइए। हाँ जी!

साधक २ – पहले बुद्धि से इनको नाशवान् सिद्ध कर देते हैं, उसके पश्चात् जब परिणाम देखने लगते हैं तो वह अपेक्षित परिणाम सामने नहीं दिखाई नहीं देता है। पुनः लगता है हमने जो किया वह पूरा नहीं किया या वह ठीक नहीं है; ऐसी बुद्धि बनती है।

स्वामी जी – आप इनको नाशवान् सिद्ध कर देते हैं किन्तु नाशवान् सिद्ध करने पर जो प्रभाव होता है वह दिखाई नहीं देता है। अच्छा! जिसको दिखाई देता हो, वे कौन-कौन हैं? जैसे कि हमने जब शरीर को नाशवान् सिद्ध कर दिया तब हमारे समक्ष उसका लाभ इस रूप में सामने आ गया कि हमारे अन्दर जो भोगने की प्रवृत्ति है, जो हम शरीर को भोक्ता रूप में मानकर चलते हैं और खाने-पीने की वस्तुओं को भोग्य रूप में देखकर प्रवृत्तियाँ होती हैं; वे रुक जाती हैं। शरीर को नाशवान् देखने पर एक यह परिणाम आया और दूसरा यह परिणाम आता है कि तब हमारा स्व-स्वामी सम्बन्ध भी टूट जाता है। आपको यह समझ में आता है या नहीं?

साधक १ – आता है, स्वामी जी!

स्वामी जी – अपना-अपना देखो!

साधक ६ – इसका सम्बन्ध जो है।

स्वामी जी – एक तो हम इसको नाशवान् सिद्ध करते हैं और दूसरा ईश्वर को इसका स्वामी स्वीकार करते हैं तब स्व-स्वामि-सम्बन्ध नहीं रहता, हट जाता है। इसका लाभ यह होता है कि व्यक्ति के मन में शरीर आदि पदार्थों के कारण जो अभिमान होता है, वह नहीं होता। यदि आपके समक्ष ये परिणाम नहीं आते हैं तो समझना चाहिए कि आपको अभी ठीक समझ में नहीं आया है। यह इसका कारण है।

साधक ८ – कई दिन तक तो स्थिति ठीक बनी। अब नहीं बन रही है।

स्वामी जी – हाँ! तो नहीं बनने के कारण हैं। आप किसी भी ज्ञान-विज्ञान के विषय में यह देख सकते हैं कि जो ज्ञान एक काल में समझ में आ रहा था वही ज्ञान दूसरे काल में उलटा दिखने लगता है। विषय वही होगा पर ज्ञान उलटा होगा। पहले जो विशुद्ध ज्ञान हुआ था वह अब बुरा दिखाई देगा और जो उलटा ज्ञान था वह अब अच्छा दिखाई देगा। जैसे कि पहले ज्ञान हुआ था कि किसी की वस्तु की चोरी नहीं करनी चाहिए। स्वाध्याय से, उपासना से या किन्हीं कारणों से चित्त का एक स्तर बना। तब मन में आया कि किसी की वस्तु को बिना पूछे नहीं लेना चाहिए, चोरी नहीं करनी चाहिए। कालान्तर में किन्हीं कारणों से या मूल्यवान् वस्तु दिख जाने आदि, कुछ भी कारण हो, अब ले लेने की इच्छा होने लगी। यह चोरी करना अच्छा लगने लगा। ऐसा आप देख सकते हैं। इसका दूसरा दृष्टान्त ले सकते हैं जैसे कि दिन में हम चोरी करना नहीं चाहते। किसी की कितनी ही बड़ी वस्तु क्यों न हो, उसको लेने की हमारी बुद्धि नहीं बनती, नहीं सोचती।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि यह वस्तु चुरा लेनी चाहिए। पर स्वप्नावस्था में उसी वस्तु की हम चोरी कर लेते हैं। ऐसा होता है या नहीं होता है?

साधक १ – होता है।

स्वामी जी – दिन में हम करोड़ो, अरबों रुपये की वस्तु को चोरी के रूप में लेने के लिए तैयार नहीं होंगे और स्वप्न में कहना चाहिए कि एक रुपए की कह दो, दो आने की, उसका समय तो चला गया अर्थात् इतनी छोटी वस्तु भी चुराकर ले आएँगे। ऐसा होता है या नहीं, देख लो? होता है।

ऐसे ही व्यक्ति के अन्य ज्ञान भी परिवर्तित होते हैं और उससे सारी स्थितियाँ बदल जाती हैं। इसलिए ऋषियों के संकेत मिलते हैं, वे कहते हैं कि जिस किसी स्थिति को हमने समझा, उसको वैसे का वैसा बनाए रखना चाहते हैं तो उसके साथ में वैराग्य और अभ्यास भी रखना होगा। जब वैराग्य और अभ्यास बना रहेगा तब आपकी वह स्थिति बनी रहेगी। वैराग्य और अभ्यास नहीं रहेंगे तब वह ज्ञान की स्थिति भी हट जाएगी। नहीं जमेगी। **तत्र स्थितौ यत्नोऽभ्यासः**। यो.द. १/१३। इसलिए अभ्यास तो अनिवार्य रूप से करना ही पड़ेगा। इससे व्यक्ति बच नहीं सकता।

आगे बढ़ जाइए आप। यह बात तो बहुत नीचे स्तर की है। ऊँचे स्तर में भी परिवर्त्तन होता है। योगदर्शनकार ने एक बात कही – **व्युत्थाननिरोध संस्कार योरभिभवप्रादुर्भावौ.....**। यो.द. ३/९। व्युत्थान संस्कार और निरोध संस्कार की भी स्थिति बदलती रहती है। व्युत्थान अर्थात् सारी लौकिक स्थितियाँ और सम्प्रज्ञात समाधि की धर्ममेघ अवस्था। वे व्युत्थान की कोटि में गिन लिए जाएँगे। निरोध अर्थात् असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था उनके संस्कार। वे कहते हैं इन दोनों का दबना-उभरना होता रहता है। जब व्युत्थान के संस्कार रुक जाते हैं तब निरोध के संस्कार उभर जाते हैं और असम्प्रज्ञात समाधि लग जाती है। इसका उलटा कर दो, जब निरोध = असम्प्रज्ञात के संस्कार दब जाते हैं तब असम्प्रज्ञात समाधि भंग हो जाएगी और व्युत्थान के संस्कार उभर जाते हैं तब सम्प्रज्ञात समाधि हो जाती है। उसको नहीं रोका तो और नीचे चले जाते हैं। इसलिए यह आश्चर्य की बात है ही नहीं। जब उतनी ऊँची स्थिति में उतार-चढ़ाव लगातार बना रहता है तब निचली स्थितियों में होगा ही।

साधक ८ – स्वामी जी! जैसे कि जीवात्मा क्षण भर भी ज्ञान, कर्म, उपासना से रहित नहीं होता, कुछ न कुछ करेगा। तब क्या निरन्तर इसी रूप में ज्ञान, कर्म, उपासना का फल भी मिलता रहेगा?

स्वामी जी – ज्ञान, कर्म का?

साधक ८ – हाँ जी!

स्वामी जी – हाँ! उसी समय आपको ज्ञान से होने वाले लाभ हो जाएँगे। उपासना से होने वाले लाभ भी होंगे, कर्म से होने वाले लाभ भी होंगे।

साधक ८ – मेरा अभिप्राय है जो पूर्व का कर्म है उसका फल भी निरन्तर इसी रूप में मिलता रहता है?

स्वामी जी – नहीं। कुछ कर्म छोटे-छोटे रूप में होते हैं उनके फल भी छोटे रूप में होते हैं। जैसे कि आप मानसिक कर्म करते है तब उसका प्रभाव ज्ञान पर पड़ेगा और ज्ञान का प्रभाव कर्म पर पड़ेगा। अर्थात् आपने ईश्वर की उपासना की तब उपासना का एक फल करते ही हो जाएगा। कुछ ऐसे कर्म हो सकते हैं जिनका फल उसी समय न होता हो, उनको छोड़िए। वैसे

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ लाभ होगा इसका मुख्य अभिप्राय है परिणाम सामने आएगा। उसको हम फल के रूप में कहें तो कोई आपत्ति नहीं। कर्मों का होना पुनः फलों का होना। ऐसा ज्ञान का भी होता है, कर्म का भी होता है और उपासना का भी होता रहता है।

तो आप यह समझ रहे थे कि हमारे ज्ञान में जो परिवर्तन होता रहता है उसका एक कारण है जीवात्मा का प्रयास और दूसरा कारण है गुणों का प्रभाव। गुणों के प्रभाव से भी ज्ञान के उतार-चढ़ाव होते रहते हैं। अब आप विचार करो। क्या अन्तर समझ में आता है।

साधक २ – एक स्थिति में परिवर्तन तो स्वयं जीवात्मा के ही प्रयत्न से होता है और दूसरी स्थिति में गुणों के कारण से।

स्वामी जी – कहीं-कहीं मुख्य कारण शरीर आदि बन जाते है। यद्यपि सर्वत्र जीवात्मा का सहयोग बना रहना आवश्यक है अर्थात् जीव के बिना शरीर तो काम करेगा नहीं। दोनों मिलकर चलते हैं। परन्तु कहीं जीवात्मा उन साधनों के प्रभाव को रोक नहीं पाता; ऐसी स्थिति आ जाती है। मान लीजिए, आप कई दिनों से सोए ही नहीं हैं और यात्रा करनी है। रेल के अन्दर गए तो कहीं जगह नहीं मिल रही है। आपने सोचा छत पर बैठूँ, परन्तु नींद न आए, नहीं तो मृत्यु हो जाएगी। अब आप कितना ही बल लगाइए नींद आएगी। क्या समझ में आया?

साधक २ – रेल के डिब्बे के ऊपर भी नींद आएगी।

स्वामी जी – वह तमोगुण इतना प्रभाव डालेगा कि हम उसको रोक नहीं सकते। अब अति रुग्णावस्था आ गई। कोई भयंकर रोग हो गया तो बुद्धि का सन्तुलन बिगड़ेगा, समाधि वाला नहीं रहेगा। कितना ही बल लगाइए, समाधि नहीं लगेगी। नहीं आया हो समझ में तो पुनः पूछिए! अतः जीवात्मा का, इन गुणों का, पदार्थों का प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता रहता है।

एक और प्रभाव है संस्कारों का। वह जन्म-जन्मानतरों के हों या इस जन्म के हों। उनका प्रभाव भी हमारे ऊपर पड़ता है। जैसे कि हमने यह जान लिया कि चोरी नहीं करनी चाहिए। हम इस विषय को अच्छी प्रकार से जान चुके हैं, वर्षों से जानते हैं, पढ़ाते भी है। अब आप देखेंगे कि हम बीस वर्ष पूर्व या तीस, चालीस, पचास पर चले जाइए, चोरी करते थे और हम पर उसके संस्कार पड़ गए थे। पहले इसी जन्म को ले लो, ऐसे ही पिछले जन्मों का समझ लेना। तो इतना ज्ञान-विज्ञान होने पर भी थोड़े से असावधान होते ही चोरी करने की इच्छा होने लगती है। अपने अन्दर देख सकते हैं। दोहराओ! नहीं आया हो समझ में तो पूछो। ऐसा होता है या नहीं?

साधक २ – चोरी के जो कर्म बीस वर्ष पहले कर चुके थे। यदि आज भी असावधान होते हैं तब उसी की इच्छा हो जाती है।

स्वामी जी – उसी की इच्छा उत्पन्न हो जाएगी। यदि आप उसको रोकेंगे नहीं तब पहले जैसी मानसिक स्थिति पूरी-पूरी बन जाएगी कि चोरी करना ठीक है। यदि उसको नहीं रोकेंगे तब शरीर से चोरी कर ही लेंगे। अध्ययन करना हो तो अध्ययन करके देखो। ऐसा होता है या नहीं?

अन्य उदाहरण ले लो। आजकल भारत के वे लोग जो यह कहकर चलते हैं कि हम गुण, कर्म, स्वभाव से वर्ण व्यवस्था मानते हैं, जन्म से ही ब्राह्मण, क्षत्रिय आदि ऊँचा-नीचा नहीं मानते हैं। ऐसे लोगों को इकट्ठा कर लो। उनमें लाख में से एकाध व्यक्ति ऐसा मिलेगा जिसके मन से यह बात निकल गई हो कि जन्म से कोई बड़ा-छोटा नहीं होता, शेष यही मानते हुए मिलेंगे कि जन्म से ही जातियाँ होती हैं। यह छोटी जाति का है। इससे दूर रहो आदि रूप में घृणा करते हुए मिलेंगे। बताओ क्या मिलेगा?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २ – .....।

स्वामी जी – मिलेंगे। संस्कारों के बल पर ऐसा होता है। आप भी जो योग विद्या पढ़ते-सीखते हैं, आत्मा-परमात्मा के गुण-कर्म-स्वभाव को जानते हैं और परिणाम दुःख आदि का भी अध्ययन करते हैं। इतना जानने-समझने के पश्चात् भी आप उन संस्कारों को रोककर नहीं रखेंगे, उनको निर्बल नहीं बनाएँगे तो वे ही संस्कार, जिनको आप बुरा मानते हैं और कहते हैं, आपको वैसा ही बना देंगे जैसा आप योगाभ्यास सीखने-सिखाने से पूर्व थे।

आपने कभी देखा होगा या प्रयोग कर सकते हैं जैसे कि अभी यहाँ बैठे हैं और यहाँ से उठकर दूसरे स्थान पर गए, जहाँ रस्सी पर वस्त्र सूख रहे हैं, अंगप्रोक्षण उतारने लगे। अंगप्रोक्षण लाल रंग का है, पीले रंग का या किसी भी रंग का। तो आप जैसे ही उसे उतारने लगे कि उसी जैसे एक पुराने अंगप्रोक्षण की स्मृति आ गई जो दस-पन्द्रह वर्ष पहले देखा था। क्या समझ में आया? यहाँ पर इस अंगप्रोक्षण को देखते-देखते पुराने को स्मरण कर लिया उसके लिए कोई लम्बी-चौड़ी योजना नहीं बनाई। पुनः उसी से सम्बद्ध कोई अन्य घटना घटी थी उसको खरीदते समय दुकान में कोई संगीत सुना था या उसी को खरीदने जाते समय रास्ते में कोई नृत्य देखा था अथवा उसको पहनकर आपने कोई खेल खेला था जिसमें वह फट गया था। इस प्रकार का आप कुछ भी ले सकते हैं। अभिप्राय है यह सारा चित्र उसको उतारते समय सामने आ गया।

इसके उपरान्त भी आप देखेंगे कि उससे सम्बद्ध अन्य कोई अच्छी वस्तु देखी हो तो आपके ऊपर उसका अच्छा प्रभाव पड़ने लगा और यदि बुरी वस्तु देखी हो तब बुरी प्रवृत्तियाँ उभरकर आप में बुरी प्रवृत्तियाँ उत्पन्न करने लगीं। ध्यान देंगे, यदि आपने उस प्रवाह को नहीं रोका तो और भी बढ़ता चला जाएगा और आपको न जाने कहाँ पटक देगा। समझ में आ गया?

साधक ८ – हाँ जी!

स्वामी जी – अब पृथ्वी आदि को अनित्य सिद्ध करना और उनको ज्यों का त्यों बनाए रखना। इनमें भी उतार-चढ़ाव चलते रहते हैं। इसी प्रकार समाधि में भी चलते हैं। उनको यदि प्रयत्न से बनाकर न रखा जाए तब समाधि भी नहीं रह सकेगी। इसलिए कोई यह न समझ ले कि एक बार ईश्वर का साक्षात्कार हो गया तो वह बना ही रह जाएगा, पुनः उसके लिए कोई प्रयत्न नहीं करना पड़ेगा। वह साक्षात्कार बना रहता है जब तक सो न जाए; ऐसी भ्रान्ति किसी को न हो जाए। दोहराओ, क्या समझ में आया?

साधक ५ – ऐसी भ्रान्ति न हो जाए कि एक बार ईश्वर-साक्षात्कार हो जाने के पश्चात् उसको बनाए रखने के लिए और कोई पुरुषार्थ नहीं करना पड़ता। वह अपने-आप बना रहता है।

स्वामी जी – ऐसा नहीं है। इसमें जीवात्मा की एक स्थिति है ईश्वर की उपासना में रहना और दूसरी स्थिति है लौकिक वस्तुओं की उपासना में रहना। वह इन दो में से एक में रहेगा ही। इन दोनों से बाहर नहीं जा सकता। यदि जीवात्मा ईश्वर की उपासना करता है और लौकिक पदार्थों को छोड़ता है तब ईश्वर की ओर से उसको ज्ञान मिलता है, आनन्द मिलता है। सब गुण उसमें आ जाएँगे। इसके विपरीत वह लौकिक वस्तुओं की उपासना करता है तब अज्ञान, अधर्म आएँगे। उसको क्लेश पीसने लगेंगे। सारी बुराइयाँ उसको घेरकर खड़ी हो जाएँगी। ये दोनों घटनाएँ सतत होंगी। ये ही नियम सृष्टि को प्रलय बनाए रखने आदि सभी स्थानों में लागू होंगे। इनको छोड़ा नहीं सकता।

जितना-जितना हम अभ्यास करते जाते हैं उतना-उतना हम दृढ़ और निपुण होते जाते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निपुण व्यक्ति की स्थिति आपने सुनी है - **शय्यासनस्थोऽथ पथि व्रजन्वा..... स्यान्नित्यमुक्तोऽमृत भोगभागी**। यो.द.व्या. भा. २/३२। उसने कहा - शय्या पर लेटा हुआ, मार्ग में चलता हुआ वह समाधि में रहता है। तो निपुण होने पर, अभ्यास हो जाने पर मार्ग में चलता हुआ, बैठा हुआ व्यक्ति समाधि में रह सकता है। अर्थात् यदि हम निमित्त को उपस्थित रखते हैं तो नैमित्तिक ज्ञान, बल आदि उत्पन्न होते रहते हैं। जब तक निमित्त बना है तब तक उसका ज्ञान मिलता रहेगा, गुण मिलता रहेगा, बल मिलता रहेगा। निमित्त के हट जाने पर नैमित्तिक गुण भी आपको नहीं मिलेंगे।

अच्छा ! अब आप यह देखो कि आपको शरीर नाशवान् सिद्ध कर देने के पश्चात् कुछ कालोपरान्त घण्टे तक या उससे अधिक काल तक बैठे रहने पर शरीर नाशवान् दिखता रहता है या झट हट जाता है? अपना-अपना अनुभव बताओ -

साधक १ - आधा, एक घण्टा तो दिखता रहता है। जब व्यवहार में उतरते हैं, भोजन आदि करने के लिए या कक्षा के लिए आने लगते हैं तब हट जाता है।

स्वामी जी - अन्य बोलिए। आपका क्या अनुभव है? शरीर को नाशवान् सिद्ध करने पर कम से कम वह कितने काल तक बना रहता है?

साधक ६ - अभी तो प्रयास कर रहे हैं।

स्वामी जी - एक स्थिति आपको बताई जाती है कि जितने समय तक इच्छा हो उतने समय तक आँख बन्द करके शरीर, वृक्ष, पृथ्वी आदि की प्रलय बनाये रखना; यह पहली स्थिति है। दूसरी, यही स्थिति जब परिपक्व हो जाती है तब आँख खोलकर भी प्रलय जैसी स्थिति यथेष्ट समय तक व्यक्ति बनाए रखता है।

यद्यपि प्रारम्भ में पर्याप्त अभ्यास के बिना, खुली आँखों से प्रलय अवस्था नहीं बनाई जा सकती है। क्योंकि आँख खुलते ही प्रत्यक्ष प्रमाण के रूप में चित्र सामने आ जाता है और हमारा मन पर इतना अधिकार नहीं होता, इस विषय में हमारी इतनी योग्यता नहीं होती कि उसको देखते हुए प्रलय की स्थिति में परिवर्तित कर दें या अन्दर जाने से रोक दें। इतनी योग्यता पहले नहीं होती है। इसलिए व्यक्ति प्रथम आँख बन्द करके प्रलय की अवस्था बनाने का अभ्यास कर लेता है, पुनः कभी भी आँख बन्द करके वह अवस्था बना सकता है और पुनः जितनी देर चाहे बनाने में सफल हो जाता है। इसके पश्चात् आँख खोलकर प्रलय जैसी अवस्था बनाने और बनाए रखने में समर्थ होता है।

पुनरपि दोनों स्थितियों में अन्तर रहता है। जैसे कि अभी मैं आँख बन्द करूँ और प्रलय जैसी अवस्था बनाए रखूँ तब कोई कठिनाई नहीं पड़ती और जब आँख खोलकर वही अवस्था बनाने लगूँ, तब इसमें कठिनाई पड़ेगी।

साधक १ - व्यवहार करते समय और भी कठिनाई होगी?

स्वामी जी - हाँ ! दूसरों के साथ व्यवहार करते हुए उसमें और अधिक कठिनाई होगी। जब अकेले रहेंगे, शान्त रहेंगे, स्वाध्याय मात्र तक सीमित रहेंगे तब स्थिति कुछ अच्छी बनी रहेगी। लेन-देन में, पढ़ाने में और काम करने में स्थिति दुर्बल हो जाएगी। इसलिए कार्य से निवृत्त होकर व्यक्ति को पुनः समय लगाना चाहिए। समय लगाकर पुनः प्रलयावस्था वाली स्थिति में स्वयं को लाना चाहिए। व्यक्ति जब ऐसे अभ्यास करता जाता है, पुनः व्यवहार में भी उसकी स्थिति वैसी ही बनने लगती है। जो भी काम हम करते हैं उसमें वही स्थिति बनने लगती है। सामान्य व्यवहार में बनते-बनते पुनः कठिन व्यवहारों में भी वह स्थिति दिखने लगती है। धीरे-धीरे अब जैसे हम यहाँ बैठकर बात-चीत कर रहे हैं, कोई शंका-समाधान करता है, कोई कुछ पूछ रहा है। ऐसे बड़े

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जन-समुदाय में जहाँ विविध कार्य हो रहे हैं वहाँ भी उस व्यक्ति का अभ्यास इतना बढ़ जाता है कि उन सारे व्यापारों में भी यही देखता है कि ये सब अनित्य हैं, नाशवान् हैं।

पुनः आप देख पाएँगे कि जो शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध विषय हैं, इनमें दुःख देखना-समझना। यह भी पर्याप्त कठिन है या नहीं है?

साधक १ – बहुत कठिन है।

स्वामी जी – परन्तु अभ्यास करते-करते व्यक्ति इसमें भी सफल हो जाता है। उनमें जब हम ध्यानावस्थित होकर, ईश्वर की उपासना में तल्लीन होकर देखेंगे तब हमको दिखाई देगा कि ये दुःखदाई हैं। ऐसा दिखेगा कि बहुत दुःखदाई हैं, इनका ग्रहण नहीं करना चाहिए।

पुरुषार्थ करने पर पहले यह स्थिति बनेगी। अब पुनः जब व्यवहार में आएँगे तब जो स्थिति आँख बन्द करके या उपासना में बनी थी, वह गिरेगी। ध्यान में जो वस्तु बुरी दिखती थी वही अब बहुत अच्छी दिखने लगी। पुनः लगने लगा कि संसार के विषयों में तो बड़ा सुख है। अब यहाँ इस विचारधारा को रोकना होगा। यह मान्यता रोकने से रुक पाएगी। यदि नहीं रोकेंगे तो पुनः मन में बैठ जाएगी कि यही ठीक है। इस प्रकार वह बलात् अभ्यास से रोक दी जाएगी। जैसे कि अब आप कहेंगे - हाँ! ठीक बात है। इसको रोकेंगे। ऐसा नहीं है। यह तो शब्द-प्रमाण के विरुद्ध है। तब उसको रोक सकेंगे। आपने पढ़ा है कि **वितर्कबाधने प्रतिपक्षभावनम्**। यो.द. २/३३। यह चित्र जो सामने आता है उसको उखाड़ने के लिए बड़ा युद्ध करना पड़ता है। जब प्रतिपक्ष भावना को लेकर युद्ध करते हैं तब वितर्क उखड़ते हैं। ऐसा युद्ध न करने वाला कभी भी इन वासनाओं को रोक नहीं सकता, न इनको निर्बल बना सकता, न इनको हटा सकता। यों ही पढ़-सुन लेने मात्र से इनको हटा देना किसी के वश की बात नहीं है।

अच्छा! तो पहला उत्तर दीजिए कि जिस समय आप आँख बन्द करके अपने शरीर को नाशवान् सिद्ध करते हैं तब वह कुछ काल आधा-एक घण्टा रहता है या नहीं? कितने समय तक रहता है। हाँ जी!

साधक ४ – पाँच-दस मिनट तक रहता है।

स्वामी जी – पुनः यह क्यों उतर जाता है?

साधक ४ – बाहर की कोई ध्वनि हो या कोई स्पर्श या कोई मक्खी आदि का स्पर्श हो जाए तो तत्काल शरीर की अनुभूति हो जाती है।

स्वामी जी – इसमें एक और बात है। ध्यान देना, जैसे ही छूने वाली अनुभूति हुई झट दोहराया कि दोनों नाशवान् है। इस प्रकार उसे हटा देते हैं। मान लीजिए, पुनः स्थिति बिगड़ती है तब उसको वैसे ही उड़ा देंगे। ऐसे व्यक्ति साथ-साथ उड़ाता जाता है। जैसे कि मैंने पहले प्रलयवत् स्थिति बना रखी है और आपसे बातचीत करने लगा। अब आपकी आकृति दिखाई देने लगी। आगे क्या किया? बातचीत के पश्चात् आपके हटते ही मैंने आपकी आकृति को समाप्त कर दिया।

साधक २ – मान लिया कि प्रलय की स्थिति बनाए हुए हैं और उसी समय किसी से बात करनी है तब बातचीत के लिए संकल्प कैसे कर पाएँगे?

स्वामी जी – जैसे कि हम देख रहे हैं सब नाशवान् हैं और इसी स्थिति में किसी से बातचीत करनी पड़ी, तो कर लेंगे। जैसे भूख लगती है, प्यास लगती है तो खा-पी लेते हैं। काम तो करना ही होगा। उस अवस्था में भी अपनी स्थिति को बनाए रखेंगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २ – प्रलय में गया हुआ वर्तमान है ही नहीं, पुनः उसकी स्मृति कैसे आएगी ?

स्वामी जी – न-न! इस पर और विचार करना होगा। हम इन शरीरों के कार्यों का अभाव नहीं मानते हैं। हम इन शरीरों की जो प्रलय स्थिति है, उसको बुद्धि में रखकर चल रहे हैं। इनका नाश हो गया है; यह नहीं मान रहे है। ऐसा हो जाएगा, शत-प्रतिशत यह मानते हैं। दोनों में यह अन्तर है।

साधक २ – रूप आदि को जब वर्तमान ही मान रहे हैं तब ये बाधक कैसे बनेंगे ?

स्वामी जी – कौन-से जैसे ?

साधक २ – जैसे कि अभी बात आई कि प्रलय काल मानते हुए भी वस्तु विद्यमान है, यह भी मान रहे हैं तो इस अवस्था में किसी से बात करने में बाधा क्या आएगी ?

स्वामी जी – आपको मैं बताता हूँ। बाधा यह आएगी कि हम चाहते हैं कि वह स्थिति जो कि अनुमान से सिद्ध है, हमारी बुद्धि में वह सतत बनी रहे और हम उस व्यक्ति से व्यवहार भी कर लें। हम यह चाहते हैं।

साधक २ – जिसको हम कह रहे हैं कि वह प्रलय की स्थिति बनी रहे; वह तो अभाव-स्वरूप है। उसमें व्यवहार करना है। उस काल में वस्तुएँ अपने स्वरूप में नहीं तब व्यवहार कैसे होगा ?

स्वामी जी – नहीं-नहीं। एक बात और है। आप पुनः इस पर ध्यान देंगे कि हम शरीर आदि को ज्यों का त्यों मानते हैं। वर्तमान में कोई विनाश नहीं मानते हैं। अनुमान-प्रमाण से विनाश मानते हैं।

साधक २ – भविष्य में ऐसा होने वाला है ?

स्वामी जी – हाँ ! वह शत्-प्रतिशत होने वाला है। उसमें कोई ननुनच नहीं है हमारी बुद्धि में। उस चित्र को हम ऐसा ही देखना चाहते हैं। इस ओर इसको कार्य मानते हुए काम लेंगे और उस स्थिति को ज्यों का त्यों बनाए रखना चाहते हैं।

जब तक कच्चा ज्ञान रहता है तब तक वस्तु के सामने आ जाने से नाश की स्थिति ठहरती नहीं है, डिग जाती है। नया-नया व्यक्ति कमरे में बैठे हुए जो प्रलय जैसी स्थिति देख रहा होता है, वह स्थिति, किसी को कुछ कहना पड़ जाए तो, बिगड़ जाती है। आप समझे या नहीं ?

साधक २ – प्रलय की जो वास्तविक स्थिति है उसको अभी आनुमानिक स्तर पर नित्यता को हटाने के लिए बना रखा है।

स्वामी जी – हाँ ! अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

५१ आत्मनिरीक्षण

विषय-निर्धारण : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२४/०७/२००३

साधक २ – आज उपासना में कुछ वितर्क तथा ईश्वर में श्रद्धा आदि कैसे होवे आदि वृत्तियाँ उठाईं।

स्वामी जी – उपासना काल और व्यवहार काल के कार्यों को विभाजित करके रखना चाहिए, उससे उपासना में सुविधा हो जाती है। अर्थात् उपासना काल में साधक यह नियम बनाकर चले कि इस काल में ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, जप आदि ही मैं करूँगा, अन्य नहीं। इसके पश्चात् शेष कार्य विचारणीय विषय, संशयात्मक या परीक्षा कोटि के विषयों के समाधान आदि पृथक् से दिन में करने चाहिएँ। इनको इस रूप में रखने से सरलता होती है। नहीं तो किसी न किसी विषय में व्यक्ति की जिज्ञासा बनी रहती है और वह उपासना काल में प्रतिबन्ध न होने के कारण उठा ही लेता है। उठाने के पश्चात् उसकी धाराएँ इतनी देर तक चलती हैं कि आगे चलकर उनको रोकना चाहे तब भी नहीं रोक पाता। ऐसा अनुभव आप कर सकते हैं।

यदि आपने स्वयं को छुट्टी दे दी, खुला छोड़ दिया, यह नियम नहीं बनाया कि उपासना काल में केवल ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना होगी, वैदिक संध्या ही होगी; अन्य विचार नहीं किए जाएँगे, भले ही वे ईश्वर के विषय में संशय या चिंतन हों अथवा बहुत अच्छा परोपकार का विषय हो; तो आप प्रायः सफल नहीं रहेंगे। वृत्तियों के प्रवाह में बहते चले जाएँगे। जैसे कि आपने उपासना काल में सामाजिक कार्य को लेकर यह छेड़ दिया कि यहाँ के लिए इतना, वहाँ के लिए इतना करना है तो सारी उपासना बिगड़ जाएगी; होगी ही नहीं। विचारों का इतना प्रबल उद्वेग होता है कि एक बार नियन्त्रण से आगे बढ़ जाने पर, रोकना चाहने पर भी वृत्तियाँ नहीं रुकेंगी। इसलिए इन पर पहले से ही प्रतिबन्ध लगा देते हैं। यदि असावधानी से चिंतन उठा भी लें तो झट स्वयं को मना कर देते हैं कि नहीं, इस समय नहीं सोचना है। अब तो उपासना करने की ही बात है, ईश्वर की ही उपासना करनी है अन्य विषय नहीं उठाना है। ऐसा कर लेते हैं तो स्थिति अच्छी बनी रहती है, कठिनाई नहीं आती। अब आप सुनाएँगे –

साधक ४ – आर्य भाषा का प्रयोग किया, एक बार द्वेषवृत्ति उठाई, एक बार हँसा भी।

स्वामी जी – तो जो-जो दोष होते हैं उनका दण्ड लेना चाहिए और पुनः आने वाले समय में सावधान हो जाना चाहिए कि ऐसा नहीं होने देना है। उपासना में जैसे ही वृत्तियाँ उठा ली जाती हैं वैसे ही व्यक्ति उसे रोक देता है और आगे के लिए सावधान हो जाता है कि इस काल में कोई वृत्ति नहीं उठानी है। वृत्ति यदि असावधानी से उठा लें, तत्काल रोक दों। पुनः उठे तब पुनः रोक दों। ऐसे संघर्ष करते-करते वृत्तियों को रोकने तथा अपेक्षित दिशा में मोड़ देने का अभ्यास हो जाता है। हाँ जी !

साधक ८ – प्रातःकाल की उपासना में एक स्मृति-वृत्ति को उठाया, पुनः उसको रोकते-रोकते उपासना के अन्त में जाकर सफल हो पाया।

स्वामी जी – अच्छा ! पहले ही भूल हो गई। बाँध टूट गया एकदैव रोक नहीं सके। पहले से ही प्रतिबन्ध लगाते तो रुक भी जाते।

साधक ८– दिन में ऐसे रहा जैसे कि ईश्वर के सम्बन्ध में अब तक कुछ सुना ही नहीं। जैसे स्लेट पर लिखा सारा मिट गया।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – पुनः दोबारा लिख लो। इसमें क्या बात है?

साधक ८ – प्रयत्न करता रहा, करता रहा। उसमें भी कभी भूल जाते थे तो कभी स्मरण आ जाता था।

स्वामी जी – कोई बात नहीं, शरीर में कमी होने के कारण ऐसा होता है। कभी-कभी मानसिक स्थिति अच्छी न होने से हो जाता है। शरीर के स्वस्थ न होने से यह प्रभाव पड़ता है, तो कोई बात नहीं। कभी अच्छी स्थिति मिलेगी, तो कभी बिगड़ी भी मिलेगी। यह कोई नई घटना नहीं है। स्वाभाविक है, ये घटनाएँ चलती रहती हैं।

साधक ८– पुनः दोपहर को न्यून भोजन किया और सायंकाल स्वाध्याय, व्यायाम के लिए भी समय नहीं मिला। केवल संस्कारों को जीवित रखने की दृष्टि से कर लिया।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक ७ – भगवन्! जप तो कम कर पाया परन्तु उपासना सम्बन्धी मन्त्रों का अर्थ सहित पाठ करके लाभ उठाया और अध्यात्म सरोवर का स्वाध्याय करके भी लाभ उठाया।

स्वामी जी – तो ध्यान काल में मन कुछ अधिकार में रहता है या अधिकार से बाहर हो जाता है। कैसा रहता है?

साधक ७ – रहता है। पर जब नहीं रहना चाहता तो....।

स्वामी जी – अच्छा! वह नहीं भी रहना चाहता है?

साधक ७ – वेद मन्त्रों का पाठ कर लिया जाता है।

स्वामी जी – आप हँसी की बात छेड़ देते हैं बीच-बीच में। लोगों में तो प्रचलन है इस भाषा का, सिद्धान्त का। यहाँ तो यह प्रचलन है कि मैंने यह काम कर लिया। मन कभी स्वयं काम नहीं करता है। अपने आप कार थोड़ी-सी भी नहीं चलती है। पंखा अपने-आप नहीं चलता। इसलिए इस सिद्धान्त को बदलना पड़ता है।

हाँ जी! और कौन रह गया? सभी आ गये हैं? अच्छा! आशुतोष जी को सम्भालना, उनका मौन ठीक चल रहा है या नहीं?

अब एक तो अधिक ध्यान देने की बात है कि अपने शरीर को, स्वास्थ्य को ठीक रखना है। उसके जो-जो साधन हैं यथा खाना-पीना, औषधि, उठना-सोना आदि दिनचर्या को प्रयोग में लाना और जो बाधक हैं उनका परित्याग करना। यह कार्य आपको बड़ी सावधानी से करना पड़ेगा अन्यथा आपका शरीर अस्वस्थ हो जाएगा। अस्वस्थ होने पर वह बहुत अधिक अस्वस्थ भी हो सकता है। पुनः यह जो योजना बनाई गई कि ईश्वर-साक्षात्कार की विद्या सीखनी है, ईश्वर का साक्षात्कार करना और करवाना है; यह बहुत बड़ा कार्य है जो छूट जाएगा। इन बाधाओं से हानि हो जाएगी।

इसका एक भाग है कभी-कभी व्यक्ति भोजन के विषय में असावधानी कर लेता है। वह स्वभाव से अधिक खा जाता है, जो नहीं खाना चाहिए उसको खा लेता है और जब भूख नहीं हो तब भी खा लेता है। तो इन-इन स्थितियों में व्यक्ति रोगी हो जाता है। उस स्थिति में भी जब यह कहा जाता है कि व्यक्ति स्वाद लेकर नहीं खाता है। थोड़ी देर के लिए मान लेते हैं वह शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाने के लिए खाता है तो वहाँ भी असावधानी हो जाती है। वह मानता है कि शरीर अधिक स्वस्थ रहेगा, अधिक बलवान् होगा, विद्या अच्छी तरह पढ़ेंगे, अधिक प्रचार-प्रसार करेंगे। तब वह मात्रा से अधिक खा लेता है। क्या समझ में आया?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ६ – वह शरीर को अधिक पुष्ट, बलवान् बनाने के लिए भी मात्रा से अधिक खा लेता है।

स्वामी जी – वह मात्रा से अधिक खा लेता है। तब वह यह नहीं समझ पाता कि मैं मात्रा से अधिक खा रहा हूँ, इससे शरीर को शक्ति मिलने के स्थान पर हानि हो सकती है। इस बात को वह समझ नहीं पाता, बिना समझे ऐसा हो जाता है।

अच्छा ! कभी आपने यह देखा कि आपने सब कुछ को नाशवान् सिद्ध किया और ऐसी चित्त की एकाग्रता बनी हो जिसका मस्तिष्क पर प्रभाव पड़ने लगा हो। क्या आप लोगों को कभी ऐसा अनुभव हुआ ?

साधक १ – हुआ। स्वामी जी ! कई बार।

स्वामी जी – क्यों जी ? बोलो !

साधक ४ – एकाध बार बहुत पूर्व हुआ जब आकाशवत् अवस्था बन जाती है।

स्वामी जी – जब हम इस सृष्टि को प्रलयवत् जैसी स्थिति में भेजते हैं। विषय हमसे दूर हट जाते हैं तब यह प्रभाव पड़ता है। अर्थात् मेरे प्रयोगों में उसका यह प्रभाव रहा। सबको रहे न रहे, उसको मैं नहीं कहता। मैंने कुछ ऐसा नहीं बनाया या कोई बात ऐसी सोची नहीं; किन्तु हमारे सामने वह स्थिति आती है। जब पूरा संसार प्रलयवत् दिखाई देता है, सारे विषय हट जाते है तब उसका प्रभाव मस्तिष्क पर ऐसे पड़ता है जैसे कोई वस्तु चिपका दी हो। उसका दबाब पड़ता है। ऐसे ही यह भाग भी प्रभावित होता है। इसके विपरीत जब स्थिति बिगड़ जाती है तब वह प्रभाव भी समाप्त हो जाता है, नहीं रहता। पुनः एकाग्रता बनाते हैं, उसी स्थिति में जाते हैं तब पुनः वही प्रभाव होने लगता है। बनाते ही बन जाता है और हटाते ही हट जाता है। जब यह स्थिति बनी रहती है तब हमारा मन के ऊपर पूर्ण अधिकार हो जाता है। कोई वृत्ति, विचार आ नहीं सकते। जबकि इसके टूटने पर विचार-धारा बहने लगती है और कभी उनको रोकना कठिन हो जाता है। इसका यह परिणाम भी देखा।

साधक ७ – कई बार पीड़ा भी होने लगती है।

स्वामी जी – हाँ ! यदि किसी व्यक्ति का अभ्यास नहीं है और वह अधिक बल लगा दे तब पीड़ा की अनुभूति हो सकती है। नए व्यक्ति के ऊपर इन बातों का प्रभाव अधिक पड़ता है। इसलिए जिसने उतना सोचा नहीं है, वह बहुत सोचने लग जाए तब पीड़ा की स्थिति हो जाएगी। अधिक पढ़ता ही रहे तो या अधिक पढ़ाने से भी सिर में भारीपन आ जाएगा। ऐसे ही विचार करने पर अधिक बल लगा दिया जाए तब भी सिर में भारीपन आ जाएगा।

साधक ५– स्वामी जी ! वह जो प्रभाव पड़ता है वह अनुकूल रहता है, अच्छा लगता है या उसके कारण कठिनाई होती है ?

स्वामी जी – मेरे लिये ?

साधक ५ – हाँ जी !

स्वामी जी – अनुकूल।

साधक ५ – अच्छा लगता है।

स्वामी जी – अच्छा ही नहीं लगता, उससे स्थिति बन जाती है।

साधक ५ – अच्छा !

स्वामी जी – पूरी स्थिति उसी से बनती है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५ – और अधिक काल तक रखने पर कोई बाधा नहीं होती ?

स्वामी जी – कोई बाधा नहीं होती। बहुत वर्ष पहले ऐसा होता था कि आँख बन्द करके प्रलयवत् अवस्था बनाते थे। इस स्थिति के सम्पादन में कितना काल लगा, इसका मुझे ठीक से स्मरण नहीं या कम है। उसके पश्चात् मैं पुनः आँख खोलकर बनाने का अभ्यास करने लगा। जब आँख खोलकर भी वही स्थिति बनने लगी, पुनः चलते-फिरते, खाते-पीते हम उसी अवस्था में रहने लगे। वह अनुभूति यहाँ मस्तिष्क पर होती रही। अब जैसे मैं आँख खोलकर बैठा हूँ और एकाग्रता का सम्पादन कर रखा है तो अभी यहाँ पर उसका प्रभाव है। जब वृत्तियों के ऊपर अधिकार नहीं रहेगा या जैसे-जैसे अधिकार हटता जाएगा तब यह स्थिति नहीं रहेगी, बिखर जाएगी। जब यह स्थिति नहीं रही और पुनः वहीं जाकर बनाई तो पुनः आरम्भ हो जाएगी।

साधक १ – स्वामी जी ! इस स्थिति में कितने लम्बे काल तक रहने के पश्चात् ईश्वर का प्रत्यक्ष हुआ ?

स्वामी जी – पता नहीं। मुझे इस स्थिति को प्राप्त करने में कितने दिन लगे। कब-कब क्या हुआ, स्मरण नहीं है ?

साधक १ – आपको जैसे आकाशवत् अवस्था प्राप्त हो गई।

स्वामी जी – हाँ ! इसके पीछे दिनों का मुझे पता नहीं, उसमें कितने दिन लगे। आरम्भ में जब यह स्थिति उत्पन्न हुई थी उस समय स्थिति इतनी अच्छी थी, इतनी विचित्र थी कि वहाँ संसार का कोई भी व्यक्ति नहीं था। वहाँ संसार नाम की वस्तु ही नहीं थी।

साधक १ – आपने ईश्वर का ध्यान आरम्भ कर दिया।

स्वामी जी – सुनो !

साधक १ – हाँ जी !

स्वामी जी – तब कोई भी बात नहीं। वह पहला दिन था। परन्तु इस विचार को चलाते-चलाते छः मास के लगभग हो गये थे।

साधक १ – उसके पश्चात् आकाशवत् अवस्था ?

स्वामी जी – हाँ। वह जो अन्तिम स्थिति आई है, वह लगभग छः मास में आई है। उसके पहले की छोटी-छोटी स्थितियाँ कितनी रही होंगी, उनकी गणना नहीं है।

साधक १ – अभिप्राय आपकी ईश्वर-साक्षात्कार की अन्तिम अवस्था छः मास की है।

स्वामी जी – वह अभी नहीं आई। ईश्वर के साक्षात्कार की स्थिति वह नहीं है। साक्षात्कार के पहले की स्थिति है।

साधक १ – आकाशवत् अवस्था।

स्वामी जी – आकाशवत् अवस्था की।

साधक १ – ईश्वर-साक्षात्कार तो ...।

स्वामी जी – उसके पीछे कितने दिन में आया, उसका पता नहीं। उसकी सुरक्षा या स्मरण आदि न रहने में कारण भी थे जैसे कि उस समय मुझे न लिखना-पढ़ना आता था, न लेखन-सामग्री उपलब्ध थी। मान्यताओं का निर्धारण मैं अपनी बुद्धि के अनुसार कर रहा था। तब न कोई अध्यापक, निर्देशक आदि के रूप में था, न कोई ऋषि, न कोई दर्शनकार, न आर्य-समाज, न नियम, न विधान, न शिष्ट-संस्कृत कोई भाषा, न कोई सिद्धान्त था। कुछ भी तो नहीं था। सारे कार्य

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अपने ही बल और ऊहा से चल रहे थे। इस स्थिति में एक-एक क्रम को कहाँ से सुरक्षित या कहाँ तक स्मरण रखता ?

साधक १ – स्वामी जी ! जिस दिन ईश्वर का प्रथम बार साक्षात्कार किया होगा, बड़ा आनन्द मिला होगा। वह तो बड़ा विशिष्ट दिन होगा। वह तो स्मरण रहना चाहिए ?

स्वामी जी – वैराग्य में वैसी बात नहीं रहती, जैसी लौकिकों में होती है।

साधक १ – ईश्वर का आनन्द था और वह भी पहली बार आनन्द मिला ?

स्वामी जी – पहली बार की हो या दूसरी की। उस काल में व्यक्ति इन बातों को तो अंकित नहीं करता। इतना ध्यान नहीं देता कि इस घण्टे में यह-यह अनुभूति हुई। यदि इसमें लग भी जाए तो पुनः संसार-चक्कर में आ सकता है। नया व्यक्ति यदि उस समय का गणित करने लग जाए कि इस घण्टे में, इस क्रम से, यह अनुभूति, इतनी देर तक हुई तो उसका हो गया बेड़ा पार। वह तो उसी में लगा रह जाएगा। बना-बनाया स्तर मिट जाएगा।

साधक १ – व्यक्ति की बुद्धि में वह क्षण लगभग कुछ तो स्मरण रहता होगा ?

स्वामी जी – नहीं, नहीं। यह सुरक्षित करने से होता है। जैसे आज की बात हो। एक साधन-सम्पन्न व्यक्ति है। उसको सिद्धान्तों का पता है। लेखबद्ध कर सकता है या स्मरण रखता है। तब तो कुछ बात है। तब तो सम्भव है, ऐसा कह भी सकते हैं। हमारे पास था ही क्या ? कोई साधन भी तो नहीं था कि लेखबद्ध कर लेते या स्मरण कर लेते। वहाँ तो बाधा ही बाधा खड़ी थी। कोई बताने वाला नहीं, भाषा-विज्ञान नहीं और लिखने की कोई स्थिति नहीं। केवल लिखने की ही समस्या नहीं थी। स्मरण करना उससे बड़ी समस्या थी। यदि स्मरण करने लग जाते तब एक नया विषय बन जाता। उससे वह अवस्था ही हाथ से चली जाएगी।

आपको उस अवस्था या घटना का अनुभव (अनुमान भी) नहीं हो सकता। अभी तो आप इस स्थिति में हैं कि बहुत कुछ पढ़-लिख लिया, सुन-सुना लिया है। अब आप समर्थ हैं, कब, क्या, कैसे का गणित कर सकते हैं, तब बोल रहे हैं।

जब वह आकाशवत् अवस्था उत्पन्न हुई थी तब पूरे संसार से सम्बन्ध टूट गया था। वह जो अनुभूति हुई, उसे यदि समझना चाहो तो इस **प्रज्ञाप्रसादमारुह्य.....प्राज्ञोऽनुपश्यति** । यो.द.व्या.भा. १/४७। के सूत्र में वर्णित स्थिति को ले सकते हैं। यह उससे मिलता-जुलती स्थिति है। सारे बन्धन छूट गए। जैसे कि कारागार से निकल गए हों। राग-द्वेष नाम की कोई वस्तु नहीं, लौकिक भोग सुख, सुख के साधन की कोई बात नहीं है। लोक में ये जितनी भी स्थितियाँ रहती हैं तथा व्यक्ति के साथ ये जितनी घटनाएँ होती हैं डाकू का, चोर का, मौत का डर लगता है। ये जितनी भी घटनाएँ होती हैं, वहाँ कोई भी दिखाई नहीं देती। अच्छा ! इस अवस्था को मैं छोड़ना नहीं चाह रहा था। क्या समझे ?

ऐसी अवस्था जो न देखने में आई, न सुनने में आई, वह हाथ लगी थी। यह घटना एक खेत में हुई थी। इतना मुझे याद रह गया। यह भी इसलिए स्मरण हुआ कि जिस दिन यह घटना हुई उस दिन के पीछे जो खेत में जाना था। काम करना था। पूछना-बताना या परिवार से सम्बद्ध रहना था, सारी स्थिति समाप्त कर दी। इसीलिए यह याद रहा है।

साधक १ – ईश्वर-साक्षात्कार वाला याद नहीं ?

स्वामी जी – हाँ ! वह तो आगे आई थी। यहाँ से तो स्थिति आरम्भ हुई थी।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – ज्ञान की स्थिति प्रारम्भ हुई ?

स्वामी जी – हाँ ! इस स्थिति के आ जाने पर, आगे की अवस्था बताता हूँ। यह जो स्थिति आई, इससे पूर्व ही मै ईश्वर से जुड़ा हुआ था। क्योंकि नित्य-अनित्य के ज्ञान के साथ ईश्वर का सम्बन्ध चल रहा था। यह जो ईश्वर की अनुभूति थी जिसको मैं ईश्वर-साक्षात्कार मान रहा था या अनुभव करता था, यह एक विशेष आनन्द था। उस विशेष आनन्द के काल में मन में भौतिक पदार्थों की सत्ता प्रतीत नहीं हो रही थी।

साधक १ – आनन्द की अनुभूति भी इसी समय की है स्वामी जी !

स्वामी जी – हाँ ! ईश्वर का स्वरूप क्या है, यह सूक्ष्म है; इस अंश को तो अभी हटा दो, यह आगे की बात है। अभी तो इतना लेना है कि सम्प्रज्ञात समाधि के अन्दर जो सत्त्वगुण-प्रधान-स्थिति होती है उसकी अनुभूति, जो 'प्रज्ञाप्रसादमारुह्य' से मिलती-जुलती है। वह अति विचित्र, बहुत अच्छी, क्लेशों से मुक्त दिखाने वाली होती है। प्रतिदिन उसका अभ्यास करते-करते जब आगे बढ़े तब इससे बढ़कर एक विशेष आनन्द की अनुभूति आरम्भ हुई। यद्यपि इस अभ्यास में कितने दिन लगे, क्या हुआ, उसका पता नहीं किन्तु धीरे-धीरे यह विशेष आनन्द की अनुभूति होने लगी थी। उसको मैंने माना कि यह सर्वव्यापक ईश्वर है और सब कुछ यही है। तो जिसको सर्वव्यापक ईश्वर की अनुभूति कह सकते हैं वह विशेष आनन्द की अनुभूति होने लगी। आगे चलकर उससे भी ऊँची हो गई। उस समय ईश्वर का स्वरूप निश्चय हमारी बुद्धि में इस प्रकार का था कि सब ईश्वर ही ईश्वर है। ईश्वर ही सर्वव्यापक है, सब कुछ वही है। यह स्थिति रहती थी। पुनः यही अभ्यास चलता रहा। अच्छा ! तब प्रमाणों से ईश्वर का या अपना पृथक्त्व सिद्ध करना, ऐसी कोई प्रक्रिया नहीं चलती थी अपितु वहाँ तो ईश्वर को छोड़कर अपनी सत्ता और संसार की सत्ता भी बुद्धि में नहीं बैठती थी; यह स्थिति थी।

यदि इसमें कुछ करो तो भय भी होता है कि कहीं स्थिति चली न जाए। क्योंकि जिसको कहते हैं 'मै और मेरा', इसके आते ही यह स्थिति विलुप्त हो जाती है। तब यदि कोई लौकिक सुख या सुख की दृष्टि से किसी सुख-साधन की इच्छा हो गई तो यह स्थिति नहीं रहेगी। इन साधनों को नित्य देख लिया या संसार को नित्य देखना आरम्भ कर दिया तो भी स्थिति हट जाएगी। यदि स्थिति चली गई तो उसको वापस लाने के लिए पुनः इस संसार को तोड़ते-तोड़ते उसी प्रलय की स्थिति में ले जाना होगा। पुनः ईश्वर को सर्वस्व का स्वामी मानना होगा। तो इन सिद्धान्तों को लेकर जब किसी में भी रुचि नहीं रहेगी, समस्त लौकिक स्थितियों को समाप्त कर देने पर स्थिति का सम्पादन हो पाएगा।

यद्यपि इस स्थिति को बनाये रखने के लिए पूरी शक्ति लगाते हैं, पूरी सावधानी रखते हैं, पुनरपि कभी-कभी किन्हीं कारणों से यह स्थिति हाथ से चली ही जाती है। एकाध बार जैसे कि किसी अज्ञानता, भूल या घटना विशेष हो तो ऐसा हो जाता है। ऐसे में स्थिति हाथ से जब चली गई तो बड़ा कष्ट होता है, बड़ा दुःख होता है। कहना चाहिए कि बड़ी अशान्ति होने लगती है। ऐसे लगता है मानो सब कुछ चला गया हो। ऐसी स्थिति हो जाती है। पुनः उसको लाओ और लाने से भी आ नहीं रही हो तो और अशान्ति बढ़ जाती है। क्या समझ में आया ?

एक बार ऐसा अनुभव हुआ। ऐसी ही घटना हुई, लम्बे काल तक तो नहीं, कभी घण्टे-दो घण्टे भर के लिए एकाध बार ऐसी घटनाएँ हुई थीं। तब लाने पर भी नहीं आ रही थी। जब लाने पर भी वह स्थिति नहीं आ रही हो तब बड़ा बुरा लगने लगा, बड़े क्लेश सताने लगे। पहले की

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लौकिक स्थितियाँ मन में दबी थीं, वे उभर गईं। तब एक बार प्रयास करने पर नहीं आई। कितने घण्टे तक नहीं आई, यह मुझे स्मरण नहीं। पुनरपि बहुत लम्बा-चौड़ा अन्तराल नहीं रहा।

तब पुनः हमने वही मार्ग अपनाया जो पहले कभी भूल जाने पर प्रारम्भ से चल पड़ते थे। हमने आरम्भ से स्थिति का सम्पादन किया। उन्हीं उपायों को लेकर चल पड़ा। एक बहुत बड़ा आधार था सब कुछ ईश्वर ने बनाया है। दूसरा उपाय था कि ईश्वर ही सर्वस्व का स्वामी है, मैं किसी का स्वामी नहीं, हमारी कोई वस्तु नहीं है। तीसरा पुनः देखा यह संसार नाशवान् है। जिसको हमने ऐसे सिद्ध किया था कि चित्र भी दिखाई नहीं दे, उस स्थिति का सम्पादन किया। इस प्रकार से उन्हीं-उन्हीं मान्यताओं को लिया। दोबारा उसको लेता हुआ चला। तब पुनः स्थिति बन गई।

लोक में कहेंगे - यह तो काल्पनिक है। एक व्यक्ति ने हमको कह भी दिया था कि आपको भ्रान्ति हुई होगी। आपमें से कोई कहेगा - भाई ! यह बात तो जंचती ही नहीं। भला प्रलयवत् दिखाई कैसे देगा ? कोई कहेगा कि यह एक प्रकार का पागलपन है। जिस स्थिति में व्यक्ति की बुद्धि का सन्तुलन बिगड़ जाता है, यह वह स्थिति है। अन्य कहेगा कि यह तुष्टि दोष आ गया है कि मैं सिद्धि को प्राप्त हो गया हूँ, समाधि को प्राप्त हो गया हूँ। समझ में आई कुछ बातें ?

साधक ८- स्वामी जी ! अपने शास्त्र इस बात की पुष्टि करते हैं। अब और कोई कुछ कहता हो, तब उसका तो कोई समाधान है नहीं।

स्वामी जी - नहीं! यह बात तो आगे चलकर होगी। जब तक व्यक्ति शास्त्रों से मिलान नहीं कर सकता तब तक तो उसकी स्थिति विचलित हो सकती है ?

साधक ८ - अच्छा !

स्वामी जी - यह तो आगे चलकर जब हमने सत्यार्थ प्रकाश, ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, संस्कार विधि और दर्शनों को पढ़ा तब जाकर दृढ़ हुआ। गाँव में रहते-रहते, पूरा याद नहीं कि मैंने कहाँ तक पढ़ा, पर इन तीनों को पढ़ा था। उस समय जो-जो बातें हमारी अनुभूतियों से सम्बद्ध उनमें आती थीं उनको अपने साथ तुलना करता था और मिल जाने पर निश्चिन्त हो जाता था। जहाँ सन्देह की बातें आईं जैसे कि 'अहं ब्रह्मास्मि' की तब वहाँ पर सहायता मिली। कितनी मिली मुझे स्मरण नहीं, परन्तु इनसे मैं सहायता लेता रहता था। एक अन्य बात आई जैसे कि भाई ! जीवात्मा तो ब्रह्म नहीं हो सकता। यह बात पढ़ ली 'सत्यार्थ प्रकाश' में। ऐसे तीन पदार्थ अनादि हैं आदि। ऐसी जो-जो बातें वहाँ आती जाती थीं, मैं उनको देखता-मिलाता जाता था। पुनः उन्हें अपने साथ जोड़ता था कि इस विषय में मेरा सन्देह है या उलटा ज्ञान है ? जो विपरीत या सन्दिग्ध होता था उसका संशोधन कर लेता था कि यह बात ठीक है और यह नहीं।

इस प्रकार एक-एक सिद्धान्त बनता गया। जब यह बात आई कि 'समाधि' क्या वस्तु है, उसमें ईश्वर का आनन्द मिलता है या नहीं ? तब उससे मिलाया और निश्चय हो गया कि मेरी समाधि की स्थिति ठीक है क्योंकि इसमें ईश्वर का आनन्द मिलता है। एक मुझे लगा था कि ईश्वर सर्वव्यापक है और वहाँ पर भी यही मिला कि ईश्वर सर्वव्यापक है तब बात बुद्धि में बैठ गई। ऐसे ये बातें आती रहती थीं और मैं इनको पढ़ता रहता था।

यह भी बात जानने की है कि मैं सत्यार्थ प्रकाश को इतनी श्रद्धा से पढ़ता था कि एक-एक पंक्ति जैसे पत्थर की लकीर हो। आप लोगों की तो ऐसी श्रद्धा दिखती नहीं।

साधक १ - आपकी श्रद्धा सत्यार्थ-प्रकाश पर कैसे बनी ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – पढ़ने से और मेरे साथ उसका अनुभव जुड़ने से। क्या समझ में आया?

साधक २ – मूल कारण यह था।

साधक १ – अनुभव जुड़ने से।

स्वामी जी – अनुभव एक भाग है। दूसरा भाग है उनकी बातें मुझे बहुत अच्छी लगती थीं और पुनः अनुभव के साथ जोड़ता भी था। उससे यह लाभ हुआ कि योग के विषय में, सिद्धान्तों के विषय में, आश्रमों के विषय में तथा बहुत से विषयों में नई-नई जानकारी मिली। 'सत्यार्थ प्रकाश' के पढ़ने से सहायता मिलती गई और उससे सिद्धान्तों का निर्धारण करता गया। जैसे कि ईश्वर पृथक् है, आत्मा पृथक् है आदि को अन्तिम रूप देता गया। पुनः ऋग्वेदादिभाष्य भूमिका, पुनः संस्कार विधि पढ़ी। इनको जहाँ पढ़ना नहीं आता था, वहाँ अधिक पढ़े हुए से पूछ लेता था। यद्यपि इस 'सत्यार्थ प्रकाश' से पहले महात्मा गाँधी जी की एक पुस्तक है, अब भी होगी वह, उसका नाम 'मंगल-प्रभात' है।

साधक १– अभी भी है।

स्वामी जी – तब मंगल प्रभात नाम की पुस्तक किसी ने मुझको दे दी।

साधक १ – जो यम-नियम के विषय में है।

स्वामी जी – हाँ! लगभग चौदह व्रत होंगे। अहिंसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि का उसमें वर्णन है। तो उसको मैंने पढ़ना आरम्भ किया और मुझको बहुत अच्छा लगा। उसमें यह दिखने लगा कि यह व्यक्ति तो बहुत आगे बढ़ा-चढ़ा है। तब महात्मा गांधी जी जीवित थे।

साधक १ – हाँ जी! जीवित थे।

स्वामी जी – हाँ! तो बड़ी अच्छी लगीं उनकी बातें। ये सत्य, अहिंसा, ईश्वर। सत्य ही ईश्वर है; ऐसी-ऐसी बातें हैं उस मंगल-प्रभात में। तो बड़ी अच्छी लगीं। वैराग्य के समय यह प्रथम पुस्तक मुझे पढ़ने को मिली थी और इसके डेढ़ वर्ष पश्चात् 'सत्यार्थ प्रकाश' मिला। समय तो नहीं हो गया हमारा?

साधक ८ – हो गया।

स्वामी जी – अब विराम॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६०

यज्ञीयोपदेश

उपासना की अनिवार्यता : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२५/७/०३

प्रत्येक योगाभ्यासी को ईश्वर की उपासना, ध्यान और योगाभ्यास के सम्बन्ध में यह निर्णय, निश्चय कर लेना चाहिए कि ईश्वर की उपासना करना तथा ईश्वर की प्राप्ति के लिए प्रयत्नशील रहना आवश्यक है। ईश्वर का ध्यान करना, संध्या करना यह मेरा प्रमुख कार्य है। यह मेरे जीवन के अन्य कार्यों से महान् है। जो व्यक्ति ऐसा सोचता है वह इनको रुचि-श्रद्धा और पूरे बल से करता है। इस स्थिति में व्यक्ति को प्रयोग के साथ-साथ अनुभूतियाँ होती जाती हैं और उसका उत्कर्ष होता है। इसके विपरीत जब व्यक्ति रुचि, श्रद्धा व पूरे परिश्रम से ईश्वर की उपासना नहीं करता, ईश्वर का ध्यान नहीं करता, संध्या नहीं करता तब उनके अच्छे परिणाम उसके सामने नहीं आते। जब अच्छे फल, परिणाम सामने नहीं आते तब उसकी अरुचि, अश्रद्धा, उत्साहीनता आदि ये सारे दोष आ जाते हैं।

यद्यपि इन कार्यों को न करने का बहुत बड़ा कारण है बचपन में माता-पिता अथवा आचार्य-अध्यापक न तो स्वयं संध्या-उपासना आदि करते हैं, न इनको अच्छा मानते हैं और न अपने बालक-बालिकाओं व शिष्यों को तन-मन-धन से योगाभ्यास सिखाना अनिवार्य समझते हैं। यह प्रभाव चाहे गृहस्थ हों, ब्रह्मचारी हों अथवा संन्यासी; सब के ऊपर देखा जाता है। आपको क्या समझ में आया ?

साधक २ – ब्रह्मचारी, गृहस्थी या कोई भी व्यक्ति हो, सभी का कर्त्तव्य है कि स्वयं ईश्वर-उपासना को मुख्य माने, उसको करे और अपने अधीनस्थों को कराए।

स्वामी जी – जब व्यक्ति रुचि से, श्रद्धा से अनिवार्य समझकर करता है तो उसके फल-परिणाम व्यक्ति के सामने आते हैं और यदि पूरे बल, पूरी रुचि से प्रयोग नहीं करता तो परिणाम भी सामने नहीं आते हैं। जैसे कोई कृषक रुचि से, श्रद्धा पूर्वक अपनी भूमि को अच्छी प्रकार से जोतकर, झाड़-झंखाड़ उखाड़कर, खाद-पानी की ठीक व्यवस्था करके बीज बोता है और आगे फसल की रक्षा करता है तो क्या उस भूमि में बहुत से अन्न-फल नहीं उपजते ? तो भूमि में किए परिश्रम का फल उसके सामने आता है। इसके साथ-साथ किसान अपने पुत्र-पुत्रियों को भी खेती करना सिखाता है जिससे उसकी परम्परा आगे बढ़ती जाती है।

यदि कृषक ऐसा नहीं करे तो न उसे अन्न-फल की प्राप्ति होगी, न उसकी परम्परा आगे बढ़ पाएगी। इसी प्रकार बिना रुचि के, बिना श्रद्धा के, बिना विज्ञान के, बिना सामर्थ्य के जब व्यक्ति संध्या आदि करता है तब उसके अच्छे फल-परिणाम नहीं आते, अपितु उसी व्यक्ति की और भी अधिक अरुचि, अश्रद्धा हो जाती है। अब समझ में आ गया ? तो आप क्या करोगे ?

साधक २ – संध्या आदि रुचि, श्रद्धा से करने का प्रयत्न करेंगे।

स्वामी जी – श्रद्धा, रुचि, परिश्रम से यथा सामर्थ्य व्यक्ति करता है तब अच्छे परिणाम होते हैं। बिना रुचि, बिना श्रद्धा के, दबाब मात्र से अथवा उसको सिखाया नहीं जाए, विधि का ज्ञान न हो तो भी अच्छे परिणाम नहीं आते। कहीं-कहीं सिखाया जाता है, समय भी लगाया जाता है परन्तु बुद्धि-पूर्वक, विद्या पूर्वक नहीं सिखाया जाता। इतना सिखा दिया कि भगवान् की एक घण्टा पूजा किया करो। कैसी पूजा करनी चाहिए, किस विधि से करनी चाहिए, किस ज्ञान से करनी चाहिए; यह नहीं

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सिखाया जाता है। कभी सीख लेता है तो भी उसी प्रकार नहीं करता है। वह अबुद्धि-पूर्वक, विधिरहित घण्टा पूरा कर देता है। ऐसे में पचास वर्ष में भी कोई वस्तु उसके हाथ लगती हो, बुद्धिमान्, तेजस्वी, संयमी, चरित्रवान्, भक्तिमान्, धार्मिक बन जाता हो या समाधि लगा लेता हो ऐसा कुछ भी नहीं होता है। बिना सोचे-समझे करने पर ये परिणाम होते हैं। विचार करके भी बिना बल, तपस्या के औपचारिकता मात्र करते हैं। मानो किसी तरह से ढो रहे हों। जैसे-तैसे निभा रहे हैं। आप में से भी कुछ लोग ऐसा ही करते होंगे या नहीं? श्रद्धा से करते हैं या बिना श्रद्धा से?

ब्रह्मचारी १ – आर्यवन आने से पूर्व ऐसा ही होता था।

स्वामी जी – हाँ! क्या होता था?

ब्रह्मचारी १ – जैसे कि निभा दिया।

स्वामी जी – यह भूल, असावधानी या उपेक्षा व्यापक रूप में है। इसलिए हमको यह भी परिज्ञान हो जाना चाहिए कि यह परम्परा ऋषियों की है, वैदिक है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने जो पाठ्यक्रम निर्दिष्ट किया है उसमें ये सारी व्यवस्थाएँ दी गई हैं कि प्रत्येक व्यक्ति चाहे वह छात्र हो या छात्राएँ हों, सबके लिए जैसे विद्या का पठन-पाठन, शरीर को स्वस्थ-बलवान् बनाना, परिश्रमी-पुरुषार्थी रहना अनिवार्य है वैसे ही योगाभ्यास करना भी अनिवार्य है।

ऋषियों के द्वारा योग का विधान है। अतः उसको बुद्धिपूर्वक प्रमुख कार्य मानकर चलना चाहिए। परीक्षा देना, उत्तीर्ण हो जाना, कोई नौकरी मिल जाएगी, कुछ सम्मान मिलेगा आदि-आदि के लिए तो लोग सीख-पढ़ लेते हैं परन्तु योगी बनने के लिए योगाभ्यास करने के लिए कोई नहीं पढ़ता। व्यवहार में यम-नियम के पालन पर बल लगाने की कोई बात नहीं दिखती। ठीक है! जितना हो गया, हो गया। ऊपर से लेकर नीचे तक छल-कपट भरा हुआ है। इससे ब्रह्मचारी, संन्यासी, अध्यापक भी ऐसे ही बन गए। समाज के कार्यकर्त्ता भी इससे पृथक् नहीं रहे।

औरों का तो आपने सुन लिया। अब आप अपने साथ तुलना करो। अपने जीवन को देखो कि आपकी भी वही दुर्गति तो नहीं होने वाली है? यदि सावधान रहे तो बच जाएँगे। इसलिए नहीं सुनाया जाता है कि अन्यों के दोष देखें, अपितु इसलिए सुनाया जाता है कि यदि आपने ऐसी असावधानी की, अपने कर्त्तव्य को ढीला रखा तो आपकी भी वही दुर्गति होगी जो औरों की हो गई।

आज वेद-दर्शन-उपनिषद् की विद्या को, ईश्वर की भक्ति-उपासना को लोक में दोष सिद्ध किया जाता है। इनको ग्रहण करने वाले दीन-हीन माने जाते हैं। ऐसा कहा जाता है कि भक्ति-वक्ति से कोई ऐसा प्रभाव उत्पन्न नहीं होता, जो समाज को उपासक, सत्संगी बना दे। अतः इन सारी बातों का अध्ययन करके देखना चाहिए कि मुझे क्या करना है? अर्थात् आपको अतिरुचि, अति-श्रद्धा पूर्वक अनिवार्य मानकर तन-मन-धन से ईश्वर की उपासना, योगाभ्यास करना होगा। जब ऐसा करेंगे तब उसके फल आपके सामने आएँगे और जब फल सामने आएँगे तब जिन बातों पर श्रद्धा होनी कठिन है, उन पर भी श्रद्धा होने लगेगी। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो इस रूप में फल सामने नहीं आएँगे तथा और भी अरुचि, अश्रद्धा हो जाएगी। आप जितना कर रहे हैं उसको भी छोड़ देंगे; यह होगा।

अच्छा! आपसे मैं एक प्रश्न पूछता हूँ। क्या जैसे भूख लगने पर भोजन के लिए, हलुवा, खीर के लिए जैसी तड़प होती है, वैसी ही संध्या आदि के लिए अथवा ईश्वर के लिए होती है या नहीं होती है। क्या रहता है?

साधक १ – होती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ जी ! ऊँचा बोलो !

साधक ५ – ऐसी नहीं होती जी !

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बताओ।

साधक २ – दोनों करने ही हैं, ऐसी होती है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ८ – शारीरिक स्थिति ठीक होती है तब उपासना आदि में रुचि होती है। दिन में इतनी रुचि नहीं होती।

स्वामी जी – अच्छा ! और आप लोगों की ?

ब्रह्मचारी १ – किन्हीं दिनों में तो होती है और किन्हीं दिनों में नहीं होती।

स्वामी जी – व्यक्ति संध्या आदि को अनावश्यक मानता है, किसी को बताता भी नहीं है कि मैं ऐसी भूलें करता हूँ। किसी ने पूछ लिया तो ठीक, नहीं पूछा तो ठीक। कोई धमकाएगा, दण्ड देगा तब कुछ कर लेंगे, नहीं तो कुछ नहीं। यह बुद्धि उसके विकास में बाधक है। ऐसा करते हुए वह कभी विकसित होकर समाधि में पहुँच जाए, मन-इन्द्रियों को जीत ले, अपना या समाज का उपकार कर लेगा; ऐसा नहीं हो पाएगा। इस दृष्टि से जो नियम-विधान बनाए गए हैं उनका पूरी शक्ति से पालन करना चाहिए, अन्यथा दण्ड का भागी होगा। इसलिए आप सावधान रहें।

इसके लिए यह बात आपके मन-बुद्धि में रहनी चाहिए कि ऐसा करने से मैं सफल हो जाऊँगा, महान् हो जाऊँगा, अन्यथा यह भी दोष आएगा - जिन्होंने यह संविधान बनाया कि यह धर्म है, यह कर्तव्य है, यह अकर्त्तव्य है, वे मुझ पर भी विश्वास करते होंगे। वे यह मानते होंगे कि यह व्यक्ति नियमों का, संविधानों का पालन करेगा। उलटे कामों को नहीं करेगा। उनको मैंने यह विश्वास दिलाया है और यदि मैं ऐसा नहीं करूँगा तो विश्वासघात हो जाएगा। जब ऐसे सोचता है तब व्यक्ति नियमों को भंग नहीं करता है। जो नहीं सोचता वह निश्चितरूपेण नियम को भंग करता रहता है। अब आपको भी सावधान हो जाना चाहिए। यह इसीलिए बताया जा रहा है कि ऐसा करोगे तो उन्नति हो जाएगी। अधर्म से, अन्याय से, दुःखों से बच जाओगे। नहीं करोगे तो आपको सारे अनर्थ, दुःख, बाधाएँ देखनी पड़ेंगी।

अच्छा! ये बातें मैंने तर्क के आधार पर बताईं, अब मेरा व्यक्तिगत प्रयोग सुनो ! मैं जब गुरुकुल में रहता था तब व्यक्तिगत या सामूहिक जो भी नियम वहाँ के होते थे उनका पालन करते हुए मैं कभी यह नहीं सोचता था कि कोई मुझे देखने वाला है, इसलिए इसका पालन कर लेना चाहिए और इसको छोड़ो, कोई देखने वाला तो है नहीं। ठीक है, यह नियम है; इतना मेरे लिए पर्याप्त था। इससे मेरा कल्याण हो जाएगा, भला होगा। अतः न करने की कोई बात ही नहीं। जब कि अन्य विद्यार्थियों को देखो ! कुछ एक को छोड़कर प्रायः ऐसे ही मिलेंगे कि वह मुझे देख रहा है, अतः यह काम कर लेना चाहिए। उसके ऊपर कोई खड़ा है, इसलिए वह डर से कर रहा है। मान लो देखने वाला चला गया तो उसी समय कार्य छोड़ भी देगा आदि। ऐसी प्रवृत्ति के विद्यार्थी कभी ऊँचे स्तर के व्यक्ति बन जाएँ, योगी बन जाएँ, सत्यवादी बन जाएँ, अपना या समाज का विशेष कार्य कर लें; ऐसा नहीं होगा। आप भी यदि ऐसा करेंगे तो परिणाम यही निकलेगा। ऐसा नहीं करेंगे तब तो सफल हो सकते हैं।

एक बार की घटना है। कोई भवन बनना था और सभी ब्रह्मचारी उसकी नींव खोद रहे

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

थे। मैं भी उनमें सम्मिलित था और ऊपर के अधिकारी हमारे साथ खड़े थे। सारे फावड़ा लेकर लगे रहे। एड़ी से चोटी तक का बल लगाया और खोदते-खोदते आधे घण्टे में थकान आ गई। इसके पश्चात् ब्रह्मचारी तो लगे रहे कि अधिकारी पास में खड़े हैं परन्तु मैं जब थक जाता था तो अधिकारी के वहाँ होते हुए भी फावड़ा रखकर विश्राम कर लेता था। अधिकारी मन में दुःखी हो रहे होंगे, मैंने इस ओर कोई ध्यान नहीं दिया। थकान उतर गई पुनः लग गए।

मुझे काम देकर अधिकारी घण्टों के लिए कहीं भी चले जाते थे किन्तु मैं वैसे ही कार्य करता रहता था जैसे उनके सामने करता था। मैं उतना ही करूँगा, जितना मेरा सामर्थ्य है। अधिकारी कहाँ गया, क्या हुआ; इस ओर बिलकुल ध्यान नहीं दूँगा। उसको मैं देखूँगा ही नहीं। सत्य, यम-नियम आदि पर चलने वाले व्यक्ति का यह स्वभाव होता है। यदि आप इस रूप में रहते हैं तब आपकी प्रगति होगी, यम-नियमों का पालन बड़ी सूक्ष्मता से करेंगे, विवेक-वैराग्य भी होगा और समाधि भी लगेगी।

यह इसलिए बताया जा रहा है कि इससे पृथक् व्यवहार करने पर यह बात नहीं हो पाएगी। चाहे कहीं जाएँ, कहीं रहें, कुछ भी पढ़े-पढ़ाएँ; होगा ही नहीं। योगी बनने का ढंग, पद्धति, उसकी रुचि, श्रद्धा, हाव-भाव, नियमों का पालन करना, जिन विरोधी कार्यों से हानि होती है उनको न करना, अपने दोषों को दोष मानना, दोष न होने देना, हो जाए तो उसका दण्ड ले लेना, दिनचर्या में बनाए नियमों का पालन करना आदि; ये सारी बातें इसमें आएँगी।

प्रश्न – अब एक बात, क्या आप जो मानसिक कर्म करते रहते हैं वे बिना विचारे, बिना परीक्षा किए कर लेते हैं या परीक्षा पूर्वक करते हैं? आप अपना-अपना अनुभव बताएँगे?

साधक १ – कभी-कभी बिना विचारे भी कर लेते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी! आप सुनाएँगे। ध्यान से बोलना क्योंकि ये सूक्ष्म विषय हैं और इन पर ध्यान न दिया जाए तो पकड़ में नहीं आते। क्या पूछा जा रहा है, क्या उत्तर दे रहा हूँ इसको पकड़ना है। यहाँ प्रश्न है कि हमारे मन में दिनभर विद्युत् की भाँति कर्म होते रहते हैं। उनको विचार-पूर्वक करते है या बिना विचारे करते हैं?

साधक ७ – बिना विचारे भी कर लेते है।

स्वामी जी – और आपका क्या रहता है?

साधक ५ – बिना विचारे भी कर लेता हूँ।

स्वामी जी – कितनी मात्रा होती है? बहुत अधिक होती है, आधी या चौथाई के लगभग या बीच-बीच में कभी हो जाता है?

साधक ५ – उसकी मात्रा कम रहती है, प्रायः विचारकर ही करता हूँ।

स्वामी जी – अब आप बताएँगे मानसिक कर्म।

साधक २ – बीच-बीच में बिना विचारे भी कर लेता हूँ।

स्वामी जी – उसकी मात्रा को देखना चाहिए। जैसे कि आज आप इतना किया तो अगले दिन उसको कम होने दो। उससे अगले दिन और कम होने पाए। सावधान रहो, पुनः पुनः देखो कि बिना विचारे कर्म हमको नहीं करने हैं।

साधक २ – विषय की दृष्टि से मात्रा अधिक होती है, बिना विचारे अनेक विषयों को ग्रहण करते हैं किन्तु थोड़े-थोड़े काल तक विचारते हैं। पुनः विषय बदल देते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – बिना विचारे कर्म करने नहीं करने हैं, यदि इसका ध्यान न रखा जाए तो व्यक्ति का सुधार नहीं हो सकता। बिना विचारे, बिना परीक्षा के कर्म होते रहते हैं और उनका प्रभाव हमारे मन, शरीर, आत्मा पर दिनभर पड़ता रहता है। इसलिए जो आन्तरिक जीवन का निर्माण है वह यहीं से आरम्भ होता है। चाहे वह बुरा हो या अच्छा।

साधक १ – स्वामी जी ! कोई भी मानसिक विचार कर्म की कोटि में कब आता है ?

स्वामी जी – एक तो यह होता है जीवात्मा क्रिया करने के लिए जो इच्छा, प्रयत्न आरम्भ कर चुका है, वह कर्म बन गया। दूसरा विशेष चेष्टा अर्थात् जब वह योजना बना लेता है कि यह कार्य ऐसे करना ठीक है, यह कार्य ऐसे करना ठीक नहीं है।

साधक १ – निश्चय करने के पश्चात् वह मानसिक कर्म होगा ?

स्वामी जी – मानसिक कर्म तो पूरा निश्चय होने पर ही होगा। यदि मन्थन चल रहा है – करना है या नहीं करना। यहाँ अभी अन्तिम रूप नहीं दिया। यह पूरा कर्म तो नहीं हुआ परन्तु प्रभाव तो इसका भी होगा।

साधक १ – मानसिक कर्म उसको माना जाएगा अथवा नहीं माना जाएगा ?

स्वामी जी – वह मानसिक क्रिया तो होगी (पर कर्म नहीं)। जब हम यह कहेंगे कि यह कार्य अच्छा है, यह मान लिया (तब कर्म हो जाएगा)।

साधक १ – यह निर्णय कर लिया।

स्वामी जी – यह कर्म हो गया।

साधक १ – अभिप्राय अब इसका सुख-दुःख फल बनेगा ?

स्वामी जी – हाँ ! बन जाएगा।

साधक १ – लेकिन अभी निर्णय किया नहीं, मन्थन कर रहा है ?

स्वामी जी – मन्थन मात्र – यह अच्छा है यह बुरा है, इसमें कोई दोष नहीं है।

साधक १ – अर्थात् अभी केवल विचार कर रहा है – यह उचित है या अनुचित है ?

स्वामी जी – यह अभी कर्म नहीं हुआ है।

साधक १ – यह अभी कर्म नहीं कहलाएगा।

स्वामी जी – नहीं। यह कर्म के लिए प्रयास किया जा रहा है कि अच्छा है या बुरा है। अभी परीक्षण किया जा रहा है – यह बुरा है या अच्छा। किन्तु यह अपने-आप में क्रिया है क्योंकि यहाँ व्यक्ति प्रयत्नशील है।

साधक १ – यह अपने-आप में क्रिया है।

स्वामी जी – हाँ ! क्रिया है।

साधक १ – तो इसका कोई कर्माशय बनता है ?

स्वामी जी – कर्माशय निश्चित फल के रूप में नहीं बनता।

साधक १ – नहीं बनता।

स्वामी जी – इसका प्रभाव हमारे ऊपर पड़ता है। जब हम मन्थन करते हुए विषय को अन्तिम रूप में स्वीकार कर लेते हैं, तब वह कर्म बन जाता है और हमको फल दिलाता है। परन्तु जब

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तक बुद्धि से स्वीकार नहीं करते हैं, केवल जानने के लिए जो प्रयासशील हैं कि यह अच्छा है यह बुरा, इसको करूँ या न करूँ; तो अभी यह फल की कोटि में नहीं है। पर हमारे जीवन पर इसका प्रभाव पड़ेगा। विचारने का प्रभाव हमारे मन पर पड़ेगा। उससे जो परिणाम निकलें, वह प्रभाव कहलाएगा। वह फल के स्तर पर नहीं आएगा। उसका यह फल निश्चित हो गया है अर्थात् ईश्वर उसका सीधा फल देगा; ऐसा नहीं है।

बिना परीक्षण के कर्म कैसे होता है; इसका एक मोटा दृष्टान्त देता हूँ। सुमेरु प्रसाद जी को ले लो। मान लो कि इन्होंने सोचा आज भूख कुछ अधिक दिख रही है तो दूध अधिक पीना चाहिए। पहले तो ये तीन सौ ग्राम दूध पीते थे और आज निर्णय कर लिया पाँच सौ ग्राम का। पाँच सौ ग्राम दूध पीना ठीक है; अब यह मानसिक कर्म बन गया। कुछ आया आपको समझ में? बिना विचारे झट निर्णय कर लिया आज इतना दूध पीना ठीक है। यदि विचार करते तो ऐसा होता कि मैं प्रतिदिन तीन सौ ग्राम पीता हूँ, उस पर भी भूख कम ही लगती है और आज पाँच सौ यदि पी लिया तो और भी भूख कम हो जाएगी। दोपहर को रोटी भी खानी है, तब पुनः रोगी हो जाएँगे। इसलिए पाँच सौ नहीं, तीन सौ ही ठीक है। विचार करने पर तो यह सुधार हो गया। अच्छी तरह उन्होंने परीक्षण किया। यदि वह विचार नहीं करते तो बिना परीक्षा के उस कर्म को कर डालते।

ऐसे कर्म बहुत अधिक होते हैं जिनको हम बिना परीक्षा के कर डालते हैं जबकि वे परीक्षा के योग्य होते हैं। इन कर्मों के तीन विभाग बताए थे। प्रथम विद्या या अविद्या का ग्रहण, दूसरा शुभ या अशुभ कर्म का अनुष्ठान, तीसरा पुनः शुद्ध उपासना और अशुद्ध उपासना का करना। क्यों जी! नींद तो नहीं आ रही है? समझ में आ रहा है?

साधक ८ – हाँ जी!

स्वामी जी – आप यहाँ बैठे हैं और उस बच्चे को देखने लगे और सोचने लगे – कितने सुन्दर वस्त्र पहन रखे हैं, बड़ा भोला-भाला दिख रहा है। बहुत अच्छा लगता है, इससे मैं बात-चीत करूँ। अब आपने ईश्वर को छोड़दिया और झट बच्चे की उपासना कर ली। क्या समझ में आया? बताओ –

साधक ३ – अशुद्ध उपासना हो गई।

स्वामी जी – आपने बालक की उपासना तो कर ली और ईश्वर की उपासना छोड़ दी। जो उपासना करनी थी उसको छोड़ दिया और जो नहीं करनी थी उसको कर बैठे। यह बिना परीक्षा के हुआ है और सर्वत्र यही उपासना चलती है।

व्यक्ति सुख और सुख साधन की उपासना दिनभर करता रहता है और ईश्वर की उपासना छोड़ देता है। यह बिना परीक्षा के चलता रहता है और ध्यान ही नहीं रहता कि मैंने जो करना था वह छोड़रखा है, जो नहीं करना था वह कर रहा हूँ। यदि आपकी यही स्थिति रही तो समाधि की सम्भावना नहीं होगी। आपकी दिनभर ईश्वर की उपासना ऐसी ही होगी जैसे लौकिक व्यक्ति सुख और सुख साधनों की करते हैं। जब आप ऐसे ईश्वर की उपासना दिनभर करेंगे तब समाधि तक पहुँचने की बात आएगी। दुहरा लो, समझ में नहीं आया हो तो?

लौकिक व्यक्ति जो सुख और सुख साधनों में एड़ी से चोटी तक लगे हैं। अरबपति करोड़पति भी उनमें हैं, क्यों जी! सत्य नारायण जी! नींद न आ जाए। बूढ़े को थकान होती है, वह सो

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है और उसको उठाना पड़ता है। तो जो मैं वर्णन कर रहा हूँ, इसको लोग मुख्य कर्त्तव्य मानते हों, बहुत आवश्यक मानते हों; ऐसा नहीं है। जबकि यह इतना मुख्य है, इससे मुख्य अन्य कोई काम ही नहीं है। लौकिक व्यक्ति दिनभर सुख और सुख-साधनों की उपासना करता है। वह दिनभर जड़ या चेतन पदार्थों की उपासना करता है। किन्तु जो बुद्धिमान् व्यक्ति है वह जड़-चेतन पदार्थों की उपासना नहीं करता। वह सुख और सुख-साधनों की उपासना नहीं करता। यद्यपि उनसे सारा काम लेता है किन्तु उपासना ईश्वर की करता है। वह दिनभर परीक्षा करता रहता है कि यह ईश्वर की उपासना है, यह लौकिक पदार्थों की उपासना है। पुनः ईश्वर की उपासना का ग्रहण करता है और लौकिक उपासना को छोड़ देता है। यह दिनभर चलता है। समझ में आ गया?

ज्ञान के क्षेत्र में भी यही होता है। व्यक्ति दिनभर एक ओर तो विद्या का उपार्जन करता रहता है और दूसरी ओर अविद्या का। दोनों करते हुए वह यह नहीं समझ पाता कि मैं विद्या को छोड़कर, अविद्या की कमाई कर रहा हूँ। कुछ समझ में आया?

तीनों ऐसे ही लगातार चलते हैं। यदि ईश्वर-प्राप्ति की दृष्टि से कुछ करना हो तो अशुद्ध ज्ञान-कर्म-उपासना को छोड़कर, शुद्ध ज्ञान-कर्म-उपासना को ग्रहण करना होगा। यही विधि जानना, समझना और प्रयोग करना वास्तव में सत्य और मुख्य है। जो मैंने सुनाया यह ईश्वर की, वेदों की, ऋषियों की, दर्शनों की दृष्टि से है। इसको छोड़ो तो सारा विरुद्ध होगा।

आप सोचते रहें, जैसे घर में रहते हुए खाते-पीते थे, जैसे वहाँ सोचते-विचारते थे, जो चाहे करते थे, वैसे ही आज भी खाएँ-पिएँ, सोचें-विचारें, घूमे-फिरें और योगी बन जाएँ तो यह नहीं चलेगा। यह तो जीवन ही पृथक् है। प्रायः सबको इस जीवन का पता नहीं होता है। पढ़े-लिखे, लेखक-प्रवक्ता, विद्वान् व्यक्ति को भी यह जीवन समझ में नहीं आता। करोड़ों में से कोई विरला होगा, जो इस जीवन को समझकर अपना और दूसरे का निमार्ण करता हो। जिसे यह वेद, दर्शन, ऋषियों की शैली पूरी-पूरी ठीक व रुचिकर लगती हो। जो इसी के लिए सर्वस्व लगाता हो, ऐसा व्यक्ति मिलना बड़ा कठिन है परन्तु इसके बिना जो जीवन होना चाहिए, बनना चाहिए; वह नहीं बनेगा।

अब विराम की ओर चलते-चलते धुन के रूप में अकामो धीरो का पाठ करके ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे -

अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ अथर्व. १०/८/४४।

अब विराम॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६१ क्रियात्मक योगाभ्यास

सन्ध्या : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२५/७/०३

दक्षिणा दिक्.....। इस मन्त्र का अर्थ याद है या नहीं? कौन सुनाएगा? आप सुनाओ –

साधक २ – दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥ हमारी दाहिनी दिशा का अधिपति इन्द्र है। कीट पतंग आदि के समुदाय से यह ऐश्वर्यशाली ईश्वर हमारी रक्षा करने वाला है। ज्ञानी लोग हमारे लिए लाभकारी हैं। उनके ज्ञान-विज्ञान से हमारी रक्षा होती है। उनके लिए हमारा नमस्कार हो।

स्वामी जी – यह अर्थ तो स्पष्ट हुआ। अब यह जानने की बात है कि पूर्व दिशा कौन-सी है? एक परिभाषा के अनुसार जिधर सूर्य का उदय होता है; वह पूर्व है। दूसरी परिभाषा के अनुसार हम जिस ओर मुँह करके बैठ गए, वही पूर्व दिशा है। इधर मुँह करके बैठे गए, यही पूर्व हो जाएगी। क्या समझ में आया? जिस ओर हमारा मुख हो वही पूर्व दिशा है और उसी के अनुसार पुनः अन्य दिशाएँ बन जाएँगी। जैसे कि हम इस ओर मुँह करके बैठ गए, तो यह प्राची बन गई और यह दाहिनी ओर दक्षिणा बन जाएगी। पीछे की ओर प्रतीची और बाईं ओर उदीची बन जाएगी।

अब हम मन्त्र का अर्थ करेंगे कि दक्षिण दिशा में आप इन्द्र ऐश्वर्यशाली ईश्वर विद्यमान हैं और अधिपति को किसके साथ जोड़ेंगे?

साधक ३ – इन्द्र के साथ।

स्वामी जी – इन्द्र अधिपति को जोड़कर कहेंगे कि आप दक्षिण दिशा में सभी पदार्थों में विद्यमान, अनन्त ऐश्वर्य वाले ईश्वर, उन सभी पदार्थों के स्वामी हैं। यहाँ तक पहुँच गए। आगे है **तिरश्चिराजी रक्षिता**। जो बिच्छु आदि, सर्प आदि, टेढ़े-मेढ़े हाथ-पैर वाले...।

साधक ४ – यह अगले में है। इसमें कीट-पतंग आदि लिया है।

स्वामी जी – अच्छा! वह आगे वाले मन्त्र में लिया है। यहाँ कीट-पतंग आदि अर्थ लिया। तो प्रसंग है कि इन से रक्षा करने वाले आप हैं। इसमें देखना है कि यहाँ जो ईश्वर को कीट-पतंगों के द्वारा हमारी रक्षा करने वाला कहा गया है तो वह रक्षा किस प्रकार से होती है? क्या अर्थ लगाएँ हम पंक्ति का?

साधक ३ – ये कीट, पंतग आदि विषैली वायु का पान करते हैं। इससे हमारी रक्षा हो जाती है।

स्वामी जी – हाँ! इससे रक्षा हो जाती है।

साधक ३ – वायुमण्डल में जो विषैली वायु विद्यमान है, उसको ये अपना भोजन बना लेते हैं। जब भोजन बना लिया तो हमारी रक्षा हो गयी, नहीं तो वे विष हमारे अन्दर आते।

स्वामी जी – आप में से कौन-कौन, क्या-क्या समझते हैं? बुद्धि लगाकर देखो, यहाँ भिन्न-भिन्न अभिप्राय लोगों के मिलते हैं।

साधक २ – एक तो ऐसा है कि इनकी प्रवृत्ति हमसे पृथक् बना दी। ये हमसे दूर रहना चाहते हैं। यदि हमारे ही साथ रहने की इनकी प्रवृत्ति होती तो हमारे लिए कठिनाई हो जाती। इस प्रकार इनके विरुद्ध व्यवहारों से हमारी रक्षा होती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – इनका अभिप्राय इस रूप में आया कि इनके द्वारा ईश्वर हमारी रक्षा करता है। अर्थात् ये जब आक्रमण करते हैं तो हमारी ईश्वर रक्षा करता है, एक तो अर्थ ये है। क्यों जी ! क्या समझें।

साधक ३ – यह अर्थ ठीक नहीं है।

साधक ५ – इनके आक्रमण से ईश्वर हमारी रक्षा करता है, यह अर्थ ठीक नहीं है।

स्वामी जी – तो कौन-सा मानेंगे ? आपको क्या समझ में आता है ?

साधक ५ – जीवों को साधन बनाकर ईश्वर हमारी रक्षा करता है।

स्वामी जी – तो उसके भाग हमने बनाए। जैसे एक यह कि अशुद्ध वायु का ग्रहण करके हमारी रक्षा करना और दूसरा इन्होंने बताया कि उनका स्वभाव ऐसा बनाया कि वे हमसे दूर रहें, जिससे आक्रमण आदि न कर पाएँ। और क्या हो सकता है ?

साधक १ – दूर रहने के स्वभाव वाले अर्थ में माध्यम वाला हेतु नहीं घटेगा।

स्वामी जी – क्यों ?

साधक १ – ये कीट-पंतग आदि विषैली वायु का पान कर लेते हैं; इस प्रकार इनके माध्यम से हमारी रक्षा वाली बात तो ठीक है किन्तु जो दूसरा अर्थ किया जा रहा है कि हमसे दूर रहने का इनका स्वभाव बनाकर इनके माध्यम से हमारी रक्षा कर रहा है, यह नहीं जंचती। ऐसा कैसे होगा ?

सम्पादक – इसमें प्रमाण तो नहीं किन्तु तर्क अवश्य है। जैसे कि बुद्धिमान् माता-पिता परस्पर विरुद्ध स्वभाव वाले बच्चों की पृथक्-पृथक् व्यवस्था कर देते हैं तो उनमें झगड़ने की स्थिति उत्पन्न नहीं होती। इससे दोनों की रक्षा हो जाती है। वैसे ही विरुद्ध स्वभाव वाले दोनों प्राणियों को दूर रखकर भी दोनों को लड़ने-मरने से बचा लेता है।

स्वामी जी – देखो ! इस पर विचार करो। इन पंक्तियों की व्याख्या भिन्न-भिन्न विद्वानों, व्याख्याकारों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में की गई है। पर हमारे लिए ध्यान देने की मुख्य बात यह है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी की जो व्याख्या है, वह क्या है ? उस पर हम बल देंगे।

साधक १ – स्वामी जी ! यह जो विषैली वायु आदि का पान करने वाला अर्थ है; इसको भी विद्वान् प्रायः पृदाकु शब्द के साथ लगाते हैं। कीट-पतंग आदि के साथ प्रायः नहीं लगाते हैं।

स्वामी जी – हाँ-हाँ !

साधक ८ – स्वामी जी ! ये एक दूसरे रूप में हमारी रक्षा करते हैं।

साधक १ – वे कीट-पतंग आदि कैसे रक्षा कर रहे हैं; यह समझने योग्य बात है।

साधक ८ – स्वामी जी ! इस विषय की एक घटना मैं सुनाऊँ। गुरुकुल सुन्दरपुर की बात है। एक बार वहाँ मूली लगा रखी थी। उसमें उन्होंने शीघ्रातिशीघ्र बढ़ाने के अभिप्राय से कोई अंग्रेजी रसायन डाल दी थी। एक दिन पाचक ने उसको उबाला तो विचित्र प्रकार की गैस निकलने लगी। इसके पश्चात् ऐसा हुआ कि आकाश में नीली-नीली मक्खियाँ मंडराने लगी और जब तक गैस निकलती रही वे वहीं मंडराती रही। गैस समाप्त होते ही सारी चली गईं।

स्वामी जी – ऐसा सुना जाता है, जैसे कि आजकल परीक्षण हो रहे हैं। उसमें पता चला है कि ऐसे कीड़े होते हैं जो खेती के बहुत उपयोगी होते हैं। परन्तु रासायनिक औषधियाँ डालने से वे लाभदायक कीड़े मर जाते हैं। पुनः उनके अभाव में ऐसे-ऐसे कीड़े उत्पन्न हो जाते हैं जो खेती के लिए हानिकारक होते हैं।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – ऐसे ही ये जो केंचुए होते हैं वे हमारे लिए बहुत उपयोगी हैं। अब तो उनसे खाद तैयार की जाती है।

स्वामी जी – हाँ-हाँ। अभिप्राय है कि इस रूप में रक्षा का अर्थ लेना चाहिए। उन कीट-पतंग आदि के द्वारा हमारी रक्षा होती है।

साधक १ – मधुमक्खियाँ मधु का निर्माण करती हैं।

स्वामी जी – इन योनियों से दो प्रयोजन सिद्ध होते हैं। एक तो इनको अपने कर्मों का फल मिल जाता है और दूसरा उनसे हमको लाभ हो जाता है। क्या समझ में आया? जैसे कि गौ को गौ बना दिया तो उसको एक तो दण्ड मिल गया और हमको दूध मिल गया।

साधक २ – तृतीया अर्थ में यह हो जाएगा कि इनके माध्यम से हमारी रक्षा करता है। तृतीया नहीं लेंगे, पंचमी में लेंगे। तब यह अर्थ निकलेगा कि उनसे हमारी रक्षा करता है।

स्वामी जी – अच्छा! तृतीया भी तो हेतु में लगती है?

साधक १ – तृतीया भी है।

साधक २ – तृतीया भी है, पंचमी भी है किन्तु शब्दार्थ ऐसा किया हुआ है।

स्वामी जी – तृतीया विभक्ति रक्षार्थ में लगती रहती है।

साधक २ – होती है। यों तो पंचमी लगाएँगे तो वह भी लग जाएगी।

स्वामी जी – देखना है वह। अच्छा एक बात है ...।

साधक २ – यह अर्थ दिया है – जो कीट-पंतग तिर्यक कहाते हैं, उनकी राजी जो पंक्ति है; उनसे रक्षा करने वाला एक परमेश्वर ईश्वर है।

स्वामी जी – इसमें जो विभक्तियों का प्रसंग आया तो उसमें बात आती है एक पंचमी का मानना, दूसरी तृतीया का मानना और तीसरी प्रथमा का मानना; ऐसे है। यह विचारणीय है। अच्छा! अपनी बुद्धि के अनुसार विश्वश्रवा जी ने इनकी व्याख्या करने का प्रयास किया है। समय निकालकर उसको आप पढ़ सकते हैं। अपनी ओर से उन्होंने उसमें पर्याप्त परिश्रम किया है और यह दिखाया है कि यह विभक्ति लगाएँगे तो यह दोष आता है, अन्य लगाते हैं तो अन्य दोष आता है। ऐसे उन्होंने विभक्ति का प्रसंग उठाया है तो उसे भी पढ़कर लाभ ले सकते हैं।

उन्होंने भी अच्छा विस्तार से लिखा है। यद्यपि उनकी जो बातें हमारे सिद्धान्त के अनुकूल हैं, वही लेंगे। जो अनुकूल नहीं पड़तीं, युक्तियुक्त नहीं हैं; उनको छोड़ देंगे। एक और बात उन्होंने उसी प्रसंग में उठाई है कि **तेभ्यो नमः** यह जो पाठ है, यह किसके लिए आया है? आपका क्या विचार हुआ अब तक, देखो?

साधक २ – जो विशेषण साथ में दिए हुए हैं, उसके लिए आया है; ऐसा लगता है।

साधक १ – तेभ्यो एभ्यो। अधिपतिभ्यः रक्षितृभ्यः इषुभ्यः नमः।

स्वामी जी – तो अधिपति कौन है? यह आया है।

साधक २ – ऊपर पढ़ा हुआ है।

स्वामी जी – क्यों जी!

साधक ३ – सभी मन्त्रों में एक-एक अधिपति पढ़ा हुआ है। प्राची में अग्नि, दक्षिणा में इन्द्र, प्रतीची में वरुण आदि।

स्वामी जी – तो अधिपति से किसका ग्रहण करेंगे?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – ईश्वर का

स्वामी जी – या ईश्वर के गुणों का ग्रहण करोगे ?

साधक ३ – एक ही बात हुई। ईश्वर या ईश्वर का गुण।

साधक २ – धर्म-धर्मी के रूप में वही एक है। एक धर्मी का ग्रहण करने से कई गुणों का ग्रहण हो जाएगा।

स्वामी जी – उसमें दो विभाग बन जाते हैं – एक तो सीधा गुण जो व्यक्ति का ज्ञान, आनन्द आदि हैं। दूसरा उसने जो रचना की है, जो पदार्थ बनाए हैं, वे भी उसके गुण माने जाते हैं। ईश्वर ने तो पदार्थ बनाए, वे भी ईश्वर के गुण माने गए हैं। उनसे जो हमारी रक्षा होती है, वह अधिपति है। यह भी अर्थ करने का एक ढंग है।

साधक १ – पदार्थों को ईश्वर का गुण माना गया ?

स्वामी जी – हाँ ! पदार्थ की रचना की, रचना करके जो हमारी रक्षा की है न ! इस रूप में ईश्वर के गुण। पदार्थ और गुण दोनों का ग्रहण करो। एक – ईश्वर ने सीधे पदार्थ बनाए, दूसरा – ईश्वर की जो विशेषताएँ हैं।

साधक ५ – असितः।

स्वामी जी – हाँ ! वह तो ईश्वर के साथ जुड़ेगा।

साधक ८ – तीन दिशाओं में तो ईश्वर के गुण हैं और तीन दिशाओं में ईश्वर के रचे हुए पदार्थ आदि।

स्वामी जी – पृथक्-पृथक् विभाग किया है या मिले-जुले हैं दोनों ?

साधक ८ – मिले-जुले हैं।

साधक ५ – रक्षा के लिए आए हैं।

साधक १ – अधिपति में ईश्वर के गुणों को ही लिया है।

स्वामी जी – अधिपति, यहाँ ईश्वर के गुण आ गए उसमें।

साधक १ – रक्षिता में महर्षि दयानन्द जी ने ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ दोनों लिए हैं।

स्वामी जी – हाँ ! सबके दो भाग बनाए हैं। ईश्वर के गुण और ईश्वर के रचे पदार्थ। इन दोनों के लिए तेभ्यो नमः का पाठ है।

साधक १ – रक्षिता के रूप में ?

स्वामी जी – हाँ ! ईश्वर के गुणों के लिए और पदार्थों के लिए। आगे चलकर 'नमः' के दो अर्थ किए – पहला जो पदार्थ हैं उनको नमस्ते अर्थात् हम इनका यथावत् उपयोग लें। नमः का दूसरा अर्थ किया जो ईश्वर के गुण हैं उनको हम नमस्कार करते हैं।

साधक १ – यहाँ इषु का क्या अर्थ लेंगे ?

स्वामी जी – यहाँ इषु का अर्थ है सूर्य की किरणें। इषु का मुख्य अर्थ है बाण अर्थात् जो पदार्थ या गुण बुरे लोगों के लिए दण्ड का काम करें, वे इषु हैं।

साधक १ – यहाँ पर ईश्वर के साथ नहीं जोड़ेंगे ?

स्वामी जी – यहाँ लिया है ईश्वर के रचे पदार्थ अथवा ईश्वर के गुण। वे उलटे लोगों के लिए दण्ड-दायक हैं। इस दृष्टि से उनका नाम इषु रख दिया।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – यहाँ पर भी दोनों जोड़कर चलेंगे ?

स्वामी जी – हाँ ! यहाँ देखना है कि जब ईश्वर के गुणों को मानेंगे तब पदार्थों को भी मान सकते हैं कि पदार्थ भी बुरे लोगों के लिए दण्ड देने वाले हैं। इषु का अर्थ जैसे बाण होता है। उसको इस रूप में ले लिया कि बाण के तुल्य उनको वे दण्डदायी, दुःखदायी होवें।

साधक ३ – वहाँ पर तो ईश्वर के रचे पदार्थ ही अधिक उचित लगते हैं। जैसे 'आदित्या इषवः' सूर्य की किरणें इषु के तुल्य हैं।

स्वामी जी – हाँ !

साधक ३ – इधर 'पितर इषवः' विद्वान् लोग भी इषु के तुल्य हैं। यहाँ ईश्वर नहीं आएगा।

स्वामी जी – पितर का अर्थ क्या किया ?

साधक ३ – विद्वान्, ज्ञानी लोग।

स्वामी जी – तब वे भी इषु के तुल्य हुए और क्या कहा ?

साधक ३ – 'अन्नमिषवः' अन्न इषु के समान हैं। ईश्वर यहाँ नहीं लिया जा रहा है। ईश्वर के रचे पदार्थ लिए जा रहे हैं।

स्वामी जी – हाँ ! वह तो ठीक है। हम यह देख रहे हैं कि इषु शब्द का प्रयोग पदार्थ और गुण दोनों के लिए हुआ या नहीं ? क्या समझ में आया ?

साधक १ – पदार्थ और गुण।

स्वामी जी – दोनों का नाम यहाँ इषु है।

साधक ८ – पदार्थों का लगता है। स्वामी जी !

स्वामी जी – गुणों का नहीं लगेगा क्या ?

साधक ८ – गुणों का इषु के रूप में नहीं लग रहा है।

स्वामी जी – जो इसमें लिखा है वह शब्दार्थ देख लो।

साधक ८ – ज्ञानी लोग इषु के तुल्य माने हैं। सूर्य की किरणें व अन्न को माना है।

स्वामी जी – जैसे एक तो आया 'अन्नमिषवः' अन्न जो है वह इषु है।

साधक ८ – हाँ जी ! आगे आया 'वीरुध इषवः'।

स्वामी जी – वहाँ भूमि से उगने वाली वृक्ष और लताएँ इषु हैं।

साधक ८ – और ऊपर वाली दिशा में वर्षा के बिन्दु।

स्वामी जी – वर्षा इषु है।

साधक ८ – हाँ जी ! तो इषु इन पदार्थों को मानना चाहिए।

स्वामी जी – पुनः इसमें देखना है कि इषु केवल पदार्थों के साथ जुड़ेगा या गुणों के साथ भी जुड़ेगा ?

साधक ८ – उनके मत में उनकी जो बुराई है उसको इषु रूप मुख में रखते हैं।

स्वामी जी – वह तो आगे का भाव होगा 'योऽस्मान् द्वेष्टि' का। वह तो व्यक्ति के लिए आया होगा।

साधक १ – स्वामी जी ! संस्कृत भाष्य में लिखा हुआ है **यस्य आदित्याः प्राणाः किरणाश्च**।

स्वामी जी – प्राण ले लिए, किरण ले लिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – दोनों ले लिए। यहाँ पर नीचे टिप्पणी दी हुई है राजवीर शास्त्री जी ने, कि किरण से अभिप्राय ईश्वरीय गुणों से है और आदित्य ईश्वर का नाम है।

स्वामी जी – आदित्य ?

साधक १ – तो जिसके बाण आदित्य की किरणें हैं।

स्वामी जी – जिसके बाण ?

साधक १– अर्थात् ईश्वर की किरण अर्थात् ईश्वर के गुण।

स्वामी जी – नहीं। एक अर्थ तो यहाँ आदित्य की किरण लिया ?

साधक १ – आदित्य का अर्थ यहाँ सूर्य न लेकर ईश्वर ले रहे है।

स्वामी जी – वह तो उनका अपना दृष्टिकोण हुआ। जैसे हमने प्राण और किरणों का ग्रहण किया। ये दो अर्थ तो सीधे हैं। उन्होंने तो ईश्वर के गुणों के साथ जोड़ना चाहा। हम तो प्राण से वायु अर्थ ले लेंगे।

साधक १ – प्राण से वह ईश्वर ही ले रहे हैं।

स्वामी जी – यदि हम आदित्य की किरण अर्थ लेंगे तो इसमें क्या दोष आता है ?

साधक १ – अर्थात् आप आदित्य से सूर्य अर्थ लेंगे या अन्य क्या लेंगे ?

स्वामी जी – आदित्य से हमने दो वस्तुएँ ली। एक प्राण और दूसरा सूर्य की किरण।

साधक १ – सूर्य की किरण और प्राण ?

स्वामी जी – स्वामी जी ने यही अर्थ किया है ?

साधक १ – हाँ ! इन्होंने प्राणाः किरणाश्च।

स्वामी जी – इन्होंने दोनों को ले लिया। प्राण तो यह वायु वाला है और किरण सूर्य की जो किरण है उसको ले लिया। अच्छा ! तो राजवीर शास्त्री जी ने क्या अर्थ लगाया ?

साधक १ – स्वामी जी ! **यस्य आदित्याः** में कौन-सी विभक्ति है।

स्वामी जी – आदित्या तो प्रथमा बहुवचन है।

साधक १ – बहुवचन है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक १– इन्होंने अर्थ किया है कि जिसके बाण आदित्य की किरण हैं। यह तो हिन्दी में स्वामी जी का अर्थ है और इन्होंने नीचे टिप्पणी दी है कि यहाँ किरण से अभिप्राय ईश्वरीय गुणों से है और आदित्य ईश्वर का नाम है। इन्होंने प्रमाण दिया है – इसका स्पष्टीकरण महर्षि ने उपस्थान मन्त्रों में **केतवः** की व्याख्या में दिया है। केतवः किरण अर्थात् विविध जगत् के पृथक्-पृथक् रचना आदि से नियामक, व्यापक एवं प्रकाशक ईश्वर के गुण। केतवः की व्याख्या में किरण शब्द का अर्थ महर्षि दयानन्द जी ने ईश्वर रचित जगत् लिया है।

स्वामी जी – यह जो इनका अर्थ है यहाँ आदित्य की किरण और प्राण वायु लिया जाए या इनसे ईश्वर के गुणों को लें ? इसके ऊपर विचार करेंगे, पुनः निर्णय करेंगे।

अच्छा ! पहले हमने जो विचार किया था **योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मः** पर। वहाँ यह अर्थ हमने समझ लिया था अर्थात् व्यक्ति के साथ न जोड़कर व्यक्ति के दोषों के साथ हमने जोड़ा था। क्या समझ में आया ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – व्यक्ति के दोषों के साथ जोड़ा था।

स्वामी जी – हम धार्मिक व्यक्तियों से जो द्वेष करता है और हम भी जिससे द्वेष करते हैं।

साधक ८ – अधार्मिक और दुष्टों से जो द्वेष करते हैं। उस द्वेष भाव को लिया है।

स्वामी जी – हाँ ! द्वेषभाव को लिया, व्यक्ति को नहीं लिया है। उसको आपके सामने रखते हैं। **योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥**

अब इन शब्दों के ऊपर इन विद्वानों के विचारों और स्वामी जी के विचारों को मिलाएँगे। पुनः क्या संगति अच्छी रहती है, उसको हम मानेंगे तथा औरों को भी वही बताएँगे।

साधक ८ – स्वामी जी ! एक वेद-मन्त्र के अनुसार सूर्य की किरणों के द्वारा सुख आता है। और किसी ने एक जगह लिखा है कि जीवात्मा जब से शरीर को छोड़ता है तभी से किरणें उसके साथ लग जाती हैं और तब तक उसका साथ नहीं छोड़तीं जब तक कि वह माँ के गर्भ को प्राप्त नहीं हो जाता।

स्वामी जी – अच्छा ! इसमें प्रथम यह देखना है कि महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने इसके विषय में क्या लिखा है ? पुनः उनके अभिप्राय को समझाने के लिए विभिन्न लेखकों, वक्ताओं या व्याख्याकारों ने क्या किया है ? यदि दोनों की संगति लग जाती है और हमारे लिए भी उपयोगी है तब हम उसे स्वीकार कर लेंगे तथा औरों को भी सिखाएँगे तथा जो कोई यह कहे कि अर्थ ठीक नहीं किए गए तो उसका उत्तर देने के लिए भी हमारी सज्जा होगी।

अच्छा ! प्रयोग करके देखो, इससे हमारी बुद्धि में स्पष्ट अर्थ होगा। जहाँ हम हैं वहाँ ईश्वर विद्यमान है और जहाँ हम नहीं हैं वहाँ भी विद्यमान है। इस स्थिति को बनाते हुए ईश्वर को सम्बोधित करेंगे और स्वयं को समर्पित रखेंगे।

प्रयोग आरम्भ.....समय लगभग २ मिनट।

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

अब आप मन में इस मन्त्र का अर्थ करते हुए, ईश्वर से सम्बन्ध रखते हुए, ईश्वर को संबोधित करें।

अब आप रुकेंगे और मानसिक रूप में दूसरे शब्दों का प्रयोग करेंगे – ओं सर्वान्तर्यामी। समस्त पदार्थों के अन्दर रहकर नियन्त्रण करने वाला। जप, ध्यान करते हुए ईश्वर को सम्बोधित करने का प्रयत्न करेंगे। पुनः शब्द-प्रमाण के आधार पर ईश्वर को सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द जैसा कि वर्णन है, वैसा स्वीकार करते रहेंगे।

ओम् सर्वान्तर्यामी।

ध्यान से देखिए, अन्य विषय तो नहीं उठाते हैं आप और उठाते हैं तो उसको रोकते हैं या नहीं ? कितनी देर में रोकते हैं और रोक पाते हैं या नहीं ?

अब इसी जप वाक्य को हम बोलकर भी करेंगे और दोनों में क्या अन्तर, सुविधा, असुविधा रहती है, यह देखने का प्रयत्न करेंगे।

ओम् सर्वान्तर्यामी। हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक, सबके अन्दर रहकर, सबको नियन्त्रित रखते हैं। **ओम् सर्वान्तर्यामी। ओम् सर्वान्तर्यामी। ओम् सर्वान्तर्यामी।**

अब रुकेंगे। मानसिक जप में और बोलकर करने में अन्तर जिसको जो समझ में आया हो, वह सुनाए। हाँ जी ! आप सुनाएँ –

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – मानसिक में अच्छी स्थिति रही।

स्वामी जी – और कौन सुनाएगा।

साधक ३– मानसिक अधिक अच्छा रहा।

स्वामी जी – आप सुनाएँ।

साधक ४– मानसिक में अधिक सरलता रहती है और ऊँचे शब्द बोलने से, शब्द में और लय में अधिक ध्यान रहता है और ईश्वर समर्पण...।

स्वामी जी – और कौन बताएँगा।

साधक १– मानसिक में अधिक अनुकूलता होती है और बोलते समय मन में इससे भी कम गति से कर रहा था, तो अधिक अनुकूलता थी। यहाँ बोलते समय थोड़ी गति तेज होने के कारण, मेरे विचार से, साथ-साथ अर्थ उतने अच्छे प्रकार से नहीं हो रहा था और अधिक गहराई मानसिक स्तर पर अनुभव की।

स्वामी जी – एक अन्तर यह भी रहता है। आपको जैसे मानसिक जप में, ध्यान में सरलता रहती है वैसे ही कुछ लोगों को जिनका स्तर, योग्यता, अभ्यास कम है, बोलकर करने में उनको अधिक सफलता मिलती है। क्या समझ में आया?

साधक २ – इसमें पुरुषार्थ कम लगता है।

स्वामी जी – हाँ! बोलकर करने में पुरुषार्थ कम लगता है, सरलता अधिक होती है किन्तु ऐसा भी होता है जब बोलकर करता है तब उसका मन बोलने में आकृष्ट होता है।

साधक १– बोलने में और अपनी ध्वनि सुनने में।

स्वामी जी – समझ में आया कुछ? जब बल लगता है तो नींद नहीं आती है। अच्छा! मानसिक वाले को कई बार बल नहीं लगाने से आलस्य, नींद आ जाती है और एक स्थिति यह होती है कि वे जब पाठ करते हैं तब उनकी वृत्ति बाहर की ओर बढ़ जाती है तथा उनका मन झट विषयान्तर में चला जाता है।

साधक १ – मानसिक में कभी-कभी जप बन्द भी कर देते हैं।

स्वामी जी – एक भाग यह भी रहता है। मानसिक जप वाला व्यक्ति जप को बन्द कर देता है और रुका रह जाता है। वह इतना सावधान नहीं रह पाता कि मेरा बन्द करना हानिकारक है। मुझे बन्द नहीं करना चाहिए। कभी-कभी मानसिक जप रोक दिया और बहुत देर तक रुका रहा। पुनः वह कहने लगा - जप तो रुक गया है! अब क्या? अब दोबारा करेगा।

इसलिए मानसिक जप में भी एक रीति तो यह है कि बोलते-बोलते अर्थ करो - जैसे हमने बोला **ओं सर्वान्तर्यामी** हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक, सबके अन्दर रहते हुए, अन्दर से ही सबको नियन्त्रित रखते हैं। ऐसे हमने ओं का अर्थ कर दिया और सर्वान्तर्यामी का भी और उस काल में हम ईश्वर को शतप्रतिशत सर्वव्यापक मानकर सम्बोधित कर पा रहे हैं। सर्वज्ञ मान रहे हैं या कोई सन्देह तो नहीं है; इसको देखते रहते हैं।

साधक ३ – एक नई बात आई। अब तक तो सुनते रहे कि जप के अन्तर्गत वाक्य का उच्चारण, उसका अर्थ और सर्मपण; ये तीन काम मुख्य करने होते हैं। इधर कुछ दिनों से सम्बोधन एक नया शब्द और आ गया है। क्या यह सर्मपण के साथ नहीं आ जाएगा?

स्वामी जी – एक बात बताता हूँ आपको। आपका अभिप्राय है सम्बोधन को पृथक् से करने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Kapil Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की आवश्यकता नहीं है, वह समर्पण के अन्तर्गत आ जाएगा।

साधक १ – समर्पण के अन्तर्गत आ गया।

स्वामी जी – आ गया, आ जाएगा, यह पृथक् विषय है। प्रथम देखना वहाँ पर यह है कि हम सर्मपण में सम्बोधित कर पा रहे हैं या नहीं? दोनों में थोड़ा अन्तर है। यद्यपि व्याख्या करें तो सम्बोधन समर्पण में आ जाएगा। परन्तु विशेष रूप से वहाँ देखना यह है कि सम्बोधन हो रहा है क्या समर्पण में? आपने यह तो मान लिया समर्पित हूँ और सम्बोधन ईश्वर को आप कर नहीं रहे। तब इसमें अन्तर आता है। आप ऐसा देख सकते हैं समर्पित मानता हुआ भी व्यक्ति वहाँ सीधा ईश्वर को सम्बोधित नहीं कर रहा होता है। यदि सर्मपण में ईश्वर सम्बोधित हो जाता हो तो ठीक है, यदि नहीं होता हो तब करना चाहिए। ठीक है!

सम्बोधन कहते ही अनेक बातें आएगी। इसलिए एक-एक कड़ी को देखना पड़ता है कि कोई प्रमुख बात वहाँ छूटनी नहीं चाहिए। जैसे कि कभी शब्द-प्रमाण से ईश्वर मन में नहीं बैठता है या सन्देह हो सकता है तो सम्बोधित करने में पता चल जाएगा कि ईश्वर मन में नहीं बैठ रहा है। इसके लिए भी करना चाहिए।

साधक १ – स्वामी जी! ईश्वर जितना महान् दिखना चाहिए, कई बार उतना महान् नहीं दिख पाता?

स्वामी जी – महान् दिखने की दो स्थितियाँ हैं। एक तो कार्य को देखकर शब्द-प्रमाण के आधार पर महान् दिखना और दूसरा है समाधि अवस्था में साक्षात् उसके ज्ञान आदि गुणों के आधार पर महान् दिखना।

साधक १ – अर्थात् सम्बोधन करते समय उसकी महत्ता को अपनी बुद्धि में कैसे उपस्थित रखें?

स्वामी जी – यह तो अभ्यास करते-करते होगा। ईश्वर की जो महत्ता है, सर्वव्यापकता, ज्ञान आदि गुणों की अनन्तता। समाधि में जब वह दिखाई देने लगती है तब हमको विश्वास हो जाता है। दूसरी स्थिति होती है शब्द-प्रमाण के आधार पर मानने की। जैसे कि हमने लिया – **एतावानस्य महिमा अतो ज्यायाँश्च पूरुषः। पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि॥** यजु.३१/३। हम जब बोलते हैं – हे ईश्वर! आपके एक ही भाग में पूरी सृष्टि विद्यमान है और आपके तीन भाग रिक्त पड़े हैं। जब ऐसे विचारते हैं कि सारी सृष्टि आ गई और पुनरपि रिक्त ही रह गया! अच्छा! जब ऐसे प्रयास करेंगे तब ईश्वर की जो महत्ता है वह बुद्धि में आएगी।

अच्छा! समय होने वाला है? एक तो स्वाध्याय का भाग है, उसमें आप कुछ-कुछ समय लगाएँ। उसमें संध्या के ऊपर जो-जो व्याख्याएँ हैं जैसे कि 'संध्या अष्टांगयोग' वाली पुस्तक होगी। उन्होंने भी कुछ लिखा होगा। उसमें सब योग का ही भाग दिखाया है।

साधक १ – हठयोग भी जोड़ा हुआ है।

स्वामी जी – उसको छोड़ो। जो महर्षि के अर्थों को लेकर वर्णन है उतने को लेना है। जैसे कि विश्वश्रवा जी की पुस्तक है। उसका क्या नाम है?

साधक ४ – संध्या पद्धति मीमांसा।

स्वामी जी – हाँ! 'संध्या पद्धति मीमांसा'। तो उसका थोड़ा-थोड़ा स्वाध्याय करते हुए अच्छे प्रकार से मन्थन करना। पुनः संध्या में प्रयोग भी करना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्यों को भी सिखाना तथा कहीं जनसमुदाय में, समाज में प्रश्नोत्तर की स्थिति आती है उसका संतोष

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जनक उत्तर देने के लिए भी सज्जा रखनी चाहिए। इसीलिए यह मानना चाहिए कि संध्या भी योग का ही एक भाग है। वह योग से कोई बाहर की वस्तु नहीं है। इसमें एक ध्यान देने की बात है कि कुछ व्याख्याकार इसमें अति कर देते हैं। जैसे कि वे इस रूप में कथन करते हैं कि संध्या ही योग है, इसके अतिरिक्त अन्य कुछ योग है ही नहीं। ऐसी बातों को माानने की आवश्यकता नहीं है।

साधक ८ – स्वामी जी ! कुछ लोग ऐसे भी जोड़ते हैं कि यह मंत्र तो आसन के अंतर्गत आ गया। यह प्राणायाम के लिए हो गया।

स्वामी जी – जो कुछ हो। हमने इतना देखना है कि वास्तव में उनकी व्याख्याओं में कौन-कौन-सी विशेषताएँ हैं। जो विशेषताएँ हैं उनको ले लेना है और जो नहीं हैं उनको छोड़ देंगे। यदि ऐसा नहीं करेंगे तो उनसे द्वेष होने लग जायेगा। अब यदि ऐसा हो गया तो क्या लाभ हुआ ?

साधक ८– स्वामी जी! द्वेष की बात नहीं है, प्रसंग चला इस कारण से बताया।

स्वामी जी – आपको यह नहीं कह रहा हूँ कि आप द्वेष करते हैं। हमारा अभिप्राय है ऐसे विचारते हुये द्वेष की तरंगे आ जाती हैं। आपने यह पकड़ना है। भय की बात नहीं है। अपना भय मत करना। कुछ समझ में आया ? प्रायः व्यक्ति का सोचने का ढंग है जैसा कि जब हम किसी अन्य व्यक्ति के विषय में कहते हैं कि इसने यह काम अच्छा नहीं किया तब हम यदि सावधान नहीं हैं तो उससे सूक्ष्म द्वेष उत्पन्न हो जाएगा। होगा या नहीं ?

साधक ८– होगा।

स्वामी जी – इसका परिणाम विशेष रूप में तब दिखाई देगा जब आप प्रलयवत् अवस्था बनाने लगेंगे। वहाँ वही चर्चा आगे आकर खड़ी हो जायेगी और झट आपका मन उस ओर आकृष्ट हो जायेगा। ऐसी बाधाएँ वहाँ खड़ी होती हैं। चलो, अब विराम ॥

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६२ ज्ञानखण्ड

जप : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२५/७/०३

मन्त्र पाठ करते हुए ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने वाले व्यक्ति दो स्तर के होते हैं। प्रथम जो इन बातों को समझ गया कि ईश्वर सब कुछ का स्वामी है और लौकिक पदार्थ अनित्य है। दूसरे स्तर का व्यक्ति इन पदार्थों का स्वामी स्वयं को या अन्य व्यक्ति को मानता है तथा शरीर आदि को नित्य देखता है। दोनों में यह अन्तर है। आप अपनी स्थिति देख लीजिए, कौन-सी है? अब मन्त्र-पाठ -

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु. ३६/३।

अब वह दृश्य आपके समक्ष उपस्थित किया जाता है जिसमें जीवात्मा इस सृष्टि को प्रलय जैसी स्थिति में देखता हुआ मानसिक रूप से गायत्री मन्त्र का पाठ करता है। मुख्य रूप से कहना चाहिए कि जब एक नवीन साधक गम्भीर अवस्था में जाने पर, बोलकर ऊँचे स्वर से जप करता है तब उसको अनुकूल प्रतीत नहीं होता, तब वह मानसिक जप करता है। कारण है कि ऐसी सूक्ष्म गम्भीर स्थिति में यदि वह बोलता है, बल लगाता है तब उसकी आन्तरिक स्थिति बिगड़ती है।

वह एक पृथक् क्षेत्र है जिसमें बहुत उच्च कोटि का व्यक्ति, बहुत लम्बे काल तक जिसने योगाभ्यास किया हो समाधि का अभ्यास किया हो, वह किसी भी धुन में ऊँचे से ऊँचा गाता हुआ भी अपनी स्थिति को ज्यों का त्यों बनाए रखता है। नये व्यक्ति को यह स्तर बनाने के लिए तर्क से, अनुमान-प्रमाण, शब्द-प्रमाण से इस विश्व को प्रलय जैसी स्थिति में पहुँचा देना होता है। यदि बीच-बीच में संस्कारों के बल पर विश्व की वस्तुओं के चित्र दिखाई देते हैं अथवा वह देखता है तब देखते ही इनको प्रलय में परिवर्तित कर देता है। जैस-जैसे वे स्थितियाँ उभरती हैं वैसे-वैसे उनको प्रलय की स्थिति में करता चला जाता है और ईश्वर को स्वामी मानता हुआ ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करता है।

अब जीवात्मा की जो एक विशिष्ट अवस्था आती है। जिसको हम ईश्वर-प्रणिधान कहते हैं। जिस पर ऋषियों ने बहुत बल दिया है। जब वह स्थिति आती है तब विधि-पूर्वक ईश्वर की दृष्टि मे पात्र बना हुआ जीवात्मा क्या करता है, कैसे करता है, क्या होता है; इस विषय को उपनिषत्कार के शब्दों में समझने का प्रयास करना चाहिए -

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन।
यमेवैष वृणुते तेन लभ्यस्तस्यैष आत्मा विवृणुते तनूँ स्वाम्॥ कठ.२/२३।

भावार्थ - यह परमात्मा न प्रवचन, न मेधा-बुद्धि, न तो बहुत उपदेश-श्रवण से मिलता है। यह तो जिसको चुन लेता है, उसी को अपना स्वरूप दिखाता है।

स्वामी जी - तो अब आप शब्द-प्रमाण के आधार पर स्थिति को समझें कि यह जो निषेध किया जा रहा है। **नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन**। तो यह आत्मा अर्थात् ईश्वर प्रवचन, अध्यापन, व्याख्यान आदि करते रहने से प्राप्त नहीं होता। **न मेधया** न मेधा बुद्धि प्राप्त होने पर और **न बहुना श्रुतेन** न बहुत सुनते रहने से ही प्राप्त होता है। यहाँ पर जो कहा कि प्रवचन आदि करने से ईश्वर प्राप्त नहीं होता; इसका अभिप्राय यह नहीं मानना चाहिए कि प्रवचन आदि करने का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निषेध है, अपितु इन सबका विधान है। निषेध के संकेत से यह कहना चाहते हैं कि जीवात्मा केवल इन कार्यों को करता हुआ जब तक ईश्वर की दृष्टि में पात्र नहीं बनता, योग्य नहीं बनता, जैसे की ईश्वर की आज्ञा है तब तक वह ईश्वर को प्राप्त नहीं कर पाता है। आपको क्या समझ में आया? कोई शंका हो तो पूछ सकते हैं।

साधक ७ – क्या यह साधन नहीं होंगे?

स्वामी जी – हाँ! ये साधन हैं। इसी बात का तो अभी व्याख्यान किया। साधन हैं परन्तु ईश्वर की दृष्टि में पात्र बनना; यह बात अनिवार्य है। प्रवचन आदि में कुशल होते हुए भी यदि वह पात्र न हो तो ईश्वर का प्रत्यक्ष नहीं होगा। ठीक है!

अच्छा! आप स्वयं को 'अकेला जीवात्मा' इस रूप में अनुभव करते हैं, आपके पास कोई वस्तु नहीं रह गई। सारी सृष्टि ईश्वर की हो चुकी है। आप तीनों एषणाओं से ऊपर उठ चुके हैं। आपको जीवन व प्राणों से भी प्रिय ईश्वर लगता है। किसी प्रकार की आशंका, भय नहीं रहा। किसी प्रकार का सुख, सुख-साधन सर्वथा नहीं चाहिए, सबका परित्याग हो चुका है। **दुःखमेव सर्वं विवेकिनः**। सब दुःख रूप बन चुका है और अब केवल ईश्वर चाहिए। क्या ऐसी स्थिति का सम्पादन कर लेते हैं या बाधा पड़ती है?

साधक ३ – नहीं होती है।

स्वामी जी – क्यों?

साधक ३ – योग्यता नहीं है अभी।

स्वामी जी – आपको किस कठिनाई का अनुभव होता है।

साधक २ – ये सभी विषय एक साथ जुड़ नहीं पाते हैं। किसी एक विषय को तो कर सकते हैं। जैसे कि स्वामी मान लिया तब संसार को दुःखदायी नहीं माना। संसार को जब दुःखदायी मान रहे हैं तब स्वामी नहीं मान पाते हैं।

स्वामी जी – तो इनका कहना है ये सारे विषय एक साथ उपस्थित रहने चाहिएँ। उदाहरण के रूप में संसार परिणाम-ताप-संस्कार दुःख के रूप में सिद्ध हो गया, परन्तु इसके साथ सब कुछ ईश्वर का है, ऐसा होना चाहिए था; वह नहीं हो रहा है। एक कोई भी सिद्ध करते हैं तब दूसरा छूट जाता है। कुछ समझ में आया?

ये सारे विषय एक काल में उपस्थित होने चाहिएँ। प्रायः थोड़े-से काल के लिए व्यक्ति यह तो मान लेता है कि सब कुछ ईश्वर का है परन्तु संसार का सुख दुःख रूप है; इसको उसकी बुद्धि पकड़ नहीं पा रही है। तो जब तक ऐसी स्थिति नहीं बन जाती है तब तक सफलता नहीं मिलेगी। वस्तुतः वहाँ पर यह बाधा खड़ी होती है कि ईश्वर और संसार का सुख दोनों की तुलना में संसार का सुख प्रथम स्थान रखता है और ईश्वरीय सुख दूसरा स्थान रखता है या तीसरा भी हो सकता है। यह बाधा खड़ी होती है। देख लो! क्या समझ में आया? कुछ पकड़ में आया या नहीं?

साधक ८ – हाँ जी!

स्वामी जी – जब तक व्यक्ति किसी वस्तुतत्त्व को ईश्वर के समान या अधिक मानकर चलता है तब तक वह ईश्वर की दृष्टि में पात्र नहीं बनता। आप आत्मनिरीक्षण करो। आप भी ऐसा ही करते हैं या नहीं? यदि करते हैं तो आपके समक्ष कारण, हेतु उपस्थित होंगे। पुनः उन हेतुओं को उखाड़ो, कारण को हटाओ। जब कारण को हटा देंगे तब आपकी जो उलझनें हैं, वे हट जाएँगी।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदि आप कारण को नहीं जानते। यद्यपि आप ही कारण को उपस्थित करते हैं और उसी को नहीं जानते या उसके हटाने में आपको भय लगता है तब सफल नहीं हो पाएँगे। मान लीजिए, शब्दों में जान गए कि योगी के लिए संसार का सुख भी दुःख रूप है। पर आपका हृदय उस सुख को छोड़ नहीं पा रहा है या आप उसको नहीं छोड़ पा रहे हैं। वह आपको प्रिय लगता है तब आप ईश्वर की ओर न जाकर उस सुख की ओर जाएँगे। यह एक कारण है और इसको हटाना ही होगा। इसका एक उपाय है संसार को अनित्य जान लेना। यह बहुत-सी बाधाओं को हटा देता है। यदि अच्छी प्रकार से संसार को अनित्य सिद्ध कर दिया जाए तो संसार के सुख की ओर आकर्षण नहीं रहता है।

अच्छा ! विषय को समझने के लिए कोई कथा सुनाई जाए तो उससे विषय की पुष्टि और उस ओर प्रवृत्ति होती है। पुनः व्यक्ति की बुद्धि चलने लगती है। स्वामी दर्शनानन्द जी महाराज ने 'कथा पच्चीसी' नाम की एक पुस्तक लिखी है। उसमें उन्होंने एक कथा बनाई या लिखी है। यद्यपि कुछ कथाएँ वास्तविक घटनाओं से सम्बन्ध रखती हैं। परन्तु प्रायः समझाने के लिए कल्पित होती हैं। यह कथा भी दोनों में से कोई एक हो सकती है। हमें यहाँ कथा का अभिप्राय लेना है।

कथा इस प्रकार से है - एक राजा था। उसी के नगर में एक संन्यासी महात्मा रहते थे। दोनों अति प्रेम से रहते थे। एक बार राजा ने किसी वैद्य से ऐसी औषधी बनवाई जो विषय भोगों की दृष्टि से बहुत अधिक उत्तेजना उत्पन्न करने वाली थी। जब राजा उस औषधि का प्रयोग करने लगा तब अपने मित्र महात्मा को भी खिला दी और जितनी स्वयं ली उससे अधिक मात्रा में महात्मा जी को जान-बूझकर दे दी। कितनी मात्रा थी मुझे पता नहीं। अर्थात् राजा ने महात्मा को काम वासना को भड़काने वाली औषधी दे दी और प्रतीक्षा करने लगा कि देखते हैं, क्या परिणाम आता है? राजा की काम वासना बहुत तीव्र रूप में भड़की और राजा ने सोचा मित्र महात्मा की वासना भी भड़की होगी। वे भी बड़े तिल-मिलाए होंगे। उनकी दुर्गति भी हुई होगी।

इसी उत्सुकता को लेकर राजा प्रातःप्रातः ही महात्मा जी के पास पहुँच गया। परन्तु उसने देखा कि महात्मा जी ध्यानावस्थित बैठे हैं। उनको कोई चिन्ता नहीं। महात्मा जी के ध्यान से उठने तक राजा ने प्रतीक्षा की, किन्तु उठते ही पूछा - महात्मा जी ! मैंने जो औषधी खाई थी उससे तो हमारी वासना बड़ी तीव्र रूप में भड़की। आपको भी वही दी थी परन्तु आप तो निश्चिन्त बैठे हैं। आपको कुछ भी नहीं हुआ ! तब महात्मा जी ने उत्तर दिया। कथा का भाव सुना रहा हूँ, ज्यों के त्यों शब्द नहीं। उन्होंने कहा- मेरी यह स्थिति है कि जब एक श्वास लेता हूँ तब दूसरा श्वास आएगा या नहीं, इसका मुझे विश्वास नहीं रहता। मुझे तो सदैव मौत दिख रही है। इसीलिए वासना नहीं भड़की। राजा ने कहा - अच्छा ! परन्तु यह बात मुझे समझ में नहीं आती।

उसके पश्चात् महात्मा जी ने राजा से कहा। यदि इसको समझना चाहते हो तो एक प्रयोग करो, पुनः समझ में आ जाएगा। कुछ दिनों के लिए दो अच्छे हट्टे-कट्टे नवयुवक अपने पास रखो। उनको, वे जो चाहें, खिलाते-पिलाते रहो। उनकी माँग पूरी करते जाओ और मुझे उनकी स्थिति से अवगत कराते रहो।

राजा ने ऐसा ही किया। जैसा वे नवयुवक कहते, ये खाएँगे ये पीएँगे, वैसा ही राजा उनको उपस्थित करता रहा। एक दिन वे दोनों लड़के कहने लगे कि हम विवाह करवाना चाहते हैं। तब राजा ने यह सूचना महात्मा जी को सुनाई। महात्मा ने कहा - ठीक है। आप ऐसा करो उनके साथ दो युवतियाँ रख दो और इधर यह घोषणा करवा दो कि राजा के यहाँ जो दो नौजवान रहते हैं, अब खा-पीकर हृष्ट-पुष्ट हो गए हैं। कल रात्रि में धूम-धाम के साथ उन दोनों की कुल देवी को बलि

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दे दी जाएगी। ध्यान रखना, किसी भी प्रकार से यह बात उन दोनों तक निश्चित रूप से चली जाए। राजा ने ऐसा ही किया और बताया जाता है कि अगले दिन उन्होंने विवाह कराने से मना कर दिया और शोक सागर में डूब गए। न काम, न क्रोध, न प्रसन्नता के कोई हाव-भाव विद्यमान रहे। राजा ने पुनः महात्मा जी को सारा वृतान्त सुनाया तब महात्मा जी ने कहा कि अब उन दोनों को छोड़ दिया जाए। राजा ने उनको छोड़ दिया और वे वहाँ से जैसे-जैसे भाग गए। अब राजा को समझ में आ ग़या कि उन्होंने इसलिए विवाह कराने से मना कर दिया कि उनको मृत्यु दिख रही थी। कोई कुचेष्टा नहीं होगी, काम वासना नहीं भड़ केगी।

अभिप्राय यह है कि जब कोई व्यक्ति यह जान जाता है कि अगले क्षण में मैं मरने वाला हूँ तब काम वासना नहीं भड़केगी। उसकी सारी इच्छाएँ समाप्त हो जाती हैं। परीक्षण करना हो तो करके देख लो। आपकी भी जो लौकिक सुख और सुख-साधनों की कामना है वह स्वयं को मौत के मुँह मे देखने से समाप्त हो जाएगी।

तो संसार का सुख प्रथम स्थान पर और ईश्वर का सुख दूसरे स्थान पर रखना; यह स्थिति लौकिक व्यक्ति की है और आध्यात्मिक व्यक्ति क्या सोचता है? उसकी भी सुन लो! आध्यात्मिक व्यक्ति यह देखता है कि जिसको मैं सुख समझता हूँ वह तो जाएगा। ऐसा हो नहीं सकता कि यह न जाए और यदि जाएगा तब मुझे बड़ा कष्ट होगा। इसलिए इसको पहले ही क्यों न निपटा लूँ? आया समझ में?

आध्यात्मिक व्यक्ति और लौकिक व्यक्ति में यह अन्तर होता है कि लौकिक व्यक्ति लौकिक सुख और सुख-साधनों को प्रधानता देता है तथा मृत्यु के नाम से डरता रहता है जबकि विवेक-वैराग्य सम्पन्न व्यक्ति कहता है - यहाँ का जो सुख मिल रहा है वह रुकने वाला नहीं है। इसको कोई रोक नहीं सकता और जिस दिन जाएगा, मुझे बड़ा कष्ट होगा। तो क्या करें? इसको अभी ही छोड़ दो। और वह इनका परित्याग कर देता है।

अच्छा! एक अन्य दृष्टान्त देता हूँ। आपका कोई मित्र है जो प्रायः आपके साथ रहता है, साथ खाते-पीते हैं और आपको परस्पर बड़ी शान्ति मिलती है। एक दूसरे के व्यवहार से बड़ा सुख होता है। खाते समय भी बात-चीत करते हैं और तब बड़ा अच्छा लगता है। तो वहाँ क्या कारण है? वहाँ इसलिए प्रसन्नता है कि दोनों यह नहीं जानते या स्मरण नहीं करते हैं कि हम मरने वाले हैं। क्या समझ में आया? वहाँ ऐसे रह रहे हैं जैसे कि सदा जीते रहेंगे। क्या देख रहे हैं?

साधक २ – सदा रहने वाले हैं।

स्वामी जी – सदा रहने वाले हैं। आप देख सकते हैं व्यक्ति की वहाँ यही मानसिकता रहती है। यदि उनमें से किसी की तत्काल मृत्यु की स्थिति आ जाए, एक दूसरे के वियोग की स्थिति उत्पन्न हो जाए तब भंयकर दुःखी हो जाते हैं। अब दूसरी ओर देखो। यदि व्यक्ति मित्र या अपने विषय में बुद्धिपूर्वक विचार करते-करते यहाँ तक पहुँच जाए कि हमारा संयोग, जिससे आज हमको सुख मिल रहा है, यह सदा नहीं रहेगा। आध्यात्मिक दृष्टि वाला देखता है कि निश्चित रूपेण यह सुख जाएगा। ऐसी बुद्धि बनी और तत्काल वैराग्य हो गया कि मुझे यह मित्र वाला सुख नहीं चाहिए, तब यह दुःख चला जाता है।

अब इसी बात को कथा के साथ जोड़ो। एक लम्बी कथा है राजा मुञ्ज की। वह जो राजा भोज था जब वह छोटा-सा बालक था। एक दिन उसके पिता की मृत्यु होने वाली थी, उस स्थिति में उसके पिता ने उसके चाचा अर्थात् अपने भाई मुञ्ज से कहा कि अब से इसका पालन-पोषण,

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri and Sarayu Trust. Funding by MoE-IKS

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देख-रेख आप ही करना। मैं तो मृत्यु को प्राप्त होने वाला हूँ। ऐसा माना जाता है कि जब राजा भोज के पिता की मृत्यु हो गई तब उसके चाचा मुञ्ज ने ज्योतिषी को बुलाया और पूछा कि यह मेरा भतीजा मेरे लिए कैसा रहेगा? तब ज्योतिषी ने कहा कि यह तेरा विनाश करेगा। यह सुनते ही मुञ्ज ने अपने सेनापति को आदेश दिया कि इसको जंगल में ले जाकर मार दो। कार्यकर्त्ताओं को राजा की आज्ञा का पालन करना होता था। इसलिए उस बालक को मारने के उद्देश्य से जंगल में ले गए।

एक पक्ष में माना जाता है कि मारने से पूर्व सेनापति ने बालक भोज को बताया कि तुम्हारे चाचा की ओर से तुम्हारी हत्या का आदेश मिला है। अतः तुम्हारी हत्या की जा रही है। अन्तिम समय में यदि तुम्हें कुछ कहना हो, किसी को कोई सन्देश देना हो तो बता दो। तब भोज ने एक श्लोक बनाकर दिया था। वह श्लोक आपको याद है?

ब्रह्मचारी – मान्धाता च महीपतिः कृतयुगालंकारभूतो गतः।
सेतुर्येन महोदधौ विरचितः क्वासौ दशास्यान्तकः।
अन्ये चापि युधिष्ठिरप्रभृतयो याता दिवं भूपते।
नैकेनापि समं गता वसुमती मुञ्ज त्वया यास्यति॥ भोजराज

भावार्थ – सत्ययुग के भूषणस्वरूप मान्धाता जैसे चक्रवर्ती सम्राट् चले गए, समुद्र के ऊपर पुल बंधवाने वाले और लंकापति रावण को मार गिराने वाले परमवीर श्री रामचन्द्र जी भी चले गए। उसी प्रकार से महाराज युधिष्ठिर आदि भी चले गए, किन्तु किसी के साथ भी पृथ्वी नहीं गई। परन्तु ऐसा लगता है मुञ्ज! पृथ्वी तुम्हारे साथ अवश्य जाएगी।

स्वामी जी – हाँ! तो उसमें यह जो बात कही कि राजा, महाराजा चले गए। युधिष्ठिर जी भी चले गए। सब चले गए और अन्त में कहा – चाचा जी! ये धन-धान्य से भरी भूमि और किसी के साथ नहीं गई पर तेरे साथ जरूर जाएगी।

माना जाता है कि मन्त्री बड़ा चतुर एवं धार्मिक था। श्लोक को पढ़कर उसने सोचा कि यह तो अनर्थ हो जाएगा, ऐसे सुयोग्य बालक की हत्या हो जाएगी। अतः कोई उपाय करना चाहिए, जिससे बालक की रक्षा हो सके। बताते हैं पुनः उसने भोज को छिपा दिया और एक नकली आँख बनवा ली या हिरण की आँख निकलवाकर ले गया और मुञ्ज को दिखाते हुए कहा – राजकुमार की हत्या कर दी गई है। यह उसकी आँख है। राजा ने मन्त्री से पूछा कि अन्तिम समय में उसने कोई सन्देश दिया था? मन्त्री ने कहा – हाँ! यह श्लोक लिखकर दिया था। श्लोक को पढ़ते ही राजा को बोध हो गया। किन्तु तीव्र शोक के कारण अत्यन्त दुःखी होकर उसने सन्तुलन खो दिया और कहने लगा – नहीं, मेरे पुत्र को पुनः ले आओ। किसी भी प्रकार से जीवित करो। जब मन्त्री को विश्वास हो गया कि राजा वस्तुतः दुःखी है, मेरी परीक्षा नहीं कर रहा है, तब उसने कहा – हाँ! राजकुमार को पुनर्जीवित किया जा सकता है। हमारे यहाँ ऐसे बहुत से योगी महात्मा हैं जो मृत को भी जीवित कर देते हैं। उधर भोज जीवित तो था ही, इधर राजा अन्धविश्वासी भी था। अतः मन्त्री की बात बन गई। पुनः पुनर्जीवित करने का बहाना लेकर अनुष्ठान आदि करवाया गया और भोज को लाकर राजा के समक्ष उपस्थित कर दिया गया। भोज के आने पर राजा मुञ्ज बहुत प्रसन्न हुआ और भोज को राज्य देकर स्वयं वन को चला गया।

उसी दिन राज-पाट छोड़कर वानप्रस्थ के रूप में चल पड़े। यह क्यों? ऐसा इसलिए हुआ कि यह बात उसको जंच गई कि निश्चित रूप से यह राज-पाट सब कुछ जाएगा। पहले नहीं जंचती थी। आपको यह पता चला कि ऐसा होता है?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २ – घटनाओं से पता चला कि ऐसा होता है।

स्वामी जी – एक और दूसरी घटना सुनो तब आपको पता चलेगा। अभी आपको कठिन लग रहा है कि भाई ! स्वयं को मारें कैसे ? मारने से क्या स्थिति होती है ? हमारे अन्दर तो वैराग्य आ भी नहीं रहा है। क्या बात है ? वास्तव में आपने अपने-आपको मारकर नहीं देखा है। मरने की बात पूरी नहीं जंची है बुद्धि में। इसलिए और घटना सुनो !

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी ने अपनी स्वलिखित जीवनी में ये घटनाएँ लिखी हैं। उनका अपना छोटा-सा स्वलिखित जीवन चरित्र है जिसमें लिखा है कि जब बहिन की मृत्यु हो गई, हैजा हो गया था या ऐसा कोई रोग हो गया था। तब सामने पड़ी बहन के शव को देखकर स्तब्ध हो गए। न रो सकते हैं, न कुछ बोल सकते हैं, केवल देखते रहे। कोई यह कहता यह तो पत्थर हृदय है। रोता भी नहीं है, ऐसे देख रहा है। कोई कुछ कहता है, कोई कुछ कहता है। इधर ये सोच रहे हैं क्या हो गया ! यह क्या हो गया ! मरना क्या होता है ? एक व्यक्ति अभी हँस-बोल रहा था और अब कहते हैं कि वह मर गया। आगे बताते हैं उनके एक चाचा जी थे जो विद्वान् थे। इनको बड़ा प्यार करते थे। कालान्तर में उनकी भी मृत्यु हो गई। उनकी मृत्यु होने पर, बताया जाता है, वे बहुत रोए। स्वलिखित जीवन में भी होना चाहिए यह वर्णन, जहाँ तक मेरा अध्ययन है। ऐसी स्थिति उस दिन हुई इतना रोए, इतना रोए कि कभी उतना रोना नहीं पड़ा होगा। तो महर्षि दयानन्द सरस्वती जी को वहीं निर्णय हो गया कि मौत मुझे नहीं छोड़ेगी। ऐसे होता है वैराग्य। इससे अपना शरीर, संसार के सभी शरीर, पूरी पृथ्वी आदि प्रलयवत् अवस्था में दिखाई देते हैं।

एक ओर व्यक्ति लौकिक कामनाओं को पूरा करना चाहता है। पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा को पूर्ण करना चाहता है। कहीं किसी को लेखक, किसी को अध्यापक, किसी को उपदेशक बनने की इच्छा रहती है और किसी को संसार के सुख भोगने की इच्छा है। किसी को मान, किसी को पुत्रों की इच्छा है आदि। तो संसार की इच्छाओं को पूरा करने वाला व्यक्ति विवेक-वैराग्य को प्राप्त नहीं हो सकता, ईश्वर की प्राप्ति नहीं कर पाता। इसके लिए तो यहाँ तक पहुँचना होता है कि जितने भी संसार में सुख हैं या यह कहो एक व्यक्ति न्यायपूर्वक चक्रवर्ती राजा बन गया है। अन्याय से नहीं, अन्याय से भी चक्रवर्ती राजा बन सकता है। किन्तु यह न्याय पूर्वक बन गया। उसको कोई भय नहीं है। कार्यकर्त्ता अनुकूल हैं। राम-राज्य है, जैसे कि हम कल्पना करते हैं। उसमें भी विवेक-वैराग्य हो जाता है तो उसको सारा राम-राज्य दुःखमय लगने लगता है। सुख की तो बात ही क्या ? यह स्तर है। ईश्वर-साक्षात्कार करने वाले को यहाँ तक पहुँचना होगा।

इसकी पुष्टि के लिए और थोड़ा सुनो ! यह जो उपनिषद् में याज्ञवल्क्य ऋषि की कथा आती है। वे जब गृहस्थ आश्रम में थे। उनकी कात्यायनी और मैत्रेयी दो पत्नियाँ थीं। जैसी कि लम्बी-चौड़ी कथा है। गृहस्थ में रहते-रहते उनको विवेक-वैराग्य हो गया। तब उन्होंने सोचा यह जो मेरी स्थिति है इसमें मुझे संन्यास ले लेना चाहिए। अब घर में नहीं रहना चाहिए। यह बात उनकी बुद्धि में आई। क्योंकि वैराग्य हो जाए उसी दिन संन्यास ले लेना चाहिए। परन्तु वैराग्य के साथ विद्या भी चाहिए। इसके दो मुख्य साधन होते हैं। विद्या और ऊँचा वैराग्य व्यक्ति को संन्यास के योग्य बनाते हैं।

अब उन्होंने क्या किया ? दोनों पत्नियों को बुलाकर कहा। उसका भाव सुनाता हूँ। मैत्रेयी ! यह जो भी धन-सम्पत्ति हमारे पास है, इसको आप सम्भालो, रखो और इसका प्रयोग करो। मैं अब संन्यास लेने वाला हूँ। आपने यह लम्बी कथा, उसके हाव-भाव उपनिषद् में पढ़े होंगे। यहाँ थोड़ा-सा सुन लो। तो

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैत्रेयी ने प्रश्न किया कि यह क्या बात है? क्या कारण है कि आप सब कुछ धन-सम्पत्ति हमको देकर जाने वाले हैं? कुछ कारण तो हमको पता रहना चाहिए। कोई बात बताओ कि क्या हुआ?

क्या बात है? ऐसी लम्बी कथा लिखी है। सारी बातें कही हैं संसार की। जैसे कि हे मैत्रेयी! **न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रियः, न वा अरे पुत्राणां कामाय पुत्रः प्रियः.....।** पत्नि को पति प्रिय, पति के लिए नहीं होता। पत्नी को पति प्रिय, अपने सुख के लिए होता है। इसको उलटा कर लो। पति को पत्नि प्रिय, पत्नि के लिए नहीं होती। वह अपने सुख के लिए प्रिय होती है। माता को पुत्र, पुत्र के लिए प्रिय नहीं होता। अपने सुख के लिए प्रिय होता है आदि सारी बातें कहीं और कहा कि इस संसार में हम जिस सुख की गवेषणा कर रहे हैं, वह नित्य-सुख = मोक्ष-सुख है, वह इस अवस्था में नहीं है? अतः मैं घर छोड़ रहा हूँ।

तब उसको ज्ञान हो गया लौकिक सुख, कितने ही स्तर पर, कैसा ही क्यों न हो, जब विवेक-वैराग्य होता है तब दुःख रूप ही होता है। अब थोड़ा-सा यह भी सुन लो - मैत्रेयी की योग्यता ऊँची थी और वह सत्य को पकड़ती थी, ग्रहण करती थी; यह बात भी इसमें आई है। अतः वह कहने लगी - आप अमृतत्व, मोक्ष तत्त्व को प्राप्त करना चाहते हैं और हमको ये धन देते हैं जो हमारे पास है। आप यह बताइए कि सारी भूमि का धन, सम्पत्ति यदि किसी व्यक्ति को दे दी जाए तब वह अमृतत्व को प्राप्त कर लेगा? यदि सारे भूगोल की धन, सम्पत्ति भूमि मिल जाए तब क्या मैं अमृतत्व को प्राप्त कर लूँगी? तब याज्ञवल्क्य जी ने उत्तर दिया कि -

यथैवोपकरणवतां जीवितं तथैव ते जीवितं स्यादमृतत्वस्य तु नाशास्ति वित्तेनेति। बृहदारण्यक २/४/२।

नहीं कर सकेगी। नहीं कर सकेगी। धन से धनिकों का जीवन जैसा होता है वैसा ही तुम्हारा जीवन होगा। धन से अमरता की कोई आशा नहीं है। तब मैत्रेयी ने कहा - नहीं है, नहीं है (नेति नेति) तो मुझे भी यह धन नहीं चाहिए। **किमहं तेन कुर्याम्।** इस धन सम्पत्ति का क्या करूँगी **तदेव मे ब्रूहीति।** बृहद. २/४/३। मुझे तो वही बताओ।

अब बताओ कल्पना करो। उनकी योग्यता कितनी ऊँची होगी? आज की माताओं की तरह रोना-पीटना, घर छोड़ रहे हैं, हाय! हाय!! आदि कुछ नहीं। वह तो कहती है पुनः मुझे भी यह धन-सम्पत्ति नहीं चाहिए। यदि ऐसी बात है तब तो मुझे भी वही बताओ जिसको आप प्राप्त करना चाहते हैं। मुझे भी यह नहीं चाहिए।

अच्छा! तो वह कहते चले गए। आगे जाकर कहा - **आत्मा वा अरेद्रष्टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनो वा अरेदर्शनेन श्रवणेन मत्या विज्ञानेनेदं सर्वं विदितम्।** बृहद्. २/४/५। आत्मा से दोनों का ग्रहण हो सकता है पर मुख्य अर्थ तो ईश्वर है। क्या समझ में आया? इस आत्मा को जानना चाहिए, यह भी मार्ग में आ जाएगा। पर अमृतत्व का अन्तिम आधार होने से आत्मा का मुख्य अर्थ तो ईश्वर ही बनेगा। इसलिए अकेले जीवात्मा का ग्रहण कोई करने लगे तब यह पूरा ठीक वाक्यार्थ नहीं बनेगा। तो अपने-आप को जानो और अन्त में ईश्वर को प्राप्त करो। इससे अमृतत्व मिलेगा।

यह वैदिक परम्परा करोड़ों वर्षों से चली आई थी। आज सारी लुप्त हो गई है। आज तो धन, भोग, अधिकार, गद्दी चाहिए; चाहे वह अन्याय से प्राप्त हो। इस समय यह स्थिति भूगोल की बनी हुई है। अब आप अपने साथ इस स्थिति को जोड़कर देखो कि भला ऐसी स्थिति में आप ईश्वर-साक्षात्कार कर सकते हैं? आपकी बुद्धि में क्या जंचता है? कोई अपना अनुभव बताए। क्या ऐसा हो पाएगा?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २ – हो सकता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! बोलो !

साधक ३ – कठिन है। पुरुषार्थ करेंगे।

स्वामी जी – आप भी बोलों ! क्या डर रहे हो ?

साधक १ – असम्भव कुछ नहीं है।

स्वामी जी – आप अपना बोलो।

साधक ५ – स्वामी जी ! कर सकते है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ४ – कभी बहुत कठिन लगता है। कभी सरल भी लगता है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ७ – सम्भव है।

स्वामी जी – ठीक बात है। सम्भव मानकर और पुनः वही बात है जितने बाधक हैं, उनके त्याग में कोई न्यूनता नहीं करनी। जो बाधक दिखता है उसको हटाये बिना छोड़ना ही नहीं और जो साधन हैं उनको प्रयोग में लाए बिना रहना ही नहीं। तो आप समझ लेना, सारे न सही, परन्तु आप में से कई ऐसे होंगे जो इसी जन्म में ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं। कुछ तो होंगे ऐसे या एक दो भी नहीं हैं। क्यों जी ! कैसा लगता है आपको ?

साधक २ – लगता है कर लेंगे।

स्वामी जी – आप ध्यान देंगे जो ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति चल रही थी। ऐसी स्थिति में आप ईश्वर के मुख्य-मुख्य आदेशों का पालन करें जैसे कि व्यवहार में यम-नियम आदि का पालन करें। पुनः जैसा कि पहले वर्णन किया गया कि संसार का कोई सुख और सुख के साधन, कोई एषणा आपको ईश्वर की ओर जाने से रोक न सके। ईश्वर की तुलना में कोई भी वस्तु ईश्वर के समान या उससे अधिक प्रिय न लगे। अब ईश्वर आपको ऊँचे स्तर वाली सहायता देगा अन्यथा नहीं। पुनः इस सहायता के मिलने पर आपके सामने जो भयंकर बाधा खड़ी दिखाई देती है, जन्म-जमान्तर की जो वासनाएँ हैं, संसार की गतिविधियाँ उलटी दिखाई देती हैं; उन सब को आप रोक सकेंगे। यदि आप उनका परित्याग नहीं करते तब आपको उतनी सहायता नहीं मिलेगी और आपके सामने यही बहुत बड़ी बाधा है। इसी कारण से ऋषियों ने ईश्वर-प्रणिधान पर बहुत बल दिया।

अब पता चला, आपकी जितनी योग्यता है, उसको और बढ़ाना है। पुनः इसका दृढ़ अभ्यास करना कि पूरे संसार का निर्माता = उत्पन्न करने वाला और स्वामी ईश्वर है। मैं या अन्य कोई भी इनका स्वामी नहीं है। लोगों की और मेरी भी यह मान्यता अशुद्ध है कि ये वस्तुएँ मेरी हैं। इनका आदि मूल परमेश्वर है, यह शब्द-प्रमाण से भी सिद्ध होता है। सारी विद्याओं का, जो भी आपके पास है या किसी अन्य के पास है, उनका रखने वाला, उन विद्याओं को देने वाला ईश्वर है। वस्तु, शरीर, इन्द्रियाँ, नस-नाड़ियाँ तथा पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सोना, चाँदी आदि जो भी वस्तुएँ हैं; उनका बनाने वाला, उनका स्वामी ईश्वर है, अन्य कोई व्यक्ति नहीं है।

इस प्रकार इन विपरीत मान्यताओं का आपने परित्याग कर देना है और सुलझी मान्यताओं को मान लेना हैं। इसमें आपको कोई बहुत बड़ा भवन बनाने जैसा परिश्रम नहीं करना है जिसमें करोड़ों रुपये लगते हों। ऐसा भी नहीं है कि आपको बहुमत इकट्ठा करना हो। इधर करो, उधर करो जैसे

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कि प्रधानमन्त्री पद पर जाना हो। ऐसी बात भी नहीं है कि खिलाड़ियों की तरह खेल खेलें और लाख दो लाख रुपये मिल जाएँ। आप कोई भी कल्पना करें, आपको ऐसा कोई भी परिश्रम नहीं करना है। केवल समझकर बुद्धि पूर्वक जैसी स्थिति है, वैसी स्थिति को स्वीकार लेना है। जो उलटी स्थिति है उसको छोड़ देना, जो सीधी है उसको पकड़ लेना है; इतना ही इसका बहुत बड़ा भाग है।

अब आप सारी वस्तुओं को ईश्वर का मानते हैं, अपना मानना छोड़ दिया। संसार के सुख और सुख साधनों में राग रखना, उनकी प्राप्ति के लिए प्रयासशील होना छोड़ दिया। उनके स्थान पर ईश्वर-प्राप्ति आपका साध्य बन गया और कुछ आपके सामने प्राप्य रहा ही नहीं। आपने लौकिक प्राप्य का परित्याग कर दिया, उनमें पुत्रैषणा, वित्तैषणा, लोकैषणा भी आ जाती हैं। पुनः ईश्वर के आदेश ये भी हैं कि जो पदार्थ जैसा हो उसको वैसा ही मानो। जैसे कि संसार में जितने भी प्राकृतिक पदार्थ हैं, वे सब उत्पत्ति और विनाश धर्म वाले हैं; इसे भी आपको मानना होगा। अभी तो आप यह मानते हैं ये पदार्थ सदा रहेंगे, ये नित्य हैं। इस मान्यता को परिवर्तित करेंगे कि नहीं ! ये नाशवान् हैं। सब विनाश को प्राप्त हो जाएँगे। भूमि, सूर्य, चन्द्रमा आदि नित्य दिखाई देते हैं। आप पुनः कहेंगे कि नहीं ! भूमि, सूर्य आदि ऐसा कोई पदार्थ नहीं है जो नाशवान् न हो और अनुमान-प्रमाण, शब्द-प्रमाण से आप शत-प्रतिशत आने वाली उस विनाश की अवस्था को देखने का प्रयास कर रहे हैं या देखते हैं। इन बातों के करने से परमात्मा, जीवात्मा को अपनी ओर से विशेष ज्ञान देता है और असम्प्रज्ञात समाधि लगवाकर अपना साक्षात्कार करवा देता है।

आप आत्मनिरीक्षण किया करें। आप ये जो बातें सुन रहें हैं, इनका ध्यान में बैठकर मनन करें। पुनः निर्णय करें कि वास्तव में ये बाधाएँ हमने खड़ी कर रखी हैं। इन साधनों को हम प्रयोग में नहीं लाते। ध्यानावस्थित होकर निर्णय करो, पुनः आप प्रयासशील हो जाओ, तब परिणाम सामने आएगा। इस बात के लिए ईश्वर तो सुसज्जित, तैयार है। वह यह चाहता है कि ये मेरे जीवात्मा बेटे = पुत्र, ये सब ऐसी स्थिति में आ जाएँ। वह चौबीसों घण्टे यही चाहता है और कुछ नहीं चाहता। परन्तु आप अपने-आपको ऐसा नहीं बना रहे हैं तब ईश्वर क्या समझता होगा ?

साधक ३ – अज्ञानी है, मूर्ख है।

स्वामी जी – मूर्ख होता हुआ अपने को पण्डित मानता है। वहाँ पर यह बात खड़ी है। वह कौन है ? आप ही हैं। आप यह न सोचना कि जो नगर में रह रहे हैं, वे मूर्ख हैं, मैं नहीं। कई बार उपदेश सुनते रहने वाले व्यक्ति अपने ऊपर लागू नहीं करते। वे कहते हैं – हाँ ! संसार के लोग ऐसे ही हैं। इसलिए पहले अपने आप को लो। अपने ऊपर लागू करके देखो तब पता चलेगा कि सारी गड़बड़ तू ही कर रहा है।

तो ये बातें है योगी बनने-बनाने की। आपके समक्ष जब पूरे लौकिक उद्देश्यों में से कोई नहीं रहेगा या यह कहो कि वे प्रयोजन दुःख रूप बन जाएँगे तब ईश्वर आपको सहायता देगा। दो बातें हैं – एक तो लौकिक उद्देश्यों को सुख समझकर छोड़ देना और दूसरा दुःख समझकर छोड़देना। क्या समझ में आया ? अन्तर बताइए –

साधक ३ – यह स्थिति ठीक है साधनों को दुःख रूप मानकर छोड़ देना।

साधक १ – सुख रूप समझकर छोड़ देना।

स्वामी जी – सुख रूप समझकर छोड़ देना, यह एक स्थिति है और दुःख रूप समझकर छोड़ देना, दूसरी स्थिति है। पहली स्थिति है जैसे कि आप कहेंगे – स्वामी जी पुनः पुनः कह रहे हैं,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri
इतना बल लगा रहे हैं तो भले ही संसार में सुख है किन्तु मैं इनके कहने से छोड़ ही देता हूँ। क्या समझ में आया? यह व्यक्ति संसार को सुख रूप ही मान रहा है; यह पहली स्थिति है। दूसरी स्थिति में वह स्वयं संसार को दुःख रूप देख रहा है। अतः उसको छोड़ने के लिए कोई कहे इसकी कोई अपेक्षा नहीं है। कोई संकोच नहीं है, स्वाभाविक रूप से छोड़ने को तैयार है क्योंकि कोई भी दुःख को ग्रहण नहीं करना चाहता। यदि आप सुख समझकर छोड़ते हैं तो विवेक-वैराग्य नहीं माना जाएगा और ईश्वर आपको नहीं अपनाएगा किन्तु दुःख समझकर छोड़ देते हैं तो विवेक-वैराग्य माना जाएगा और ईश्वर आपको स्वीकार कर लेगा। अब विराम ॥

६३ आत्मनिरीक्षण

चित्तस्थिति : आषाढ़ कृ. ११/२०६०-२५/७/०३

अब आप अपना आत्मनिरीक्षण सुनाएँ।

साधक ८- दिन में क्षोभ वृत्ति को उठाया और शेष दिनचर्या अच्छी रही।

स्वामी जी - वृत्ति का उठाना और तत्काल रोक देना; यह व्यक्ति का एक प्रमुख कार्य है। यदि ऐसा नहीं करेंगे और आलस्य प्रमाद होगा तब लौकिक वृत्ति इतनी बढ़ जाएगी कि आपके बनाए हुए स्तर को नष्ट कर देगी; यह परिणाम होगा। अतः क्षण भर भी आप असावधान नहीं रह सकते। आप अपने मन, इन्द्रियाँ, शरीर, सब पर दिनभर अधिकार रखें।

एक है योगी व्यक्ति का जीवन और दूसरा है भोगी व्यक्ति का जीवन। इन दोनों में आकाश-पाताल जैसा अन्तर रहता है। योगी का मन, वाणी, शरीर, इन्द्रियाँ, इनका ज्ञान, इनको पकड़ने की प्रवृत्ति, सावधानी आदि विशिष्ट होते हैं जो कि उसे लौकिक व्यक्ति से पृथक् करते हैं। आपने यह सुना कि ईश्वर-प्रणिधान दिनभर रखना है तब यदि क्षणभर भी असावधान हो जाएँ तो ईश्वर-प्रणिधान नहीं रहेगा। ईश्वर से सम्बन्ध कट जाएगा और ईश्वर में जो प्रीति, भक्ति थी; वह भी हट जाएगी। आप लौकिक पदार्थों की भक्ति में, उपासना में लग जाएँगे। यह तत्काल होगा। क्षणभर भी आप इससे बच नहीं सकते। यदि मन की स्थिति ऐसी बना रखी है कि जब चाहे रोक दें तब तो तत्काल उसको रोककर ईश्वर की ओर लगा लेंगे, अन्यथा मन पर इतना नियन्त्रण, इतना अधिकार नहीं कर रखा है तो स्थिति ऐसी भी बन जाएगी कि मन को कुछ खुला छोड़ा और संसार में विचरने लगे। पुनः देखेंगे ईश्वर-प्रणिधान की भी स्थिति बिगड़ी हुई है। अब लम्बे काल तक पूरे बल से परिश्रम करेंगे तब इस पर नियन्त्रण हो पाएगा।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मैं जो ईश्वर-प्रणिधान का, उपासना का प्रयोग करता हूँ, विशेष घटना को छोड़कर, वह ऐसा रहता है जैसे कि पहाड़ की चोटी पर कोई व्यक्ति कार को चलाता हुआ कार पर सदैव नियन्त्रण रखता है। दिनभर मन पर ऐसा नियन्त्रण रखना पड़ता है। एक दृष्टि से देखो तो कितना कष्ट होता होगा? क्या समझ में आया? आपको ऐसा करना पड़े तो कैसा लगेगा?

साधक ८ – प्रारम्भिक अभ्यासी के लिए तो कठिन पड़ेगा किन्तु जिसने इसके लाभ का अनुभव कर लिया है उसके लिए सरलता रहेगी।

स्वामी जी – वहाँ तो स्थिति यह है, यदि ईश्वर को छोड़ा जाए तो क्लेशों को भोगो और ईश्वर को पकड़े रहो तो क्लेशों से मुक्त रहो। अर्थात् ईश्वर को छोड़ दिया जाए तो अज्ञान में गोते, अधर्माचरण, कुसंस्कार, मन, इन्द्रियों का आत्मा पर अधिकार वाली स्थिति रहेगी और ईश्वर से आबद्ध रहने पर ज्ञान में विचरण, धर्म, सत्याचरण, सुसंस्कार, मन इन्द्रियों पर आधिपत्य रहेगा। ऐसी स्थिति बनती चली जाएगी। ईश्वर के साथ रहने पर ये सारी उपलब्धियाँ और न रहने पर उलटी आपत्तिजनक अवस्थाएँ आती हैं। अब आप देखो कैसा अनुभव करोगे?

साधक ८ – स्वामी जी! कल आपने एक बात कही थी कि निमित्त हट जाने से ये सारी हानियाँ होती हैं। अर्थात् ईश्वर हमारा निमित्त है, उससे हमारा सम्बन्ध कट जाए तब ज्ञान-विज्ञान मिलना बन्द हो जाएगा।

स्वामी जी – व्यक्ति जब इन उपलब्धियों को और ईश्वर को छोड़ने से प्राप्त आपत्तियों को अच्छी तरह समझ जाता है तब वह पुनः ईश्वर को नहीं छोड़ता।

साधक १ – इसी के साथ अनित्यता वाली स्थिति भी बनी रहती है?

स्वामी जी – हाँ! बनी रहती है। परन्तु वस्तुओं का प्रयोग करते हुए भी, यदि थोड़ी- सी असावधानी हुई तो अनित्यता भंग हो जाएगी। जैसे कि हमको कमरे में किसी की ध्वनि सुनाई दी और हमने ध्वनि के साथ-साथ उस ध्वनि वाले व्यक्ति को अनित्य नहीं देखा ...।

साधक १– लेकिन ईश्वर से जुड़े हुए हैं।

स्वामी जी – उसी में अन्तर आता है। जो व्यक्ति बोल रहा है उसकी आकृति या कोई भी घटना सामने नहीं आने देनी है। यदि मन पर से थोड़ा-सा नियन्त्रण हटा तो व्यक्ति की आकृति दिखाई देने लगेगी।

साधक १– पुनः ईश्वर से सम्बन्ध कमजोर हो जाएगा?

स्वामी जी – हाँ! व्यक्ति की ओर आकर्षण बढ़ता है और ईश्वर की ओर से मन्द होता है। इसलिए हम इन वस्तुओं को अनित्य देखते हुए इनका प्रयोग करते रहते है। यह मानकर कि ये वस्तुएँ हैं और ये अनित्य हैं और हम इनका प्रयोग कर रहे हैं। इसमें कोई बाधा नहीं आती है। यदि आप ऐसा न देखकर इसके विपरीत नित्य देखते हैं तब विरुद्ध ज्ञान उत्पन्न होने लगेगा। आप प्रयोग करके देख सकते हैं।

साधक ८ – स्वामी जी! प्रलयावस्था आवश्यक है या नित्य को नित्य और अनित्य को अनित्य देखने का अभ्यास करना पर्याप्त है।

स्वामी जी – आप समझे नहीं। जो तीन बीस हैं, वही साठ हैं। क्या समझ में आया?

साधक २ – एक ही बात है।

साधक ८ – हाँ! स्वामी जी! एक ही बात है।

स्वामी जी – और क्या है! विद्या का नित्य-अनित्य एक विभाग है। इसमें नित्य को नित्य

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और अनित्य को अनित्य जानना होगा। ये आमने-सामने ज्ञान की स्थितियाँ हैं। जब उलटा ज्ञान होगा तब व्यक्ति अनित्य को नित्य और नित्य को अनित्य जानेगा।

अभी हम आगे नहीं बढ़े हैं, पहला ही भाग छेड़ा है। हम इसी का तो दृष्टान्त देते हैं - पता तब चलेगा जब दाल को दबाल कहूँगा। आ गया समझ में? आपकी स्थिति कुछ अच्छी है, गंभीरता बनाई है वह बिगड़ न जाए, आप भी अधिक हँसने लग जाएँ, बाह्यवृत्ति हो जाए; इनका भय रहता है। इसलिये हँसी आदि की बातें कम करता हूँ। वैसे लोगों को तो रोचक बना-बनाकर सुनाना ही पड़ता है। परन्तु आप अधिक में ऊब न जाएँ, इसलिए आपको भी कुछ सुना देता हूँ।

योगदर्शन में विद्या और अविद्या का वर्णन चार भागों में किया है। यह अविद्या और विद्या का प्रसंग पूरे ईश्वर, आत्मा और प्रकृति तक जाता है। अब देख लो आप! जब इसमें अनित्य की बात छेड़ेंगे तो इतना हो सकता है कि पहले शरीर तक ग्रहण करें। जब शरीर अनित्य सिद्ध हो जाए तब पुनः जंगल-पहाड़ को लो। वह हो जाए तब पुनः पृथ्वी को, पुनः तन्मात्र को, पुनः इन्द्रियों को, पुनः अंहकार को, पुनः महत्तत्त्व पर पहुँचो। महत्तत्त्व पर जाकर सत्त्व, रज, तम पर चले जाओ। ऐसे यह क्रम प्रकृति तक जाएगा। ऐसे व्यक्ति चक्कर काटता है। यह एक-दो दिन की बात नहीं है, वर्षों तक का चक्कर है। उसी को बनाए रखो, टूटने नहीं दो। बनाए रखो। तब जाकर ये जो जन्म-जन्मान्तर के उलटे संस्कार हैं और जो इस जन्म के उलटे संस्कार हैं उनको हम निर्बल बना पाते हैं। इन संस्कारो को कोई बैठे-बैठे निर्बल बनाना चाहे तो ऐसा नहीं हो सकता। कोई पढ़ने-लिखने मात्र से इनको निर्बल बना लेता हो, ऐसा भी नहीं हो सकता। इसके लिए तो दिनभर युद्ध करना पड़ता है।

लगभग पचपन-अट्ठावन वर्ष हो गए। आज आयु के अनुसार लगभग छिहत्तरवाँ वर्ष चल रहा है और लगभग अठारहवें या उन्नीसवें वर्ष की अवस्था में इस गवेषणा को आरम्भ किया था। इतने वर्ष हो गए इसके ऊपर अत्यन्त परिश्रम करते-करते। दिन-रात इसी में लगे रहे तब ये स्थितियाँ उत्पन्न हुईं कि आज आँख खोलकर भी हम अपने मन पर नियन्त्रण कर सकते हैं। दिनभर चलते-फिरते ईश्वर-प्रणिधान में, समाधि में रह सकते हैं।

साधक १ – अट्ठावन वर्ष के लगभग।

स्वामी जी – हाँ! यह देख लो इतने वर्ष हो गए। अभी भी स्थिति यह है कि हम इन गुणों से प्रभावित होते हैं। जैसे कि हमारे शरीर, इन्द्रिय और मन में तमोगुण हैं और इनसे हम प्रभावित होते हैं। निद्रा आएगी। स्वप्न अवस्था में मन पर हमारा अधिकार नहीं होता। रुग्णावस्था में दबाव पड़ता है। थोड़ी-सी असावधानी हुई तो जो बचे हुए पुराने संस्कार हैं, वे उभर जाते हैं। यदि हम ईश्वर के साथ जुड़े नहीं रहे तो ये सत्त्व गुण, रजो गुण, तमो गुण अब भी हमको प्रभावित कर सकते हैं। यदि हम ईश्वर के साथ जुड़े रहते है तब उन संस्कारों और इन गुणों को दबाए रखते हैं।

आपने जो पूछा था कि इन गुणों के प्रभाव को आप कैसे रोकते हैं, इन पर नियन्त्रण कैसे करते हैं तो उसका उत्तर यही है। उसका उपाय यह है कि साधक पहले प्रलयवत् अवस्था बनाता है। उससे सत्त्वगुण-प्रधान स्थिति हो जाती है। सत्त्वगुण-प्रधान हो जाने पर यद्यपि इतना अच्छा लगता है, बहुत अच्छा लगता है, जैसे इस अवस्था को छोड़ना ही नहीं चाहिए। अच्छी शान्ति की अनुभूति होती है। परन्तु साधक देखता है कि यह जो शान्ति है, यह तो सत्त्वगुण का स्वभाव है, प्राकृतिक स्थिति है; यह नहीं चाहिए। हटाओ इसको। हमको तो परमात्मा का सान्निध्य चाहिए। इस प्रकार जब अपने-आपको ईश्वर के साथ जोड़ देते हैं तब सत्त्वगुण पर अधिकार कर लिया जाता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – तो अभी ईश्वर उपलब्ध नहीं है।

स्वामी जी – हाँ ! साधक अब उसकी खोज करेगा। वह यह कहेगा कि मैं जहाँ तक पहुँचा हूँ यह प्रकृति है, ईश्वर नहीं है। यद्यपि जब तक ईश्वर उपलब्ध नहीं है तब तक सत्त्वगुण काम देता ही है परन्तु वह उसका लक्ष्य नहीं है। वह तो बीच का मार्ग है। वह उससे सन्तुष्ट नहीं है। इसलिए इस सत्त्वप्रधान एकाग्रता की स्थिति में जप करके ईश्वर तक पहुँचेगा। जब पहुँच जाएगा तब उसकी स्थिति दूसरी हो जाएगी। तब वह जान जाएगा कि ईश्वर के साथ आबद्ध होने से यह स्थिति उपलब्ध हुई है।

साधक १ – स्वामी जी ! दग्धबीज भाव अवस्था प्राप्त करने में और कितना समय लगेगा। पहले आपने एक बार पूछने पर दो वर्ष का समय बताया था।

स्वामी जी – इसको और गवेषणा करने के पश्चात् बता सकूँगा। अभी संस्कारों की क्या स्थिति है? कब-कब, कौन-कौन-से संस्कार उद्बुद्ध हो जाते हैं? ये ऐसे ही होते हैं जो होते हुए भी सामान्य स्थिति में दिखाई नहीं देते हैं किन्तु तमोगुण के बढ़ जाने पर या स्वास्थ्य के दुर्बल होने पर दिखाई देने लगते हैं। इसलिए पूरी तरह से परीक्षण किए बिना अभी निश्चित नहीं बता पाऊँगा।

साधक १ – स्वामी जी ! नया मिथ्या ज्ञान तो नहीं बन रहा होगा?

स्वामी जी – क्या-क्या?

साधक १ – एक तो होते हैं पुराने मिथ्या ज्ञान के संस्कार, जो मन के अन्दर पूर्वतः विद्यमान रहते हैं और दूसरे नए-नए उत्पन्न होते रहते हैं; ऐसी स्थिति तो नहीं है?

स्वामी जी – नये मिथ्या ज्ञान का मैं विचार करूँगा। एक तो यह साधारण मिथ्या ज्ञान है जो व्यवहार में प्रायः होता रहता है जैसे कि किसी वृक्ष को दूर में या कुछ अंधेरे में मनुष्य समझ लेते हैं अथवा जैसे कि यहाँ कोई चिकनी-लम्बी वस्तु हाथ लग गई हो तो हमने मान लिया साँप ही है। क्या समझे? ऐसा तो व्यवहार में होता रहता है। आपका अभिप्राय इससे भिन्न होना चाहिए। इसलिए पहले उसका कोई उदाहरण लेना होगा। पुनः नये मिथ्या ज्ञान का पता चल सकेगा।

साधक ५ – ऐसा जो कि मोक्ष में बाधक हो?

स्वामी जी – कई बार नया मिथ्या ज्ञान होता है वह संस्कारों के बल पर होता है और दूसरा आप जो विभाजन कर रहे हैं कि संस्कारों के बल पर नहीं होता, वह और कौन-सा हो सकता है? आपकी परिभाषा के अनुसार नये मिथ्या ज्ञान का उदाहरण ढूंढना पड़ेगा।

साधक ५ – ऐसा है स्वामी जी ! ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों के स्वरूप के विषय में कभी मिथ्या ज्ञान हो जाए?

स्वामी जी – हो जाए तो वह भी संस्कारों के ही बल पर तो होगा?

साधक ५ – एक तो वह पक्ष हो गया।

स्वामी जी – उसे हमने छोड़ रखा है।

साधक ५ – और नए रूप में।

स्वामी जी – नए रूप में कैसे होगा? उसका पहले उदाहरण बनाना पड़ेगा।

साधक ५ – जैसे कि आप पहले योगदर्शन के तत्परम् पुरुषख्यातेः सूत्र में पुरुष शब्द का अर्थ ईश्वर करते थे। अब उसका अर्थ जीवात्मा करते हैं। यदि अभी वाले को सत्य मानेंगे तो पहले वाला मिथ्या ज्ञान कहलाएगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – यही तो देखना पड़ेगा कि मिथ्या ज्ञान कहाँ हो रहा है। जो हो रहा होगा उसका कोई उदाहरण तो होगा ही। अब आज जो स्थिति चल रही है उसमें ऐसी कोई क्रिया देखनी पड़ेगी जिसका कारण नया मिथ्या ज्ञान बना हो। इनके कथनानुसार तो आज कोई मिथ्या ज्ञान हो रहा है, इसको पकड़ना होगा। यद्यपि बीच के काल में स्वास्थ्य की बाधा होने पर पर्याप्त समय गया, हानि हुई। शारीरिक हानि हुई और योगाभ्यास में जो बल लगना था उसकी हानि हो गई। लम्बे-लम्बे काल तक दो बार आक्रमण हुआ इससे पर्याप्त हानि हुई। यदि कल्पना करें वैसा न हुआ होता तो बहुत बलपूर्वक, बहुत परिश्रम करके इन संस्कारों को मारने में पर्याप्त उपलब्धि हो सकती थी।

साधक १ – स्वामी जी ! आजकल नए-नए प्रयोग चलते रहते हैं तथा नई-नई अनुभूतियाँ आपको आगे की होती रहती है अथवा क्या रहता है ?

स्वामी जी – नई का अभिप्राय ?

साधक १ – जैसे कि ईश्वर अनन्त ज्ञान वाला है तो उसके विषय में कोई विशेष अनुभूति होती होगी ?

स्वामी जी – नई-नई अनुभूति का अभिप्राय होता है दृष्टिकोण में परिवर्तन। जैसे कि ईश्वर सर्वव्यापक है परन्तु अब तक इसको हम जिस स्थिति में देख रहे थे, वह साधारण स्थिति थी। उसमें यह न्यूनता थी कि अनुभूति में तिरछापन था। सीधा अनुभव वह नहीं था। अब वह स्थिति आ गई है। जैसे कि शरीर में यहाँ (हृदय = ग्रीवा के नीचे ओर दोनों स्तनों के मध्य भाग) पर ईश्वर भी है और हम भी हैं। यदि हम इस स्थान (मध्य भाग) से थोड़ा-सा हट गए अर्थात् ईश्वर से हटकर मध्य भाग के ऊपर आ गए तो तिरछा हो गया।

साधक १ – सर्वव्यापक ईश्वर से हटकर ?

स्वामी जी – हाँ ! तिरछा का अभिप्राय है ईश्वर से जैसा सीधा सम्बन्ध होना चाहिए वैसा नहीं रहना। अर्थात् हृदय के मध्य भाग में स्थित ईश्वर से हटकर जब थोड़ा ऊपर आ जाते हैं तो तिर्यकपन की अनुभूति होती है। ऐसे लगता है जैसे ईश्वर को कोने में देख रहे हैं। यद्यपि उस समय भी ईश्वर के साथ परम्परा से हमारा सम्बन्ध जुड़ा हुआ रहता है। परन्तु जैसा सीधा सम्बन्ध होना चाहिए वैसा नहीं रहता। पुनः हम क्या करते हैं ? इस सम्बन्ध को, जो ढीलेपन के कारण टेढ़ा हो गया था, उसको प्रयत्न करके सीधा कर लेते हैं।

उस सीधे सम्बन्ध में वृद्धि अर्थात् अधिक स्पष्ट अनुभूति होना और स्पष्ट अनुभूति का काल बढ़ जाना आदि स्थितियाँ रहती हैं। पहले स्थिति बनाने में अधिक काल लगता था और वह बनी हुई स्थिति शीघ्र हट जाती थी तथा उसी स्थिति में रहते हुए भी सम्बन्ध ढीला होता था।

साधक १ – सीधे सम्बन्ध वाली स्थिति समाधि की है ?

स्वामी जी – हाँ ! ये समाधि की है और उसमें क्या है आपको बतलाऊँ।

साधक १ – वह थोड़ी दूर वाली है ?

स्वामी जी – नहीं, दूर वाली वह स्थिति है जिसमें सीधेपन में हमारी अनुभूति ईश्वर के विषय में कम पड़ गई और उसमें बाधा दिख रही हो। जैसे कि अभी ईश्वर यहाँ हृदय प्रदेश में उपस्थित है और हम यहाँ से थोड़े ऊपर हैं तो यहाँ से हमको ईश्वर का अनुभव तो हो रहा है। परन्तु सीधा अनुभव नहीं हो पा रहा है। अतः सीधे अनुभव से, इस अनुभव की स्थिति में भेद हो गया है।

साधक १ – अभिप्राय – समाधि की स्थिति उसको कहेंगे जिसमें सीधा अनुभव है ?

स्वामी जी – तो पहले की स्थिति में भी यदि हम सारी वृत्तियों को रोक देते हैं तो ऊँचे वैराग्य

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की स्थिति में चले जाते हैं। पुनः ऊँचे वैराग्य की स्थिति में विशेष प्रयत्न करके सीधा अनुभव बना लेते हैं। इसलिए वह भी ऊँची स्थिति है और उसमें यह भाव बना रहता है कि ईश्वर सर्वव्यापक है। क्या समझे ?

साधक १ – पहली स्थिति में भी ईश्वर सर्वव्यापक है, यह भाव बना रहता है।

स्वामी जी – सर्वव्यापक है और ईश्वर में यह संसार डूबा हुआ भी है।

साधक १ – यह भाव भी बना रहता है।

स्वामी जी – इसके साथ वह ज्ञान (ईश्वर सामने है) ज्यों का त्यों बना रहता है। अच्छा ! सीधी जैसी अनुभूति होती है वह भी ऐसी ही होती है जैसे कि यहाँ हमारी किसी व्यक्ति से बात करते समय होती है।

साधक १ – स्वामी जी ! यह सीधी वाली अनुभूति भी तो हृदय प्रदेश में होती होगी ?

स्वामी जी – हाँ ! मुझे तो हृदय प्रदेश में होती है।

साधक १ – परन्तु दूर वाली अनुभूति तो अप्रत्यक्ष कहलाएगी ?

स्वामी जी – न ! जो दूर वाला सम्बन्ध होता है वह भी यहीं पर होता है। उसमें केवल इतना अन्तर होता है उसकी कोने जैसी स्थिति बनती है और थोड़ी-सी मन्द होती है। उस स्थिति में जब कि अनुभूति मन्द पड़ती दिखाई देती है, तब झट ईश्वर से सीधा सम्बन्ध जोड़ दिया जाता है। कालान्तर में इस सीधे सम्बन्ध वाली स्थिति में वृद्धि हो जाती है। इसमें ऐसा भी होता था एक आकाशवत् बन्धन रहित अवस्था दिखाई देती थी और सत्त्व आदि गुणों पर भी आधिपत्य बहुत कुछ रहता था।

साधक १ – यह विशेषताएँ दोनों स्थितियों में रहेंगी।

स्वामी जी – एक और कार्य शेष रह जाता है, वह यह कि जो सीधा सम्बन्ध हट जाता है उसको बनाते रहना पड़ता है।

साधक १ – केवल सीधा सम्बन्ध बनाना पड़ता है।

स्वामी जी – सीधा सम्बन्ध बनाने के साथ और भी बातें होती हैं जैसे, "अब मैं ईश्वर का अनुभव कर रहा हूँ" इस अनुभूति की मात्रा का बढ़ जाना, यह ईश्वर से सीधा सम्बन्ध बन जाने पर होता है। अच्छा ! जो यह कहते हैं कि – हे ईश्वर ! आप सब कुछ जानते हैं, यह बात सीधा सम्बन्ध जोड़कर करते हैं। एक अन्य स्थिति जिसमें प्रलयवत् अवस्था तो ज्यों की त्यों बनी रही, पर वह जो सीधा सम्बन्ध था, थोड़ा हट गया। वह स्थिति किन्हीं कारणों से थोड़ी हटी तो उसे थोड़े काल में पुनः बना लेते हैं, कभी अधिक काल भी लग जाता है। ईश्वर के विषय में और भी बातें हैं जो समय-समय पर मैं बताता रहता हूँ।

साधक १ – स्वामी जी ! जब-जब नई अनुभूति आए तब-तब बताते रहिएगा।

स्वामी जी – आज कल जो ये मैं बताता रहता हूँ ज्ञान-कर्म-उपासना, इनकी मैंने बहुत खोज की है। इसकी जो शुद्ध और अशुद्ध दो धाराएँ चलती हैं इनका बहुत परीक्षण किया है पहले की अपेक्षा आज भी इसका बहुत सूक्ष्मता से परीक्षण करता रहता हूँ। ये जो शुद्ध और अशुद्ध ज्ञान, शुद्ध और अशुद्ध कर्म, शुद्ध और अशुद्ध उपासना; ये कैसे तीव्रता से परिवर्तित होते हैं और बिना परीक्षा किए कैसे हम इनका प्रयोग कर लेते हैं ? ये सब मैंने आपको विशेष मन्थन करके सुनाए हैं। अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६४ यज्ञीयोपदेश

ईश्वर ही सर्वस्व : आषाढ़ कृ. १२/२०६०-२६/७/०३

ईश्वर उपासना को, योगाभ्यास को, ईश्वर भक्ति को समस्त कार्यों से महान् मानना चाहिए। हम जो-जो उत्तम कार्य करते हैं जैसे कि विद्या पढ़ते हैं, शरीर को स्वस्थ बनाते हैं, गृहस्थ लोग न्याय से धन कमाते हैं। ये सब उत्तम कार्य हैं परन्तु ईश्वर की भक्ति, उपासना, योगाभ्यास इन सबसे उत्तम है क्योंकि ये ईश्वर-भक्ति के साधन हैं।

शरीर को स्वस्थ और बलवान् बनाओ। क्यों? ईश्वर प्राप्ति के लिए। विद्या पढ़ो-पढ़ाओ। क्यों? ईश्वर प्राप्ति के लिए। समाज-राष्ट्र की रक्षा, सेवा करो। क्यों? ईश्वर प्राप्ति के लिए। न्याय-पूर्वक धन कमाकर अच्छे कार्यों में लगाओ। क्यों? ईश्वर प्राप्ति के लिए। यह वैदिक दृष्टि है, वैदिक मान्यता है।

आप देखेंगे, समझेंगे या प्रयोग करेंगे तब पता चलेगा जैसे कि कुछ लोग कहते हैं - हम समाज, राष्ट्र की सेवा कार्य करते हैं। हमारी तो यही भक्ति है, यही उपासना है। प्रायः लोग ऐसा कहते और मानते हैं। वस्तुतः ईश्वर-भक्ति, ईश्वरोपासना का अभिप्राय समझे बिना, ऐसा कहा या माना जाता है। क्योंकि जब व्यक्ति अच्छी प्रकार से विधिपूर्वक ईश्वर-भक्ति करता है तब उसको सुख, शान्ति, बन्धन-रहित स्थिति की उपलब्धि होती है। उस समय वह व्यक्ति समाज का, राष्ट्र का या विश्व का जैसा और जितना उपकार करता है वैसा और उतना उपकार दूसरा व्यक्ति कभी नहीं कर पाता है। ईश्वर-भक्ति से व्यक्ति में यह योग्यता आती है।

निष्काम भावना से दूसरों की सेवा करने से व्यक्ति ईश्वर का उपासक बनता है। ईश्वर की उपासना करने से व्यक्ति अन्यों का, दूसरों का महान् उपकार करता है। ऐसा उपकार दूसरा व्यक्ति नहीं कर सकता।

अच्छा ! कर्म के क्षेत्र में आपकी क्या स्थिति रहती है, परीक्षण के लिए आपसे पूछा जाता है। आप अपना-अपना अनुभव बताएँगे कि आप जो कुछ कार्य करते हैं, उसमें अपना प्रयोजन प्रधान रहता है अथवा दूसरों का अथवा दोनों समान रूप में रहते हैं? हाँ जी ! आप बोलेंगे -

साधक ६ – अपना विशेष परीक्षण तो नहीं कर पाया परन्तु ऐसा लगता है कि समान रूप से ही रहता होगा।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप सुनाए।

साधक ८ – ध्यान नहीं दिया।

स्वामी जी – अच्छा ! आप सुनाएँ -

साधक ४ – अपना प्रयोजन मुख्य रहता है।

स्वामी जी – अपना प्रयोजन मुख्य रहता है। आप सुनाएँ।

साधक ५ – अपना मुख्य रहता है। स्वामी जी !

स्वामी जी – आप सुनाएँ।

साधक ३ – इसमें ऐसा अनुभव में आता है कि अपना भी होता है और अन्यों के लिए करते है। कहीं समानता दिखती है और किसी अंश में अपना अधिक दिखता है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक २ – अपना अधिक दिखता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक १ – कुल मिलाकर अपना अधिक दिखता है।

स्वामी जी – आप बोलेंगे !

साधक ७ – भगवन् ! हमारा जीवन संसार के लिए हो। ये जिन्दगी हो लेकिन उपकार के लिए हो...।

स्वामी जी – यह गीत नहीं सुनाना, परीक्षा देनी है। प्रश्न का उत्तर देना है जिसमें यह बताना है कि समाज का प्रयोजन मुख्य दिखता है या अपना ? वक्ता के तात्पर्य को समझकर उत्तर देने का प्रयास करना चाहिए। आपने परीक्षण नहीं किया है, इसलिए आपको पता नहीं चला। जब आप अपना निरीक्षण-परीक्षण करेंगे तब आपको इसका पता चलेगा। जिन्होंने परीक्षण किया उन्होंने अपना उत्तर दिया। जैसे कि आत्मप्रकाश जी ने कहा कि समान जैसा दिखता है, विशाल जी ने बतलाया कि अपना प्रधान दिखता है, अपने सुमेरु प्रसाद जी ने बताया कि अपना प्रधान दिखता है, आशुतोष जी ने बतलाया कि कभी अपना और कभी दूसरे का प्रधान दिखने की स्थिति आती है और आशीष जी ने बतलाया कि कुल मिलाकर अपना प्रधान रहता है।

जब ऐसे निरीक्षण-परीक्षण के साथ सुधार होता रहता है तब धीरे-धीरे यह परिणाम सामने आता है। उसमें पहले यह स्थिति दिखाई देती है अपना प्रयोजन मुख्य है। पुनः यहाँ से हटाकर इसको इस स्थिति में पहुँचाते हैं कि अपना और दूसरे का सुख समान रूप में हो। ऐसा सन्तुलन बनाया जाता है कि अपना और दूसरों का उपकार समान रूप में हो। जैसी उन्नति हम अपने लिए चाहते हैं वैसी अन्यों की भी होवे; ऐसा मानकर चलते हैं तथा वैसा ही प्रयास करते हैं। जब इस स्थिति में पहुँचते हैं तब इससे ऊँची स्थिति समझ में आती है और ईश्वर-प्रणिधान से वह सिद्ध होगी जिसमें औरों का उपकार करना प्रधान हो जाएगा और अपना उपकार गौण हो जाएगा। जैसे कि योग के क्षेत्र में जो अनुभूतियाँ होंगी, जो सुख मिलेगा, वह अपने लिए गौण तथा अन्यों के लिए प्रधान हो जाएगा। क्या समझ में आया ? दोहरा लो।

साधक ८ – पहले अपनी उन्नति और दूसरों की उन्नति को समान बनाने का प्रयास करेंगे।

स्वामी जी – समान बनाने की स्थिति में पहुँचाने का प्रयास करते रहेंगे। स्वार्थ से टकराते रहेंगे। स्वार्थ से टकराए बिना, समान उन्नति की स्थिति नहीं बनाई जा सकती है।

साधक १ – स्वामी जी ! अपने निर्माण काल में तो मुख्य रूप से अपने ऊपर ही बल लगाएगा ?

स्वामी जी – नहीं। यहाँ समझने की यह बात है कि अपने निर्माण काल में इस पर बल लगाएगा कि औरों का उपकार करना है।

साधक १ – लेकिन वह साथ-साथ तो कर नहीं सकता ?

स्वामी जी – अपने काल में जितना कर सकता है, एक विद्यार्थी के लिए जितना अनुकूल होगा, उतना करेगा। छोटी अवस्था या बहुत वृद्ध होने पर जब हाथ-पैर भी न हिले, उसको भी छोड़ दो। शेष कोई ऐसा काल नहीं होता जिसमें व्यक्ति औरों का उपकार न कर सके।

साधक १ – अर्थात् समान स्तर पर तो नहीं कर सकते।

स्वामी जी – नहीं। चाहना एक वस्तु है; पहले यह समझने की बात है। पहले तो वह यहाँ तक पहुँचेगा कि जितनी उन्नति अपने लिए चाहिए, उतनी ही अन्यों की भी हो। जैसे कि स्वयं ईश्वर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की प्राप्ति कर आनन्द प्राप्त करना चाहता है। ऐसे ही दूसरे के लिए चाहेगा तथा उस काल में जितना उपकार किसी का कर सकता है, उतना करेगा। जैसे कि किसी को पढ़ा देगा, एक निश्चित समय पर उतने अंश में अर्थात् जितने में उसका योगाभ्यास बाधित नहीं होता, सेवा कार्य कर देगा। तब उसकी स्थिति रहती है कि यहाँ जो तैयारी कर रहा हूँ उससे जो मेरा जीवन उन्नत होगा, विद्या में उत्कर्ष होगा, योग विद्या को पढ़ूँगा, ईश्वर साक्षात्कार करूँगा आदि जो कुछ मिलेगा, उसको बिना बदले की भावना के प्राणी मात्र पर लगाऊँगा और अपना समझकर नहीं, ईश्वर का समझकर लगाऊँगा। यह तो उसकी सामान्य स्थिति रहती है किन्तु यही परोपकार की प्रवृत्ति शनैः शनैः इतनी बढ़ जाती है कि उसे रोकने के लिए उसको स्वयं से युद्ध करना पड़ता है। अब क्या समझ में आया?

साधक ३— वह उपकार करना चाहता है परन्तु अभी करेगा तो उसका योगाभ्यास निर्बल हो जाएगा। इसी लिए अपने आपको रोकता है।

स्वामी जी — आपको क्या समझ में आया? परोपकार की प्रवृत्ति इतनी तीव्र होती है कि उसको स्वयं से युद्ध करना पड़ता है। वह कहता है नहीं, अभी मैं परोपकार में लग जाऊँगा तो अन्यों की उतनी उन्नति, उतना भला नहीं कर पाऊँगा जितना कि पूरी तैयारी कर लेने पर कर सकूँगा। अभी तो मुझे इतनी तैयारी करनी है, इतने लोगों को पढ़ाकर तैयार करना है, इतने लोगों में शास्त्रार्थ करके वैदिक धर्म का प्रचार करना है, इतने ग्रन्थ लिखने हैं, इतने विद्यालय खोलने हैं, इतने योगी बनाने हैं। यह सब ऊँची योग्यता बन जाने पर हो सकेगा। यदि अभी से इसमें अधिक बल लगाऊँगा तो उतना उच्च कार्य नहीं हो सकेगा। तब साधारण उपकार होगा। पुनरपि वर्त्तमान में जो कुछ कर सकता है उतना वह करता ही है और निष्काम भावना से करता है। ऐसे इसका सन्तुलन बनाए रहता है।

अब इसका प्रयोग मैंने कैसे किया था वह सुनो! अथवा इस विषय में मेरी जो अनुभूतियाँ हैं उन्हे सुना रहा हूँ। गाँव की घटना है। वहीं वैराग्य की स्थिति प्राप्त हुई। आगे चलते-चलते जब उसमें कुछ दृढ़ता आई। उसी समय सत्यार्थ प्रकाश उपलब्ध हुआ था या नहीं, यह मुझे ठीक से स्मरण नहीं है। सम्भवतः डेढ़ वर्ष के पश्चात् उपलब्ध हुआ था, इतना स्मरण है। तो उस समय की भावना बता रहा हूँ। तब ऐसा लगता था कि यह जो स्थिति मुझे मिली है, ऐसा ही पूरे संसार को बना देना है। यह स्वाभाविक प्रवृत्ति बता रहा हूँ। उस समय जो अन्तः स्थिति होती है उसमें स्वार्थ का लेश मात्र नहीं होता है। तब यही लगता है जिस अवस्था को मैं प्राप्त हुआ हूँ, मेरा जो भला हुआ है यहाँ तक पूरे संसार को पहुँचाना है। जैसे कि सत्यनारायण जी बैठे हैं ऐसे पूरे संसार को यहाँ तक लाना है।

पुनः विचार किया कि यह सब होगा कैसे? मेरी कौन सुनेगा, कौन मानेगा, मैं क्या उपदेश दूँगा? इस प्रकार विचार करने पर लगा कि अभी तो नहीं हो सकता। ऐसे तो नहीं हो पाएगा। उसके पश्चात् जब सत्यार्थ प्रकाश पढ़ा तब पता चला कि यह कार्य इस रूप में हो सकता है परन्तु उसके लिए विद्वान् बनना होगा। इसके लिए छः अङ्ग, छः उपांग, चार वेद, चार उपवेद, ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् पढ़ने होंगे। तब मैंने सत्यार्थ प्रकाश के पाठ्यक्रम से पढ़ने की योजना बनाई कि इस विधि से पहले तैयारी करनी चाहिए। तत्पश्चात् पूरे संसार को यहाँ तक लाया जा सकता है। क्यों जी समझ में आया? जो मैंने यह सन्तुलन बताया अर्थात् ईश्वर-भक्ति से, विशुद्ध उपासना करते समय जो परोपकार का स्तर बनता है वह किसी अन्य स्थिति में नहीं बन पाता। उसमें जो निष्काम स्थिति आती है, वह किसी में नहीं आती।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यद्यपि मेरे पास तब कोई व्यवस्था नहीं थी जिससे कि अध्ययन में पूरा बल लगाता। यदि मुझे पढ़ाई करने के लिए पूरा समय मिल जाता। कहीं से घी-दूध की व्यवस्था हो जाती तो बहुत कुछ कर लेता। एक भानाराम जी थे, वे कभी-कभी थोड़ी सहायता कर देते थे। यद्यपि वे सहायता करना चाहते तो थे किन्तु उतने धनवान् नहीं थे कि घी-दूध अथवा पुस्तकों की व्यवस्था करा सकें। तब गुरुकुल झज्झर में दस रुपये मासिक शुल्क देना होता था और उस पर सूखी दाल-रोटी मिल जाती थी। वे दस रुपये किसी ने मुझे नहीं दिए और मैंने किसी से मांगे नहीं थे। विद्यालय में चालीस-चालीस मिनट की तीन घण्टियाँ मिलती थीं। आगे एक और बढ़ा दी गई। ऐसा चलते-चलते लगभग नौ वर्ष का समय व्यतीत हो गया।

यह सब कहने का अभिप्राय है आपको इस बात पर ध्यान देना है कि ऐसी परिस्थिति में भी मैं योगाभ्यास व ईश्वर की उपासना में लगा रहता था। इसके साथ-साथ औषधालय, गौशाला, पाकशाला के जो कर्मचारी होते थे उन सबको समय निकालकर प्रेरणा देना, उनको ईश्वर भक्ति की बातें बताना, उनके अन्दर विद्या पढ़ने की भावना भरना, जो बिना पढ़े-लिखे होते थे उनको पढ़ने के लिए प्रेरित करना आदि सब करता था।

अच्छा ! इसके अतिरिक्त जो विद्यार्थी वर्ग था जिसमें सभी मुझसे छोटे थे, कोई छः वर्ष, कोई आठ वर्ष इस प्रकार से। उनमें से जो बड़े-बड़े थे जैसे आचार्य सुदर्शन देव जी, राजवीर शास्त्री जी, वेदव्रत जी जो रोहतक में प्रेस चलाते हैं। एक थे जयदेव जी वे पुनः दोबारा नहीं मिले। इन सबको भी यही उपदेश देता था। यद्यपि मैं पढ़ाई की कक्षा में इनसे नीचे था। सम्भवतः अष्टाध्यायी स्मरण करता था।

इन सारे विद्यार्थियों को यही उपदेश करता था कि ब्रह्मचारी रहना है, विद्वान् बनना है, योगी बनना है। विद्यार्थी हो या कर्मचारी हो, यहाँ तक कि खेती करने वाले मजदूर, किसान तक को उपदेश करता था। जो अध्यापक बन गए थे या पढ़ाने लगे थे उनको भी मैं प्रेरणा के रूप में बोलता रहता था। उस समय मैं अपने-आपको इन कार्यों से बलात् रोकता था। इस स्थिति में आप समझ सकते हैं मेरे पास अपने लिए कितना समय था? पुनरपि ये सब करता था।

आपको यह बात समझ में कुछ आई होगी कि जो व्यक्ति इस स्थिति में पहुँचता है अर्थात् ईश्वर की उपासना में रहता हुआ जिसकी ऐसी विचारधाराएँ बनती हैं वही विवेक-वैराग्य को प्राप्त होता है, समाधि में पहुँचता है। महर्षि दयानन्द सरस्वती जी का इस विषय में एक विचार ध्यान देने योग्य है। सम्भवतः स्वलिखित जीवन चरित्र में यह प्रसंग होना चाहिए। आपको उसका भाव सुना देता हूँ। वे लिखते हैं यदि मैं गुजरात में अपने परिवार की ओर चला जाता तो अधिक सम्भावना थी किसी बन्धन में पड़ जाता। यदि वैसा हो जाता तो आज तक जो मैं संसार का उपकार कर पाया, वह नहीं कर पाता। आपको क्या समझ में आया?

जब व्यक्ति सृष्टि को अनित्य, नाशवान् देखता है, भोगों में दुःख समझता, इसका निर्माता-स्वामी ईश्वर को मानता, स्वयं को नहीं और मृत्यु हमारे ऊपर खड़ी है, ऐसा देखता है तब उसके अन्दर संसार के उपकार के लिए जितनी तीव्र भावनाएँ उत्पन्न होती हैं, वे सामान्य अवस्था में नहीं होती हैं। संसार के सुख और सुख के साधन में आकर्षित व्यक्ति इतने ऊँचे स्तर पर उपकार नहीं कर पाता, नहीं पहुँच पाता। चाहे वह कितना ही बड़ा वैज्ञानिक बन जाए। यहाँ तो यह स्थिति होती है कि हमारे पास जो कुछ शरीर, मन, इन्द्रियाँ, नस-नाड़ियाँ, बल-बुद्धि, योगाभ्यास, धन-सम्पत्ति आदि हैं; वे सब ईश्वर के हैं, हमारे नहीं। दूसरी बात, उसको परोपकार करने में, दूसरे की सेवा में आनन्द आता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका कारण है पहले जो उसकी लौकिक प्रवृत्ति थी, स्वार्थ की भावना थी, अपना भला चाहता था, अपने हित के लिए अधिक प्रयास करता था और औरों के लिए कम; इन सबको धक्का दे दिया, उखाड़ दिया। इनका बना रहना बहुत बड़ा दोष है, अतः इनको हटा देता है। उस समय यह सोचता है कि सब कुछ ईश्वर का है और थोड़ी-सी देर का है। पुनः केवल मैं खाऊँ-पीऊँ और दूसरे को न दूँ या कम दूँ; यह कैसे हो सकता है? इसी प्रकार जो राग-द्वेष की भावना थी, उसको भी उखाड़ फेंका।

दूसरी ओर अहिंसा आदि का पालन करते हुए उसने देखा कि दुःखों से छूटता जा रहा हूँ। शान्ति मिलती जा रही है। क्लेशों से मुक्त होता जा रहा हूँ। जब इन स्थितियों का अनुभव करने लगा तब उसे आभास हुआ कि सब कुछ ईश्वर का मानने से ही हुआ। इससे उसकी प्रवृत्ति इस ओर प्रबल हो गई। अन्यथा आप देख सकते है अज्ञानता के कारण, कुसंस्कारों के कारण, लोक को देखकर उसका अनुकरण करने वाला व्यक्ति उलटा सोचता है कि परोपकार करने से अपना नहीं, दूसरों का कल्याण होता है; जबकि ऐसा नहीं है। दूसरों का भला करने से अपना भी भला होता है। ऐसी स्थिति में जो यह सोचता है अपना भला करना मुख्य है अन्यों का हो या न हो; यह अज्ञानता से होता है। अब आप स्वयं को माप लो कि कहाँ पर खड़े हो।

हम जो चाहते हैं कि दुःखों से छूट जाएँ और नित्य आनन्द को प्राप्त करें; इस स्थिति की प्राप्ति इस परोपकार की शैली से ही सम्भव है। इसका और कोई उपाय नहीं है। जो लोक में मान्यताएँ बनी हुई हैं वे योग से टकराती हैं, अनुकूल नहीं पड़ती हैं। अब आपसे पूछ रहा हूँ, आपमें से कितने ऐसे हैं जो ईश्वर की उपासना को सब कार्यों से बड़ा या प्रमुख मानते हैं।

साधक १ – अभी तो पूरा प्रयास ऐसा ही कर रहे हैं।

स्वामी जी – तो कर्म का क्षेत्र आपने सुना, समझा। अब आप थोड़ा-सा आज की सामाजिक स्थिति पर ध्यान देगें। चाहे कोई संस्था, समाज, गुरुकुल या विद्यालय रहा हो किन्तु वहाँ ईश्वर भक्ति नहीं आई, इस रूप में प्रयोग नहीं हुए, तो ऐसा सन्तुलन बिगड़ा कि व्यक्ति एक-दूसरे को मार-काटकर स्वयं को ऊपर स्थापित करने का प्रयास करने लगा। आज पूरे विश्व की यही स्थिति है। अब आपने सोचना है कि हम उन जैसे न बनें। हमें तो ऋषि दयानन्द, महर्षि पतंजलि आदि के समान बनकर समाज और पूरे विश्व को बदलकर रख देना है। हाँ जी!

साधक १ – स्वामी जी! परोपकार करने से जो सुख प्राप्त होता है वह बन्धन का कारण बन सकता है अथवा नहीं?

स्वामी जी – परोपकार करने से जो सुख प्राप्त होता है उसमें यदि राग कर लें तब वह बन्धन का कारण बन जाएगा। वैसे जो सुख-शान्ति मिल रही है तो कोई बात नहीं, उसको हम अपना सुख का विषय नहीं बनाएँगे। उसकी कामना नहीं रखेंगे।

साधक १ – अभिप्राय यह हुआ कि जब तक हमें स्वयं को परोपकार करने से रोकना पड़ रहा है तब तक वह हमें खींच कर ले जा रहा है?

स्वामी जी – खींच कर ले जा रहा है का क्या अभिप्राय है?

साधक १– स्वामी जी! परोपकार करने से अपने-आपको रोकना पड़ता है। इसका कारण हुआ, भावना तीव्र होती है अर्थात् वहाँ पर राग का पुट मानना पड़ेगा।

स्वामी जी – तीव्र भावना केवल राग पक्ष में होती है, ऐसा नहीं है। वैराग्य की स्थिति में भी तीव्रता होती है। वहाँ जो परोपकार की भावना है वह एक ऊँचा स्तर है, ईश्वर से प्राप्त

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-विज्ञान से बना है अतः उस समय निष्काम भावना ही रहती है। सकाम भावना नहीं रहती है। इसलिए मैं आपको सुना रहा था कि उस स्तर वाले योगाभ्यासी को उस काल में अपने-आप को परोपकार से बलात् रोकना पड़रहा है।

साधक १ – जब बलात् रोकना पड़रहा है तो यह वशीकार की स्थिति तो नहीं रही।

स्वामी जी – मैं बताता हूँ आपको। वशीकार संज्ञा का जो स्तर है, वह इससे भिन्न है। उसकी उपलब्धि बहुत पहले हो चुकी है। उस समय बलात् नहीं रोक रहा था। वहाँ तो हेयोपादेयशून्या स्थिति बना चुका है। अब इसके आगे इसको पर्याप्त उपलब्धियाँ हुई हैं और इनको वह अन्यों को देना चाहता है, तब की बात है।

अब यह विचार करता है कि मैं यदि अभी इतनी योग्यता में ही परोपकार के लिए उतर गया तो उतना उपकार नहीं कर पाऊँगा जितना कि व्याकरण, दर्शन आदि का विद्वान् बनकर किया जा सकता है। मुझे यह जो समाधि का सुख प्राप्त है, यह देना तो चाहिए परन्तु विद्वान् बनकर देना चाहिए। यह स्थिति होती है, इसलिए वह स्वयं को रोकता है। अब विराम की ओर चलते हुए गायत्री मन्त्र का पाठ करेंगे।

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ अब विराम॥

६५ क्रियात्मक योगाभ्यास

व्याप्य-व्यापक : आषाढ़ कृ. १२/२०६०-२६/७/०३

आप में से **ईशा वास्यमिदं** इस मन्त्र का अर्थ किस-किस को आता है? आपको आता है?

साधक ६ – आता है। प्रायः पूरा विचार नहीं किया।

स्वामी जी – सीधा बोलो कि नहीं आता। पूरा नहीं आता, यह आप बोल सकते हैं।

साधक ८ – पूरा नहीं आता।

स्वामी जी – और आप सुनाओ –

साधक ७ – **ईशा** परमात्मा का नाम है। **वास्यं** आच्छादित है।

स्वामी जी – ऊँचा बोलो।

साधक ७ – **इदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्** यह सारा जगत् परमपिता परमात्मा से अच्छादित है। वह संसार के अन्दर भी विद्यमान है। **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा** उत्पन्न हुए पदार्थों का हमको त्याग भाव से उपभोग करना चाहिए। **मा गृधः कस्य स्विद्धनम्** यह धन किसका है अर्थात् परमपिता परमात्मा का है। हमको उसके दिए पदार्थों का यथायोग्य त्याग भाव से उपभोग करना चाहिए।

स्वामी जी – हाँ जी! आप इसमें कुछ नया जोड़ेंगे? क्या कुछ समझ में आया?

साधक ४ – यहाँ जो **कस्य स्विद्धनम्** है उसका अर्थ यह सारा पदार्थ मात्र और सम्पत्ति मात्र है। वह सारा 'कः' प्रजापति स्वरूप परमेश्वर का है। यह अर्थ भी लेना चाहिए।

स्वामी जी – अच्छा! इन्होंने कहा 'कः' शब्द का अर्थ एक पक्ष में ईश्वर लेंगे। दूसरे पक्ष में 'कः' का अर्थ है 'कौन'। जब प्रश्न वाचक बनता है तब ईश्वर नहीं बनेगा। तब **कस्य स्विद्धनम्**

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का एक अर्थ हुआ किसी के धन की अन्याय से इच्छा मत करो। क्या समझ में आया?

साधक ७ – दूसरे के धन की अन्याय से इच्छा मत करो।

स्वामी जी – और दूसरा क्या था?

साधक ३ – एक यहाँ प्रश्न किया है। **स्विदिति प्रश्ने वा** यह धन किसका है। अपने-आप उत्तर आ गया यह धन ईश्वर का है।

स्वामी जी – और इसके साथ क्या जोड़ा गया? यह ईश्वर का है; यह जोड़ा गया। और जोड़ा कि किसी के धन की अन्याय पूर्वक इच्छा मत करो। हाँ जी! आप बोलो –

साधक २ – यह सारा संसार ईश्वर के द्वारा आच्छादित है। इस कारण से **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा** उसका मानकर स्वार्थ भावना का त्याग करके सेवन करना चाहिए या सेवन करो। **मा गृधः कस्य स्विद्धनम्** यह किसी और का धन नहीं है, उस प्रजापति का धन है। इसलिए दूसरों के धन के प्रति लोभ मत करो।

स्वामी जी – अच्छा! अब आप सुनाएँगे –

साधक ५ – जगत् में जो कुछ भी पदार्थ हैं वे सभी पदार्थ ईश्वर के द्वारा आच्छादित हैं, ढके हुए हैं।

स्वामी जी – इसमें यह जो बात कही गई **यत्किञ्च जगत्यां जगत्** तो यहाँ एक जगत् शब्द में तो सप्तमी विभक्ति हो गई और दूसरे जगत् शब्द में प्रथमा हो गई। तो आप इन दोनों का क्या अर्थ करेंगे?

साधक ५ – **जगत्यां** से तो पूरा संसार ले लेंगे। पूरा ब्रह्माण्ड।

स्वामी जी – वह तो सप्तमी के अर्थ में है या नहीं?

साधक ५ – हाँ जी! इस ब्रह्माण्ड में, जगत् के जो व्यक्तिगत् पदार्थ हैं पृथ्वी, सूर्य आदि। **जगत्** शब्द से एक-एक पदार्थ को लेंगे। स्वामी जी! **जगत्यां** से एक सामूहिक रूप में पूरा ब्रह्माण्ड लेंगे। अर्थात् इस ब्रह्माण्ड में जितने भी पदार्थ हैं। वे सभी **ईशा वास्यम्** ईश्वर से ढके हुए हैं, आच्छादित हैं।

स्वामी जी – अच्छा जी! आप बताएँ **जगत्याम्** शब्द का अर्थ क्या लेना चाहिए?

साधक ३ – **गम्यमानायां सृष्टौ** ऐसा महर्षि जी भाष्य में बताते हैं। जिस गतिशील सृष्टि में जो भी कुछ **गच्छतीति जगत्** सारे जड़चेतन आ गए।

स्वामी जी – एक तो यह अर्थ निकला कि ईश्वर के द्वारा यह पूरा जगत् व्याप्त है। क्या समझे? हम दूसरे शब्दों में कहेंगे इस जगत् में = सृष्टि में ईश्वर सर्वत्र व्यापक है। **ईशा वास्यम्** अर्थात् व्याप्त का अर्थ यही तो लेंगे या और कुछ?

साधक ७ – सर्वव्यापक अर्थ लेंगे।

स्वामी जी – हाँ!

साधक ३ – व्यापक अर्थ लेंगे और यह सारा जगत् जड़और चेतन वर्ग व्याप्य लेंगे।

स्वामी जी – नहीं। व्याप्त शब्द का अर्थ हमें व्यापक लेना है। ईश्वर के द्वारा अच्छादित है यह तो ठीक है, सीधा मोटा अर्थ तो हो गया। परन्तु हमको आच्छादित का अर्थ व्यापक लेना है।

साधक ३ – और सब कुछ व्याप्य है।

स्वामी जी – **ईशा वास्यमिदं सर्वं** अर्थात् गतिशील सृष्टि में जो-जो पदार्थ हैं। अच्छा! **तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा** इसका अर्थ आप बोलेंगे –

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – तेन इस कारण से सम्पूर्ण जगत् में और जगत् के अन्दर जो चराचर जड़-चेतन पदार्थ हैं, वे सभी ईश्वर के द्वारा आच्छादित हैं। ईश्वर उनमें व्यापक है; तेन इस कारण से त्यक्तेन भुञ्जीथा उन सभी पदार्थों का उपभोग त्यागपूर्वक करें। अर्थात् ईश्वर को स्वामी मानकर करें।

स्वामी जी – अच्छा ! तेन त्यक्तेन का क्या अर्थ करेंगे? यह तो कर्त्ता में है तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा ?

साधक ४ – ऐसा भी सुना है स्वामी जी ! ईश्वर के द्वारा त्याग किए हुए संसार को भोग रहित होकर भोगे।

स्वामी जी – हाँ जी!...

साधक ३ – महर्षि के वाक्य में ऐसा आता है **वर्जितेन तच्चित्तरहितेन (त्वं भुञ्जीथा)** अर्थात् हे जीवात्मन् ! इन पदार्थों से चित्त को हटाकर अर्थात् राग आदि को हटाकर, इन पदार्थों का सेवन कर।

स्वामी जी – हाँ! तो पुनः क्या बनेगा ?

साधक ३ – इन पदार्थों में आसक्ति भाव को छोड़कर उपभोग कर।

स्वामी जी – अच्छा ! तो तेन त्यक्तेन उसके द्वारा छोड़े हुए का; एक तो यह अर्थ हुआ। उसके द्वारा दिए हुए का; दूसरा यह अर्थ हुआ और तीसरा आपका क्या भाव है ?

साधक ३ – इन पदार्थों को ईश्वर ने छोड़ दिया है, लोग यह अर्थ करते हैं किन्तु यह अर्थ महर्षि के भाष्य में नहीं आता है।

स्वामी जी – तो उसमें क्या आता है ?

साधक ३– तेन शब्द हेतु अर्थ में है अर्थात् इस कारण से। ईश्वर सब जड़-चेतन में व्यापक है, इस कारण से, तू जीवात्मा इन संसार के पदार्थों का त्यागभाव से सेवन कर। महर्षि के भाष्य में लगभग ऐसी पंक्तियाँ आती हैं।

स्वामी जी – और **मा गृधः कस्य स्विद्धनम्** का अर्थ ?

साधक ३ – किसी के धन के प्रति लोभ मत कर, यह धन किसका है ? तो उत्तर मिला कि परमात्मा का है।

स्वामी जी – अच्छा ! हमारे पास में यहाँ महर्षि का भाष्य है ?

साधक ३ – हाँ जी !

स्वामी जी – उसमें चालीसवां अध्याय निकालो। उसके अर्थ को देखने से पता चलेगा। आप धीरे-धीरे पढ़ो और ध्यान रखो कि सबको सुनाई दे।

साधक ३ – (ईशा) ईश्वरेण सकलैश्वर्यसम्पन्नेन सर्वशक्तिमता परमात्मना (वास्यम्) आच्छादयितुं योग्यं सर्वतोऽभिव्याप्यम् (इदम्) प्रकृत्यादिपृथिव्यन्तम् (सर्वम्) अखिलम् (यत्) (किम्) (च) (जगत्याम्) गम्यमानायां सृष्टौ (जगत्) यद् गच्छति तत् (तेन) (त्यक्तेन) वर्जितेन तच्चित्तरहितेन (भुञ्जीथाः) भोगमनुभवेः (मा) निषेधे (गृधः) अभिकांक्षीः (कस्य) (स्वित्) कस्यापि स्विदिति प्रश्ने वा (धनम्) वस्तुमात्रम्।

पदार्थ – हे मनुष्य ! तू जो प्रकृति से लेकर पृथ्वीपर्यन्त सब प्राप्त होने योग्य सृष्टि में चर प्राणिमात्र सम्पूर्ण ऐश्वर्य से युक्त सर्वशक्तिमान् परमात्मा से आच्छादन करने योग्य अर्थात् सब ओर से व्याप्त होने योग्य है। उस त्याग किए हुए जगत् से पदार्थों के भोगने का अनुभव कर किन्तु किसी के भी वस्तुमात्र की मत अभिलाषा कर।

यहाँ तेन को हेतु रूप में ले लिया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – क्यों, कुछ पकड़ में आया, 'तेन' हेतु रूप में कैसे आया?

साधक २ – ऊपर जो कारण दिया, ईश्वर द्वारा यह सारा ही व्याप्त है।

स्वामी जी – हाँ!

साधक २ – इस कारण से अर्थात् उसका ही यह धन है, इस हेतु से।

स्वामी जी – हाँ जी! और...।

साधक ३ – इसमें जो जगत् शब्द पढ़ा गया है, वह जड़-चेतन दोनों के लिए है। गम्यमानायां सृष्टौ यद्गच्छति तत् जगत्।

स्वामी जी – इस हेतु से दोनों में हो गया और ...।

साधक ३ – यह जो दिया कि **स्विदिति प्रश्ने वा** यह किसका है? उत्तर दिया कि ईश्वर का है।

स्वामी जी – इसका भाव सुनाओ! व्यक्ति के ऊपर क्या प्रभाव पड़ता है?

साधक ३ – जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हमको सब काल में, सब ओर से देखता है। यह जगत् ईश्वर से व्याप्त अर्थात् सब स्थानों में ईश्वर विद्यमान है। इस प्रकार उस व्यापक अन्तर्यामी को जानकर कभी भी अन्याय आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण करना नहीं चाहते। वे इस त्याग से धार्मिक होकर इस लोक में अभ्युदय और परलोक में निःश्रेयस रूप फलों को भोगकर सदा आनन्द में रहते हैं।

स्वामी जी – अब आप दोहराओ, क्या भाव निकाला उन्होंने। कहाँ से आरम्भ किया?

साधक ३ – जो मनुष्य ईश्वर से डरते हैं कि यह हमको सब काल में, सब ओर से देखता है।

स्वामी जी – एक तो यह बात निकली कि जब हम ईश्वर को सर्वव्यापक मानते हैं तब मन में जो भी बुरा सोचते हैं, राग-द्वेष, चोरी आदि की इच्छा-प्रयत्न करते हैं; वह मानसिक पाप भी नहीं करेंगे। यह परिणाम निकलेगा। क्या समझ में आया?

साधक ८ – ईश्वर को व्यापक मानेंगे तो हम मानसिक स्तर पर भी कोई बुराई नहीं करेंगे।

स्वामी जी – और आगे क्या है?

साधक ३ – यह जगत् ईश्वर से व्याप्त अर्थात् सब स्थानों में ईश्वर विद्यमान है। इस प्रकार उस व्यापक अन्तर्यामी को जानकर कभी भी अन्याय आचरण से किसी का कुछ भी द्रव्य ग्रहण करना नहीं चाहते।

स्वामी जी – इससे एक बात हमारे समक्ष आई कि न्यायपूर्वक भिक्षा मांगी जा सकती है। न्यायपूर्वक दूसरे का धन लिया जा सकता है। क्या समझे?

साधक ३ – अन्याय का निषेध है।

स्वामी जी – अन्यायपूर्वक किसी के धन की इच्छा नहीं करनी अर्थात् न्यायपूर्वक किसी के भी धन की इच्छा कर सकते हैं।

साधक ७ – अर्थापत्ति से यह भाव निकलेगा।

स्वामी जी – ऐसा लिख भी दिया इन्होंने और आगे –

साधक ३ – वे इस त्याग से धार्मिक होकर इस लोक में अभ्युदय और परलोक में निःश्रेयस रूप फलों को भोगकर सदा आनन्द में रहते हैं।

स्वामी जी – तो ऐसे व्यक्तियों की लौकिक उन्नति होती है और मोक्ष आनन्द की प्राप्ति भी होती है।

CC-0. Vasishtha Tripathi Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम इस मन्त्र का प्रयोग करेंगे। आप इसका प्रयोग इस रूप में कर सकते हैं कि शब्द-प्रमाण के आधार पर ईश्वर को सर्वव्यापक मानकर हम कुछ बोल रहे हैं, ईश्वर को सम्बोधित कर रहे है। एक धुन के रूप में हम बोलेंगे जैसे गायत्री को बोलते हैं -

ओं ईशा वास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
तेन त्यक्तेन भुञ्जीथा मा गृधः कस्य स्विद्धनम्॥

अब आप इसका अर्थ मन में विचार कर देखिए। जैसी आपकी योग्यता है, जैसा आप समझ पाए हैं और ईश्वर को सम्बोधित करते हुए अर्थ करने का प्रयत्न करें। आप समझिए मैं इस मन्त्र के द्वारा मानसिक स्तर पर ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर रहा हूँ। हे ईश्वर! यह सारा जगत् आपसे आच्छादित है, व्याप्त है। आप पूरे जगत् में व्यापक हैं। जीवात्मा, प्रकृति और सृष्टि तीनों में आप व्यापक हैं।

अब आप रुकेंगे। तो आप कुछ कर पाए या कठिनाई पड़ी या विचार उखड़ गए। कैसा, क्या रहा? कौन बताएगा? हाँ जी! आप बताएँगे।

साधक ३ – मन में उच्चारण, अर्थ और समर्पण करता रहा। मध्य में एक-दो बार वृत्तियों को उठाना जैसे कि कोई चित्र देख लेना किन्तु पुनः उनको रोक देना; ऐसा एक-दो बार हुआ।

स्वामी जी – चित्र देखते समय जब आप इच्छा, प्रयत्न का आरम्भ करते हैं तब आप उस को पकड़नहीं पाते कि मैं चित्र आदि को देखने की चेष्टा कर रहा हूँ?

साधक ३ – वह इतनी शीघ्रता से होता है कि पता नहीं चलता कि मैंने कब इच्छा की और वह तत्काल हट भी जाता है।

स्वामी जी – अब आप बोलेंगे, कैसी स्थिति रही?

साधक ४ – स्वामी जी! मन्त्र से सम्बन्धित चित्र उठाए।

स्वामी जी – वह कैसे जैसे -

साधक ४ – जैसे जगत्यां जगत् के ऊपर विचार किया तब ब्रह्माण्ड का चित्र सूर्य, पृथ्वी आदि को सामने लाया, पुनः ईश्वर के विषय में चिन्तन किया।

स्वामी जी – यह ब्रह्माण्ड लोक-लोकान्तर इतना है और इन सबमें ईश्वर व्यापक है। यह उसका चित्र आया?

साधक ४ – हाँ जी!

स्वामी जी – अच्छा! पुनः इतना होने पर भी उसके साथ यह नहीं जोड़ा कि यह नाशवान् भी है?

साधक ४ – जी! नहीं।

स्वामी जी – अच्छा जी! अब आप सुनाएँगे -

साधक १ – बिना धुन के मात्र बोलकर दो बार अर्थ पूरा किया। पहली बार व्यापक ईश्वर से अपने-आपको पृथक्, सामने व्यापक मानकर, उसे सम्बोधित करते हुए मन्त्र का अर्थ, समर्पण आदि किया। उसके पश्चात् पुनः आत्मा में व्यापक समझ में आया और आत्मा में ही उपस्थित मानकर दोनों (मन्त्रार्थ समर्पण) किए। दोनों बार स्थिति पृथक्-पृथक् रही।

स्वामी जी – आपको इनकी बात पकड़ में आई कुछ? कौन बताएगा?

साधक २ – आत्मा में ईश्वर की विशेष स्थिति की अनुभूति।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – एक, और पहले स्तर पर क्या था।

साधक ३ – अपनी आत्मा को छोड़कर अन्यत्र व्यापक माना।

स्वामी जी – एक तो होता है आत्मा को तो छोड़ दिया और अन्यत्र व्यापक मान लिया। पुनः आगे बढ़कर जो आत्मा को छोड़ा था उसमें भी व्यापक मान लिया। यह दोनों में अन्तर है। आप ध्यान में बैठकर देखेंगे। कई बार हम जब व्यापक मानने लगते हैं तब स्वयं को छोड़ देते हैं। ऐसी स्थिति होती है।

साधक १ – यह दोष पूर्ण स्थिति है।

स्वामी जी – हाँ! यदि स्वयं को छोड़ेंगे तो। एक स्थिति होती है जिसमें सर्वव्यापक मानता है, किन्तु अपने अन्दर अनुभव नहीं कर रहा है पर निषेध भी नहीं कर रहा है।

साधक १ – सिद्धान्त रूप में तो निषेध नहीं है, लेकिन अनुभव के रूप में तो नहीं है। तब दोषपूर्ण तो मानी ही जाएगी।

स्वामी जी – जैसे कि एक व्यक्ति कहता है ईशा वास्यं सर्वव्यापक ईश्वर है और ईश्वर को सम्बोधित कर रहा है। सम्बोधन में ऐसा कहते हुए यदि वह सर्वव्यापक में किसी को छोड़ता ही नहीं, तब वहाँ आत्मा भी आएगा; तब दोष नहीं और यदि सर्वव्यापक कहता हुआ आत्मा को छोड़ देता है तब वहाँ दोष आ जाएगा।

साधक १ – पहली वाली स्थिति में मस्तिष्क के क्षेत्र में व्यापकत्व हो रहा है और दूसरी वाली स्थिति में हृदय प्रदेश में अपने रूप के अनुभव के साथ व्यापकत्व हो रहा है। यह दोनों में अन्तर रहा।

स्वामी जी – अब प्रयोग करेंगे **प्राची दिगग्निरधिपतिः....** मन्त्र का। आप अपनी मानसिक स्थिति को देखेंगे कि हम उस पर कितना नियन्त्रण कर पाते हैं। व्यक्ति को मानसिक स्तर पर भी सफलता मिलनी चाहिए, साधारण रूप से बोलते हुए भी सफलता मिलनी चाहिए और कहीं गाने के रूप में मन्त्र बोलना पड़े तब भी इतनी ही सफलता मिलनी चाहिए। ऐसे ही एकान्त में और सार्वजनिक रूप में अर्थात् सभी क्षेत्रों में व्यक्ति को सफल होना चाहिए। व्यक्ति को इतनी योग्यता बनानी चाहिए। समझ में आया? जैसे कि आपको बहुत बड़े जन समुदाय में अर्थ सहित मन्त्रों का पाठ करना पड़े तब कठिनाई प्रतीत होगी, जबकि केवल मानसिक जप करें तो उतनी कठिनाई नहीं होगी। अर्थात् जिस व्यक्ति का स्तर ऊँचा नहीं है वह जन समुदाय में बैठकर मानसिक जप करेगा तब सरलता प्रतीत होगी और वही व्यक्ति जब बोल-बोलकर करेगा तब कठिनाई होगी या नहीं? कालान्तर में अभ्यास करते-करते एक स्तर आएगा तब जनसमुदाय में बोलते हुए भी नियन्त्रण कर पाएँगे। ऐसी उसकी योग्यता बढ़ जाती है।

ओ३म् प्राची दिगग्निरधिपतिरसितो रक्षिताऽऽदित्या इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

दक्षिणा दिगिन्द्रोऽधिपतिस्तिरश्चिराजी रक्षिता पितर इषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

प्रतीची दिग्वरुणोऽधिपतिः पृदाकु रक्षिताऽन्नमिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

उदीची दिक्सोमोऽधिपतिः स्वजो रक्षिताऽशनिरिषवः। तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु। योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ध्रुवा दिग्विष्णुरधिपतिः कल्माषग्रीवो रक्षिता वीरुध इषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥

ऊर्ध्वा दिग्बृहस्पतिरधिपतिः श्वित्रो रक्षिता वर्षमिषवः । तेभ्यो नमोऽधिपतिभ्यो नमो रक्षितृभ्यो नम इषुभ्यो नम एभ्यो अस्तु । योस्मान् द्वेष्टि यं वयं द्विष्मस्तं वो जम्भे दध्मः ॥ पञ्चमहा.सन्ध्यो.। अथर्व.३/२७/१-६।

कुछ स्थिति बनी या कैसा रहा ?

साधक १ – मन्त्रों के शब्दों का अर्थ उतने स्पष्ट रूप में नहीं कर पाया। भाव रूप में आए और ईश्वर को जहाँ पर मैं स्वयं हूँ, वहीं पर सम्बोधित कर सका किन्तु व्यापक रूप से नहीं देख सका।

स्वामी जी – अन्तर आया समझ में ? इनके कहने का अभिप्राय क्या है ? हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक ५ – जहाँ पर हम स्वयं उपस्थित हैं वहीं पर ईश्वर को मानकर सम्बोधित किया। वहाँ पर यह अनुभूति नहीं रही है कि ईश्वर सम्पूर्ण संसार में व्यापक है।

स्वामी जी – यह अन्तर दिखाई देता है आपको कि अपने अन्दर तो व्यापक मान लिया और संसार के अन्य पदार्थों में मानने की स्थिति नहीं बन पाई। बात पकड़ में आ गई।

और कौन सुनाएगा अपनी स्थिति ?

साधक १ – इसमें दोष क्या है ?

स्वामी जी – इसमें स्थिति यह है कि जब आप इस रूप में ईश्वर को सम्बोधित करते हुए बोलते हैं कि ईश्वर मेरे अन्दर ही है और दूसरी जगह नहीं है तब तो दोष आ जाएगा। पर आपका जब सर्वव्यापक का सिद्धान्त बना हुआ है तब दोष नहीं आएगा।

साधक १ – लेकिन अभी उपस्थित नहीं किया हुआ।

स्वामी जी – हाँ ! सर्वव्यापकता का सिद्धान्त उपस्थित रहना चाहिए। क्योंकि ये दो बातें हैं एक जगह मानकर सम्बोधित करना और सब जगह मानकर सम्बोधित करना। यद्यपि जीवात्मा सब जगह फैलकर तो इसको सम्बोधित कर नहीं सकता। किन्तु एक जगह जहाँ है, वहीं से करेगा। इस स्थिति में ईश्वर को सब जगह मानेगा। अतः यदि दूसरी जगह का निषेध हो तो दोष आएगा।

साधक १ – निषेध भी नहीं करता है और सर्वव्यापकता को सिद्धान्त रूप में उपस्थित भी नहीं रखता है। केवल वहीं एक केन्द्र पर करता है।

स्वामी जी – उसमें कोई एक स्थिति तो बनेगी, आपके मन में यह भाव तो बनेगा कि जिसको मैं सम्बोधित कर रहा हूँ वह मेरा सम्बोधन सुनता हुआ, एक ही जगह है या सब जगह है ?

साधक १ – स्वामी जी ! ऐसा तो तब होगा जब पहले से यह विचार उठाएगा।

स्वामी जी – नहीं ! या तो पहले से सिद्धान्त उपस्थित रहना चाहिए। ज्यों का त्यों, उसमें इधर-उधर बात नहीं जानी चाहिए। उसको छेड़ना ही नहीं है। यदि छेड़ना है तो उसको सर्वव्यापक मानते हुए एक जगह सम्बोधित करेंगे।

साधक १ – यदि इस गति से पाठ करेंगे तब तो छेड़ने का समय ही नहीं मिल पाएगा।

स्वामी जी – जो कुछ भी हो। उलाहने = उपालम्भ की भाषा नहीं बोलनी है। आपको पता है इस क्षेत्र में जाने के लिए व्यक्ति की भाषा की कैसी शैली होती है ? यह सारा विज्ञान उसको पता होना चाहिए तब ऊँचे स्तर को छू पाएगा, नहीं तो ऊँचे स्तर को छू नहीं पाएगा। कैसे रहना, बोलना, संकेत देना पड़ता है, यह सारा विज्ञान उसको सीखना पड़ता है। क्योंकि व्यक्ति के ऊपर

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भाषा का प्रभाव पड़ता है। जो शब्द बोलता है पहले उसका प्रभाव वक्ता के ऊपर पड़ता रहता है, पुनः उसी का अभ्यास हो जाता है। क्या समझे?

बोले हुए शब्दों को व्यक्ति मनन करके दोहराता है और लौकिक संकेत, लौकिक हाव-भाव में बोले शब्द यदि यहाँ दोहराए जाएँ तो लौकिकता उत्पन्न करते हैं। कुछ बात आई समझ में या नहीं आई?

साधक १ – आ गई।

स्वामी जी – लौकिक ढंग से, लौकिक संकेत, पद्धति, हाव-भाव से जब शब्दों का प्रयोग करेंगे तब हमारे ऊपर सांसारिक प्रभाव पड़ेगा और वह सांसारिक प्रभाव सांसारिक प्रवृत्ति को उत्पन्न करेगा। बोलो, क्या समझ में आया?

साधक १ – सांसारिक प्रभाव पड़कर सांसारिक प्रवृत्ति को उत्पन्न करेगा।

स्वामी जी – मैं और मेरा, अच्छा-बुरा या अन्य कोई निम्न हाव-भाव उत्पन्न होंगे। उपहास के लिए शब्द प्रयुक्त हुए होंगे तब उपहास की प्रवृत्ति उत्पन्न होगी। तिरस्कार के लिए बोला होगा तब तिरस्कार के भाव जागेंगे। दूसरों को दोषी सिद्ध करने के लिए उच्चारण किया गया होगा तब दोष देखने की इच्छा हो जाएगी। इस प्रकार लौकिक विचारधारा आगे बढ़ती जाएगी और विवेक-वैराग्य की स्थिति बिगड़ती चली जाएगी। जैसे कि एक व्यक्ति ने यह सिद्ध किया कि सब कुछ ईश्वर का है, मेरा कुछ नहीं। मानकर चलिए, इसमें वह सफल हो गया। अब कुछ समय पश्चात् वह स्थिति ढीली हो गई, असावधानी हो गई। उसका वह स्तर नहीं रहा और वह बोल पड़ा कि भाई! मेरी वस्तु मुझको दो और उसकी उसको दो। ऐसे बोलने लगा जैसे कि लोक में बोलते है तब उसका हाव-भाव लौकिक बन जाएगा। आगे वह पुनः वस्तु का स्वामी बन बैठेगा और ईश्वर को जो स्वामी मानता था, वह छूट जाएगा। कुछ तो समझ में आया होगा?

साधक १ – बोलने से पहले ही व्यक्ति का स्तर अन्दर परिवर्तित हो चुका है।

स्वामी जी – हाँ! एक यह शंका आती है कि जब हम ईश्वर को सब कुछ का स्वामी मान लेते हैं तब 'अपना' का प्रयोग नहीं होना चाहिए।

साधक ३ – लोक व्यवहार के लिए अपना कह सकते हैं।

स्वामी जी – नहीं। वास्तविक समाधान होना चाहिए। वह यह है कि ईश्वर ने दिया है वही इसका बनाने वाला है और मुख्य स्वामी ईश्वर है, मैं तो इसका गौण स्वामी हूँ।

साधक १ – प्रयोग कर्त्ता।

स्वामी जी – मैं प्रयोग का अधिकारी हूँ। ईश्वर ने मुझे दिया है, इसलिए मैं इसको गौण रूप में अपना मानता हूँ। मुख्य स्वामी ईश्वर को ही मानकर इसका प्रयोग करता हूँ। यह दोषरहित समाधान है। ऐसा न मानकर जब व्यक्ति यह मानता या कहता है कि यह मेरा है तब उसमें दोष आ जाता है। अब विराम ॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६६ ज्ञानखण्ड

विनाश-प्रयास : आषाढ़ कृ. १२/२०६०-२६/७/०३

अब वर्त्तमान काल में आप दिन में शरीर आदि को नाशवान् समझने की स्थिति कितनी बना पा रहे हैं? हाँ जी! आप बोलेंगे -

साधक ३ – आजकल मेरा स्वास्थ्य दुर्बल है इसलिए उतना विचार नहीं कर रहा हूँ।

स्वामी जी – अच्छा! अब आप बोलेंगें।

साधक ६ – प्रायः प्रयास नहीं करता।

स्वामी जी – आप प्रयास नहीं करते और बताया गया है कि ऐसा करते रहो। तब पुनः आपने क्यों छोड़ा?

साधक ६ – ईश्वर-प्रणिधान के लिए अधिक प्रयास करता हूँ। नाशवान् बनाने के लिए कम कर पाता हूँ।

स्वामी जी – अच्छा! तो आप जब उसके लिए प्रयास नहीं करते तब पुनः आपको नित्य दिखाई देते हैं शरीर आदि क्या?

साधक ६ – नहीं। ऐसा सामान्य रूप से तो सोचता रहता हूँ कि अनित्य हैं।

स्वामी जी – ऐसे में निश्चित रूपेण यह शरीर मरेगा। यह नाशवान् है, चाहे जब मर सकता है; ऐसे सोचते हैं या नहीं सोचते?

साधक ६ – जी! ऐसा तो प्रायः सोचता रहता हूँ और कभी-कभी अचानक आभास होता है।

स्वामी जी – यह शरीर, आँख, नाक, इन्द्रियाँ, सभी नस-नाड़ियाँ और पृथ्वी आदि को ईश्वर के मानकर चलते हैं अथवा अपना मानकर?

साधक ६ – सामान्य रूप से ऐसा मानकर विचार करता रहता हूँ।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक २ – प्रायः विचार करता रहता हूँ। कभी स्थिति पाँच-दस मिनट रह पाती है, कभी टूट जाती है। प्रयत्न करते हैं टूटती रहती है। अभी स्थायित्व नहीं है।

स्वामी जी – हाँ ज़ी! आप सुनाएँ।

साधक ८ – स्वामी जी! शारीरिक स्थिति ठीक होने पर कुछ अच्छी सफलता प्राप्त होती है और शारीरिक बाधा होने पर पुनः ये वस्तुएँ जैसे बहुत दूर की दिखाई देने लगती हैं।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बताएँगे।

साधक ४ – दिन में लगभग चार-पाँच बार इस प्रकार का विचार करता हूँ। कुछ काल तक रहता है तत्पश्चात् हट जाता है। मध्याह्न काल के पश्चात् पुनः थोड़ा ध्यान आता है। तब उसको करता हूँ। इस प्रकार टूटना-बनना रहता है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप सुनाएँगे।

साधक ५ – प्रातःकाल और मध्याह्न काल में अवकाश रहता है उस समय ध्यान में बैठकर विचार करता हूँ तब विचारते समय समझ में आता है कि शरीर नाशवान् है। पर व्यवहार काल

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में स्वाभाविक रूप में यह नहीं चलता या चलाने का विशेष प्रयास नहीं करता हूँ। यदि बनाता हूँ तो आन्तरिक रूप से सफलता मिलती है।

स्वामी जी – शरीर, इन्द्रियाँ और पृथ्वी आदि सभी पदार्थों का स्वामी ईश्वर को मानते हैं या स्वयं को ?

साधक ५ – जब ध्यान करने के लिए बैठता हूँ तब ईश्वर का मानने में सफलता मिलती है और कुछ काल तक स्थिति बनी रहती है। सामान्य व्यवहार काल में ईश्वर को इन सबका स्वामी नहीं मान पाता हूँ।

स्वामी जी – उस समय पुनः आप स्वयं को इनका स्वामी मानते हैं ?

साधक ५ – हाँ ! स्वामी जी।

स्वामी जी – अब आप बोलेंगे।

साधक ७ – ये विचार किया हुआ है कि नाशवान् है और यह सब कुछ परमपिता परमात्मा का है, प्रतिदिन ऐसा ही सोचता रहता हूँ।

स्वामी जी – जैसे कि हमने विचार किया और प्रमाणों से सिद्ध है कि शरीर, इन्द्रियाँ, नस-नाड़ियाँ तथा धन-सम्पत्ति आदि सब ईश्वर की हैं। यह एक अवस्था है – इस स्थिति में रहना, ऐसा व्यवहार में देखते-जानते रहना और दूसरी अवस्था है – इसको भूलकर जैसे पहले संसार में रहते थे वैसे रहना अर्थात् शरीर, विद्या आदि सब वस्तुएँ अपनी हैं। तो दिन में आपका कौन-सा पक्ष रहता है ?

साधक ७ – जी ! पहला पक्ष रहता है।

स्वामी जी – इनका विचारकर निर्णय करना और वैसी स्थिति बनाए रखना; यह आवश्यक है। परन्तु इसके लिए प्रयत्न को न करने में आप में से कुछ ने तो यह माना कि हमारा शरीर स्वस्थ नहीं रहता और कुछ की ऐसी स्थितियाँ आईं कि प्रयत्न करते हैं, पुनः छूट जाता है।

अब इस स्थिति में यदि आप अच्छी प्रकार से यह स्वीकार करें कि यह अवस्था बनाना और बनाए रखना समाधि के लिए, ईश्वर-प्राप्ति के लिए अनिवार्य है तब तो अधिक प्रयास करेंगे, प्रयास को नहीं छोड़ेंगे। यदि यह बात मन में रहती है कि इस स्थिति में हम बन्धनों से, क्लेशों से, दुःखों से, अविद्या से छूट जाएँगे तब व्यक्ति प्रयत्न करता है और यदि व्यक्ति ऐसा अनुभव नहीं करता तब प्रयत्न छोड़ देता है।

एक और बात – व्यक्ति जब देखता है कि ये वस्तुएँ हैं तो ईश्वर की और मैं अपनी मानता हूँ; यह बात ठीक नहीं। ऐसे जब दोष अनुभव करता है तब व्यक्ति इन वस्तुओं को अपनी मानकर नहीं चलता। यदि ऐसा नहीं करता है तब स्थिति यह होती है कि लौकिक सुख और सुख साधन अच्छे लगने लगते हैं। उनमें परिणाम आदि दुःख दिखाई नहीं देते। व्यक्ति उनका इच्छुक होकर वैराग्य का सम्पादन करना छोड़ देता है। ऐसे-ऐसे कारण सामने आते हैं। इन कारणों को हटाने के लिए शरीर आदि पदार्थों को अनित्य जानना-मानना, साथ ही ईश्वर, जीव, प्रकृति को नित्य जानना-मानना; ये प्रयास करते रहेंगे। यदि आप उन कारणों की ओर ध्यान नहीं देंगे तो आपकी प्रवृत्ति, रुचि लौकिक सुख और सुख साधनों में होगी ही, उसको आप रोक नहीं सकते। आप ऐसे नहीं रह सकते। विवेक-वैराग्य की स्थिति दबती जाएगी, कम होती जाएगी और अविवेक, अविद्या की प्रवृत्ति, संस्कार उभरने लगेंगे। इसलिए इसको अनित्य जानो-मानो, नहीं तो नित्य जानना-मानना आपका बना रहेगा, आप उसको रोक नहीं सकेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जब आप अनित्य जानते-मानते रहेंगे, तब परिणाम-स्वरूप ईश्वर के प्रति रुचि, श्रद्धा, आकर्षण बने रहेंगे और जब इनको नित्य मानेंगे, लौकिक सुखों में रुचि बनाएँगे, इनको अनित्य जानना आवश्यक नहीं समझेंगे तब ईश्वर के प्रति रुचि, प्रीति, आकर्षण समाप्त हो जाएँगे। अधर्म में, उलटे कामों में आपकी रुचि बढ़ती चली जाएगी। धर्म में, सत्य-आचरण में अरुचि बढ़ती चली जाएगी। ऐसे परिणाम आने लगेंगे। दोनों विचार-धाराएँ बड़ी तीव्र गति से टकराती हैं। आपस में युद्ध जैसे होता है। यदि अनुभव करना हो तो आप पूरे दैनिक जीवन में, मानसिक क्षेत्र में, यह संघर्ष देख सकते हैं।

आपको प्रमाण भी स्मरण रहे तो अच्छा रहेगा। योगदर्शनकार ने यह बात कही - **व्युत्थान-निरोधसंस्कारयोरभिभवप्रादुर्भावौ.....।** भाष्यकार विवरण देते हैं कि व्युत्थान संस्कारों के रुक जाने अथवा रोक देने और निरोध संस्कारों के उत्पन्न कर लेने पर असम्प्रज्ञात समाधि की सिद्धि होती है; इसके विपरीत निरोध संस्कारों के रुक जाने और व्युत्थान संस्कारों के उभरने पर व्युत्थान परिणाम होगा, असम्प्रज्ञात समाधि नहीं रहेगी। बीच में कोई व्यक्ति खड़ा नहीं रह सकता।

सत्यार्थ प्रकाश में भी यही बात आयी कि कोई भी व्यक्ति क्षणभर भी ज्ञान-कर्म-उपासना से रहित नहीं होता। ज्ञान-कर्म-उपासना सतत चलते रहते हैं इनको आप रोक नहीं सकते, होंगे ये तीनों। या तो मिथ्या ज्ञान होता रहेगा या सत्य ज्ञान होता रहेगा। तभी जीव संघर्ष में रहेगा। ऐसे ही शुभ कर्म अथवा अशुभ कर्म होते रहेंगे, रुकेंगे नहीं। तीसरी बात या तो ईश्वर की उपासना होती रहेगी अथवा लौकिक पदार्थों की उपासना होती रहेगी। इसको आप रोक नहीं सकते। आपको एक पक्ष में तो रहना ही पड़ेगा। इसलिए बुद्धिमत्ता यही है कि व्यक्ति जब देखता है कि दोनों में से एक पक्ष अनिवार्य रूप से चलना ही है तब मुझे अच्छा ज्ञान, अच्छा कर्म, अच्छी उपासना ही करनी चाहिए। यदि मैं नहीं करूँगा तब अशुद्ध ज्ञान, अशुद्ध कर्म, अशुद्ध उपासना होगी ही। जब ऐसा देखता है तब उसको करना ही पड़ेगा। नहीं करता तो स्थिति वही रहेगी। तीनों उलटे होते रहेंगे।

इस प्रसंग में आप वेद का सन्देश, संकेत, उपदेश भी देखो - **कुर्वन्नेवेह कर्माणि जिजीविषेच्छतं समाः**। यजु.४०/२। इस मन्त्र में जो बात कही, व्याख्या की कि व्यक्ति निष्काम कर्म, ऊँचे कर्म यदि करता रहेगा तब बुरे कर्मों से छूट जाएगा, नहीं तो नहीं छूट सकता। निष्काम कर्म करता रहेगा तो सकाम कर्म नहीं होंगे और आगे बुरे कर्म नहीं होंगे। यदि निष्काम कर्म नहीं करेगा, तब सकाम कर्म होंगे, बुरे कर्म होंगे। अब देखो ! बचकर कहाँ जाओगे ? इन लौकिक पदार्थों को आप अनित्य देखते रहेंगे तब काम-क्रोध, लोभ-मोह की प्रवृत्तियाँ दबी रहेंगी, आक्रमण नहीं करेंगी। सरलता से इनको आप रोक लेंगे। यदि इनको नित्य देखते रहेंगे तब काम-क्रोध, लोभ-मोह की प्रवृत्तियों को आप नहीं रोक सकते। आप देख लीजिए, इतना अनिवार्य है।

यदि ईश्वर की उपासना करते रहेंगे तब अज्ञान, कुसंस्कार, अधर्म, कु-उपासना; ये सब रुके रहेंगे। नहीं करेंगे, तब सारे आक्रमण करेंगे। अविद्या, कुसंस्कार आक्रमण करेंगे। इन्द्रियों का उद्वेग आपको घसीटकर ले जाएगा। जिस क्षण ईश्वर की उपासना छोड़ेंगे, उसी क्षण आपके ऊपर यह आक्रमण होगा। आप बच नहीं सकते। इसलिए या तो ईश्वर की उपासना करो, ईश्वर को साथ रखो या पुनः इनकी मार खाओ।

तो पहले ऐसी बुद्धि बनाओ, सोचो, प्रत्यक्ष-प्रमाण से अनुभव करो या शब्द-प्रमाण को मानो। आपने अनुभूति ही नहीं करनी, न शब्द-प्रमाण को मानना है तो पुनः समझ में नहीं आएगा। शब्द-प्रमाण को लेकर व्यक्ति परिश्रम करना नहीं चाहता, न शत-प्रतिशत् मानता है, न परिश्रम करके अनुभव करता है तो उसको कोई नहीं समझा सकता। ठीक है ? वह स्वतन्त्र है। इसलिए

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न करते-करते व्यक्ति को अनुभूतियाँ होती हैं और वह देखता है कि ऐसा परिणाम सामने आ गया। तब पुनः पूरी बात जंचने लगती है। विश्वास होता है और वह व्यक्ति प्रयासशील रहता है।

जब शब्द-प्रमाण से आप मानेंगे कि मैं दिनभर ईश्वर की उपासना करूँगा तो सतत आनन्द में रहूँगा। सतत विद्या से ओत-प्रोत रहूँगा, अविद्या दूर रहेगी। ऐसे ही कुसंस्कार दूर रहेंगे, सुसंस्कार निकट रहेंगे, उभरे रहेंगे। इन्द्रियाँ वश में रहेंगी और न करने पर इन्द्रियों के वश में मैं रहूँगा। ईश्वर की उपासना से तीनों एषणाओं को जीत लूँगा, नहीं करूँगा तो एषणाएँ मुझे घसीट कर ले जाएँगी। आप यह मानते हैं या मानकर चलेंगे तब आप पूरा प्रयत्न करेंगे, पूरा बल लगाएँगे।

आपने सुना था, पुनः सुनो ! लौकिक-सांसारिक उन्नति करने वाला व्यक्ति जो अपने लाभ-हानि को जानता है, वह कितना परिश्रम व प्रयत्न करता है ? उदाहरण के रूप में विद्या के क्षेत्र में, खेल के क्षेत्र में, कुश्ती के क्षेत्र में, विज्ञान का क्षेत्र हो या अन्य कोई क्षेत्र हो, उनमें प्रथम स्थान प्राप्त करने के लिए कितना प्रयास करता है, कितना दुःख उठाता है ? उसके हाव-भाव कैसे रहते हैं ? कभी देख लो।

उनके विषय में संसार कुछ भी कहता रहे किन्तु वे यही मानकर चलते रहते हैं कि मुझे अपने लक्ष्य पर पहुँचना है और पहुँचूँगा। अब आप इनसे अपनी तुलना करो। क्या आप उस सांसारिक व्यक्ति जैसा प्रयत्न करते हैं या नहीं ? हाँ जी ! आप सुनाएँगे। मैंने जो दृष्टान्त दिया उसके समान प्रयत्न करते हैं या कम ?

साधक ५ – कम रहता है स्वामी जी !

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ४ – कम रहता है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ८ – मेरा प्रयत्न तो शरीर की स्थिति पर निर्भर करता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप सुनाएँ –

साधक ६ – हाँ जी ! वहाँ तो बहुत ही कम ....।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे –

साधक ३ – अपने सामर्थ्य के अनुसार तो मैं करता हूँ किन्तु पुरुषार्थ कम होता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलें –

साधक २ – कम रहता है।

स्वामी जी – और आप बोलेंगे –

साधक १ – कम अनुभव करता हूँ।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे –

साधक ७ – जितना होना चाहिए उतना नहीं कर पाता।

स्वामी जी – अपने स्तर को बढ़ाते रहना चाहिए, इसका अभिप्राय यही है। आप तुलनात्मक अध्ययन करते हुए उसमें देखें कि यहाँ न्यूनता रह गई, पुनः उसको दूर करो। पुनः अध्ययन करो और न्यूनता ढूँढकर दूर करो। व्यक्ति जब ऐसे न्यूनता देखता जाता है और हटाता जाता है तब आगे बढ़ता जाता है। इसकी अपेक्षा जो तुलनात्मक अध्ययन नहीं करता, स्थितियों के साथ जुड़कर नहीं विचारता, लाभ-हानि नहीं देखता तो उसे दोषों का पता नहीं चलता, न ही वह प्रगति कर पाता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक अन्य अंश इसके साथ जुड़कर काम करता है, उसको जोड़ दो। जैसे कि आज हम इस विद्या को सीख रहे हैं। तो इसको सिखाने वाले, योजना बनाने वाले, सारा प्रबन्ध करने वाले लोग हमसे क्या अपेक्षा रखते हैं? वे यह चाहते हैं कि हम ईश्वर का साक्षात्कार करें और करवाएँ। यदि आप ऐसा विचार करेंगे या ऐसा मानकर चलेंगे तब तो वास्तव में जितना परिश्रम करना चाहिए, उनके अनुरूप नहीं कर रहे हैं; यह दिखाई देगा। पुनः अपने-आपको दोषी देखेंगे और उन दोषों को हटाने का प्रयास करेंगे।

इस विद्या को प्राप्त करना, पुनः औरों को करवाना; यह आपका दायित्व है। यदि आप यह विचार नहीं करेंगे कि हमारा उत्तरदायित्त्व क्या है, इसके लिए प्रयत्न नहीं करते, यथाशक्ति पूरा बल नहीं लगाते तब आप दोष युक्त माने जाएँगे। आप जब यह अनुभव करेंगे कि यह हमारे दोष हैं तब उनको दूर करेंगे। परन्तु आप जब अनुभव ही नहीं करेंगे तब उन दोषों को दूर करने का प्रयास कैसे करेंगे? अतः सभी विचार-धाराओं को देखते रहना पड़ता है यदि ऐसा हमने किया तो ऐसा हो जाएगा।

आध्यात्मिक उन्नति में तीसरा अंश - वह यह है कि आज हमारी स्थिति ऐसी है कि हम ब्रह्म विद्या, योग विद्या, ईश्वर के जानने की विद्या को यदि प्राप्त नहीं करते हैं तो पुनः समय नहीं मिलेगा। बड़ा कठिन है। इसका मिलना दुर्लभ है। पुनः पुनः ऐसे अवसर-साधन नहीं मिलते। कहीं सिखाने वाला नहीं मिलता। यदि प्रबन्ध नहीं होता तो सीखने वाला समर्थ नहीं हो पाता। अब अवसर है, यह कार्य हो सकता है। जब व्यक्ति ऐसे सोचता है तब पूरा प्रयास करता है। जब ऐसा नहीं सोचता है तब वह ऐसा मानता है कि यह तो होता रहता है। ये सब साधन व सिखाने वाले मिलते रहते हैं। यदि ऐसा मानता है तब प्रयत्न नहीं करेगा। यह परीक्षा पूर्वक अपने दोष देखने की विधि मैंने बनाई। व्यक्ति परीक्षा पूर्वक दोषों को देखता है और जो दोष सिद्ध होते हैं उनको दूर कर गुणों की प्राप्ति में उसको जितना प्रयत्न करना चाहिए, वह उतना करने लगता है।

आध्यात्मिक उन्नति में चौथा अंश - आप जब यह विचारेंगे कि हम इस विद्या को सीखेंगे और अन्यों को भी सिखाएँगे। योग विद्या के क्षेत्र में हम स्वयं अच्छे योग्य व्यक्ति बनकर अन्यों को बनाएँगे, तैयार करेंगे, आगे बढ़ेंगे तब समाज, देश और पूरे विश्व का कल्याण करेंगे।

आज जहाँ भोगवाद ने सारे संसार को कुचलकर रख दिया है। अर्थवाद, अधिकारवाद और गद्दीवाद जैसी मान्यताओं की बाढ़ आ गई है। सारा संसार उसके नीचे डूब गया है। आज इन मान्यताओं के कारण अच्छाई-बुराई, न्याय नाम की कोई वस्तु इस संसार में दिखाई नहीं देती। इन स्थितियों में संसार की बात छोड़ो, स्वयं भी चपेट में आ रहे हैं।

यदि मैंने अपना स्तर इतना ऊँचा नहीं बनाया तब यह निश्चित है कि स्वयं भी उसी पंक्ति में जाकर खड़े हो जाएँगे, जहाँ करोड़ो लोग खड़े हैं। इसलिए यह ध्यान अपनी बुद्धि में रखना चाहिए कि हम अपने जैसा दूसरों को भी बनाएँगे। इसमें सब का हित है। यदि ऐसा प्रयास नहीं करेंगे तब न तो हम समाज में कुछ परिवर्तन ला सकते हैं, न ही स्वयं को इससे बचा सकेंगे। जब आप ऐसा विचार करते रहेंगे तब आप प्रयास करेंगे और यदि ऐसा विचार नहीं करेंगे तब आप प्रयास नहीं करेंगे।

अब हम विनाश के प्रसंग में विचार करेंगे। जैसे हमारा शरीर, अन्य लोगों के शरीर, पशु-पक्षी, कीट-पंतगों के शरीर विनाशशील हैं वैसे ही सैकड़ों वर्षों तक खड़े रहने वाले वृक्षों की स्थिति को देखकर हम विचार करते हैं, ये भी नाशवान् हैं। उन वृक्षों में हम इस स्थिति का सम्पादन करते हैं कि जैसे एक दिन शरीर दिखाई नहीं देते वैसे ही वृक्ष भी दिखाई नहीं देंगे। अच्छा! यह नीम का वृक्ष जो हमारे मार्ग में आता है आपको वह नाशवान् दिखाई देता है या नहीं। क्यों जी?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३ – एक दिन नष्ट हो जाएगा, इतना ही ज्ञान काम करता है।

स्वामी जी – एक दिन नष्ट हो जाएगा, यह तो मानने के लिए विवश हो ही जाते हैं। जैसे आज हम इस पेड़ को प्रलय की स्थिति में देखना चाहते हैं; ऐसा होता है या नहीं?

साधक १ – कार्य रूप के साथ-साथ कारण रूप तो देख लेते हैं किन्तु केवल कारण रूप देखना कठिन पड़ता है।

स्वामी जी – हाँ! ठीक है। तो अभ्यास होने पर जो बड़े-बड़े पेड़ हैं, ये भी शरीर की भाँति नाशवान् दिखने लगते हैं। यद्यपि दोनों बातें साथ रहती हैं। हम यह जानते हैं कि वर्त्तमान में कार्य है पर जब इसके अन्दर बुद्धि से घुसते हैं तब प्रलय जैसी अवस्था दिखाई देती है। आगे चलकर मिटने पर जो स्तर होगा, वह हमारी बुद्धि से दिखाई देता है।

एक और बात आपको बताता हूँ। वह व्यक्ति इसको उस स्तर पर देखना चाहता है। उसको बल लगाने पर भी नहीं दिख रहा है। आपको भी ऐसा अनुभव होता होगा या नहीं?

साधक ३ – होता है। पुनः अरुचि हो जाती है।

स्वामी जी – पूरा बल लगने पर भी आपको नाशवान् दिखाई नहीं देता हो; ऐसा आप देख सकते हैं किन्तु जिसका अभ्यास हो गया है वह ध्यानमात्र से प्रलय अवस्था बना लेता है और बनाये रखता है। उसकी अवस्था बिगड़ती नहीं है। इसमें कारण है जितनी गहराई से सोचकर प्रयोग करते हैं, समय लगाते हैं और पूरा परिश्रम करते हैं तब यह स्थिति आती है। अब जब वह प्रलयवत् अवस्था बन गई तो पेड़ सम्बन्धी कोई वृत्ति, किसी भी प्रकार की नहीं आएगी।

साधक १ – प्रलय रूप बना दिया अर्थात् कार्य रूप में भी नहीं देख रहा था?

स्वामी जी – कार्य रूप ओझल कर दिया। केवल उस अवस्था को देख रहा है जिसमें ऐसा हो जाएगा।

साधक १ – कारण रूप में देख रहा है।

स्वामी जी – कारण रूप में देखता है कि इसका विनाश होने पर जो स्थिति होगी, वह यह है। वह ऐसा देखता है।

साधक १ – परमाणु रूप।

स्वामी जी – हाँ! परमाणु के भी दो क्षेत्र हैं। एक सांख्य के अनुसार अन्तिम प्रकृति और दूसरा न्याय के अनुसार परमाणु का क्षेत्र है भूमि तक। यह वृक्ष, भूमि के परमाणुओं से बना है। क्या समझ में आया?

साधक १– न्याय और वैशेषिक के अनुसार।

स्वामी जी – न्याय का परमाणु तो आरम्भ होता है भूमि, जल के प्रारम्भिक कणों से। मान लो, न्याय के परमाणुओं तक आपने जाना हो, आगे नहीं बन रहा, तो इतने से भी काम चल सकता है। कोई बाधा नहीं।

साधक २ – वे वृक्षादि पृथ्वी में मिल जाते हैं।

स्वामी जी – हाँ! पृथ्वी के परमाणुओं पर चला गया तो पृथ्वी सहित सारे संसार को प्रलय जैसी स्थिति में कर देता है। जैसे कि आप कभी देखेंगे एक छोटा-सा बालक खेलता हुआ सामने आ गया। हमने झट उस पर दृष्टि डाली, बहुत छोटा है। अब झटाझट – अब इतना हुआ, पुनः इतना होगा, करते करते युवा बना दिया, पुनः बूढ़ा होगा। तत्पश्चात् मर जाएगा और जला देने पर

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसकी राख बन जाएगी। अब हमने बच्चे का जितना भी शरीर देखा, आरम्भ से अन्त तक, उसकी राख बन गई। आगे राख भी नहीं रहेगी। तो अब हम उसको प्रलय की स्थति में देख रहे है। वहाँ पहुँचा दिया और समय? इतनी देर लगी हमको।

साधक २ – क्षण भर में स्थिति तो बन जाती है पर वैसे ही टिकी नहीं रहती।

स्वामी जी – वह तो हटेगी। हटना और रहना तो स्वभाव से चलेगा ही। जैसे ही ध्यान बदला, तत्काल हट जाएगी। इसलिए सूत्र क्या बनाया? **इषुकारवन्नैकचित्तस्य समाधिहानिः**। सांख्य. ४/१४। हाँ जी! सूत्रकार क्या कहना चाहता है? इषुकार का अर्थ है बाण प्रयोग करने वाला। जैसे वह केवल अपने लक्ष्य बिन्दु को ही देखता है और कुछ नहीं देखता। ऐसे ही जो व्यक्ति इस एक ही विषय को बनाये रखता है, उसकी समाधि भंग नहीं होती। उलटा कर दो तो जो ऐसा नहीं सोचता, उसकी निश्चित रूप में समाधि नहीं रहेगी।

अब बताओ, आप जो कहते हैं इतना परिश्रम कौन करेगा? दिनरात पसीना-पसीना रहें, न खाने-पीने की, न सोने की, न विश्राम की, न किसी आनन्द की बात। कौन करेगा इतना? तो ऐसा नहीं है। वस्तुतः इसमें आप यह नहीं देख रहे हैं कि ऐसा करने पर मैं क्लेशों से मुक्त रहूँगा। जो व्यक्ति पुरुषार्थ के फल नहीं देखता, वह ऐसा ही समझता है। वह केवल परिश्रम को देखकर कहता है - छोड़ो, जब होना होगा तो जाएगा। भले व्यक्ति! संसार काम-क्रोध, लोभ-मोह की चक्की में पिस रहा है। जैसे चक्की में कोई दाना या कीड़ा पिस रहा हो।

तो इन सारे क्लेशों का जो आक्रमण हो रहा है, यह चक्की चल रही हैं। इस स्थिति में जब व्यक्ति यह देखता है कि जो परिश्रम करेगा वह बचेगा, शेष को तो पिसना ही है। इतना ही नहीं, पिसेगा भी और पिसाई भी देनी पड़ेगी अर्थात् गधा, घोड़ा, सुअर आदि बनने के लिए नए बुरे कर्म और तैयार हो जाएँगे। जब ऐसे देखेगा तब करेगा। आप यह मानकर चलते हैं कि आपत्ति आ रही है तो **हेयं दुःखमनागतम्**। यो.द.२/१६। तब आप निश्चित रूप में पुरुषार्थ करेंगे। पूरा बल लगाएँगे। यदि ऐसा बुद्धि में नहीं है तब आप बल नहीं लगाएँगे।

तो अब आप देखो! वृक्षों तक हम पहुँच गए और अब पुनः भूमि के विषय में सोचने लगे कि यह जो भूमि हमारे सामने उपस्थित है; यह नाशवान् है या नहीं? अच्छा! आपने कभी ऐसा प्रयास किया हो, ऐसा देखा हो बताओ उसमें क्या रहा?

साधक २ – किया है।

स्वामी जी – तो कैसा लगा?

साधक २ – पूरी पृथ्वी नष्ट हो जाती है।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बताएँ कैसा लगता है?

साधक ३ – प्रयास करते-करते भूमि नष्ट हो जाती है, पुनः कुछ समय पश्चात् सामने आ जाती है। पुनः नष्ट किया, पुनः सामने आ जाती है; इस प्रकार की स्थिति बनी रहती है।

स्वामी जी – अच्छा! ऐसा क्यों है, कारण मैं बताऊँ? आप स्वयं को सुरक्षित रखे हुए हैं, मारा नहीं है। उसमें एक यह कारण बनता है। क्या समझ मे आया?

साधक २ – हम कभी मरते नहीं हैं।

स्वामी जी – अपने आपको नहीं मारता। अपने आप को बचा लेता है। वह स्वयं बचा-रहेगा तो कुछ न कुछ तो देखेगा ही। अच्छा! इस सारे को प्रलय में परिवर्त्तित करो, किसी भाग

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को मत छोड़ो। यदि एक भाग को छोड़कर केवल दूसरे भाग को करना चाहेंगे तब वह नहीं हो पाएगा। पूरे भूगोल में, पूरी सृष्टि में कहीं भी, कोई भी चित्र नहीं रहना चाहिए। ऐसी स्थिति बनानी पड़ेगी। सब की सफाई कर दो। न दिखने वाला रहेगा, न देखने वाला, तब बार-बार आने का प्रसंग ही समाप्त हो जाएगा।

हाँ ! जब असावधानी होगी, नींद आएगी। थोड़े-से असावधान हो गए या जब सोएँगे या स्वप्न भी आएँगे तो आपकी स्थिति भंग हो जाएगी। यदि दिनभर ठीक-ठाक रहेंगे, सावधान रहेंगे तब भंग नहीं होगी। मान लो, ऐसी अवस्था में भी भंग हो जाए तो पुनः बना लिया। ऐसा भी होता है। व्यक्ति को अभ्यास हो तो तत्काल बना लेता है। प्रयोग करते रहो तो उसमें निपुणता बढ़ती जाती है और वह कार्य उस व्यक्ति को सरल लगने लगता है। यदि प्रयोग न करो तो निपुणता नहीं बढ़ती। हाँ जी !

साधक २ – अपने को भी नष्ट करने का अभिप्राय - शरीर को नष्ट करना या जो अनुभूति हो रही है उसको नष्ट करना ?

स्वामी जी – हाँ ! मैं बताता हूँ आपको। एक बात है। मानकर चलिए ईश्वर, जीव, प्रकृति अनादि हैं, उनको ज्यों का त्यों रखो। आपने कुछ पढ़ा-सुना है, आपको कोई आपत्ति नहीं है। पर शरीर को नष्ट कर देने पर बाहर की बातों को आप कुछ नहीं देख सकेंगे। कुछ नहीं कर सकेंगे; अपने-आपको वहाँ ले जाइए। आत्मा को सुरक्षित रखिए कोई बात नहीं, प्रकृति सुरक्षित रहेगी, ईश्वर प्रलय में भी यथावत् रहेगा किन्तु हमारा शरीर नहीं रहेगा। जब शरीर ही नहीं रहेगा तब देखने आदि का व्यापार नहीं रहेगा। साधक जब इस प्रकार चिन्तन-मनन करने लगेगा तब ऐसी अवस्था दिखाई देने लगेगी।

साधक २ – देख रहा हूँ या अनुभव कर रहा हूँ; ऐसी अनुभूति तो नहीं रहेगी।

स्वामी जी – हाँ ! ऐसी अनुभूति बनी रहेगी - मैं आत्मा शरीर आदि को नाशवान् देख रहा हूँ; इसमें कोई बाधा नहीं आने वाली है।

साधक १ – स्वामी जी ! किसी एक विषय के पीछे लग जाएँ तब बुद्धि उस विषय में कार्य करने लग जाती है लेकिन ईश्वर वाला जो विषय है, वह कच्चा होने के कारण छूट जाता है। उससे न्यूनता बनी रहती है। दोनों को साथ लेकर चलने का सामर्थ्य अभी नहीं है।

स्वामी जी – इसमें दो बातें हैं। हो सकता है हम ईश्वर के विषय में नई खोज न कर रहे हों पर हमने आज तक ईश्वर के विषय में जितना निर्णय ले लिया है, उसको तो बनाए रखेंगे। अन्य विषय के मुख्य हो जाने पर भी उस पुराने को सुरक्षित रखना होता है। यदि उसको सुरक्षित नहीं रखेंगे तब ईश्वर को स्वीकार करने में जो गुण प्राप्त होते हैं, वे ईश्वर को उस रूप में न मानने पर नहीं रहेंगे। जैसे कि ईश्वर को मानते रहने पर स्व-स्वामि-सम्बन्ध टूटा रहेगा और यदि ईश्वर को नहीं मानेंगे तब अपना स्व-स्वामि-सम्बन्ध बन जाएगा या जगत् का कोई स्वामी नहीं है, ऐसा दिखाई देगा। इसलिए नए विषय की खोज करते हुए उस पर अधिक बल तो दिया जा सकता है किन्तु ईश्वर वाले स्तर को ज्यों का त्यों बनाकर रखा जा सकता है। वह तो भूमिका के रूप में, आधार के रूप में बना रहेगा क्योंकि यह संसार अनित्य है और इसको बनाने वाला, चलाने वाला, सुरक्षित रखने वाला भी कोई है; यह ज्ञान साधारण बात नहीं है। क्योंकि संसार के साथ उसका रचयिता जुड़ा रहेगा, अन्यथा उसके बिना यह बन भी नहीं सकता। यह सुरक्षित भी नहीं रह सकता। यह प्रलय की स्थिति में भी नहीं जा सकता। इसलिए विषयान्तर की खोज कुछ प्रबल तो हो सकती है परन्तु उसके समक्ष ईश्वर का परित्याग नहीं हो सकता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक व्यक्ति भूमि आदि की खोज करते समय भी ईश्वर वाले सिद्धान्त को प्रबल रूप में मन में बराबर बनाए रखता है। जब वह प्रलयावस्था से इस ओर वापस लौटता है तब इन वस्तुओं को देखता है, पुनः कहता है कि इन्हें ईश्वर ने बनाया है, ये हमारे नहीं हैं। ईश्वर के दिए हुए हैं। ईश्वर को मानते रहने पर ही जब भी वस्तुएँ दिखाई देंगी, वह ऐसा कह सकेगा। इसलिए नई खोज करते हुए भी इसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती है।

दूसरी बात है जिसने सब कुछ दे रखा है उसके प्रति मेरा कर्त्तव्य भी तो है। अतः जिसने सब कुछ बनाया है उसकी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेगा। कृतज्ञता से अभिव्यक्ति करेगा। उसकी ओर आकृष्ट होगा। ये बातें उसमें बनी रहेंगी। अब विराम ॥

६७ आत्मनिरीक्षण

वृत्ति-निरीक्षण : आषाढ़ कृ. १२/२०६०-२६/७/०३

अब आप सुनाएँगे कि वृत्तियों के उठने के कारणों को कभी आप जानने का प्रयास करते हैं या नहीं, कैसा रहता है?

साधक ४ – हाँ जी!

स्वामी जी – उपासना में बैठने पर एक नियम बनाया कि अब ईश्वर को छोड़कर किसी अन्य विषय को नहीं उठाना है। तो उसका पालन करते हैं अर्थात् पुनरपि वृत्तियाँ उठती हैं?

साधक ४ – हाँ जी!

स्वामी जी – वृत्ति उठाने वाला मैं आत्मा हूँ, मन नहीं; ऐसा भी सोचते हैं?

साधक ४ – जी!

स्वामी जी – अच्छा! तो जब आप वृत्तियाँ उठाते हैं तब उसमें प्रयास करने पर वे कितने काल में रुकती हैं या क्या रहता है?

साधक ४ – कभी-कभी तत्काल रोक देता हूँ, कभी एकाध मिनट और कभी दो-तीन मिनट लग जाते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी! आप सुनाएँगे।

साधक ५ – स्वाध्याय के लिए समय नहीं लगाया।

स्वामी जी – जैसे आपने स्वाध्याय नहीं किया, निदिध्यासन नहीं किया तब उसका कोई दण्ड लिया या नहीं?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५ – स्वामी जी ! आज का तो नहीं लिया।

स्वामी जी – जब आप कोई दण्ड नहीं लेंगे तो परिणाम होगा कि आपकी प्रवृत्ति बिगड़ती चली जाएगी, आप रुकेंगे नहीं। इसलिए या तो कोई दूसरा दण्ड दे या स्वयं उसका दण्ड लें, अन्यथा व्यक्ति जैसा चाहे वैसा करता रहे तब अच्छे काम छोड़ने की और बुरे काम करने की उसकी प्रवृत्तियाँ बढ़ जाएँगी। हाँ जी ! आप सुनाएँ।

साधक ८ – आज भी दिनचर्या ठीक नहीं रही।

स्वामी जी – तो क्यों नहीं रही, कारण क्या रहे ?

साधक ८ – सुबह जल्दी नीद खुल गई।

स्वामी जी – कितने बजे ?

साधक ८ – दो-ढाई बजे।

स्वामी जी – वह जल्दी थोड़े ही हुआ।

साधक ८ – इतना पहले का अभ्यास नहीं है।

स्वामी जी – अच्छा ! तो आप दिन में कुछ सोते हैं या नहीं ?

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – तो दिन में मत सोया करो। नींद को रोकने का यह भी एक उपाय है।

साधक ८ – स्वामी जी ! करेले की सब्जी बनी थी, उसका कुछ गर्म प्रभाव था, उस ओर ध्यान नहीं दिया था। आगे से मैं इसका ध्यान रखूँगा। प्रायः विश्राम करने के पश्चात् स्थिति अच्छी बन जाती थी, आज विश्राम के पश्चात् भी नहीं बनी।

स्वामी जी – उसका एक उपाय है कि जब आपको करेले का साग गर्म रहता है तो उसमें भी यदि अधिक खाने से प्रतिकूल रहता हो तब मात्रा कम कर दें।

साधक ८ – स्वामी जी ! थोड़ा ही लिया था।

स्वामी जी – वह भी गर्मी कर गया !

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – या आपके ऊपर मानसिक प्रभाव बहुत पड़ता है ?

साधक ८ – नहीं ! मुझे इस वस्तु का ध्यान भी नहीं था कि मुझे गर्मी करेगा। खाते समय भी ध्यानपूर्वक थोड़ा ही लिया था। जब दोपहर को विश्राम करके उठा तब शरीर स्वस्थ अनुभूत नहीं हुआ, ऐसा लग रहा था जैसे नींद अधूरी रह जाती हो। तब ध्यान आया कि करेले की सब्जी खाई थी, उससे ऐसा हुआ।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप सुनाएँगे -

साधक ६ – प्रातः उपासना ठीक नहीं रही।

स्वामी जी – तो उपासना जो अच्छी नहीं हुई उसमें कारण क्या था ?

साधक ६ – सिर दर्द कारण रहा। विशेष चिन्तन, सज्जा नहीं हुई उससे ....।

स्वामी जी – एक तो आप भाषा को ठीक बना लो। आपके बोलने में शब्दों का प्रयोग, वाक्य की रचना आदि में अस्पष्टता रहती है। इसको सीख लो। भाषा को ऐसे नहीं बोलना चाहिए जैसे आप बोल देते हैं। इसके लिए पहले अक्षर को, शब्द को, वाक्य को विचार लेते हैं कि यह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बोलूँगा। इस प्रकार वाक्य को योजनाबद्ध होकर बोलना चाहिए। व्यक्ति बिना योजना, बिना शब्दावली के चयन, बिना किसी शैली के बोलना आरम्भ कर देता है, इससे उसकी भाषा बिगड़ जाती है। आपके वाक्य का कुछ पता न चला कि क्या बोल दिया। ऐसा नहीं होना चाहिए कि जो मन में आया, वह बोल दिया। बात को समझे बिना, कुछ का कुछ बोल दिया, जबकि भाषा में स्पष्टता होनी चाहिए, एक-एक शब्द, अक्षर सुनाई देने चाहिएँ। वाक्यों को बड़ी सूझबूझ के साथ प्रयोग करना आएगा तब आप अपनी बात सामने वाले के समक्ष रख सकेंगे, अन्यथा उसे समझ ही नहीं आएगा कि आप क्या बताना चाह रहे हैं। यदि अब नहीं सुधारा तो आप सत्तर वर्ष के बूढ़े हो जाओगे तब भी आपको बोलना नहीं आएगा। अब आप सुनाएँगे।

साधक ७ – ध्यान में बाधा आती है उसको हटाने का अभ्यास कर रहा हूँ।

स्वामी जी – ध्यान में जो बाधा आती है, वह क्या आती है?

साधक ७ – विचार।

स्वामी जी – अच्छा! जो विचार आते हैं तो आप कब देख पाते हैं कि विचार आ गए। कितने काल पश्चात् आपको पता चलता है?

साधक ७ – तुरन्त पता चल जाता है।

स्वामी जी – हाँ! अब अभ्यास करते-करते आप विचार उठाने से पहले यह पता लगाने लगें कि मन को, आत्मा को कहाँ लगाना है? यदि आपने आत्मा को या मन को खुला छोड़ दिया तब अपनी रक्षा नहीं कर सकेंगे। कोई भी अनिष्ट विचार आ सकता है और कहीं भी मन को चलाया जा सकता है। इसे नहीं रोक सकते। क्या समझ में आया?

आत्मा को, स्वयं को नियन्त्रण में रखना। पुनः मन को नियन्त्रण में रखना, इन्द्रियों को, शरीर को नियन्त्रण में रखना। यदि आप इनको नियन्त्रण में नहीं रखते तब बुरे विचारों को रोक नहीं पाएँगे और जो अच्छे विचार उस काल में करने थे, वे छूट जाएँगे तथा जो अन्य अच्छे विचार उस काल में नहीं आने थे, वे आ जाएँगे। अब देखो, क्या समझ में आया? बोलो या सब कुछ आ गया, ऐसा मुझे मान लेना चाहिए?

साधक ४ – आ गया।

साधक ५ – यदि स्वयं के ऊपर हम नियन्त्रण करने का अभ्यास नहीं करेंगे तो जो बुरे विचार हैं उनको हम पूरी तरह से पकड़ नहीं पाएँगे। वे विचार जब कभी आ जाएँगे और हमको प्रभावित करेंगे और अच्छे विचारों को हम अधिकार पूर्वक नहीं ला सकेंगे।

स्वामी जी – अच्छे विचार जो अभी हमको चाहिएँ, उनको अधिकार पूर्वक लाकर उपस्थित करना और अन्य अच्छे विचार जो इस काल में नहीं चाहिएँ, उनको रोकना; यह करना होगा। उदाहरण के रूप में पुनः सुनो और पुनः पुनः प्रयोग करो। जैसे कि आप उपासना में बैठ गए। अब उपासना से सम्बन्धित विचार आपने रखने हैं किन्तु परोपकार करना, किसी रोगी की सेवा करना, किसी विशेष ग्रन्थ को पढ़ना, किसी व्यक्ति को सम्मति देना अथवा समाज राष्ट्र के लिए मेरा पूरा जीवन लग जाएगा, ऐसी योजना बनाने लग गए। पुनः इस विषय को उपस्थित किया कि यह भी जानना आवश्यक है कि जो महत्तत्त्व नाम का पदार्थ ईश्वर ने बनाया, वह किस आकार-प्रकार का था। अब उस विषय में रुचि हो गई और विचारना आरम्भ कर दिया। तो इस प्रकार अच्छे विचार भी बिना अधिकार के, बिना योजना के व्यक्ति उपस्थित करता है जो उस अभीष्ट अच्छे काम को नहीं होने देते। अब देखो क्या समझ में आया?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५ – व्यक्ति अच्छे विचारों को बिना योजना, बिना अधिकार के उपस्थित करता है, किन्तु ऐसा नहीं करना चाहिए।

स्वामी जी – आपने इच्छा-पूर्वक अच्छे विचारों को स्थान दे दिया कि बहुत अच्छा है, यह विषय तो विचारना ही चाहिए। ऐसे आप अपने मन में इच्छा-पूर्वक विचार ले आए। आपको वे विचार अच्छे लगे तो कुछ काल उनको रखेंगे ही। किन्तु अब उनको हटाने लगेंगे तब हटेंगे नहीं। आप कहेंगे मैं तो ईश्वर की उपासना के लिए, ध्यान करने के लिए उपस्थित हुआ था, यह क्या करने लगा? ये रुक नहीं रहे हैं। पर अच्छे विचार हैं। पुनः कहेंगे नहीं! हटाओ इनको, भले ही अच्छे विचार हैं, नहीं करने हैं, अब आप रोक देंगे किन्तु अब तक आपके ऊपर उनका प्रभाव पड़ चुका। इसलिए रोक देने पर भी उठते दिखाई देंगे क्योंकि आप उसमें इच्छा पूर्वक लगे थे, प्रयास किया था। क्या समझ में आया?

साधक २ – यदि किसी विचार को हमने स्वेच्छा से स्थान दे दिया तो अब वह विचार अपने आप नहीं जाएगा।

स्वामी जी – वह विचार बहुत प्रबल हो जाएगा और उसको हटाना चाहेंगे तब भी हटाना कठिन हो जाएगा। कभी-कभी ऐसा भी होगा कि वे विचार हटेंगे ही नहीं। यद्यपि यहाँ कारण होता है हम उसको रोके रहते हैं हमारी मन्द इच्छा बनी रहती है परन्तु उसका पता नहीं चलता। यहाँ दोनों में क्या अन्तर है, इसको देखो! मन्द इच्छा और तीव्र इच्छा। जैसे तीव्र इच्छा से विचारों को ग्रहण किए रहते है ऐसे ही मन्द इच्छा से भी विचार गृहीत रहते हैं। क्या समझ में आया?

साधक ५ – विचारों को ग्रहण करने की एक तो मन्द इच्छा होती है और दूसरी तीव्र इच्छा होती है।

स्वामी जी – तीव्र इच्छा होती है। इसमें व्यक्ति बुद्धिपूर्वक, ज्ञानपूर्वक अच्छा मानकर विचारों को ले आता है कि उसके ऊपर विचार करना चाहिए। क्या समझ में आया?

साधक १ – अच्छा है, इसके ऊपर विचार करना चाहिए।

स्वामी जी – एक स्थिति में उसको पता ही नहीं चला कि मैं अच्छा विचार ले आया हूँ, यह मन्द इच्छा से होता है। अब आपका क्या अनुभव है सुनाओ? आपके मन्द इच्छा से विचार आते हैं या तीव्र इच्छा से?

साधक २ – एक में तो जान रहा होता है कि इस विषय को लाकर मैं विचार कर रहा हूँ और छोड़ नहीं रहा होता है और दूसरे में उसको पता नहीं रहता कि मैंने किसी विषय को उठाया भी है।

स्वामी जी – उठाया है, मैं ले आया हूँ; यह उसको पता नहीं चलता है, केवल विषय आया हुआ दिखता है। इस अवस्था में भी उसको तत्काल रोका जा सकता है किन्तु यदि आए हुए को थोड़ा-सा समय, थोड़ा-सा स्थान आपने दे दिया, उसके ऊपर विचार करने लगे, पुनः वह व्यापक रूप में आपके अन्दर फैल जाएगा। प्रबल हो जाएगा। कालान्तर में यदि आपने ध्यान नहीं दिया तो इतना प्रबल हो जाएगा कि बहुत बल लगाने पर, बहुत प्रयास करने पर रुके अथवा योग्यता कम हो तो रुकेगा ही नहीं।

साधक १ – वे जो तीव्र इच्छा से विचार लाए जाते हैं, वे योजना पूर्वक भी लाए जा सकते हैं और बिना योजना के भी?

स्वामी जी – हाँ! ऐसा भी होता है। उसमें मुख्य कारण यह होता है हमने उसको अच्छा समझा और बुद्धिपूर्वक ले आए। जैसे कि आप शिविर में भाग ले रहे हैं और आपका एक मित्र,

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो बहुत अच्छे गुण-कर्म-स्वभाव का है, आ गया और आपसे कहा कि मैं इस योगप्रशिक्षण में भाग लेना चाहता हूँ, मेरी ये-ये योग्यताएँ हैं। मैं इसी की खोज में था कि कहीं ऐसा अवसर मिल जाए जिससे योग विद्या को सीख लूँ। अब आप उससे बहुत प्रभावित हुए और अब उपासना का समय आने पर उपासना के लिए बैठ गए। अब क्या हुआ? आप योजना बनाने लगे कि अधिकारियों से, अमुक-अमुक व्यक्ति से मैं इस सम्बन्ध में बात करूँगा कि मैं इस व्यक्ति को जानता हूँ, यह मेरा परिचित व्यक्ति है और इसे ले लेना चाहिए। इस प्रकार आपने उपासना में इच्छापूर्वक एक अच्छे विषय को उठा लिया। समझ में आया?

साधक १ – इसमें योजना क्या है?

स्वामी जी – मैं अधिकारियों को बताऊँगा, यह योजना है। इसको आप इच्छापूर्वक ले आए हैं। यह एक स्थिति है।

दूसरी स्थिति है, जिसमें यही विचार आपने अपने मित्र के साथ कभी बहुत पहले छः मास, एक वर्ष या और पहले किये थे कि कभी योग प्रशिक्षण में भाग लेना है और इसको पढ़ाएँगे, सिखाएँगे। उसी के संस्कार आपके मन में ज्यों के त्यों पड़े थे। आज आपका वही मित्र सामने आ गया, पुनः पिछली घटनाओं के सारे चित्र सामने आ गए। अब उसी को उपासना के काल में उठा लिया और विचार करने लगे, परन्तु उठाते समय पता नहीं चला। ये विचार मन्द इच्छा से उठाए गए हैं। यहाँ हम उस इच्छा को पकड़ नहीं पाते हैं।

इस पर नियन्त्रण के लिए क्या करना है? पहले से ही मन को पकड़ कर रखेंगे। आत्मा की इच्छा को, प्रयत्न को, ज्ञान को, जिनसे विचारों का संचालन होता है, उनको आप पकड़े रहेंगे। जब सतत पकड़े रहेंगे तब वे जो मन्द इच्छा से विचार आते हैं उनको नहीं आने देंगे। इसी प्रकार जो तीव्र इच्छा से आते हैं उनको भी नहीं लाएँगे। कल्पना कीजिए जैसे कि अब आप बैठे हैं और अपने मन को, आत्मा को संयम में रख रखा है, पकड़ रखा है तो अब सूक्ष्म रूप में जो विचार आ रहे थे, वे अब नहीं आ पाएँगे। यदि आपने नियन्त्रण में नहीं रखा तो तत्काल वे विचार आते दिखाई देंगे और आपको रोकने के लिए प्रयत्न करना पड़ेगा। कभी-कभी प्रबल हो गया तो प्रयत्न करने पर भी उसको रोक नहीं पाएँगे। चाहो तो आप अभी बैठे-बैठे प्रयोगकर देख लो! क्यों जी? बैठकर देखना है?

साधक १ – हाँ जी!

स्वामी जी – पहले देखना यह है कि आपको जो यह बात समझाई गई कि एक तो मन्द इच्छा से, मन्द प्रयत्न-सूक्ष्म प्रयत्न से जीवात्मा विचारों को, स्मृति-वृत्ति को उत्पन्न कर लेता है, आने पर पता चला कि स्मृति वृत्ति उत्पन्न हो गई है। दूसरी स्थिति में पहले से ही योजना-पूर्वक स्मृति को उठाकर विचार करने लगता है। जैसे कि इस व्यक्ति को इस-इस रूप में प्रवेश कराने के लिए मैं प्रयास करूँगा क्योंकि यह बहुत बड़ा कार्य है, इससे ये महान् बन जाएँगे; ऐसे बुद्धिपूर्वक, योजना-पूर्वक तीव्र इच्छा से इसको उठाया जाता है। आप दोनों भागों को देख सकते हैं। पहले आप बैठकर यह देखो कि जो विचार उठ जाते हैं, उनका पता क्यों नहीं चलता, वे कैसे आते हैं?

साधक १ – पहले निर्विषय की स्थिति बनाएँ?

स्वामी जी – हाँ! उसको नितान्त रोकने की स्थिति बनानी पड़ेगी। आत्मा को, इच्छा को, प्रयत्न को, मन को रोक दिया गया। अब जब रोक दिया, इसके पश्चात् जो विचार उठने की स्थिति है, जिसमें ये दोनों बातें हैं, एक तो यह - आप नितान्त रोके रहना चाहते हैं और दूसरी - उस विचार

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को कैसे उठाते हैं, उनको देखने के लिए कोई विचार उठाकर देखना होता है। इसमें इस दूसरी स्थिति को देखना है।

साधक १ – एक बार पहले पूरा रोक दें, पुनः योजना-पूर्वक एक विचार उठाते समय पकड़ें कि यह कैसे होता है?

स्वामी जी – ऐसे भी हो सकता है। पहले आप अपनी सारी विचार-धाराओं को रोक दें। पुनः विचार तो उठेंगे ही, अथवा यह कहो कि स्वाभाविक रूप से विचार उठाए जाएँगे ही। इसी स्थिति में आप देखना आरम्भ करें कि विचार कैसे उठ रहे हैं? आरम्भ कीजिए –

प्रयोग आरम्भ। समय लगभग ५ मिनट।

अब आप रुकेंगे और अपना-अपना अनुभव प्रयोग बताएँगे। कैसा रहा? हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ५ – पहले अपने विचारों को रोकने का प्रयास किया। तत्पश्चात् मैं इच्छा कैसे करता हूँ; उसको पकड़ने का प्रयास किया। उस समय धारणा मन में की और जो इच्छा मैंने की, वह अच्छी प्रकार से पकड़ में नहीं आई। विचार उठने के पश्चात्, लाने के पश्चात् मुझे पकड़ में आया कि यह विचार मैंने ले आया हूँ (उठा लिया है)।

स्वामी जी – क्या भाषा बोल दी?

साधक ५ – जो इच्छा मैंने की।

स्वामी जी – न, आपकी भाषा में कुछ गड़बड़ दिख रही थी।

साधक ५– मैंने विचार ले आए।

स्वामी जी – हाँ! तो भाषा कैसे बनेगी?

साधक ५ – मैं विचार ले आया।

स्वामी जी – यह तो ठीक बन जाएगी।

साधक ५ – स्वामी जी! जो इच्छा पकड़ में आनी थी, वह पकड़ में नहीं आई।

स्वामी जी – ठीक है! अब आप बताएँगे। क्या निरीक्षण-परीक्षण किया? भाषा को ठीक से बोलना।

साधक ६ – पहले अधिक प्रयास रोकने का नहीं किया। बहुत सूक्ष्म रूप से कुछ स्मृति आई या उठाई।

स्वामी जी – पता नहीं चला उसका।

साधक ६ – जी! और बीच में प्रयास किया कि मैं कोई विषय न उठाऊँ।

स्वामी जी – अच्छा! पुनः क्या हुआ?

साधक ६ – उसमें भी यही विचार करता रहा कि कोई विषय नहीं लेना। तो ऐसा रहा।

स्वामी जी – अच्छा!

साधक ६ – एक बार थोड़ा-सा ढीला छोड़ने पर कोई स्मृति या ध्वनि सूक्ष्म रूप से सुनी परन्तु यह अनुभव नहीं कर पाया कि कैसे मैंने इसको उठाया या सुना।

स्वामी जी – और आप बोलेंगे क्या प्रयोग में आया? स्थिति कैसी बनी?

साधक ७– मैंने विचार किया कि मै इन विचारों को मन में नहीं लाऊँगा तब स्थिति ठीक रही। पश्चात् विचार लाया गया जिसमें आपके दिए दृष्टान्त से स्मरण आया एक सत्यव्रत नाम का ब्रह्मचारी है जो आपका शिष्य है। पहले कोलायत (बीकानेर, राजस्थान) में रहते थे। अब हरियाणा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के लाडनू में रहते हैं। उनकी भी इच्छा थी कि मैं भी स्वामी जी के पास जाऊँ और योगाभ्यास सीखकर लाभ उठाऊँ परन्तु उनके लिए मैं आपसे पूछ नहीं पाया।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ४ – प्रारम्भ में मैंने मन में तीव्र इच्छा उत्पन्न की कि मन को किसी भी विषय में नहीं भेजूँगा। ईश्वर, जीव या प्रकृति किसी भी विषय में नहीं विचारूँगा। लगभग पूरे काल तक किसी विचार को नहीं उठाया। बीच में एक ध्वनि में एक सेकेण्ड के लिए मन को भेजा और अपने प्रयत्न और इच्छा से पकड़कर उसको रोक दिया।

स्वामी जी – तो इस प्रकार से सारा अध्ययन, मनन, मंथन और प्रयोग कर-करके देखना और मन, आत्मा आदि पर नियन्त्रण करना। पुनः हम जो विचारना चाहते हैं, मन को जहाँ लगाना चाहते हैं वहाँ लगा देना और जहाँ से हटाना चाहते हैं वहाँ से हटा लेना तथा जिस कार्य को करना चाहते हैं उसी को करना एवं जिसको नहीं करना चाहते हैं उसे रोक देना। ये सारे कार्य आपको करने ही पड़ेंगे। अब विराम॥

६८ यज्ञीयोपदेश

त्रिकर्म-विधि : आषाढ़ कृ. १३/२०६०-२७/७/०३

अब हम सब मिलकर ध्यान देते हुए श्रद्धा पूर्वक गायत्री मन्त्र के माध्यम से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। मन्त्रपाठ शनैः शनैः करेंगे जिससे मन्त्र के शब्दों का अर्थ भी मन में रख सकें और ईश्वर को भी सम्बोधित कर सकें। पाठ करते हुए असावधानी से यदि कोई विचार उठा लिया जाए तो उसको भी हम रोक सकें तथा उठाई हुई वृत्ति को पकड़कर उसके विषय में यह समझ सकें कि यह वृत्ति मैंने किस कारण से उठाई है?

ओं भूर्भुवः स्वः। तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि। धियो यो नः प्रचोदयात्॥ यजु. ३६/३।

आत्मनिरीक्षण के साथ आप बताएँगे कि क्या स्थिति बनी रही?

साधक ३ – अर्थ के साथ समर्पण भी करता रहा और बीच में दो बार विषयान्तर भी हुआ अर्थात् वृत्ति उठाई, तत्काल रोक दी और इस कार्य को करते हुए ईश्वर का कोई विशेष प्रभाव नहीं पड़ा कि मैं ईश्वर को सम्बोधन कर रहा हूँ, वह इतना महान् आदि कुछ प्रभाव विशेष नहीं रहा।

स्वामी जी – तो यह व्यक्ति की क्षमता के ऊपर निर्भर करता है कि वह अब तक कितना अभ्यास कर पाया? यदि उसका सामर्थ्य अधिक बढ़ जाता है, ज्ञान-विज्ञान अधिक उत्कर्ष को प्राप्त होता है, विवेक-वैराग्य उसके ऊँचे हो जाते हैं, उस स्थिति में वह मन्त्र-पाठ, शब्द का अर्थ, ईश्वर को सम्बोधन और ईश्वर की महत्ता को जानता हुआ ध्यान की ऐसी स्थिति बना लेता है। किन्तु थोड़े अभ्यास वाला व्यक्ति तो मन्त्र-पाठ करता हुआ इतना भी नहीं कर पाता कि वह साथ-साथ अर्थ कर सके। वह अर्थ का विचार नहीं कर पाता और जब कभी करता है तो मध्य-मध्य में भी

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विविध वृत्तियाँ उठाता रहता है। ऐसा भी होता है कि किसी का अर्थ कर पाया और किसी का छूट गया आदि। परन्तु ऐसी स्थिति नए साधक या जिसका अभ्यास अभी न्यून है, उसकी होती है। इसलिए यह अपनी योग्यता पर निर्भर करता है।

अब आपमें से जो पाठ, अर्थ, सम्बोधन, समर्पण या जितना कर पाए हों, उतना बताने का प्रयत्न करो।

साधक २ – स्वामी जी ! प्रयत्न करता रहा पर पुनः एक वृत्ति उठा ली। उसको रोककर पुनः इसमें विशेष विचार किया कि वृत्तियों को उठाने का कारण क्या है? उसमें दो-तीन बातें सामने आईं। जैसे कि एक तो मैं अपने को वहाँ से पृथक् मानता हूँ, जहाँ हूँ। दूसरी जिस स्थान से वृत्तियाँ विचार आदि उठते हैं मैं उसको अपने से पृथक् स्थान में मानता हूँ।

स्वामी जी – अब इतनी बात समझ में आई? ऐसा इसलिए किया जाता है, रोककर सुनाया जाता है कि आपको कोई बात पकड़ में आए। इन्होंने बतलाया कि वृत्तियाँ जो उठने के पश्चात् पकड़ में आती हैं उसमें कारण क्या था? कारण की खोज हुई तो पता चला कि कि मैं जीवात्मा जहाँ बैठा हूँ, जिस केन्द्र पर मैं हूँ, वृत्तियाँ वहाँ से नहीं उठती हैं अपितु वृत्तियाँ दूसरे स्थान से उठती हैं।

तो बात पकड़ में आ गई होगी, नहीं तो पुनः सुनाता हूँ। यह इसलिए दोहराया जा रहा है कि इनका भी पक्का हो जाएगा और थोड़ा बहुत आपको भी समझ में आ जाए। वृत्तियाँ उठाईं, कहाँ से आईं? उन्होंने कहा – मैं जीवात्मा जहाँ हृदय में विद्यमान हूँ वहाँ से वृत्तियाँ नहीं उठीं, वृत्तियाँ किसी दूसरे स्थान से उठकर आ गई हैं अर्थात् मैंने वृत्तियों को नहीं उठाया। ऐसी स्थिति बनी और यह कैसी स्थिति है? यह अज्ञान की स्थिति है। अब आप जानना चाहेंगे कि ज्ञान की स्थिति क्या है? तो जब एक व्यक्ति ने देखा कि वृत्तियाँ आईं, उठीं, पुनः उसको रोका और गवेषणा करने लगा ये वृत्तियाँ कहाँ से आईं और वह गवेषणा करते-करते यहाँ पहुँच गया कि हृदय प्रदेश में जहाँ वह स्वयं विद्यमान है। अब उसको पता चल गया कि वास्तव में ये वृत्तियाँ यहीं से आईं, मैंने उठाई हैं। यह क्या है? वृत्तियाँ यहाँ से उठीं और मैंने उठाई हैं; यह ज्ञान है, विद्या है, वास्तविकता है। अन्य किसी ने कोई अनुभूति सुनानी हो तो सुनाए –

साधक ३ – ऐसा भी लगता है कि ये वृत्तियाँ स्वभावतः उठती हैं।

स्वामी जी – हाँ !

साधक ३ – कोई इच्छा नहीं है, कोई प्रयत्न नहीं और जैसे कि बिना वृत्ति के रह ही नहीं सकते। कोई न कोई वृत्ति उठती रहेगी। कितना ही बल लगाएँ परन्तु वृत्ति आएगी। भले ही छूकर चली जाए, कहीं कोई विशेष प्रभाव नहीं करे परन्तु यह व्यापार चलता रहेगा। स्वभावतः चलती है; ऐसा भी कई बार अनुभव में आया।

स्वामी जी – यह जो अनुभव होता है कि स्वभाव से हमारी वृत्तियाँ चलती हैं, यह ज्ञान की स्थिति नहीं है। वस्तुतः ज्ञान की वृत्ति स्वभाव से नहीं चलती है। जैसे कि शारीरिक क्रियाएँ, जो हमारी नस-नाड़ियों, इन्द्रियों में होती हैं, वे भी स्वतः नहीं होतीं, अपितु उनमें आप ईश्वर कृत व्यवस्था समझें। यद्यपि हमारा जीवात्मा का बल उसके साथ जुड़ा हुआ है। परन्तु जीवात्मा वहाँ कोई विशेष प्रयत्न नहीं करता। इसलिए उसको थोड़ी देर के लिए स्वाभाविक कह सकते हैं। पाचन क्रिया हो रही है, रक्त की गति चल रही है। ये तो समझ में आते होंगे। इनको स्वाभाविक कह सकते हैं, स्वाभविक चलती रहती हैं परन्तु ज्ञान की वृत्ति स्वाभाविक नहीं चलती। दोनों में अन्तर है। पुनः दोहराऊँ?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– समझ में आ गया।

स्वामी जी – श्वास चल रहा है, हृदय की गति रक्त को दोनों ओर फेंक रही है, विविध कार्य हो रहे हैं। प्राण अपना कार्य कर रहा है। सोने के पश्चात् भी सारे कार्य वैसे ही चलते रहते हैं जैसे कि जागते समय। गाढ़ निद्रा में इनसे ज्ञान-पूर्वक हमारा कोई सम्बन्ध नहीं रहता है। ईश्वर कृत व्यवस्था से ये सब हो रहे हैं। सारे रस, रक्त, मांस आदि बनते रहते हैं। यद्यपि सूक्ष्म बल ईश्वर, जीवात्मा का भी इसके साथ जुड़ा हुआ है पर बुद्धि-पूर्वक जीवात्मा का कोई बल जुड़ा हुआ नहीं है। वह ज्ञान पूर्वक कहे कि मैं इतना बल लगाऊँगा तो इतना रस बनेगा, उतना रक्त बनेगा आदि ऐसा कुछ नहीं है। समझ में आया?

ज्ञान-पूर्वक जो वृत्ति होगी, वह स्वाभाविक नहीं चलेगी। कारण – पुनः शब्द-प्रमाण और अनुमान-प्रमाण के ऊपर बल दो तो उससे सिद्ध होगा कि चेतन ज्ञाता से जो प्रवृत्ति उत्पन्न होती है वह उसकी इच्छा और प्रयत्न से होती है। यद्यपि एक ऐसी स्थिति भी होती है जिसमें चेतन ज्ञाता उन कारणों को पकड़ नहीं पाता, जिनसे इच्छा होती है अथवा कम पकड़ पाता है। जैसे कि तमोगुण ने उसको प्रभावित किया और चिन्तन दुर्बल होने लगा तो इसको सावधान व्यक्ति भी नहीं रोक सकता। परन्तु सत्त्वावस्था में सावधान, सचेत व्यक्ति की वृत्तियाँ स्वभाव से नहीं चलतीं, कुछ समझ में आया होगा? अच्छा! अब प्रयोग सुनो –

जैसा कि आपको यह सिखाया जाता है कि सारी वृत्तियों को रोक दो और अब मैं सारी वृत्तियों को रोककर बैठूँगा अर्थात् न ईश्वर को विषय बनाऊँगा, न आत्मा को विषय बनाऊँगा और न भौतिक प्रकृति-विकृति, सृष्टि को विषय बनाऊँगा। यह एक सिद्ध प्रयोग है कि इसमें समस्त वृत्तियों को रोक देते हैं। यदि वृत्तियाँ स्वभाव से चलती होतीं तो उनको रोक नहीं सकते थे परन्तु हम रोक देते हैं। अतः स्वभाव से नहीं चलती हैं, यह सिद्ध होता है। यह सूक्ष्म, बड़ी विचित्र और असाधारण स्थिति है। इस स्तर को बनाना कि किसी अन्य पदार्थ को विषय नहीं बनाया है और मैंने अपनी इच्छा को, प्रयत्न को, ज्ञान-विज्ञान को, सारी वृत्तियों को रोक दिया है; यह गम्भीर विषय है। यह विषय रहेगा। यहाँ विषय का अभाव नहीं है। समझ में आ गया?

आप ध्यान देंगे, इस विज्ञान को न जानने-समझने के कारण अनेक मान्यताएँ बनीं, अनेक सिद्धान्त स्थापित किए गए, ग्रन्थ भी लिखे गए। बहुत कुछ हुआ किन्तु इसका आधार रहा मन को चेतन पदार्थ मानना। इसमें आत्मा को हटा दिया गया। आज मनोविज्ञान में जैसा कि मैंने कुछ लोगों से सुना है, आधुनिक मनोविज्ञान में पढ़ाया जाता है, क्या? एक चेतन मन है और दूसरा अवचेतन मन है अर्थात् एक ज्ञानवान् मन हैं और दूसरा ज्ञानरहित है। यही तो अर्थ है? हाँ जी! ऐसा क्यों हुआ? यह आत्मा के न समझने से हुआ, परमात्मा के न समझने से हुआ, भौतिक पदार्थ और चेतन पदार्थ के न समझने से हुआ है।

आप जब परिश्रम-पूर्वक योग, सांख्य, न्याय आदि दर्शनों को बार-बार पढ़ेंगे और प्रयोग में लाकर देखेंगे तब स्पष्ट हो जाएगा कि मन, बुद्धि, इन्द्रियाँ, शरीर तथा वहाँ चले जाइए सत्त्व-रज-तम तक तथा जहाँ तक भी वैज्ञानिक पहुँचे हैं, सभी जड़वर्ग हैं; यह सिद्ध हो जाएगा। सांख्य की एक स्थूल गणना में सत्त्व-रज-तम को लेकर चौबीस पदार्थ बनते हैं और ये चौबीस के चौबीस जड़ हैं, ज्ञान रहित हैं।

जब यह पता चला कि मैं जीवात्मा इन चौबीस से बिलकुल पृथक् हूँ, इनमें से मैं कोई भी नहीं हूँ, तब परिणाम यह निकला कि बुद्धि, मन या इन्द्रियाँ कोई भी हो, उसको चलाना न चलाना,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिलकुल रोक देना, आत्मा के आधीन हो गया। अब जहाँ चाहेगा वहाँ चलाएगा, जहाँ नहीं चाहेगा वहाँ नहीं चलाएगा। आप दूसरे पक्ष में देखिए, जो इन चौबीस तत्त्वों को ठीक से नहीं जानता-मानता वह मन इन्द्रियों की कठपुतली की तरह नाचता रहता है। प्रातःकाल से नाचने लगता और सोते समय तक नाचता रहता है। यहाँ तक कि स्वप्न में भी नाचता है। मन इन्द्रियों के आधीन होकर दिनभर दुःखी रहता है। काम-क्रोध उसको ऊपर से रगड़ते रहते हैं। यह स्थिति आज पूरे संसार की हो रही है।

अब चलो, हमारे वर्मा जी जैसे वैज्ञानिकों को छोड़ो, जो दर्शनों, उपनिषदों को पढ़ते हैं, योगाभ्यास सीखते-करते हैं। शेष वैज्ञानिक उसी चक्कर में हैं। उनको इन बातों का कोई अता-पता नहीं है। वे इसी चक्कर में हैं और राजा-महाराजा, अरब-खरब पति उसी चक्कर में हैं। ये जितने भी लोग हैं सारे इस चक्कर में स्वयं दुःखी हैं और अन्यों को दुःख दे रहे हैं।

तो हम यह मन्थन कर रहे थे कि विचार कहाँ से आते हैं? इस पर सुमेरु प्रसाद जी ने बताया कि मुझे ऐसा प्रतीत हुआ जहाँ मैं जीवात्मा हूँ, इससे कोई अतिरिक्त केन्द्र है, जहाँ से विचार आते हैं।

कोई कहता मस्तिष्क से आते हैं, कोई कहता है बाहर से आते हैं, कोई कहता है मन से आते हैं। अब कौन-सी बात मानी जाए, हम इसका निर्णय करेंगे।

अब एक प्रयोग बतलाता हूँ, इसको करके देखना। आप निदिध्यासन कर रहे हैं या ध्यान में बैठे हैं और गायत्री का जप आरम्भ करने वाले हैं। इतने ही काल में आपने मन को प्रेरणा दी कि एक व्यक्ति अथवा कोई भवन दिखाई दिया और आप देखने लगे। उससे क्या हुआ? आपने जो मन्त्र का जप करना था, वह छूट गया। क्या समझ में आया, बोलिए?

साधक ५ – किसी व्यक्ति या किसी पदार्थ की आकृति दिखने पर, वह जो मन्त्र का जप करना था, वह छूट जाता है।

स्वामी जी – अब व्यक्ति क्या करता है? वह कहता है - मन बड़ा दुष्ट है, देखो! इस चित्र को लाकर रख दिया। अज्ञानी व्यक्ति मन को धमकाता है, डांट मारता है, गाली देता है या अपशब्द बोलता है। जो भी हो, वह अपना दोष मन पर फेंक देता है कि यह मन ले आता है। तो ऐसी घटनाएँ लगातार चलती रहती हैं। इतना ही नहीं आगे बढ़ो जिसने बार-बार पढ़ा-सुना, विचार किया है, प्रयोग किया है ऐसे अच्छे साधक की बात कर रहा हूँ, ऊँचे स्तर वाले की, वह भी थोड़ा-सा असावधान हुआ कि कोई चित्र आकर दिखाई देने लगा। ऐसा होता है या नहीं?

साधक ३ – जी! होता है।

स्वामी जी – इतने में चित्र दिखाई दिया उसको और इस रूप में कि उसने चित्र के लिए कुछ किया ही नहीं।

साधक ३ – बिना इच्छा के ..।

स्वामी जी – बिना ही प्रयत्न, बिना ही योजना के चित्र दिखाई दे गया और ध्यान भंग हो गया।

अब इसको दूर करने का उपाय सुनिए। एक बार उसको किसी तरह हटा दिया, पुनः दूसरा-तीसरा चित्र दिखाई देने लगा तो उसका अन्तिम उपाय है प्रलयावस्था। मान लिया, कोई बीस वर्ष की बात, किसी की बड़ी अवस्था हो तो पचास वर्ष पहले की बात एकदैव याद आ गई। मान लो विद्यार्थी काल में पचास वर्ष पहले पढ़ते-पढ़ते कई बार समझाने पर भी उसको बात समझ में नहीं आई थी तब किसी विद्यार्थी या अध्यापक ने कह दिया था, यह जड़ बुद्धि है। इसको कुछ नहीं

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता-जाता। उसने जो यह पचास वर्ष पहले सुना था, आज जब ध्यान में बैठा, तो वह वाक्य याद आ गया और उसका ध्यान भंग हो गया। ऐसा नहीं होता?

अब व्यक्ति इसको पूर्ववत् हटाता है पुनः दूसरे-तीसरे उपस्थित हो जाते हैं। अब उसने क्या किया? संसार की प्रलयवत् अवस्था बना डाली। जो प्रलय आने वाला है और जो इस सृष्टि से पूर्व हो चुका है, दोनों प्रलयों को जोड़ दिया तो वर्त्तमान का कचूमर निकल गया। जो चित्र आया उसको उड़ाकर रख दिया, किसी को नहीं छोड़ा। अब इसकी स्थिति बन गई और बिना किसी बाधा के 'ओम् सच्चिदानन्द' का जप करने लगा। पुनः असावधानी से कोई चित्र ले आए तो पुनः प्रलयवत् अवस्था बना डाली। अब निर्बाध स्थिति बन गई। यदि प्रलयवत् अवस्था नहीं बनानी आती तब वह ऐसी स्थिति नहीं बना पाएगा। यह दूसरे के वश की बात नहीं है।

अब दूसरी बात सुनो! क्यों जी, नींद तो नहीं आई? थक जाता है व्यक्ति। तो जिसको प्रलयवत् अवस्था बनानी नहीं आती, इतनी क्षमता नहीं है पर इतनी बात उसकी समझ में आ गई कि मन जड़ पदार्थ है। मन को मैं चलाता हूँ जैसे कार जड़ पदार्थ है उसको चालक चलाता है, ऐसे ही आँख जड़ पदार्थ है इसको मैं खोलता हूँ, मैं मींचता हूँ। हाथ जड़ पदार्थ है इसको मैं चलाता हूँ। इसी प्रकार मन जड़ पदार्थ है और मन को भी मैं चलाता हूँ; यह समझ में आया। अब जो विचार उठता है उसको झट रोक देता है, नहीं चलाना; मन को मैं चलाता हूँ, नहीं चलाऊँगा। यहाँ भी पुनः दिखाई दिया तो पुनः कहता है - नहीं, मैं चलाता हूँ, मैं चलाता हूँ; इस प्रकार रोकता जाता है। यद्यपि मन को ये स्वयं चलाता है, पुनरपि बार-बार विचार आने का कारण है एक ओर तो चलाता है और दूसरी ओर रोकता है। कुछ समझ में आया?

साधक ५ – एक ओर स्वयं इच्छा करके उसको चलाता है?

स्वामी जी – एक ओर चलाता है और एक ओर रोकता है और कहता जाता है मैं अब मन को नहीं चलाऊँगा, पुनः वह चला देता है। चलाया, रोक दिया। नहीं, मैं चलाता हूँ मन को, अब नहीं चलाऊँगा। पुनः मन को चला दिया और कहा - मैं चलाता हूँ मन को, नहीं चलाऊँगा और रोक दिया। जैसे कि एक व्यक्ति उपदेश सुनने के लिए अहमदाबाद से हमारे विद्यालय में आया। एक बार उपदेश सुनकर अहमदाबाद वापस जाने के लिए कार में बैठ गया। अब उसकी दो प्रकार की इच्छाएँ हुईं। एक तो और उपदेश सुन लें तथा दूसरी घर चल पड़ें। क्या हुआ?

साधक गण – दो इच्छाएँ हुई।

स्वामी जी – एक अहमदाबाद जाने की और दूसरी विद्यालय में रहकर उपदेश सुनने की। वह दोनों इच्छाओं को एक साथ लेकर झटा-झट कार में बैठ गया। बैठते ही सोचने लगा अहमदाबाद जाना ठीक रहेगा, अन्यथा व्यापार का नुकसान हो जाएगा। इस प्रकार उसने कार को चला दिया। पुनः कहता है कि नहीं-नहीं! आत्मा-परमात्मा के विषय में यहीं उपदेश सुनेंगे। यहाँ रहना ठीक है। जाना ठीक नहीं है और कार को रोक दिया। इस प्रकार उसकी स्थिति संशयपूर्ण हो जाती है, वह दुविधा में फंस गया कि प्रवचन सुनूँ या अहमदाबाद जाऊँ? वह निश्चय नहीं कर पा रहा है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं। इस प्रकार विचारते-विचारते वह सोचता है कि प्रतिदिन सुनते हैं कल सुन लेंगे, पुनः कार को चला दिया। पुनः विचार करने लगा कि ये व्यापार की बातें धन-सम्पत्ति तो मिल जाती है, ये उपदेश कहाँ मिलते हैं और पुनः कार को रोक दिया। पुनः विचारता है कि मेरा तो सारा घर ही उजड़ जाएगा। पुनः कहता है तू भूल कर रहा है यहीं रह।

इस प्रकार आपने देखा कि मन में एक साथ दो विचार लाने पर क्या दुरावस्था होती है या

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन के वशीभूत होने पर व्यक्ति के लिए किसी निर्णय को लेने में कितनी कठिनाई होती है। समझ में आया या नहीं? जो कार वाले की गति है यही मन वाले की गति है किन्तु दोनों में इतना अन्तर है कि कार वाले को कम से कम इतना पता है कि कार को मैं चलता हूँ परन्तु मन को चलाने वाले को यह पता नहीं है कि मैं ही मन को चलाता हूँ। बस! वहाँ यही उलझन है।

अब जो कार चलाने वाले के सामने भी समस्या आई कि एक बार चलाता है, पुनः रोक देता है; ऐसा क्यों? जबकि वह जानता है कि मैं ही कार को चलाता हूँ। तो इसका समाधान है कि यहाँ भी एक तो धन-सम्पत्ति की इच्छा और दूसरी उपदेश सुनने की इच्छा है। दोनों में विरोध होने के कारण वह मन को नहीं रोक पा रहा है। भले ही कार पर अधिकार है किन्तु उसका भी मन पर अधिकार नहीं है। क्या समझ में आया?

साधक ३ – मन पर नहीं है।

स्वामी जी – मन पर अधिकार नहीं है। वह बेचारा उलझन में पड़ गया। इसलिए कभी चलाता है, कभी रोकता है। तो यह वही बात हुई कि किसी ने पूछा क्या बात है? तो उसने कहा – हमारा मन नहीं मानता। यह कभी तो कहता है अहमदाबाद चलो, अन्यथा व्यापार में हानि होगी। तो कभी कहता है यहाँ स्वामी जी के उपदेश हो रहे हैं, ये अन्यत्र नहीं मिलेंगे। अब क्या करूँ?

अच्छा! अब आगे बढ़ो। ये जो रेल के नीचे कटकर मरते हैं, फांसी पर लटक जाते हैं आदि भी मन के अनियन्त्रण में ही होता है। उसने सोचा था अस्सी-नब्बे प्रतिशत अंक लाएँगे। उसके मन में यह बात निश्चित रूप से बैठी हुई थी कि प्रथम स्थान आएगा, कम से कम द्वितीय स्थान आएगा परन्तु ऐसा हुआ नहीं। किन्हीं कारणों से उस व्यक्ति के अस्सी प्रतिशत के स्थान पर साठ अथवा पचास प्रतिशत अंक ही आए। अब उसको बहुत गहरा आघात पहुँचा कि यह तो बहुत बुरा हुआ, इसमें तो जीना ही व्यर्थ है। इसके पश्चात् उसने इतना तो सोचा कि चलो! कोई बात नहीं, पुनः कर लेंगे। परन्तु उसे लगा नहीं-नहीं! पुनः ऐसा ही हो जाएगा। नहीं! कोई बात नहीं, होता रहता है। नहीं! ऐसा जीना व्यर्थ है और फांसी पर लटक कर मर गए। अब बताओ, क्या करोगे? समझ में नहीं आया?

वह मन को नहीं रोक सका। यदि मन को रोक लेता तो मृत्यु से बच जाता। अच्छा! किसी ने सिखाया भी नहीं कि कोई बात नहीं, ऐसी घटनाएँ होती रहती हैं। कितनी ही हानि हो जाए चिन्ता की बात नहीं, मेरा कुछ नहीं बिगड़ा। सब परमात्मा का है, जो हो गया सो हो गया। इस अवस्था में वह मन को रोक देता और फांसी पर नहीं लटकता। समझ में नहीं आया?

मनोनियन्त्रण के अभाव में कितना दुःख होता है व्यक्ति को, यह तो पता चल गया? करोड़-पति, कोई अरब-पति हो सकता है। उसके यहाँ धन-धान्य भरा पड़ा है, सारे साधन हैं। नौकर- चाकर सब अनुकूल हैं, किन्तु पति-पत्नी के परस्पर विचार नहीं मिलते। पति पत्नी को अपमानित कर देता है, पत्नि पति को अपमानित कर देती है। बस क्या होता है? पत्नि एक दिन छत से कूदकर प्राण दे देती है, दूसरा पंखे से लटककर मर जाता है। जीना व्यर्थ है!! समझ में नहीं आया? इस प्रकार की घटनाएँ तो सुनते रहे होंगे?

साधक १ – हाँ जी!

स्वामी जी – वह मन को नहीं रोक सकता। मन की तरंगों को नहीं रोक पाता और आगे बढ़कर इतना आघात पहुँच जाता है कि हृदय गति रुकने से मौत हो जाती है। लगभग बीस वर्ष हो गए, एक बार बहुत भारी वर्षा हुई। दिल्ली में बाढ़ आ गई थी। छतों तक पानी भर गया।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमुना के साथ-साथ माडल टाउन नाम का एक भाग है उसमें भी पानी घुस गया। वहाँ एक अन्न का भण्डार था। उसमें चने की बोरियाँ भरी हुई थीं। जब उसमें पानी घुस गया तो चने फूल गए और बोरियों के साथ-साथ कोठी भी फट गई। सुना जाता है जिसकी कोठी थी उसको पता चला कि कोठी फट गई !! विनाश हो गया !! सुनते ही उस व्यक्ति की हृदय गति रुक गई और वह मर गया। ऐसा नहीं होता है ?

साधक ७ – होता है।

स्वामी जी – तो ये जो लौकिक आपत्तियाँ हैं इतनी सारी, योगाभ्यास के माध्यम से व्यक्ति इनसे बच सकता है। लोक में जो कष्ट होते हैं वे नियन्त्रण में लाए जा सकते हैं। विविध कष्ट जो दिनभर सताते हैं, व्यक्ति दिनभर क्लेशों से पिसता रहता है, योगाभ्यास के माध्यम से इन सबसे छूट जाता है। आगे बढ़ो तो भगवान का भी दर्शन होता है, वह पृथक् बात है, वह विशेष लाभ है।

अब हम एक मोटा प्रयोग करेंगे **ओम् सच्चिदानन्द** का जप करेंगे। सीधी भाषा है। ओम् इसका अर्थ है सर्वरक्षक, सत्-चित्-आनन्द; इन शब्दों से सच्चिदानन्द शब्द बना। सन्धि करेंगे तो सच्चिदानन्द शब्द बन जाएगा और पदच्छेद करेंगे तो सत्-चित् और आनन्द तीन बनेंगे। ये ईश्वर के विशेष गुण हैं। ईश्वर सत् है कभी नष्ट नहीं होता। चित् चेतन है अर्थात् सब कुछ जानता है, आनन्द अर्थात् आनन्द से परिपूर्ण है।

तो हम ऐसे जप करते हैं – **ओम् सच्चिदानन्द** हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक, सत्, चित्, आनन्द स्वरूप हैं; यह अर्थ हमने किया। जप वाक्य का पाठ करना, उसके अर्थ का जो विचार करना है उसको भावना कहते हैं। तो अब आप प्रयोग करके देखिए। ईश्वर को सम्बोधित करने का प्रयास कीजिए कि मेरे पास में ईश्वर बैठा हुआ है, मैं ईश्वर के पास में हूँ। ऐसे मानकर चलिए।

अब मन में बोलते-बोलते अर्थ का विचार करेंगे **ओऽऽऽम् सच्चिदानन्द। ओऽऽम् सच्चिदानन्द।** **ओम्** बोलते ही अर्थ करेंगे कि रक्षा करने वाले आप हैं। **ओ ऽऽऽ म् सच्चिदानन्द।** सत्, चित्, आनन्द हैं, इस अर्थ व भावना को साथ रखेंगे। **ओ ऽऽ म् सच्चिदानन्द। ओ ऽऽ म् सच्चिदानन्द।**

अब विराम ॥

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

६१ आत्मनिरीक्षण

स्वामित्व : आषाढ़ कृ. १३/२०६०-२७/७/०३

आप दैनिक जीवन में शरीर, इन्द्रिय, ज्ञान-विज्ञान, धन आदि को ईश्वर की सम्पत्ति मानते हैं या अपना मानते हैं या किसी अन्य का मानते हैं ?

साधक ४ – प्रायः अपना मानता हूँ। कभी-कभी चिन्तन करते हुए ईश्वर का समझ में आता है, अन्यथा अपना ही मानता रहता हूँ।

स्वामी जी – प्रायः जब अपना ही समझ में आता है तब उसके ऊपर पुनः प्रमाण-पूर्वक मन्थन करना चाहिए अर्थात् मेरा है, इसमें प्रमाण क्या है ? वहाँ स्वयं से पूछो कि यदि मेरा है तो इसमें प्रमाण क्या है ?

साधक ४ – चिन्तन करते समय तो सरलता से समझ में आता है, यह सब ईश्वर-प्रदत्त है परन्तु व्यवहारकाल में यह विषय ही नहीं बन पाता, वहाँ तो भूले ही रहते हैं।

स्वामी जी – हाँ ! तो अब उसको देखना है कि चिन्तन करने पर तो सिद्ध हो जाता है ईश्वर का है और व्यवहार में पुनः मानने लगते हैं कि मेरा है।

साधक ४ – जी !

स्वामी जी – तो इसका कारण है कि हमारे ऊपर 'मेरा' मानने के उलटे संस्कार पड़ गए। जैसे कि बाल्यावस्था से ही माता-पिता सिखा देते हैं कि ये तेरी वस्तुएँ हैं। अधिकतर कहते रहते हैं यह तेरा है, यह तेरा है और कभी-कभी ऐसा भी कहते हैं कि इसको जल्दी खा लो, नहीं तो दूसरा छीन कर ले जाएगा। ऐसा होता है या नहीं ?

साधक ४ – जी !

स्वामी जी – क्यों जी ? ऐसे उसको सिखाया जाता है कि यह तेरा है, यह भी तेरा है। इससे बचपन में 'मैं और मेरा' के मिथ्या ज्ञान के संस्कार पड़ गए। इसी प्रकार के जन्म-जन्मान्तर के भी संस्कार पड़े हैं, तो उनको आप थोड़े से प्रयत्न से नहीं रोक सकते। आप चाहें कि थोड़ा-सा चिन्तन करके इनको हटा दें, पुनः मन को खुला छोड़ दें, तो वे 'मैं और मेरा' नहीं हटेंगे। ईश्वर-प्राप्ति में सबसे बड़े बाधकों में से 'मैं और मेरा' एक है। क्या समझ में आया ?

साधक ३ – सबसे बड़ा बाधक है।

स्वामी जी – बड़े-बड़े जो बाधक हैं उनमें से यह एक बाधक है। बड़ा जटिल है, किन्तु हटाना असम्भव भी नहीं है। आज वैज्ञानिक विविध प्रकार के हजारों आविष्कार करते हैं। किन्तु सारे आविष्कार उन्होंने ईश्वर-प्रदत्त आँख, नाक, हाथ-पैर आदि से किए, पुनरपि सारी सम्पत्ति को अपना मानकर चलते हैं। इन जैसे वैज्ञानिको को छोड़ दो जो दर्शनों, वेदों या ऋषिकृत ग्रन्थों को पढ़ते हैं। ये तो मानकर चलते हैं कि ये सब ईश्वर का है। इन एकाध को छोड़कर शेष वैज्ञानिक यही मानते हैं कि यह शरीर मेरा है, आँख-नाक मेरे हैं, भवन, उपकरण मेरे हैं, पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश मेरे हैं। सब कुछ को वे अपना मानकर चलते हैं। इनका मैंने आविष्कार किया है। रेल का इंजन मैंने अपने बल से बनाया है। यह बात सब जगह लागू होती है।

ऐसा इसलिए हुआ कि उनको कभी सिखाया ही नहीं जाता कि ये सब ईश्वर के हैं। इसीलिए

CC-0. Prof. Satya Vrat Shastri Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वे ईश्वर का नाम भी नहीं लेना चाहते। ईश्वर का स्वामित्व हटाकर जितना-जितना अपना स्वामित्व मानते जाते हैं उतना-उतना अनर्थ होता जाता है। उतनी-उतनी अविद्या फैलती जाती है। सारे कर्म मैं और मेरे से व्याप्त होते जाते हैं। आगे चलकर विश्वस्तर पर 'मैं और मेरे' के ऊपर बड़े-बड़े झगड़े होने लगते हैं।

कई बार दो बड़ी-बड़ी शक्तियाँ, जिनके पास पूरी धन-सम्पत्ति होती है, वे एक-दूसरे के विनाश पर तुल जाते हैं, वहाँ कारण होता है कहीं मैं इससे छोटा न हो जाऊँ। जैसे कि किसी बड़े देश ने किसी छोटे देश को धमकी दी कि यदि तुम हमारी बात नहीं मानोगे तो या ऐसा नहीं करोगे तो देख लेना, हमारे पास यह बम है। पुनः दूसरा कहता है अच्छा ! तू मुझे धमकी दे रहा है ! हम भी नहीं डरेंगे और वे दोनों लड़ जाएँगे। दोनों का विनाश हो जाएगा। हमारा अपमान किया, हमारे देश का अपमान किया, इसको उड़ा दो। ठीक है ! तो जब तक आप उन संस्कारों को नहीं उखाड़ फेकेंगे तब तक 'मैं और मेरा' आपको नहीं छोड़ेगा। अब आप बताएँगे आपका क्या अध्ययन है ? मैं और मेरे की क्या स्थिति है ?

साधक ३ – जब विचार करते हैं तब यह भावना शिथिल पड़ती है कि यह मेरा है किन्तु व्यवहार करते समय मेरेपन की भावना प्रमुख रहती है। कोई वृत्ति बीच में उठा दी कि ईश्वर का भी है परन्तु वह गौण रहती है, अपनापन ही मुख्य रहता है।

स्वामी जी – आप उस समय यह नहीं देखते कि ईश्वर मुझे देख रहा है और मैं 'मेरा' मान रहा हूँ। इसका ईश्वर मुझे दण्ड देगा, क्या आप ऐसा नहीं सोचते ?

साधक ३ – जी ! इतना नहीं सोचते।

स्वामी जी – क्यों ? ईश्वर न्यायकारी है, सर्वव्यापक है और विपरीत करोगे तो दण्ड देगा। इसको हटाना चाहते हैं तो जब आप अपना मानने का विचार आरम्भ करते हैं तभी इस ओर ध्यान दें कि ईश्वर देख रहा है और मुझे सर्वथा नहीं छोड़ेगा, दण्ड अवश्य देगा। ऐसा करने पर आप 'मैं और मेरा' मानने से झट रुक जाओगे, नहीं तो क्यों रुकोगे। हाँ जी ! अब आप अपना अनुभव सुनाओ !

साधक २ – व्यवहार में यह अपना है या किसी अन्य का है; यह बात ही नहीं आती।

स्वामी जी – अच्छा !

साधक २ – विचार करने पर तो मान लेते हैं कि मेरा नहीं है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक २ – शेषकाल में बुद्धि-पूर्वक मानते ही नहीं इस बात को।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बताएँगे। क्या स्थिति रहती है 'मैं और मेर' की ?

साधक १ – जब इसी विषय 'मैं और मेरे' को हटाना लक्ष्य बनाकर विचार करता हूँ तब तो सफलता मिल जाती है परन्तु जब दूसरे विषय जैसे अनित्यता का सम्पादन अथवा मन को जड़ मानना आदि पर विचार करते हैं तब स्व-स्वामि-सम्बन्ध पूर्वतः बना रहता है।

स्वामी जी – पुनः जुड़ जाता है।

साधक १ – जुड़ा ही रहता है। एक समय में एक को ही लेकर चलने की क्षमता बनी है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप सुनाएँगे !

साधक ५ – विचार करने पर यह बात समझ में आ जाती है कि इन्द्रियों, शरीर आदि का

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी ईश्वर है, पर व्यवहार काल में इस बात को प्रायः भूला रहता हूँ। तब अपना मानकर ही व्यवहार करता हूँ।

स्वामी जी – अच्छा ! आपको प्रतिदिन यह सिखाया जाता है कि अपना मानकर न चलो, ईश्वर का मानकर चलो। तो यह एक आवश्यक नियम हो गया। पुनः आप यह नहीं सोचते कि मैं नियम के विरुद्ध चल रहा हूँ तो समाधि तक नहीं पहुँच पाऊँगा ?

साधक ५ – कभी-कभी ऐसे विचार आते हैं पर वे कुछ समय के लिए होते हैं और अन्य ज्ञानों से पुनः दब जाते हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! तो आप जिन विचारों से ईश्वर के स्वामित्व को दबाते हैं, उनको रोककर हटा नहीं सकते। जो 'मैं और मेरे' के सम्बन्ध को जोड़ते हैं, उनको पकड़कर हटा दें। इसके अतिरिक्त जब यह सिद्ध होता है कि पहले शरीर आदि कुछ भी नहीं था, प्रलय था और आगे भी प्रलय होने वाला है तो जैसे प्रलय से पूर्व कोई वस्तुतत्त्व हमारा नहीं था, उसी प्रकार अगले प्रलय में भी हमारा कुछ भी नहीं रहेगा। इसमें क्या सन्देह होता है ? भूतकाल में कोई वस्तु हमारी नहीं थी, क्या इसमें सन्देह है ? अच्छा! भविष्य काल में भी कोई वस्तु हमारी नहीं रहेगी, क्या इसमें कोई सन्देह है ?

साधक ३ – वर्त्तमान काल में तो है, यह ज्ञान बना रहता है। आज तो है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक ३ – तो उसको अपना मान रहे हैं।

स्वामी जी – नहीं। आज जो है वह ईश्वर की दी हुई है, ऐसा मानकर उसका प्रयोग करो। देखो ! इसका समाधान है।

साधक ३ – पीछे था नहीं और आगे होगा नहीं।

स्वामी जी – जब ये दोनों ज्ञान काम करने लगते हैं कि पहले मेरा कुछ नहीं था, आगे भी नहीं रहेगा। तब यह 'मैं और मेरे' का सम्बन्ध कटने लगता है। व्यक्ति यहाँ तक पहुँच जाए कि जब मेरा जन्म नहीं हुआ था तब मेरी आत्मा कहाँ थी, इसका मुझे पता नहीं। इसे तो ईश्वर ही जानता है और उसी ने इस शरीर के साथ सम्बन्ध जोड़ा। आगे चलकर, जब मैं छोटा बालक था, तब माता-पिता कहने लगे यह तेरा हाथ है, यह तेरा पैर है, यह तेरा वस्त्र है आदि। उस समय मैं और मेरे का पाठ पढ़ाया गया। अतः पहले मेरा कुछ भी नहीं था। इसी तरह आगे जब यह शरीर छूटेगा तब भी कुछ नहीं रहेगा। ये दोनों ज्ञान पक्के हो जाने चाहिएँ। हाँ जी ! अब आप बताएँ।

साधक २ – स्वामी जी ! जहाँ पर दो स्वामियों का प्रसंग आता है वहाँ पर तो यह होता है कि यह इसका है, इसका नहीं। किन्तु जहाँ दोनों का अभाव है, वहाँ यह प्रसंग नहीं उठ पाता है कि किसका माने, किसका नहीं माने।

स्वामी जी – उदाहरण बनाना पड़ेगा।

साधक २ – जैसे कि मैदान में जो घास है, यह आर्यवन की है या अपने विद्यालय की है। यही जब उखाड़कर सड़क पर फेंक दी जाए तब नहीं लगेगा कि आर्यवन की है या विद्यालय की है। वहाँ तो किसी की भी नहीं है, यही लगता है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक २ – ऐसे सभी वस्तुओं में ईश्वर कहीं उपस्थित नहीं होता है या कोई दूसरा भी उपस्थित नहीं होता है तब इसका मानें कि उसका मानें, यह बुद्धि ही नहीं चलती है।

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – कुछ समझ में आया। मुझे पूरा स्पष्ट नहीं हुआ।

साधक २ – अभिप्राय है कि पृथ्वी आदि वस्तुओं में यह प्रसंग नहीं आता है कि किसका मानकर चलें। व्यवहार बिना किसी का माने ही चलता रहता है।

स्वामी जी – नहीं। एक मोटा दृष्टान्त है। आप जब चलते हैं और पैर में कोई कांटा लग जाए तब कहते हैं मेरे पैर में कांटा लग गया। वहाँ मेरे की स्थिति बनती है। चलते-चलते पैर में कांटा लगा तब मेरे पैर में कांटा लगा यह बुद्धि बनेगी, ऐसे ममत्व जुड़ेगा।

साधक २ – जी ! वहाँ भी पैर के विषय में, मेरे और ईश्वर के स्वामित्व का कोई प्रसंग नहीं आता। क्योंकि यदि किसी की सम्पत्ति होती है तब वह दूसरे को बाधित करता है कि यह नहीं लेना है। इस प्रकार से ईश्वर ने कभी पैर के लिए हमको बाधित नहीं किया कि वहाँ पर नहीं रखना।

स्वामी जी – नहीं! वह बाधित इसलिए नहीं करता कि उसने हमें स्वतन्त्रता दे रखी है। अब हम चाहे जो कुछ कर सकते हैं। परन्तु यहाँ देखना यह था कि शरीर का जो निर्माण हुआ, यह ईश्वर के बिना कोई नहीं कर सकता।

अच्छा ! ईश्वर ही हमारा निर्माण करता है, इतना ही नहीं, वह हमारा पालन भी करता है; यह सिद्ध है। अतः हम कहेंगे कि यह ईश्वर ने बनाया है और हमको दिया है तथा हम इसको ईश्वर का मानकर प्रयोग करते हैं। यद्यपि लोक में यह व्यवहार होगा कि यह मेरा है, वह आपका है। इसमें कोई आपति नहीं है, कोई बाधा नहीं है। यह व्यवहार होता है, होना चाहिए परन्तु इसके साथ हमको यह देखना है कि इन वस्तुओं का उपयोग करने का अधिकार हमको ईश्वर की ओर से मिला है। इसका प्रयोग अच्छे काम के लिए करना हमारा अधिकार है। इसलिए हम इसके स्वामी तो हैं पर हम गौण स्वामी हैं। मुख्य स्वामी ईश्वर है।

जैसे दूसरे की वस्तु को अपना मानकर कार्य लेते हैं और उसकी रक्षा करते हैं। किसी से मोटरसाईकल मांग लेते हैं। खेती में लोग दूसरों की वस्तु से अपना काम करते रहते हैं। परन्तु उसको अपना नहीं मानते हैं। उसको ऐसा नहीं कहते कि हमारी है। ऐसा करते हुए हम उसकी रक्षा करते हैं। सारे काम करके कहते हैं भाई ! दूसरे से लाई हुई वस्तु है। इसका मुख्य स्वामी तो वही है।

अच्छा ! हम स्वनिर्मित वस्तुओं में ऐसा मान लेते हैं। किसी का कुछ लेकर बदले में देने को तैयार रहते हैं किन्तु इधर ईश्वर निर्मित शरीर आदि के विषय में हम सुनना भी नहीं चाहते, स्मरण भी नहीं करते हैं कि यह ईश्वर-प्रदत्त है। वैसे यदि पूर्वापर विचार करके देखा जाए तो हम जो इसकी रक्षा कर पा रहे हैं, वह भी ईश्वर के आधार से ही कर रहे हैं। यद्यपि इस रक्षा के दो विभाग हैं। एक तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, सूर्य-चन्द्रमा आदि बाहर के पदार्थों से हमारा जीवन सुरक्षित है। इन बाह्य वस्तुओं के बिना हम जीवित नहीं रह सकते हैं। दूसरा विभाग – हम जो खाते-पीते, ओढ़ते-पहनते हैं, उनसे अपने शरीर की रक्षा करते हैं। इसमें कम-अधिक खाना, अति नहीं खाना, शुद्ध-पवित्र खाना, सड़ा-गला अपवित्र नहीं खाना तथा शीत लगने पर रजाई ओढ़ना, गर्मी में पंखा चलाना, ज्वर, जुकाम हो गया तो औषधि लेना आदि कार्य करते हैं। परन्तु ये सब रक्षाएँ भी अन्न, कपास, शरीर आदि ईश्वर-प्रदत्त साधनों अर्थात् ईश्वर की सहायता से ही करते हैं। क्या समझे ? हाँ जी ! नींद तो नहीं सता रही किसी को ? अब आप सुनाएँगे, क्या समझ में आया ?

साधक ६ – रक्षा दो प्रकार से हो रही है।

स्वामी जी – एक तो पूरी सृष्टि हमारी रक्षा कर रही है। ईश्वर को इस रूप में रक्षक माना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जाता है। सीधा रक्षक ईश्वर है और इसको समझाने के लिए उपनिषत्कारों ने बहुत अच्छा प्रयास किया। जैसे कि उन्होंने कहा - **को ह्यन्यात् कः प्रण्यात् यदि ह्येष आकाश आनन्दो न स्यात्।** वह तो यहाँ तक कहता है कि कोई व्यक्ति प्राण नहीं ले सकता, कोई व्यक्ति जी नहीं सकता। यदि सर्वव्यापक आनन्द स्वरूप ईश्वर न हो तो। यह निर्णय दे दिया। पुनः दूसरे स्थान में कहा - **यतो वा इमानि भूतानि जायन्ते येन जातानि जीवन्ति ....।** तैतिरीय.भृगु. १/१। जिसके द्वारा संसार बनाया जाता है और जीवित रखा जाता है, वह ब्रह्म है। तू उसको जान। वहाँ पर यह निश्चित कर दिया कि बनाता भी वही है और जीवित भी वही रखता है। अभी तक हम एक भाग ले रहे थे। अब दूसरा भाग - हम जो स्वयं शरीर की रक्षा करते हैं, खाते हैं, पीते हैं, नहीं तो शरीर मर जाए या नहीं मरेगा?

साधक ३ - मर जाएगा।

स्वामी जी - मर जाएगा। यह जो हम शरीर की रक्षा करते हैं, ईश्वर-प्रदत्त साधनों से करते हैं। ये जो हमारे आँख-नाक, हाथ-पैर बाहर के साधन हैं, इनसे हम बाहर के कार्य करते हैं - खाते हैं, पीते हैं, कपड़ा ओढ़ते हैं, पानी पीते हैं, वायु लेते हैं किन्तु जो भोजन अन्दर डाल दिया, वह पाचन आदि कार्य तो हम नहीं करते, सात धातुएँ बनती हैं उनके लिए तो हम कुछ नहीं करते। वे अपने आप ईश्वरकृत व्यवस्था से होते रहते हैं। तो हम इसको जीवित रखने के लिए जिनसे कार्य करते हैं वे भी ईश्वर प्रदत्त हैं, कोई साधन हमारे बनाए हुए हों, ऐसा नहीं हैं। क्या समझ में आया?

साधक ५ - जीवित रखने के जो साधन हैं वे ईश्वर...।

स्वामी जी - प्रदत्त हैं। हमारे बनाए हुए नहीं हैं। हम उन साधनों से काम लेकर शरीर को जीवित रखते हैं। जब ऐसे सोचेंगे तब आप इस परिणाम पर पहुँच जाएँगे कि वास्तव में ये ईश्वर के बनाए हैं। हम ईश्वर के साधनों को लेकर इनकी रक्षा करते हैं। अब क्या समझ में आया?

साधक १ - हम ईश्वर के साधनों को लेकर ....।

स्वामी जी - अपने शरीर आदि की रक्षा करते हैं।

साधक १ - ईश्वर के द्वारा और किस प्रकार से हमारी रक्षा की जा रही है?

स्वामी जी - और जब हम ईश्वर-प्रणिधान करते हैं.....। हाँ जी! आलस्य सताए तो ऐसे बैठ जाना, सीधे! ...तो जब ईश्वर की भक्ति करते हैं, ईश्वर की आज्ञाओं का पालन करते हैं, तीनों एषणाओं को छोड़ते हैं, ईश्वर की उपासना करते हैं, सब कुछ का स्वामी ईश्वर को मानकर चलते हैं, ऐसी स्थिति में ईश्वर हमको विद्या देता है और हमारी अविद्या का नाश कर देता है। रक्षा का यह दूसरा भाग है और बहुत बड़ा है। क्या समझ में आया? दोहरा लो। ऐसे तो सुनी-सुनाई बातें समझ में आ रही होंगी। कहते होंगे - सुन रखी हैं, पढ़ रखी हैं। ऐसे लगता होगा!

साधक ५ - रक्षा का बहुत बड़ा भाग है ईश्वर-प्रणिधान करने पर, ईश्वर की आज्ञा का पालन करने पर ....।

स्वामी जी - आज्ञा का पालन करने से, ईश्वर की भक्ति करने से .....।

साधक ३ - आनन्द देता है, ज्ञान देता है कुछ।

स्वामी जी - पहले एक भाग को लिया कि ईश्वर हमको जो सत्य विद्या प्रदान करता है उससे हमारी अविद्या का नाश होता है। जब अविद्या का नाश होता है तब कुसंस्कारों का भी नाश है। ध्यान देना! यदि अविद्या का नाश हो गया और विद्या उपलब्ध हो गई तो कितना क्षेत्र पार होगा! कितनी बड़ी रक्षा है, उसकी कल्पना करो। हमारे इन कामों के करने से ईश्वर ने हमारी जो रक्षा की, यह रक्षा सबकी नहीं होती। क्या समझ में आया?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – यह रक्षा जो ...।

स्वामी जी – यह रक्षा केवल उसी योगाभ्यासी की होती है जो ईश्वर-प्रणिधान आदि करता है, अन्यों की नहीं होती। अन्यों को ये वस्तुएँ नहीं मिलतीं। इतना समझ में आया कि यह उस विशेष व्यक्ति को मिलती है।

विद्या से अविद्या का नाश हुआ तो विद्या से अधर्म का भी नाश हो गया। कारण अविद्या होगी तो अधर्म होगा, नहीं तो नहीं होगा। वह रुक गया। जब अविद्या का नाश हुआ तो झूठी उपासना का भी नाश हो गया। जब अविद्या रहेगी तो झूठी उपासना होती रहेगी। उसी के पश्चात् विद्या से ही कुसंस्कारों का नाश होता है अतः जब कुसंस्कार ही नहीं रहेंगे तो हमारी जितनी उलटी-सीधी प्रवृत्तियाँ हैं, जिनसे बहुत दुःख होता है। वे हट जाएँगी। आगे बढ़ेंगे तो उन दुःखों का नाश होगा और आनन्द की प्राप्ति होगी। यह ईश्वर की रक्षा का स्वरूप है, इसको लेकर चलेंगे।

साधक १– जो ईश्वर को नहीं मानते हैं किन्तु अनित्य वस्तुओं को अनित्य ही देखने का प्रयास करते हैं उनकी भी अविद्या का तो नाश होगा?

स्वामी जी – उतनी-उतनी मात्रा में उनकी अविद्या का नाश होगा जितने में वे वस्तुओं को ठीक-ठीक समझते हैं। उसमें कोई बाधा नहीं है। पर हमने जिस स्तर पर अविद्या का नाश कहा है उस स्तर पर उनका नहीं होता, जो ईश्वर को नहीं मानते हैं। क्योंकि इसमें ईश्वर का स्वामित्व मानना, अपना स्वामित्व हटा देना, तीनों एषणाओं को छोड़कर ईश्वर से ही प्रेम रखना, यम-नियमों का पालन करना जुड़ा है। इसीलिए इतना ऊँचा ज्ञान-विज्ञान मिलेगा। इतना ऊँचा उनको नहीं मिलता। जहाँ पर वे परिश्रम करते हैं जैसे कि भौतिक वैज्ञानिक करते हैं, उतनी मात्रा में ईश्वर की आज्ञा का पालन करते हैं तो उनको उतनी सहायता ईश्वर देता है। किन्तु ईश्वर के द्वारा इतने ऊँचे स्तर पर यह जो रक्षा होती है, यह विशेष योगाभ्यासी की होती है।

यद्यपि जब विद्या हमारे हाथ लगी रहती है, जितने भी काल तक हम विद्या के साथ आबद्ध रहेंगे उतने काल तक अविद्या आक्रमण नहीं करेगी, कुसंस्कार भी आक्रमण नहीं करेंगे, धर्म के स्थान पर अधर्म भी आक्रमण नहीं कर पाएगा, उलटी उपासना भी आक्रमण नहीं करेगी और जो मानसिक दुःख होते हैं वे तो लगभग सभी हट जाएँगे। एक मात्रा में शारीरिक दुःख भी हट जाएँगे। तो ईश्वर यह रक्षा व्यक्ति की योग्यता के आधार पर करता है। पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश, सूर्य आदि के द्वारा सबकी समान रूप से रक्षा होती है।

आप कभी ऋषियों के ग्रन्थों को पढ़ेंगे तब पता चलेगा कि वे कैसे-कैसे मानते है, कैसे-कैसे सोचते हैं? तो उनका भी प्रभाव आपके ऊपर पड़ेगा। वे इतने बुद्धिमान्, सत्यवादी, सत्य-मानी, पक्षपात रहित ऋषि होते हुए ईश्वर के विषय में ऐसा मानते, कहते और लिखते हैं तो हमारी उनमें श्रद्धा, रुचि होनी चाहिए। यदि हम उनकी मानते जाते हैं तब आगे बढ़ते जाते हैं, सन्देह हटता जाता है। यदि ऐसा नहीं है तो उतना विकास नहीं होता।

और सुनो! आपने पढ़ा-सुना होगा, महर्षि दयानन्द सरस्वती जी कहते हैं, भाव सुना रहा हूँ, शब्दावलि संभवतः कुछ अन्य हो कि जब व्यक्ति दुष्ट कर्म करने की योजना बनाता है जैसे कि मैं चोरी करूँगा, डाका डालूँगा, उसी समय उसके मन में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होती है। वे किसी व्यक्ति या जीवात्मा की ओर से नहीं किन्तु ईश्वर की ओर से होती है। तो यह भी रक्षा का एक भाग है।

साधक १ – स्वामी जी! समाज के कारण भी व्यक्ति भय, लज्जा करता है।

स्वामी जी – हाँ!

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – तो दोनों में भेद कैसे करेंगे ?

स्वामी जी – भेद ऐसे करेंगे।

साधक १ – ये ईश्वर की ओर से है, ये समाज के कारण ?

स्वामी जी – हो जाएगा। यह समाज की ओर से और यह ईश्वर की ओर है। इन दो तरह के भय को समझने के लिए आप यह उदाहरण ले सकते हैं। जैसे कि आप अपने कमरे में बैठे हैं। ऐसा विचार करने लगे कि यह शरीर मेरा है, ये इन्द्रियाँ मेरी हैं और देखो! मेरा शरीर कितना सुन्दर है ! पुनः आगे बढ़े कि ये जो विद्या मैंने पढ़ी है बी.ए., एम.ए., पीएच.डी., आचार्य आदि की, ये सब विद्या मेरी है। जो धन मेरे पास है वह भी मेरा है। जब आप गहराई से इस ओर ध्यान देंगे तब आपके मन में भय, शंका, लज्जा उत्पन्न होगी। क्या समझे ? ये उपाधियाँ आपकी व्यक्तिगत हैं, पुनरपि जब आप अपनी मानकर चलते हैं तब भय आदि उत्पन्न होते हैं। वहाँ पर समाज या किसी बाहरी व्यक्ति का कोई प्रभाव नहीं है, तब भी ईश्वर की वस्तुओं को जब आप अपना मानेंगे तब डर लगेगा। पुनः पता चलेगा कि यह डर ईश्वर की ओर से है। हाँ जी !

साधक २ – वहाँ पर एक बात रहती है कि हमने पीछे से इन सबको भी सुना हुआ है कि ये सब वस्तुएँ ईश्वर की हैं। इसलिए हो सकता है कि उसके कारण हम अपनी मान्यता में विघात होने से स्वयं भयभीत हो जाते हैं।

स्वामी जी – आपने मान्यता बनाई है ?

साधक २ – हाँ !

स्वामी जी – उसमें यह बात जानने की है कि जहाँ हमारा अनुभव नहीं, वहाँ शब्द-प्रमाण से काम लेंगे। यदि हमारी मान्यता है तो हम हटा देंगे परन्तु शब्द-प्रमाण भी उसी बात को कहता है तब तो यह हमारी मान्यता नहीं हुई। यह सत्यवादी, सत्यमानी की है। उसके आधार पर मानने में कोई आपत्ति नहीं है।

साधक १ – इस उदाहरण में तो समझ में आ जाता है परन्तु अन्य काल में जब हम....।

स्वामी जी – अन्य कालों का विभाजन पृथक् है। एक उदाहरण समझ में आ जाना चाहिए। अन्य कहाँ, क्या-क्या स्थिति हो सकती है वह परीक्षण करने योग्य है। कोई बात तत्काल एकदैव समझ में नहीं आएगी। यहाँ विभाजन करते समय ध्यान रखना पड़ेगा कि कौन-सा समाज की ओर से है और कौन-सा ईश्वर की ओर से है। दोनों स्थितियों को पकड़ने वाला निर्णय कर सकेगा कि यह समाज की ओर से डर लग रहा है अथवा यह ईश्वर की ओर से डर लग रहा है या किसी अन्य की ओर से है। वह समझेगा कि जब समाज की ओर से डर नहीं है तब ईश्वर की ओर से होना चाहिए। अब विराम ॥

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७० यज्ञीयोपदेश

जीवात्मा : आषाढ़ कृ. १४/२०६०-२८/७/०३

अव्यसश्च व्यचसश्च बिलं विष्यामि मायया ।
ताभ्यामुद्धृत्य वेदमथ कर्माणि कृण्महे ॥ अथर्ववेद १९/६८/१।

यह जो वेद-मन्त्र है, इसमें यह एक बात ध्यान देने की है कि मन्त्र में जीवात्मा को एकदेशी कहा है और पौराणिक विद्वान् जीवात्मा को ईश्वर की भाँति सर्वव्यापक मानते हैं, जो कि इस वेद प्रमाण के विरुद्ध है। इस मन्त्र में व्यचस् और अव्यचस् शब्द पढ़े हैं। व्यचस् = व्यापक, अव्यचस् = एकदेशी। आपको क्या समझ में आया ?

सम्पादक – 'वि' उपसर्ग पूर्वक 'अञ्चु गतौ' धातु से 'असुन्' प्रत्यय करके षष्ठी एकवचन में 'व्यचसः' और 'नञ्' पूर्वक 'अव्यचसः' शब्द बनता है। पाणिनि व्याकरण के अनुसार अञ्चु धातु के नुम् और अव्यचसः के चकार का छान्दस लोप होकर अव्यसः शब्द रह गया।

साधक ३ – पौराणिक विद्वान् आत्मा को ईश्वर की भाँति सर्वव्यापक मानते हैं।

स्वामी जी – समझ में आ गया ?

साधक १ – जी !

स्वामी जी – जो व्यचस् = व्यापक ईश्वर है, उससे जीवात्मा को पृथक् बताने के लिए व्यचस् शब्द के आगे 'अ' लगा दिया। वह व्यापक नहीं है और जो बिना 'अ' के पाठ है वह व्यापक के लिए है अर्थात् ईश्वर को व्यापक माना है, जीवात्मा को एकदेशी माना है। अब दूसरी बात सुनो। यह तो हमारी व्याख्या है। अब क्या समझ में आया ?

साधक ३ – सायण ने भी ऐसा ही माना है।

स्वामी जी – सायण-भाष्य में भी ईश्वर को व्यापक और जीवात्मा को व्याप्य माना है। जिससे पौराणिक विद्वानों को बताया जा सकता है कि आपके जो उच्चकोटि के विद्वान् सायण वेद भाष्यकार हैं वे भी जीवात्मा को एकदेशी मानते हैं। तब उनको भी मानना पड़ेगा। क्या समझ में आया ?

साधक ७ – पौराणिक विद्वान् सायणाचार्य भी परमपिता परमात्मा को व्यापक और जीवात्मा को एकदेशी मानते हैं।

स्वामी जी – इस मन्त्र की व्याख्या में उन्होंने यही लिखा है। अब दूसरी बात – ये जो जीवात्मा और परमात्मा हैं, ऐसे विचित्र पदार्थ हैं जिनको सोचने में, निर्धारण करने में, मापने में, जानने में हजारों वैज्ञानिक असमर्थ हैं, विचलित हो रहे हैं। इनको छोड़ देना जो हमारी वैदिक परम्परा से सम्बद्ध हैं, दर्शनों को पढ़ते हैं। ऐसे गिने-चुने भौतिक वैज्ञानिको को भी छोड़ देना, शेष के लिए इनके स्वरूप निर्धारित करना कि 'ऐसा ही है, ऐसा नहीं है' यह अन्तिम रूप देना अत्यन्त परिश्रम-साध्य है। एक और आश्चर्य की बात है कि हम स्वयं सृष्टि में रहते हैं, यहाँ खाते-पीते और धन-सम्पत्ति का उपार्जन करते हैं। इसी तरह अपने-अपने ढंग से परिवार, समाज की व्यवस्था करते हैं। देश चलाते हैं और विज्ञान की खोज करते हैं, सैकड़ों प्रकार के आविष्कार कर डाले हैं। सारी व्यवस्था हम जीवात्माओं के लिए है, परन्तु मैं क्या हूँ, यह जीवात्मा नहीं जानता। अब क्या समझ में आया ? यह आश्चर्य की बात सुनी या नहीं सुनी ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह सब कुछ कर रहा है, सब कुछ करवाता है, सब कुछ इकट्ठा कर रहा है, कोई संन्यासी बनता है, कोई राजा बनता है, कोई वैज्ञानिक बनता है। सृष्टि की सारी दौड़-धूप जीवात्मा के लिए और जीवात्मा स्वयं नहीं जानता कि मैं क्या हूँ? आश्चर्य की बात यह है।

अच्छा ! आप बताएँगे क्या आप शरीर से, इन्द्रियों से, अपने मन से मैं पृथक् हूँ; ऐसा जान पा रहे हैं? हाँ जी ! आप बोलेंगे -

साधक २ – पृथक् नहीं जानते।

स्वामी जी – पृथक् नहीं जानते। आप बताएँगे।

साधक १ – प्रायः पृथक् जानते हैं।

स्वामी जी – आप बताएँगे।

साधक ७ – पृथक् जानता हूँ।

स्वामी जी – और आप बताएँगे।

साधक ३ – अधिक समय पृथक् अनुभव करने का प्रयास करता हूँ और अनेक बार तो भूलता है। शरीर को मैं मानना और पुनः विचारकर शरीर से पृथक् हूँ, ऐसा कुछ अनुभव में आता है कि अधिक मानता हूँ। इसमें कोई दोष भी हो सकता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बताएँगे।

साधक ६ – व्यावहारिक रूप में ऐसा नहीं मानता।

स्वामी जी – बात स्पष्ट कहा करो। 'ऐसा ही' तो पीछे से प्रकरण आ रहा है उसके साथ वे शब्द जोड़ो जो कहना चाहते हैं। भाषा में बोलते हुए विशेष शब्द जोड़ना चाहिए जिससे अच्छी तरह पता चले। यह तो प्रसंग से कह दिया कि 'ऐसा ही मानता हूँ' किन्तु इसका अभिप्राय क्या हुआ?

साधक ६ – व्यावहारिक रूप में ऐसा नहीं मानता हूँ।

स्वामी जी – 'ऐसा' यह तो विशेषण है। वह क्या नहीं मानते हैं जो इसके साथ में कहना चाहिए।

साधक ६ – आत्मा को शरीर से प्रायः पृथक् नहीं मानते।

स्वामी जी – अब यह बात आई। ऐसे भाषा को नपी-तुली बनाकर बोलना-लिखना सीख लो। हाँ जी ! अब आप सुनाएँ -

साधक ८ – पृथक् मानने का प्रयास करता हूँ।

स्वामी जी – प्रयास की बात नहीं कर रहे हैं। यह तो प्रकरण से बाहर चला गया। कैसा मानते हैं, कितने काल पृथक् मानते हैं, कितने काल एक मानते हैं; यह बताओ। प्रयास तो सभी करते हैं। प्रसंग का यह तो उत्तर नहीं है।

साधक ८ – वितैषणा....।

स्वामी जी – अच्छा जी ! आप बताएँगे -

साधक ४ – कभी-कभी कुछ क्षण मात्र के लिए अपने से पृथक् की अनुभूति अवश्य बनती है, अधिकांश तो एकत्व की ही अनुभूति रहती है।

स्वामी जी – इस स्थिति में आप ऐसा अनुभव नहीं करते कि मैं पढ़ता-पढ़ाता, प्रवचन करता तो कुछ हूँ और मानता कुछ हूँ। मैं शरीर हूँ, यह तो मूर्खता है; ऐसा क्यों कर रहा हूँ? कभी ऐसा अनुभव नहीं करते?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – इस बात पर विचार करते हैं।

स्वामी जी – पढ़ा-सुना हुआ विषय तो यह है कि जीवात्मा पृथक् है। प्रवचन दूँगा तब ऐसा ही कहूँगा पर यह जो मैं शरीर को ही 'मैं' मानकर चल रहा हूँ; यह मेरी मूर्खता क्यों नहीं हट रही है? ऐसे देखो, तब हटेगी।

एक मन्तव्य, एक विचारधारा – जो व्यक्ति इन विषयों को पढ़ता-पढ़ाता, सुनता-सुनाता, इन पर चर्चा करता और जिस स्तर पर आज है, वह यह देखे कि जिनको मैं दस-पन्द्रह वर्षों से सुनता-सुनाता आया हूँ, वह मेरे आचरण में नहीं है। पुनः वह कहता है कि यदि नहीं है तो मैं इस विषय में विद्वान् नहीं माना जा सकता। मुझे स्वयं को विद्वान् नहीं मानना चाहिए; ऐसा अनुभव उसको करना चाहिए तथा यह नहीं मानना चाहिए कि मैं जानता हूँ। इससे क्या होगा? उसको अपनी अविद्या स्वयं दिखाई देगी कि मैं शरीर से आत्मा को पृथक् नहीं मानता हूँ, पुनः वह इसको दूर करने का प्रयास करेगा। कोई भी व्यक्ति यदि केवल पढ़े-पढ़ाए, सुने-सुनाए, लिखे-लिखाए विषय को जानकर स्वयं को विद्वान् मानता रहे तो वह व्यक्ति कभी विद्वान् नहीं बन सकता। इसलिए जो इन पढ़े-पढ़ाये विषयों का चिन्तन-मनन करता हुआ, इनको मापदण्ड की भाँति सामने रखकर दिनभर अपने विचारों, व्यवहारों को देखता रहता है उसे पता चलता है कि मेरे ये-ये विचार और व्यवहार तो इन मापदण्डों के विपरीत हैं। पुनः अब मैं इनको नहीं रहने दूँगा। तब वह इस प्रकार से उनका विरोध करता है और विद्वान् बन जाता है।

जो अविद्या नाम की वस्तु है, उसको वह धीरे-धीरे जानता जाता है और उसके ऊपर मार मारता है। उसे मूल से उखाड़ता जाता है। यद्यपि वह अविद्या ऐसे साधारण प्रयास से मूलतः हटने वाली नहीं है। कभी आप सोचो कि आज हटा दी तो ऐसे ही हटी रहेगी। आप उसके पीछे बीस, तीस, पचास वर्ष तक लगे रहेंगे, उससे युद्ध करते रहेंगे तब कहीं जाकर आपको अविद्या हटी दिखाई देगी। ऐसी है यह अविद्या। ये ब्रह्मचारी सोच लें कि हम तो पढ़ते-पढ़ाते हैं, हम विद्वान् हैं, इसको जानते ही हैं। वस्तुतः ऐसा नहीं है। जब अपने सामने इन पंक्तियों को रखेंगे तब कहेंगे कि हम विद्वान् नहीं हैं।

एक दृष्टान्त सुनाता हूँ। इस दृष्टि से नहीं कि आपको उस व्यक्ति के दोष दिखाने हैं, अपितु आपको ऐसे सोचना चाहिए, यह बताना है। तो अच्छी योग्यता वाले, अङ्ग-उपाङ्ग को पढ़े हुए एक बड़ी अवस्था के व्यक्ति थे। किसी दूसरे व्यक्ति से किसी विषय में जब उनका विचार नहीं मिलता था तब उस व्यक्ति के प्रति उनमें ईर्ष्या-द्वेष उत्पन्न हो जाते थे। तब मैंने उनसे कहा – आप यह मानते हैं कि मैं बहुत पढ़ा-लिखा हूँ। अनेक शास्त्रों अङ्ग-उपाङ्ग, व्याकरण, निरुक्त, दर्शन आदि को मैंने पढ़ रखा है; आप ऐसा समझते होंगे किन्तु आपको योगदर्शन के भाष्य की एक पंक्ति भी समझ में नहीं आई। अब देख लो, आप कितना जानते हैं? पंक्ति क्या थी? **तत्राहिंसा सर्वथा सर्वदा सर्वप्राणिनामनभिद्रोहः।** यो.द.व्या.भा.२/३०। सर्वदा = सदा, सर्वथा = सब प्रकार से सभी प्राणियों के प्रति वैरभाव छोड़ देना अहिंसा है। मैंने कहा – यह पंक्ति आपको समझ में नहीं आई इसलिए आप दूसरे व्यक्ति से ईर्ष्या-द्वेष करते हैं। अच्छा! आप अपना बताओ, आपके व्यवहार में यह पंक्ति आ गई?

साधक १ – नहीं आती।

स्वामी जी – बोलो! क्यों जी?

साधक ८ – नहीं जी!

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अब पंक्ति को सामने रखकर देखो कि पंक्ति में जो बात कही गई वह हमको आती है या नहीं? यदि नहीं, तो इसको लाकर रहेंगे। बस! इस व्यक्ति का काम यही है। यह व्यक्ति सत्य के ग्रहण करने और असत्य के छोड़ने में ननुनच नहीं करता, टाल-मटोल नहीं करता। कभी पीछे नहीं हटता। ऐसा ही व्यक्ति विवेक-वैराग्य को प्राप्तकर समाधि को प्राप्त हो सकता है, दूसरे नहीं। कभी भी नहीं होंगे।

जो व्यक्ति यह कहता है कि यदि पंक्ति में यह लिखा है – 'सब प्रकार से, सब प्राणियों के साथ वैरभाव को छोड़ देना और आगे बोलो तो प्रेम से व्यवहार करना।' इसको जीवन में उतारकर छोड़ूँगा। पीछे हट नहीं सकता। यह व्यक्ति आगे बढ़ जाएगा। किन्तु जो इसके विपरीत यह मानता है कि इन पंक्तियों में क्या रखा है? वैरभाव छोड़ने का क्या प्रयोजन? जैसे सारा संसार चल रहा है, वैसे ही हम भी चलेंगे, खाएँगे-पीएँगे, आराम से रहेंगे और क्या करना है? तो ऐसा व्यक्ति कुछ नहीं करेगा।

अच्छा! जो व्यक्ति यह मानता है कि ये सब कहने-सुनने की बातें हैं, न कि धरती पर उतारने की (आचरण में लाने की), हमें तो जंचती नहीं। बस! लिखा है और क्या? ऋषियों ने पुस्तकों में लिख दी हैं, कोई व्यवहार में थोड़ी आती हैं। कोई ऐसा सोचता है कि ये सब बातें एक जन्म में नहीं, दस-पन्द्रह जन्मों में समझ में आती हैं। इस जन्म में थोड़ी आएँगी। क्या समझ में आया?

साधक ३ – ये बातें दस-पन्द्रह जन्मों में समझ में आएँगी, अभी नहीं आएँगी।

स्वामी जी – भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की क्या-क्या विपरीत मान्यताएँ होती हैं, वे आपको बता रहा हूँ। आप इनमें से किस वर्ग में हैं, यह देख लेना। पुनः कोई कहता है यह तो सम्भव ही नहीं है कि सर्वथा, सर्वदा चोर, डाकू आदि दुष्टों तथा सांप-बिच्छू आदि प्राणियों से भी वैरभाव न रखा जाए, प्रेम से व्यवहार किया जाए।

साधक ८ – सम्भव है जी! यदि सम्भव नहीं होता तो ऋषि ऐसा नहीं लिखते।

स्वामी जी – यदि सम्भव भी हो मान लिया, किन्तु समझ में आ जाने पर, आचरण में आ जाने पर भी क्या मिलेगा? कोई धन-सम्पत्ति, पद आदि इससे मिलेगा नहीं। रहना तो वैसे ही है कटिवस्त्र पहने, रिक्त का रिक्त।

ये व्यक्तियों की मान्यताएँ बता रहा हूँ। इस विषय में लोगों की बुद्धि कैसे-कैसे काम करती है, ये समझने की बातें हैं आपकी भी यही मान्यताएँ होंगी। पर उनमें से आप कौन से विभाग में आते हैं, यह स्वयं देख लेना और यह भी ध्यान रखना कि यदि आप इन विभागों को नहीं जानते हैं, इनसे अपनी तुलना नहीं कर सकते हैं तो आपकी प्रगति होना सम्भव नहीं है।

ये सारी छान-बीन, परीक्षण-निरीक्षण व्यक्ति करता रहता है। इनसे दिनभर युद्ध करता है और जब थक जाता है तब सो जाता है या विश्राम करता है। उसके पश्चात् उठते ही पुनः वही युद्ध आरम्भ कर देता है। अविद्या, अन्याय, अधर्म, लौकिक पदार्थों की उपासना का नाश और विद्या, न्याय, धर्म और ईश्वर की उपासना की वृद्धि करता रहता है। इतना ही नहीं, इसके साथ योगाभ्यासी जैसे अपनी उन्नति के लिए पुरुषार्थ करता है वैसा ही दूसरों के लिए भी करता है, वही योगी बनता है। जो केवल अपने लिए पुरुषार्थ करता है दूसरों के लिए नहीं करता, वह योगी नहीं बन सकता।

क्यों नहीं बन सकता? हाँ जी! आपसे यदि कोई पूछ ले कि जो दोनों के लिए ऐसा प्रयास नहीं करता, वह योगी नहीं बन सकता; इसमें क्या कारण है? यह आपकी बुद्धि के परीक्षण के लिए है।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri Arya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७ – परमपिता परमात्मा की आज्ञा भी है कि वह प्रसन्न नहीं रह सकता जो दूसरों के लिए नहीं करता।

स्वामी जी – क्यों जी ! आप क्या समझ पाए ?

साधक ४ – एक तो जिस ईश्वर की सन्निधि प्राप्त करनी है उसका स्वभाव ऐसा ही है। इसलिए उसके जैसा स्वभाव बनाना चाहिए और ऐसी उसकी आज्ञा भी है।

स्वामी जी – तो ये अच्छी बातें दोनों की ओर से आईं। अच्छी का अभिप्राय आपकी प्रशंसा नहीं करनी है। कहीं उसी में उलझ जाओ। मूल बात है जो व्यक्ति अपनी उन्नति चाहता है, दुःखों से, दोषों से स्वयं को छुड़ाना चाहता है अर्थात् जैसे वह अपनी उन्नति चाहता है वैसे ही दूसरों की भी उन्नति चाहता और यथा शक्ति प्रयास करता है तब परिणाम स्वरूप वह ईश्वर के साथ सम्बद्ध हो जाता है। ईश्वर के साथ उसकी मैत्री हो जाती है और ईश्वर उसको विशेष ज्ञान देकर समाधि लगवाता है। ईश्वर भी सबका भला चाहता है और जीवात्मा भी सबका भला चाहता है तो इस कारण से दोनों मित्र बन जाते हैं।

आपको भी यह स्वभाव बनाना होगा, अन्यथा ईश्वर सबका भला चाहता रहे और आप ऐसा नहीं चाहें तो ईश्वर आपको अपना मित्र नहीं बनाएगा और न ज्ञान देकर समाधि लगवाएगा। इसके साथ-साथ आप पूरे व्यवहार में खाते-पीते, चलते-फिरते, पढ़ते-लिखते यह मानते रहें कि मैं शरीर नहीं हूँ, न बुद्धि, न मन हूँ, न भूमि, न जल, न अग्नि, न आकाश आदि चौबीस पदार्थों में से कोई नहीं हूँ, मैं आत्मा हूँ। मैं आत्मा हूँ यह जानते-मानते हुए भी ऐसा नहीं मान लेना कि मैं बहुत बुद्धिमान् हूँ, अन्यथा वह संकटपूर्ण स्थिति हो जाएगी। अतः यह मानें कि जो कुछ जानता हूँ सब ईश्वर-प्रदत्त ज्ञान से जानता हूँ। ईश्वर के बिना हमारी उन्नति सम्भव नहीं है।

इस प्रकार दिनभर ईश्वर के साथ सम्बद्ध रहना चाहिए। 'मैं शरीर से भिन्न हूँ' जब यह ज्ञान होता है तब ऐसा नहीं मानना चाहिए कि यह मेरा ज्ञान है, शरीर आदि मेरे हैं, इतना विद्वान् मैं हूँ आदि। अपितु यह मानना चाहिए कि ये ज्ञान तथा पदार्थ ईश्वर से आए हैं। अतः मेरे कैसे हो सकते हैं ? इस विद्या को ग्रहण करने का जो स्वाभाविक ज्ञान है, वह मेरा है।

साधक १ – कौन-सा ज्ञान ईश्वर का है, कौन-सा मेरा है; इसका कैसे पता चलता है ?

स्वामी जी – यहाँ ऐसा जानना चाहिए कि जो स्वाभाविक ज्ञान है वह मेरा है, ईश्वर का नहीं। किन्तु वह स्वाभाविक ज्ञान नाममात्र का है, उससे व्यवहार करने में समर्थ नहीं हो सकते। ईश्वर प्रदत्त ज्ञान से ही व्यवहार में समर्थ होते हैं। चक्षु आदि निमित्तों के बिना भी स्वाभाविक ज्ञान को अभिव्यक्त नहीं कर सकते।

साधक १ – जैसे ज्ञान गुण न्यूनमात्रा में अपना है, वैसे अपने दया आदि गुण भी हैं ?

स्वामी जी – हाँ ! नाममात्र दया आदि गुण अपने हैं किन्तु ज्ञान के समान ही व्यवहार के लिए अपर्याप्त हैं। इसलिए जो व्यवहार में दिखाई देते हैं, वे ईश्वर के ही हैं; ऐसा जानना चाहिए। ईश्वर भी चेतन है, हम भी चेतन हैं, पदार्थ की दृष्टि से यह समानता तो है, किन्तु मात्राधिक्य का भेद है। ईश्वर का ज्ञान अनन्त है, हमारा नाममात्र है। शरीर से पृथक् हो जाने पर तो हम कुछ भी नहीं जानते, यदि अपना विशेष ज्ञान होता तो मूर्छित नहीं होते। इसलिए व्यवहार में ईश्वर का ज्ञान मुख्य है।

साधक १ – यदि ईश्वर की दयालुता को देख रहे है तो क्या ईश्वर को देख रहे हैं ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – जैसे रचना को देखने से रचनाकार का दर्शन प्रत्यक्ष नहीं होता, वैसे ही दयालुता आदि गुण मात्र को देख रहे हैं तो इतने मात्र से ईश्वर को देखना नहीं कहा जा सकता है अथवा यह कह सकते हैं कि आंशिक प्रत्यक्ष होता है। केवल गुण मात्र से गुणी प्रत्यक्ष होता है, यह प्रत्यक्ष का नियम नहीं है। प्रत्यक्ष के विषय में गुण-गुणी के प्रसंग में कहा – जब ईश्वर में मग्न होता है तब दोनों का प्रत्यक्ष होता है अर्थात् गुण-गुणी का साथ-साथ बोध होता है। जुड़े देखना प्रत्यक्ष कहाता है। इसलिए ज्ञान, दया आदि को ईश्वर से साक्षात् जुड़े देखते हैं तो प्रत्यक्ष कहा जाएगा, अन्यथा प्रत्यक्ष नहीं कहा जाएगा। अब विराम ॥

७१ क्रियात्मक योगाभ्यास

स्तुति-प्रार्थना-उपासना : आषाढ़ कृ. १४/२०६०-२८/७/०३

अब हम ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना वेद मन्त्र से करेंगे। हाँ जी ! आप सुनाएँगे क्या 'स पर्यगात्' मन्त्र का अर्थ स्मरण है।

साधक ४ – हाँ जी ! स्मरण है।

स्वामी जी – साधक जब उपासना करता है तब वह इस बात का विचार करता है कि जिस ईश्वर को मैं प्राप्त करना चाहता हूँ अथवा जिस ईश्वर की मैं स्तुति-प्रार्थना-उपासना करता हूँ, अब करूँगा, वह ईश्वर कैसा है ? प्रथम तो मन्त्र का अर्थ व्यक्ति को अच्छे प्रकार से आना चाहिए। हाँ जी! आप सुनाएँगे कि शब्दों के अर्थ आप कैसे करेगें ?

साधक ४ – **स पर्यगात्** मन्त्र का ?

स्वामी जी – हाँ ! एक-एक शब्द को लेकर चलो।

साधक ४ – **स पर्यगात्** अर्थात् सर्वव्यापक **शुक्रम्** शुद्ध स्वरूप **अकायम्** शरीर से रहित **अव्रणम्** छिद्र से रहित **अस्नाविरम्** नस-नाड़ियों के बन्धन में न आने वाला **शुद्धम्** पाप आदि दोषों से रहित **अपापविद्धम्** बुरे कर्मों को न करने वाला। **कविः** ज्ञानवान् **मनीषी** मननशील **परिभूः** सब ओर व्यापक **स्वयम्भूः** अपनी सत्ता से स्वयं सिद्ध **याथातथ्यतः** जैसे सृष्टि आदि पदार्थ हैं उसी स्वरूप से **अर्थान्** **व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः** जीवरूपी अपनी प्रजा के लिए वेदों का उपदेश किया।

स्वामी जी – हाँ जी ! क्या समझ में आया ? कोई ऐसा शब्द दिखता है जिसका ठीक अर्थ इन्होंने न किया हो।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ५ – स्वामी जी! 'अर्थान्' का अर्थ मुझे कुछ स्पष्ट नहीं लगा। अर्थात् यह एक शब्द मुझे समझ में नहीं आया, ऐसा लगा कि छूट गया है। ईश्वर ने इस सृष्टि के पदार्थों को **अर्थान्** अर्थों को अपनी शाश्वत् प्रजाओं अर्थात् जीवात्माओं के लिए दिया है।

स्वामी जी – आपने 'अर्थ' शब्द का क्या अर्थ किया।

साधक ५ – अर्थ से भौतिक पदार्थ जो हैं जिनका हम उपयोग करते हैं और दूसरे जो ज्ञान-विज्ञान आदि हैं, इनको ले सकते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी! आप सुनाएँगे कि यहाँ 'अर्थ' शब्द का क्या अर्थ किया गया।

साधक २ – यहाँ पर 'अर्थ' शब्द से एक तो वेद ज्ञान का ग्रहण और महत्तत्त्व आदि पदार्थों का ग्रहण करना चाहिए।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ३ – यहाँ पर 'अर्थ' से जो मैं समझ पाया हूँ वेद ही अर्थ संगत है। केवल वेद, वेद ज्ञान।

स्वामी जी – हाँ जी! आप बोलेंगे, 'अर्थ' से क्या लिया जाए?

साधक ७ – पदार्थ एवं वेद ज्ञान।

स्वामी जी – थोड़ा-सा ऊँचा और स्पष्ट बोला करो।

साधक ७ – पदार्थ एवं वेद ज्ञान आदि को परमपिता परमात्मा ने अपनी शाश्वत् प्रजा के लिए दिया।

स्वामी जी – थकान तो नहीं आ रही है आपको।

साधक ८ – नहीं जी!

स्वामी जी – कुछ याद है? अर्थात् आप 'अर्थान्' शब्द का क्या अर्थ करोगे?

साधक ८ – वेद का उपदेश दिया।

साधक ३ – वेद कहने से दोनों का ग्रहण हो जाएगा। जैसे कि दो प्रकार का वेद माना गया है दृश्य व श्रव्य। यहाँ पर जो अर्थ मुख्य मिलता है वह वेदों का प्रकाश किया है।

स्वामी जी – **स पर्यगात्** तो **स** का अर्थ क्या है?

साधक ३ – वह ईश्वर।

स्वामी जी – संस्कृत में स, तौ, ते। एकवचन, द्विवचन, बहुवचन। **स** एकवचन वह **परि** सब ओर **अगात्** ...

साधक ३ – पहुँचा हुआ है।

स्वामी जी – **अगात्** गया हुआ है। **स पर्यगात्** वह ईश्वर सर्वत्र पहुँचा हुआ है। पुनः **शुक्रम्** यद्यपि कहीं प्रकरण के अनुरूप **शुक्रम्** शब्द का अर्थ शुद्ध भी होता है परन्तु आगे शुद्ध शब्द पढ़ा हुआ है। अतः वहीं यह शुद्ध अर्थ लेंगे और यहाँ **शुक्रम्** का अर्थ लेंगे सर्वशक्तिमान्।

साधक ३ – महर्षि ने आशुकारी अर्थ किया है।

स्वामी जी – अनेक अर्थ होते हैं। आशुकारी भी हो सकता है। जब दो शब्द एक जैसे अर्थ में आएँ तो उन दोनों के भिन्न-भिन्न अर्थ ले लिए जाते हैं। **स पर्यगात्** वह ईश्वर सब जगह व्यापक है, ध्यान दो! साधक जब कहता है **स पर्यगात्** हे ईश्वर! आप सब जगह गए हुए हैं। पुनः कहता है – जहाँ पर जीवात्माएँ हैं वहाँ पर आप विद्यमान हैं, जहाँ पर जीवात्माएँ नहीं हैं वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं। जहाँ पर सत्त्व-रज-तम हैं और वैज्ञानिकों के प्रोटॉन-न्यूट्रॉन हैं वहाँ आप विद्यमान हैं, जहाँ वे नहीं हैं वहाँ भी आप विद्यमान हैं। सृष्टि अरबों-खरबों लोक-लोकान्तर जिसको कोई व्यक्ति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जान नहीं पाया। जहाँ सृष्टि है वहाँ आप विद्यमान हैं, जहाँ सृष्टि समाप्त हो गई, नहीं है वहाँ भी आप विद्यमान हैं। साधक ईश्वर को उपासना में सम्बोधित करता है कि हे ईश्वर! आपने वेद में अपना स्वरूप यह बताया है। अच्छा! आप कभी ईश्वर से सीधी बात करते हो या नहीं? हाँ जी!

साधक २ – कभी करते हैं।

स्वामी जी – क्यों जी! कैसा लगता है? कैसे करते हैं सीधी बात?

साधक ८ – स्वामी जी! **शुक्रम्** का अर्थ शीघ्रकारी भी लेंगे?

स्वामी जी – हाँ! शीघ्रकारी भी होगा, प्रकरण के अनुरूप। एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं। प्रकरण के अनुरूप उसके अर्थ बदलते जाते हैं। इसलिए जहाँ जो अपेक्षित हो, वही ले लेंगे। अब इसके विपरीत करो तो अनेक शब्दों का एक अर्थ भी होता है। दोहराओ –

साधक ७ – एक शब्द के अनेक अर्थ होते हैं और अनेक शब्दों का एक अर्थ होता है।

स्वामी जी – दोनों ओर लगाओ इसको। आप ऐसे आराम से बैठे हैं! बताओ, दोनों ओर कहाँ लगाओगे?

साधक ८ – अनेक शब्दों का एक अर्थ होता है। और ...।

स्वामी जी – एक शब्द अनेक अर्थों का वाचक है। अब देखो, अन्तर क्या आया?

साधक २ – एक शब्द अनेक अर्थों को कहता है।

स्वामी जी – हाँ जी!

साधक २ – जैसे आत्मा शब्द जीवात्मा को भी कहता है और परमात्मा को भी।

स्वामी जी – और आत्मा पृथ्वी को भी कह देगा। कहीं आत्मा शब्द से जड़ पदार्थ का ग्रहण हो जाएगा और कहीं ईश्वर का भी ग्रहण हो जाएगा। यह हो गया एक शब्द के अनेक अर्थ और विपरीत करो।

साधक ३ – अनेक नाम हैं जो एक ईश्वर को कहते हैं।

स्वामी जी – और अनेक शब्द ...।

साधक गण – एक ईश्वर को कहते हैं।

स्वामी जी – अच्छा! साधक पुनः सर्वत्र की व्याख्या करता है – जहाँ हम जीवात्मा अणु हैं वहाँ आप विद्यमान हैं, जहाँ हमारी सत्ता नहीं है वहाँ भी आप विद्यमान हैं। जहाँ प्रकृति तथा कार्य रूप यह सृष्टि है वहाँ आप विद्यमान हैं और जहाँ सृष्टि नहीं है वहाँ भी विद्यमान हैं। तो इससे उसका मन बना, ज्ञान-विज्ञान काम करने लगा है कि ईश्वर सर्वत्र व्यापक है और प्रकृति, सृष्टि, जीवात्माएँ व्याप्य हैं।

पुनः साधक कहता है – ईश्वर का और हम जीवों तथा सत्त्व-रज-तम व सृष्टि का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है। इस सम्बन्ध को जानना अत्यन्त आवश्यक है क्योंकि इसके फल, उपयोग बहुत होते हैं। मैंने कभी वैज्ञानिकों और अद्वैतवादियों की बातें उठाई होंगी, वे याद हैं?

साधक ८ – हाँ जी!

स्वामी जी – कुछ स्मरण है या नहीं? अद्वैतवाद के मानने वाले यह कहते हैं कि आप वैदिक धर्मी यदि ईश्वर, जीव, प्रकृति इन तीनों तत्त्वों को अनादि मानते हैं और ईश्वर को सर्वव्यापक भी मानते हैं तो आपके मत में जीवात्मा के लिए कोई स्थान शेष नहीं रहता। क्योंकि ईश्वर ने सब स्थान घेर लिया है। अब जहाँ ईश्वर रहेगा वहाँ दूसरी वस्तु कैसे रह सकती है? इसी प्रकार से सत्त्व-रज-तम,

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रोटॉन आदि को आप यदि अनादि मानते हैं तो ईश्वर इनको भी नहीं रहने देगा। इसलिए इन तीन वस्तुओं को अनादि मत मानो, अन्यथा यह बात नहीं बनती कि ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है। ऐसा ही मानना होगा, क्योंकि एक स्थान पर, एक साथ, दो पदार्थ नहीं रह सकते। क्या समझे?

साधक ३ – दो पदार्थ एक स्थान पर नहीं रह सकते।

स्वामी जी – अच्छा! चलो अपने वैज्ञानिक वर्मा जी से इसके विषय में थोड़ा-सा पूछ लेते हैं। हाँ जी! एक यह बात आई है कि दो वस्तुएँ एक ही स्थान पर नहीं रह सकतीं। तो क्या आपके विज्ञान में ऐसी मान्यता है कि दो पदार्थ एक ही स्थान में नहीं रह सकते। क्या मानते हैं आप लोग?

वर्मा जी – कोई एक पदार्थ ही एक स्थान में रह सकता है, वहाँ दूसरा पदार्थ नहीं आ सकता।

स्वामी जी – देखो! आया न सिद्धान्त!

वर्मा जी – यह गणित का सिद्धान्त है कि एक पदार्थ जिस स्थान पर है वहाँ दूसरा पदार्थ नहीं आ सकता।

स्वामी जी – अब हमारी और आपकी मान्यता....।

वर्मा जी – पृथक् हैं।

स्वामी जी – पृथक् हुई न! तो यहाँ अभी पहले इतनी बात जानने की है कि हम यह नहीं मानते कि जो हमने कह दिया वह सत्य है या जो विज्ञानिकों ने मान लिया वह सत्य है। हम प्रमाणों के आधार पर प्रथम मन्थन करते हैं, पुनः जो बात सिद्ध होती है, उसको मानते हैं। अब आपसे बात नहीं करनी है, जब समय मिलेगा तब देख लेंगे। अभी आप सुनें और ध्यान देंगे, बीच में सोने लगेंगे तब हम टोक देंगे।

अब हम पिछले प्रसंग को लेते हैं। हमारा प्रसंग चल रहा था कि अद्वैतवादियों ने कहा कि तुम आर्य समाजी वैदिक धर्मी लोग तीन पदार्थों को अनादि मानते हो और ईश्वर को सर्वव्यापक भी मानते हो! समझ में आया? विज्ञान के सिद्धान्त अर्थात् 'एक पदार्थ जिस स्थान पर है वहाँ दूसरा पदार्थ नहीं आ सकता' के आधार पर उनका आक्षेप है कि यदि ईश्वर ने सब स्थान घेर रखा है तब जीव कहाँ रहेगा? यदि जीव रहेगा तब ईश्वर में छिद्र मानना होगा और छिद्र मानो तो ईश्वर सर्वव्यापक नहीं रहेगा। ऐसे ही प्रकृति नहीं रह सकेगी और रही तो छिद्र होगा। यही आक्षेप वैज्ञानिकों की ओर से भी आप समझ लेना।

अब समाधान की ओर ध्यान देंगे। मैंने आपको पहले सुनाया था कि हम मोटे रूप में ईश्वर को सर्वव्यापक सिद्ध करने के लिए अग्नि का दृष्टान्त देते हैं, लोहे के गोले का दृष्टान्त देते हैं। ईश्वर सर्वव्यापक कैसे है? तो जैसे लोहे के गोले में अग्नि व्यापक है वैसे ईश्वर सबमें व्यापक है। यद्यपि किसी वैज्ञानिक की ओर से यह आक्षेप नहीं आया। इनसे तो आज मैंने निर्णय के लिए पूछा है। मैंने अपनी ऊहा से यह बात रखी है कि कोई वैज्ञानिक ऐसा कह सकता है कि लोहे के गोले में अग्नि व्यापक इसलिए हो पाती है कि लोहे के गोले के में छिद्र होते हैं। अतः यह सर्वव्यापकता का दृष्टान्त नहीं बनता। क्या समझ में आया? वे ऐसा कह सकते हैं कि परमाणु के बीच-बीच में कुछ छिद्र होते है और वहाँ अग्नि प्रवेश कर जाती है। इसलिए यह ईश्वर सर्वव्यापक है, इस पक्ष को यह दृष्टान्त सिद्ध नहीं कर सकेगा।

अब हम इसका क्या उत्तर देते हैं उसे आप भी सुन लो और वैज्ञानिकों को भी अपने साथ जोड़लेना। ध्यान देना! हमारा कथन है कि एक स्थान में दो पदार्थ रह सकते हैं। किन्तु कौन से दो पदार्थ?

साधक ३ – जो आकार नहीं रखते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – वे दोनों पदार्थ जो स्थान को नहीं घेरते हों या उन दोनों में से कोई एक पदार्थ स्थान न घेरता हो, ऐसे दो पदार्थ एक स्थान पर रह सकते है। अब दोहरा लो !

साधक ८ – वे दो पदार्थ जो स्थान नहीं घेरते ..।

स्वामी जी – ऐसे दो पदार्थ एक स्थान में रह सकते हैं।

साधक ३ – या पुनः एक जो नहीं घेरता हो।

स्वामी जी – या पुनः दो में से एक पदार्थ स्थान को घेरता हो और दूसरा न घेरता हो, वे दोनों पदार्थ एक ही स्थान में रह सकते हैं। यह वैदिक सिद्धान्त चल रहा है। वे जो परमाणु हैं प्रोटॉन, न्यूट्रॉन आदि या प्रकृति, ये तो स्थान घेरते हैं। बिना स्थान घेरे कोई प्रकृति या परमाणु नहीं रह सकता। वह परमाणु अपने स्थान में दूसरे पदार्थ को नहीं आने देगा। एक स्थान में एक ही रहेगा, वहाँ दूसरा नहीं आ सकता। समझ में आया ?

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – परन्तु यह नियम जड़ पदार्थों में हैं। वे स्थान को घेरते हैं। अब इसको विज्ञान के ढंग से सोचना। हम जो समाधान करते हैं, वह पंचावयव के माध्यम से करते हैं। वह इस प्रकार से होगा –

- परमाणु स्थान को घेरता है।
- क्योंकि उसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध गुण होते हैं।
- अब क्या दृष्टान्त देंगे ? जहाँ जिस वस्तु में ये पांच गुण होते हैं वह-वह वस्तु स्थान को घेरती देखी जाती है। जैसे ईंट, दीवार है।
- ईंट की भाँति परमाणु का अन्तिम कण भी स्थान को घेरता है।
- इसलिए शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि गुणों वाला होने से परमाणु स्थान घेरता है।

अब इसको उलटा करेंगे। ध्यान देना ! साधर्म्य और वैधर्म्य से पक्ष की सिद्धि की जाती है। आपको न्याय स्मरण होगा तो काम आएगा। हम यहाँ साधर्म्य से सिद्धि नहीं करेंगे।

साधक ३ – वैधर्म्य से करेंगे।

स्वामी जी – वैधर्म्य से चलेंगे। प्रतिज्ञा तो वही रहेगी किन्तु हेतु बदलेगा।

- ईश्वर स्थान को नहीं घेरता; यह प्रतिज्ञा है।
- क्योंकि उसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध गुण नहीं है; यह हेतु है।
- जिस-जिस पदार्थ में ये पांच गुण होते हैं वे-वे स्थान को घेरते देखे जाते हैं। जैसे ईंट पत्थर, दीवार आदि।
- ईंट, पत्थर, दीवार आदि जैसा ईश्वर नहीं है।
- अतः रूप, रस आदि गुण वाला न होने से ईश्वर स्थान को नहीं घेरता।

यह पंचावयव से सिद्ध किया। ठीक है ! इस हमारे समाधान को वैज्ञानिक भी समझ जाएँगे और अद्वैतवादी भी समझ जाएँगे। हमारा पक्ष है कि जिस एक स्थान पर परमाणु या ईंट, पत्थर है वहीं पर ईश्वर भी रहता है। क्योंकि परमाणु आदि स्थान को घेरते हैं किन्तु ईश्वर स्थान को नहीं घेरता। इसलिए दोनों में टकराव नहीं होगा। जब एक ही स्थान पर दोनों पदार्थ स्थान को घेरने वाले हों तब दोनों में टकराव होता है। ठीक हैं ! समझ में आया ? यह वैदिक समाधान है जो पंचावयव से पूरा सिद्ध हो जाता है।

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपको समझ में आ गया कि जो अद्वैतवादियों ने प्रश्न उठाया और हमने उसका समाधान कर दिया? हम उनको कहेंगे कि आपने जो दृष्टान्त दिया कि ईश्वर ने स्थान घेर रखा है वह मिथ्या है क्योंकि ईश्वर स्थान को घेरता ही नहीं। स्थान को वह घेरता है जिसमें शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध आदि गुण होते हैं जैसे परमाणु। प्रकृति स्थान को घेरती है परन्तु ईश्वर स्थान को नहीं घेरता। इसलिए जहाँ प्रकृति रहती है वहाँ भी ईश्वर रहता है और जहाँ प्रकृति से बने पदार्थ रहते हैं, वहाँ भी ईश्वर रहता है।

तो हम यहाँ तक पहुँच गए। यह है व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध। ध्यान दो। हाँ जी! क्या बताया? सो मत जाना। बुढ़ापा तो नहीं आ गया है?

देखो! अच्छा गम्भीर विषय है। इन उलझनों को पार करना होगा। यदि वैज्ञानिक ऐसा ही मानते रहे तो ईश्वर को स्वीकार नहीं कर पाएँगे। उनका यह सिद्धान्त बना रहा कि एक स्थान पर दो पदार्थ नहीं रह सकते या जिस स्थान में एक पदार्थ है वहाँ दूसरा पदार्थ नहीं आ सकता तब वे ईश्वर को सर्वव्यापक नहीं मान सकेंगे। एकदेशी भले ही मान लें परन्तु वह वैदिक ईश्वर नहीं होगा जो कि सर्वव्यापक है। हमारी यह चर्चा वैज्ञानिकों और अद्वैतवादी से सम्बद्ध हुई। ऐसे ही और भी लोग हैं जैसे कि एक ब्रह्माकुमारी आई। वह कहने लगी कि तुम्हारा ईश्वर सर्वव्यापक है? हमने कहा - हाँ! उसने कहा - तब तो वह इस शरीर में भी व्यापक होगा? यदि वह इस शरीर में भी व्यापक है तब तो उसे भी पीड़ा, क्लेश सताते होंगे। वह ईश्वर तो इनमें पिस जाता होगा बेचारा! क्यों, क्या समझ में आया?

साधक ३ – वह तो सर्वशक्तिमान् है। पिसेगा नहीं।

स्वामी जी – क्यों? यह आक्षेप होगा या नहीं? जहाँ क्लेशों से जीवात्मा पिसता है उनसे क्या ईश्वर नहीं पिसेगा? हाँ जी! आप क्या उत्तर देंगे? यदि उत्तर नहीं आता तब कहना कि स्वामी जी! पता नहीं है।

साधक ५ – स्वामी जी! जीवात्मा अल्पज्ञ है और अल्पशक्तिमान् होने से क्लेशों, दुःखों से पिसता है किन्तु ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होने से क्लेशों से नहीं पिसता।

स्वामी जी – हाँ जी! आपको समझ में क्या आया?

साधक ६ – ईश्वर आनन्द स्वरूप और सर्वशक्तिमान् है। इसलिए वह इन दुःखों से नहीं पिसता।

स्वामी जी – तो आनन्द स्वरूप है, इसलिए नहीं पिसता। हाँ जी!

साधक ६ – आनन्द स्वरूप है इसलिए ईश्वर इस प्रकार के क्लेशों, दुखों में नहीं आता।

स्वामी जी – उदाहरण क्या दोगे? आप पंचावयव से सिद्ध करो कि ईश्वर क्लेशों से नहीं पिसता।

साधक ४ – ईश्वर क्लेशों से नहीं पिसता। क्योंकि वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। जिस पदार्थ में ये गुण नहीं होते, वह इन दुःखों और क्लेशों से पिसता है। जैसे जीवात्मा। ईश्वर जीवात्मा की तरह अल्पज्ञ और अल्पशक्तिमान् नहीं है। इसलिए सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होने से क्लेशों से नहीं पिसता।

स्वामी जी – हाँ जी! इन्होंने पंचावयव से सिद्ध कर दिया। अब आपको क्या समझ में आया?

साधक ८ – ईश्वर सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – इन्होंने जो हेतु दिया उसमें क्या कहा? दोहराओ। याद है या बूढ़े की तरह भूल गए? हाँ जी! क्या कहा आप दोहराएँ –

साधक ७ – इन्होंने सुनाया कि परमपिता परमात्मा सर्वशक्तिमान् होने से।

स्वामी जी – प्रतिज्ञा को मत छोड़ो, पहले प्रतिज्ञा करो।

साधक ७– परमात्मा दुःखी नहीं होता।

स्वामी जी – हाँ!

साधक ७ – जीवात्मा की तरह, क्योंकि परमपिता परमात्मा सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है। जीवात्मा अल्पज्ञ और सीमित शक्ति वाला है।

स्वामी जी – पंचावयव का प्रयोग करने का आपका अभ्यास नहीं है। आप करो –

साधक ८ – ईश्वर क्लेशों से नहीं पिसता।

स्वामी जी – यह प्रतिज्ञा है।

साधक ८ – क्योंकि वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् है।

स्वामी जी – यह हेतु ..।

साधक ८ – दृष्टान्त।

स्वामी जी – दृष्टान्त और व्याप्ति भी कहनी पड़ती है।

साधक ८ – जो-जो वस्तुएँ।

स्वामी जी – अब आपको पता चलेगा। खाया-पिया और पड़े रहे कमरे में, क्या पता था पंचावयव का प्रयोग करके सुनाया जाएगा।

साधक ८ – जो-जो वस्तुएँ अल्पज्ञ और अल्पशक्ति वाली होती हैं, वे क्लेशों से पिसती देखी जाती हैं।

स्वामी जी – हाँ!

साधक ८ – जैसे जीवात्मा। उपनय – ईश्वर जो है।

साधक १ – छूट गया।

स्वामी जी – आपने बोलना नहीं, इनको बोलने दो। उपनय छूट गया, उसकी तैयारी कर रहे हैं। क्या उपनय बनेगा? जीव जैसा ईश्वर अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् नहीं हैं। यह उपनय है। दृष्टान्त-पूर्वक प्रतिज्ञा को दोहराना उपनय है। अब निगमन – हेतु सहित प्रतिज्ञा को दोहराना है।

साधक ८ – इसलिए सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् होने से ईश्वर क्लेशों से नहीं पिसता।

स्वामी जी – यह बात पंचावयव से आई। पुनः सुन लो! आध्यात्मिक क्षेत्र में या भौतिक क्षेत्र में गम्भीर गुत्थी कैसे सुलझती है? जैसे कि ब्रह्माकुमारी ने आक्षेप किया – ईश्वर सर्वव्यापक है तो वह जीवों में होने से जीवों की तरह क्लेशों से पिसेगा। यदि ईश्वर सृष्टि से बाहर परमधाम में होगा तो उसको क्लेश नहीं पीसेंगे।

अब वैदिक धर्मी इसका क्या उत्तर देगा? वह कहेगा –

ईश्वर क्लेशों से नहीं पिसता। क्योंकि वह सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् हैं। जो-जो सर्वज्ञ और सर्वशक्तिमान् नहीं होता, वह-वह क्लेशों से पिसता है। जैसे जीवात्मा। जीवात्मा जैसा अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् ईश्वर नहीं है। इसलिए ईश्वर सर्वज्ञ, सर्वशक्तिमान् होने से क्लेशों से नहीं पिसता।

तो न्याय के माध्यम से यह ब्रह्माकुमारी का उत्तर हो गया और वह वैज्ञानिकों तथा अद्वैतवादियों

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हो गया। अब आप इस स्थान पर आ गए कि न तो अद्वैतवादी हमारी बात का खण्डन कर सकते, न भौतिक वैज्ञानिक, न ब्रह्माकुमारी कर सकती हैं, अपितु हम उनका खण्डन कर सकते हैं। परन्तु जब आपके अन्दर इतना साहस होगा तब तो इस मैदान में अज्ञान के युद्ध को जीत सकेंगे, नहीं तो आप घबरा जाएँगे।

तो आगे ये बातें उपासना में भी ऐसे ही काम में आती हैं। जैसे कि जब जीवात्मा समाधि अवस्था में ईश्वर का साक्षात्कार करता है तब समस्या खड़ी होती है। या नहीं?

साधक ३ – ज्ञान ठीक होगा तब नहीं होनी चाहिए। ज्ञान में अधूरापन है तब होगी।

स्वामी जी – ईश्वर को सर्वव्यापक देखने लगेगा तब स्वयं को नहीं देख पाएगा और स्वयं को देखने लगेगा तो ईश्वर सर्वव्यापक दिखाई नहीं देगा। हाँ जी! सुन रहे हो कुछ, क्या समझ में आया?

साधक ४ – जब ईश्वर को सर्वव्यापक देखने का प्रयास करता है।

स्वामी जी – तो स्वयं की अनुभूति बन्द हो जाएगी।

साधक ४ – अपनी अनुभूति बनाने का प्रयास करता है तब ईश्वर ...।

स्वामी जी – अपनी अनुभूति करेगा तब वहाँ ईश्वर दिखाई नहीं देगा। यह समस्या वहाँ पर है। एक स्थान में दो पदार्थ रहते हैं और देखने वाला दोनों को देखता है। यह समाधि की स्थिति है। कुछ समझ में आया।

साधक ३ – जीवात्मा अपने में ईश्वर को व्यापक देखता है। अपने अन्दर और बाहर भी देखता है, यह सिद्धान्त बना।

साधक ८ – स्वामी जी! जब जीवात्मा ईश्वर को देख रहा है तब देखने वाले को अपनी अनुभूति होनी चाहिए?

स्वामी जी – नहीं! बात यह है कि जब वह व्याप्य और व्यापक को देखने लगा तब ऐसा कोई स्थान नहीं मिला जहाँ व्यापक ईश्वर न हो। अतः जब सर्वत्र ईश्वर व्यापक दिखाई देगा तब जीवात्मा कहाँ दिखेगा?

साधक ३ – अपने में ही देखेगा कि मेरे अन्दर ईश्वर है।

साधक ८ – अपने अन्दर भी ईश्वर को देखेगा।

साधक २ – घिरा हुआ देखेगा।

स्वामी जी – यह भी अच्छा गम्भीर प्रश्न है कि ईश्वर को सर्वव्यापक देखना और स्वयं को भी देखना और आगे बढ़ो तो प्रकृति को भी देखना, तीनों को एक जगह देखना। अच्छा! हम कहाँ चल रहे थे?

साधक ३ – स पर्यगात्।

स्वामी जी – **स पर्यगात् शुक्रम अकायम्**। साधक बोलता है। हे ईश्वर! **अकायम्** काया शरीर को कहते हैं। आप काया अर्थात् शरीर को धारण नहीं करते। न स्थूल, न सूक्ष्म और न कारण; आप अकाय है। पुनः साधक कहता है – हे ईश्वर! हम अकाय नहीं हैं। हम शरीर धारण करते हैं। हम उत्पन्न होकर मर जाते हैं, पुनः आपकी व्यवस्था से अपने कर्मों के अनुसार नया शरीर धारण करते हैं। **अव्रणम्** पत्थर में छिद्र होते या नहीं? बनी हुई वस्तु कोई नहीं होगी जिसमें छिद्र न हों। क्या समझ में आया? दोहरा लो।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक गण – बनी हुई वस्तु में छिद्र होते ही हैं।

स्वामी जी – अवयवों, पदार्थों से बनी हुई ऐसी कोई वस्तु नहीं मिलेगी, जिसमें छिद्र न हों। क्यों जी?

अच्छा! ये जो टूटते-टूटते जब अन्तिम रूप पदार्थ बच जाता है, वैज्ञानिक उसको क्वार्क्स कहते हैं। कुछ भी कहें, उस एक कण को तो छिद्र रहित मानते होंगे, जो टूटते-टूटते अन्त में बचा रह जाता है। टूटते-टूटते एक ऐसी अवस्था जहाँ टूटना बन्द हो जाता है; उसमें वे छिद्र मानते हैं या नहीं, इसका आप पता करना। अपने यहाँ वैदिक परम्परा में तो उसमें छिद्र नहीं मानते हैं।

वर्मा जी – साइंस में उस सबसे छोटे पार्टीकल को अकेला मानते हैं।

स्वामी जी – हम उसको इकाई मानते हैं, प्रकृति, सत्त्व-रज-तम को। टूटते-टूटते पदार्थ की जो एक सीमा आती है, जिसके आगे ऐसा नहीं होगा कि वह टूटता चला जाए। कोई भी वस्तु या कण टूटता ही चला जाए; ऐसा नहीं हो सकता। टूटते-टूटते एक ऐसी स्थिति आएगी कि आगे टूटना सम्भव ही नहीं होगा। तो जहाँ से नहीं टूटेगी, वह इकाई होगी, उसमें छिद्र नहीं होंगे। तब ईश्वर के लिए क्या कहा?

साधक ३ – अछेद्य, अभेद्य।

स्वामी जी – नहीं-नहीं! यहाँ वह प्रकरण नहीं है। यहाँ तो कहा – **अव्रणम्** हे ईश्वर! आपमें छिद्र नहीं है। जैसे शरीर, वृक्ष, पाषाण, सोने आदि बनी हुई सभी वस्तुओं में छिद्र हो जाते हैं किन्तु ईश्वर में कोई छिद्र, व्रण नहीं है। **अस्नाविरम्** आप नाड़ियों के बन्धन में भी नहीं आते हैं। हम जीवात्माएँ नस-नाड़ियों आदि के बन्धन में आते हैं। आगे बढ़ो। **शुद्धम्** अब हम शुद्ध की परिभाषा देंगे – हे ईश्वर! आप में अविद्या, अधर्म, अन्याय, कुसंस्कार नहीं है। आपमें गलना-सड़ना नहीं है। किसी भी प्रकार की अशुद्धि आप में नहीं है।

शुद्धम् में ईश्वर की तुलना में हम अपने लिए कहते हैं – हे ईश्वर! हम भी स्वभाव से तो शुद्ध हैं परन्तु निमित्त से अविद्या के हमारे साथ जुड़ने से हम अशुद्ध हो जाते हैं, अधर्म आचरण करने से हम अशुद्ध हो जाते हैं। जीवात्मा भी स्वभाव से शुद्ध माना जाता है किन्तु प्रकृति, शरीर, इन्द्रियों, मन आदि के संयोग से, तमोगुण, अविद्या, अधर्म आदि के सम्बन्ध से जीवात्मा अपवित्र हो जाता है। आ गई बात समझ में? हम कहाँ चल रहे थे?

साधक ३ – **अपापविद्धम्**।

स्वामी जी – हे ईश्वर! आप कभी चोरी आदि दुष्कर्म नहीं करते और हम करते हैं। जीवात्मा अपनी भी तुलना कर रहा है। ईश्वर को दिखा रहा है कि मैं ऐसा हूँ। आप अपने आपको उपासना में ईश्वर को दिखाओगे या नहीं? या ऐसा काम कभी नहीं करते?

साधक ८ – हाँ जी!

स्वामी जी – **कविः** सारी विद्याओं का व्याख्यान करने वाले वक्ता **मनीषी** मनन, ज्ञान- विज्ञान से हमारी सारी बातों को जानने वाले। जैसा हम करते हैं, जो कुछ भी है सबको जानते हैं। **परिभूः** परिभू का एक अर्थ है सर्वव्यापक, जो पीछे आया था। यहाँ परिभू सबका अधिष्ठाता, सबका राजा और दुष्टों को दण्ड देने वाला अर्थ लिया है। **स्वयम्भूः** स्वंय सिद्ध हैं, आपको बनाने वाला कोई भी नहीं है। आगे बात कही – **याथातथ्यतः अर्थान् व्यदधात् शाश्वतीभ्यः समाभ्यः** यथार्थ रूप में वेदों के शब्द-अर्थ को, अपनी सनातन प्रजा जीवात्मा को आपने बताया है। समझ में आ गया?

अच्छा! चलो! अब मन्त्र का प्रयोग करके देखो!

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओम् स पर्यगाच्छुक्रमकायमव्रणमस्नाविरं शुद्धमपापविद्धम् ।
कविर्मनीषी परिभूः स्वयम्भूर्याथातथ्यतोऽर्थान्व्यदधाच्छाश्वतीभ्यः समाभ्यः ॥

साधक मन्त्र पाठ करता है और पुनः एक-एक शब्द का अर्थ करता है। ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना में कहीं सगुण स्तुति, कहीं निर्गुण स्तुति का प्रसंग आता रहता हैं। अब विराम ॥

७२ ज्ञानखण्ड

निर्विषयता : आषाढ़ कृ. १४/२०६०-२८/७/०३

मन्त्र पाठ करते समय व्यक्ति को वैसी स्थिति बनाने का प्रयास करना चाहिए जैसी कि ध्यान काल में होती है। प्रत्येक कार्य शारीरिक, वाचनिक या मानसिक कोई भी हो, वह परीक्षा-पूर्वक, आत्मनिरीक्षण-पूर्वक होना चाहिए। यदि ऐसा नहीं किया जाता है तो योग में प्रगति न्यून होगी, विशेष नहीं होगी। अब मन्त्र पाठ करेंगे -

ओं भूर्भुवः स्वः..... । ओं सह नाववतु ..... ।

अब आप निरीक्षण-परीक्षण के साथ एक प्रयोग करेंगे जिसमें मन को सर्वथा निर्विषय बनाने का प्रयत्न करेंगे। आप अपनी इच्छा, प्रयत्न, ज्ञान, विचार सब को रोक देंगे। इस समय ईश्वर, जीवात्मा, प्रकृति-विकृति इन तीनों में से किसी को भी विषय नहीं बनाएँगे। जैसे कि 'ओम्' का जप करने लग जाएँ। जीवात्मा कैसा है; यह सोचने लग जाएँ। यह शरीर नाशवान् है या कैसा है; ऐसा सोचने लग जाएँ। ऐसा कुछ भी नहीं करना है। स्वतन्त्र रूप से तो विचार को चलने ही नहीं देना है। मन को सर्वथा खुला नहीं छोड़ना है। चाहे जो विचार आ जाए, यह तो है ही नहीं। किन्तु एक को विषय बनाकर चलें, यह भी नहीं है। बात समझ में आ गई ?

एक स्थिति यह है कि मन हमारे अधिकार से बाहर है। हम विविध विषयों को उठाते रहते हैं। किसी भी विषय में मन को चला देते हैं और कुछ काल के पश्चात् हमको पता चलता है कि मन विषयान्तर में चला गया। वहाँ से हटाकर लाते हैं, पुनः विषयान्तर में चला जाता है, यह स्थिति है। पुनः मन को कुछ काल तक एक विषय में जमाते हैं जैसे ही थोड़ा एकाग्र होता है, पुनः स्थिति

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिवर्तित हो जाती है। पुनः जमाते हैं, पुनः भंग हो जाती है।

आगे जब एक विषय को लेते हैं और लम्बे काल तक उसी को अधिकारपूर्वक बनाए रखते हैं। जैसे कि **ओम् सच्चिदानन्द** इसका पाठ करते चले गए और अर्थ भी करते चले गए। ईश्वर समर्पित भी हो गए और बीच में किसी विषय को नहीं उठाया। एकाग्रता बनाए रखी, यह दूसरी स्थिति है।

परन्तु निर्विषयता में न तो इनमें से पहली स्थिति होगी, न दूसरी और न तीसरी। इसमें यह होगा कि अब न मैं ईश्वर को, न जीवात्मा को, न प्रकृति-विकृति को विषय बनाऊँगा। अब आप इस स्थिति का सम्पादन करेंगे। सावधान होकर बैठिए और अच्छे प्रकार से देखिए कि यह स्थिति बनती है या नहीं। आरम्भ कीजिए -

प्रयोग आरम्भ....समय लगभग तीन मिनट।

अब आप रुकेंगे। आप सुनाएँगे आपका कितना स्तर बना। कैसी स्थिति रही?

साधक ३ – अपने ज्ञान के अनुसार मैंने कोई वृत्ति तो नहीं उठाई। मैंने हृदय प्रदेश में धारणा बना रखी है, यह ज्ञान बना रहा और अपनी इच्छा, प्रयत्न को रोका हुआ है। अनेक बार ऐसा विचार मन में आया कि मैंने अपनी इच्छा को, प्रयत्न को रोक दिया है। ऐसी अनुभूति रही।

स्वामी जी – तो इन्होंने बतलाया कि मैंने अपने ज्ञान को, प्रयत्न को, इच्छा को रोक रखा है। पुनः यह विचार उठाया कि मैंने अपने ज्ञान को, प्रयत्न को, इच्छा को रोक रखा है; यह विषय बना रहा। इस ओर से आप सुनाएँगे -

साधक ५ – पहली बार संकल्प करने पर कुछ काल तक बना रहा, पुनः गाड़ी और वर्षा की ध्वनि से कुछ प्रभावित हुआ। उसको कुछ वृत्ति बनाया। पुनः उसी संकल्प को दोहराया कि मैं अभी कोई भी विचार को उठने नहीं दूँगा। मैं अपने ज्ञान-कर्म को रोककर रखूँगा। पुनः कुछ वृत्ति बनी। ऐसे बीच में आगे कुछ दृश्यात्मक दृष्टि आई। उसको भी मैंने रोक दिया। इस प्रकार से स्थिति रही।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे। कैसी स्थिति रही?

साधक ४ – पूरे काल तक पांच-सात बार यह बात दोहराई कि मैंने अपने ज्ञान को, प्रयास को रोक रखा है और मैं तीनों में से किसी भी विषय में विचार नहीं कर रहा हूँ। एक बार गाड़ी की ध्वनि में मन को ले गया, पुनः उसको रोक दिया। एक बार बीच में ध्यान आया कि श्वास की गति कुछ अधिक प्रतीत हुई उसको और हलका कर देना चाहिए और पुनः उसको हलका कर दिया।

स्वामी जी – ऐसी स्थिति बनी रही। विविध विषयों को नहीं छुआ।

साधक ४ – जी!

स्वामी जी – इस ओर से आप बोलेंगे।

साधक ८ – मैंने कोई वृत्ति नहीं उठाई और जब ये जीप नजदीक आई ...।

स्वामी जी – और स्पष्ट और ऊँचा बोलो ताकि औरों को भी सुनाई दे।

साधक ८ – मैंने इस काल में किसी वृत्ति को नहीं उठाया। जब ये जीप नजदीक आई तब इसकी ध्वनि का कुछ प्रभाव पड़ा किन्तु उसको विषय नहीं बनाया।

स्वामी जी – तब आप क्या सोचते रहे?

CC-0. Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – मैं यही सोचता रहा कि मैंने अपनी इच्छा, ज्ञान, प्रयत्न को रोका हुआ है।

स्वामी जी – आपको यह अनुभूति होती रही ?

साधक ८ – जी ! और एक बार बीच में थोड़ा-सा यह हुआ कि ये जैसी स्थिति है, जब स्वामी जी पूछेंगे तो उनको ऐसे ही बताऊँगा। मैंने मन में एक बार ऐसे सोचा।

स्वामी जी – अच्छा ! यह आया है कि पूछेंगे तो ऐसा बताऊँगा।

साधक ८ – जी !

स्वामी जी – हाँ ! पूछेंगे तो ऐसा बतलाऊँगा; इस विचार को भी रोकना चाहिए। हाँ जी ! आप सुनाएँ।

साधक ६ – प्रायः सब विषयों को रोककर रखा। कुछ ध्वनियाँ सुनीं, उनको हटाने का प्रयास किया और सफल हुआ। बीच में सूक्ष्म रूप से आपको सुनाने के लिए मन में वृत्ति आई कि जब आप पूछेंगे तो उसको भी तुरन्त रोक दिया।

स्वामी जी – अब आप बोलेंगे। क्या स्थिति रही ?

साधक ७ – भगवन् ! ठीक स्थिति रही।

स्वामी जी – थोड़ा-सा ऊँचा बोलो ! भाषा स्पष्ट होगी और अभ्यास भी होगा। और सुनने वालों को पता भी चलेगा कि इस व्यक्ति ने क्या अनुभव किया।

साधक ७ – कुल मिलाकर स्थिति ठीक रही और यह विचार अवश्य किया कि अब किसी को भी विषय नहीं बनाना है। मस्तिष्क में किसी भी तरह की वृत्ति नहीं बनानी है, इस बात का ध्यान रखना है।

स्वामी जी – अच्छा ! यह विषय बनाया कि इस बात का ध्यान रखना है। पुनः मस्तिष्क को विषय बनाया।

साधक ७ – इसके अलावा कोई वृत्ति नहीं बनाई।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप अपनी अनुभूति बताएँगे।

साधक २ – दो वृत्तियाँ उठाई थीं। एक तो यह कि मैंने मन को रोक रखा है, यह अच्छी स्थिति है। उससे प्रसन्नता हुई थी। हर्ष की वृत्ति उठाई थी। दूसरी वर्षा की ध्वनि आई थी तब मैंने सोचा कि इसको नहीं सुनना है, यह मुझे क्या बाधित करेगी। शेष स्थिति ठीक रही। आगे मैं हूँ, इतना मात्र अनुभव करता रहा।

स्वामी जी – मैं।

साधक २ – केवल मैं हूँ। बस !

स्वामी जी – 'मैं हूँ' की तो अनुभूति हुई और मैं विचारों को रोक रहा हूँ, यह नहीं हुई। अच्छा ! तो आपने कुछ अनुभूतियाँ कीं, जैसा कि आपने सुनाया कि एक बार विचार उठाया कि स्वामी जी सुनेंगे तो मैं ऐसे सुनाऊँगा, ऐसा विचार आया। पुनरपि पर्याप्त मात्रा में आपने यह स्थिति बनाई कि मैं अपने ज्ञान को, प्रयत्न को, इच्छा को रोके हुए हूँ। इस विषय में आपकी कुछ प्रगति दिखती है। इस विषय को आपने कुछ समझा है।

इस प्रकार अभ्यास करते-करते आपको जो कठिनाई का अनुभव होता है, वह कम होता जाएगा अर्थात् किसी को भी विषय न बनाकर, केवल यही विषय रखना कि मैं अपने ज्ञान, प्रयत्न, इच्छा को रोके हुए हूँ; इसको बनाने में सरलता रहेगी। आगे इस स्थिति को इतना स्थिर बना लेना

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है कि जिसमें लगने लगे कि ठीक है ! मुझे विचार, मन आदि बाधित नहीं कर रहे हैं। क्योंकि जब नया व्यक्ति इस प्रयोग को करता है तब बहुत कठिनाई अनुभव करता है। उसे लगता है कि गला घुट-सा रहा है। इस बन्धन से कैसे निकलूँगा, ऐसी स्थिति बनती है आदि-आदि। ऐसी स्थितियाँ नहीं रहनी चाहिएँ।

यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि हम जिस किसी भी स्थिति को बनाते हैं उसके कुछ साधन तथा कुछ बाधक होते हैं। जैसे कि आपने शब्द-प्रमाण से यह अच्छी प्रकार से जान लिया कि ईश्वर का स्वरूप ऐसा है, जीवात्मा का स्वरूप ऐसा है और प्रकृति-विकृति का स्वरूप ऐसा ही है। आपने तीनों का निर्णय कर लिया कि ये ऐसे-ऐसे हैं। इनके विषय में आपके ये परिज्ञान कार्य कर रहे हैं। तो इस स्थिति के सम्पादन में तीनों के ये ज्ञान ही सहायक होते हैं।

पुनः बाधक क्या हैं ?जब आप मन को सभी विषयों से हटा लेते हैं तब पुनः किसी विषय को जानने के लिए मन में प्रेरणा होने लगती है। दोहराओ, क्या समझ में आया ?

साधक ८ – किसी विषय को...।

स्वामी जी – मन को विषयान्तर में ले जाने की इच्छा, किसी विषय को जानने की इच्छा कि मैं उसको जानूँ, यह हमारी इस स्थिति में बाधक है। यदि हम यह समझ गए कि यह वही विषय है, जिसको हमने जान लिया है, अन्य कोई नहीं है। इसलिए इसको रोक दिया है। तो जब तक यह ज्ञान बना रहेगा तब तक स्थिति बनी रहेगी और जैसे ही उसी को जानने की इच्छा तीव्र हुई कि स्थिति पुनः बिगड़ जाएगी। अर्थात् जिज्ञासा ही इस निर्विषयता की स्थिति की बाधक है।

यदि आपने यह निर्णय कर लिया है कि मैं जीवात्मा ज्ञानवान् हूँ, इच्छा, प्रयत्न मेरे गुण हैं और अब मैं किसी विषय को नहीं विचारूँगा और इस स्थिति के सम्पादन में न तो ईश्वर, न शरीर, न बुद्धि, न मन और न ही इन्द्रियाँ बाधक हैं, न कोई दूसरी जीवात्मा मुझे धक्का देकर इधर से उधर भेज सकती है। इनमें से कोई भी मुझे अन्य विचारों की ओर ले जाने वाला या प्रेरणा देने वाला या बाधित करने वाला नहीं है तब मुझे क्या कठिनाई है ? कुछ भी नहीं।

जब जीवात्मा ऐसा अनुभव कर लेता है कि इस स्थिति के सम्पादन में अन्य कोई बाधक नहीं, अपितु मेरे द्वारा मन को प्रेरणा देना ही बाधक है। मन प्रेरणा देने से ही चलता है। अतः मैं मन को प्रेरणा नहीं दूँगा। अब मन को प्रेरणा न देने की स्थिति में न कोई विचार आएगा, न कोई रूप आएगा, न कोई शब्द आएगा, कुछ भी नहीं होगा। अर्थात् यह निश्चित ज्ञान काम करने लगे कि मन, इन्द्रियों और शरीर को मैं प्रेरणा देता हूँ तभी ये कार्य करते हैं, अब नहीं दूँगा; तो इस स्थिति के सम्पादन में सरलता हो जाती है।

आगे बढ़ो ! एक और बात है जो आपके मन में उठती होगी या लोग भी यह सोच सकते हैं कि मन को पूर्णतः रोककर क्या करना है ? यह जिज्ञासा होती है अथवा ऐसा लगता है कि हम इतना परिश्रम क्यों करें ? तो यह भी एक बाधा है और इसका समाधान है इसके प्रयोजन = उद्देश्य को जान लेना। यदि इसका उद्देश्य समझ में आ जाय कि यह बहुत बड़ी उपलब्धि है। ठीक से जान लेने पर बहुत अच्छा लगने लगता है। अर्थात् यह जो मैं आपको सुना रहा हूँ कि मन को सभी विषयों से रोक देना, शान्ति से रोक देना, बिना-बाधित हुए रोक देना, किसी प्रकार का कोई प्रभाव, दबाव न होना और मन को जब चाहें, जहाँ चाहें वहाँ स्वतन्त्रता से चला लेना; यह एक बहुत बड़ी उपलब्धि है। यह कोई साधारण स्थिति नहीं है। सामान्य लोगों को दृष्टि में रख कर तुलना करेंगे तब पता चलेगा कि यह कोई साधारण अवस्था नहीं है। एक असाधारण स्थिति है।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब परिणाम, फल को देखो। हम दिन में चलते-फिरते, खाते-पीते, पढ़ते-पढ़ाते चाहे जो विचार उलटी-सीधी बात लाकर सामने खड़ी कर लेते हैं। तब हमारी मनः स्थिति बिगड़गई, पुनः हमने क्या किया? उसको हटाने में लग गए कि इसको हटाओ। यह तो बहुत बुरा विचार है और उसको हटा दिया। हटाने के पश्चात् पुनः कुछ काल पश्चात् वह विचार आकर खड़ा हो गया और हमको न तो यह पता चलता है कि इस विचार को किसने उठाया या इसके लिए मन को किसने, कब प्रेरणा दी थी? इस विचार को कहाँ से उठाकर ले आए; इसका पता नहीं चलता। सीधा विचार आया दिखाई देता है। आपकी ऐसी स्थिति है या नहीं, आप बताइए?

साधक ७ – जी! है।

स्वामी जी – आप अपने परीक्षण से देखिए। ऐसी स्थिति है या नहीं है?

साधक ३ – हाँ जी! ऐसी स्थिति होती है।

स्वामी जी – यही स्थिति दिनभर रहती है। अब हम इसके विभाजन करें तो इसके तीन क्षेत्र हैं। एक ज्ञान का, एक कर्म का, एक उपासना का, हमारे विचारने के ये तीन विभाग हैं। हम इन विचारों को बिना-विचारे किसी भी ज्ञान को अर्थात् उलटे-सीधे ज्ञान को लाकर खड़ा कर देते हैं। अब क्या समझ में आया?

साधक ३ – बिना परीक्षा किए।

स्वामी जी – बिना परीक्षा किए, हम किसी भी उलटे ज्ञान को लाकर खड़ा कर देते हैं। एक दृष्टान्त लेते हैं तब कुछ समझ में आएगा। आप कहीं की घटना को ले लो, अब देखो! हमने कई वर्ष पहले एक सुन्दर व्यक्ति देखा। बहुत सुन्दर, वह अच्छा लगा, इसको देखते ही रहें और यह शरीर भी बड़ा शुद्ध है, पवित्र है, बहुत अच्छा है। उसमें रस लिया। उससे संस्कार बन गया, पुनः इच्छा हुई इसको पुनः देखो आदि-आदि। आप देखेंगे जब आप ध्यान में बैठेंगे तब न तो आप को यह दिखाई देगा कि कब मैंने मन को प्रेरणा दी और न यह दिखाई देगा कि मैं इसको इस रूप में कहाँ से उठाकर लाया। आपको उस व्यक्ति का सीधा रूप ही दिखाई देगा। परिणाम – यदि आप उसको नहीं रोकेंगे तब तत्काल उसमें राग उभर जाएगा और आपको प्रभावित कर देगा। यदि आपने कुछ काल तक उस रूप को देख लिया तब आपकी मनः स्थिति राग-द्वेष की हो जाएगी। चाहे राग की हो, चाहे द्वेष की हो; हो जाएगी।

यहाँ हमने क्या किया? हमने प्रथम उस रूप के लिए मन को प्रेरणा दी, पुनः उस रूप को स्मरण करके ले आए और मन को राग से युक्त कर दिया। यहाँ मुख्य बात यह है कि हमने बिना परीक्षा किए मन को असावधानी से चलाया, मन को चलाकर स्मृति को उठा लिया, स्मृति में ऐसी वस्तु ले आए जो कि बहुत हानिकारक थी। जैसे कि राग-द्वेष की स्थिति थी तब उसको उठाकर अपने अन्दर ले आए। यह एक स्थिति है। यदि हमने उस रूपवान् व्यक्ति को अपने ज्ञान से बहुत सुखदाई माना है तो यह एक मिथ्याज्ञान की स्थिति है। ऐसा होता है, प्रायः व्यक्ति बिना परीक्षा किए किसी भी मिथ्या ज्ञान को ले आता है और अन्दर भर लेता है तथा अपने-आपको बिगाड़ लेता है। वहाँ ज्ञान के क्षेत्र में यह स्थिति रहेगी।

अब कर्म के क्षेत्र में दृष्टान्त ले लो। एक व्यक्ति का दैनिक जीवन में कभी किसी से कुछ तनाव हो गया। कुछ आपस में तना-तनी हो गई या कुछ झगड़ा हो गया। आगे बढ़ो तो दूसरे को उसने लाठी मार दी इत्यादि। वह घटना हो गई और उस समय उस व्यक्ति के मन में इतना द्वेष हुआ, इतना क्रोध आया कि इस व्यक्ति को अभी समाप्त कर दूँ इत्यादि। वे संस्कार बन

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गए। अब ध्यान देंगे, असावधानी के कारण मन को प्रेरणा दी और मन के द्वारा वही स्मृति उठा ली गई और जो द्वेष का संस्कार था उसको लाकर खड़ा कर दिया। लाकर खड़ा करते ही, उस व्यक्ति के मन में यदि कुछ असावधानी है, तब उस व्यक्ति को मारने की या दुःख देने की स्थिति बनेगी। वहाँ कर्म के क्षेत्र में यह स्थिति रहेगी।

अब उपासना की बात लो। एक व्यक्ति अपनी स्थिति में है और दैनिक जीवन में अथवा साधना में बैठा हुआ 'ओम्' आदि का जप कर रहा है। ईश्वर की उपासना करने के लिए प्रयास-शील है। कल्पना करते हैं अब उसने सुना कि कल खीर-हलुवा बनेगा और फल भी खूब बटेंगे। तब तत्काल उसने मन को प्रेरणा दे दी और उस खीर, हलुवा मिलने की जो अभिलाषा थी उसको उठा लिया। परिणाम आया उसका आकर्षण या प्रेम खीर, हलुवे के साथ हो गया और ईश्वर के साथ कट गया। कुछ समझ में आया? व्यापक उपासना को देखो।

साधक ८ – हमने वास्तविक जिस ईश्वर की उपासना करनी थी उसको छोड़कर खाद्य पदार्थों की उपासना शुरू कर दी।

स्वामी जी – दो बातें हैं - जब हम लौकिक पदार्थों को सुख की उपलब्धि की दृष्टि से अपनाते हैं, प्रेम करते हैं और ईश्वर को छोड़ते हैं, वह लौकिक पदार्थों की उपासना कहलाएगी। दोहरा लो! क्या समझ में आया?

साधक ५ – ईश्वर की उपासना छोड़कर.....।

स्वामी जी – ईश्वर आनन्दप्रद है, इसको मानना हमने छोड़ दिया और लौकिक सुख और सुख-साधनों को स्वीकार कर लिया। हमारा आकर्षण लौकिक सुख और सुख-साधनों में हो गया। हमने इन लौकिक पदार्थों की परीक्षा किए बिना, उपासना आरम्भ कर दी और ईश्वर की उपासना को छोड़ दिया।

यदि दूसरे ढंग से सोचना हो तब योग दर्शनकार ने जो विघ्न लिखे हैं उनमें एक अविरति है। दोहरा लो, क्या समझ में आया? व्याधि, स्त्यान आदि जो उपासना के विरोधी कारण गिनाए हैं उनमें से एक है - अविरति अर्थात विषयों में राग होना। समझ में आया?

साधक ५ – विषयों में राग होना।

स्वामी जी – विषयों में जो राग होता है वह ईश्वर की उपासना को उखाड़ देता है, बाधित कर देता है, यह स्थिति है। इन तीनों क्षेत्रों में व्यक्ति बिना परीक्षा के, बिना विशेष योजना के, बिना अधिकार के मन को चलाता रहता है। कहीं ज्ञान, कहीं कर्म, कहीं उपासना; ये तीनों विषय यदि परीक्षापूर्वक, ध्यानपूर्वक ग्रहण नहीं किए जाते, बिना परीक्षा के, बिना योजना के ग्रहण होते रहते हैं तो समझ लेना कि विवेक-वैराग्य की स्थिति आएगी और समाधि लग जाएगी; ऐसी सम्भावना नहीं है।

अब हम इसको एक विषय से जोड़ेंगे। यह पूरी की पूरी घटना सबके साथ घटती रहती है, इसको सब जानते हैं। मानसिक स्थितियों का आप भी अध्ययन कर सकते हैं, यह कोई परोक्ष विषय नहीं है। इसको रोका जा सकता है। जैसे कि साधक इस प्रकार विचार करे कि मन को मैं चलाता हूँ, इन्द्रियों को मैं चलाता हूँ, शरीर को मैं चलाता हूँ। जब स्मृति-वृत्ति आती है तब मन को प्रेरणा मैं देता हूँ। जब इनको ध्यान से देखेंगे तब इस परिणाम पर पहुँच जाएँगे कि मन में विचार कैसे आते हैं, कहाँ से आते हैं। प्रयोग करो। उसमें आप क्या देखेंगे?

साधक ३ – मन में विचार कहाँ से आते हैं?

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – पहले तो विषय यह था कि आपने अपने ज्ञान को, अपनी इच्छा को, प्रयत्न को रोक रखा है। अब विषय क्या है? अब है कि विचार मन से आते हैं, बुद्धि से आते हैं, शरीर से आते हैं, मस्तिष्क से आते हैं, ईश्वर की ओर से आते हैं या पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, आकाश की ओर से आते हैं; इसको देखना है। यह जो पता नहीं चलता कि हम मन को कब प्रेरणा दे देते हैं और वह विषय को उठाकर ले आता है, पुनः विषय आ जाने के पश्चात् पता चलता है कि विषय आ गया है। अब इसको देखना है। क्या देखना है?

साधक ३ – मन में विचार कहाँ से आते हैं।

स्वामी जी – देखो! जब आपने इस रूप में मन को रोक दिया कि अब हम कोई विचार नहीं करेंगे तब बहुत बल लगा होगा या नहीं? कोई विचार नहीं उठाना, इस स्थिति को बनाए रखने में बहुत शक्ति लगती है। उसको अब नहीं करना है, उसको पीछे कर चुके हैं। अब तो आपने यह ज्ञान करना है कि ये विचार आते कहाँ से हैं? दोनों में अन्तर पता चल गया? अच्छा! थोड़े काल के लिए प्रयोग करके देख लो कि विचार कहाँ से आते हैं। दूसरे लोग जो पीछे बैठे हैं, वे भी इसी प्रकार परीक्षण करके देख सकते हैं। इस साधक वर्ग पर तो पूरा बल लगाया ही जा रहा है।

प्रयोग आरम्भ.... समय लगभग दो मिनट।

अब आप रुकेंगे। अब आप सुनाएँगे कि आपकी स्थिति कैसी रही?

साधक २ – देखता रहा, कहीं से कोई विचार नहीं आया।

स्वामी जी – इन्होंने बताया कि हम देखते रहे, देखते रहे किन्तु कोई विचार नहीं आया। कहीं से आया ही नहीं। अब कैसे पता लगाते कि विचार यहाँ से आया क्योंकि कोई विचार आया ही नहीं। यह भी एक स्थिति है किन्तु पूर्ण स्थिति नहीं है। अच्छा! ऐसा भी क्यों हुआ। ये देखते रहे और विचार कोई नहीं आया, पहले इसका ज्ञान कर लेते हैं। तो यह इसलिए हुआ है कि जो विचारों को उठाने वाला व्यक्ति, जीवात्मा है, जो मन को प्रेरणा देता है वही तो इस काम में लग गया कि देखो! विचार कहाँ से आते हैं? तो विचारों को कौन उठाता? दोहरा लो क्या समझ में आया?

साधक गण – जो विचारों को प्रेरणा.....।

स्वामी जी – जो मन को प्रेरणा देता है, जो विचारों का उठाने वाला है, वह तो इस कार्य में लग गया। किसमें?

साधक ३ – देखने में।

स्वामी जी – विचार कहाँ से आ रहे हैं, वह इसको देखने में लग गया। जब आत्मा देखने में लग गया या जो मन को प्रेरणा देता है, विचारों को ले आता है, वही इस काम में लग गया कि विचार कहाँ से आते हैं, इनको देखूँ; तब विचार उठाया ही नहीं। पुनः विचार कहाँ से आते? इसलिए कहीं से भी नहीं आए। इससे क्या सिद्ध हुआ?

साधक २ – स्वयं से ही आते हैं।

स्वामी जी – यह सिद्ध हुआ कि जीवात्मा ही विचारों को उठाता है। इसलिए व्यक्ति यदि यह परीक्षण करता जाए तो उसकी प्रगति होती है; इसमें कोई सन्देह नहीं है। बात समझ में आती है और वह अधिक गहराई में जाता है।

अब इस ज्ञान से हमारा क्या प्रयोजन सिद्ध होता है, इस पर विचार करेंगे। क्योंकि शुद्ध

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ज्ञान-कर्म-उपासना या अशुद्ध ज्ञान-कर्म-उपासना, बिना परीक्षा के, बिना योजना के प्रवेश करते रहते हैं। मैं इनको लाता-छोड़ता रहता हूँ और मेरा जीवन नष्ट होता रहता है। हमें इस पर नियन्त्रण करना है। इसका यही उपाय है एक ऐसी स्थिति का सम्पादन करो कि कोई भी ज्ञान-कर्म-उपासना बिना परीक्षा के, बिना योजना के नहीं आ सके। तो जब यह पता चल जाता है कि मैं ही विचारों को उठाता हूँ अथवा जिस समय हम इस स्थिति में आए कि मैंने अपने ज्ञान को, इच्छा को रोक रखा है तो उस अवस्था में हमारा यह प्रयोजन सिद्ध हो जाता है। अब मन को जहाँ चाहते हैं वहाँ लगा लेते हैं और जहाँ से हटाना चाहते हैं वहाँ से हटा लेते हैं। इसलिए मन को ऐसे सभी विषयों से रोककर पुनः अभीष्ट विषय में चलाओ। हमारा उद्देश्य रोक देना और बैठे रहना नहीं है। क्या समझ में आया ?

साधक ८ – रोक देना...।

स्वामी जी – रोककर बैठे रहना हमारा लक्ष्य नहीं है। इसलिए सब ओर से मन को रोक देते है कि जो अशुद्ध ज्ञान-कर्म-उपासना बिना योजना के आकर हमारे जीवन को बिगाड़ देते हैं, उनके ऊपर प्रतिबन्ध लगा दिया। अब जिन विचारों को चाहेंगे, उसमें मन को लगाएँगे और जिन विचारों को नहीं चाहेंगे, उसको नहीं लेंगे। जो ज्ञान हमको ग्रहण करना चाहिए, उसको ग्रहण करेंगे और जो ज्ञान या अज्ञान हमको नहीं चाहिए, उसको रोक देंगे। इसी प्रकार शुभ-अशुभ कर्म और शुद्ध-अशुद्ध उपासना के ग्रहण-त्याग के विषय में भी समझना चाहिए।

अब आप जब उपासना में बैठेंगे तब आपको ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करनी है। अब तत्काल योजना बनाएँगे कि इस सन्ध्या काल में, उपासना काल में मैं किसी को भी विषय नहीं बनाऊँगा, केवल ईश्वर को ही विषय बनाऊँगा। यदि आपने यह अभ्यास किया है तब ऐसा करने में सफल हो जाएँगे। वैसे आपको ईश्वर का ध्यान करते समय अन्य विषय उठते हुए दिखाई देते होंगे। ऐसा है या नहीं ?

साधक ८ – हाँ जी !

स्वामी जी – आप ईश्वर का ध्यान करेंगे तो अन्य विषय उठते दिखाई देंगे। इसके लिए क्या करेंगे ? इसके लिए पहले तो यह सावधानी रखेंगे कि इन विचारों को उठाने वाला मैं हूँ और सावधान रहेंगे कि विचार न उठाएँ। किन्तु पूर्व के लम्बे अभ्यास के कारण पहले विचारों को उठा लेंगे, पीछे ध्यान देंगे। क्या समझ में आया ?

साधक ८ – व्यक्ति पहले तो किसी विषय को उठा लेता है....।

स्वामी जी – पहले विषय को उठा लेता है और पुनः ध्यान देता है कि मन विषयान्तर में चला गया तो उसको रोक दिया। पुनः यदि सावधान नहीं रहा तो रोकते ही दूसरा विषय छेड़ दिया। एक विषय हट गया और वह दूसरे विषय को छेड़ बैठा। अतः अभी भी उपासना काल में यह संघर्ष ऐसे ही कुछ काल तक चलेगा। किन्तु इस प्रकार से व्यक्ति प्रयोग करते-करते बाधकों को और साधनों को सूक्ष्मता से जानने लगता है तब मन पर उसका अधिकार हो जाता है। तब उसको जो स्वतन्त्रता, स्वाधीनता दिखाई देती है, मन, इन्द्रियों और शरीर पर अधिकार दिखाई देता है, जो प्रसन्नता होती है, जिस सुख की अनुभूति होती है, वह अपार लौकिक धन-सम्पत्ति आदि के प्राप्त होने पर भी नहीं होती। अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७३ आत्मनिरीक्षण

सम्मानभय : आषाढ़ कृ. १४/२०६०-२८/७/०३

साधक ८– दोपहर से पूर्व कार्य करते समय ईश्वर का ध्यान रखा, पश्चात् ध्यान कुछ दुर्बल हो गया। स्वाध्याय भी कम कर पाया। सायं काल वृत्तियाँ उठाता रहा। शेष दिनचर्या सामान्य रही।

स्वामी जी – आप इस बात का विचार करते हैं कि हम स्वयं इस विद्या को सीखकर अन्यों को सिखाएँगे। आप में से कौन-कौन ऐसी योजना रखते हैं? सभी बनाते हैं। अच्छा! अब दूसरी बात - आप कभी यह चाहते हैं कि मेरा सम्मान हो, सम्मान की इच्छा रहती है या नहीं रहती। कैसी रहती है आप सुनाएँगे -

साधक ४ – इच्छा रहती है।

स्वामी जी – और आप सुनाएँगे।

साधक ३ – रहती है परन्तु अभी मन्द है, तीव्र नहीं रहती।

स्वामी जी – हाँ जी! आप सुनाएँ।

साधक २ – सदा सम्मानपूर्वक ही रहने की इच्छा रहती है।

स्वामी जी – अच्छा! और जी आप सुनाएँ।

साधक १ – इच्छा होती है।

स्वामी जी – हाँ! तो इसमें दो बातें ध्यान देने की हैं। एक स्थिति वह होती है कि मुझे सम्मान मिले। यहाँ व्यक्ति इच्छुक है और इसके लिए प्रयास भी करता है। दूसरी स्थिति में पूर्व संस्कारों के कारण मन पर पूर्ण नियन्त्रण न होने से ऐसी इच्छाएँ उभरती हैं अथवा उभार ली जाती हैं। परन्तु उभारते ही उसको पकड़कर कहा - नहीं! और रोक दिया। तो दोनों में अन्तर क्या है?

पहले पक्ष में वह चाहता है कि मुझे सम्मान मिलना चाहिए और उसके लिए प्रयत्न भी करता है। दूसरे पक्ष में वह व्यक्ति न चाहता है, न ऐसी योजना बनाता है। संस्कारों के कारण असावधान होने से, मन पर पूर्ण नियन्त्रण न होने से, अकस्मात् इच्छा को जगा लेता है कि मुझे सम्मान मिलना चाहिए। परिणाम स्वरूप इच्छा उभर कर आ जाती है किन्तु आते ही इसे रोक दिया कि नहीं! यह इच्छा ईश्वर प्राप्ति में बाधक है।

हमारे एक भौतिक वैज्ञानिक यहाँ बैठे हैं। ऐसे ही एक दूसरे वैज्ञानिक की बात सुनाता हूँ। उनका स्वभाव सत्य बोलने का हो गया, इनका भी हो गया होगा या नहीं हुआ तो हो जाएगा। वे भूकम्प के वैज्ञानिक हैं उनका नाम है आनन्द आर्य। वे रूड़की के हैं और जहाँ कहीं भूकम्प आया, पर्याप्त कार्य किया है। एक बार जब गुजरात में भूकम्प आया तब वे भी वहीं राहत कार्य करने-कराने के लिए सम्मलित हुए थे।

एक बार जब रूड़की में कार्यक्रम था तो एक दिन घर पर भोजन के लिए ले गए थे। तब हमने उनको बहुत-सी बातें कहीं जैसे कि अधिक समय योगाभ्यास, सत्संग और सेवा में लगाया करें और सेवा कार्य किया करें तो निष्काम भावना से करें। उनका स्वभाव सरल व सत्य बोलने का है और इसके लिए प्रयास भी करते हैं। तब उन्होंने कहा - मैं ये जो भाग-दौड़ करता हूँ जैसे कि सेवा करना, भूकम्प के विषय में विविध कार्य करना; इन सबको मैं सकाम भावना से करता हूँ, निष्काम कर्म नहीं कर पाता। ये नहीं छूटा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो तब आप अपना देखिए ! यदि असावधानी से इच्छा उभार ली तो तत्काल रोक दिया; आप में से ऐसी स्थिति किस-किस की रहती है ?

साधक २ – कार्य करते समय ऐसी योजना नहीं होती कि मैं सम्मान के लिए कार्य करूँ। परन्तु कहीं अपमान होता है तब बुरा लगता है। उससे यह अनुमान होता है कि सम्मान चाहता हूँ।

स्वामी जी – हाँ ! उससे पता चलता है कि मन में सम्मान की इच्छा है।

साधक २ – इच्छा रहती है।

स्वामी जी – हाँ ! इच्छा है। मान लीजिए, आप एक विद्यार्थी को स्वयं पढ़ाते-लिखाते हैं। आगे बढ़ो तो कई लाख रुपया खर्च करके उसके आवास आदि का प्रबन्ध भी आप ही करते हैं। उसको तैयार करने के लिए आपने दस-पन्द्रह वर्ष लगा दिए। अब उसके बदले में आप कोई फल चाहेंगे या नहीं ?

साधक ३ – उसके बदले में चाहना होगी।

स्वामी जी – आप बोलेंगे।

साधक ४ – चाहना होगी।

स्वामी जी – होगी। अब आप यह देखेंगे कि यह जो बात मानी गई है कि लोकैषणा = सम्मान की इच्छा ईश्वर की प्राप्ति में बाधक है। इसको तो आप जानते होंगे ?

साधक ४ – जी !

स्वामी जी – तो व्यक्ति यह जानता है। बहुत दिनों से पढ़ता भी है, प्रवचन भी देता है परन्तु उस लोकैषणा को नहीं छोड़ता, पकड़े बैठा है और आप भी नहीं छोड़ रहे हैं। अच्छा ! यह बताओ कि इससे आपका प्रेम क्यों हो गया ?

साधक २ – अच्छा लगता है।

साधक ३ – सुख मिलता है।

स्वामी जी – सुख मिलता है। हाँ जी !

आचार्य सत्यजित् जी – प्रगति होती है।

स्वामी जी – हाँ ! वह लोक से जुड़ जाता है। परन्तु यहाँ देखना यह चाहिए कि लोकैषणा से विवेक-वैराग्य नहीं हो पाएगा, समाधि नहीं लगेगी, ईश्वर की प्राप्ति नहीं होगी। इसलिए इसको छोड़ देना चाहिए। ठीक है !

दूसरी बात इसके साथ जुड़ी हुई रहती है कि हमारे पास में जो विद्या, बल या अन्य वस्तुएँ धन आदि जो भी कुछ हैं, उसी के आधार पर सम्मान चाहते हैं। धनवान् व्यक्ति धन के आधार पर, विद्वान् विद्या के आधार पर, बलवान् बल के आधार पर चाहता है कि मेरा सम्मान हो। यहाँ तक पहुँच गए ?

अब हम सोचेंगे कि इसको हटाएँ कैसे ? तो इसका उपाय है कि हमारे पास जो बल, विद्या, धन है, वह सब ईश्वर प्रदत्त है। इसको यदि इस ओर मोड़ दें तब क्या अर्थ निकलेगा ? सम्मान किसको मिलना चाहिए ? क्यों जी ? यही उत्तर आएगा कि ईश्वर को मिलना चाहिए।

जब विद्वान्, धनवान् या दानी व्यक्ति समझ जाता है कि ये जो मेरे पास विद्या, बल या धन है; सब ईश्वर-प्रदत्त है। तब वह उसको छोड़ने के लिए तैयार हो जाता है। इसके विषय में मनु महाराज का जो श्लोक है वह तो आपने सुना होगा कि –

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव । अमृतस्येव चाकाङ्क्षेदवमानस्य सर्वदा ॥ मनु.२/१६२। सत्यार्थ. तृतीय समु.। उन्होंने कहा कि ब्राह्मण कोटि का व्यक्ति सम्मान से डरता रहे और अपमान की इच्छा अमृत के तुल्य करता रहे। अच्छा ! आपमें से कौन बताएगा कि ऐसा क्यों करना चाहिए ?

साधक २ – यह बात अभी बुद्धि में नहीं बैठी है।

स्वामी जी – तो इन्होंने बताया कि यह बात बुद्धि में नहीं बैठती और जिसको बैठती है, वह बोलेगा। आप बोलो –

साधक ७ – जिससे उसका अभिमान न बढ़ जाए, मन उस ओर न जाए। इसलिए मनु महाराज ने ऐसा श्लोक लिखा है।

स्वामी जी – इन्होंने कहा कि कहीं ऐसा करने से अभिमान न बढ़ जाए। हाँ जी ! और बोलो –

साधक ८ – यदि हमने मान की कामना की तो अपमान की मार भी सहनी पड़ेगी।

स्वामी जी – इनका कथन है कि सम्मान की कामना करेंगे तो अपमान की चोट भी बहुत अधिक लगेगी। अब क्या समझ में आया ? हम जितनी-जितनी सम्मान की इच्छा कम करेंगे, उतनी-उतनी अपमान की चोट कम लगेगी और जितनी अधिक इच्छा करेंगे, उतनी ही अपमान की चोट अधिक लगेगी। हाँ जी ! और कौन बोलेगा –

साधक ८ – विवेक-वैराग्य में भी बाधक है।

स्वामी जी – दूसरी बात – सम्मान की इच्छा विवेक-वैराग्य को आगे नहीं बढ़ने देती। सम्मान का इच्छुक व्यक्ति उस ढंग से विचार ही नहीं सकता जिससे विवेक-वैराग्य हो जाए। उसको मौन रहना होगा। बड़ा गम्भीर रहना होगा। उसके हाव-भाव दूसरे ही होंगे। ऐसी स्थिति में जब वह अपने-आप को उपस्थित करेगा तब लोग कहेंगे यह तो पागल हो गया है। पुनः कई व्यक्ति कहेंगे – इसकी बुद्धि विपरीत हो गई है। वह कहेगा मेरा तो अपमान होने लगा है। मैं क्या विवेक-वैराग्य प्राप्त करूँगा ! इन सबने तो मुझे पागल मान लिया, वह उसको वहीं छोड़कर भाग जाएगा। ये लौकिक व्यवहार इस प्रकार से विवेक-वैराग्य को उत्पन्न नहीं होने देते।

माता-पिता ने बेटे-बेटी को पढ़ाया-लिखाया परन्तु बड़े होकर वे ही उनको धमकाने लगते हैं कि स्वयं तो सोते नहीं, अन्यों को भी सोने नहीं देते। आप ही कर लिया करो सन्ध्या-वंदन। यह पुनः अपमान की स्थिति है। अब इस स्थिति में, एक माता-पिता तो दुःखी हो जाएँगे और दूसरे कहेंगे बहुत अच्छा हुआ जो मेरा पुत्र-पुत्री में मोह था, इस तरह दूर हो गया। मेरा तो कल्याण हो गया। इसके पश्चात् वे उनको छोड़कर चले जाएँगे। यदि व्यक्ति इन परिस्थितियों का लाभ लेना चाहे तो इस प्रकार से ले सकता है, अन्यथा उसी स्थिति में घुटता रहता है, दुःखी होता रहता है।

आप जब इस प्रकार एक-एक विचार को लेकर देखेंगे तब आपके मन में सम्मान के प्रति जो भावना है, वह हट सकती है। अब आप तुलनात्मक अध्ययन देखिए। तुलना कीजिए कि व्यक्ति अपना सम्मान चाहता है और किससे सम्मान चाहता है। पूरे विश्व से सम्मान चाहता है। आवृत्ति कर लो !

साधक ८ – पूरे विश्व से...।

स्वामी जी – आधे मनुष्यों से चाहता हो, चौथाई से चाहता हो; ऐसी बात नहीं है। संसार में कोई भी ऐसा व्यक्ति उसको दिखाई न देवे जो उसका अपमान करता हो। वह ऐसी स्थिति बनाना चाहता है या नहीं ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८ – ऐसा ही है।

स्वामी जी – किसी को ऐसा अच्छा नहीं लगेगा कि कोई एक व्यक्ति उसका अपमान करे। इसलिए क्या निकला? पूरे विश्व से व्यक्ति सम्मानित होना चाहता है। इसमें बुद्धिमान् व्यक्ति देखता है कि पूरा विश्व तो कभी सम्मान करेगा नहीं। अतः पूरे विश्व से सम्मान चाहना मिथ्या है। तेरी इच्छा पूरी होगी नहीं, तो दुःखी ही रहेगा। अतः इसको छोड़ ही दे। दूसरा कहता है सारे तो सम्मान नहीं करेंगे, कम से कम आधे तो करेंगे। परन्तु आधे तो अपमान करेंगे। इसलिए यदि सम्मान से सुख होगा तो अपमान से भयंकर दुःख भी होगा। इसलिए इस सुख को भी छोड़ दे।

इसका दूसरा भाग – व्यक्ति चाहता है कि जब तक संसार है उसके आगे भी अर्थात् मरने के पश्चात् भी सम्मान मिलता रहना चाहिए। तब इसका निदान क्या है? बुद्धिमान् व्यक्ति सोचता है कि मैं भी मर जाऊँगा और दूसरे भी मर जाएँगे, पुनः किसका सम्मान होगा और कौन करेगा। अतः यह बात भी मिथ्या है। सदा सम्मान की इच्छा रखता हूँ और ऐसा होगा नहीं। अतः यह इच्छा व्यर्थ है। क्या समझ में आया? जो यह चाहता है कि सदा सम्मान बना रहे, मिटे नहीं, तो ऐसा नहीं होगा, मिट जाएगा, अनित्य है। एक पक्ष था कि आधे-आधे सम्मान और अपमान करते हैं तो जितना सुख होगा, उससे अधिक दुःख होगा। इसलिए सम्मान का सुख छोड़ दिया तो? अपमान के दुःख से भी बच जाएगा।

साधक ३ – अपमान का दुःख भी चला जाएगा।

स्वामी जी – सांख्यकार ने इस सम्बन्ध में क्या बात कही है? श्येनवत् ..।

साधक ३ – श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम् ॥ ४/५।

स्वामी जी – हाँ! क्या कहा बताओ?

साधक २ – श्येनवत् सुखदुःखी त्यागवियोगाभ्याम्।

स्वामी जी – श्येन को जानते हो? जिसको बाज कहते हैं। वह एक पक्षी होता है जो चिड़ियों को झपट्टा मारकर पकड़ लेता है। उसका दृष्टान्त दिया कि जैसे बाज ने एक चिड़िया को मार डाला तब एक और उसी प्रकार का पक्षी जिसको चील बोलते हैं वह उससे बड़े आकार का होता है और वह भी मांसाहारी होता हैं। अब ये भी उसके पीछे लग गए और उस बाज को, जो मांस के खण्ड को लेकर उड़ा जा रहा था, दोनों मार-मारकर उस मांस के टुकड़े को छीनने लगे। अब यदि बाज मांस खण्ड को छोड़ देता है तब तो सुखी हो जाएगा और नहीं छोड़ने से दुःखी रहेगा।

साधक ८ – छोड़ना तो पड़ेगा ही।

स्वामी जी – छोड़ने से यह होगा कि मार नहीं पड़ेगी, अन्यथा बहुत मार भी पड़ेगी और वह मांस का टुकड़ा भी छीन लिया जाएगा। लौकिक सुख के विषय में यह बात कही गई कि लौकिक सुख को या तो स्वयं छोड़ दो, अन्यथा बाज की भाँति आपके ऊपर भी मार पड़ेगी।

हमारी चर्चा का मुख्य भाग था कि यह जो सम्मान हमको मिलता है धन, बल, विद्या आदि से; इसका कारण मैं नहीं हूँ। यदि कारण भी हूँ तो गौण, साधारण, सहायक। मुख्य कारण तो ईश्वर है। जब व्यक्ति ऐसे सोचता, जानता है कि धनवान्, बलवान्, विद्वान् या अन्य क्षेत्र में सुयोग्य होने में मैं गौण कारण होता हूँ, मुख्य कारण तो ईश्वर है। यह जो मैं धन-सम्पत्ति का, शरीर का, विद्या आदि का स्वयं को मुख्य कारण मानता हूँ, यह अशुद्ध मान्यता है। ठीक नहीं है, तथा पहले एक बात कही थी कि लोकैषणा ईश्वर-प्राप्ति में बाधक है, इसका टकराव है। व्यक्ति यदि इन बातों को बुद्धि में रखता है तो इन सबको छोड़ देता है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार से विचारने, मनन करने से व्यक्ति एषणा को उखाड़ देता है परन्तु एक बार उखाड़देने मात्र से यह नहीं उखड़ेगी। ऐसा मत मानना कि एक बार एषणाओं को उखाड़ दो तो वे सदा के लिए उखड़ी रहेंगी; ऐसा कभी भी नहीं होगा। आप एक बार उसको उखाड़ देंगे, आपको बहुत अच्छा लगेगा और अच्छी स्थिति बनेगी परन्तु यदि उसको दबाए न रखा जाए, उसके ऊपर मार मारते न रहें, नियन्त्रण न रखें तब वे एषणाएँ रुकी नहीं रहेंगी, पुनः तीव्र रूप में आ जाएँगी।

इस विषय में स्वामी दयानन्द सरस्वती जी ने एक बात कही। उसका भाव सुनाता हूँ। जिस व्यक्ति के मन में पुत्रैषणा होगी उसके मन में लोकैषणा और वित्तैषणा अवश्य ही होगी। दोहराओ।

साधक ५ – जिस व्यक्ति के मन में पुत्रैषणा होगी। उस व्यक्ति के मन में लोकैषणा और वित्तैषणा भी होगी।

स्वामी जी – अब अगली को दोहरा लो। जिस व्यक्ति के मन में लोकैषणा होगी। उसके साथ जोड़ो -

साधक ५ – उस व्यक्ति के मन में पुत्रैषणा और वित्तैषणा भी होगी।

स्वामी जी – और तीसरी ?

साधक ५ – जिस व्यक्ति के मन में वित्तैषणा...।

स्वामी जी – वित्तैषणा होगी उसके मन में....।

साधक गण – पुत्रैषणा और लोकैषणा भी होगी।

स्वामी जी – अब क्या निकला ?

साधक ३ – तीनों एक साथ रहती हैं।

स्वामी जी – यदि एक एषणा है तो तीनों रहेंगी और पुनः क्या किया ?

साधक ३ – यस्य ईश्वरस्य एषणा भवति।

स्वामी जी – **यस्य ईश्वरस्य एषणा भवति.....।** जिसकी ईश्वर-प्राप्ति की इच्छा होती है उसकी तीनों एषणाएँ समाप्त हो जाती हैं। अभी जो एषणा से सम्बन्धित प्रसंग आप सुन रहे थे, उसको सब प्रकार से हेतुओं को ले-लेकर मन्थन करके, उसके साथ में परिणाम दुःख, ताप दुःख, संस्कार दुःख, गुण-वृत्ति-विरोध दुःख को जोड़ देने पर ये एषणाएँ आपको दुःखदाई दिखाई देने लगेंगी। इसलिए इन तीनों एषणाओं को जीतना अनिवार्य होगा। आपको यह बात जँचती है कि आप तीनों को जीत लेंगे ? अपना-अपना बताओ, क्या मन बनाया आपने ? हाँ जी ! आप बोलेंगे -

साधक १ – प्रयास करने पर सम्भव है।

स्वामी जी – आपको कैसा दिखता है ?

साधक २ – जीतने का संकल्प तो कर लिया है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक २ – जीतेंगे कितने दिनों में, अभी ये पूरी बात....।

स्वामी जी – हाँ ! कितने दिनों में, ऐसा तो, कभी न कभी तो जीत जाएंगे। हाँ जी।

साधक ८ – जी ! लगता है भले ही देर लगे, पर इन्हें जीत लेंगे।

स्वामी जी – आप सुनाएँगे -

साधक ३ – इनको जीतेंगे जी ! चाहे जितना समय क्यों न लगे।

स्वामी जी – हाँ जी ! आपको कैसा दिखता है ?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७ – आपका आशीर्वाद है तो होगा।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप सुनाएँ –

साधक ४ – जीतना सम्भव दिखता है।

स्वामी जी – जीतने के कारण तो बहुत हैं। समय के अनुसार याद रखना, व्यक्ति यदि इसको दोष मानता है, इन तीनों एषणाओं से घृणा करता है, इनका विरोध करता है जितना वह कर सकता है तब तो ये एषणाएँ छूट सकती हैं। व्यक्ति यदि थोड़ा भी एषणा से प्रेम करेगा तब वह नहीं जीत सकेगा। यह स्वभाव व्यक्ति को बना के रखना चाहिए कि अपने दोषों से कभी भी प्रेम नहीं करना चाहिए, अत्यन्त विरोध करना चाहिए, तब ये दोष छूट सकते हैं। अब विराम ॥

७४ यज्ञीयोपदेश

योगाभ्यास : आषाढ़ अमावस्या २०६०-२९/७/०३

योगाभ्यास में सफलता प्राप्त करने के लिए ईश्वर के स्वरूप तथा इसके साथ हमारा क्या सम्बन्ध हैं, उनको जानना आवश्यक है। पुनः उन सम्बन्धों के अनुरूप पूरे दैनिक व्यवहार को करना चाहिए। आप यह न समझ बैठना कि हमने ये सुन-सुना लिया है और पढ़ते-पढ़ाते हैं तो और क्या अपेक्षित है? ऐसी भूल मत कर देना। कई बार ऐसा मानकर चलने पर उलटा परिणाम निकल आता है। बहुधा व्यक्ति ईश्वर के साथ जो सम्बन्ध रहना चाहिए, उसके साथ जो व्यवहार रहना चाहिए, उसको छोड़ बैठता है। हाँ जी ! आप बताएँगे, क्या ये जो ईश्वर और हमारे सम्बन्ध हैं जैसे कि ईश्वर हमारी माता है हम ईश्वर के पुत्र हैं, इसी प्रकार पिता-पुत्र, आचार्य व शिष्य, उपास्य-उपासक, राजा और प्रजा, व्यापक और व्याप्य आदि सम्बन्ध दैनिक जीवन में कुछ रहते हैं या भूल जाते हैं?

साधक ३ – कुल मिलाकर ये सम्बन्ध पूरे दिन में चार-पांच घण्टे तक रह जाते हैं। आगे नहीं रह पाते। इतना सोचने-विचारने का सामर्थ्य नहीं हो पाता।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बताएँगे कैसा रहता है इन सम्बन्धों के विषय में?

साधक २ – अभी इसमें विचार करते रहने पर 'ऐसा है' इतना केवल प्रतीत होता है।

स्वामी जी – विशेष सम्बन्ध नहीं जुड़ता। हाँ जी ! आप सुनाएँगे –

साधक १ – विषय बनाने पर सम्बन्ध जोड़ने में सफलता मिलती है। अन्य आध्यात्मिक विषय लेने पर ये सम्बन्ध भूले रहते हैं।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप सुनाएँगे।

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection. Digitized by eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७ – लगभग रहता है।

स्वामी जी – क्या ?

साधक ७ – लगभग ऐसे सम्बन्ध रहते हैं। सम्बन्धों के साथ उनको सोचते हैं कि वह हमारे आचार्य हैं, हम उनके शिष्य हैं। वे हमारे पूजनीय हैं, हम उनके उपासक हैं।

स्वामी जी – एक बात का ध्यान रखेंगे। आप जो बोल रहे हैं, इसमें असावधानी न हो जाए। हमारी ऐसी मान्यताएँ हैं, हम ऐसा सुनते हैं, पढ़ते हैं; इतना मात्र नहीं लेना है। प्राय: विद्वानों से भी सुनते हैं, ग्रन्थों में भी पढ़ते हैं। ऐसे मानने वालों की परम्परा को आप न दोहरा दें। मेरे सम्बन्ध बने रहते हैं, यहाँ यथार्थ कथन होना चाहिए। इसमें असावधानी न हो जाए। यह साधारण चर्चा नहीं है, व्यावहारिक अनुभूति की बात है। यह तो वह चर्चा है जिसमें हम चलते-फिरते, खाते-पीते, लेते-देते इन पांचों सम्बन्धों को ईश्वर के साथ जोड़कर चलते हैं। हाँ जी ! अब आप सुनाएँगे –

साधक ५ – विचार करने पर सम्बन्धों की अनुभूति रहती है। अधिकांश काल में इन सम्बन्धों का मै अनुभव नहीं करता।

स्वामी जी – यह बहुत बड़ी भूल है अथवा यह कहिए बहुत बड़ा दोष है। इस दोष को रखते हुए व्यक्ति ईश्वर तक कभी नहीं पहुँचता। हाँ जी ! आप अपना अनुभव बोलेंगे –

साधक ४ – जब भी ईश्वर के विषय में चिन्तन करता हूँ तो पहले उसके साथ सम्बन्ध क्या है, उससे आरम्भ करता हूँ। उस अवस्था में तो ये सम्बन्ध ध्यान में रहते हैं और व्यवहार काल में प्राय: नहीं रहते।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक ८ – जी ! पूरा दिन यह व्यवहार नहीं कर पाते, छोड़ देते हैं। कभी बना लेते हैं। यह स्थिति रहती है।

स्वामी जी – आप बोलेंगे।

साधक ६ – कभी विशेष विचार करने पर ऐसा सम्बन्ध बना पाते हैं। वह भी सही रूप में नहीं बनकर शाब्दिक रूप में ही दिखाई देता है।

स्वामी जी – अब आप ध्यान देंगे। शब्द-प्रमाण को लेकर विचार करेंगे। योगदर्शनकार ने, योगदर्शन के भाष्यकार ने, स्वामी दयानन्द सरस्वती जी आदि ऋषियों ने ईश्वर के साथ सम्बन्धों का जो प्रकरण उपस्थित किया उसमें ईश्वर-प्रणिधान पर बहुत बल दिया है। एक स्थल पर कहा – **सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं तत्फलसंन्यासो वा** । यो.द.व्या.भा.२/१। सारी क्रियाओं को ईश्वर को अर्पण कर देना और उसका लौकिक फल न चाहना। तो आप क्या यह नहीं जानते कि इन ऋषियों ने लिखा है कि मानसिक, वाचनिक, शारीरिक क्रियाओं को ईश्वर-समर्पित रखना और उनका कोई लौकिक फल न चाहना। यदि जानते हैं और इसका पालन नहीं करते तब क्या आपको दोष दिखाई नहीं देता ?

यदि ऐसी स्थिति है तो ध्यान देना है। आप ऋषियों की बातों को शतप्रतिशत सत्य मानकर चलें। अपनी बातों को उनके समान या उनसे बड़ी न मानें। यदि आप अपनी बात को उनसे बड़ी-ऊँची मानकर चलते हैं तो आपकी जो योग्यता है, समाधि-प्राप्ति या ईश्वर-प्राप्ति की; वह नहीं बन पाएगी।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब हम वेद मन्त्र के द्वारा ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करेंगे। मन्त्र का अर्थ आपको स्मरण होगा जो कि पहले सुना है।

ओ३म् त्वं हि नः पिता वसो त्वं माता शतक्रतो बभूविथ। अधा ते सुम्नमीमहे॥ ऋ. ८/९८/११।

ये जो सम्बन्ध हैं कि ईश्वर हमारी माता है हम उसके पुत्र हैं आदि सम्बन्ध हमने नहीं बनाए हैं। इन सम्बन्धों को बनाने वाला स्वयं ईश्वर ही है। वही जीवों के लिए उपदेश करता है कि हे जीवात्माओं ! मेरे साथ तुम ऐसा व्यवहार करो।

अब आत्मनिरीक्षण के साथ मन्त्र का प्रयोग करेंगे और देखेंगे कि आपका अपने मन पर कितना नियन्त्रण है? आप मन्त्र के शब्दों को लेकर कितना अर्थ कर पाते हैं? मन्त्र पाठ करना, शब्द का अर्थ करना, ईश्वर को सम्बोधित करना, ईश्वर-समर्पित रहना आदि कितना कर पाते हैं? प्रमुख बल अर्थों पर, ईश्वर-समर्पण पर देना है, उच्चारण पर उतना नहीं। उच्चारण बड़ा हो या छोटा, कोई बात नहीं।

ओ ऽऽ म् मेरे साथ मिला सकें तो मिलाएँ, नहीं तो रुक जाएँ। मन में भी आप इसका अभ्यास कर सकते हैं।

अब आप मानसिक प्रयोग करके देखिए। वहाँ बिना धुन के बोलिए या धुन सहित। अपनी सुविधा के अनुसार धीरे-धीरे ईश्वर को सम्बोधित करना, ईश्वर के समर्पित रहना और अर्थ करना। **त्वं हि नः पिता वसो** हे ईश्वर ! तू ही हम सबका पिता है। **त्वं माता शतक्रतो बभूविथ** असंख्यात् क्रियाओं वाले ईश्वर! तू ही हमारी माता है। **अधा ते** इसलिए हम आपसे **सुम्नम्** लौकिक सुख और मोक्ष का सुख **ईमहे** माँगते हैं, याचना करते हैं।

मानसिक जप करते रहिए। बन्द हो जाए तो पुनः आरम्भ कर दीजिए।

प्रयोग आरम्भ..... समय लगभग ३ मिनट।

अब आप रुक जाइए और अपनी स्थिति को ज्यों का त्यों रखिए। बाहर के क्षेत्र में विषयों से अपने मन को, आत्मा को सम्बद्ध नहीं कीजिए।

अब हम प्रयोग करेंगे। ओम् सच्चिदानन्द। कोई भी व्यक्ति उच्च कोटि का हो, मध्य का हो, सामान्य व्यक्ति हो वह भी 'ओम् सच्चिदानन्द' इस वाक्य से ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना कर सकता है।

ओऽऽम् सच्चिदानन्द। नाक से श्वास लेते रहना चाहिए।

ओऽऽम् सच्चिदानन्द। ओऽऽम् सच्चिदानन्द।

यदि व्यक्ति को धुन में परिवर्तन करना अनुकूल प्रतीत हो तब वह परिवर्तन कर सकता है। धुन को ऊँचा-नीचा भी कर सकता है। अब थोड़ा-सा परिवर्तन करेंगे।

ओऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द। ओऽऽऽम् सच्चिदानन्द। ओऽऽऽऽम् सच्चिदानन्द।

अब रुकेंगे और ध्यान देंगे। योगाभ्यास में तीन कार्य होते हैं - एक स्तुति, दूसरा प्रार्थना और तीसरा उपासना। इन तीनों के भी दो-दो भाग हो जाते हैं - प्रथम - सगुण स्तुति-प्रार्थना-उपासना और द्वितीय - निर्गुण स्तुति-प्रार्थना-उपासना। अभी हमने जो पाठ किया, यह ईश्वर की सगुण स्तुति है अर्थात् ईश्वर सर्वरक्षक है, सत् = सदा रहने वाला, चित् = केवल ज्ञानी, आनन्द = सुख स्वरूप है। यह गुण सहित वर्णन है। इसलिए इसका नाम सगुण स्तुति है।

अब हम ईश्वर की निर्गुण स्तुति करेंगे - वह है ओम् निराकार। किन्तु जब हम ओम् शब्द

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अर्थ को स्वतन्त्रता से सोचेंगे तब उसका अर्थ करेंगे हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। वह ज्यों का त्यों सगुण रूप में रहेगा और जब कहेंगे 'निराकार' ये निर्गुण स्तुति होगी अर्थात् हम कहेंगे हे ईश्वर ! आप आकार, रूप से रहित हैं।

अब प्रयोग - ओम् निराकार। पाठ के पीछे आप अर्थ करेंगे। हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं और आकार, रूप आदि से रहित हैं; इसका नाम भावना है। जप वाक्य का पाठ करना और पुनः उसके अर्थ का विचार करना भावना है।

पुनः पाठ करेंगे और ध्यान देंगे। ओम् निराकार।

नाक से श्वास ले लीजिए और मन में अर्थ का विचार भी करते जाइए।

अब आप रुकेंगे और व्यवहार में योगाभ्यास का स्वरूप क्या है, उसको जानने, समझने का प्रयास करेंगे। ध्यान रखिए, व्यवहार में ईश्वर-प्रणिधान की जो स्थिति है, वही स्थिति योगविद्या सीखने वाले के जीवन में पूरे दिनभर रहनी चाहिए। दोहराइए, क्या समझ में आया ?

योग विद्या सीखने वाले, समाधि-प्राप्ति के इच्छुक व्यक्ति व ईश्वर प्राप्ति करने वाले व्यक्ति के व्यवहार में पूरे दिनभर ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति बनी रहनी चाहिए।

दूसरा भाग - आप आत्मनिरीक्षण के साथ बोलेंगे। पहले तो देखेंगे कि आप ऐसा आत्मनिरीक्षण करते भी हैं या नहीं ? व्यक्ति का यम-नियम आदि का पालन, अनुष्ठान, आचरण मन-वाणी-शरीर से रहना चाहिए। उनमें से एक अंश को मैं लेता हूँ। वर्त्तमान काल के प्राणी, स्मृति के रूप में भूतकाल की बातें अथवा आने वाले समय के व्यवहार को स्मरण करते हुए क्या प्राणी-मात्र के साथ वैरभाव नहीं रखते ? प्यार से रहते हैं अथवा नहीं ? मेरी बात समझ में आ गई ? हम वर्त्तमान काल में वर्त्तमान की घटनाओं को लेकर, भूतकाल की स्मृति-वृत्ति आदि व्यवहार को लेकर, आने वाली योजनाओं को सोचते हुए क्या मन-वाणी और शरीर से प्राणीमात्र के साथ वैरभाव छोड़कर प्यार से रहते हैं या नहीं ? हाँ जी ! आप बोलेंगे -

साधक ३ – जिनके साथ वर्त्तमान में हमारा व्यवहार होता है उनके साथ तो यह स्थिति अच्छी बन जाती है। अन्यों के विषय में सोचते ही नहीं हैं।

स्वामी जी – सोचने की विधि बताता हूँ। जब आप कोई भूतकाल की कोई बात स्मरण कर लेंगे। इन घटनाओं को लेकर प्यार की भावनाएँ और वैर की भावनाएँ उभरती हैं, आप ये देख सकते हैं। क्या समझ में आया ?

साधक ३ – भूतकाल की स्मृतियों को लेकर कहीं राग की, कहीं द्वेष की भावना...।

स्वामी जी – उभरती हैं। भविष्य में आपने योजना बना ली और वह आपने याद कर ली। उसमें जो-जो बाधक रूप में आएगा उससे वैरभाव बन जाएगा। आप देख सकते हैं। क्या समझ में आया ? नहीं आया हो तो पुनः दोहराऊँ।

साधक ३ – भविष्यकाल की घटनाओं को याद करके योजना बनाकर उनके साथ...।

स्वामी जी – आपको बात समझ में तो आ गई कि दैनिक जीवन में व्यक्ति अन्यों से मन-वाणी-शरीर से वैरभाव या प्रेम रखता है। ये दोनों धाराएँ चलती रहती हैं। जो-जो तीनों कालों में अनुकूल है उससे वह प्यार करता है और जो प्रतिकूल है उससे वह वैरभाव रखता है। यह आप व्यापक रूप से देख सकते हैं-या नहीं आया समझ में बोलो !

साधक ८ – समझ में आ गया।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – आ गया तो अब इसका प्रयोग देखो। अच्छा ! जैसे आपके कमरे में बिच्छू आ गया। कोई कीड़े-मकोड़े घूमते हैं तो उन जीवों के प्रति प्यार रहता है या कुछ घृणा की भावना रहती हैं या क्या ?

साधक ३ – प्यार तो नहीं होता है।

स्वामी जी – आपका कैसा रहता है। हाँ जी ! आप बोलेंगे –

साधक ४ – घृणा रहती है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक ५ – प्रायः घृणा नहीं होती।

स्वामी जी – क्या उपेक्षा रहती है।

साधक ५ – हाँ ! उपेक्षा की दृष्टि रहती है। जैसे अन्य प्राणियों के प्रति रहती है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक २ – कहीं उपेक्षा रहती है, कहीं घृणा हो जाती है और कहीं प्यार भी होता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक १ – कहीं उपेक्षा रहती है। कभी प्रेम का भाव भी आ जाता है। सुरक्षा की भावना आती है। घृणा का भाव उतना नहीं आता।

स्वामी जी – इनके विभाजन कर लेने चाहिएँ। देखो ! एक भाग यह है उन प्राणियों से हमने अपनी रक्षा करनी है। इसका निषेध नहीं है। इसको समझ लीजिए। अज्ञानता से पशु या कोई व्यक्ति भी क्यों न हो, वह जो आक्रमण करता है, आघात पहुँचाता है, काटने को आता है या काट सकता है। उससे रक्षा करने में कोई दोष नहीं है। बात समझ में आई ? पर ये प्यार करना, उसका हित चाहना, उससे घृणा न करना; ये अलग विभाग है। उदाहरण के रूप में ईश्वर को लेकर चलेंगे तो अच्छा समझ में आएगा।

हम बुरे कर्म चोरी, डाके आदि करते हैं तो उसके परिणाम स्वरूप ईश्वर हमको गधा, घोड़ा, सुअर बनाता है। इतनी भयंकर योनि देता है जिसको देखकर हम भी सोचते हैं कि कभी मेरा भी ऐसा जन्म न हो जाए। ईश्वर दयालु है जो कि कभी दया को नहीं छोड़ता। सबका हित व भला चाहने वाला है। इसलिए उनको गधा आदि योनि में भेजता है क्योंकि ईश्वर उनका कल्याण चाहता है। ईश्वर कभी भी उनसे वैर नहीं करता परन्तु दण्ड-विधान में ईश्वर उनको नहीं छोड़ता। हम विधि व्यवहार में, दण्ड-विधान में तो ईश्वर के तुल्य रहेंगे ही, पर हित चाहना, प्रेम करना, वैर न करना; इसमें भी हम पूरे रहेंगे। बात समझ में नहीं आई ? कोई शंका हो तो बोलो !

साधक १ – आ गई।

स्वामी जी – बात समझ में आनी चाहिए। जैसे एक पक्ष में माना जाता है किसी भी प्राणी को दुःख देना मात्र हिंसा है। यदि इसको सब जगह लागू कर दिया जाए तब यह अव्यावहारिक नियम हो जाएगा और किसी काम का नहीं रहेगा। परन्तु दण्ड देना, खूब मारना और विधान का नाम लेते रहना और हित व प्रेम से रहित जीवन रखना भी निरर्थक है, हानिकारक है। यहाँ तो ईश्वर या ऋषियों जैसा स्वभाव हमको रखना होगा। बिच्छू आदि कीड़े-मकोड़ों से अपनी रक्षा भी करेंगे और आक्रमण करेंगे तो उनको मार भी देंगे, परन्तु घृणा नहीं करेंगे।

प्रयोग काल में आप देखते रहेंगे कि मन-वाणी-शरीर से जो अनुकूल व प्रतिकूल बातें है

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनमें राग या वैरभाव तो नहीं है? जब हम यम-नियमों का पालन इस रूप में करेंगे, तब परिणाम योग के अंगों का अनुष्ठान करने से अशुद्धि का नाश होगा और विवेक-ख्याति ऊँचे स्तर पर पहुँच जाएगी। यदि आपके मन में इतना विश्वास होगा तो श्रद्धा-तप-त्यागपूर्वक आप इसका प्रयोग करेंगे। ऐसा करने से व्यक्ति संप्रज्ञात-समाधि में पहुँच जाता है, यदि आपका यह निर्णय नहीं है तो पुनः आप प्रयोग नहीं कर पाएँगे। साधारण प्रयोग करेंगे और साधारण स्थिति में रहेंगे। आप आदर्श के रूप में नहीं आ सकते। अब विराम ॥

७५ क्रियात्मक योगाभ्यास

सिद्धान्तनिर्णय : आषाढ़ अमावस्या २०६०-२९/७/०३

अब हम योगाभ्यास में सन्ध्या के मन्त्रों का प्रयोग करेंगे। पहले आप यह बतलाएँगे कि उपस्थान मन्त्र में जो एक मन्त्र है **उद्वयं तमसस्परि .....**। यजु. ३५/१४। क्या आपको इस मन्त्र का अर्थ स्मरण है अथवा नहीं? आप बताएँगे -

साधक १ – स्मरण है।

स्वामी जी – तो आप थोड़ा-थोड़ा, धीरे-धीरे सुनाइए।

साधक १ – **उत्** श्रद्धावान् होकर **वयं** हम लोग **तमसः** अज्ञान से **परि** पृथक् दूर हुए **स्वः** आनन्द स्वरूप परमेश्वर को **पश्यन्त** देखते हुए **उत्तरम्** प्रलय के पश्चात् भी विद्यमान रहने वाले **देवं देवत्रा** देवों के भी देव **सूर्यम्** चराचर जगत् की आत्मा ईश्वर को **अगन्म** प्राप्त होवें **ज्योतिः उत्तमम्** अत्यन्त श्रेष्ठ ज्ञान स्वरूप ईश्वर को।

स्वामी जी – अब आप बताएँगे, आपको स्मरण है ऐसे ही या नहीं।

साधक ५ – स्मरण है।

स्वामी जी – आप बताएँगे कि उपस्थान का यहाँ पर क्या अर्थ करेंगे?

साधक २ – **उप** का अर्थ समीप करेंगे। **स्थान** का बैठना, विद्यमान होना या अपने समीप ईश्वर की अनुभूति करना।

स्वामी जी – अच्छा! तो हम धीरे-धीरे प्रथम मन्त्र का प्रयोग करेंगे और पुनः मानसिक रूप में अर्थ का विचार करेंगे। अपनी स्थिति का अध्ययन करेंगे। अब मन्त्र का पाठ और प्रयास करेंगे।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ को भी हम साथ-साथ कर सकें।

ओम् उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥

अब आप मन में मन्त्र का प्रयोग करेंगे। मन्त्र बोलने के पश्चात् ईश्वर को सम्बोधित करना। एक-एक शब्द का अर्थ करने में क्या-क्या बाधाएँ आईं? उनका अध्ययन भी करना और प्रयास करें कि हम ईश्वर के पास उपस्थित हैं, ईश्वर हमारे पास उपस्थित है। आप ऐसी स्थिति बनाने का प्रयत्न करें -

अब आप रुकेंगे और बताएँगे कि आपकी स्थिति कैसी रही?

साधक ४ – मन्त्र का पाठ और शब्दों का अर्थ साथ-साथ करता रहा, किन्तु ईश्वर को सम्बोधित करने की स्थिति टूटती रही और उसको दोबारा बनाता रहा। बीच में अनेक बार बाह्य ध्वनियों में मन को भेजा और पुनः रोक दिया।

स्वामी जी – अच्छा! मन को भेजते समय पता नहीं चला?

साधक ४ – नहीं, भेजते ही तुरन्त पकड़ में आया।

स्वामी जी – अभिप्राय यह कि आरम्भ जहाँ से किया वहाँ से पता नहीं चला?

साधक ४ – जी!

स्वामी जी – और जब चला दिया तब पता चला?

साधक ४ – जी!

स्वामी जी – हाँ जी! आप बताएँ कि कैसी स्थिति रही?

साधक ५ – शारीरिक बाह्य कारण से मनःस्थिति अच्छी नहीं रही।

स्वामी जी – अब कौन सुनाएगा, आप सुनाएँ -

साधक १ – बाह्य वृत्तियाँ नहीं उठाईं। ईश्वर के प्रति समर्पण का भाव अत्यन्त न्यून रहा। मन्त्र का उच्चारण गायन के रूप में न करके, एक-एक शब्द को बोलते हुए किया। समर्पण का भाव अत्यन्त न्यून रहा।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक २– बीच में एक चित्र का थोड़ा-सा आभास हुआ। उसको तत्काल रोक दिया। शेष पूरे मन्त्र का अभ्यास विधिपूर्वक करता रहा। समर्पण, शब्दार्थ आदि सब किया। उसके साथ अपनी ओर से एक वितर्क बनाए रखा कि मैं कर्म कर रहा हूँ पर ईश्वर को हमारी इन क्रियाओं की अनुभूति नहीं हो रही है।

स्वामी जी – अच्छा!

साधक २ – यह भावना साथ रही।

स्वामी जी – अपने सुमेरु प्रसाद जी का प्रयोग और उसमें अनुभूतियाँ कैसी हुईं? उन्होंने एक यह अनुभव किया कि मैं अपनी ओर से ईश्वर-प्राप्ति के लिए यथाशक्ति प्रयत्नशील व सब उपाय प्रयोग में ला रहा हूँ। इतना प्रयत्न करने पर भी..., उसके पीछे क्या बताया?

साधक २ – ईश्वर हमारे क्रियाकलाप को नहीं जान रहे हैं।

स्वामी जी – हाँ! तो इतना करने पर भी ईश्वर हमारे इन क्रियाकलापों को नहीं जान रहे हैं; यह अनुभव हुआ। सबको समझ में तो आ गया?

अब आप ध्यान देंगे कि ये सब करते हुए भी व्यक्ति ये अनुभव करता है कि ईश्वर हमारे क्रिया-कलापों को नहीं जान रहे हैं। यह कोई अद्भुत बात नहीं है। प्रायः अनेक लोगों के मन में

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह बात रहती है और जब तक ईश्वर के विषय में दृढ़ निश्चय, ज्ञान, अभ्यास और मन के ऊपर नियन्त्रण न रखा जाए तब तक सभी के मन में ऐसी बात हो सकती है। यहाँ पर ध्यान देने की बात है कि इनके द्वारा जब बात उठाई गई कि ईश्वर हमारे क्रिया-कलाप की ओर ध्यान नहीं दे रहा है।

साधक २ – जान नहीं रहा है।

स्वामी जी – जान नहीं रहा है। तो इसको हटाने के लिए हमको क्या करना पड़ता है? इसके लिए सर्वप्रथम शब्द-प्रमाण का आश्रय लेना पड़ता है। शब्द-प्रमाण में लिखा है कि वह सब कुछ जानता है। अब अपनी न्यूनता को दूर करने के लिए अर्थात् यह जो बात आई कि ईश्वर नहीं जान रहा है, इसकी प्रमाणपूर्वक परीक्षा करनी चाहिए और प्रमाणों से यह निर्णय होगा कि तीनों कालों में जो कुछ होता है उन सबको ईश्वर जानता है। पुनः यही बात अनुमान-प्रमाण से भी सिद्ध कर लेनी चाहिए। जब हम परीक्षापूर्वक निर्णय करेंगे तो पक्ष-प्रतिपक्ष सामने आएँगे और उनका समाधान करना हमारे लिए आवश्यक हो जाएगा।

दूसरी बात - जब यह बात उठकर आई या उठा ली गई तो तत्काल यह समझना चाहिए कि यह जो विचार आया कि ईश्वर हमारे इन क्रिया-कलापों को नहीं जानता; यह मेरी अपनी मान्यता है। यह मेरा अज्ञान है। वस्तुतः ऐसा नहीं है। ऋषि ऐसा नहीं मानते। प्रमाणों से ऐसा सिद्ध नहीं होता। तो क्या करना चाहिए? ईश्वर जान नहीं रहा है, अपनी इस मान्यता में यह परिवर्त्तन कर लेना चाहिए कि ईश्वर जानता है। मन को इस प्रकार बदल लेना चाहिए।

अब आप इसके अन्दर और गम्भीरता में जाएँगे। यह जो आपको अज्ञान उत्पन्न हुआ कि ईश्वर नहीं जानता; यह क्यों हुआ? इसके लिए उस प्रकरण को अपनी बुद्धि में उपस्थित करेंगे। वह प्रकरण था - बिना परीक्षा के किसी ज्ञान को ग्रहण कर लेना? समझ में आया?

साधक ३ – बिना परीक्षा के ज्ञान को ग्रहण कर लेना।

स्वामी जी – बिना परीक्षा के किसी ज्ञान को ग्रहण कर लेना और छोड़ देना। ऐसे ही कर्म और उपासना तीनों के विषय में समझ लें। यह ज्ञान का भाग है जो कि इन्होंने बिना परीक्षा के इस ज्ञान को ग्रहण किया कि ईश्वर नहीं जान रहा है। यह बिना परीक्षा के स्वीकार हुआ है। इसलिए यह मान्यता बन गई। क्या बात आई? दोहराओ!

साधक २ – बिना परीक्षा किए इस ज्ञान...।

स्वामी जी – यही ज्ञान जो आपने ग्रहण किया कि ईश्वर नहीं जानता; बिना परीक्षा के ज्ञान को ग्रहण करने वाले सिद्धान्त का एक अच्छा उदाहरण है। यह उदाहरण आगे भी ऐसे प्रसंगों को स्पष्ट करेगा। अभी-अभी जो घटना घटी, इन्होंने जो उस ज्ञान का ग्रहण किया कि ईश्वर नहीं जानता। यदि इसके स्थान में यह मान लेते कि ईश्वर सब को जानता है तो क्या ग्रहण होता?

साधक ३ – ज्ञान का ग्रहण होता।

स्वामी जी – वहाँ पर ज्ञान का ग्रहण होता है। ईश्वर सबको जानता है, यदि इसको इन्होंने ग्रहण किया होता तो बुद्धिपूर्वक, परीक्षापूर्वक ज्ञान का ग्रहण किया गया; ऐसा माना जाता। किन्तु यह जो ज्ञान हुआ कि ईश्वर इसको नहीं जानता, यह अज्ञान हो गया। यहाँ बिना परीक्षा किए अज्ञान को ज्ञान मान लिया गया। समझ में नहीं आया हो तो पुनः दोहरा लो।

साधक ७ – बिना परीक्षा किए इस अज्ञान को ज्ञान मान लिया गया।

स्वामी जी – अब जब बात आएगी बिना परीक्षा के ज्ञान या अज्ञान का ग्रहण होता है, इसका

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयोग कहाँ करना चाहिए तो उसका उत्तर है कि यही वह अवसर है, जब आप यह जानने के लिए चले कि ये ईश्वर हमारे क्रिया-कलापों को नहीं जानता, यहीं से यह प्रयोग आरम्भ हो जाता है। यहीं पर आप झट अपने ज्ञान को पकड़ेंगे कि मैं क्या मानने जा रहा हूँ? मैं यह मानने जा रहा हूँ कि ईश्वर हमारे क्रिया-कलापों को नहीं जानता। यह तो मेरी अपनी मान्यता है। यह प्रमाण के विरुद्ध है। अतः यह तो ग्रहण करने योग्य नहीं है। यदि इतना सावधान रहते हैं तब आप वहीं पर अज्ञान को त्यागकर ज्ञान को ग्रहण कर लेंगे।

एक बात ध्यान देने की होती है कि परीक्षा से पूर्व ऋषियों ने जो मन्तव्य, सिद्धान्त निर्वाचित किए हैं जैसे कि सत्यार्थ प्रकाश, आर्य समाज के नियम आदि में वे परीक्षापूर्वक स्थिर रूप में पहले से निर्णीत होकर तैयार रहने चाहिएँ। क्या करना चाहिए?

जो वैदिक सिद्धान्त हैं जैसे इक्यावन मन्तव्य हैं, आर्य समाज के नियम या दर्शनों, वेदों के सिद्धान्त हैं, उनको परीक्षापूर्वक पहले से सुरक्षित रखना चाहिए। बार-बार भी उनका परीक्षण करके रखते हैं। एक बार ही नहीं, बार-बार परीक्षण करके रखो और यह ध्यान रखो कि ऐसा समय आएगा जब अकस्मात् हमारी मान्यता इन सिद्धान्तों से विपरीत रहेगी और इनको उखाड़ने का प्रयास करेगी। तब यह मन्तव्य हमको उलटा दिखेगा। इन सिद्धान्तों से हम उलटा मानने लग जाएँगे। जब ऐसी स्थिति आएगी, आ सकती है तब मैं क्या करूँगा? तब मैं यह करूँगा कि इन सिद्धान्तों से जो विपरीत मान्यता होगी, मैं उसको स्वीकार नहीं करूँगा। अर्थात् जब-जब ऐसी विपरीत मान्यता ग्रहण होने लगे तब-तब प्रमाणों से परीक्षित इन सिद्धान्तों से काम लेना चाहिए।

तो यह बात आई कि बिना परीक्षा किए किसी ज्ञान को ग्रहण करना, यह एक भूल है और दूसरी बात यह आई कि सत्य-असत्य को जानने की जो कसौटियाँ हैं उनसे परीक्षा करने के लिए उन वैदिक सिद्धान्तों को निर्वाचित करके अपने पास रखना चाहिए तथा ऐसे अवसरों पर उनसे काम लेना चाहिए। सिद्धान्त तो यह कहता है, वेद यह कहता है, दर्शन यह कहते हैं और मैं यह मानता हूँ; तो मेरी बात मिथ्या है और अपनी बात को छोड़ दो। यह प्रयोग आपको करने पड़ेंगे। दोहरा लो क्या समझ में आया?

साधक २ – जब सिद्धान्तों के विपरीत हमारी बुद्धि उत्पन्न हो रही हैं तब पूर्वपरीक्षित सिद्धान्तों के द्वारा अपनी बुद्धि को परिवर्तित कर लेना चाहिए और ऐसा करना ही पड़ेगा।

स्वामी जी – करना ही पड़ेगा। यहाँ यह एक बात जानने की है कि जिन ऋषियों ने परीक्षा कर-करके ये सिद्धान्त निर्धारित किए, मान्यताएँ बनाईं उनकी योग्यता बहुत अधिक थी, बड़े विद्वान् थे, पक्ष-पात रहित, सत्यवादी, ईश्वर उपासक, परोपकारी आदि-आदि थे तथा उनकी जितनी योग्यता थी, वह योग्यता मेरी नहीं है। यह ध्यान रखने की बात है। क्या समझोगे? क्या करोगे?

साधक २ – जितनी उनकी योग्यता थी, उतनी हमारी नहीं है।

स्वामी जी – उतनी हमारी योग्यता नहीं है, यह एक बात है। दूसरी है - कभी-कभी आपको अपनी योग्यता उनसे अधिक या समान दिखाई देती है, जबकि नहीं है। उस समय की घटना सुना रहा हूँ। जब समान या अधिक योग्यता नहीं है और मान लेते हैं तब उन सारे सिद्धान्तों की तुलना में आपकी मान्यता असत्य सिद्ध हो जाएगी।

साधक ५ – स्वामी जी! सारे सिद्धान्तों को इकट्ठा करें - इस बात का क्या अभिप्राय होगा?

स्वामी जी – अर्थात् ऋषि ने पचास-इक्यावन सिद्धान्त लिख दिए, अन्तिम रूप दे दिया। तब हम कहेंगे वे भी तो अल्पज्ञ थे, एकदेशी थे, उनसे भी असावधानी के कारण कोई भूल हो सकती

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है। भूल है ही, ऐसा नहीं कह रहे हैं। मानकर चलो कि अल्पज्ञता के कारण भूल हो सकती है। क्या समझ में आया?

ऐसी सम्भावना बनी रहती है कहीं भूल हो सकती है। सब जगह नहीं। इसलिए हम कहते हैं मान लो इतनों में से एक, दो, तीन बातें असत्य हो सकती हैं परन्तु ऐसी स्थिति में हम उनकी बात को शतप्रतिशत ठीक मानकर चलेंगे। यद्यपि असत्य होने के कारण कहीं-कहीं एक-दो हानि हो सकती हैं किन्तु वोह नाममात्र की होगी, अधिक लाभ ही होंगा। यदि थोड़ी हानि हो भी गई तो कोई बात नहीं, परन्तु यदि हम सारे सिद्धान्तों पर सन्देह कर लेंगे या अपनी योग्यता को उनसे अधिक या समान मान लेंगे तब उनमें बहुत दोष देखने लगेंगे और हम उन्हें सर्वथा छोड़ देंगे, उस पक्ष में बहुत अधिक हानि हो जाएगी। अब कौन-सा ठीक है? देख लो। दोहरा लो, क्या समझ में आया?

साधक ५ – उनकी मान्यता को यथावत् स्वीकार कर लेने में लाभ है और अपनी मान्यताओं के समान या उनसे अधिक मानने में हानि।

स्वामी जी – हानि है। ऐसा इसलिए कि उन्होंने बहुत से क्षेत्रों में अपना जीवन अर्पित कर खोज की, ईश्वर आदि का अनुभव किया। वे इतनी गम्भीरता में गए, जीवन समर्पित करके तत्त्वों का प्रत्यक्ष किया, बहुत मात्रा में अनुभव किया। अब यदि उनकी ही मान्यता को लेकर चलें तो झट हम उनकी बातों को समझ जाएँगे और वे तत्त्व जिनकी खोज उन्होंने की वे हमारे हाथ लग जाएँगे। यदि हम नहीं मानेंगे तो पुनः देखो क्या गति होगी? आप भी बोलो, केवल मैं ही बोलता रहूँ?

साधक ८ – दुर्गति होगी। उन्होंने हमें उत्तर निकालकर दे रखा है। इसलिए उस रास्ते पर चलने में हमे सुविधा रहेगी और यदि हम अपनी मनमानी करते हैं तो उन तत्त्वों से वंचित रह जाएँगे तथा दुःख भोगेंगे।

स्वामी जी – अब संसार के लोगों की स्थिति अर्थात् इसको इस रूप में न मानने वालों की प्रायः यह स्थिति देखी जाती है कि वे कालान्तर में अपने मार्ग को छोड़ देते हैं। अब क्या समझ में आया? पहले वे इस बात का निश्चय करते हैं कि हम इस मार्ग पर चलेंगे। इसके लिए प्रयत्न भी करते हैं, समय भी लगाते हैं, पढ़ते-पढ़ाते हैं परन्तु इतना होने पर भी ऋषियों की बातों को न समझने के कारण या पूरा स्वीकार न करने के कारण उस मार्ग को छोड़ देते हैं।

छोड़ने की भी दो स्थितियाँ हैं एक तो नितान्त छोड़ देना, उस मार्ग पर चलना ही नहीं है। दूसरा - जब उन्होंने केवल सिद्धान्तों को मान लिया परन्तु उसके लिए प्रयत्न नहीं किया तो आगे चलकर अनुभव नहीं हुए, फल सामने नहीं आया। इसका परिणाम हुआ ऋषियों के प्रति अश्रद्धा, अविश्वास उत्पन्न हो गया और उनकी मान्यताओं को ढीला कर दिया। यद्यपि सार्वजनिक रूप में ऐसी घोषणा नहीं की कि हम ऋषियों की बातों को अच्छा नहीं मानते, ऐसा प्रचार भी नहीं करते किन्तु वास्तव में अन्दर ही अन्दर घुटते रहते हैं, उनसे विरोध रखने लगते हैं तथा विपरीत आचरण करने लगते हैं। इस प्रकार पुनः साधारण स्थिति में चले जाते हैं। तब उनका कोई विकास नहीं होता, कोई विशेष सफलता नहीं होती और उनके व्यवहार में बहुत सी त्रुटियाँ आ जाती हैं। यदि आप देखना चाहें तो दिन में अपने ही ज्ञान, मन, विचारों को देख सकते हैं कि उन सिद्धान्तों से कितना उलटे चलते रहते हैं। दिनभर आप अनुभव करते हैं या नहीं करते।

साधक ८ – करते हैं।

स्वामी जी – जो सिद्धान्त हैं, जो स्थिर मान्यताएँ ऋषियों ने बनाईं, उनसे हमारा ज्ञान, हमारा मानसिक स्तर, हमारी मान्यता दिन में कितनी बार टकराती हैं। हम उनको अनुभव करते हैं, पुनः

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रोकते हैं। ऐसा होता है या नहीं होता?

साधक ३ – होता है।

स्वामी जी – अच्छा! इसको हटाने का उपाय क्या है? इस विषय में योगदर्शन के भाष्यकार ने जो बात कही है, उसको भी थोड़ा ले लो। क्या शब्द हैं?

सम्पादकीय – **यद्यपि हि तत्तच्छास्त्रानुमानाचार्योपदेशैरवगतमर्थतत्त्वं सद्भूतमेव भवत्येतेषां यथाभूतार्थ-प्रतिपादनसामर्थ्यात्तथापि यावदेकदेशोऽपि कश्चिन्न स्वकरणसंवेद्यो भवति तावत्सर्वं परोक्षमिवापवर्गादिषु-सुक्ष्मेष्वर्थेषु न दृढ़ां बुद्धिमुत्पादयति। तस्माच्छास्त्रानुमानाचार्योपदेशोपोद्बलनर्थमेवावश्यं कश्चिदर्थविशेषः प्रत्यक्षी-कर्त्तव्यः। तत्र तदुपदिष्टार्थैकदेशप्रत्यक्षत्वे सति सर्वं सुसूक्ष्मविषयमप्यापवर्गाच्छ्रद्धीयते।** यो.द.व्या.भा. १/३५।

शब्दार्थ – यद्यपि शास्त्र, अनुमान और आचार्य के उपदेश से प्राप्त अर्थ यथार्थ ही होते हैं इनमें यथाभूत अर्थप्रतिपादन की सामर्थ्य होने से। पुनरपि जब तक उन अर्थों का कोई अंश प्रत्यक्ष नहीं कर लिया जाता तब तक वे अर्थ परोक्ष ही रहते हैं और इस अवस्था में मोक्ष आदि सूक्ष्म विषयों में दृढ़ बुद्धि उत्पन्न नहीं हो पाती है। इसलिए शास्त्र, अनुमान और उपदेश की पुष्टि के लिए किसी अर्थ विशेष का कोई अंश अवश्य प्रत्यक्ष करके देखना चाहिए। इस अर्थविशेष के प्रत्यक्ष कर लेने पर मोक्ष आदि सूक्ष्म विषय पर्यन्त श्रद्धा उत्पन्न हो जाती है।

स्वामी जी – अर्थात् साक्षात् आचार्य ने अनुभव करके या अनुमान से जानकर उपदेश किया हो। दूसरी, आपने स्वतन्त्र रूप से स्वयं अनुमान करके जान लिया तथा तीसरी, अन्यत्र शास्त्र में कही हुई बात। ऐसा भाव है लगभग। भाव लेकर बोल रहा हूँ। उन्होंने कहा कि इन तीनों प्रकारों से कही हुई बातें सत्य ही होती हैं। क्या कहा, दोहरा लो?

साधक ५ – इन तीनों के द्वारा कही हुई बातें सत्य ही होती हैं।

स्वामी जी – और पुनः कहा जब तक इनका प्रयोग करके व्यक्ति किसी एक सूक्ष्म विषय का स्वयं अनुभव नहीं कर लेता तब तक इन पर ...।

साधक ३ – श्रद्धा नहीं होती।

स्वामी जी – श्रद्धा नहीं होती।

साधक ३ – विषय परोक्ष बना रहता है।

स्वामी जी – इसलिए हम इस परिणाम पर पहुँचे कि ऋषियों की बातों को पहले स्वीकार करना, पुनः उनका प्रयोग करके देखना चाहिए। प्रयोग से परिणाम, फल आपके सामने आएगा और कुछ का यदि अनुभव हो गया तो शेष पर विश्वास हो जाएगा।

अब आपके समक्ष दूसरा प्रकरण आता है। जब आप जप करते हैं तब मन के विचलित हो जाने पर किस-किस उपाय का प्रयोग करते हैं तथा किस-किस का प्रयोग करना चाहिए? तो ध्यान देंगे – ध्यानकाल में जप करते हुए उपासना में मन को अधिकार में रखने के लिए **एक उपाय के रूप में यह प्रयोग** होता है सृष्टि को प्रलयवत् बना देना। दोहराओ, क्या समझ में आया?

साधक २ – मनोनियन्त्रण के लिए एक उपाय होता है सृष्टि को प्रलयावस्था में परिवर्तित कर देना।

स्वामी जी – परन्तु ऐसा वही कर पाएगा जिसका अच्छा अभ्यास हो। जो व्यक्ति इतनी योग्यता नहीं रखता, इतना सामर्थ्य उसके पास नहीं, बुद्धि का स्तर इतना नहीं तो वह उपासना काल में सृष्टि को प्रलयवत् स्थिति में पहुँचाने में सफल नहीं होगा। अतः इसको पहले से समय लगाकर सिद्ध कर लेना चाहिए। जो बार-बार प्रलयवत् अवस्था बना चुका है, सिद्ध कर चुका है और बनाई

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रखने की स्थिति उसकी हो गई है, वह व्यक्ति उपासना काल में यदि प्रलयवत् अवस्था बनाता है, तब मन पर नियन्त्रण होता है। नहीं समझ में आया हो तो पूछो ! आ गया ?

साधक २ – जिसने पहले इस अवस्था को बनाने का अभ्यास कर लिया है, वह यदि उपासना काल में .....।

स्वामी जी – सिद्ध करके प्रयोग करता है तो उपाय ठीक रहेगा, काम करेगा। यदि पहले से सिद्ध नहीं है तो तत्काल सिद्ध करना कठिन होगा। इनके दो विभाग बना लीजिए। प्रथम पृथक् काल में इन उपायों को सिद्ध करना, पुनः इस सिद्ध हुए का उपासना काल में प्रयोग करना। उपासना काल आचरण प्रधान होता है। किसी विषय का निर्धारण करने के लिए वह परीक्षा करने का काल नहीं होता है। वहाँ तो सिद्ध की हुई बातों का सीधा प्रयोग होता है। उपासना काल में ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना, वृत्तियों को रोकना, ईश्वर के साथ अपना सम्बन्ध जोड़ना आदि कार्य होते हैं। इसलिए नवीन वस्तुओं को वहाँ लाकर उनका निर्धारण करना कि ये ऐसी हैं या नहीं; यह नहीं होता। इनको सिद्ध करने का कार्य उपासना से अतिरिक्त समय में करना चाहिए। अब क्या समझ में आया ? दोहरा लो, लिख लो, बोल लो।

साधक २ – उपासना के समय तो समर्पण, अर्थ, जप आदि कार्य करने चाहिएँ। शेष कोई पक्ष-विपक्ष उठ जाता है ...।

स्वामी जी – उसको रोक देना चाहिए। 'अब यह नहीं करना है' ऐसा नियम बनाकर रखिए। हाँ जी ! वर्मा जी ! नींद आ रही है ? बुढ़ापे में थकान, आलस्य आ रहा हो तो मुंह धो लेना और कभी ऐसा न हो कि गिर पड़ें। ठीक है ! तो हम कह रहे थे उस काल में एक नियम बनाकर रखो कि मैं उपासना काल में अन्य विषय को नहीं उठाऊँगा। आवृत्ति करो, क्या समझ में आया ?

साधक ३ – उपासना काल में अन्य विषयों को मैं नहीं उठाऊँगा; यह संकल्प करना चाहिए।

स्वामी जी – यह निर्णय करके चलना चाहिए। जब असावधानी से उठ जाए तो तत्काल रोको कि यह नियम है अब दूसरे विषय को नहीं उठाऊँगा। हम एक उदाहरण बनाते हैं जैसे कि संध्याकाल में एक व्यक्ति संध्या करने बैठा। बैठते ही उसका एक घनिष्ठ मित्र आ गया। कल्पना करते हैं बहुत विशेष मित्र आ गया। अब उसने योजना बनानी आरम्भ कर दी कि उनके लिए कैसी व्यवस्था करूँ, कहाँ ठहराया जाए और भोजन आदि की क्या-क्या व्यवस्थाएँ होंगी आदि। अब उपासना काल में बैठा हुआ वह व्यक्ति यदि मित्र की व्यवस्था, सुविधाएँ, ठहराने आदि की बातें उठा लेता है तब उपासना नहीं कर सकता। इसलिए इस पर प्रतिबन्ध लगा दिया जाएगा कि इस काल में मित्र की बातें नहीं सोचनी हैं। उनके लिए क्या कुछ करना है, आदि विचार नहीं करने हैं। परन्तु बहुत आवश्यक हो, तत्काल व्यवस्था करनी ही हो तो दस-पन्द्रह मिनट के लिए उपासना को रोककर पहले व्यवस्था कर ले, पुनः उपासना में बैठ जाएँ। उसके लिए यह विकल्प है। क्या समझ में आया ? यदि ऐसी स्थिति है तब ....

साधक १ – उसकी व्यवस्था आदि करके पुनः उपासना में बैठना।

स्वामी जी – उसका यह उपाय है। उससे निश्चिन्तता आ जाएगी। अब वह सोचेगा इतना मैंने कर दिया है, शेष का विचार अब नहीं करूँगा। इस प्रकार अपने ऊपर प्रतिबन्ध लगा दो। आप अनुभव कर सकते हैं यदि आप ऐसा नियम नहीं बनाएँगे, प्रतिबन्ध नहीं लगाएँगे तो आपको उपासना में सफलता नहीं मिल पाएगी।

अब मनोनियन्त्रण का दूसरा उपाय – जब प्रलयवत् अवस्था बनाने की क्षमता न हो तब मन पर अधिकार करने के लिए व्यक्ति यह प्रयोग करता है कि मन जड़पदार्थ है, मैं आत्मा ही मन को

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चलाता हूँ, मेरे इच्छा, प्रयत्न के बिना मन कहीं भी नहीं जा सकता और अब मै इसको केवल ईश्वर की स्तुति में लगाऊँगा, दूसरे विषय को नहीं उठाऊँगा। दोहराइए, जब पहला उपाय नहीं आता तब दूसरा कौन-सा उपाय अपनाता है?

साधक ३ – मन एक जड़ पदार्थ है। बिना मेरी इच्छा, प्रयत्न के कोई विचार नहीं आ सकता, नहीं आएगा। अतः मैं इस समय अपने मन को उपासना में ही लगाऊँगा, अन्य विषय में नहीं। यह निर्णय है।

स्वामी जी – इसी प्रकार से उपासना में वैराग्य का प्रयोग होता है। वैराग्य के क्षेत्र में आपने बहुत कुछ सुना-समझा, सीखा-सिखाया है। जैसे कि यह जो मैं लौकिक सुख और सुख-साधनों के लिए लालायित हूँ इनमें तो परिणाम दुःख, ताप दुःख आदि मिश्रित हैं। जब किसी भी सुख को पकड़ूँगा तो मुझे चार प्रकार का दुःख भोगना पड़ेगा। तब पुनः मैं इस ओर क्यों जाना चाहता हूँ? क्यों जाऊँ? ऐसे वैराग्य को उपस्थित करता है। इस प्रकार जब दोष देखता है, तब उस ओर से मन को हटाने में, नियन्त्रण में लाने में सुविधा हो जाती है। मनोनियन्त्रण का यह **तीसरा उपाय** है।

मनोनियन्त्रण का चौथा उपाय – जब ईश्वर के विशेष गुणों को जानकर अर्थात् ईश्वर में आनन्द, ज्ञान आदि अनन्त गुण हैं इसको अच्छे प्रकार से समझने के पश्चात्, जीवों के गुण-कर्म-स्वभाव और प्रकृति-प्राकृतिक पदार्थों के गुण-कर्म-स्वभाव का तुलनात्मक अध्ययन करता है तो उसकी बुद्धि में ईश्वर के प्रति अत्यन्त प्रेम, श्रद्धा उत्पन्न होती है। यही अत्यन्त श्रद्धा, प्रेम उसके मन को नियन्त्रण में ले आता है।

अब एक और बात, इन चारों उपायों का प्रयोग साधक कब-कब करता है? एक साधक कभी प्रलयवत् अवस्था का भी प्रयोग करता है। कभी मन जड़ पदार्थ है, मैं आत्मा मन को चलाता हूँ; इसका भी प्रयोग करता है। तो कभी पदार्थों में चार प्रकार के दुःख भरे हैं; इसका भी प्रयोग करता है और चौथा क्या था?

साधक ३ – ईश्वर में अत्यन्त प्रेम, श्रद्धा।

स्वामी जी – उसका भी प्रयोग करता है। तो वह इन सबका प्रयोग कर लेता है।

साधक ५ – ये प्रयोग एक साथ चलते हैं या बारी-बारी से चलते हैं? स्वामी जी!

स्वामी जी – आपकी भाषा थोड़ी-सी अस्पष्ट रही, इसको और खोलना पड़ेगा। बारी-बारी से और एक साथ का अभिप्राय भी स्पष्ट करना होगा। इसको ऐसे कह सकते हैं एक संध्या-काल में क्रमशः चारों का प्रयोग किया जाता है अथवा किसी एक-एक का भी?

साधक २ – एक-एक करके।

स्वामी जी – संध्याकाल में एकदैव चारों का प्रयोग तो हो नहीं सकता। अतः एक-एक करके उनका प्रयोग करता है। जैसे कि प्रथम प्रलयवत् वाले का उपयोग किया, उससे उपासना पूरी निर्विघ्न सम्पन्न हो गई तो अन्य उपायों का प्रयोग नहीं करना पड़ा। परन्तु जब देखा कि इससे काम नहीं चल रहा है तब जड़ मानकर प्रयत्न किया। उसी समय देखा कि विषयों की ओर रुचि है तो उनमें दुःख देखकर मन को रोक लिया। इससे भी तृप्ति नहीं हुई तो ईश्वर में जो विशेषता देखी, उसको आधार बनाकर मन पर नियन्त्रण कर लिया। ऐसे भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में अपेक्षानुसार भिन्न-भिन्न उपायों का प्रयोग किया जाता है। अब विराम॥

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

७६ ज्ञानखण्ड

प्रलय प्रयोग : आषाढ़ अमावस्या २०६०-२९/७/०३

अब आप इस बात की ओर ध्यान देंगे कि हमने प्रमाणों से यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया कि समस्त शरीर मनुष्य, पशु-पक्षी, कीट-पतंग आदि नाशवान् हैं और यह भी सिद्ध किया कि इन शरीरों की रचना अनादि काल से नहीं चली आ रही है। अर्थात् हमारे पिता, उनके पिता, उनके पिता, पीछे हटते जाइए लाखों, करोड़ों पिता के पिता का क्रम प्राप्त होता है परन्तु एक ऐसा भी काल उपलब्ध होता है जिसमें यह क्रम समाप्त हो जाता है। आगे कोई भी पिता नहीं था, यह स्थिति दिखाई देती है। हम यहाँ तक पहुँचे। ठीक है !

दूसरे पक्ष में वर्त्तमान के सभी पिता, पुनः इनकी सन्तान, पुनः उनकी सन्तान, पुनः सन्तान की सन्तान, यह परम्परा चलती चली जाएगी परन्तु एक समय ऐसा आएगा कि यह परम्परा अवरुद्ध हो जाएगी। आगे कोई भी सन्तति उत्पन्न नहीं होगी। इस प्रकार सारे शरीर विनाश को प्राप्त हो जाएँगे।

तो दो बातें हैं - वर्त्तमान काल के समस्त शरीर नाशवान् हैं यह सिद्ध किया और आगे एक समय ऐसा आएगा जिसमें कोई भी शरीर उत्पन्न नहीं होगा। इसके पश्चात् पुनः विचारक विवेक को प्राप्त करने वाला सृष्टि की आदि की ओर जाता है, तब वह देखता है मेरे पिता, उनके पिता, पिता के पिता इस प्रकार पीछे हटता जाता है और अन्त में एक ऐसी स्थिति को ढूँढत लेता है जिसमें कोई भी किसी का पिता नहीं था।

उसके पश्चात् साधक देखता है कि ये जो पृथ्वी, सूर्य, चन्द्र आदि असंख्य भूगोल हैं, क्या ये सदा से ज्यों के त्यों चले आ रहे हैं और सदा ऐसे ही बने रहेंगे? क्योंकि कुछ लोग सृष्टि को अनादि और कुछ लोग सृष्टि को अनन्त मानते हैं। अर्थात् यह सृष्टि सूर्य, चन्द्रमा आदि सदा रहेंगे, विनाश को प्राप्त नहीं होंगे। परन्तु प्रमाणों से यह सिद्ध हुआ कि सृष्टि अनादि नहीं है, अनन्तकाल तक नहीं रहेगी क्योंकि पृथ्वी आदि लोक परमाणुओं से बने हैं।

अब आप यह जानकर कि मैं जीवात्मा शरीर, इन्द्रिय, पृथ्वी आदि से पृथक् एक चेतन पदार्थ हूँ तथा शरीर, पृथ्वी आदि सब उत्पन्न पदार्थ विनाश को प्राप्त हो जाएँगे; इस स्थिति में आत्मा को अपने अनुभव का विषय बनाने के लिए एक प्रयोग करेंगे। इसके लिए अपने शरीर में अपनी सुविधा के अनुरूप एक केन्द्र बनाएँ, पुनः सभी ओर से अपने मन को, बुद्धि को हटाकर आत्मा की खोज, गवेषणा, प्राप्ति अथवा आत्मा के स्वरूप का परिज्ञान करें।

एक विधि के अनुसार किसी भी पदार्थ को हम जानने के लिए, उसकी गहराई में पहुँचने के लिए धारणा, ध्यान, समाधि लगाते हैं। इस विधि के अनुसार आप स्वयं अपनी आत्मा का ध्यान, गवेषणा करके देखें कि मेरा स्वरूप क्या है? यहाँ एक बात ज्ञात रखनी है कि आपने सुना है, पढ़ा-पढ़ाया है कि आत्मा एकदेशी है, सत्-चित् है, ज्ञान, इच्छा, प्रयत्न उसके गुण हैं, उन्हीं शब्द-प्रमाण और अनुमान-प्रमाण के आधार पर आत्मा का, स्वयं का अनुभव करने के लिए प्रयत्न करेंगे। अन्य वृत्तियों को रोक दें और केवल जीवात्मा को जानने के लिए प्रयत्न करें। जैसे हम ईश्वर को ढूँढते हैं, ईश्वर को प्राप्त करना चाहते हैं, ईश्वर के स्वरूप को जानना चाहते हैं वैसे ही आत्मा के स्वरूप को जानने का प्रयत्न करेंगे। मानसिक रूप में प्रयोग करके देखिए।

प्रयोग आरम्भ ....समय लगभग ३ मिनट।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब सब रुकेंगे और आप अपनी अनुभूति, अपना प्रयोग, अपनी स्थिति का वर्णन करेंगे।

साधक २– बाहर का कोई विषय तो नहीं था। अपनी ओर से कुछ सोचने का प्रयत्न भी नहीं किया। मैं जान रहा हूँ, इस स्थिति के लिए प्रयत्न कर रहा हूँ, ढूँढ रहा हूँ; यह ज्ञान था पर कुछ मिल रहा हो, ऐसी अनुभूति नहीं हो रही थी।

स्वामी जी – तो ?

साधक २– हृदय में संकोच-विकास की स्थितियाँ आती थीं। इस प्रकार की अनुभूति रही पर शरीर से मैं किस प्रकार से भिन्न हूँ, ऐसी कोई अनुभूति नहीं हुई।

स्वामी जी – अब और कौन बताएगा ? आप बोलेंगे अपनी अनुभूति।

साधक ३– मैंने आत्मा के विषय में जो पढ़ा-सुना है। आत्मा के गुणों का चिन्तन करता रहा तब वह ठीक चलता रहा। एक बार बाहर से एक आवाज सुनाई दी। तत्काल उसको हटा दिया, पुनः पूरे काल तक इस विषय के लिए चिन्तन करता रहा।

स्वामी जी – अब इस ओर से आप सुनाएँगे, आपकी स्थिति कैसी रही।

साधक ४– पूरे काल तक शब्द-प्रमाण के आधार पर आत्मा के विषय में चिन्तन करने का प्रयास किया। किन्तु धारणा की स्थिति हृदय में और मस्तिष्क में बारी-बारी से परिवर्तित होती रही।

स्वामी जी – अर्थात् धारणा कभी मस्तिष्क में, तो कभी हृदय में परिवर्तित होती रही।

साधक ४– और स्पष्ट रूप से कोई भी अनुभूति नहीं बन पाई। इसीलिए शाब्दिक ज्ञान के रूप में ही आवृत्ति होती रही।

स्वामी जी – आगे कौन है, आपकी स्थिति क्या रही ?

साधक ८– स्वामी जी ! शास्त्रों के अनुकूल आत्मा के स्वरूप का चिन्तन करते हुए शरीर के क्रिया-कलापों के साथ मिलान करता रहा और यह निश्चय करता रहा कि वास्तव में इस व्यापार को करने वाला मैं हूँ, यही आत्मा है।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे, कैसी स्थिति रही ?

साधक ६– बाह्य विषय तो कोई नहीं बनाया। अपने आत्मा के स्वरूप की खोज करता रहा। एक बार यह आया कि बाहर से देखूँ या अन्दर से ? पुनः केवल यही चिन्तन करता रहा कि मैं क्या हूँ अर्थात् आत्मा का स्वरूप कैसा है ? परन्तु उसमें कोई उपलब्धि ऐसी नहीं रही।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप कुछ अपना अनुभव बताएँगे।

साधक ७– मैंने जीवात्मा के गुणों का स्मरण करते हुए इच्छा, प्रयत्न, चेतनपूर्वक ज्ञान आदि का स्मरण करते हुए कहा कि मैं अल्पज्ञ हूँ, मैं सर्वशक्तिमान् नहीं हूँ। मैं सर्वज्ञ नहीं हूँ। मैं एकदेशी हूँ। सर्वव्यापक नहीं हूँ। मैं शरीर नहीं हूँ। मैं मन नहीं हूँ, मैं इन्द्रियाँ नहीं हूँ। यदि मन, इन्द्रियाँ और शरीर होता तो मरने के पश्चात् भी शरीर तो विद्यमान रहता है पर कोई क्रिया नहीं होती। अतः ऐसी शक्ति भी है जिसके कारण शरीर में क्रिया होती है। इससे सिद्ध होता है कि शरीर से कोई पृथक् वस्तु है।

स्वामी जी – ठीक है। आपने यह देखना था कि क्या कम से कम इस अवस्था में अपने मन पर अधिकार करके, अपने विषय में विचार कर पाए या नहीं ? अन्य वृत्तियाँ आपने रोक दीं और आत्मा के विषय में ही आप मन्थन, खोज, गवेषणा, धारणा, ध्यान करते रहे। मैं आत्मा पूरे प्रकृति-विकृति, जो २४ तत्त्व माने जाते हैं, उनसे पृथक्, एकदेशी, अणु, अल्प शक्ति वाला, ज्ञान,

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रयत्न, इच्छा गुण वाला हूँ और अब मैं अपने विषय में ही विचार करूँगा। मैं आत्मा ऐसा हूँ, इसके अतिरिक्त अन्य कोई विषय नहीं बनाऊँगा। क्या जमकर कुछ ऐसी बात हो पाई? अथवा आपने प्रयत्न करना आरम्भ किया पर आपकी न धारणा बनी, न ध्यान बना, न कोई खोज करने की बात आई। वृत्तियाँ बीच-बीच में चलती रहीं; यह स्थिति रही?

साधक ३ – धारणा ठीक बनी रही हृदय प्रदेश में और अधिकार पूर्वक चिन्तन करता रहा। एक बार बाहर की ध्वनि सुनाई पड़ी थी तो उस वृत्ति को तत्काल रोक दिया। पुनः अन्य कोई वृत्ति नहीं उठाई। ऐसा मेरा ज्ञान काम करता रहा।

स्वामी जी – आप अपने आत्मा के स्वरूप को जानने के लिए जो प्रयत्न कर रहे हैं या जो प्रयोग करते हैं, उसमें पीछे बताए गए चारों उपाय काम में आते हैं। जैसे कि प्रथम - शरीर, सूर्य आदि सहित पूरे संसार को प्रलय जैसी अवस्था में ले जाते हैं। दूसरी बात - इन चौबीस तत्त्वों को, जो शास्त्रकार के द्वारा गिनाए गए हैं, इनको हम जड़-वर्ग मानते हैं। ये चौबीस सत्त्व, रजस्, तमस् से लेकर शरीर पर्यन्त, सब जड़-वर्ग है। इनके अन्तर्गत जड़ मन को मैं चलाता हूँ और अब मैं अपने विषय में विचार करूँगा; यह स्थिति बनाते हैं। इसके परिणाम-स्वरूप आप इच्छानुसार अधिक काल तक स्थिति को बनाए रखने में समर्थ होते हैं। इस स्थिति में जो हमारी मनः स्थिति को विचलित करने वाली विचारधाराएँ हैं, वृत्तियाँ हैं, उनको रोक देते हैं।

अब जब इन चौबीस तत्त्वों से मैं आत्मा पृथक् हूँ और मन सहित शरीर आदि को मैं चलाता हूँ; यह स्थिति आई तब समर्थ हो गए कि अन्य विचारों से रोककर आत्मा के विषय में ही विचार करूँगा। मैं आत्मा एकदेशी सत्-चित् ज्ञानवान्, इच्छा, प्रयत्न वाला हूँ और मैं ही सोचता हूँ, मन को प्रेरणा देता हूँ और मेरी प्रेरणा से ही सारी विचारधाराएँ चलती हैं। अब मैं आत्मा अपने स्वरूप में स्थित हूँ; ऐसी स्थिति में आप चले जाते हैं। इसके पश्चात् आगे भी इसका अभ्यास व्यक्ति को करते रहना चाहिए।

इस प्रकार अभ्यास करने से अनेक बातें समझ में आएँगी। जैसे कि वृत्तियों को रोकने में आप बहुत समर्थ हो जाएँगे। कभी-कभी ऐसा होता है कि आप ईश्वर में ध्यान लगाना चाहते हैं, समाधि लगाना चाहते हैं अथवा उससे पूर्व ओम् का जप करना चाहते हैं परन्तु सफलता नहीं मिल पाती है। उस स्थिति में यदि आप इस अवस्था को बना लेते हैं कि मैं आत्मा शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि सब से पृथक्, एकदेशी, अणु हूँ और इन सबका संचालन करता हूँ तो आप स्मृति आदि वृत्तियों को रोक लेंगे तथा एकाग्रचित् होकर बिना किसी कठिनाई के ईश्वर का ध्यान कर सकेंगे। आपको सफलता प्राप्त होगी।

अच्छा! आपने अपने स्वरूप को जाना अर्थात् मैं एकदेशी अणु, अल्प स्वरूप, थोड़ी शक्ति वाला, इन चौबीस तत्त्वों से पृथक् आत्मा हूँ आदि समझने का प्रयास किया। अब आप ईश्वर का ध्यान करना चाहते हैं। ओम् सच्चिदानन्द का जप करना चाहते हैं और असावधानी के कारण कभी आपकी स्थिति बिगड़ने लगती है, तब आप क्या करेंगे? तब आप तत्काल यहाँ पहुँच जाएँगे कि मैं शरीर में एकदेशी अणु आत्मा हूँ। मन आदि को मैं चलाता हूँ और ये जो वृत्तियाँ, ईश्वर में ध्यान लगने में, बाधित कर रही हैं, इनको रोकता हूँ। इसके लिए एक बार ईश्वर के ध्यान को रोक देंगे और कहेंगे - इनको मैं ही उभारने वाला हूँ। ये अपने-आप नहीं उभरतीं। मेरी स्थिति बन नहीं पा रही है, इसका कारण मैं स्वयं हूँ। मैं स्वयं को अच्छी तरह सम्भाल नहीं पा रहा हूँ या अपने पर अधिकार नहीं कर पा रहा हूँ। इसलिए ये वृत्तियाँ उभर रही हैं। अब मैं इनको रोकता हूँ। अब मैं

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन आदि को प्रेरणा नहीं दूँगा। इस प्रकार अपने-आपको सम्भालेंगे, पुनः स्थिति बन जाएगी। अब इस स्थिति में ओम् सच्चिदानन्द का जप करेंगे। सबकी स्थिति तो बनेगी किन्तु एक जैसी नहीं बनेगी। जो शान्ति से, ओम् सच्चिदानन्द हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हैं; ऐसा जप करता है उसकी अच्छी स्थिति बन सकती है।

अब आप, जैसी स्थिति सुनाई जा रही है, उसके अनुसार प्रयोग करके देखें। अपन-आप को संयम में रखकर, मन आदि को नियन्त्रण में रखते हुए ओम् सच्चिदानन्द का जप करें। बाहर की स्थितियाँ आपने बहुत कुछ सुधारी ली हैं। अब जो आकाशवत् अवस्था है, उसको लाने का प्रयास करें। इसके लिए शरीर आदि को प्रलय जैसी स्थिति में पहुँचा दिया। अब आकाश जैसी अवस्था में ईश्वर का ध्यान कर रहे हैं। आप इसको करके देखिए। ओम् सच्चिदानन्द का जप करते हुए अनुमान-प्रमाण, शब्द-प्रमाण से ईश्वर सर्वव्यापक, सच्चिदानन्द स्वरूप की भावना करें। मन को अन्य विषयों से नितान्त रोककर ईश्वर का मानसिक ध्यान करने का प्रयत्न करें। आकाशवत् अवस्था को साथ में रखिए और ओम् सच्चिदानन्द हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक, सत्-चित्-आनन्द स्वरूप हैं। पाठ करो, अर्थ करो और अन्य वृत्तियों को न उठाएँ, उठ जाए तो तत्काल रोक दें।

प्रयोग प्रारम्भ.....समय लगभग ५ मिनट।

अब आप रुकेंगे। आप सुनाएँगे, आपकी कैसी स्थिति रही ?

साधक २ – एक चित्र देखा और उसके साथ-साथ शेष कार्य करता रहा।

स्वामी जी – एक चित्र आपने देखा। पुनः उसका क्या किया ?

साधक २ – उसके पश्चात् प्रलयावस्था दो-तीन बार बनाई।

स्वामी जी – जब आया तो आपने उसको प्रलय जैसी स्थिति में कर दिया और वह हो गया ?

साधक २ – एक बार और किया। उसमें ऐसा लगा कि अभी जो मैं देख रहा हूँ, यहाँ कोई पदार्थ नहीं है। इसका अभिप्राय हुआ, कोई बाधा नहीं होनी चाहिए।

स्वामी जी – ठीक बात है।

साधक २ – ऐसा जानकर आरम्भ किया।

स्वामी जी – तो अनुमान-प्रमाण से, शब्द-प्रमाण से सृष्टि की उस अवस्था को देखते हैं जब यह नहीं बनी थी और उस स्थिति को भी देखते हैं जब आगे प्रलय हो जाएगा। पुनः दोनों को मिलाते हैं तो वर्त्तमान काल में जो सृष्टि दिखाई देती है, इसकी भी प्रलयवत् अवस्था की स्थिति बन जाती है। उस समय पदार्थों का कोई चित्र आकार-प्रकार नहीं होता। परन्तु नवीन व्यक्ति जब प्रयास करता है तब उसको चित्र दिखाई देते हैं। वह हटाता रहता है और वे आते रहते हैं। कभी-कभी ऐसा होता है कि वह उन चित्रों को हटा नहीं पाता। जिसका अभ्यास अधिक हो जाता है, वह उन चित्रों को हटाने में समर्थ हो जाता है, जो कोई बचा हुआ चित्र आता दिखाई देता है।

वास्तव में देखा जाए तो वह चित्र जो आ रहा है वह स्वयं नहीं आता। उसको भी जीवात्मा स्वयं लाता है। इसलिए उसे स्वयं वह हटा देता है। हटाते-हटाते कालान्तर में चित्र आने बन्द हो जाते हैं अर्थात् वह लाना छोड़ देता है और ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना करने के लिए इस आकाशवत् अवस्था में कोई विशेष बाधा नहीं रहती है।

अच्छा ! एक प्रसंग जो चल रहा था कि जब हम वर्त्तमान शरीरों को प्रलयवत् देखते हैं तब संशय उभरता है कि ऐसा कैसे हो सकता है ? आजकल वैसा कुछ उभरता है या नहीं ?

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– अब तो पहले से कम हो गया।

स्वामी जी – कम हो गया होगा। किसी का बहुत कम हो गया होगा, किसी का थोड़ा कम हुआ होगा। आप अभ्यास करते जाएँगे, करते जाएँगे, एक दिन यह संशय नहीं उभरेगा; यह वास्तविकता है।

अब दर्शन के साथ इसको जोड़ो। एक दर्शनकार कहता है कि कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती, अपितु वह अभिव्यक्त होती है। क्या समझ में आया?

साधक ३– कोई नई वस्तु उत्पन्न नहीं होती।

स्वामी जी – उत्पन्न नहीं होती। सभी वस्तुओं की अभिव्यक्ति होती है। क्या समझे?

साधक ८– कोई वस्तु उत्पन्न नहीं होती, उसकी अभिव्यक्ति होती है।

स्वामी जी – इसलिए यह सत्कार्यवाद है। आप क्या समझे?

साधक २– यह सत्कार्यवाद है।

स्वामी जी – सत्कार्यवाद में इस प्रकार की भाषा बोली जाती है कि घड़ा उत्पन्न नहीं हुआ, वृक्ष उत्पन्न नहीं हुए, शरीर उत्पन्न नहीं हुआ, अपितु पहले जो था उसकी अभिव्यक्ति हो गई। ऐसा सांख्यकार बोलता है। वस्तु कार्य रूप में तो नहीं थी। क्यों जी! क्या समझ में आया?

साधक ३– कारण रूप में थी।

स्वामी जी – कारण रूप वाले पदार्थ को, यह कहता है कि जो पहले ज्यों का त्यों विद्यमान था, वही दिख पड़ा है। क्या समझ में आया? क्यों? कहता है न!

साधक २– वस्तु इसी रूप में विद्यमान थी। अब दिख गई है।

स्वामी जी – वह वस्तु प्रकट हो गई। कोई नई वस्तु बनी हो, ऐसा कुछ भी नहीं है। कुछ समझ में आया?

इसके कहने का एक ढंग है। वह यह कहना चाहता है कि जो वस्तु घड़े या वृक्ष के रूप में सामने दिखाई दे रही है। उसका जितना आकार-प्रकार है। परमाणुओं के जो भी कुछ रूप आदि गुण हैं, इनमें से ऐसा कुछ भी नहीं, जो पहले नहीं था। वह वस्तु ऐसी कुछ भी नहीं है जिसका पहले सर्वथा अभाव था। क्या समझ में आया?

साधक ३– यह सब कुछ पहले कारण में विद्यमान था।

स्वामी जी – पहले सारी वस्तु विद्यमान थी, वही वृक्ष के रूप में आई।

साधक ३– अभिव्यक्त हुआ।

स्वामी जी – वह यह कहना चाहता है। अब यदि इसका तात्पर्य समझा जाए तो कोई दोष नहीं आएगा। परन्तु न्याय-वैशेषिक कहते हैं - वह जो घड़ा नहीं था, वह उत्पन्न हुआ है। पहले नहीं था। अब क्या समझ में आया? घड़ा पहले नहीं था। ठीक है!

अब हम उस ओर चलेंगे। यह जो सत्कार्यवाद कहता है कि यह वस्तुतत्त्व ज्यों का त्यों उभर आया और पुनः कहता है विनाश होगा तो वहाँ अभिप्राय लेना चाहिए कि यह अपने जिन कारणों से अभिव्यक्त हुआ था, उन्हीं में लीन हो जाएगा। इसी का नाम नाश है। उसमें से एक परमाणु भी नहीं घटेगा। क्या समझ में आया? ठीक है!

साधक ८– हाँ जी! नाश का अभिप्राय यह है कि अपने वर्त्तमान कार्य-रूप को छोड़कर कारण-रूप में लीन हो जाए।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अब आप जब शरीर आदि को नाश के रूप में देखेंगे तब नाश की परिभाषा के अनुसार आपको वह अपने कार्य रूप में दिखाई नहीं देगा। किन्तु उसका जो प्रलय का रूप है, वह दिखाई देगा। तब इसमें सन्देह नहीं रहेगा। इस प्रकार जब आप अच्छी तरह विचार करेंगे तब यह संशय नहीं रहेगा कि वर्त्तमान शरीरों को कैसे प्रलयवत् बनाएँ। अभ्यास करते-करते परिणाम सामने आएगा कि यह शरीर कार्य रूप है तथा जो प्रलय की स्थिति है, वह कारण रूप है। तो कार्य रूप को हम वर्त्तमान में काम में ला रहे हैं और जब यह कार्य रूप नहीं रहेगा तब प्रलय की स्थिति बन जाएगी।

जब हम प्रलयवत् अवस्था का सम्पादन करते हैं तब निश्चितरूपेण वह स्थिति उपलब्ध होती है कि यह सृष्टि वर्त्तमान में ऐसी है और उत्पत्ति से पूर्व ऐसी थी, आगे भी ऐसी अर्थात् कारण रूप होगी। दोनों ज्ञान निश्चित हो जाते हैं और वर्त्तमान को प्रलयवत् बनाने या बनाए रखने में कोई कठिनाई नहीं होती। अब विराम ॥

७७ आत्मनिरीक्षण

बाहर-भीतर एक : आषाढ़ अमावस्या २०६०-२९/७/०३

(बालक को रोकने वाला कौन है? उसको बता दो कि बालक आवाज न करे।)

अब आप अपना आत्मनिरीक्षण सुनाएँगे।

साधक ८– निद्रा और शरीर में गर्मी के कारण आज की दिनचर्या ठीक नहीं रही, स्वाध्याय भी नहीं किया।

स्वामी जी – वैसे वैद्य ने शरीर की गर्मी का कारण क्या बताया? गर्मी किस कारण से है, क्या रोग है, कुछ पता चला?

साधक ८– आँतों की दुर्बलता।

स्वामी जी – आँतों की दुर्बलता से गर्मी होती है, ऐसा बताया। अब आप सुनाएँगे।

साधक ७– दिन का सारा कार्यक्रम लगभग ठीक रहा।

स्वामी जी – आपको एक तो इस बात का ध्यान रखना है कि लोभ आदि किन्हीं कारणों से अथवा संस्कारों के अशुद्ध, अपवित्र होने से कोई ऐसा कार्य न करें जो कि अशुभ हो। कभी-कभी व्यक्ति ऐसा मान लेता है कि मैं अमुक कार्य करूँगा और किसी को इसका पता नहीं चलेगा। ऐसा उसका ज्ञान काम करने लगता है और वह बुरा कर्म उसको अच्छा दिखने लगता है, जैसे चोरी आदि।

इस विषय में प्रत्येक व्यक्ति को एक पक्ष में यह समझना चाहिए कि मन-वाणी-शरीर से होने वाला कोई भी कार्य ऐसा नहीं हो सकता जिसको ईश्वर न जाने, उसका फल न देवे। दूसरे पक्ष में यह भी निश्चय करना चाहिए कि मैं जो चोरी आदि बुरा कर्म करूँगा, उसका समाज के लोगों

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को पता न चले; ऐसा नहीं होगा।

साधक ८– समाज के लोगों को यदा-कदा पता लग ही जाता है।

स्वामी जी – व्यक्ति बुरे कार्य को प्रायः इसलिए कर लेता है कि वह समझता है इसको मैं इतनी निपुणता से करूँगा कि किसी को पता ही नहीं चलेगा। किन्तु वह इस ओर ध्यान नहीं देता कि पता चल जाने पर मुझे कितना भयंकर कष्ट होगा? एक ही बुरे काम के करने से समाज की दृष्टि में मैं आजीवन अविश्वास के योग्य रहूँगा अथवा समाज में विश्वास का उत्पन्न होना कठिन हो जाएगा। तो आप क्या ध्यान रखेंगे? दोहरा लो। बुरे कार्य के, अशुभ कार्य के न करने में क्या-क्या ध्यान रखेंगे?

साधक २– एक तो ऐसा कोई भी कार्य नहीं है जिसको ईश्वर न जान सके।

स्वामी जी – एक तो यह।

साधक २– और उसका फल नहीं मिलेगा।

स्वामी जी – यह बात भी जान लेने की है।

साधक २– दूसरा - यह भी नहीं होगा कि समाज को उसका पता न चले।

स्वामी जी – प्रायः चोरी आदि बहुत कम घटनाएँ ऐसी होती हैं जिनका पता किसी को न चलता हो। इसी के साथ-साथ जुड़ी हुई बात है कि ईश्वर तो सदा सब कुछ जानता ही है। इसलिए व्यक्ति यह सोचे कि यदि मैंने बुरा काम किया तो ईश्वर की ओर से उसका दण्ड तो मिलना ही है, थोड़ी देर के लिए इसको छोड़ भी दें, तो समाज को भी जैसे-तैसे पता चल जाता है और इस स्थिति में जो भयंकर कष्ट उठाने पड़ते हैं, असहयोग की बाधाएँ आती हैं, सन्तप्त होना पड़ता है, उससे भी तो बचा नहीं जा सकता। इसके साथ आजीवन किसी को मुझ पर विश्वास होना कठिन हो जाएगा। यदि व्यक्ति उस बुराई के करने से पहले यह मन बना ले तो बुराई को नहीं करेगा।

दूसरी बात ध्यान देने की है कि आप जहाँ अपने कमरों में रहते हैं, वहाँ आपको कोई देखने नहीं आता। आपके उठने-बैठने आदि व्यवहार को कोई नहीं देखता। आपके ऊपर कोई है, ऐसा भी नहीं दिख रहा। ऐसी स्थिति में जब व्यक्ति देखता है कि कोई निरीक्षण-परीक्षण, अवलोकन या व्यवस्था करने वाला नहीं है तब वह नियमों को भंग करने लगता है। आप अपना आत्मनिरीक्षण करो। क्या आप भी तो ऐसा नहीं करते?

बुद्धिमान् व्यक्ति यह देखता है कि मुझे देखने वाला कोई व्यक्ति है और वह मेरी प्रत्येक बात को देखेगा। उठते-बैठते, सोते-जागते, खाते-पीते, बात करते, सभी स्थितियों को देखेगा। इस प्रकार वह स्वयं को अकेला छोड़ता ही नहीं, तब तो बुराई से बच जाता है। यदि आप ऐसा करते हैं तब तो नियमों को भंग नहीं करेंगे, अन्यथा आप विविध प्रकार के नियमों को भंग कर सकते हैं।

जो व्यक्ति आध्यात्मिक स्तर को जानता है, योगी बनने के लिए मुझे व्यवहार में किन-किन नियमों का पालन करना है; इसको समझता है, वह अपने कर्त्तव्यों का सदैव पालन करता है। वह यह देखता है कि यदि मैं भूल करूँगा तो जिन व्यवस्थापक आदि महानुभावों ने मुझ पर विश्वास किया है उनका विश्वास मुझ पर से उठ जाएगा। अतः आप देखो कि छोटे-छोटे नियम जैसे कि यह माना जाता है, प्रसिद्ध बात है कि लेटकर मत पढ़ो आदि का भी पूरा ध्यान रखना है। अब आप बताओ कभी लेटकर तो नहीं पढ़ते हैं? अपना-अपना बताओ।

साधक ४– कभी-कभी पढ़ता हूँ।

स्वामी जी – तो उसको बुरा नहीं मानते इसलिए पढ़ते हैं या नियम बताया कि लेटकर न पढ़ो, उसका विरोध करना है अथवा अन्य किसी कारण से ऐसा करते हैं?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ४– कभी बैठकर पढ़ने में कटि-पीड़ा का अनुभव करता हूँ तब लेटकर पढ़ लेता हूँ।

स्वामी जी – अच्छा ! चलो ! यह एक हेतु बनेगा कि आपको कटि-पीड़ा सताती है। अधिक काल तक बैठकर नहीं पढ़ सकते। यहाँ रोग कारण बन गया। भयंकर रोग के कारण व्यक्ति को लेटे-लेटे खाना तक पड़ता है, ऐसे में उसको पढ़ना पड़े तो कोई बात नहीं, किन्तु साधारण स्थिति में या बिना रोग के लेटकर पढ़ते हैं तो वह ठीक नहीं है। बिना रोग वाले आप में से कोई है ?

साधक ७– कभी-कभी ऐसा कर लेते हैं जिससे नींद न आए।

स्वामी जी – हाँ !

साधक ७– लेट भी लिया, विश्राम भी कर लिया और पढ़ भी लिया।

स्वामी जी – नहीं। लेटे-लेटे पढ़ना अच्छा नहीं माना जाता तो हम अपना जीवन वैसा क्यों बनाएँ ? बुरा व्यवहार क्यों करें ? अधिकारी व्यक्ति जब कुछ कह रहा है तो उस विषय में इतना ध्यान तो देना चाहिए कि मेरा उस पर क्या प्रभाव पड़ेगा ? वह कहता है कि लेटकर मत पढ़ो और आप वैसा नहीं करते हैं तो जब उसको पता चलेगा तब यही तो कहेगा कि आप नियमों को भंग करते चले आ रहे हैं।

इसलिए जो प्रबन्धक या अध्यापक हों उनके आदेशों का पालन करना चाहिए। उनको भंग नहीं होने देना चाहिए। यदि भंग हो जाए तब उसका दण्ड लेना चाहिए। यदि आप ऐसा करते हैं तब तो आपकी स्थिति अच्छी बनेगी, अन्यथा आपकी स्थिति अच्छी नहीं बन पाएगी। इस गम्भीर विद्या को सीखने वाला व्यक्ति, समाधि-प्राप्ति की स्थिति को पहुँचने वाला, पकड़ने वाला व्यक्ति कितना श्रद्धालु होता है, कितना सावधान होता है, कितना अनुशासित होता है; आप उसकी कल्पना नहीं कर पा रहे हैं। जब आप मन-वाणी-शरीर से प्रयोग करेंगे तब पता चलेगा कि स्वयं की दृष्टि में, ईश्वर की दृष्टि में, आचार्य-अध्यापक की दृष्टि में और समाज की दृष्टि में आप कितना पालन करते हैं; इसको देखने का प्रयास करें।

यदि और कोई त्रुटियाँ आपसे होती हों, जैसे लेटकर पढ़ने की है, तो उनको भी बताएँ। जहाँ कमरों में आप रहते हैं वहाँ त्रुटियाँ दिखती हैं या नहीं ? जिसको अनुभव होता हो वह बताए। व्यक्ति त्रुटि कर रहा है किन्तु स्वयं या किसी अन्य ने ध्यान नहीं दिया तो उसको पता नहीं चलता और वह करता रहता है। जैसे कि आप देखेंगे एक नियम बनाया कि कम से कम एक घण्टा प्रातःकाल और एक घण्टा सायंकाल योगाभ्यास में लगाना है। अब यह व्यक्ति कभी लगाता है, कभी कम लगाता है और कभी छोड़ ही देता है। ऐसी स्थिति तो किसी की नहीं है ?

साधक ३– मेरा तो कभी कम नहीं होता है। एक घण्टे से अधिक हो जाता है।

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ७– कभी कम हो जाता है।

स्वामी जी – यह तो हो सकता है आपके पास दो घण्टे हैं। उसमें प्रातःकाल पौन घण्टा लगा पाए तो सायंकाल उसकी पूर्ति में सवा घण्टे लगा दें। तब इसकी पूर्ति मानी जाएगी।

साधक ७– यदि दूसरा साथी नहीं है तो क्या कमरे में योगासन कर सकते हैं ?

स्वामी जी – हाँ ! किन्तु जब दूसरा साथी हो तब क्या करेंगे ? तब एक विकल्प है, बाहर कर सकते हैं। अब तो प्लास्टिक लगा दिया। इसलिए कोई वर्षा आदि न हो तब तो बाहर ही करें और जब आप अकेले हों और बाहर कुछ बाधा भी हो तो उस समय कर सकते हैं परन्तु कमरे में खिड़की खुली हो तब करें।

CC-0. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो-जो व्यवहार आप करते हैं उसके विषय में अपने गुरु-आचार्यों से पूछ लें कि मैं ऐसा करूँ या नहीं? जैसे आपने व्यायाम का पूछा। बिना पूछे यदि आपके कार्य होते रहेंगे तो बहुत-सी भूलें होती रहेंगी। पश्चात् आपसे कहा जाएगा कि आप पहले इस सम्बन्ध में पूछ लेते तो ठीक रहता। इसमें एक और बात का ध्यान रखना है कि पूछने के उपरान्त भी आपके मन में यह रहे कि मुझे देखने वाले व्यक्ति की आवश्यकता नहीं है। सदा आपकी त्रुटि को कोई पकड़ने वाला, बताने वाला हो, कोई आपके पीछे लगा रहे; ऐसा नहीं होना चाहिए। बिना किसी ऊपरी प्रभाव के अपनी ओर से नियमों का पालन करें; ऐसी स्थिति रहनी चाहिए। बाधित होकर नियमों का पालन करना, यह निम्न स्थिति है और श्रद्धापूर्वक, विश्वासपूर्वक स्वयं पालन करना, यह उत्तम स्थिति है।

जब व्यक्ति श्रद्धापूर्वक, प्रेमपूर्वक, बिना किसी के दबाव या डर के, पूरा बल लगाता है तब उसकी योग के क्षेत्र में प्रगति हो सकती है, अधिक विकास कर सकता है। यद्यपि दबाव से, डर से मानने वाले का भी सुधार तो होता है। डर से ही हो जाए, हम उसको मना नहीं कर रहे हैं, वह तो होता ही है। परन्तु नीचे स्तर वाला ऐसी अपेक्षा रखता है। यह निम्न स्तर की सोच है। हमको ऊँचे स्तर वाले व्यक्ति की भाँति सोचना-विचारना चाहिए। ऊँचे स्तर वाला व्यक्ति जो है वह ऐसे सोचता है कि हमको कोई देखे या न देखे, हमें तो करना है।

आपको स्मरण हो, हमारे गुरुकुल वाले प्रयोग किस प्रकार के थे? बारह बजते ही मेरे कार्य का समय आरम्भ हो जाता था। उस समय कोई भी व्यक्ति मेरे पास, सीधा मेरे कार्य को देखने वाला नहीं होता था। तब मैं यह सोचता था कि अब १२ बज गए और मुझे खेत आदि में काम करने चले जाना चाहिए। यद्यपि मैं चाहता तो पांच मिनट और पढ़-लिख लेता, कोई देखने वाला नहीं था। परन्तु मैंने ऐसा कभी सोचा तक नहीं। यह सोचने का ढंग अशुद्ध है, हानिकारक है। व्यक्ति के जीवन को नीचे ले जाता है। इसलिए मैं क्या करता था? मान लो, कोई पंक्ति चल रही है और उसमें मैं 'भवति' लिख रहा हूँ। अब 'भ' और 'व' लिख दिया और 'ति' लिखना शेष है और घड़ी की सुई बारह पर पहुँच गई तो 'ति' को वैसे ही बिना लिखे छोड़कर काम पर चला जाता था। आ गया समझ में? हाँ जी! अब आप बताएँगे -

साधक २- उपासना का हमारा समय साढ़े पांच से साढ़े छः लिखा हुआ है।

स्वामी जी - हाँ!

साधक २- उसमें सायं काल मुझे व्यायाम में कुछ देर होती है।

स्वामी जी - लगभग कितनी?

साधक २- लगभग पांच/पैंतीस या चालीस पर बैठता हूँ।

स्वामी जी - नियम है साढ़े पांच का और आप कितने मिनट और लगाते हैं?

साधक २- पांच-दस मिनट का अन्तर रहता है।

स्वामी जी - आपके कारण सायंकाल भोजन आदि में कोई बाधा नहीं पड़ती?

साधक २- नहीं।

स्वामी जी - तब आप उतनी देर तक बिना किसी को रुकावट पहुँचाते हुए बैठ सकते हैं।

साधक २- भोजन की घण्टी पौने सात बजे लगती है।

स्वामी जी - अर्थात् आपके जाने, बैठने आदि व्यवहार से किसी को बाधा न हो, प्रतीक्षा न करनी पड़े, तब तो घण्टी लगने के उपरान्त कुछ देर तक उपासना में बैठ सकते हैं।

साधक ७- मुझे भी यज्ञ के कारण समय चाहिए।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – क्या ?

साधक ७– सायंकाल मैं यज्ञ करता हूँ तो उसमें देर हो जाती है।

स्वामी जी – उसमें कितना अधिक समय लगता है? वह तो आप सवा पांच पूरा कर देते हैं और साढ़े पांच पर ध्यान में बैठते हैं। ठीक है न! तो क्या पूछना था?

साधक ७– कार्य से आता हूँ साढ़े चार तक।

स्वामी जी – हाँ! और वह चार से आरम्भ है और कब तक चलता है?

साधक ८– चार से साढ़े चार बजे तक पूरा हो जाता है। प्रायः चार से साढ़े चार तक।

स्वामी जी – अच्छा! ठीक है! तो आपने क्या पूछना था?

साधक ७– हमें सायंकाल की संध्या-वंदन में कुछ समय चाहिए।

स्वामी जी – हूँ।

साधक ७– देर से बैठा जाता है।

स्वामी जी – कितना लगभग?

साधक ७– पन्द्रह मिनट।

स्वामी जी – उसमें आप पन्द्रह मिनट विलम्ब से बैठ पाते हैं और आप यज्ञ करते हैं, इसलिए या क्या?

साधक ७– हाँ! उसमें समय लग जाता है।

स्वामी जी – हाँ! उसमें मान लो आपका पन्द्रह मिनट का अधिक बढ़ जाता है। कारण है कि आप यज्ञ करते हैं।

साधक ७– हाँ जी!

स्वामी जी – हमारा जो दैनिक सार्वजनिक कार्य है, वह तो करना ही है। जो कुछ थोड़ा बहुत करते हैं, उसमें तो कमी नहीं करनी है। पुनरपि आपको बाधा है तो उपासना में पन्द्रह मिनट विलम्ब से बैठ सकते हैं परन्तु ध्यान देना है कि आपके देर तक बैठने से पाकशाला में आने-जाने में किसी प्रकार की कोई खटपट या द्वार आदि के खुलने से कोई ध्वनि या अन्य बाधाएँ नहीं आनी चाहिए।

अच्छा! आपके मन में कभी ऐसी बात आती है कि देखो! इनको तो बड़ी-बड़ी सुविधाएँ दी जा रही हैं, हमको कुछ नहीं। कभी ऐसे विचार मन में उठते हैं या नहीं? अपना-अपना बताओ! स्मरण रखें, यहाँ तो खुले रूप से बोलना होता है। योगविद्या, आध्यात्मिक-विज्ञान, विवेक-वैराग्य वाला कोई व्यक्ति हो या ऐसा बनना चाहता हो, वह यह नहीं देखता कि संसार मुझे क्या कहेगा, क्या होगा? वह तो जो अन्दर है वही बाहर बोलता है। जब आप भी ऐसा करेंगे तब आपमें भी अन्दर-बाहर एकता आ जाएगी। यदि आपने बाहर-भीतर की बात के बताने में थोड़ा भी भय-संकोच किया तो स्मरण रखना कि विवेक-वैराग्य होगा, समाधि मिलेगी; इसकी आशा नहीं है।

आपने सुना था कि व्यक्ति जिस समय विवेक-वैराग्य की स्थिति को प्राप्त करना चाहता है उस समय वह परीक्षापूर्वक, यहाँ हानि है या लाभ है, आदि बातों पर विशेष ध्यान नहीं देता। यदि वह ध्यान देने लगे तो विवेक-वैराग्य में कमी आ जाएगी। यह समस्या उसके सामने खड़ी रहती है।

जब विवेक-वैराग्य की अच्छी अवस्था बन जाती है। ऊँची अवस्था बन जाती है। उसको सोचने-बताने का रंग-ढंग आ जाता है तब वह देखता है कि इस वाक्य के बोलने में मुझे तो कोई बाधा पड़ने वाली नहीं है परन्तु यहाँ यह बात कहनी अच्छी नहीं रहेगी, सुनने वाला इसका लाभ नहीं

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उठा पाएगा। जब यह स्थिति आ जाती है तब निर्वाचन करने की बात आती है। नई अवस्था का व्यक्ति यदि निर्वाचन करने की बात सोचता है तो खुले मन से जो बाहर-भीतर एक होकर व्यवहार करने की स्थिति है, जिसमें किसी प्रकार का कोई भय नहीं रहता; वे स्थितियाँ नहीं आ पातीं। इसलिए वह गवेषणा के काल में इन बातों को सोचता ही नहीं है।

जैसे कि कभी-कभी ऐसी स्थिति आ जाती है। बीच-बीच में उसको कोई पूछ लेता है कि भाई! आप तो समाधि का अभ्यास करते हो, आप बहुत अच्छे माने जाते हो, आपको लोग ब्रह्मचारी या संयमी कहते हैं, आप विद्वान् हैं, आप बहुत योग्य हैं इत्यादि। पुनः वह पूछ लेता है कि क्या आप आज से पन्द्रह वर्ष पहले कभी चोरी कर लेते थे। कोई भी हो छोटी या बड़ी चोरी कर लेते थे? कल्पना कीजिए, आज वह व्यक्ति वैराग्य की ओर चल रहा है। वैराग्य की खोज कर रहा है तो कहेगा - हाँ! निश्चितरूपेण मैं चोरी करता था। उसको कोई डर नहीं लगेगा, कोई संकोच नहीं होगा। वह यह नहीं सोचेगा कि हो सकता है यह व्यक्ति मेरी बातों को फैला दे। प्रायः एक यह जो डर होता है कि मैंने बता दिया तो यह सर्वत्र फैला देगा कि मैं पहले चोरी करता था। मान लो, इस भय से वह न बताए तब क्या होगा? तब उसकी विवेक-वैराग्य की स्थिति वहीं रुक जाएगी।

बात समझ में आनी चाहिए। सुनने मात्र से कोई बात क्रियारूप नहीं ले सकती। इसलिए पहले समझने में ही व्यक्ति को बल लगाना पड़ता है। ऐसा भी होता है यदि बात पूरी समझ में नहीं आए तब वहाँ वह कई बार उलटा अर्थ भी ले लेता है। हाँ जी!

आचार्य सत्यजित् जी – पहले मैंने ऐसा सुना था कि अयोग्य व्यक्ति को नहीं बताना चाहिए।

स्वामी जी – क्या?

आचार्य सत्यजित् जी – अयोग्य व्यक्ति को पूछे जाने पर भी नहीं बताना चाहिए, चुप रहना चाहिए।

स्वामी जी – हाँ! जब उसकी स्थिति ऊँची हो जाती है तब ऐसा कर सकते हैं। पहली अवस्था अर्थात् जब विवेक-वैराग्य की आरम्भिक स्थिति है। अभी अच्छी स्थिति नहीं बन पाई है तब तक ऐसा नहीं करना चाहिए कि काट-छाँट करके बताए। 'यह ठीक है, मेरी बात का लाभ उठाएगा' और 'यह ठीक नहीं है, यह लाभ नहीं उठाएगा'; नए व्यक्ति को इस प्रकार का विचार, विवेचन उस समय नहीं करना चाहिए। अभ्यास करते-करते उसी व्यक्ति की जब विवेक-वैराग्य की अवस्था पक्की हो जाए और उन बातों को बताने में, वाक्य रचना करने में, उतार-चढ़ाव में या आन्तरिक विचारों में कोई बाधा नहीं पड़े और वह देखे कि सामने वाले को बताने से कोई लाभ नहीं होगा, अपितु हानि हो जाएगी तब वहाँ चुप रह जाता है।

पहले वाला व्यक्ति प्रायः ऐसा नहीं करता क्योंकि दोनों में अन्तर है? पहले वाला इसलिए काट-छाँट और विवेचन करता है कि इसके सामने बताऊँगा तो यह औरों में फैला देगा औरों को मेरा दोष दिखाएगा। इस प्रकार वह डरता, घबराता, संकोच करता है। इस कारण से व्यक्ति में विवेक-वैराग्य का विकास नहीं हो पाता, रुकावट आती है।

विशेष घटनाओं को छोड़ दो, जो बहुत भयंकर होती हैं। उस समय तो इस पहले वाले को भी सोचना पड़ सकता है। यह उसके लिए अपवाद है। विशेष घटनाएँ जो अति भयंकर उसने देख लीं और अच्छी तरह पता भी चल गया कि इस बात को बता देने पर विनाश होगा। समझ में आ गया? विशेष घटनाओं पर उसको भी रुकना पड़ेगा। सामान्य स्तर पर जितने प्रयोग होते रहते हैं, जिनमें भयंकर बात न हो, उनमें वह सब में खुले मन से चलता ही रहता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब मैंने जो प्रयोग किए या मैं जो प्रयोग करता था, उसको बता रहा हूँ। मैं अपना इसलिए कह रहा हूँ क्योंकि मेरे प्रयोग हुए और उनमें मुझे क्या सूझता था, मैं क्या बोलता था, क्या करता था, मुझे क्या अच्छा लगता था; आप सुनकर उससे लाभ ले सकें। यह पृथक् बात है कि दूसरे के प्रयोग मुझसे भिन्न भी हो सकते हैं।

कोई भी व्यक्ति मेरे पूर्व जीवन की घटनाओं के विषय में मुझसे पूछ लेता था कि तब आप पहले झूठ बोलते थे, चोरी करते थे या अन्य कोई भी बात, तो मैं बिना संकोच के, बिना डर के और बिना किसी बाधा के, जैसा अन्दर होता था वैसा का वैसा उसको सुना देता था। कोई डर नहीं, कोई संकोच नहीं। मुझे नहीं लगता था कि यह मेरा दुष्प्रचार लोक में करेगा। ध्यान देना, अवस्था विशेष में जाकर व्यक्ति कुछ भी क्यों नहीं छिपाना चाहता है; इसको बताकर मैं आपको यह दिखाना चाहता हूँ कि योग की ऊँची अवस्था प्राप्त होने पर व्यक्ति की मानसिकता विशिष्ट हो जाती है। उसको नाम-रूप दिखाई नहीं देते हैं। नाम देवदत्त है और नामी रूप शरीर है; वहाँ ये दोनों उड़ा दिए जाते हैं। तब मान-अपमान की बातें या कोई मुझे क्या कहेगा आदि प्रभाव नहीं रहते। यदि वह बताने से रुक जाता है तब ये स्थितियाँ नहीं रहेंगी और लौकिक स्थितियाँ पुनः वापस आ जाएँगी। अब विराम ॥

७८ यज्ञीयोपदेश

उपासनाविधि : श्रवण शु. १/२०६०-३०/७/०३

योगाभ्यास करने वाले व्यक्ति को उपासना की सज्जा के रूप में प्रारम्भ में ईश्वर का स्वरूप, आत्मा का स्वरूप और प्रकृति-विकृति = कारण-कार्य रूप सृष्टि का स्वरूप कैसा है; इन तीनों विषयों का मन्थन, चिन्तन, वर्णन करते रहना चाहिए। जब व्यक्ति शब्द-प्रमाण से जानकर इन तीनों के स्वरूप को बार-बार विचारता है, मन्थन करता रहता है और आवृत्ति करता रहता है तब परिणाम स्वरूप ईश्वर के विषय में, जीवात्मा के विषय में और प्रकृति-विकृति के विषय में जो भ्रान्ति और संशय होते हैं वे निर्बल होते-होते दूर हो जाते हैं। क्या समझ में आया? जब व्यक्ति प्रातःकाल, सायंकाल उपासना में इन तीनों के स्वरूप का...।

साधक ३ – विचारता है।

स्वामी जी – विचार करता है अर्थात् ईश्वर, जीवात्मा और प्रकृति तथा उससे बने हुए संसार का स्वरूप कैसा है; इनको बार-बार दोहराता है। बार-बार उनका लक्षण करता है। बार-बार उनके गुण-कर्म-स्वभाव को सोचता-विचारता है। यदि व्यक्ति स्वयं इनके विषय में कम ज्ञान रखता है परन्तु शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण पर विश्वास करके इनको विचारता रहता है तब यह परिणाम आता है कि इन तीनों के विषय में जो संशय उत्पन्न होता है वह कम होता चला जाता है। इनके विषय में जो भ्रान्ति होती है वह कम होती चली जाती है। यदि व्यक्ति ऐसा नहीं करता है तब इनके विषय में विपरीत जानता है, विपरीत पुस्तक पढ़ता है, विपरीत उपदेश सुनता है और उसी की आवृत्ति करता है तब मिथ्या-ज्ञान और संशय बढ़ते चले जाते हैं। अब

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्या अन्तर समझ में आया? दोहराओ।

साधक ८– जब ईश्वर-जीव-प्रकृति के सम्बन्ध में, जो इनका स्वरूप नहीं है, वैसा सुनता रहता है...।

स्वामी जी – वैसा पढ़ता रहता है।

साधक ८– तो उससे उसके अज्ञान की वृद्धि होती रहती है।

स्वामी जी – वैदिक परम्परा में इनका जो यथार्थ स्वरूप है, वही बताया जाता है, जब कि दूसरे मतों में ऐसा नहीं होता है। परिणाम यह निकल रहा है पूरे देश और विदेश में लोगों को भ्रान्तियाँ और संशय उत्पन्न होते जा रहे हैं। अन्य मत वाले न तो स्वयं जानते हैं, न किसी को ठीक मार्ग बता पा रहे हैं।

जैसे कि भौतिक वैज्ञानिकों को ले लो। इनको छोड़ दो जो इन विषयों को पढ़ते-पढ़ाते, सुनते-सुनाते रहते हैं जैसे अपने वर्मा जी सामने बैठे हैं। शेष भौतिक वैज्ञानिक भी क्या करते हैं? वे ईश्वर-जीव-प्रकृति के विषय में अध्ययन करते ही नहीं हैं या उलटा अध्ययन करते हैं। ईश्वर के विषय में उनकी मान्यता उलटी बनी हुई है। उलटा सुनते हैं, उलटा पढ़ते-पढ़ाते हैं, उलटा ही सोचते हैं तो इन वैज्ञानिकों के मन में भी भ्रान्तियाँ और सन्देह उत्पन्न हो गए। जिन बालक-बालिकाओं को जैसे आजकल के पाठ्यक्रम के अनुसार यह पढ़ाया जाता है और भौतिक वैज्ञानिक भी यही अध्ययन करते-कराते होंगे कि इस सृष्टि का विकास अपने-आप हुआ है। अपने-आप विकसित होते-होते सृष्टि इस रूप में आ गई। जब यही पढ़ाते हैं, यही सुनते हैं तब उनको भ्रान्तियाँ और सन्देह होंगे ही, हटेंगे नहीं, आगे बढ़ते जाते हैं।

अब जो इनको श्रद्धापूर्वक विशुद्ध रूप में सुनते-सुनाते, पढ़ते-पढ़ाते हैं। यदि श्रद्धा है तब की बात है। यदि श्रद्धा ही नहीं है तो दोहराते रहो, पढ़ते रहो कोई अधिक प्रभाव नहीं पड़ेगा। इसलिए श्रद्धापूर्वक विशुद्ध रूप में सुनने-सुनाने, पढ़ने-पढ़ाने से उनके मन में ईश्वर-जीव-प्रकृति के विषय में जो संशय है, जो भ्रान्ति उत्पन्न होती है या मिथ्या ज्ञान उत्पन्न होता है वह कम होता चला जाता है। कालान्तर में विशेष मन्थन, अध्ययन-प्रयोग करने पर वे पूर्णतः समाप्त हो जाते हैं। पुनः संशय उठना बन्द हो जाता है।

आप यह न मानें कि ईश्वर का स्वरूप ऐसा है, आत्मा का स्वरूप ऐसा हैं, प्रकृति-सत्त्व-रज-तम स्वभाव वाली ऐसी है, हम दोहराते रहें तो कुछ नहीं होगा। ऐसे करने से क्या उन्नति हो जाती हैं? ऐसे करने से कैसे व्यक्ति संशय-रहित अवस्था में चला जाता है? नहीं करने वाले व्यक्ति को क्या हानि होती है? इनके विषय में न जानने वाले को क्या हानि होती है? मन्थन न करने वाला उन्नत क्यों नहीं हो सकता, आदि संशय आप न करें। वस्तुतः जब तक आप दोनों पक्षों का अध्ययन नहीं करेंगे तब तक आपकी विशेष स्थिति नहीं बन पाएगी। विशेष अवस्था में अपने-आप को नहीं ले जा सकेंगे।

तो जैसे कि मैंने सुनाया, संदिग्ध मानकर कभी योग के मार्ग पर न चलना। एक मापदण्ड जो आपको बताया कि वर्षों तक व्यक्ति पढ़ने-पढ़ाने, लिखने-लिखाने, सुनने-सुनाने पर इस विषय में प्रयत्न करता हुआ भ्रान्ति रहित हो पाता है। इसके विपरीत जो इस दृष्टि से न तो स्वयं पढ़ता है कि इसको पढ़कर ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करूँ, न दूसरे को पढ़ाता है कि इसको ज्ञान-विज्ञान प्राप्त करवाऊँ, न किसी का उपदेश सुनता, न किसी को सुनाता है, केवल यह मानता है जो कुछ ज्ञान-विज्ञान होना था वह मुझे हो गया है। मैं जान गया हूँ। ऐसी जो धारणा बनती है वह मिथ्या है, झूठ है। आप इस बाधा को दूर नहीं करेंगे तो जहाँ जाना चाहते हैं वहाँ नहीं जा सकेंगे।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसलिए सुने-सुनाए, पढ़े-पढ़ाए विषय को सामने रखिए और पुनः अपने व्यवहार को देखिए। यदि आपका मन-वाणी-शरीर इस ज्ञान के अनुरूप चल रहा है तो समझना कि उस विषय में आप जानते हैं। उतनी ही विद्या आपको आ गई है। किन्तु यहीं पर एक और बात ध्यान देने की है कि विद्या आ गई, यह एक भाग पूर्ण हुआ। इसका दूसरा भाग है - इस विषय की आवृत्ति करना, इसको सुरक्षित रखना। ऐसा न करने पर यह भ्रान्ति उत्पन्न हो जाएगी कि विद्या एक बार आ गई तो पुनः उसकी रक्षा करने की और क्या आवश्यकता है? इसको दोहराने, बनाए रखने की क्या आवश्यकता है? ऐसी भ्रान्ति भी इस दूसरे क्षेत्र में हो जाती है। आपको क्या समझ में आया? दोनों बातें समझ में आईं या नहीं?

साधक ३ – मन-वाणी-शरीर यदि पढ़े-पढ़ाए के अनुसार हैं तब तो ज्ञान ठीक है।

स्वामी जी – तब जानना चाहिए कि यह विद्या मुझे आ गई। आगे क्या बात कही?

साधक ३ – एक बार उपलब्धि होने के पश्चात् उसको छोड़ देना उचित नहीं है। उसको बार-बार दोहराते रहना चाहिए।

स्वामी जी – यदि आप उसको दोहराएँगे नहीं, सुरक्षित नहीं रखेंगे तब उसके स्थान पर पुनः भ्रान्ति उत्पन्न हो जाएगी। मिथ्या ज्ञान उत्पन्न हो जाएगा। वह मिथ्या ज्ञान उत्पन्न न हो, उभार में न आए; इसके लिए जब तक प्रयत्न नहीं करेंगे तब तक तमोगुण आदि से उत्पन्न होने वाला वह मिथ्या ज्ञान होगा ही। जैसे कि हम नित्य मानते-सुनते हैं ही कि हम ईश्वर के अन्दर हैं और उसके साथ आबद्ध रहते हैं उपासना के रूप में, तो हमको सतत ज्ञान मिलता रहता है और अज्ञान नष्ट होता रहता है। किन्तु जैसे ही ईश्वर को छोड़ते हैं वैसे ही प्राकृतिक पदार्थों के साथ आबद्ध हो जाते हैं और तत्काल अज्ञान उत्पन्न हो जाता है तथा ज्ञान हट जाता है। यह स्थिति बराबर बनी रहेगी। जिस क्षण में यह घटना घटेगी तभी यह परिणाम होगा।

अब एक उदाहरण ले लो। एक व्यक्ति असम्प्रज्ञात समाधि की अवस्था को प्राप्त कर चुका और उसको अनुभूति होने लगी कि मैं ऐसा हूँ, ईश्वर ऐसा है, प्रकृति ऐसी है; यह ज्ञान-विज्ञान उसका ठीक काम करने लग गया। आप मानकर चलिए यदि अब उस व्यक्ति ने ईश्वर की उपासना छोड़ दी, समाधि तोड़ दी। अब क्या होगा? वहाँ से हटते ही उसी जीवात्मा के अन्दर मिथ्या ज्ञान आ जाएगा, संशय उत्पन्न हो जाएगा। काम-क्रोध, लोभ-मोह आक्रमण करने लगेंगे। यद्यपि वे सूक्ष्म रूप में होंगे। वहाँ सूक्ष्म धाराएँ चलेंगी। एकदैव पूरी लौकिक स्थिति तो नहीं होगी किन्तु शनैः शनैः स्थिति निर्बल पड़ती जाएगी और क्लेश, अविद्या भी बढ़ते चले जाएँगे। अभिप्राय यह है कि ज्ञान-विज्ञान यह कहता है कि स्थिति को बनाओ और दिनभर बनाए रखो। रात्रि में उसको छोड़ना पड़ेगा, नींद लेनी पड़ेगी, वहाँ नहीं रहेगी।

अब हम मन्त्र का प्रयोग करेंगे।

तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः ॥ यजु.४०/५।

जैसा कि साधक ने विचार किया ईश्वर कैसा है? आर्य समाज के पहले-दूसरे नियम में, पुनः वेदों में, योगदर्शन में वर्णित को लिया। वहाँ से उसने समझा और जाना। साधक प्रयोग करता है कि हे ईश्वर! आपका स्वरूप जो वेद में आपने बताया, उपदेश दिया; वह ऐसा है। **तदेजति** का अर्थ करता है - हे ईश्वर! आप सारे संसार को चलाते हैं, इसको गति देते हैं, उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय करते हैं। **तन्नैजति** हे ईश्वर! आप स्वयं कभी नहीं चलते, स्थानान्तरित नहीं होते। एक स्थान से दूसरे स्थान पर नहीं जाते। **तद्दूरे** हे ईश्वर! जब तक जीवात्मा या कोई व्यक्ति अविद्या, अधर्म,

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

छल-कपट से युक्त होता रहेगा, उसको आप प्राप्त नहीं होते। **तदु अन्तिके** जो व्यक्ति परिश्रम कर शुद्ध ज्ञान-कर्म-उपासना करता है वह विद्वान् हो जाता है, निष्काम कर्मी बन जाता है। आपकी आज्ञा का पालन करता है, आप उसको शीघ्र प्राप्त हो जाते हैं। **तदन्तरस्य सर्वस्य** हे ईश्वर! जीवात्मा, प्रकृति, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि आदि अन्दर से अन्दर जो पदार्थ हैं उनके अन्दर आप विद्यमान हैं। **तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः** हे ईश्वर! यह जो सृष्टि है इससे बाहर जहाँ सृष्टि नहीं हैं वहाँ पर भी आप विद्यमान हैं। साधक यह प्रयोग बिना किसी धुन के करता है और यदि मन्त्र बोल के करना हो तो **तदेजति तन्नैजति.....।** ऐसे वह पाठ और अर्थ करता है, जैसे मैंने किया।

इस अवस्था में साधक-साधिका को क्या करना होगा? मन्त्र को बोलना, पाठ करना और उसका अर्थ भी करना और मै ईश्वर के पास विद्यमान हूँ, मेरे पास ईश्वर विद्यमान हैं; ऐसे सम्बद्ध होकर स्वयं जहाँ उपस्थित है वहीं ईश्वर को मानकर सम्बोधित करता है - **तदेजति** हे ईश्वर! आप सारे संसार को चलाते हैं, संचालित करते हैं।

अब हम धुन के रूप में प्रयोग करेंगे। अर्थों को लेते हुए, ईश्वर को सम्बोधित करते हुए आप अपनी स्थिति बनाएँगे और उसमें क्या-क्या बाधाएँ आती हैं, उनको पकड़कर रोकते रहेंगे। हमारी धुन इधर-उधर हो सकती है, मुख्य रूप से अर्थ पर बल देना चाहिए।

तदेजति तन्नैजति.....।

अब आप रुकेंगे या तो साथ-साथ अर्थ करते जाओ और ऐसे गाते चले जाओ अथवा गाकर रुक जाओ और पुनः उसका अर्थ करो।

अब आप इसको मानसिक रूप में बोलकर देखिए। मन में प्रयोग - **तदेजति तन्नैजति....।**

प्रयोग आरम्भ.....समय लगभग ३ मिनट।

अब आप रुकेंगे और दूसरा प्रयोग सरल भाषा में करेंगे। उस सरल भाषा में कोई भी व्यक्ति उच्चकोटि का विद्वान् हो, योगाभ्यासी हो, सामान्य व्यक्ति हो थोड़ा-सा जानता हो, सभी प्रयोग करेंगे तो उपलब्धि-प्राप्ति होगी। हम आर्य समाज के दूसरे नियम को लेकर प्रयोग करते हैं। एक धुन के रूप में प्रयोग करेंगे और प्रयास करेंगे कि हम ईश्वर के समक्ष निवेदन कर रहे हैं। हम ईश्वर के पास उपस्थित हैं। शब्द-प्रमाण के आधार पर जहाँ आत्मा हम हैं , वहीं पर ईश्वर विद्यमान है और बाहर भी है। अब प्रयोग - पाठ करना, अर्थ का विचार करना और ईश्वर-समर्पित रहना। इन बातों पर ध्यान देंगे।

गायन - ओऽऽऽम् सच्चिदानन्द। पुनः इसी का प्रयोग - ओऽऽऽम् सच्चिदानन्द।

अब अगले शब्दों को लेंगे - ओऽऽऽम् निराकार। ओऽऽऽम् सर्वशक्तिमान्। ओऽऽऽम् न्यायकारी। ओऽऽऽम् दयालु। ओऽऽऽम् अजन्मा। ओऽऽऽम् अनन्त। ओऽऽऽम् निर्विकार। ओऽऽऽम् अनादि। ओऽऽऽम् अनुपम। ओऽऽऽम् सर्वाधार। ओऽऽऽम् सर्वेश्वर। ओऽऽऽम् सर्वव्यापक। ओऽऽऽम् सर्वान्तर्यामी। ओऽऽऽम् अजर। ओऽऽऽम् अमर। ओऽऽऽम् अभय। ओऽऽऽम् नित्य। ओऽऽऽम् पवित्र। ओऽऽऽम् सृष्टिकर्त्ता।

अब आप रुकेंगे। इस काल में या तो साथ-साथ अर्थ करो अथवा जिस शब्द को आपने बोला, रुको और उसका अर्थ करो। जैसे आप बोलेंगे नहीं, समझेंगे। ओऽऽऽम् सर्वाधारः। पाठ हो गया। हे ईश्वर! आप सर्वरक्षक हैं। यह ओम् का अर्थ हमने कर लिया। सर्वाधार आप पूरे संसार के आधार हैं। प्रत्येक शब्द को या तो बोलना और साथ-साथ अर्थ करना अथवा रुको और अर्थ करो। आप में से कोई कभी इसका प्रयोग करते हैं?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– उपासना काल में करते हैं।

स्वामी जी – उपासना काल में जब करते हैं तो क्या यह स्थिति बन जाती है या बाधा पड़ती है?

साधक ३– अनेक बार बन जाती है और कभी वृत्तियाँ उठाता हूँ, पुनः रोक देता हूँ।

साधक १– प्रायः ईश्वर के एक या दो गुण को लेकर प्रयोग करते हैं, पूरे का नहीं।

स्वामी जी – जितना आप कर सकते हैं उतना करें। अध्ययन, मन्थन, प्रयोग करते-करते आप एक ऐसी स्थिति में चले जाएँगे जहाँ आपको स्पष्ट दिखाई देगा कि मैं जीवात्मा इन सबका संचालन करता हूँ। मन को चलाना, स्मृति आदि वृत्तियों को लाने का कार्य करता हूँ। मैं जिस वृत्ति को चलाना चाहूँगा, उसे चलाऊँगा और जिसे रोकना चाहूँगा, उसे रोक दूँगा; ऐसी स्थिति आ जाएगी। परन्तु थोड़े परिश्रम, ज्ञान-विज्ञान, तप और वैराग्य अर्थात् लौकिक जीवन को छोड़े बिना, ये स्थितियाँ नहीं आएँगी। अब विराम ॥

७१ क्रियात्मक योगाभ्यास

उपाय : श्रवण शु. १/२०६०-३०/७/०३

अब हम उदु त्यं जातवेदसं .....इस वेद-मन्त्र का पाठ ध्यान पूर्वक करेंगे –

ओम् उदुत्त्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ यजु. ३३/३१। पंच महा.।

अब आप मन्त्र के एक-एक शब्द का अर्थ सुनाने का प्रयत्न करेंगे –

साधक ७– पूरा स्पष्ट नहीं है।

स्वामी जी – यह तो परीक्षा के लिए पूछा जा रहा है। आपको याद होना चाहिए। हम जो संध्या करते हैं वह भी योग का एक भाग है। तो हम उन मन्त्रों का अर्थ अच्छी प्रकार से समझ लें। मन्त्रों के शब्द यदि हमारी बोल-चाल की भाषा के अंग बन जाएँ तो संध्या करने में, ध्यान करने में सरलता हो जाएगी। जिन शब्दों का हम अधिक प्रयोग करते हैं, बार-बार उनके अर्थों का विचार करते हैं उनसे यदि हम ध्यान करते हैं तो सरलता होती है। इस दृष्टि से पूछा। यदि स्मरण नहीं तो कोई बात नहीं है।

साधक ७– जी! स्मरण है।

स्वामी जी – हाँ! जैसा हो सुनाओ –

साधक ७– देवों के भी देव, उत्पन्न हुए को जानने वाले उस परमात्मा को सृष्टि की रचना आदि नियम जनाते हैं। इनके माध्यम से सम्पूर्ण रूप से देखने के लिए स्थावर जंगम के आधार को जानें।

स्वामी जी – आपको मन्त्रार्थ स्मरण हो तो सुनाओ।

साधक ८– स्मरण है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – तो आप भी बोलिए।

साधक ८– हे ईश्वर ! ऋग्वेदादि चारों वेद आपसे उत्पन्न हुए हैं। आप जगत् में व्याप्त है। सब जगत् के उत्पादक हैं। आप देवों के देव और सूर्य आदि जगत् के कारण हैं।

स्वामी जी – देवं वहन्ति। वहन्ति को ले लो।

साधक ३– उद्वहन्ति होना चाहिए।

स्वामी जी – हूँ।

साधक ८– विश्व विद्या की प्राप्ति के लिए आपकी उपासना करते हैं। वेद की श्रुति और जगत् के रचना आदि नियामक गुण आपको ही जनाते हैं, प्राप्त कराते हैं। हे विश्व के आत्मा, अन्तर्यामी ! हम आपकी ही उपासना करते हैं।

स्वामी जी – मन्त्रों को, उनके अर्थों को हम बार-बार सुनते रहें। पुनः पुनः इन पर विचार भी करते रहें तो ये शब्द अपनी बोल-चाल की भाषा जैसे दिखाई देने लगते हैं। पुनः इनका अर्थ भी हमको सीधा आता दिखाई देने लगता है। और पुनः जब संध्या में प्रयोग करते हैं तब अधिक प्रयत्न, प्रयास नहीं करना पड़ता। ये सुविधाएँ होती हैं।

अब आप मन्त्र का अर्थ सुनाएँगे –

साधक १– **उदु** अच्छी प्रकार से, निश्चय से **त्यं** इस परमात्मा को **जातवेदसं** इसके तीन प्रकार से अर्थ किए गए हैं – प्रथम – इस परमात्मा से ऋग्वेद आदि प्रकाशित हुए हैं। दूसरा – परमात्मा इस समस्त जगत् का उत्पादक है। तीसरा अर्थ – जो परमात्मा इस समस्त जगत् को जानने वाला है अथवा इसमें व्यापक है, ऐसे ईश्वर को, **देवं** जो देवों का भी देव है ऐसे ईश्वर को **वहन्ति** प्राप्त कराते हैं। **केतवः** जगत् के रचना आदि नियामक गुण तथा वेद-मन्त्र **दृशे** जनाने के लिए **विश्वाय** सम्पूर्ण विश्व को **सूर्यम्** चराचर जगत् के प्रेरक ईश्वर को।

स्वामी जी – तो आप कभी ध्यान-काल में पूरे मन्त्रों के अर्थ का विचार कर लेते हैं या कितने तक पहुँचे हैं? जैसा कि हमने आपसे कहा था कि आप एक-एक मन्त्र को ले लो। उसका अर्थ कंठस्थ करो और संध्या में उनका अर्थ सहित पाठ करो। आगे जो मन्त्र अभी सुसज्जित नहीं हैं, अभी जिनका अर्थ पक्का नहीं कर पाए, अभी और अध्ययन करके उनको परिपक्व करना है तो उनका केवल पाठ कर लो और जिनका अर्थ हो चुका है उनका अर्थ सहित संध्याकाल में प्रयोग करो। आप ऐसा कुछ करते हैं या नहीं? यदि नहीं करते हैं तो उसको सुधार लेना। जो-जो मन्त्र ठीक हैं, अच्छे होते जाते हैं उनको तो संध्याकाल में अर्थ सहित करो। जो अभी इतने परिपक्व नहीं हैं उनको आगे एक-एक, दो-दो स्मरण करके जाना आदि। जब वे पक्के हो जाएँ तब उनको साथ ले लें।

अच्छा ! अब आप यहीं बैठे-बैठे तत्काल क्या पूरी सृष्टि को प्रलयवत् बना सकते हैं? अपना-अपना अनुभव बताइए।

साधक ३– मैं नहीं बना सकता।

स्वामी जी – आप अपना-अपना अनुभव बताइए।

साधक ८– कई बार बना लेते हैं और कई बार नहीं।

स्वामी जी – अभी की बात है। अभी तत्काल बनाओ। बना सकते हैं या नहीं? यह देखना है।

साधक ८– तत्काल नहीं बना सकते।

स्वामी जी – अभ्यास करते-करते पर्याप्त काल के पश्चात् व्यक्ति तत्काल प्रलय जैसी स्थिति

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को उत्पन्न कर लेता है। जब व्यक्ति प्रलय जैसी स्थिति उत्पन्न करता है तब ये विविध प्रकार के विचार, स्मृति आदि वृत्तियाँ, शब्द का स्मरण या रूप, रंग आदि की स्मृतियाँ उभारना आदि जितनी भी इस प्रकार की संसार से सम्बद्ध विचारधाराएँ हैं, वे सब रुक जाती हैं। तब पुनः उसका उपयोग क्या होता है? जब सभी रुक गईं तो अब आप अपने मन को ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना में लगाने में सफल हो जाएँगे। आपको सरलता हो जाएगी।

एक स्थिति में व्यक्ति प्रलयवत् अवस्था बनाकर मन को नियन्त्रित कर लेता है। दूसरी स्थिति में नहीं कर पाता तब उसमें उतना ज्ञान, बल, सामर्थ्य, अभ्यास नहीं होता है। तब वह मन जड़ पदार्थ है और सभी पदार्थ अपने स्थान पर विद्यमान हैं, का प्रयोग करता है। मैं अन्य किसी के विषय में विचार ही नहीं करूँगा, केवल ईश्वर की स्तुति-प्रार्थना-उपासना में लगूँगा। यह दूसरी स्थिति है। इस दूसरी स्थिति का प्रयोग आप में से कौन करते हैं?

साधक ३— मैं करता हूँ।

स्वामी जी — जो दूसरा उपाय है?

साधक ३— और इससे अधिक अच्छा होता है ईश्वर-प्रणिधान का। जब उसको अच्छी तरह से बना लेते हैं तब भी वृत्तियाँ बहुत सरलता से रुकती हैं।

स्वामी जी — इनमें एक अन्य उपाय बताया गया था ईश्वर-प्रणिधान, ईश्वर-समर्पण, ईश्वर के प्रति अति प्रेम, बहुत रुचि। अर्थात् जब ईश्वर के गुणों, विशेषताओं से जीवात्मा अपने गुणों, विशेषताओं का तुलनात्मक अध्ययन करता है तब ईश्वर के समक्ष जीवात्माओं के गुण, शक्ति-सामर्थ्य अति कम दिखाई देते हैं और प्रभावहीन हो जाते हैं। प्राकृतिक पदार्थ जिनसे हम काम लेते हैं, जिनसे हम जीवित हैं। परन्तु इनका निर्माण करना, हमारे लिए उपयोगी बना देना, ईश्वर के कार्य हैं। जब ऐसे देखते हैं तो प्रकृति का भी प्रभाव हमारे ऊपर नहीं रहता। इस प्रकार जब हम ईश्वर के इन गुणों को, सामर्थ्य को देखते हैं तब ईश्वर के प्रति प्रेम-श्रद्धा, रुचि उत्पन्न होती है। उस स्थिति में व्यक्ति स्वयं अपनी आत्मा को या मन को ईश्वर में सरलता से लगा लेता है। तब कोई कठिनाई नहीं होती है।

इसी प्रेम या ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति में एक और उपाय काम में आता है, वह है व्याप्य-व्यापक भाव। जब हम ईश्वर को व्यापक मानकर ध्यान करते हैं तब भी सरलता हो जाती है। जैसे कि सोचने का ढंग - जिस ईश्वर का मैं ध्यान करना चाहता हूँ, ध्यान करूँगा, वह सर्वव्यापक है। वह कहता है - जीवात्मा अणु है, बहुत छोटा है। शरीर में एक छोटे से स्थान पर रहता है वहाँ ईश्वर भी विद्यमान है। ऐसी जितनी जीवात्माएँ जहाँ भी हैं वहाँ पर ईश्वर विद्यमान है और जहाँ जीवात्माएँ नहीं हैं वहाँ भी ईश्वर विद्यमान है। ऐसे ही अरबों-खरबों लोक-लोकान्तर सूर्य-चन्द्रमा आगे जहाँ पर हैं और जहाँ पर नहीं हैं वहाँ पर भी ईश्वर विद्यमान है। सत्त्व-रज-तम प्रकृति जहाँ पर है और जहाँ नहीं है वहाँ पर भी ईश्वर विद्यमान है। जब ऐसी स्थिति में ध्यान करता है तब सरलता होती है।

क्या आपने कभी पूरे विश्व को व्याप्य और ईश्वर को व्यापक मानकर ध्यान किया? यदि किया तो स्थिति बनी? जीवात्माएँ जहाँ हैं वहाँ ईश्वर की सत्ता है, सृष्टि जहाँ पर है उस स्थान पर भी ईश्वर है और जहाँ ये नहीं हैं वहाँ पर भी ईश्वर की सत्ता है। जब आप ऐसा देखेंगे तब व्यापक ईश्वर से प्रभावित होंगे और आपको ध्यान करने में कठिनाई नहीं होगी।

अच्छा! अब आप कौन-सा प्रयोग करेंगे। वैसे तो सबकी भिन्न-भिन्न स्थितियाँ होती हैं। पुनरपि

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामूहिक रूप में कोई एक प्रयोग करें। मानसिक रूप में एक-दो का या चारों का प्रयोजन सिद्धि के लिए ग्रहण कर सकते हैं। तो मानसिक रूप में मन्त्र का अर्थ और ईश्वर- समर्पण करते हुए चाहे आप प्रलयवत् अवस्था से काम लें, चाहे मन जड़पदार्थ है मैं ही उसको चलाता हूँ; इससे काम लें अथवा दोनों ओर से लें। ईश्वर के प्रति अति प्रेम करके अथवा व्याप्य-व्यापक का प्रयोग करें। आपको जो अनुकूल हो उनको काम में लेते जाएँ। धीरे-धीरे शान्ति से मानसिक जप, ध्यान करेंगे।

साधक १— इस मन्त्र में **दृशे विश्वाय** का अभिप्राय उतना स्पष्ट नहीं हो पाया। इस पर आप थोड़ा प्रकाश डाल दें, पुनः हम प्रयोग करें।

स्वामी जी — एक मोटा अर्थ है - विश्व को दिखाने के लिए।

साधक १— अर्थात् हम विश्व को देखने की आकांक्षा कर रहे हैं?

स्वामी जी — नहीं। आकांक्षा की बात नहीं है। मन्त्र में जो अर्थ होगा हम तो वही लेंगे, हम अपना नहीं जोड़ेंगे। मन्त्र कहता है - **देवं वहन्ति** ये जो ईश्वर के नियम है वे विश्व को दिखाने के लिए हमको संकेत करते हैं। विश्व को हम उनसे जाने, समझें। विश्व को समझने से हमें पुनः ईश्वर समझ में आएगा। इसकी उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय समझ में आएगी। जड़ शरीर आदि समझ में आएँगे तब आत्मा समझ में आएगा। इसलिए विश्व को समझने के अनेक प्रयोजन हैं। आरम्भ कीजिए। **दृशे विश्वाय सूर्यम्**। आप उपायों से काम लेते रहेंगे।

प्रयोग आरम्भ.....समय लगभग ४ मिनट।

अब आप रुकेंगे। अपने मन की स्थिति आप बताएँगे। क्या आप स्थिर रहकर ऐसा कर पाए? हाँ जी! आप बोलेंगे, कैसी स्थिति रही?

साधक ४— आरम्भ में ईश्वर का समर्पण ठीक रूप से नहीं बना पाया। अन्तिम काल में उसको पुनः सर्वव्यापक अच्छी तरह से मानकर ईश्वर-समर्पण ठीक बन पाया। मध्य में एक बार एक चित्र उपस्थित किया उसको हटा दिया और यान की ध्वनि जो आई थी उसकी ओर ध्यान गया था।

स्वामी जी — आपको यह सफलता, सार्थकता दिखाई देती होगी या देनी चाहिए। जैसे कि कोई स्मृति के रूप में चित्र आया, कोई शब्द आया तो उसको आपने हटा दिया और पुनः अपने ध्यान में जम गए। यह इन प्रयोगों की सफलता है। जब आपकी मनःस्थिति विचलित हुई तब आपने प्रयत्न किया। कुछ प्रयत्न के पश्चात् आप पुनः अच्छी प्रकार जम गए, ठीक स्थिति में पहुँच गए तो यह उसकी सफलता है। यदि ऐसी गवेषणा न की जाए, प्रयत्न न किया जाए तो व्यक्ति को विशेष सफलता दिखाई नहीं देगी और उसके बिना विवेक-वैराग्य की प्राप्ति और समाधि की प्राप्ति नहीं हो पाएगी।

अच्छा! अब कौन बताएगा। कैसी स्थिति रही?

साधक ३— स्थिति अच्छी बनी रही। उच्चारण, अर्थ और समर्पण परन्तु इसके मध्य में पुरुषार्थ कुछ कम किया। उस काल में एक दो बार चित्र देख लिए कुछ सेकेण्ड के लिए। उनको तत्काल हटा दिया पुनः स्थिति ठीक हो गई। ऐसी स्थिति रही।

स्वामी जी — चित्र जो देखे वह कोई स्मृति थी या चित्र मात्र था या कहीं की कारण सहित स्मृति आ गई थी?

साधक ३— जैसे अचानक कोई दृश्य दिख जाना और उसको हटा देना।

स्वामी जी — अच्छा!

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३ – उसका कार्य-कारण सम्बन्ध नहीं जुड़ पाया वहाँ पर।

स्वामी जी – एक बात और ध्यान देने की है। एक चित्र होते हैं हमने जो वस्तुएँ देखी हैं, सुनी हैं, उनकी स्मृति के रूप में और दूसरे चित्र होते हैं काल्पनिक।

साधक ३ – देखा हुआ। एक स्थान देखा, उस स्थान का दृश्य सामने आ गया। उसको हटा दिया। वास्तविक स्मृति थी, काल्पनिक नहीं।

स्वामी जी – नहीं। हम स्मृति के दो विभाग बना रहे हैं। एक तो वह, जो हमने अनुभव किया है उसकी स्मृति। यह तो वास्तविक है। इसके अतिरिक्त एक दूसरी स्मृति होती है जो मन में चाहे जैसे चित्र बनने लग जाते हैं। उलटे-सीधे, लम्बे-चौड़े। वैसी कोई वस्तु देखी नहीं, किसी वस्तु के साथ उसका सम्बन्ध नहीं। कोई हमारी योजना भी नहीं। पर चित्र देखते हैं। आपको ऐसे विचित्र दृश्य कभी दिखाई नहीं देते?

साधक ३ – ऐसे पकड़ नहीं पाया।

स्वामी जी – आप बताइए। क्यों जी? कुछ समझ में आई बात? और स्वप्न में भी उलटे-सीधे दिख जाते हैं जो कि वस्तु रूप में कहीं नहीं होते। जैसे व्यक्ति के सिर पर सींग स्वप्न में दिखाई देते हैं। एक स्थिति और होती है जब हम मन में सोच-विचार रहे होते हैं और ध्यान नहीं देते हैं तब मानसिक स्तर पर काल्पनिक रूप में लम्बे-चौड़े चित्र दिखने लगते हैं। बिना आधार के ऐसे-वैसे दिखने लगते हैं।

साधक २ – गम्भीरता की स्थिति में ऐसा नहीं होता।

स्वामी जी – जब मन को खुली अवस्था में छोड़े रखते हैं। मन को अधिकार में नहीं रखा है तब की बात है। उस स्थिति में चाहे जैसा चित्र बनकर दिखाई देने लगता है। जैसे कि उसके मन में झट चित्र बन गया कि व्यक्ति आकाश में उड़ रहा है। उसके मन में यह बात आ गई अर्थात् जो वस्तुतत्त्व नहीं होते वैसी कल्पना भी मन में चलती रहती है या नहीं चलती?

साधक २ – जागरित स्थिति में प्रायः ऐसा नहीं होता।

स्वामी जी – जागरित स्थिति में भी ऐसा होता है तब जब आप ध्यान में बैठे हों। मान लो आप ध्यान करने के लिए सुसज्जित हैं और उस काल में जैसे कि स्मृति-वृत्ति उभरती है उसी प्रकार का ऐसा अद्भुत चित्र आपके मानसिक स्तर का दिखाई दे गया जिसका कोई अनुभव नहीं था। पहले उस प्रकार की देखी हुई किसी वस्तु की स्मृति भी नहीं थी। ऐसे उलटा-सीधा दिखाई देना। ऐसा होता है?

साधक २ – आभास मात्र होना।

स्वामी जी – हाँ! आभास तो होता ही होता है पर वह बिना विचार किए मन को चाहे जहाँ लगा देने की स्थिति होती है। बिना सोचे-विचारे जीवात्मा मन को प्रेरणा दे देता है और जैसा-तैसा चित्र बनाने लगता है।

एक दूसरा दृष्टान्त हम लेते हैं। एक व्यक्ति कभी अति रुग्ण हो गया और उसने कहीं पढ़-सुन लिया कि किसी ने सींग वाले मनुष्य देखे। अब रुग्ण अवस्था में वही व्यक्ति उसी हावभाव को लेकर कभी मनुष्य को देखता है और कभी भैंसे को देखता है तब स्वप्न में देखेगा कि कभी व्यक्ति भैंसा बन गया तो कभी भैंसा मनुष्य बन गया। जैसे कि आप यहाँ बैठे है। कोई योजना नहीं बना रहे कि मन को कहाँ लगाऊँ किन्तु कोई कल्पना करना आरम्भ कर दें तो कभी कुछ, कभी कुछ दिखने लगेगा। वाक्य गूंजने लगेगा, जैसा-तैसा कोई रूप दिखाई देने

CC-0. Mumukshu Bhawan Varanasi Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगेगा जैसे स्वप्न में दिखाई देते हैं और उसका प्रभाव आपके ऊपर पड़ेगा। जैसे स्वप्न में कैसे भी चित्र हों, वे अच्छे-बुरे भावों को उत्पन्न कर देते हैं। ठीक है! सींग वाला मनुष्य दिखाई देगा तो हम एकदम भयंकर दुःखी हो जाएँगे कि यह सींग वाला मनुष्य कहाँ से आ गया, यह हमको मारेगा। स्वप्न अवस्था में वह हमको प्रभावित करता है। इससे हम क्या ले रहें है? यही कि मन को खुला छोड़ देने से, नियन्त्रण में न रखने से चाहे जैसे विचार उभरकर आ सकते हैं और वे हमको प्रभावित कर सकते हैं। समझ में आया?

साधक ५ – मन को खुला छोड़ देने पर ...।

स्वामी जी – नियन्त्रण न करने पर।

साधक ५ – चाहे कोई विचार।

स्वामी जी – चाहे जो विचार उठ जाता है, कहना चाहिए उठा लिया जाता है और वह विचार हमको अच्छे-बुरे की ओर.....।

साधक ५ – प्रभावित करता है।

स्वामी जी – प्रभावित करता है। हम उससे प्रभावित होते हैं और उससे प्रभावित होने का अभिप्राय किसी में राग, किसी में द्वेष भी हो सकता है। ये प्रभाव उभरकर आते हैं और अकस्मात् कोई स्मृति यदि तीव्रता से आ जाएगी तो हम उससे भी प्रभावित होते हैं।

अब एक और बात आप समझने का प्रयत्न करें कि आप जो ईश्वर-समर्पण करते हैं उसमें शरीर, इन्द्रियाँ, नाड़ियाँ, बुद्धि, मन, ज्ञान, बल और बाहर के जो भी पदार्थ हमारे पास हैं उन सबसे आप अपना स्वामित्व हटा लेते हैं और ईश्वर का स्वामित्व स्वीकार कर पाते हैं या नहीं? आप बोलेंगे -

साधक ५ – उपासना काल में और उस विषय पर विचार करते समय ईश्वर को स्वामी मान लेता हूँ पर व्यवहार काल में प्रायः मन में ये विचार आते नहीं हैं अथवा बोलता भी हूँ तब भी ऊपर-ऊपर अनुभूति होती है अन्दर से वह अनुभूति नहीं होती है। वास्तविक रूप में नहीं, शाब्दिक रूप में अनुभूति होती है।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे, क्या स्तर रहता है ईश्वर के स्वामी मानने में और स्वयं को स्वामी मानने में?

साधक १ – स्वामी जी! इसको विषय बनाने पर शीघ्र प्राप्ति होती है और वर्त्तमान में इसको इतना विषय मैं नहीं बनाकर चल रहा हूँ। उपासना काल में इसको विषय बनाता हूँ तब समर्पण की स्थिति उत्पन्न होती है और शेष काल में शाब्दिक स्तर पर प्रायः स्थिति रहती है।

स्वामी जी – अब आप सृष्टि को प्रलयवत् अवस्था में देख रहे हैं, विचार कर रहें हैं; यह एक बात हुई। दूसरी बात है कि इन पदार्थों शरीर, इन्द्रियाँ, बुद्धि, विद्या तथा बाहर के जो भी पदार्थ आपके पास हैं उनको ईश्वर का मानकर, ईश्वर ही इनका स्वामी है; ऐसा मानकर प्रयोग करें तो पता चलेगा कि आप ऐसा कितना कर पाते हैं, कितना हो पाता है? यह जो ईश्वर-प्रणिधान है, सर्वस्व का स्वामी ईश्वर को मानना; इस स्थिति को उत्पन्न करें। इन पदार्थों से अपने स्व-स्वामि- सम्बन्ध को हटाकर ईश्वर के स्वामित्व को स्वीकार करें। उपासना काल में तो सिद्ध की हुई स्थिति का प्रयोग मुख्य रूपेण होता है परन्तु यह अतिरिक्त काल में प्रमाणों से सिद्ध किया जाना चाहिए। अब आप इस बात पर ध्यान देंगे कि ईश्वर-प्रणिधान केवल संध्या-काल के लिए है या पूरे व्यवहार के लिए? इस पर विचार करेंगे। पहले अपने-अपने विचार सुनाओ। आप क्या समझते हैं?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २,३ – पूरे व्यवहार के लिए।

स्वामी जी – या आप में से कोई ऐसा मानता है कि केवल उपासना काल में इसको मानना चाहिए। यदि आप मानते हैं, समझ गए कि पूरे व्यवहार काल में व्यापक रूप से स्थिति रहनी चाहिए तो आपके ऊपर यह नियम लागू हो जाता है। आपका कर्त्तव्य बन जाता है कि हम दिनभर ईश्वर-प्राणिधान की स्थिति बनाए रखें।

यदि आप यम-नियम आदि अष्टांग योग का पालन करते हैं तो ऋषि की मान्यता के अनुसार आपकी अशुद्धि का नाश और ज्ञान की वृद्धि हो जाएगी। यह एक पृथक् बात है कि आपका अभ्यास न होने से बहुत से साधनों का प्रयोग एकदैव नहीं कर पाएँगे परन्तु इन प्रयोगों में साधनों का भी परस्पर सम्बन्ध बना रहता है। उनका आपको लाभ होगा। जैसे ईश्वर को मानते रहेंगे, ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति होगी तो भिन्न प्रकार से लाभ आपको मिलेंगे। यदि ईश्वर-प्रणिधान को छोड़कर प्रयत्न करेंगे तो ये लाभ आपको नहीं मिलेंगे।

अब एक बार इसी मन्त्र का अर्थ पढ़ेंगे। जैसे 'विश्वाय' शब्द आया, महर्षि का अभिप्राय समझने के लिए उसको पढ़ो एक बार। **उदुत्त्यम्...** मन्त्र को देखो।

साधक ८ – स्वामी जी ने तो 'विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए' ऐसा लिखा है।

स्वामी जी – हाँ !

साधक १ – विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए परमात्मा की उपासना करते हैं। साध्य है विश्वविद्या।

स्वामी जी – हाँ ! विश्वविद्या। देखो ! वहाँ क्या लिखा है ?

साधक १ – परमात्मा की विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए हम लोग उपासना करते हैं।

स्वामी जी – उस परमात्मा ?

साधक १ – विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए हम उपासना करते हैं।

स्वामी जी – हाँ !

साधक १ – स्वामी जी ! पर यहाँ साध्य विश्वविद्या की प्राप्ति है न कि परमात्मा।

स्वामी जी – हाँ ! तो क्या निकला ? दोहरा लो। अच्छी प्रकार ध्यान देकर देखो, क्या निकला ? अब पूरे मन्त्र का अर्थ भी करके देख लो। ऊपर से ईश्वर को ले जाए हम त्यं से। क्या समझे आप ?

साधक १ – हम ऊपर से।

स्वामी जी – और उसके विशेषण निर्वाचित करते जाओ। कम शब्द रह जाएँगे हमारे पास, उनको पुनः देखेंगे। प्रथम देवं।

साधक ५ – जातवेदसम्।

स्वामी जी – जातवेदसम्। सूर्यम् को ईश्वर के साथ जोड़कर चलो। जातवेदसं देवं त्यं सूर्यम् और क्या है ? इतना हो गया। अब आगे देखो !

साधक ३ – केतवः उद्वहन्ति। केतवः कर्त्ता हो गया। उद्वहन्ति क्रिया और शेष सारा कर्म हो गया।

स्वामी जी – तो यह आया कि ईश्वर को ये केतवः जनाते हैं।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized By Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– हाँ जी !

स्वामी जी – पुनः आ गया दृशे विश्वाय सूर्यम्। दृशे विश्वाय को ले लो अब।

साधक १– ईश्वर को जनाते हैं ये सब, विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए।

स्वामी जी – ईश्वर को ?

साधक १– ये सब रचना आदि नियामक गुण और वेद-मन्त्र ईश्वर को जनाते हैं।

स्वामी जी – हाँ !

साधक १– **दृशे विश्वाय** विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए।

स्वामी जी – विश्वविद्या की ?

साधक १– प्राप्ति के लिए।

स्वामी जी – हाँ ! विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए ये ईश्वर को जनाते हैं; यह लगा। तो ठीक है।

साधक ८– ये जो अर्थ है कि उस परमात्मा की विश्वविद्या की प्राप्ति के लिए हम लोग उपासना करते हैं।

स्वामी जी – हाँ ! तो उसमें यह जुड़ जाएगा कि ईश्वर को यह जनाते हैं।

साधक ८– वह पृथक् किया है। वह भाग स्पष्ट है।

स्वामी जी – ईश्वर को जनाते हैं **केतवः**, ठीक है ! और क्यों जनाते हैं ? विश्व के परिज्ञान के लिए। यही होगा।

साधक २– द्रष्टुं - दृश्य के परिज्ञान के लिए।

स्वामी जी – विधिपूर्वक शब्द का अर्थ लेकर, वृत्तियों को रोककर यदि व्यक्ति वैदिक संध्या का प्रयोग करता है तो उसका विकास होता है और उसका मन के ऊपर, पुनः इन्द्रियों के ऊपर नियन्त्रण होता है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा, रुचि होती है और उससे जो उसको शान्ति और सफलता दिखाई देती है कि मैं अधिकार पूर्वक मन को रोककर ईश्वर की स्तुति करता हूँ। वह स्थिति बहुत अच्छी लगती है। उससे व्यक्ति की उसमें और रुचि बढ़ती है। अब विराम ॥

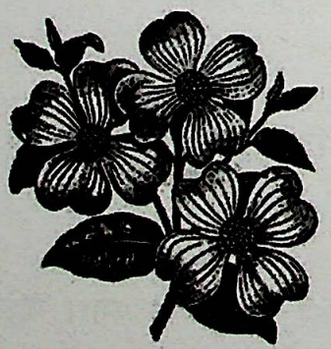

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८० ज्ञानखण्ड

सज्जा : श्रावण शु. १/२०६०-३०/७/०३

ईश्वर ही सृष्टि की रचना करता है, यह बात आपके मन में बैठ गई या कुछ सन्देह होता है? आप-अपना मत बताओ?

साधक २- पूरी तरह से अभी नहीं बैठी।

स्वामी जी - अच्छा! जो संशय होता है वह किस स्थिति में जाकर होता है?

साधक २- जैसे कि हम किसी वृक्ष को देखते हैं तो उसमें फल आ रहा है। यद्यपि फल और वृक्ष का कोई मेल नहीं दिख रहा है। पुनः वह उसी से निर्मित हो रहा है।

स्वामी जी - कैसे मेल दिखाई नहीं देता?

साधक २- जैसे वृक्ष में पत्ते आदि जिस आकृति के हैं फल में वैसी कोई आकृति नहीं होती। फल और पत्ते की रचना सर्वथा पृथक् है।

स्वामी जी - हाँ।

साधक २- पुनरपि वृक्ष में अपने-आप दोनों का निर्माण हो रहा है।

स्वामी जी - अपने-आप वृक्ष में?

साधक २- हाँ जी! वृक्ष से फल और पत्ते का निर्माण हो रहा है।

स्वामी जी - हाँ!

साधक २- ऐसे ही पृथ्वी से इन वृक्ष आदि का भी निर्माण हो गया और पृथ्वी आदि के जो सबसे अन्तिम परमाणु रहे होंगे जिसको प्रकृति कह सकते हैं। हो सकता है उनमें भी ऐसा स्वभाव हो कि किसी काल विशेष में इस तरह की अवस्था आ जाती हो जिसमें वे अपने-आप परस्पर जुड़ने लग जाते हों।

स्वामी जी - क्या-क्या?

साधक २- इस तरह से जुड़ने लग जाते हों।

सम्पादक - अर्थात् बीज की कोई ऐसी अवस्था होती हो जिसमें उसके मूल अवयव कभी स्वतः जुड़ जाते हों और आगे बीज-वृक्ष की प्रक्रिया चल पड़ती हो।

स्वामी जी - जुड़ने लग जाने की दो स्थितियाँ हैं एक स्वयं नहीं जुड़ना, दूसरी जोड़ने पर जुड़ना। उसमें यह देखना पड़ेगा कि पहले तो वे जुड़ते नहीं थे अब क्यों जुड़ने लग गए?

साधक २- यह भी एक सतत प्रवाह है। बनना और बिगड़ना होता रहता है।

स्वामी जी - 'बनना और बिगड़ना' यह तो हमारा साध्य है। इसको दृष्टान्त नहीं बना सकते। एक पक्ष जिसको मानता हो, दूसरा उसको नहीं मानता हो, तो वह साध्य कोटि में चला जाएगा। पृथ्वी आदि का बनना-बिगड़ना एक के मत में स्वाभाविक है, दूसरा कहता है स्वाभाविक नहीं है, अपितु इनको ईश्वर बनाता है। अतः दोनों में विरोध होने से यह साध्य कोटि में जाएगा। आपने जो कहा कि ऐसी एक अवस्था आ जाती हो, जब वे स्वयं जुड़ने लगते हों। तो वह अवस्था कहाँ से आएगी और वह पहले क्यों नहीं आ रही थी? वहाँ यह प्रश्न उठता है।

साधक २- जैसे वृक्ष में बीज, फल अपने-आप आ रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – नहीं। यह अपने-आप आ रहा है, यह दृष्टान्त मुझे मान्य नहीं है। दृष्टान्त वह काम देगा जो दोनों पक्षों को मान्य हो जाए। वृक्ष में बीज, फल अपने-आप आ रहे हैं, एक पक्ष इसको दृष्टान्त मानता है और दूसरा पक्ष कहता है कि मैं तो इसको दृष्टान्त नहीं मानता। अभी यह साध्य कोटि में है। वह कहता है बीज बनाया गया है क्योंकि इसमें सारी व्यवस्थाएँ दी गई हैं। इस स्थिति में मैं कैसे मान लूँ कि अपने आप वृक्ष में फल बन रहा है?

दूसरी बात सोचने की है कि परमाणुओं को हम जड़ मानते हैं या चेतन? यह तो आपको भी जंचता होगा कि परमाणु जड़ ही हैं। इसमें तो सन्देह नहीं है? अच्छा! अब ध्यान देने की बात है कि जब हम लोक में देखते हैं कि जो कोई वस्तु बनाई जाती है जैसे भवन, पाकशाला आदि तब उसमें व्यवस्था बनाई जाती है। वहाँ पहले से दृष्टि होती है कि यहाँ यह बनाएँगे। वहाँ पर वह बनाएँगे। यहाँ यह काम होगा, वहाँ वह। इसी प्रकार की व्यवस्था हमारे शरीर में है। यहाँ भी विभिन्न अंगों से भिन्न-भिन्न कार्य हो रहे हैं जैसे कि नाक सूंघने का काम करती है, आँख देखने का काम करती है, फेफड़े रक्त को शुद्ध करने का और हृदय उसमें गति देने का काम करता है। अर्थात् जिसको विधिपूर्वक व्यवस्था बोलते हैं, जो सोच-समझकर बुद्धिपूर्वक की जाती है, वह यहाँ पर है। उस व्यवस्था को करने की सामर्थ्य जड़ पदार्थों में नहीं होती।

साधक २– जैसे भवन आदि बनाते समय व्यवस्था बनाई जाती है, ऐसे ही संसार को बनाते समय कभी ऐसा विचारा गया हो; यह भी तो सिद्ध नहीं है।

स्वामी जी – क्या प्रकृति के द्वारा विचारा जाता है?

साधक २– संसार को बनाते समय पहले इसकी ऐसी व्यवस्था बनाई गई, पुनः यह संसार बना; इसकी भी सिद्धि तो नहीं हो पाती।

स्वामी जी – नहीं। हम तो मानते हैं कि ईश्वर ने सोच-विचारकर इसको बनाया है। एक तर्क है कि इसके साथ में हमारे कर्म जुड़े रहते हैं। कर्म के आधार पर शरीर आदि की रचनाएँ ईश्वर करता है। ईश्वर ने जीवों के कर्मों के अनुसार मनुष्य शरीर पृथक् प्रकार से बनाया, पशु का पृथक् से। जब सृष्टि बनेगी तब उसमें जो आँख आदि इन्द्रियों की रचना होगी तो बुद्धिपूर्वक ही तो होगी। देखने के लिए आँख, सुनने के लिए कान बनाए और कर्म करने के लिए हाथ-पैर बनाए, तो वे बुद्धिपूर्वक ही बनाए गए।

साधक २– ये रचनाएँ तो एक प्रकार से स्वाभाविक ही हैं।

स्वामी जी – किसकी?

साधक २– जैसे कि बकरी का सींग छोटा ही होता है और भैंस का सींग बड़ा होता है। ये सदा से ऐसे ही होंगे। इसको ईश्वर भी परिवर्तित नहीं कर सकता।

स्वामी जी – न-न। उसमें आपने पहले इसका उत्तर ढूँढना है कि शरीर की रचना चेतन पदार्थ की बुद्धि से निकली है अथवा जड़ परमाणु ऐसी व्यवस्था-पूर्वक आँख-नाक, हाथ-पैर आदि की रचना कर सकते हैं; इसके ऊपर विचार करो। यह हमारे शरीर की जो रचना है, इसको परमाणु कर सकते हैं? जिससे सृष्टि, पृथ्वी आदि बनीं, क्या उन परमाणुओं में ज्ञान है? यह तो आप भी मानते होंगे कि उनमें ज्ञान नहीं है। अच्छा! ज्ञान जिसमें नहीं होता वह उद्देश्य सहित, प्रयोजन सहित कोई रचना नहीं कर सकता कि यहाँ ऐसा बनेगा तो ठीक रहेगा, ऐसा बनेगा तो ठीक नहीं रहेगा; जड़ पदार्थों में यह सोचने का ढंग ही नहीं है, शक्ति ही नहीं है।

ईश्वर को जिस पक्ष में नहीं माना जाता, उस पक्ष में यदि दृष्टान्त के रूप में रेल का इंजन,

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

घड़ी आदि ली जाए तो क्या यह सिद्ध होगा कि ये स्वयं बन जाते हैं? वस्तुतः ये जो पदार्थ परमाणुओं के मेल से बने लोहे आदि से बनाए जाते हैं, न इन परमाणुओं में, न लोहे के कणों में ऐसा देखने को मिलता है कि सारे परमाणु मिलकर यह सोचें कि हम ये-ये पुर्जा बनेंगे। ऐसा तो वे सोच नहीं सकते।

अच्छा! चलो, किसी के मन में और कोई शंका हो तो देख लेंगे। शंकाएँ तो उभरती हैं, यह तो स्वभाव से है पर हमको इनका उत्तर भी ढूँढकर समाधान करना ही पड़ता है जिससे कि सन्देह रहित हमारी स्थिति बनी रहे। ऐसा उत्तर तो ढूँढना ही पड़ता है अपनी शक्ति के अनुसार। जैसे कि हम ईश्वर की उपासना करते हैं और जब तक प्रत्यक्ष आदि सभी प्रमाणों से ईश्वर सिद्ध न हो जाए, पक्का न हो जाए तब तक सन्देह उभर सकता है। इसलिए उस सन्देह को पूर्वतः उठाकर पुनः उसका भी समाधान होना चाहिए।

साधक २– स्वामी जी! एक तो हम वर्मा जी से पूछ सकते हैं कि वैज्ञानिक जो किसी भी पदार्थ का अन्तिम विभाग करते हैं उसके कम से कम दो टुकड़े होते होंगे। अन्तिम जो तोड़ा हुआ है उसका।

स्वामी जी – हाँ!

साधक २– पुनः वे टुकड़े अपने-आप जुड़ते हैं या नहीं जुड़ते?

स्वामी जी – हाँ! इसको पूछ सकते हैं, कोई बात नहीं। हाँ जी! इन्होंने एक बात उठाई है। आपसे विज्ञान के क्षेत्र में एक प्रश्न पूछेंगे। वह प्रश्न आप उनको ऊँचा बोलकर सुना दो।

साधक २– ये जो वैज्ञानिक लोगों ने अब तक प्राकृतिक पदार्थों को तोड़कर अन्तिम विभाग किया है, उसमें कम से कम दो होंगे, वे दोनों टुकड़े आपस में क्या पुनः जुड़ जाते हैं या नहीं जुड़ते हैं?

स्वामी जी – स्वयं जुड़ जाते हैं या नहीं?

साधक २– जैसे हम ईंट को तोड़कर जोड़ते हैं तो वह नहीं जुड़ती परन्तु हो सकता है वहाँ पर जो सूक्ष्म कण हैं वे अपने-आप जुड़जाते हैं या वे भी नहीं जुड़ते?

स्वामी जी – अच्छा! कोई कहता है बिना गति वाले भी पदार्थ हैं, उनको बिना गति दिए उनमें गति नहीं होती है। ऐसा ये वैज्ञानिक मानते हैं, इस विषय में भी इनसे पूछ लो।

वैज्ञानिक वर्मा जी – कोई भी अणु बिना गति वाला नहीं है। कोई छोटा अणु भी गति वाला है और उसकी पृथक् आइडेंटीटी अर्थात् पहचान है और वे अपने-आप नहीं जुड़ते। सांइन्स की दृष्टि से जब दो पार्टिकल पास में आते हैं तब वे या तो आपस में जुड़कर एक बन जाते हैं या पृथक् हो जाते हैं। अतः जुड़ना और न जुड़ना उन दोनों की परिस्थिति के ऊपर निर्भर है, मिले तो जुड़ जाएँगे, नहीं तो पृथक् रहेंगे।

साधक २– जैसे वैज्ञानिक इस संसार का आरम्भ मानते हैं अर्थात् ये जुड़कर बने हैं। वे आरम्भ में कैसे जुड़े? इस विषय में अनुमान क्या करते हैं?

वैज्ञानिक वर्मा जी – ऐसा कोई अनुमान नहीं करते। इसलिए हम इसको वेद के ऊपर छोड़ते हैं। देखिए, इसमें दो-तीन बातें आ गई। जो दो भाग अपने-आप जुड़ते हैं, कार्य करते हैं वे जड़ हैं - एक प्रोटॉन है, एक इलेक्ट्रॉन है। जब आमने-सामने आ गए और मिल गए तब उनसे हाइड्रोजन बनता है।

साधक २– क्या जड़ पदार्थ अपने-आप जुड़ सकते हैं? नियमपूर्वक दो-तीन परमाणु आपस में मिलकर किसी एक स्वरूप में आ जाएँ, ऐसा तो उनका स्वभाव नहीं है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैज्ञानिक वर्मा जी – प्रोटॉन इलेक्ट्रॉन मिलकर हाइड्रोजन बनता ही है, यह नियम है।

साधक २ – नहीं। जैसे कि अन्तिम पदार्थ को हमने तोड़ा और वह पुनः लौटकर उसी रूप में आ जाता है?

वैज्ञानिक वर्मा जी – आ जाता है।

साधक २ – ऐसा है।

सम्पादक – इस पुस्तक में यहाँ अथवा किसी भी स्थल में वर्मा जी अथवा विज्ञान से सम्बन्धित जितनी बातें हैं, सब हमने अपनी बुद्धि के आधार पर संकेत मात्र केवल निदर्शन हेतु दी हैं। इस विषय में अन्ततः प्रमाण वैज्ञानिक या विज्ञान के ग्रन्थ होंगे। हम पूर्ण रूप से इस विषय में उत्तरदायी नहीं हो सकेंगे। अतः कोई बात विज्ञान के विरुद्ध जाती हो तो उस विषय में पाठक कृपया अधिकारी व्यक्ति से विचार-विमर्श करके ही ग्रहण करें।

स्वामी जी – अच्छा! चलो। एक ऐसी बात होती है जो हमारे मन में, बुद्धि में शीघ्र समझ में आ जाती है जैसे कि हमारे शरीर की रचना है, यह बहुत शीघ्र समझ में आती है। इसकी कुछ मुख्य बातों को ले लें तो हमारा कार्य चल जाता है, अन्यथा बहुत से ऐसे क्षेत्र होते हैं जिसके विषय में आज हम निर्णय करने लगें तो बहुत परिश्रम करना पड़ेगा और हो सकता है निर्णय भी न हो। परन्तु यह जो मान्यता है कि परमाणु में ज्ञान नहीं है; इसको सम्भवतः वैज्ञानिक भी मानते होंगे। वे अन्तिम टूटने वाले कणों में ज्ञान मानते हों, ऐसा तो नहीं दिखता। हम भी अन्तिम कण जो प्रकृति है, उसमें ज्ञान नहीं मानते हैं; यह जानना चाहिए।

पुनः इस स्थिति में प्रकृति के कण तीन प्रकार के जो हैं – सत्त्व-रज-तम, वे स्वयं भूमि बनाएँगे, सूर्य बनाएँगे, इतनी-इतनी नियत दूरी पर खड़ा करेंगे, जैसा कि वैज्ञानिक बताते हैं आज पृथ्वी जहाँ है वहाँ से यदि सूर्य के और निकट होती तो राख हो जाती तथा और दूर होती तब बर्फ हो जाती। पुनः हमारे शरीर की जो सारी क्रिया भोजन का पचना, रस बनना आदि-आदि हैं। ये इतनी विचित्र क्रियाएँ हैं कि इनको परमाणु कर सकते हैं, यह बात बुद्धि में नहीं बैठती। परमाणु इन कामों को कर दें, यह सम्भव नहीं है।

अब दूसरे पक्ष में जहाँ तक हमारी अपनी व्यक्तिगत बात है कि अपनी बुद्धि के आधार पर यथार्थ को स्वीकार करना चाहिए और सत्यवादी, सत्यमानी जो लाखों ऋषि हुए, उन्होंने अपने निर्णय दिए हैं कि ईश्वर है। ईश्वर ऐसा है, प्रकृति संसार को नहीं बना सकती आदि, तो उनकी बात मान लेनी चाहिए। हमारे मन में अभी बात पूरी बैठ नहीं रही। कुछ कमी है तो इस स्थिति में उनकी बात माननी चाहिए। जहाँ तक हम विचारकर निर्णय कर सकते हैं, हमारी बुद्धि में यह बात आ सकती है कि सत्त्व-रज-तम परमाणु स्वयं सृष्टि के रूप में बनकर उपस्थित नहीं हो सकते। जो इतने प्रकार के शरीर हैं, इतने प्रकार की वनस्पति आदि-आदि, बहुत-से इसमें भाग हैं, जिस रूप में जड़ परमाणु स्वयं कभी नहीं बन सकते।

यह हमारी बुद्धि से समझ में आता है, वे नहीं बन पाएँगे। अब कोई और अपना विचार सुनाना चाहे तो सुना सकता है। हमने यह बात आरम्भ की थी कि सृष्टि का बनाने वाला ईश्वर है। यह हमने सिद्ध किया। अब आपने देखना है कि जहाँ पर ईश्वर के विषय में, जैसे सृष्टि की रचना के सम्बन्ध में कोई संशय होता हो, उसको भी विचार लेना चाहिए। पुनः दूसरी बात, जब इस बात का निर्णय हो जाता है कि सृष्टि बनाने वाला ईश्वर है, उसके पश्चात् व्यक्ति को इस बात पर बल देना चाहिए कि इन सभी पदार्थों का स्वामी ईश्वर है। हम ऐसा क्यों करें? दो बातें हैं। न्याय

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की दृष्टि से, वास्तव में इन पदार्थों का स्वामी ईश्वर है या हम हैं अथवा पदार्थों के स्वामित्व में ईश्वर का बहुत बड़ा भाग है और कुछ हमारा भी हो इत्यादि, जानना चाहिए। इसके लिए हम प्रमाणों से यह निर्णीत कर लेंगे कि ईश्वर इन पदार्थों का स्वामी है किन्तु हम ईश्वर के बनाए हुए पदार्थों के प्रयोग के अधिकारी हैं अथवा गौण स्वामी हैं। इनको बनाने वाला, इनकी रक्षा करने वाला ईश्वर है। शरीर भी ईश्वर के नियमों से हमको मिलता है। पुनः हम शरीर में आकर कुछ धन-सम्पत्ति या विविध पदार्थ प्राप्त करते हैं। हम जो नई-नई वस्तुओं का निर्माण करते हैं, वह ईश्वर की बनाई हुई वस्तुओं या उसके दिए साधनों से करते हैं। इस प्रकार से विचार करने से बात समझ में आनी चाहिए कि सभी पदार्थों का स्वामी ईश्वर है। अब आप बोलिए, इसमें कोई सन्देह हो या कोई बात समझ में नहीं आई हो।

जब हम समझ जाते हैं तब पुनः इसके प्रयोग करने पड़ते हैं। उसके लिए आप प्रतिदिन पूरे दिनभर इसका प्रयोग करें तो इसके परिणाम बहुत अच्छे आएँगे। इतना ही नहीं, आपके सामने और भी छोटे-छोटे फल आएँगे। बहुत बड़ी समस्या, जिसमें आप उलझे रहते हैं, वह दूर हो जाएगी। यदि हम अपना नहीं मानते, ईश्वर-प्रदत्त मानते हैं और हम प्रयोग के अधिकारी हैं, उसने आदेश किया कि इनका प्रयोग करो, पर बनाए उसने हैं, उनकी रक्षा भी उसकी शक्ति से ही हो रही है, ऐसा स्वीकार करते हैं तो आप यह देखेंगे कि इसमें ईश्वर की आज्ञा का पालन हो गया। स्व-स्वामि-सम्बन्ध के कारण व्यक्ति बहुत से अनुचित कार्य करता है। मैं और मेरे के आधार पर संसार में बहुत बड़े स्तर पर उलटे कार्य होते हैं। ये जो झगड़े चलते हैं, युद्ध होते हैं देश-देशान्तरों में, घरो में, परिवारों में, सबका कारण यही है। क्या समझ में आया? दोहरा लो।

साधक २- सभी झगड़े, लड़ाईयों का मूल कारण है 'मैं और मेरा।'

स्वामी जी - आपको समझ में नहीं आया तो बताओ! अच्छा! जब वस्तुतः मेरा है नहीं और इसके नाम पर लड़ाई हो रही है, लगातार हो रही है; यह बुद्धिहीन लोगों की बात है। बुद्धिमान् व्यक्ति ऐसा नहीं कर सकता। किसी को जो सम्पत्ति मिली हुई है उसको बलात् छीनना और उस पर अपने-अपने नियम बना डालना अनुचित है। इस मूल बात को समझना चाहिए कि ये पदार्थ न मेरे हैं न तेरे हैं, अपितु ईश्वर के हैं, ईश्वर ने हमको दे रखें हैं। इसलिए जो हमको मिला है उसका प्रयोग करें और ईश्वर का मानकर प्रयोग करेंगे, यह ठीक है। अपना मानकर प्रयोग करना एक स्थिति है और ईश्वर का मानकर प्रयोग करना दूसरी स्थिति है। ध्यान दें! ईश्वर का मानकर प्रयोग करेंगे तब ईश्वर आपके अनुकूल हो जाएगा और अपना मानकर प्रयोग करेंगे तब ईश्वर आपके प्रतिकूल हो जाएगा। यह बहुत बड़ा अन्तर पड़ेगा। समझो, दोहराओ।

साधक ५- अपना मानकर प्रयोग करेंगे तो ईश्वर प्रतिकूल हो जाएगा।

स्वामी जी - प्रतिकूल हो जाएगा।

साधक ५- और।

स्वामी जी - ईश्वर का मानकर प्रयोग करोगे तो ईश्वर अनुकूल हो जाएगा। व्यक्ति इन त्रुटियों के कारण अनर्थ की ओर जा रहा है। यह स्थिति इसलिए बन रही है कि व्यक्ति को बाल्यकाल में यह प्रशिक्षण नहीं दिया जाता। माता-पिता नहीं दे पा रहे हैं, गुरु जी भी नहीं दे पा रहे हैं, समाज और राष्ट्र भी नहीं दे पा रहे हैं किन्तु इन सबके द्वारा उलटे पाठ पढ़ाए जा रहे हैं। सब स्थानों से 'मैं और मेरे के' झगड़े चले आ रहे हैं। यहाँ तो प्रशिक्षण दिया जा रहा है कि किसी की भी सम्पत्ति हो, कहीं भी हो, जैसे भी हो लूट-खसोट कर अपने अधिकार में ले लो। यही हमारा

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धर्म है। इसमें वैज्ञानिकों का भी हाथ है, सभी का तो नहीं, जो ईश्वर का मानकर चलते है उनको छोड़ दो, शेष जो हैं वे भी यह नहीं बताते हैं कि ईश्वर ने सब कुछ बनाया है और वही इसका स्वामी है। वे तो यह कह देते हैं ईश्वर हमारा विषय ही नहीं है। बाल्यकाल से अब तक आपको भी यही सिखाया गया है और आज भी आप इसको छोड़ने को तैयार नहीं हैं। तो पहले इसका उत्तर दो कि इस 'मैं और मेरे को' क्यों पकड़े बैठे हैं? हाँ जी! आप बताओ -

साधक ६— इस पर विचार तो करते है परन्तु पकड़ नहीं पाते कि 'मैं और मेरा' क्यों हो रहा है।

स्वामी जी — आपने यह सुना होगा और अच्छी प्रकार से देखो कि जो कहा है - **इन्द्रियदोषात्संस्कारदोषाच्चाविद्या**। इन्द्रिय और संस्कार के दोषों से अविद्या उत्पन्न होती है। जैसे कि यह जो हमारे पास ज्ञान आया, इसके विषय में हम सोचते हैं यह मेरा है। ऐसा ही हमको उलटा पाठ पढ़ा दिया गया है और हमने उसको पढ़ लिया है। तो अब उन सबको छोड़ना पड़ेगा।

दूसरी बात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि पूरे जीवन में जो मान्यताएँ निर्मित हुईं, जो विचार-धाराएँ संगृहीत हुईं और जो उलटी मान्यताएँ बनी बैठी हैं उनसे टकराकर, उनको उखाड़कर दूर फेंक देना है और जो वास्तविक नई मान्यताएँ हैं उनको उपस्थित करना है। यद्यपि यह अत्यन्त परिश्रम साध्य है परन्तु असम्भव कुछ नहीं है। अतः आपको यह करना ही पड़ेगा। शब्द-प्रमाण से देखो, अनुमान-प्रमाण से देखो, पुनः स्वयं की बुद्धि को इसमें लगाओ। इसका विवेचन, परीक्षण-निरीक्षण कैसे करेंगे? इसका एक उदाहरण - जैसे कल्पना करो मैं या आप आत्मा इस शरीर से पृथक् हो गए। इसके आगे मृत्यु के पश्चात् जो सूक्ष्म शरीर रहता है वह भी प्रलयावस्था में नष्ट हो गया। अब देखो कि जीवात्मा स्वयं अकेला अपने बल पर प्रकृति के परमाणुओं को लेकर कुछ भी नहीं बना सकता। यह तो आपको मान्य होगा। इसलिए जो कुछ बनाता है वह ईश्वर की बनाई हुई वस्तुओं के सहारे से, ईश्वर के दिए साधनों से बना पाता है। यह सिद्ध है, इसमें कोई मतभेद नहीं है। इतना होने पर अब आप यह बताओ कि इन वस्तुओं पर किसका स्वामित्व रहेगा? ईश्वर का या अपना? हाँ जी!

साधक ५— ईश्वर का माना जाए।

वैज्ञानिक वर्मा जी— यहाँ पर एक कठिनाई आ रही है कि ईश्वर से शक्ति मिलने के उपरान्त जीवों में इतनी शक्ति आ जाती है कि वह आगे बहुत कुछ बनाने में समर्थ हो जाता है और बनाने लगता है। अब बनाने के पश्चात् इसके ऊपर तो वह अपना अधिकार रख ही सकता है। दूसरी बात है रक्षा करने के लिए अपना अधिकार तो होना ही चाहिए उसके बिना रक्षा कैसे कर सकेंगे?

स्वामी जी— हाँ! ठीक है। आपकी शंका समझ में आ गई। इसको समझने के लिए एक लौकिक दृष्टान्त लेते हैं। जैसे कि हम देखते हैं कि भारतीय सैन्य विभाग में अनेक टैंक, विमान आदि होते हैं और वे लाखों-करोड़ों रुपयों के होते हैं और सैनिक जिनकी रक्षा पूरी शक्ति से करते हैं, परन्तु उनको अपना नहीं मानते हैं किन्तु देश का मानते हैं। इस प्रकार से दूसरे का मानने पर भी रक्षा करने में कोई आपत्ति नहीं आती है। वे टैंक और विमान को अपना अंग मानते हैं। स्वयं मारे जाते हैं परन्तु देश की सम्पत्ति मानकर उनको बचा लेते हैं।

मनु ने एक बात कही - पुरुषार्थ के चार भेद हैं। अप्राप्त की प्राप्ति, प्राप्त की रक्षा, रक्षित को बढ़ाना और बढ़े हुए को पात्रों में दान कर देना। इसलिए इन बातों का निषेध नहीं है और हम भी मानते हैं कि लोक में स्वामित्व का व्यवहार होगा किन्तु ईश्वर के आदेशानुसार होगा। जैसे कि यह शरीर है। ठीक है! न्याय से हमको मिला है किन्तु ईश्वर इसका मुख्य स्वामी है। उसी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की शक्ति-सामर्थ्य से मैं इसका स्वामी बनकर काम कर रहा हूँ। मैं गौण हूँ, ईश्वर मुख्य है। ऐसे रक्षा होगी तथा अन्य व्यवहार होंगे।

अब हम और गहराई में जाएँगे। मान लिया प्रकृति न तो ईश्वर की है, न मेरी है। अतः यहाँ तक कोई स्वामी नहीं है परन्तु आगे के लिए यह न्याय चलेगा कि जो जिस वस्तु को बनाएगा, वह उसकी है। क्या समझ में आया? क्यों जी?

जीवात्मा तो शरीर बना नहीं सकता। जो बना ही नहीं सकता तो उसकी वस्तु क्यों मानी जाए? अतः यह उसको मिला है और वह गौण स्वामी बनकर उसका प्रयोग कर सकता है। आप भी बोलो! क्या समझ में आ रहा है?

साधक ६— यही है।

स्वामी जी— कोई भी बात बार-बार सुनो। पुनः प्रमाण-पूर्वक उसका मन्थन करो। इस प्रकार सन्देह को हटाते जाओ तो कालान्तर में परिणाम आएगा कि वह बात जो आज हम नहीं मान पा रहे हैं, उसे मानने की स्थिति में पहुँच जाएँगे। अच्छा! पुनः उसका जो आचरण है, व्यवहार में प्रयोग करना है, उसमें समय लगेगा। किसी बात को सिद्धान्त रूप में मान लेना, एक स्थिति है और उसी माने हुए सिद्धान्त को व्यवहार में प्रयोग करना, दूसरी ऊँची स्थिति है। किसी भी बात को पहले सिद्धान्त रूप में बुद्धि में लाना चाहिए जैसे कि हमने प्रसंग उठाया, जो परमाणु सत्त्व-रज-तम प्रकृति है वह न तो हमारी है, न ईश्वर की। क्योंकि उसको न तो हमने बनाया, न ईश्वर ने ही उसको बनाया है। वह तो स्वतन्त्र है। परन्तु ईश्वर ने उसको लेकर पूरा संसार बनाकर खड़ा कर दिया और इधर जीवात्मा उसको लेकर एक तिल का दाना नहीं बना सकता। बताओ, पदार्थ हमारे हुए या ईश्वर के हुए? अब बताओ!

तर्क की दृष्टि से ले लो! जिस समय हमारा शरीर इस संसार में माँ के पेट से आया। उससे पहले तो शरीर था नहीं। जन्म लेने के उपरान्त बोध नहीं था, कालान्तर में हुआ। यह सृष्टि जब बनकर अच्छी तरह से हमारे जीने के लिए तैयार हो चुकी, खाने-पीने की वस्तुएँ भी तैयार हो गई होंगी तब हम जन्म लेते हैं। वह भी ईश्वर देता है तब। इतने काल के पश्चात् हमारा शरीर बनता है। इस स्थिति में जीवात्मा इस सृष्टि की रचना कैसे कर देगा? कुछ समझ में आया आपको। पुनः दोहराता हूँ।

जब हमारा शरीर बना, इससे पूर्व पूरी सृष्टि तैयार हो चुकी थी। ऐसा आप भी मानते होंगे, भौतिक वैज्ञानिक भी मानते हैं। जब पूरी सृष्टि तैयार हो जाती है, सूर्य, चन्द्रमा, जल, वायु, खाद्य पदार्थ, जीने के साधन सब उपस्थित हो जाते हैं तब मनुष्य आता है। अतः मनुष्यों के आने से पहले जो सृष्टि बनी है उसको किसने बनाया है, यह देखो! थोड़ी देर के लिए यदि कहें उसको सभी जीवों ने मिलकर बनाया तो यह भी ठीक नहीं, क्योंकि संसार के समस्त जीव मिलकर एक तिल का दाना नहीं बना सकते।

अब आप यह देखेंगे कि यह जो मनुष्य, पशु आदि शरीर मिला है, यह भी न्याय से मिला है। इसको थोड़ी देर के लिए छोड़ दें, तो भी इन सारे पदार्थों की रचना करने वाला, इनका रक्षण, पालन-पोषण सुरक्षित रखने वाला मनुष्य नहीं है, अपितु वह ईश्वर ही है। अतः इन सबका स्वामी ईश्वर है। हमको ये ईश्वर से मिले हैं। अतः हम इनके गौण स्वामी है। ईश्वर से मिले हुए पदार्थों को हम अपना मानते है क्योंकि हमको तो न्याय से मिले हैं। यद्यपि नई वस्तु बनाने में हमारा पुरुषार्थ, बल, प्रयत्न लगा है। उसमें हमारा कुछ ज्ञान का हिस्सा भी होगा पर वह सब इतना कम

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

है, नाम मात्र है। इसलिए उसका हम निषेध तो नहीं कर रहे हैं। परन्तु ईश्वर प्रदत्त साधनों को लिए बिना, हमने कोई नया पदार्थ अपनी बुद्धि या बल से बनाया हो, ऐसा नहीं है।

ईश्वर के दिए ज्ञान और ईश्वर की बनाई इस सृष्टि = दोनों को लेकर वैज्ञानिक आविष्कार करते हैं। केवल अपने ज्ञान, बल के आधार पर कोई वैज्ञानिक कोई आविष्कार नहीं कर सकता, कोई निर्माण नहीं कर सकता, असम्भव है। ईश्वर से उसको शरीर मिला, नस-नाड़ियाँ मिली, ज्ञानेन्द्रियाँ मिलीं, कर्मेन्द्रियाँ मिलीं। सूर्य, चन्द्रमा आदि का सन्तुलन बना। जीने की शक्ति बनी। वातावरण अनुकूल बना तब वैज्ञानिक खोज कर सका। इतना सब कुछ होने पर कुछ वस्तुएँ बना लीं और इसी को लेकर कहे जा रहे हैं मैंने बनाई, मैंने बनाई है। भले व्यक्ति ! तुम कर्म करने में स्वतन्त्र हो, थोड़ा ज्ञान-बल रखते हो, किन्तु उतने मात्र से कर क्या सकते हो? सारा कार्य तो ईश्वर की सहायता से कर रहे हो। देखो ! वे जो आविष्कार करते हैं, कोई निर्माण करते हैं, उसमें हमारा ज्ञान, बल इतना थोड़ा है कि उससे कोई भी कार्य नहीं हो सकता।

हमारे पास जो नाम मात्र का ज्ञान, बल है उनसे काम लेने का एक ढंग होता है। जैसे कि हमें किसी विद्वान् या ईश्वर से विद्या लेनी है तो उसमें हमारा स्वाभाविक ज्ञान आधार रूप में काम करेगा। किन्तु कब करता है? जब मन-बुद्धि-शरीर ठीक हों, नस-नाड़ियाँ ठीक हों, हम स्वस्थ हों तब ज्ञान-विज्ञान को प्राप्त करते हैं। समझ में आया? जब शरीर ठीक हो, नस-नाड़ियाँ ठीक हों, इन्द्रियाँ ठीक हों, बाहर का वायुमण्डल ठीक हो तब हम किसी से ज्ञान का ग्रहण कर पाते हैं और उसी समय हम बाहर के पदार्थों से विविध कार्यों को करने की सिद्धि करते हैं। भले ही विमान बनाओ। तो विमान से अमुक-अमुक प्रयोजन सिद्ध होंगे इसको सोचना, पुनः निर्माण करना; वह ईश्वर की ही सहायता से होता है।

आज यह बात मान ली गई है कि ये सब अपने-आप होता है, विकास हो रहा है। अब का मुझे ठीक से पता नहीं, सुना है कि विद्यालयों में पढ़ाया जाता है कि सृष्टि अपने-आप बनती है या आपको ठीक पता होगा क्या पढ़ाया जाता है?

साधक २— यही पढ़ाया जाता है। यही मान्यता है।

स्वामी जी — हम योग विद्या के लिए सुसज्जित अर्थात् इसके इच्छुक हैं, तब प्रमाणों के आधार पर, अपनी बुद्धि के आधार पर, ईश्वर को न मानने वालों की और स्वयं हमारे अन्दर जो ईश्वर का विश्वास नहीं होने देती हैं, उन मान्यताओं या कारणों का समाधान हमको करना होगा। यदि अच्छी प्रकार से इनका समाधान हो जाता है तो हम ईश्वर को स्वामी मानने में समर्थ हो जाएँगे। आपको इन बातों का विचार करना होगा कि यह जो स्व-स्वामि-सम्बन्ध है यह व्यक्ति के बन्धन का कारण बना हुआ है। ये शंकाएँ उभरती रहती हैं कि हम अपना नहीं मानेंगे तो ये-ये हानियाँ होंगी। ये भ्रान्तियाँ और इनका समाधान आपको समझ में आ गया होगा।

अब आपको यह देखना है कि हम शरीर, इन्द्रियाँ, विद्या, धन, सम्पत्ति को ईश्वर का मानकर प्रयोग कर रहे हैं या नहीं? यदि नहीं, तो पुनः ईश्वर-प्रणिधान की स्थिति में चलो। आप जब यह सोचते-मानते हैं कि सारी क्रियाओं को **सर्वक्रियाणां परमगुरावर्पणं** ईश्वर को समर्पित कर देना है और उनका कोई लौकिक फ़ल न चाहना तब ईश्वर-प्रणिधान सिद्ध होगा। एक क्रिया = चेष्टा और दूसरे क्रिया करने के साधन। अर्पित करना क्रिया है और शरीर, इन्द्रियाँ आदि साधन हैं। सारी क्रियाएँ हम इन्हीं साधनों से करते हैं। अब ये जो कार्य किए, वे ईश्वर-प्रदत्त साधनों से किए और इनको ईश्वर को समर्पित कर दें तथा सारे पदार्थों = शरीर, इन्द्रियाँ, मन, बुद्धि, बाहर की धन, सम्पत्ति जो

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भी कुछ है उनको हम ईश्वर का मानकर ईश्वर के आगे रख दें। जैसे कि हे ईश्वर ! यह सब कुछ आपने बनाया है। आपने बनाकर हमको दिया है। ऐसा हमने माना और पुनः इस स्थिति में जाकर ईश्वर की विशेषताओं को समझकर, ईश्वर के प्रति अति प्रेम, जिस प्रेम की अवस्था में कोई भी पदार्थ उसके तुल्य या अधिक दिखाई नहीं देता, उस प्रेम में तन्मय हो जाएँ।

अब पहले आपकी अनुभूति के सम्बन्ध में पूछ लें। आपको कभी ऐसा अनुभव होता है, कभी उस स्थिति में जाते हों जहाँ ईश्वर के तुल्य या अधिक प्रिय कोई पदार्थ दिखाई नहीं देता हो। आप अपना-अपना अनुभव बताएँगे।

साधक ३ – प्रायः ऐसा नहीं होता है।

साधक ८ – कई बार अनुभव होता है।

स्वामी जी – हाँ जी ! बताओ।

साधक ७ – प्रभु के तुल्य किसी भी वस्तु को हम नहीं मानते, नहीं जानते।

स्वामी जी – यह तो सिद्धान्त के रूप में ठीक है। परन्तु हमारा प्रसंग है अनुभूति के स्तर पर जाना। क्योंकि सिद्धान्त रूप में तो ये बातें कही जाती हैं, प्रचलन है, पर व्यक्ति के मन-वाणी और शरीर से इसका व्यवहार में प्रयोग होता हो; ऐसा नहीं है। यह मुख्य बात है।

साधक ३ – किसी काल विशेष में ईश्वर में अतिशय प्रेम उत्पन्न होता है। प्रायः ऐसा नहीं होता है।

स्वामी जी – जब तक आप समर्पण के इस सैद्धान्तिक ज्ञान को व्यावहारिक रूप नहीं दे देते। चौबीस घण्टे कहना चाहिए, रात्रि के निद्राकाल को छोड़ो अर्थात् दिनभर आप ऐसी स्थिति उत्पन्न नहीं कर सकते और चाहें कि ईश्वर से ज्ञान-विज्ञान मिले, ईश्वर हमारी समाधि लगवाए, तो ऐसा नहीं होगा। ये स्थितियाँ नहीं बन पाएँगी। हमारा लक्ष्य है ईश्वर-साक्षात्कार करना तथा औरों को करवाना। उसी के माध्यम से पूरे विश्व का कल्याण करना इसमें बना हुआ है। इसलिए यदि आप चाहते हैं कि हम ईश्वर-साक्षात्कार तक पहुँचें तो ये स्थितियाँ आपको व्यवहार में लानी ही पड़ेंगी। इसमें विकल्प नहीं है।

ध्यान देने की बात है - यद्यपि पढ़ने-पढ़ाने वाले कुछ अच्छे विद्वान्, उपदेशक, लेखक, संन्यासी-ब्रह्मचारी मिलेंगे। ये सब ठीक हैं परन्तु इन बातों को समझने और व्यवहार का रूप देने वाला व्यक्ति मिलना कठिन हो जाएगा। बहुत कम होंगे, वे भी कहाँ होंगे, यह खोज का विषय रहेगा। परन्तु ऋषियों की भाषा में, उनके संविधान में और जो मुझे भी समझ में आता है कि जब तक यह स्थिति नहीं आ जाती तब तक आप जो उपनिषद् की पंक्ति लगाते हैं -

नायमात्मा प्रवचनेन लभ्यो न मेधया न बहुना श्रुतेन। कठ. २/२३।

भावार्थ – ईश्वर न तो प्रवचन से, न मेधा बुद्धि से, न बहुत सुनने-पढ़ने से प्राप्त होता है। यद्यपि इनका निषेध नहीं है। वह कहता है इनके होते हुए भी यदि ईश्वर की दृष्टि में हम पात्र नहीं बनेंगे तो ईश्वर हमको ज्ञान-विज्ञान देकर समाधि नहीं लगवाएगा। इसलिए जिस स्थिति में ईश्वर यह ज्ञान-विज्ञान देकर समाधि लगवाकर अपना साक्षात्कार कराता है उस स्थिति में आपको स्वयं जाना पड़ेगा। वह स्थिति है कि हमको ईश्वर के तुल्य या ईश्वर से अधिक कोई भी पदार्थ प्रिय नहीं है। अब विराम ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८१ आत्मनिरीक्षण

मनोविकारोद्भव : श्रावण शु. १/२०६०-३०/७/०३

अब आप यह बताएँगे कि दिन में कभी आपकी वाणी में या मन में किसी घटना को देखकर कुछ क्रोध आता है या नहीं? हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ५– मन में कभी थोड़ा-बहुत आ जाता है।

स्वामी जी – पुनः आप क्या करते हैं?

साधक ५– कई बार तो उसको प्रयास करके रोकता हूँ और कई बार दूसरे कार्य में लगने से वह शान्त हो जाता है।

स्वामी जी – अच्छा! आप बताएँगे दिन में मन में क्रोध आता है या नहीं?

साधक ८– कभी-कभी आ जाता है, पुनः उस पर विचार करता हूँ। उसका समाधान ढूँढता हूँ तब तत्काल समाधान मिल जाता है और आगे के लिए सावधान हो जाता हूँ।

स्वामी जी – अच्छा! कभी वाणी में भी क्रोध आता है?

साधक ८– वाणी में भी आता हो, इसका तो ध्यान नहीं दिया।

स्वामी जी – अब आप बताएँगे। मन में क्या कभी क्रोध आता है जब आपकी इच्छा के विरुद्ध कार्य होता है?

साधक ६– आजकल की इस स्थिति में तो नहीं आता। पर यह नहीं कि कभी आता ही नहीं। जब कोई ऐसी स्थिति होती है तब आता भी है।

स्वामी जी – अब आप बताएँगे।

साधक ३– किसी की प्रतिकूल-क्रिया व्यवहार में देखने पर मन में दौर्मनस्य का होना, ऐसा होता है। वैसी स्थिति का अनुभव कभी होता है।

स्वामी जी – अच्छा!

साधक ३– मन में क्रोध आता है, इन दिनों ऐसा पकड़ में नहीं आया।

स्वामी जी – अच्छा! यह भी थोड़ा-थोड़ा क्रोध के ही अंश के रूप में आता है। क्षोभ के साथ में क्रोध दिखाई देता है।

साधक ३– यह अच्छा नहीं हुआ या लोगों ने अच्छा नहीं किया, पुनः उनके प्रति मन में क्षोभ का होना या खिन्नता होना; यह भाव तो अनुभव में आता है।

स्वामी जी – अच्छा! आप सुनाएँगे। मन में किसी मानसिक घटना को देखकर दिन में क्रोध आता है या नहीं आता?

साधक ४– द्वेष आता है।

स्वामी जी – तो पुनः उसके लिए क्या करते है?

साधक ४– पुनः उसको तुरन्त रोकने का उपाय करता हूँ और उस पर यह विचार बनाता हूँ कि द्वेष करना ही मूर्खता है।

स्वामी जी – कभी यम-नियमों के विरुद्ध जब आपके मन में उलटे विचार-वितर्क उठ जाते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं अथवा आप उठा लेते हैं तब आप उनसे युद्ध कैसे करते हो, कैसे हटाते हो। कौन बताएगा? आप बताओ –

साधक २– यही विचारता हूँ कि यह वितर्क है। कुछ क्षण के लिए तो उसे चलाता हूँ। पुनः इसका जो भी निराकरण या प्रतिकार होता है....।

स्वामी जी – हूँ।

साधक २– उसे उपस्थित करता हूँ, किन्तु कुछ काल पश्चात् पुनः यह विचारता हूँ कि यह वितर्क हैं, इसलिए छोड़ देता हूँ।

स्वामी जी – अच्छा ! जब आपके मन में यम-नियमों के विरुद्ध विचार आ जाते हैं तब आप क्या प्रयोग करते है?

साधक ५– कभी तो प्रतिपक्ष भावना से उसको हटाता हूँ और कभी दोष के क्रियान्वित होने पर उसमें क्या-क्या कुप्रभाव आएँगे? उसको विचार करके रोकता हूँ।

स्वामी जी – अच्छा !

साधक ५– और भी जो दूसरे मुख्य उपाय हैं उनका प्रयोग करता हूँ। मुख्य एक तो उस के कुप्रभाव को विचार करके विरुद्ध आचरण नहीं करता।

स्वामी जी – ठीक है !

साधक ५– और एक प्रतिपक्ष भावना।

स्वामी जी – अच्छा ! आप यह बताओ यह जो क्रोध आया, कभी मोह आता है, कभी अहंकार आता है, कभी काम वासना भड़क गई। तो आप बोलेंगे ये किसके गुण हैं?

साधक ६– इन सबको जीवात्मा ही उठाता है। ये जीवात्मा के ही गुण हैं।

स्वामी जी – इसके सम्बन्ध में आप अपना विचार बताएँ।

साधक ७– ऐसी स्थिति आए, ऐसा कोई अवसर ही नहीं आया।

स्वामी जी – वह तो ठीक है। आपसे एक प्रश्न पूछा जा रहा है सिद्धान्त के रूप में। यह तो हम जानते हैं कि ये उठते हैं। किसी में स्थूल रूप में और किसी में सूक्ष्म रूप में उठते हैं। या तो व्यक्ति मूर्छित हो जाए अथवा कोई उच्चकोटि का योगी बन जाए तब तो ये नहीं उठेंगे, अन्यत्र तो उठते ही हैं।

साधक ७– अविद्या के कारण उठते हैं।

स्वामी जी – हाँ ! अभिप्राय है कि अवस्था तो ऐसी होती है। काम, क्रोध आदि की स्थिति दिखाई दी या नहीं; थोड़ी देर के लिए इसको छोड़ दें। पर अभी पूछा गया है कि ये गुण किसके हैं? आप यह बताएँगे।

साधक ७– ये अविद्या के कारण होते हैं। जीवात्मा में अविद्या आती है और ये उभरकर सामने आ जाते हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! आप बोलेंगे।

साधक ८– मन के गुण हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! आप किसके गुण मानते है?

साधक ३– ये प्रकृति के हैं, ऐसा मानते हैं। क्योंकि जब तक जीवात्मा का प्रकृति के तमोगुण से सम्बन्ध है तभी तक प्रकट होते हैं। इस आधार पर प्रकृति के ही मानने चाहिएँ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अब ध्यान देंगे ! आपने यह बात मान ली है कि ये काम-क्रोध-लोभ-मोह-अभिमान रूपी वासनाएँ, हमारे गुण नहीं है। ये प्राकृतिक पदार्थों से हमारे अन्दर आ जाते हैं। हम यह मानकर चलें। ठीक है ! परन्तु प्रश्न है कि जिस समय क्रोध आता है तब अपना गुण दिखता है या किसी अन्य का ? आप ये बताएँगे –

साधक ३– कभी इतना ध्यान नहीं दिया।

स्वामी जी – क्यों ? पुनः सुनो !

साधक ३– क्रोध उभरकर आया।

स्वामी जी – तो वह अपना दिखता है या किसी और का गुण दिखता है ?

साधक ३– अपना ही दिखता है।

स्वामी जी – बात तो समझ में आई या नहीं आई ?

साधक २– मैं कुछ कहना चाहता हूँ।

स्वामी जी – हाँ !

साधक २– जीवात्मा के अन्दर इच्छा है। उसकी इच्छा में अविद्या या तमोगुण के कारण विकार उत्पन्न होता है। उसी से अनुचित इच्छा कर लेता है। यही लोभ आदि बन जाते हैं। ऐसे ही उसमें द्वेष है उसी से क्रोध, अमर्ष आदि बन जाते हैं।

स्वामी जी – इसका आधार द्रव्य कौन-सा माना जाए ? हम तो इस पर विचार कर रहे हैं। हमने द्रव्य का निर्णय देना है।

साधक २– ये कोई स्वतन्त्र गुण नहीं हैं।

स्वामी जी – नहीं तो पुनः गड़बड़ हो जाएगी।

साधक ३– गुण है तो द्रव्य होना चाहिए।

साधक २– जैसे हमारी आँख ठीक नहीं होने से या रंगीन शीशे में वस्तु केवल साफ दिखाई नहीं देती है। वहाँ न वैसा वस्तु का अपना रंग होता है, न ही वस्तु का रंग परिवर्तित होता है, परन्तु विशिष्ट दिखाई देता है।

स्वामी जी – अच्छा ! आप अपना विचार सुनाएँगे। क्या समझ में आया आपको ?

साधक १– किसके गुण हैं अथवा ?

स्वामी जी – हाँ ! यह जो माना जा रहा है काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि, जिनको हम दोष मानते हैं, हटाते हैं। जो हमारे लिए बड़े शत्रु जैसे हैं। हम यह जानना चाहते हैं ये किस द्रव्य के गुण हैं।

साधक १– ये तमोगुण, रजोगुण के ही समझ में आते हैं।

स्वामी जी – और कौन बोलना चाहेगा ?

साधक ४– सुना तो ऐसा ही है कि तमोगुण के हैं पर स्पष्ट रूप से समझ में नहीं आए हैं।

स्वामी जी – अच्छा ! इतना तो आभास होता है कि ये मेरे हैं। ऐसा तो दिखता होगा आपको ? जब ये उभरते हैं क्रोध, अभिमान आदि तब दिखते तो ऐसे हैं कि ये मेरे अंग हैं। मेरे ही स्वरूप हैं या नहीं दिखते ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– ऐसा दिखता है।

स्वामी जी – दिखने में तो ऐसा ही दिखता है न!

साधक ८– हाँ जी!

साधक ३– इसमें तो अस्मिता कारण बन जाता है। इसमें मन, बुद्धि आदि इतने संसर्ग में हैं कि पता नहीं चलता यह मेरा है, आत्मा का है या बुद्धि का है, मन का है।

स्वामी जी – अच्छा! अन्तर देखेंगे आप। कल्पना करते हैं जब हम एक पक्ष में इन काम-क्रोध आदि को तमोगुण, रजोगुण या प्राकृतिक पदार्थों के मान लेंगे और दूसरे पक्ष में हम अपना मानते हैं तब दोनों में क्या अन्तर पड़ता है? जब हम इनको प्राकृतिक पदार्थों का मान लेते हैं तब इनको उखाड़कर फेंक सकते हैं। यदि स्वाभाविक मानें तो नहीं फेंक सकते। क्योंकि जो नैमित्तिक हैं उनको उखाड़ दिया जाता है। क्या समझ में आया? जब प्रकृति का मानकर चलेंगे तब तो उखाड़ने में, हटाने में सरलता हो जाएगी और यदि अपना मानते हैं तो पुनः उखाड़ना और दूर हटा देना, यह सम्भव नहीं होगा।

साधक १– तो क्या इनको रोकने की एक प्रक्रिया यह भी हो सकती है कि ये मुझमें नहीं हैं?

स्वामी जी – हाँ! यह एक भाग है उसको रोकने का, उनको हटाने का।

साधक १– ऐसा सोचना?

स्वामी जी – हाँ! ऐसा मानना, सोचना और प्रयोग करते रहना कि ये गुण मेरे नहीं हैं। ये तमोगुण, रजोगुण से उत्पन्न होते हैं। काम-क्रोध, लोभ-मोह प्राकृतिक पदार्थों के हैं, ऐसा कह दो और ये मेरे नहीं हैं तो दूर हटाने में बड़ी सरलता होती है। यह है भी वास्तविकता। इसलिए यदि अपने स्वाभाविक मान लें तो उसमें कठिनाई होती है।

साधक १– तो इनको रोकने में अधिक बल लगेगा अथवा पृथक् मानने में अधिक बल लगेगा?

स्वामी जी – क्या कहा पुनः दोहराओ?

साधक १– जैसे कि मन के अन्दर क्रोध उठ रहा है तब एक प्रयोग इस प्रकार का करना कि क्रोध को मैं रोकूँ। इनको नहीं होने दूँगा। इस प्रकार इनको रोकने का प्रयास करना।

स्वामी जी – हाँ।

साधक १– और दूसरा प्रयोग इस प्रकार का होगा कि क्रोध से मैं पृथक् खड़ा हुआ हूँ। क्रोध मुझमें नहीं है, मेरे स्वरूप में नहीं है; ऐसा सोचना। इन दोनों में सरल उपाय कौन-सा है?

स्वामी जी – एक तो यह सोचना कि क्रोध मुझमें नहीं है।

साधक १– हाँ! मुझमें नहीं है। इस प्रकार से उससे पृथक् भाव कर लेना।

स्वामी जी – हाँ! एक तो यह बात है।

साधक १– दूसरा हो गया यह मन जड़ है और पुनः उसको रोकना।

स्वामी जी – किसको?

साधक १– मन को जड़ मान करके रोकना।

स्वामी जी – तो आप ये दोनों बातें एक साथ जोड़लो तो क्या बाधा आएगी? मन जड़ पदार्थ है और मैंने यह क्रोध जड़ मन में उत्पन्न कर दिया, अब उत्पन्न नहीं करेंगे। इस प्रकार दोनों को साथ मानकर प्रयोग हो सकता है।

साधक १– एक से भी तो काम चल सकता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – एक से कैसे काम चलेगा ?

साधक १ – जहाँ पर क्रोध है उसका अधिष्ठान उसी को मान लें।

स्वामी जी – हाँ !

साधक १ – मन में है तो मन को ही इसका अधिष्ठान मान लेंगे। अपने-आपको अधिष्ठान नहीं मानेंगे।

स्वामी जी – अभी आप जिस स्थिति में बोल रहे हैं यह एक भिन्न स्थिति है। किससे ? जो क्रोध उठता है उससे। अतः जब क्रोध उठ गया है उस काल में यदि विचार करें तब स्पष्ट हो सकता है कि वहाँ क्या मानकर चलना चाहिए ? अर्थात् उसको रोकने का क्या उपाय है, यह विचारने की बात है।

साधक १ – जिस समय क्रोध या अभिमान उठ रहा है उसी अवस्था में यदि मैं क्रोध को ही देखने लग जाऊँ। उसी में एकाग्र हो जाऊँ तो वह मेरे से भिन्न दूसरे की या दूसरी वस्तु हो जाएगी।

सम्पादक – वस्तुतः यह कोई नियम नहीं है कि अपने से भिन्न दूसरी वस्तु ही देखी जाती है या देखने मात्र से कोई वस्तु दूसरे की हो जाती है। अपने गुणों को भी देखा जाता है जैसे कि आत्मा अपनी इच्छा, प्रयत्न आदि को देखता है और इससे वे मन के धर्म नहीं हो जाते हैं। इसी प्रकार इच्छा, प्रयत्न आदि अपने व रूप, रस आदि दूसरों के गुणों को जानकर उन पर नियन्त्रण किया जाता है।

स्वामी जी – अच्छा ! क्रोध उठने से पहले उसको दूसरी जगह मानने लग जाएँ तो यह उससे अच्छा ज्ञान होगा। क्या समझ में आया ? क्रोध उठने से पहले ही आप यह बुद्धि बना लो कि यह मेरा गुण नहीं, यह प्राकृतिक पदार्थों का है तो और सरल होगा। अच्छा ! पुनः आपकी स्थिति आ गई अर्थात् क्रोध उठ खड़ा हुआ। इसमें जीवात्मा ने मन में प्रेरणा दी तब क्रोध उठ खड़ा हुआ। उठा तो जीवात्मा के कारण से है। ठीक है ! या आप कुछ और कहना चाहते हैं ?

साधक १ – मैं अब अपनी शक्ति को उस क्रोध को देखने के लिए लगा दूँ।

स्वामी जी – क्यों ?

साधक १ – अभी मैं उठा रहा हूँ क्रोध को। मेरी इच्छा, प्रयत्न से उठ रहा है।

स्वामी जी – हूँ।

साधक १ – अब मैंने अपना प्रयत्न या ज्ञान उसको देखने में लगा दिया तो उठाने वाला उठाने की दिशा से हट गया। अब क्रोध अपन-आप हट जाएगा।

स्वामी जी – ये तो हो गया।

साधक १ – क्रोध अपन-आप हट जाएगा।

स्वामी जी – हट तो जाएगा, क्योंकि उठाने वाला जीवात्मा है और वह लग गया क्रोध के देखने में, तो उठाने का कार्य बन्द हो गया। उसको चलाने वाला दूसरे काम में लग गया तो वह रुकेगा। जैसे कि आपको यह प्रशिक्षण दिया जाता है कि शान्ति से बैठकर देखो कि विचार कहाँ से आते हैं ? तो भिन्न-भिन्न योग्यताओं के आधार पर भिन्न-भिन्न व्यक्ति अपनी पृथक्-पृथक् स्थिति का वर्णन करते हैं। कोई कहता है मस्तिष्क से आते हैं, कोई कहता हृदय से आते हैं, कोई कहता है नस-नाड़ियों से आते हैं, कोई कहता है हमें पता नहीं किन्तु आते हैं। पर एक व्यक्ति कहता है कि मैंने ध्यान देकर देखा कि विचार कहाँ से आते हैं तो कहीं से कोई विचार नहीं आया। यह परिणाम निकला। क्यों ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १– उठाने वाला मैं ही आत्मा हूँ।

स्वामी जी – जो उठाने वाला जीवात्मा था। वह यह देखने में लग गया कि विचार कहाँ से आते हैं तो इस अवस्था में वह उठेगा ही नहीं। बात समझ में आई? जीवात्मा इस बात में लग गया कि मैं देखता हूँ विचार कहाँ से आते हैं? तो विचार उठाने वाला भी वही है और देखने वाला भी वही है। ठीक है! जब वह देखने में लग गया तो जो निरन्तर विचार उठाने में जो इच्छा-प्रयत्न आदि लग रहे थे, वे देखने में लग गए। इसलिए उसको कोई विचार दिखाई नहीं देगा। अब प्रयोग कर के देख लो।

साधक २– यह नियम क्रोध पर भी लग सकता है।

स्वामी जी – क्रोध पर कैसे लगेगा? जैसे कि क्रोध उठा पुनः?

साधक २– हृदय से या कहाँ से उठ रहा है?

स्वामी जी – हाँ!

साधक २– कौन क्रोध कर रहा है। कहाँ से?

स्वामी जी – हाँ! उन्होंने जो बात उठाई थी उससे मिलती-जुलती है आप वाली बात भी। एक तो क्रोध कहाँ से उठ रहा है एक स्थिति।

साधक २– कौन कर रहा है।

स्वामी जी – अच्छा! पुनः आगे वाली दूसरी यह है कि इसको कौन उठा रहा है? तब वही स्थिति हो जाएगी।

साधक २– इससे तो आत्मा का सिद्ध हो जाएगा।

स्वामी जी – आत्मा का कैसे सिद्ध होगा?

साधक २– जैसे कि विचारों को उठाने वाला आत्मा है और विचार उसी के हैं वैसे ही क्रोध भी उसी का हो जाएगा।

स्वामी जी – न। ऐसा नहीं है। इसको इस रूप में लेंगे जैसे कि आँख को खोल रहा हूँ और इसको देख रहा हूँ। तो आँख तो मुझसे भिन्न है पुनरपि खोल रहा हूँ। अब कोई मान ले कि आँख स्वयं खुल रही है, तो ऐसी ही यह बात है कि विचार स्वयं उठ रहे हैं। पुनः क्रोध की बात आई। अब वह आत्मा का गुण माना जाए जैसे कि आपने एक पक्ष उठाया या मन का गुण माना जाए? इसका उत्तर यह होगा कि जैसे मुझसे आँख भिन्न है पुनरपि खोल लेता हूँ और बन्द कर लेता हूँ वैसे ही क्रोध प्राकृतिक पदार्थ मन में रहता है, मन का है और जीवात्मा उसको उठाना चाहता है तब उठता है, जब नहीं चाहेगा तब नहीं उठाएगा। दूसरी जगह होती हुई अर्थात् उसकी न होती हुई भी, उसके द्वारा उठाने योग्य वस्तु नहीं उठाने पर नहीं उठेगी। उठाने या न उठाने मात्र से उसका गुण है या नहीं; यह निर्णय नहीं होगा। दूसरे के गुण को उठाने वाला दूसरा भी हो सकता है।

साधक २– क्रोध करना तो आत्मा का धर्म हो गया।

स्वामी जी – कर्त्ता तो आत्मा ही बनेगा। इच्छा-प्रयत्न करेगा तब जाकर क्रोध उठेगा। यह तो उसका काम है। अच्छा, अब देखो! आप जो ईश्वर के विषय में सोचते हैं उसमें आपके मन में यह बात पूरी बैठती है कि ईश्वर कोई पदार्थ है या सन्देह रहता है?

साधक २– यह बात नहीं बैठती है।

साधक ३– प्रायः सन्देह नहीं होता है। कोई वस्तु है, कोई पदार्थ है; ऐसा लगता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अच्छा ! एक स्थिति यह है कि शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण के आधार पर हमको मानना पड़ रहा हो। दूसरी स्थिति है प्रमाणों के आधार पर शत-प्रतिशत बात हमारी बुद्धि में बैठती हो। इसको परीक्षा करके देखो, इनमें कौन-सी स्थिति है ?

साधक २ – शब्द-प्रमाण या अनुमान-प्रमाण की बात माननी पड़ रही है, बैठती नहीं।

स्वामी जी – आप अपना बताओ, क्या स्थिति रहती है ?

साधक ४ – जैसा उसका स्वरूप शब्द-प्रमाण से जाना है वैसा बुद्धि में बैठता तो नहीं है, पुनरपि मान इसलिए रहे हैं क्योंकि अन्य सम्प्रदायों के द्वारा ईश्वर का जो स्वरूप बताया जाता है उसके विषय में निर्णय हो गया है कि कम से कम वैसा तो नहीं हो सकता।

स्वामी जी – हाँ ! ठीक बात है।

साधक ४ – परन्तु वैदिक धर्म में भी जो बताया जाता है वह भी कभी-कभी समझ में नहीं आता। वहाँ लगता है कि जैसा वर्णन किया गया, ऐसा विचित्र स्वरूप कैसे हो सकता है ?

स्वामी जी – हाँ ! ईश्वर के अन्दर गुणों की इतनी अधिकता है कि हमारी बुद्धि की सीमा में नहीं आती है। अर्थात् व्यक्ति का ज्ञान न्यून तथा अपरिपक्व होने से उसको संशय होता रहता है। यद्यपि संशय होता है, पुनरपि हम उसको दूर कर लेते हैं। अभ्यास करते-करते वह संशय कम होता जाता है। इसलिए प्रमाणों से पुनःपुनः संशय का समाधान करो। धीरे-धीरे उस संशय की स्थिति ढीली पड़ती जाएगी और एक दिन वह समाप्त हो जाएगा। उदाहरण के लिए जैसे कहते हैं - ईश्वर अनन्त है। किस दृष्टि से ? देश की दृष्टि से ईश्वर.....।

साधक ३ – अनन्त है।

स्वामी जी – अनन्त है। तो आपके मन में कभी ऐसी शंका नहीं होती कि भाई ! अनन्त कैसे होगा ? कहीं न कहीं तो सीमा होगी ही। ऐसा कुछ सन्देह नहीं होता ?

साधक १ – बुद्धि चकरा जाती है, स्वामी जी !

स्वामी जी – कुछ है न चक्कर की बात ! ऐसी विचित्र है या नहीं है ?

साधक १ – बुद्धि में नहीं बैठती।

स्वामी जी – हाँ !

साधक १ – पूरी नहीं बैठ पाती अनन्त वाली बात।

स्वामी जी – अच्छा ! अब यह देखना है उसमें क्या बाधा है ? जब नहीं बैठती तो कोई बाधा तो होगी ?

साधक १ – मैं तो कोई कल्पना नहीं कर सकता। हमें कोई पदार्थ ही नहीं समझ में आता कि जिसका अन्त ही न हो।

स्वामी जी – अच्छा !

साधक १ – देश की दृष्टि से।

सम्पादक – केन्द्र से चलते-चलते कहीं जाकर एकदेशीवस्तु की हो तो सीमा समाप्त हो जानी चाहिए। जिसका कहीं आदि नहीं, उसका कहीं अन्त भी नहीं होता है। इस हेतु से ईश्वर की अनन्तता सिद्ध होती है क्योंकि एकदेशी वस्तुओं का आदि सदा और सर्वत्र प्रत्यक्ष सिद्ध रहता है।

स्वामी जी – अच्छा ! एक बात है। आपने कभी यह देखा कि किसी पदार्थ की सीमा ही न हो ? कहीं तो पदार्थ को सीमा-सहित हो जाना चाहिए; ऐसा ही तो मानते हैं। ऐसा ही आता है बुद्धि में ?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक १ – उसको सीमायुक्त हो जाना चाहिए।

स्वामी जी – हो जाना चाहिए। अच्छा ! उसके आगे क्या है ?

साधक १ – रिक्त स्थान।

स्वामी जी – अच्छा ! रिक्त स्थान की कोई सीमा न हो; यह भी तो समझ में नहीं आता।

साधक १ – रिक्त स्थान तो रिक्त ही है उसकी क्या सीमा होनी !

स्वामी जी – हाँ ! (एक असीम पदार्थ तो आ गया समझ में।) मधुर हँसी!!!

साधक ३ – ऐसा ही ईश्वर को भी सीमायुक्त मानते हैं।

स्वामी जी – यह भी तो बात उठेगी या नहीं उठेगी ? (प्रश्न तो बनेगा ?)

साधक १ – यह नहीं उठती।

स्वामी जी – यह क्यों नहीं उठती ?

साधक १– यहाँ तो पदार्थ की चर्चा है।

स्वामी जी – पदार्थ के अभाव की भी तो चर्चा है। अभाव की क्यों नहीं उठेगी ? अच्छा ! इसका एक समाधान तो हमारे सामने स्पष्ट रूप से आता है, जैसे कि ईश्वर अनादि है, जीवात्मा अनादि आदि। उसमें तो हम सिद्ध करते हैं ईश्वर अनादि है, क्योंकि उसका... ?

साधक ३ – कारण नहीं है।

स्वामी जी – उसका निमित्त कारण, उपादान कारण, साधारण कारण नहीं है। ऐसे ही सिद्ध करते हैं कि जिस-जिस पदार्थ के निमित्त आदि तीन कारण होते हैं वह-वह उत्पन्न होता है और जिस-जिस के ये तीन कारण नहीं होते, वह-वह उत्पन्न ही नहीं होता। **कारणाभावात् कार्याभावः**। यह भी कठिन है। सरल तो यह भी नहीं है। पदार्थ कभी उत्पन्न ही नहीं हुआ है; यह बात भी बुद्धि में पर्याप्त बल लगाने पर बैठती है या नहीं ? आप तो बैठा लेते होंगे। प्रकृति के जो परमाणु हैं वे अनादि हैं; यह तो आपको बैठ जाता होगा ?

वैज्ञानिक वर्मा जी – अनादि नहीं है।

स्वामी जी – कौन ? टूटते-टूटते जो अन्तिम में बच जाता है वह भी नहीं ?

वैज्ञानिक वर्मा जी – जो अभी तक दिखे हैं वे अन्तिम नहीं हैं।

स्वामी जी – वह तो उत्पन्न होते हैं।

वैज्ञानिक वर्मा जी – हाँ ! उनका उत्पन्न होना देखा जाता है।

स्वामी जी – अच्छा ! एक बात है जो टूटते-टूटते अन्तिम रूप में आएगा। कोई भी आएगा, यह तो आप भी मानते होंगे ?

वैज्ञानिक वर्मा जी – हाँ ! अन्तिम रूप में आएगा।

स्वामी जी – अच्छा ! टूटते-टूटते जो अन्त में आएगा, उसकी तो उत्पत्ति नहीं मानी जाएगी।

वैज्ञानिक वर्मा जी – उसकी उत्पत्ति का प्रश्न अभी इसलिए उठा नहीं है कि अभी वैसा प्रसंग कोई आया नहीं।

सम्पादक – सार्वजनिक हँसी !!! हँसी की बात इसलिए आई कि यह केवल बुद्धि से ही जानने योग्य पदार्थ है क्योंकि वस्तुतः वह स्थिति प्रलय की होगी। अतः उसको देखने वाला कोई बचेगा ही नहीं। जबकि वैज्ञानिक महोदय उसका निर्णय प्रत्यक्ष रूप में हो सकने की सम्भावना व्यक्त कर

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहे हैं। यद्यपि उनकी सम्भावना अनुचित नहीं कही जा सकती।

वैज्ञानिक वर्मा जी – एक और बात इसके अतिरिक्त है कि आकाश का कोई अन्त नहीं है।

स्वामी जी – आकाश रिक्त स्थान है या कोई पदार्थ है?

वैज्ञानिक वर्मा जी – आकाश दो हैं। एक आकाश वह है जो पृथ्वी आदि सृष्टि के बनने के पहले विद्यमान था और प्रत्येक सृष्टि के उत्पन्न होने के लिए उसकी आवश्यकता थी। उस आकाश की कोई सीमा नहीं है।

स्वामी जी – वह तो रिक्त जगह होती होगी।

वैज्ञानिक वर्मा जी – नहीं। रिक्त स्थान तो है किन्तु केवल रिक्त स्थान से ज्यादा (विशेष) है। यदि आकाश रिक्त से विशेष नहीं होता तो वहाँ कोई पदार्थ नहीं जा सकता।

स्वामी जी – नहीं। हम यह तो मानते हैं कि जो ठोस पदार्थ हैं वे स्थान को घेरते हैं। इसलिए उनके लिए रिक्त स्थान चाहिए। किन्तु वह रिक्त स्थान स्वयं कोई पदार्थ नहीं है। वह तो रिक्त है, अभाव है। जैसे कि वायु है। यह धक्का देती है और इसमें विविध गुण हैं। इसलिए यह पदार्थ बन गया। यह तो वस्तु है। ऐसे ही वह आकाश जिसको इस शब्द (ताली बजाकर - इस ध्वनि) गुण वाला मानते हैं वैदिक परम्परा में।

वैज्ञानिक वर्मा जी – वैदिक परम्परा में।

स्वामी जी – वह आकाश जो तन्मात्र अथवा परमाणुओं से बना, वह तो एक द्रव्य है। वह उत्पन्न भी होता है और नष्ट भी होता है।

वैज्ञानिक वर्मा जी – विज्ञान उससे ठीक उलटा है। विज्ञान कहता है कि जब ये सृष्टि बनी। तब इसको स्थान की अपेक्षा थी।

स्वामी जी – अच्छा! चलो। (समय समाप्त, पुनः आगे कभी) अब विराम॥

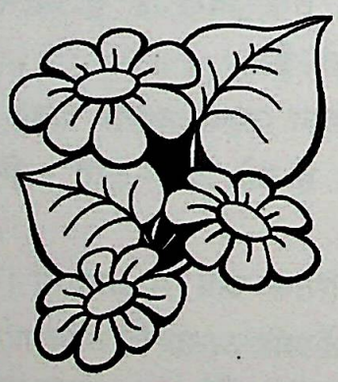

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८१

यज्ञीयोपदेश

अनुष्ठानदोष : श्रावण शु. २/२०६०-३१/७/०३

हम जिस कार्य को करते हैं उसके प्रयोजन को सदैव देखते रहना चाहिए। अर्थात् इस कार्य को हम इसलिए कर रहे हैं कि इससे मेरा यह प्रयोजन पूरा हो जाएगा। जब व्यक्ति के मन में कार्य का प्रयोजन अच्छी प्रकार से उपस्थित रहता है, वह समझता-मानता है तब उस कार्य को यथा शक्ति, तप-त्याग के साथ करता है। इसके साथ यदि कार्य के विषय में व्यक्ति यह मानता, समझता है कि इसको न करने से मेरा प्रयोजन सिद्ध नहीं होगा तथा मेरी और अन्यों की हानि ही होगी, बाधा उपस्थित होगी, कष्ट होगा तो वह उस कार्य को छोड़ता नहीं। छोड़ने से हानि प्रतीत होती है।

यदि आप योगाभ्यास, ईश्वर उपासना के फल को जानते-मानते हैं, अच्छी प्रकार से समझ गए हैं तब आप बिना किसी के दबाव, आशंका व आलस्य-प्रमाद के करते रहेंगे। कोई रोकना चाहे आपको, तो उसके विरुद्ध अपनी शक्ति-सामर्थ्य के अनुसार आप बल लगाएँगे और प्रयत्न करेंगे कि मैं इस कार्य को न छोड़ूँ। मैं इस कार्य को करना बन्द न करूँ क्योंकि यदि मैंने इस कार्य को छोड़ दिया अथवा विरुद्ध कार्य किया तो इसके अत्यन्त दुःखजनक परिणाम निकलेंगे, उससे मैं बच नहीं सकता।

इसी स्थिति में यदि व्यक्ति देखता है कि ईश्वर उपासना का जो फल है, उपलब्धि है; यह तो अन्य कार्य से भी सिद्ध हो जाएगा तब वह ईश्वर की उपासना को छोड़कर अन्य कार्य को करना प्रारम्भ करेगा। किन्तु जो व्यक्ति यह मानता है कि ईश्वर की उपासना, योगाभ्यास करने, समाधि लगाने से जो प्रयोजन सिद्ध होता है, जिस नित्यानन्द की प्राप्ति, समस्त दुःखों की निवृत्ति होती है वह अन्य किसी उपाय या कार्य के करने से नहीं होती। अब व्यक्ति ईश्वर उपासना को छोड़कर अन्य कार्यों से अपना मुख्य प्रयोजन सिद्ध करने का प्रयास नहीं करेगा।

आप यदि इन सारे प्रकारों को नहीं जानते तो योगमार्ग को छोड़ जाएँगे। योगमार्ग पर नहीं चलेंगे। अतः जब आप स्वयं को उस स्थिति में ले जाएँगे तब कहेंगे - **नान्यः पन्था विद्यतेऽयनाय।** यह तो ईश्वर का उपदेश है, शब्द-प्रमाण है। नित्यानन्द की प्राप्ति और दुःखों से छूटने का अन्य कोई उपाय नहीं है। यदि है ही नहीं, तो इसको छोड़कर कहाँ जाऊँ? पुनः वह व्यक्ति इसी प्रयोजन को सामने रखकर पूर्णरूपेण इसकी सिद्धि के लिए तप-त्याग, यम-नियमों का पालन, निष्काम कर्म आदि सब करता है।

अब आपसे एक प्रश्न है। अपना-अपना आत्मनिरीक्षण करते हुए उत्तर देंगे -

क्या आपने इस प्रकार से विचार कर लिया है कि मुझे योगी बनना है, उसका यह फल है। योगी नहीं बनेंगे तो यह हानि है या इसका कोई विकल्प आपने ढूँढ लिया, जिससे बिना योगी बने भी यह लाभ हो जाए और हानि से भी बच जाएँ। यदि ढूँढा तो वह क्या है? आप बोलेंगे -

साधक ३- अपने ज्ञान के अनुसार ऐसा समझ में आता है कि योग विद्या को अच्छी प्रकार से जाने-समझे बिना, सुख-शान्ति के लिए और कोई दूसरा विकल्प या रास्ता नहीं है। ऐसा अब समझ में आता है।

स्वामी जी - इस ओर से आप बोलेंगे, क्या स्थिति है?

साधक २- विचारने पर इसी प्रकार की स्थिति देखने में आती है पर जब हम इससे प्रेरित

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होकर पुरुषार्थ करने लगते है तब कुछ कठिन लगने लगता है, सन्देह भी होता है और सफलता भी नहीं मिलती तो विचारणीय हो जाता है।

स्वामी जी – हाँ ! इतना स्तर तो आपने अपना बना लिया कि यह दिखने लगा, वास्तव में विचारते समय ये मान्यताएँ ठीक सिद्ध होती हैं, किन्तु जब आचरण में लाने लगते हैं तो कठिनाइयाँ सामने आ जाती हैं, बाधित हो जाते हैं। ये जो कठिनाइयाँ आती हैं और संशय होता है, इनके विषय में भी यथार्थ ज्ञान होना चाहिए कि इस उद्देश्य को लेकर चलने पर हमारे सामने कठिनाइयाँ आ रही हैं किन्तु यदि हम कोई अन्य प्रयोजन सामने रखकर चलें, धन-सम्पत्तिशाली बन जाएँ, राजा-महाराजा बनें, उससे सुख मिलेगा आदि प्रयोजन लेकर चलने लगे तो क्या उसमें कठिनाई नहीं आएगी ? क्या समझ में आया ?

साधक २– अन्य कार्य करेंगे तब भी कठिनाई आएगी।

स्वामी जी – क्या ये कठिनाइयाँ नहीं आतीं ?

साधक ३– वहाँ भी आती हैं।

स्वामी जी – तो यह तुलनात्मक रूप से निर्णीत कर लिया जाता है कि जो धनवान् बनते हैं, राजा बनते हैं, अन्य कोई लौकिक उन्नति करते हैं उनमें ऐसा कोई भी स्तर कहीं नहीं मिलता जहाँ कठिनाई न आती हो। न आए, असम्भव बात है। कठिनाई तो आएगी। जैसे सत्य बोलने वाले के समक्ष कठिनाई आती है वैसे झूठ बोलने वाले के समक्ष भी कठिनाई आती है। इसीलिए यह न मानना कि झूठ बोलने वाला बोलता चला जाता है और उसके सामने कठिनाई न आती हो। ऐसा नहीं है। समझ में नहीं आया ? सत्य बोलने वाले के समक्ष कठिनाई आती है तो क्या झूठ बोलने वाले के समक्ष ऐसी कठिनाई नहीं आती ? आप प्रयोग करके देख सकते हैं सत्य बोलने वाले के समक्ष तो उलझन कभी-कभी आती है। प्रायः शान्ति रहती है। किन्तु यह झूठ बोलने वाला तो दिनभर कठिनाइयों में डूबा रहता है। क्यों माताओं ! ठीक है ?

यह आप देख सकते हैं कि चलते-फिरते मान लो किसी काम के लिए एक झूठ बोल दिया और पता चला कि मेरी यह बात प्रकट हो सकती है। किसी को ज्ञात हो सकती है कि तूने झूठ बोला है। पुनः उसे छिपाने के लिए बीस जगह और झूठ बोलेंगे। जिस-जिस से बात बाहर निकलने की सम्भावना होगी उस-उसको समझाएँगे। सर्वत्र दौड़-धूप रहेगी। खाते-पीते, सोते-जागते यहाँ तक की व्यापार या सामान्य समय में भी वही विचार आते रहेंगे। कैसे रक्षा होगी, इसी चिन्ता में पड़े रहेंगे या उदास बैठे रहेंगे। अब बताओ ! कितनी कठिनाई है झूठ बोलने वाले को।

एक घटना भी सुना देता हूँ। जब यह बात चल रही थी कि सत्य बोलना लाभप्रद है और असत्य बोलना हानिकारक है। तब यह बात भी आ गई कि एक झूठ को बोलकर उसको छिपाने के लिए अनेक झूठ बोलने पड़ते हैं। उसके पश्चात् भी यह संशय बना रहता है कि यह बात दबेगी या नहीं ? तो सत्यपाल जी कहने लगे कि यह घटना तो मेरे साथ भी घट चुकी है। जैसे कि उन्होंने बताया - एक बार किसी व्यक्ति ने मुझसे मेरी कार मांगी और मैंने मना कर दिया। मैंने यह बहाना बनाया कि मेरा चालक बीमार है जबकि वह बीमार नहीं था। इसके पश्चात् मैं सोचने लगा कि कहीं वह व्यक्ति ड्राईवर से जाकर पूछ बैठे तो ? इससे तो मेरा झूठ पकड़ा जाएगा और वह कहेगा सत्यपाल झूठ बोलता है। तब इसके पश्चात् उन्होंने भाग-दौड़ करके पता नहीं क्या किया। उन्होंने चालक से कहा होगा कि यदि तुमसे कोई पूछे कि तुम्हारा स्वास्थ्य ठीक नहीं है तो तुम हाँ बोल देना। ठीक है !

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अब आगे बढ़ते हैं। हम इस बात को विचार रहे थे कि जो संशय होते रहते हैं। उसमें कारण है जीवात्मा अल्पज्ञ है, थोड़ा जानता है। ईश्वर के उपकरण और ईश्वर की विद्या से अपने कार्यों को सिद्ध करता है और उसके अभाव में यह पुनः पुनः अविद्या की चपेटें खाता रहता है। तो इसको कार्य करते समय किसी विषय में सन्देह होना कोई नई घटना नहीं है। स्वभाव से सन्देह तो होगा। कहीं अधिक, कहीं कम। ऐसा होता रहेगा परन्तु प्रयत्न करने पर हम एक स्थिति पर पहुँच जाएँगे - ईश्वर में, मुक्ति में और मुक्ति के साधनों में सन्देह नहीं रहेगा। ऐसी स्थिति में पहुँच जाएँगे। अन्य अनेक विषयों में सन्देह होता रहे तो कोई बात नहीं, इनमें नहीं रहना चाहिए।

अब दूसरे क्षेत्र में चलो ! जहाँ करोड़ों रुपयों का व्यापार होता है, क्या वहाँ मध्य-मध्य में सन्देह नहीं होता? होता है। धारावाही होता है। दिन-रात सोचते रहते हैं - यह हानि हो सकती है, वह हानि हो सकती है। ऐसा हो सकता है, वैसा हो सकता है। कमाए हुए धन को कोई छीन ले जाए तो, चोरी हो जाए तो? सरकार से भय रहता है कहीं छापा न मार ले? कम पूँजी, कम समय लगाने पर धन्धा चौपट होने का भय, कर्मचारियों की हड़ताल का भय हृदय में चौबीसों घण्टे बना रहता है। अब बताओ, क्या करोगे? इसलिए ये प्रवृत्तियाँ तो अल्पज्ञ, अल्पशक्तिमान् जीवात्मा के साथ सदा रहती हैं। अतः कभी निराशावादी नहीं होना चाहिए।

अब हम एक मन्त्र का प्रयोग करेंगे जिसमें कहा है कि हम योगी बन जाएँगे, समाधि को प्राप्त कर लेंगे तो हमको क्या मिलेगा, क्या उपलब्धि होगी? यदि व्यक्ति को यह पता चल जाए कि जिस ईश्वर ने कहा कि मेरी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करो और उसी ने कहा कि इससे मेरा साक्षात्कार होता है, अज्ञान और क्लेश नहीं पीसते। तो व्यक्ति के मन में बात बैठ जाती है कि योगी बनना चाहिए।

अब **यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि ....** मन्त्र के ऊपर विचार करेंगे। तो आप बताएँगे कि इसका अर्थ स्मरण है?

साधक ५ – लगभग स्मरण है, स्वामी जी !

स्वामी जी – क्या है?

साधक ५ – यस्मिन्त्सर्वाणि भूतानि आत्मैवाभूद्विजानतः ।
तत्र को मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः । यजु.४०/७ ।

जो व्यक्ति **यस्मिन्** इस ईश्वर में **सर्वाणि भूतानि** सभी प्राणियों को **आत्मा एव अभूत्** आत्मा के स्वरूप में देखता है। इस प्रकार जो जानता है उस व्यक्ति में किसी के प्रति शोक और मोह नहीं हो सकते।

स्वामी जी – अब थोड़ा-सा अन्तर दिखाई देता है। हाँ जी ! आप बोलेंगे। आपको अर्थ स्मरण हो तो सुनाएँ और तुलनात्मक देखना है उन्होंने जो बोला उसमें कोई कमी तो नहीं रह गई?

साधक ३ – यस्मिन् सर्वाणि भूतानि आत्म एव अभूत् अभी स्पष्ट नहीं कर पा रहा हूँ।

स्वामी जी – और आप सुनाएँगे।

साधक १ – यस्मिन् इन ज्ञान में **सर्वाणि भूतानि** सभी प्राणी मात्र **आत्म एव अभूत** आत्मवत् हो जाते हैं। **तत्र कः मोहः** उस ज्ञान की अवस्था में क्या मोह **कः शोक** और क्या शोक **एकत्वम् अनुपश्यतः** सर्वत्र एक व्यापक ईश्वर को **विजानतः** देखने वाले को; इस तरह देखने वाले को क्या मोह और शोक अर्थात् कोई मोह और कोई शोक नहीं होता।

स्वामी जी – अब आप मन्त्र के एक-एक शब्द को लेकर बोलेंगे ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ७– यस्मिन् सर्वाणि भूतानि ज्ञान के अन्दर समस्त प्राणी **एकत्वम् अनुपश्यतः** सब को एक दृष्टि से देखा जाता है। जो यह जानता है परमपिता परमात्मा सब भूतों के अन्दर विद्यमान है उस व्यक्ति के लिए कोई शोक, मोह आदि नहीं होते।

स्वामी जी – अब हमने यह विचार करना है कि **यस्मिन्** किसका विशेषण है? आपने तो ज्ञान का विशेषण माना और दूसरा पक्ष है ईश्वर का विशेषण माना जाना चाहिए। क्या समझ में आया?

साधक ३– महर्षि जी के भाष्य में आता है **यस्मिन् परमात्मनि ज्ञाने वा।**

स्वामी जी – हाँ! उसमें यह मोड़ देना पड़ेगा ब्रह्म का ज्ञान होने पर। वहाँ धर्म शब्द भी है।

साधक ३– यस्मिन् परमात्मनि ज्ञाने वा।

सम्पादक – यस्मिन् परमात्मनि ज्ञाने धर्मे वा। यजु. संस्कृत भाष्य।

स्वामी जी – वहाँ एक धर्म शब्द होना चाहिए। हमको यह अर्थ लेना है जिस ईश्वर के जान लेने पर मनुष्य-पशु आदि सारे प्राणी अपनी आत्मा के तुल्य दिखाई देते हैं। उनके लाभ-हानि, सुख-दुःख, मान-अपमान अपने जैसे दिखाई देते हैं। तो इस प्रकार जानने वाले व्यक्ति के मन, आत्मा, जीवन में अज्ञान नहीं रहता और शोक-क्लेश नहीं होते; यह फल हो गया।

अब आप दोहरा लो –

एक बात का ध्यान रखो! आपसे दर्शन, वेद, उपनिषद् चाहे जो कुछ भी झट पूछा जाएगा। यदि आप ऐसा मानकर चलेंगे कि जब चाहे हमसे कोई बात पूछी जा सकती है तब तो आप सज्जा करेंगे, आवृत्ति करेंगे। यदि आपसे कुछ पूछा न जाए तब आप जहाँ के तहाँ बैठे रहेंगे। ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र में उस ढंग से प्रगति नहीं हो पाएगी। आपको कुछ भी स्मरण नहीं होगा। आप कुछ प्रयास भी नहीं करेंगे। जो मन्त्र-सूत्र यहाँ प्रयोग में आ रहे हैं उनको पुनः देखेंगे भी नहीं। ये सारे दोष आ जाएँगे। जैसे कि अभी आप में से किसी ने ठीक नहीं सुनाया तो अनुभव कर रहे होंगे कि यह तो अच्छा नहीं रहा। अतः बहुत अधिक न हों परन्तु प्रमुख-प्रमुख मन्त्र तो व्यक्ति को बहुत अच्छे ढंग से अर्थ सहित स्मरण होने चाहिएँ।

तब यहाँ पर हमको पता चला कि ईश्वर बार-बार कहता है मेरी स्तुति-प्रार्थना-उपासना करो और जब व्यक्ति मुझको जान लेता है **यस्मिन् सर्वाणि भूतानि** वह सारे प्राणियों को आत्मा के तुल्य देखता है। यह क्षमता व्यक्ति में आ जाती है। उस व्यक्ति के जीवन में, आत्मा या मन में अज्ञान नहीं रहता और उसे शोक व क्लेश नहीं पीसते; यह फल है।

जब आप ऐसे समझेंगे तब इस प्रयोजन के लिए आप पूरा बल लगाएँगे। तपस्या आदि सब प्रकार से पुरुषार्थ करेंगे। अब जब आपके मन में कोई ऐसी स्थिति नहीं होती तो कोई बल लगाने की बात, तप-त्याग करने की बात, मन-इन्द्रियों के जीतने की बात आपके पास नहीं रहेगी। इसलिए फल को सामने रखो या उसके अभाव में आने वाली आपत्ति को सामने रखो। दोनों प्रकार से प्रवृत्ति-निवृत्ति चलती रहती है। जहाँ फल मिलेगा वहाँ प्रवृत्ति बनी रहेगी। दिन-रात बनी रहेगी। वहाँ व्यक्ति कोई आवेदन (शिकायत) नहीं करेगा, बहाने नहीं बनाएगा। यदि आपत्ति आने की सम्भावना दिखाई दी अर्थात् हमने ऐसा नहीं किया तब यह हानि होगी; उस स्थिति में व्यक्ति आपत्ति को रोकने के लिए एड़ी से चोटी तक बल लगाएगा।

अब देखो! हम मन्त्र का प्रयोग करेंगे। अर्थ को देखो, मन में रहता है या नहीं?

ओऽऽ म् यस्मिन्ऽऽ सर्वाऽणिऽऽ भूताऽनि आत्मऽऽ एव अभूत् ऽऽविजानतः ऽ।
तत्रऽ कोऽऽ मोहःऽऽ कःऽ शोकऽऽ एकत्वमनुपश्यतःऽऽ ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने ऐसे मन्त्र को बोला, गाया। अब साधक की स्थिति को देखो। ध्यान देना, साधक अर्थ का विचार करते समय प्रथम पुरुष को मध्यम पुरुष में परिवर्तित कर देता है और अर्थ को इस ढंग से करता है - हे ईश्वर! आपके साक्षात्कार होने पर, जब व्यक्ति आपको जान लेता है तब वह समस्त प्राणियों को, सभी जीवों को अपनी आत्मा के तुल्य देखता है। जैसे प्रत्येक व्यक्ति चाहता है मैं सुखी हो जाऊँ, दुःखी न रहूँ। मैं उन्नत हो जाऊँ, नीचे न गिरूँ, मैं सम्पन्न हो जाऊँ, दीन-हीन न बन जाऊँ। वह सभी जीवात्माओं के लिए ऐसा चाहने लगता है।

अब साधक इसको प्रार्थना के रूप में परिवर्तित करता है - हे ईश्वर! मैं आपको जान जाऊँ, आपका साक्षात्कार कर लूँ और मुझमें ये स्थितियाँ आ जाएँ। मैं सभी प्राणियों को आत्मा के तुल्य देखने लगूँ। उस स्थिति में आपकी कृपा से, आपकी सहायता से मेरे अज्ञान, मोह, मिथ्या ज्ञान नहीं रहेंगे। हे ईश्वर! आपको जान लेने के पश्चात् शोक-क्लेश, काम-क्रोध नहीं सताएँगे। आप मुझे ज्ञान दो, बल दो, मेरी सहायता करो। इस प्रकार से जीवात्मा अपने ढंग से मन्त्र के अर्थ को करता है।

अब मैं आपका अनुभव सुनूँगा। आप यह बताएँगे कि कभी आप ऐसा अनुभव करते हैं कि मैं ईश्वर के पास बैठकर यह सारी बात सुना रहा हूँ। आप बोलेंगे -

साधक २- करते हैं।

स्वामी जी - जैसे कि वास्तव में यह ठीक है, शब्द-प्रमाण से ईश्वर सिद्ध है और शत-प्रतिशत जानकर स्वीकार कर लिया। अब मैं ईश्वर के पास बैठा हूँ और ये बातें कह रहा हूँ तथा ईश्वर सारी बातें सुन रहा है। ऐसी स्थिति आपमें से किसकी नहीं होती, यह बताओ?

साधक ३- मैं तो अनेक बार ऐसा बनाता हूँ और अच्छा अनुभव होता है।

स्वामी जी - हाँ जी! आप बोलेंगे।

साधक ६- जी! ऐसा करता हूँ।

स्वामी जी - ऐसे होता है या नहीं होता?

साधक ६- हाँ! होता है जी।

स्वामी जी - एक तो यह स्थिति है कि निश्चित रूपेण ईश्वर मेरे पास उपस्थित है, कोई सन्देह नहीं होना। दूसरी यह स्थिति कि शब्द-प्रमाण के आधार पर मैं मान तो रहा हूँ किन्तु अभी वह पूरा नहीं जंचता। आपमें से किसी की ऐसी होती है?

साधक ३- कभी सन्देह भी होता है। अनेक बार स्थिति बहुत अच्छी बन जाती है और कभी ईश्वर परोक्ष है, ऐसी भी वृत्ति उठाई जाती है।

स्वामी जी - हाँ! आप बोलेंगे -

साधक ७- प्रभु के सान्निध्य में बैठे हुए हैं। हम उनसे प्रार्थना कर रहे हैं। वे हमारी प्रार्थना सुन रहे हैं। हमको लाभ हो रहा है।

स्वामी जी - यह तो ठीक है। प्रश्न है इस विषय में कभी.....?

साधक ७- सन्देह नहीं है।

स्वामी जी - हाँ! मान लो किसी को सन्देह नहीं होता, ठीक है। किन्तु कई बार ऐसा भी होता है कि व्यक्ति संशय को पकड़ नहीं पाता। लोगों की अपनी-अपनी योग्यताएँ रहती हैं। आत्मनिरीक्षण करने वाला व्यक्ति, इस योग्यता को रखने वाला पकड़ लेता है कि सन्देह है। आत्मनिरीक्षण न करने वाला पढ़ा-लिखा भी क्यों न हो, वह पकड़ नहीं पाता। होते हुए भी, वह

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहता है कि मुझे सन्देह ही नहीं होता है।

साधक २– दोनों में सम्बन्ध बना हुआ है अर्थात् मैं जुड़ा हुआ हूँ, ऐसा कभी नहीं होता।

स्वामी जी – ऐसा ?

साधक २– ऐसी अनुभूति नहीं होती कि हाँ ! सचमुच हम दोनों जुड़े हुए हों।

स्वामी जी – हाँ ! ठीक बात है। थोड़े पृथक्-पृथक् रहते हैं।

साधक २– मैं तो सब कुछ कर रहा हूँ और वे सुन भी रहे हैं पर जैसे दो व्यक्ति...।

स्वामी जी – आबद्ध नहीं हो रहे हैं।

साधक २– इस तरह की अनुभूति नहीं बनी।

स्वामी जी – हाँ ! जैसे दो व्यक्ति आमने-सामने हों, वैसा नहीं लग रहा है। तो शब्द-प्रमाण पर, अनुमान-प्रमाण पर और बल देना होगा। जहाँ-जहाँ पर संशय हो, उस संशय को पकड़ो कि यह संशय क्यों हुआ ? पुनः उस संशय का खण्डन करने वाला प्रमाण ढूँढो और उस प्रमाण से उन संशयों को खण्डित करो। आपने संशय उभार लिया तो आप संशय के पीछे लग जाएँ। यह संशय क्यों हुआ ? जहाँ-जहाँ संशय की जड़ें मिलती हैं उनको ढूँढो, पकड़ो और प्रमाण से खण्डित कर दो। करते रहो। कालान्तर में आप देखेंगे कि जो सम्बन्ध जुड़ा दिखाई नहीं दे रहा था, वह पुनः जुड़ा दिखाई देने लगेगा। अब विराम ॥

८३ क्रियात्मक योगाभ्यास

सहभाव : श्रावण शु. २/२०६०-३१/७/०३

आप की त्रुटि कोई बताए तो कैसा लगेगा ? पहले यह बताओ कि आप किसी से यह कहेंगे कि आप मेरी त्रुटि बताते रहना।

साधक ७, ८– कहेंगे।

स्वामी जी – क्यों जी ?

साधक २– कहेंगे।

स्वामी जी – कि मेरी त्रुटि आप बताते रहना। पुनः त्रुटि बताने पर भला मानोगे या बुरा, कैसा लगेगा ?

साधक ३– बुरा नहीं मानेंगे।

स्वामी जी – आपकी भाषा ठीक चल रही है ? जैसे कि आदर-सूचक शब्द बोलना। खण्डनात्मक बातें नहीं करना। उत्तेजित होकर बोलना, कभी व्यंग्यात्मक भाषा बोलना आदि दोष नहीं होने चाहिएँ। आपके कमरे में जो दूसरा ब्रह्मचारी रहता है, वह जब कोई ऐसा कार्य कर देता है जो आपको प्रतिकूल लगता है, तब आप उसके प्रति द्वेष करते हैं या प्यार करते हैं। आपका कैसा भाव रहता है ?

साधक ८– कई बार जब ऐसी स्थिति होती है तब क्षोभ होता है। कुछ काल पश्चात् जब धैर्य से सोचते हैं तब विचार आता है कि उसको प्रेम से अभिप्राय बताना चाहिए।

स्वामी जी – हाँ जी ! कैसा प्रयोग होता है ?

साधक ४– उपेक्षा होती है।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अच्छा ! एक स्थिति में न तो दुःख हुआ, न सुख। क्षोभ हुआ, यह दूसरी स्थिति होती है। तीसरी स्थिति में उसके प्रति दया की भावना आई। बेचारा ! जीवात्मा अल्पज्ञ है, इसलिए इससे भूल तो होती है। हो गई है भूल। ऐसे उसके प्रति दया की भावना उत्पन्न करना और चौथी है उपेक्षा की भावना।

साधक ३ – क्या ऐसा भी होता है कि व्यक्ति को छोड़कर उसकी जो क्रिया है उसके प्रति उपेक्षा कर देना। व्यक्ति के प्रति कुछ नहीं सोचना। उसकी जो क्रिया है उतनी अच्छी नहीं है; यह मानकर उनके प्रति उपेक्षा कर देना। ऐसा भी होता है ?

सम्पादक – स्वामी जी को अपना वाक्य पूरा करना था। साधक ने उनको अवकाश नहीं दिया। अतः स्वामी जी ने उनकी उपेक्षा कर दी। जो साधक ने पूछा है, हमारे द्वारा ऐसा व्यवहार प्रायः अपने लिए, अपने व्यक्तियों के लिए अथवा जिससे कार्य लेना होता है उसके लिए किया जाता है परन्तु अन्यों के लिए नहीं किया जाता है। यद्यपि अत्यन्त दुष्टों को छोड़कर अन्यों के लिए भी यह व्यवहार किया जाना चाहिए।

स्वामी जी – आप इनमें से क्या परीक्षण करते हो ? कैसे सोचते हैं ? जैसे एक तो उसके प्रति दया की भावना होती है कि कोई बात नहीं। इससे यह भूल हुई है, यह जानता नहीं है। इसको समझ में नहीं आया। असावधानी से हो गया है; एक तो ऐसे सोचता है। दूसरा ऐसे सोचता है कि करता है तो करने दो, मैं क्या करूँ ? यह स्वतन्त्र है; ऐसे सोचना।

साधक ८ – क्यों कर रहा है; ऐसा लगता है। पुनः सोचते हैं कि एक बार चर्चा करके देखते हैं। तब जाकर कहते हैं कि यदि ऐसा हो जाए तो आपको कोई बाधा तो नहीं आएगी ? इस प्रकार बातचीत करते हैं और उलझन समाप्त हो जाती है।

स्वामी जी – एक व्यक्ति का व्यवहार ऐसा होता है कि जिसको देखकर दूसरा व्यक्ति बड़ा सुखी होता है, प्रसन्न रहता है और यह चाहता है कि यह व्यक्ति सदा मेरे साथ रहे। दूसरा व्यक्ति ऐसा होता है जिसके प्रतिकूल व्यवहार को देखकर साथ वाला सोचता है कि पता नहीं इससे कब छुटकारा मिलेगा ? कब तक इसके साथ कमरे में रहना पड़ेगा ? कहूँ तो भी लोगों को बुरा लगेगा। क्या करूँ ? ऐसा कोई अनुभव करता हो, क्यों जी ?

साधक ७ – नहीं जी !

स्वामी जी – एक ऐसा व्यवहार जिसमें आप के लिए दूसरों को कहना पड़े, यह कब जाएगा और दूसरा ऐसा अनुकूल व्यवहार जिसमें दूसरे से सुनने को मिले कि बहुत अच्छा व्यक्ति है, ऐसा व्यक्ति सदा मेरे साथ रहे, यह चला तो नहीं जाएगा। आपके विषय में कौन-सा सुनने को मिलेगा ? अच्छा ! आपके कमरे में जो साथ रहता है आप उस व्यक्ति की उन्नति, भला अपने जैसा चाहते हैं या कुछ अन्तर रहता है ?

साधक २ – ऐसा चाहते हैं कि वह अपना करेगा और हम अपना करेंगे।

स्वामी जी – चाहना भी तो दूसरे के लिए होता है। जैसे कि मैं अपने लिए यह चाहता हूँ और उसके लिए क्या चाहूँ; यह देखना है। अपने जैसा दूसरे के लिए चाहना भी तो अनिवार्य रहता है दूसरे व्यक्ति के साथ रहने में।

हाँ जी ! आप बताइए कैसा रहता है ? अपने तुल्य, अपने आत्मा के तुल्य दूसरे का भी भला, उपकार, उन्नति चाहते हैं या अपना अधिक चाहते हैं अथवा दूसरे का अधिक चाहते हैं ?

साधक ५ – अन्तर तो रहता है।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – अच्छा ! हाँ जी ! आप बोलेंगे।

साधक ६ – मैं अपनी योग्यता उनसे कम मानता हूँ। इसलिए उनसे ही कुछ लेने की इच्छा रखता हूँ।

स्वामी जी – लेने की इच्छा तो अच्छी बात हो गई। पर चाहते क्या हैं? जिस स्तर पर आप अपना कल्याण, भला, उन्नति चाहते है, उतने ही स्तर पर उनका चाहते हैं या कम चाहते हैं; यह देखना है।

साधक ६ – इस तरह का विचार तो नहीं कर पाया।

स्वामी जी – आप बोलेंगे –

साधक ४ – इस विषय में सूक्ष्मता से विचार नहीं किया लेकिन मोटे रूप से देखने पर अपनी उन्नति की प्रधानता अनुभूत होती है।

स्वामी जी – और आपको ?

साधक २ – इस विषय में ऐसी स्थिति है कि ये वस्तुएँ मेरे पास पर्याप्त हैं।

स्वामी जी – हूँ।

साधक २ – इस स्थिति में लगता है कि ये किसी को दे दें या और किसी को भी यह वस्तु मिल जाए परन्तु अपने पास जिसका अभाव दिखता है या पर्याप्तता नहीं दिखती, उसके विषय में देने की बुद्धि नहीं चलती। दूसरे के पास न हो तो कोई बात नहीं; ऐसा लगता है।

स्वामी जी – आप बताएँगे, कैसी स्थिति रहती है।

साधक ७ – अपने जैसा चाहता हूँ। जैसे मेरा भला हो, ऐसे ही मेरे साथी का भी भला हो।

स्वामी जी – अच्छा ! कोई आप में ऐसा भी है जो दूसरे का अपने से भी अधिक भला चाहता हो। ऐसा बताओ, कोई अब तक ऐसा कर पाया हो ?

साधक ८ – अभी तक इसके विषय में कुछ विचार नहीं किया।

स्वामी जी – तो विचार करना ही चाहिए। ये विचार तो आवश्यक होते हैं।

साधक ८ – कुछ विषय ऐसे होते हैं जो अछूते रहते हैं। उनमें कुछ समय तक विचार नहीं हो पाता है।

स्वामी जी – यह तो व्यवहार का विषय है।

साधक ८ – जी !

स्वामी जी – यद्यपि आप बहुत गम्भीर अध्ययन करके, निर्णय नहीं कर पाए; यह पृथक् बात है पर यह अनिवार्य रहता है।

साधक ८ – जी !

स्वामी जी – इसलिए तो अहिंसा का जो प्रयोग किया, सबसे पहले वह इसलिए किया है, व्याख्या की है उसकी कि अहिंसा का पालन ऐसे करना ही चाहिए और जो ऐसे नहीं करेगा उस व्यक्ति की उन्नति योग में नहीं हो सकती। इसलिए इसके ऊपर बल दिया गया। इक्यासी प्रकार की हिंसा और इक्यासी प्रकार की अहिंसा होती हैं और उनका प्रयोग दूसरे प्राणियों के साथ होता है। ऐसा व्यवहार का विषय है।

साधक ८ – अब इसके ऊपर विशेष ध्यान देंगे।

स्वामी जी – एक और प्रासंगिक बात – इन दिनों अपने दर्शनाचार्य विवेक भूषण जी ने एक पुस्तक लिखी है 'तत्त्व ज्ञान'। सत्यजित् जी ने उसका अध्ययन-मन्थन किया और उसके विषय में

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनको कुछ सुझाव देने योग्य दिखाई दिए। उनके सुझावों को सुनना और ठीक होने पर मानकर सुधार करना चाहिए। उन सुझावों में से कुछ सुझाव ऐसे भी थे कि जिनका देना ठीक नहीं था। अतः उनको छोड़ दिया। देने योग्य सुझावों में एक सुझाव था कि पंचावयव से सभी बातों की सिद्धि नहीं होती है, कुछ की होती है। जैसे कि ईश्वर की सिद्धि पंचावयव से नहीं होती। उस प्रसंग में हमने उनको एक बात बतलाई कि एक तो अपना आर्ष न्यायदर्शन है और दूसरा नव्यन्याय भी है, दोनों की कुछ पृथक्ता भी है। तो इनको लेकर और दूसरे जो इन दोनों विषयों के अच्छे-अच्छे विद्वान् हैं, इस विषय में उनका मत जानना चाहिए। न्यायदर्शन के अनुसार पंचावयव से ईश्वर की सिद्धि होती है या नहीं, इसके लिए उन विद्वानों के पास जिज्ञासा के रूप में पत्र लिखना चाहिए।

परन्तु इस पत्र को कौन भेजेगा? आप तो क्रियात्मक योग में लगे हैं, आपको बाधा पड़ सकती है। अतः विद्यालय के किसी ब्रह्मचारी को ले लेते हैं। वे उपाध्याय जी से पत्र लिखने का ढंग भी पूछ लेंगे। क्यों जी! आपका न्याय हो गया है?

ब्रह्मचारी धुव्रदेव जी – कुछ हुआ है स्वामी जी!

स्वामी जी – और किसका न्याय पूरा हुआ है?

ब्रह्मचारी धुव्रदेव जी – अध्यापक जी हैं, संदीप जी, उनका हो गया है।

स्वामी जी – संदीप जी का स्वास्थ्य उतना अनुकूल न हो, ऐसा तो नहीं है? क्यों जी! विद्वानों के पास पत्र लिखने का जो ढंग होता है उनसे पूछकर लिख सकेंगे? हो सकता है वे विद्वान् उसका उत्तर दे दें कि भाई! ऐसे-ऐसे सिद्धि होगी। पुनः उनका भी अध्ययन जैसा है उससे लाभ उठाया जा सकेगा। आपको भी बाधा न पड़े तब आप पत्र लिखना, अन्यथा नहीं लिखना। ठीक है!

अब हम क्रियात्मक योग के सम्बन्ध में पुनः समझने-समझाने का प्रयास करें। अब हम प्रयोग करेंगे उपस्थान मन्त्र का। उनमें 'उद्वयं' और 'उदु,त्यं' का हो गया। अब **चित्रं देवानाम्** का प्रयोग करेंगे। प्रथम आप अर्थ बताएँगे। सभी ध्यान से सुनें -

साधक ८ – अद्भुत स्वरूप वाले विद्वान् **चित्रं देवानाम्।**

साधक ३ – ईश्वर के लिए है **चित्रम्** अद्भुत स्वरूप ईश्वर।

स्वामी जी – तो कोई बात नहीं, ईश्वर के लिए आया। **चित्रम्** का अर्थ अद्भुत विचित्र गुण-कर्म-स्वभाव।

साधक ८ – स्वामी जी ने लिखा है।

स्वामी जी – कोई बात नहीं। आगे सुनाओ -

साधक ८ – इस पूरे मन्त्र को सुनाना है?

स्वामी जी – स्मरण नहीं हो तो और किसी से सुनेंगे।

साधक ८ – सुनाऊँ।

स्वामी जी – हूँ।

साधक ८ – सूर्य आत्मा यहाँ ईश्वर को सूर्य कहा गया है क्योंकि वह जड़ और चेतन जगत् में व्याप्त है। हे ईश्वर! आप जड़ और चेतन जगत् में निरन्तर व्यापक हैं। इसलिए आपको आत्मा कहते हैं। **आ प्रा द्यावापृथ्वी अन्तरिक्षं** आप सब लोक-लोकान्तरों को बनाकर धारण और रक्षण कर रहे हैं। **चक्षुः मित्रस्य वरुणस्याग्नेः** जो राग-द्वेष रहित मनुष्य हैं उनके प्रिय लोक और प्राण के प्रकाशक हैं। आप सम स्वभाव वाले मनुष्यों, प्राण, उदान और अग्नि के प्रकाशक हैं। **चित्रं देवानाम्** आप

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अद्भुत स्वरूप वाले विद्वानों के हृदयों में प्रकाशित हो रहे है। **अनीकं** आगे .....।

स्वामी जी – अच्छा सुनाया ! अब आप सुनाएँ –

साधक ५ – **चित्रं** यहाँ ईश्वर के विषय में बताया है कि ईश्वर आप अद्भुत स्वरूप वाले हैं। **देवानाम् उत् अगात्** आप देवों के हृदय में अच्छी प्रकार से प्रकट होते हैं या हुए हैं। **अनीकं** काम-क्रोध आदि दुष्ट भावनाओं को नष्ट करने के लिए आप अर्थात् सर्वोत्तम बल हैं। **चक्षुः** सभी पदार्थों को प्रकाशित करके उनको आप जनाने वाले हैं **मित्रस्य वरुणस्याग्नेः** जो राग-द्वेष से रहित व्यक्ति हैं उनका **वरुणस्य** जो श्रेष्ठ आचरण वाले हैं ऐसे मनुष्यों का जो **अग्नेः** ज्ञानी पुरुष हैं ऐसे व्यक्तियों का। **आ प्रा** सब ओर से **द्यावापृथ्वी अन्तरिक्षं** द्युलोक, अन्तरिक्षलोक, पृथ्वी-लोक को धारण करके आप रक्षा कर रहे हैं और **सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च** आप सभी जीवों के, जड़-चेतन पदार्थों के संचालक हैं। आप इनमें मुख्य हैं। आत्मा हैं अर्थात् सब में व्याप्त हैं। **स्वाहा** ये मैंने जो भी बातें कहीं, ये सब यथावत् हैं, सत्य हैं।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे।

साधक ४ – अद्भुत विचित्र स्वरूप, देवों के हृदय में अच्छे प्रकार से प्रकाशित होने वाले, अनेक दोषों का नाश करने का उत्तम बल, राग-द्वेष रहित मित्र स्वभाव वाले व्यक्ति का और प्राण का एवं सूर्य का प्रकाशक = बनाने वाला है। श्रेष्ठ गुण-कर्म-स्वभाव वाले मनुष्य, प्राण- अपान और अग्नि का प्रकाशक है। अन्तरिक्ष, पृथ्वी, सूर्य आदि लोकों का प्रकाशक और उनका धारण करने वाला, रक्षा करने वाला है। चराचर जगत् का आत्मा, प्रकाशक और उसमें व्याप्त होने वाला है। स्वाहा अर्थात् ये बातें सत्य हैं और हमारी वाणी सत्य, मधुर, हितकारी हो।

स्वामी जी – हाँ जी ! **स्वाहा** के जो अर्थ किए हैं वे स्मरण हों तो आप बताएँगे –

साधक १ – इस प्रसंग में, स्वामी जी ! आचार्य विश्वश्रवा जी ने **स्वाहा** का अर्थ **सत्यया क्रियया** इस प्रकार से किया है।

स्वामी जी – स्वामी दयानन्द जी ने जो लिखा है वह यदि स्मरण हो तो सुनाओ।

साधक १ – उसको थोड़ा स्मरण करना पड़ेगा।

स्वामी जी – आपको याद हो तो आप सुनाओ –

साधक २ – एक शब्द का ?

स्वामी जी – हाँ ! **स्वाहा** शब्द का अर्थ।

साधक २ – एक अर्थ है जी ! **सु वाक् आह इति**। सत्य वाणी है, यथार्थ वचन है, मैं उनका प्रयोग करता हूँ।

स्वामी जी – हूँ।

साधक २ – अर्थात् जैसा मेरे मन में है, जैसा मैं जानता हूँ, वैसा ही उच्चारण करता हूँ। एक यह अर्थ है।

स्वामी जी – हाँ ! तो **स्वाहा** शब्द के चार अर्थ किए हैं।

साधक ३ – निरुक्त से दिए गए हैं।

स्वामी जी – हाँ ! तो ?

साधक ८ – निरुक्त का विवरण दिया हुआ है स्वामी जी ने।

स्वामी जी – निरुक्त का दिया होगा।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– अपनी वस्तु को ही अपना कहना।

स्वामी जी – एक अर्थ तो यही है - मैं अपनी वस्तु को ही अपना कहूँ, दूसरे की वस्तु को अपना न कहूँ। दूसरा - मेरे अन्दर जो ज्ञान है वैसा ही बोलूँ। तीसरा - सुन्दर, सुमधुर, हितकारी बोलूँ और चौथा - सुन्दर व अच्छी से अच्छी सामग्री तैयार करके यज्ञ कुण्ड में उसकी आहुति दूँ।

अच्छा ! अब हम इस मन्त्र को प्रार्थना में परिवर्तित करना चाहेंगे तो कैसे करेंगे ? कौन बताएगा ? आप बोलेंगे जो यह स्तुति में आया है, इसको कैसे परिवर्तित करें ?

साधक ८– वैसे तो प्रार्थना में लिया है स्वामी दयानन्द जी ने।

स्वामी जी – वह पृथक् बात है। वह दूसरी जगह संध्या में...।

साधक ८– इन मन्त्रों से स्तुति-प्रार्थना करें; ऐसा लिखा है।

स्वामी जी – जैसे अब हम जो इसका प्रयोग करेंगे, इसमें सीधा क्या दिखता है ?

साधक ३– प्रार्थना ऐसे करते हैं कि हे ईश्वर ! आप अद्भुत स्वरूप हैं। दोषों और दुर्गुणों को दूर करने के लिए परम सहायक बल हैं। आप मेरे दोषों को दूर कर दो। **चक्षुः मित्रस्य वरुणस्याग्नेः** यह तीनों के लिए कहा गया है। राग-द्वेष रहित मनुष्य, श्रेष्ठ स्वभाव युक्त मनुष्य मुझे आप बना दो। ऐसी हम प्रार्थना कर सकते हैं और आपने सब ओर से द्युलोक, पृथ्वी व अन्तरिक्ष का धारण किया है। आप जड़-चेतन के स्वामी हैं। ऐसे कुछ भाग को प्रार्थना में परिवर्तित कर सकते हैं, सारे को तो नहीं कर पाएँगे।

स्वामी जी – क्यों ? जिसको कहने का ढंग, पद्धति आ जाती है वह धीरे-धीरे सारे को परिवर्तित कर सकता है। **आ प्रा** सारे लोक-लोकान्तरों को आपने हमारे लिए ही धारण किया है। अतः ये हमारे लिए सुखदायी हों। ऐसे धीरे-धीरे सबको प्रार्थना में परिवर्तित कर देता है।

साधक ५– **अगात्** से भी कर सकते हैं।

स्वामी जी – हाँ ! जैसे देवों के हृदय में आप उत्कृष्टता से प्राप्त होते हैं वैसे मेरे में भी हो जाओ। तो उसको प्रार्थना के रूप में परिवर्तित कर लेते हैं।

अच्छा, अब देखो ! अब पहले स्तुति करके देखो। हम प्रयास करेंगे कि मन्त्र का पाठ करते हुए शब्दों को न छोड़ें, एक-एक शब्द का अर्थ करें, ईश्वर समर्पित रहें और ईश्वर को सम्बोधित करें तथा मन जड़ पदार्थ है, इनको साधन के रूप में प्रयोग में लाएँ। निरीक्षण-परीक्षण करके देखेंगे तब आपको पता चलेगा।

ओम् चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुः मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आ प्रा द्यावापृथ्वी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च स्वाहा ॥ यजु. ७/४२।

अब आप रुकेंगे। आप इस मध्यम-गति से पाठ करते हुए अर्थ का कुछ विचार कर पाते हैं ? ईश्वर को सम्बोधित करना, अर्पित रहना, अन्य विचारों को न उठाना आदि क्या आपकी कोई ऐसी स्थिति बनती है ?

साधक ३– अर्थ का विचार तो कुछ हो गया। पूरा ठीक नहीं हुआ और सम्बोधन भी उतना अच्छा नहीं हुआ। ईश्वर के सामने कर रहा हूँ, ऐसी कुछ भावना बनी रही।

स्वामी जी – और आप अपना अनुभव बताएँ -

साधक ८– मन्त्र पहले पूरा बोलकर पुनः उसके पश्चात् में सारी प्रक्रिया की।

स्वामी जी – तो इस जप की, ध्यान की प्रक्रिया हम तीन प्रकार से बताते हैं -

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पहले मन्त्र का पाठ करना और रुककर पुनः एक-एक शब्द का अर्थ करना।

दूसरी पद्धति - मन्त्र के शब्दों को लम्बा बनाना। जब लम्बा बनाएँगे तो अर्थ करने के लिए अवकाश मिल जाता है।

तीसरी पद्धति - जो हम अब बोल रहे थे, मध्यम गति से पाठ करना और अर्थ करना, ईश्वर समर्पित भी रहना। तो पहली सरल है, दूसरी उससे कुछ कठिन है और तीसरी उससे भी कठिन है।

आप यह नहीं सोचते कि हम इस विद्या को सीखेंगे, जानेंगे, विकास करेंगे और सारी गतिविधि वैसी की वैसी हम दूसरों को सिखाएँगे। कभी ऐसा नहीं सोचते?

साधक १ – ऐसा सोचते हैं।

साधक ८ – स्वामी जी! कुछ मन्त्रों का अर्थ तो साथ-साथ भी करने का सामर्थ्य है। लेकिन प्रायः का पाठ करने के पश्चात् कर पाते हैं।

स्वामी जी – जब लम्बा पाठ करते हैं तो एक-एक शब्द को पृथक्-पृथक् करके या जैसी सुविधा हो लम्बा बनाकर उतने काल में मन में अर्थ करते हैं।

साधक ८ – गायत्री मन्त्र बोलते हैं तो उसका अर्थ साथ-साथ हो जाता है।

स्वामी जी – हाँ! व्यक्ति का जितना अधिक अभ्यास होता है, अर्थ जितना पक्का होता है और मन पर जितना नियन्त्रण होता है उतना वह सरलता से करेगा। आपको **अग्न आयाहि** इसका अर्थ कुछ स्मरण है?

साधक ३ – हाँ जी! मुझे स्मरण है।

स्वामी जी – सबको तो नहीं होगा।

साधक २ – अर्थ स्पष्ट नहीं है।

स्वामी जी – अच्छा! जैसे **चित्रं देवानाम्** को लम्बा बनाकर बोलना पड़े तो आप कैसे बोलेंगे? मैं तो अपनी एक धुन, जो कोई ठीक बैठती है, उसी को बना लेता हूँ। जैसे गायत्री मन्त्र की धुन बना लेता हूँ। आपको जब किसी को सिखाना होगा तब आप क्या करेंगे। कोई न कोई धुन तो पकड़नी पड़ेगी। क्यों जी?

साधक ३ – मन्त्र बोल लिया, पुनः उसका अर्थ कर दिया। ऐसे लम्बा करके मन्त्र को बोलना; ऐसा पहले कभी कराया नहीं। मन में तो कर लेते हैं।

स्वामी जी – जैसे हम गायत्री मन्त्र को बोल लेते हैं -

ओंऽऽ भूर्भुवःऽऽ स्वः ऽ। तत्सवितुर्वरेण्यंऽऽ भर्गो ऽऽ देवस्य ऽऽधीमहि ऽऽ। धियो यो नःऽऽ प्रचोदयात्॥

(गायन - एक शब्द को एक श्वास तक लम्बा करना अथवा जितने में अर्थ हो जाए उतना लम्बा करके गाना।)धुन अब आपको कुछ समझ में आई? कुछ ऐसा लगता है कि यह तो बड़ी विचित्रता-सी है या ठीक लगता है; आपको कैसा लगता है?

साधक १ – कठिन लगता है।

स्वामी जी – आपको कैसा लगता है? ऐसा तो नहीं कि कृत्रिमता दिखती हो। जब हम उसको प्रमुख कार्य मानते हैं तब वह एक बनावटी वस्तु नहीं दिखती। हम समझ गए हैं, वास्तव में उससे प्रयोजन सिद्ध होता है तो हम उसको किसी आडम्बर के रूप नहीं देखेंगे। कोई ऐसी बात नहीं मानेंगे कि यह कुछ दिखावा-सा किया जा रहा हो। यह पृथक् बात है, कोई व्यक्ति अच्छी धुन बना सकता है, किसी को नहीं आती; यह तो अन्तर रहता है। जैसे हमने एक धुन को पकड़ा और उसको

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

त्र्यम्बकं यजामहे पर लगा दिया और दूसरे को **अकामो धीरो** पर लगा दिया। क्या समझ में आया?

गायन - **अकामो धीरो अमृतः स्वयम्भू रसेन तृप्तो न कुतश्चनोनः।**
तमेव विद्वान् न बिभाय मृत्योरात्मानं धीरमजरं युवानम्॥ अथर्व. १०/८/४४।

यह निम्न-स्वर की धुन है। अब जो हम बोलेंगे वह धुन उच्च-स्वर की है। मन्त्र में उस धुन को बोलेंगे। **अकामो धीरो अमृतः** ऊपर को ले जाएँगे। आपको बोलना आता है या नहीं?

साधक ६ - आता है।

स्वामी जी - अच्छा! आप एक भजन को ले लो -

"परमात्मा के सभी गीत गाओ, तो आवागमन से सभी छूट जाओ।" यह गाते हुए। यह धुन आपको आती है। इसको हमने मन्त्र पर ले लिया **अकामो धीरो अमृतः.....।** यह धुन का एक भाग हो गया। दूसरा भाग जो बचा है उसको ऊपर का स्वर लेकर पूरा करेंगे।

अकामो धीरो अमृतः.....। यह ऊपर का भाग हो गया।

तमेव विद्वान्.....।

वेदाहमेतं पुरुषं महान्तम् आदित्यवर्णं तमसः परस्तात्।
तमेव विदित्वा अति मृत्युमेतिऽनान्यः पन्था विद्यतेऽनाय॥

ये नीचे-स्वर की धुन है। यह गायन के माध्यम से ईश्वर भक्ति है। आपको कैसी लगती है? ठीक है, नहीं है या पकड़ में नहीं आ रही। क्यों जी?

अब आप ध्यान देंगे। हमने एक दूसरी धुन को लिया। सभी मन्त्रों पर सारी धुनें आएँ, ऐसा नहीं है। किसी पर कोई धुन चलेगी, किसी पर कोई। जो साम-गायन माना जाता है, वह किसी मन्त्र को लेकर उस पर तैयार करते हैं। पहले वह पर्याप्त परिश्रम करके तैयार करते हैं, तब गाते हैं। ऐसे नहीं कि चाहे जिस मन्त्र को गा दिया और वह पक्के नियम से गा देवें। पहले मन्त्र के ऊपर बैठानी पड़ेगी पूरी धुन। वहाँ पर संगीत के नियम चलते हैं, व्याकरण के उदात्त-अनुदात्त-स्वरित के नियम वहाँ लागू नहीं हो सकते। जैसे कि उच्चारण में चाहें कि उदात्त-अनुदात्त-स्वरित करो तो वहाँ नहीं चलेंगे। वहाँ तो संगीत का नियम प्रधान रहेगा। उदात्त-अनुदात्त-स्वरित यद्यपि सब में रहते हैं पर एकश्रुति हो जाती है, पृथक्-पृथक् नहीं हो पाएँगे।

तो (पुनः गायन) - **तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।** यह दूसरी धुन है या नहीं!

तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥ लय के नियम होते हैं। उसमें कितना मोड़ आएगा, यह पता न हो तो वह चाहे जैसा गाने लग जाए। तब संगीतज्ञ कहेगा भाई! ठीक है अपना काम चला लो परन्तु तुम्हारे लय में कोई नियम नहीं है जैसे कि लय के नियम होते हैं।

(पुनः गायन) - **तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके। तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः॥** मैं शब्दों को क्यों मोड़ता हूँ? यदि न मोड़े जाएँ तो लय नहीं आएगी। क्या समझ में आया? कोई चाहे मैं ऐसा मोड़ूँगा नहीं। छोटे को बड़ा, बड़े को छोटा नहीं बनाऊँगा? तो लय कट जाएगी। संगीत भंग हो जाएगा।

ओं अग्न ऽ आया ऽऽ हि ऽऽ वीऽऽ तये। गृणानो ऽऽ हव्यदातये। नि होता ऽऽ सत्सि बर्हिषि।

हमने एक लय बना ली। अब बोलकर देखो, ऐसे बोल लोगे! क्यों! कौन बोलेगा? नहीं आएगा। अच्छा! अब विराम॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

८४

ज्ञानखण्ड

शिविरोपलब्धि, प्रयास : श्रावण शु. २/२०६०-३१/७/०३

यह जो सुनते हैं, समझते हैं, प्रयत्न करते हैं; इससे क्या आपको अपनी कोई प्रगति, विकास, उन्नति दिखाई देती है? आप में से कोई इस विषय में सुनाएँगे?

साधक ३- विषय अभी स्पष्ट नहीं हुआ है।

स्वामी जी - तो पुनः बोलता हूँ। आप जो यह वैदिक क्रियात्मक योग सीख रहे हैं, आपको सिखाया जाता है, आप सुन रहे हैं, समझ रहे हैं, प्रयोग कर रहे हैं; तो इस कार्य से योग के विषय में, आत्मा-परमात्मा और सृष्टि के विषय में, अपने मनोनियन्त्रण के विषय में कुछ उन्नति, विकास, प्रवृद्धि प्रतीत होती है या क्या होता है?

साधक ३- हाँ जी! प्रतीत होता है कि पहले से अधिक मन पर नियन्त्रण कर पाता हूँ, ईश्वर-प्रणिधान भी अधिक अच्छा बन जाता है और उपासना भी पहले से पर्याप्त अच्छी होने लगी है। इन दिनों प्रयोग करने से लाभ मिला है।

स्वामी जी - अब आप इसी विषय में अपना अनुभव बताएँगे?

साधक २- एकाग्रता में बहुत अधिक सहायता मिली है और इस कार्य को आगे बढ़ाने के लिए बहुत अधिक इच्छा प्रकट हुई है तथा उपासना आदि करते हैं, इसमें भी बहुत अधिक सहायता मिल रही है।

स्वामी जी - आपको कैसी अनुभूतियाँ, उपलब्धियाँ, प्रवृद्धि, कैसा अनुभव होता है?

साधक ७- सभी विषयों में, सब पक्षों में बहुत लाभ प्रतीत होता है।

स्वामी जी - अब आप अपना अनुभव बताएँगे।

साधक ५- पहले से अधिक लाभ प्रतीत हो रहा है। शाब्दिक दृष्टिकोण से भी लाभ हो रहा है और प्रायोगिक दृष्टिकोण से कई क्षेत्रों में, मनोनियन्त्रण के विषय में, उपासना के प्रति पहले की अपेक्षा स्थितियों पर नियन्त्रण है, वह भी कुछ बढ़ा है।

स्वामी जी - आप अपना सुनाएँगे।

साधक ४- उपासना में वृत्तियों की संख्या कम हुई है। व्यवहार काल में मनोनियन्त्रण कुछ बढ़ा है और पहले व्यवहारकाल में जो ईश्वर-प्रणिधान नहीं के बराबर होता था, अब वह कुछ और बढ़ा है। यद्यपि इसका स्तर अच्छा नहीं है किन्तु ईश्वर की स्मृति दिन में अधिक समय तक पूर्व की अपेक्षा रख पाता हूँ।

स्वामी जी - अब आप अपना प्रयोग व उपलब्धियाँ सुनाएँगे।

साधक ८- सब पदार्थों को ईश्वर के मानना और वैसा ही व्यवहार में अनुभव भी करने की स्थिति बनती है। यहाँ आने से पहले पूरे दिन जो मन को खुला छोड़कर रखते थे तब अनुकूल विचार आते ही प्रसन्नता होती थी और प्रतिकूल विचार आने पर या हम ले आते थे तब कई प्रकार की कठिनाई अनुभव करते थे। व्यवहार में प्रायः यह समस्या आ जाती थी। इन वस्तुओं के बारे में जानकारी मिली। पहले ईश्वर को हम सारा दिन भूले रहते थे, अब पहले की अपेक्षा, जैसे आप बताते है, प्रायः स्मरण रखते हैं। गुणों को लेकर चिन्तन करते हैं और जब ऐसी स्थिति में होते

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं तब काम-क्रोध आदि के आक्रमण से ....।

स्वामी जी – बच जाते हैं।

साधक ८ – जब शरीर की स्थिति अच्छी होती है तब पर्याप्त लाभ अनुभूत होता है और शारीरिक बाधा आने से शून्यता दिखाई देती है। पुनरपि कुल-मिलाकर मुझे यहाँ लाभ हो रहा है।

स्वामी जी – अब आप बतलाएँगे परन्तु ऊँचा बोलना, स्पष्ट बोलना, ठीक वाक्य रचना, आदि सबका आप ध्यानपूर्वक प्रयोग करेंगे।

साधक ६ – यहाँ निरन्तर उपासना में दोनों समय बैठने से, स्व-स्वामि-सम्बन्ध आदि पर विचार करने से और नित्य-अनित्य को बार-बार सुनने तथा विचार करने से मन पर नियन्त्रण भी पर्याप्त हुआ है और हो रहा है। उपासना में भी निरन्तर उन्नति दिखाई देती है।

स्वामी जी – आप में से किसी को ऐसा आभास होता है कि मैं शीघ्र ही विवेक-वैराग्य को प्राप्त कर संप्रज्ञात समाधि में चला जाऊँगा। ऐसी सम्भावना दिखती है? किसी को कोई दिखती हो तो बताओ

साधक ३ – अभी ऐसा नहीं दिखता। एकाग्रता आदि की उपलब्धि तो होती है और उत्तरोत्तर प्रगति होती जाएगी पर समाधि की स्थिति अभी नहीं दिखती।

स्वामी जी – अब आप यह विचारेंगे कि समाधि की प्राप्ति में, विवेक-वैराग्य की प्राप्ति में बाहर के बाधक अधिक हैं या आप स्वयं उसमें बाधक अधिक हैं? इसके ऊपर अध्ययन करेंगे। कैसा दिखता है या इसका पता नहीं लगाया?

साधक ३ – बाहर के थोड़े बाधक हैं। आन्तरिक अधिक हैं। वह शारीरिक भी हो सकते हैं और दूसरे जो संस्कारगत विकार अधिक हैं। यह भी ज्ञान काम करता है कि यह विषय इतना सरल नहीं है। थोड़े काल में प्राप्त होने वाला नहीं है। इसे बहुत लम्बा काल चाहिए, बहुत दीर्घकाल, नैरन्तर्य इत्यादि।

स्वामी जी – आप इस सम्बन्ध में सावधान रहते हैं कि चलते-फिरते, खाते-पीते, लेते-देते मैं ईश्वर को स्वामी मानता रहूँ और स्वयं को स्वामी न मानूँ। इसके ऊपर कैसा ध्यान रहता है अथवा भूल जाते हैं। कैसा रहता है?

साधक ३ – कुछ ध्यान देते हैं कुछ काल भूले भी रहते हैं। कभी ऐसा सोचते हैं कि इतना अधिक करने की अपेक्षा नहीं है। थोड़ा-थोड़ा बढ़ाने की अपेक्षा है। इकट्ठा बढ़ाएँगे तो उचित नहीं रहेगा। इसकी मात्रा धीरे-धीरे बढ़ानी है। उपासना काल में अच्छी स्थिति होती है, तो व्यवहार काल में उसको थोड़ा-थोड़ा बढ़ाएँ। एकदैव आरम्भ कर देंगे तो हानि हो जाएगी। शारीरिक भी और दूसरे प्रकार की; ऐसा ज्ञान कार्य करता है।

स्वामी जी – आप जैसे कि यहाँ बैठे हैं और अभी प्रलयवत् अवस्था बनाकर या अन्य उपायों से अपने मन-आत्मा को नियन्त्रित करके ईश्वर का ध्यान कर सकते हैं? करके देखो! यह एक पृथक् बात है कि कोई प्रलयवत् अवस्था बनाकर कर सकता है तो कोई दूसरा व्यक्ति मन को जड़ समझकर प्रयोग करता है, नियन्त्रण में रखता है। तीसरा व्यक्ति है वह ईश्वर में अति प्रेम, प्रीति, भक्ति इस भाव से मन को नियन्त्रण में रखता है और कोई विषयों में दुःख समझकर, उनमें दुःख भरा हुआ देखकर उस ओर से हटता है और ईश्वर की भक्ति, उपासना करता है। आप इन उपायों को लेते हुए प्रयोग करके देखेंगे।

अच्छा चलो! एक वाक्य को लेते हैं – **ओं सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**। क्या वाक्य है?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ३– ओम् सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म । तैत्तिरीय. ब्रह्मा. अनु. १ ।

स्वामी जी – हम प्रयोग करेंगे **ओम्** हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। **सत्यम्** सत्य स्वरूप हैं **ज्ञानम्** ज्ञान स्वरूप हैं **अनन्तम्** अनन्त हैं **ब्रह्म** आप महान् हैं।

अब आप अपनी मनःस्थिति बनाने के लिए अपनी रुचि के अनुरूप धारणा बनाइए और शान्ति से इसका पाठ करें। आप पूरा वाक्य बोलकर पुनः अर्थ कर सकते हैं। **ओं सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म** । **ओं सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म** । ईश्वर को सम्बोधित करेंगे और जब पाठ करें तो आपको ईश्वर का गुण-कर्म-स्वभाव जैसा हम वाणी से बोल रहे हैं, वैसा दिखाई दे। मानसिक प्रयोग करके देखिए।

प्रयोग.....काल लगभग ५ मिनट।

आकाशवत् अवस्था बनाने का प्रयास करते रहिए।

आकाशवत् अवस्था में मन में बोलते रहिए। **ओम्** हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। **सत्यम्** सत्य स्वरूप हैं। **ज्ञानम्** ज्ञान स्वरूप हैं। **अनन्तम्** अनन्त हैं। आपकी कोई सीमा नहीं है। **ब्रह्म** आप महान् हैं। सबसे बड़े हैं।

शान्ति से, धैर्य से प्रयोग कीजिए।

जप को बन्द न कीजिए और बन्द होने पर पुनः प्रारम्भ कर दीजिए।

मन की चंचलता होने पर तत्काल प्रयोग करेंगे – मैं आत्मा मन को, इन्द्रियों को, सबको चलाने वाला हूँ। इसलिए कोई वृत्ति नहीं आ सकती। कोई विचार नहीं आ सकता। पुनः ईश्वर की सहायता माँगिए। इसके साथ सब कुछ हे ईश्वर ! आपका ही है। मेरा कुछ नहीं। मन पर्यन्त इस स्व-स्वामि-सम्बन्ध को छोड़ने का प्रयत्न कीजिए। ईश्वर को स्वामी बनाना, स्वयं का स्वामित्व हटाना; ये साथ-साथ करने का प्रयास कीजिए।

विनोद जी। उनको कह दो थोड़े काल के लिए ध्वनि वाला काम बन्द करके अन्य कार्य कर लें। ध्यान सिखा रहे हैं उसमें बाधा हो रही है।

अब आप रुकेंगे और कैसी स्थिति रही, बोलेंगे। नींद तो नहीं आ गई? कैसा जप रहा, कैसी स्थिति रही?

साधक ५– वाक्य का उच्चारण और उसका अर्थ, ये दोनों तो ठीक-ठीक चले। पर जो समर्पण की स्थिति है, वह न्यूनता रही।

स्वामी जी – नहीं। अपनी भाषा को पहले सुधारिए। आपके वही दोष पुनः आ रहे हैं जैसे कि असावधानी से बोलने लगते हैं तब आप की बात न तो सुनाई देती है, न भाव स्पष्ट होते हैं, न अक्षरों, न शब्दों की अभिव्यक्ति होती है, न वाक्यावली ठीक होती है।

साधक ५– वाक्य का उच्चारण और उनका अर्थ; ये दोनों तो ठीक प्रकार से किए किन्तु समर्पण की स्थिति अच्छी नहीं बन पाई। बीच-बीच में बाहर की ध्वनियों को सुना, पुनः उससे अपने आप को रोका।

स्वामी जी – अब आप सुनाएँगे, ध्यान कैसा रहा?

साधक ४– मध्य में कुछ काल के लिए बाहर की ध्वनियों ने बाधित किया। शेष काल के लिए स्थिति मेरे ज्ञान अनुसार ठीक रही।

स्वामी जी – अब आप बोलेंगे –

साधक ८– ईश्वर को सम्बोधित भी किया। वाक्य का अर्थ किया। आगे पुनः बाहर की ध्वनि आई। उसको रोका। ईश्वर-समर्पण में न्यूनता रही।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हाँ जी !

साधक ६– वृत्ति तो बाहर की कोई नहीं उठाई। कुछ ध्वनि सुनी और प्रायः सम्बोधन, समर्पण बना रहा। कभी बीच में ऐसा अनुभव किया कि बैठकर जप कर रहा हूँ और साथ में अर्थ भी कर रहा हूँ परन्तु समर्पण नाममात्र का है। विशेष श्रद्धा से युक्त समर्पण नहीं बना।

स्वामी जी – अच्छा ! तो वह जो श्रद्धा और रुचि कम दिखाई देती है उसको पूर्ण करने के लिए व्यक्ति को ईश्वर के गुण-कर्म-स्वभाव, विशेषताएँ, जीवात्मा की अपनी गतिविधि, उसका स्वरूप और प्रकृति का गुण-कर्म-स्वभाव, इन सबका अध्ययन करके, तुलनात्मक विचार करने पर सब कुछ ईश्वर का ही दिखाई देने लगता है। जीवात्मा का स्वतः व्यक्तिगत स्वतन्त्र कोई ऐसा बल विशेष नहीं जो उसके जीवन में सहयोग दे देवे। प्रकृति से बनी संसार की जितनी वस्तुएँ हैं, सब ईश्वर ने हमको बनाकर दी हैं। हम उनसे लाभ उठाते हैं परन्तु सत्त्व-रज-तम प्रकृति की ऐसी कोई शक्ति नहीं, ऐसा ज्ञान-विज्ञान नहीं कि वह स्वयं आम का फल बनकर हमारे खाने के योग्य बन जाए या गेहूँ का दाना अपने-आप बन जाए। ऐसी उसमें कोई शक्ति नहीं। उससे वस्तुएँ बनाई जाती हैं। जब आप जीवात्मा तथा प्रकृति के उस असमर्थ स्वरूप को जान जाएँगे और ईश्वर के समर्थ स्वरूप को जान जाएँगे तब ईश्वर में रुचि, श्रद्धा अधिक बढ़ जाएगी।

अब देखो ! आपको एक स्थिति सुनाता हूँ। जैसे कि अब मैं इन वाक्यों का जप करना चाहता हूँ। जैसे हम बोल रहे हैं तो ईश्वर-समर्पित होकर करना चाहता हूँ तब मैं एक ऐसी स्थिति में चला जाऊँगा जैसे कोई व्यक्ति भवन के निचले और दूसरे-तीसरे आदि तल को छोड़कर सबसे ऊँचे तल पर पहुँच जाता है। ऐसे ही मैं सामान्य स्थिति से हटकर उस विशेष स्थिति में ईश्वर से सम्बद्ध हो जाऊँगा जहाँ यह संसार बुद्धि से सर्वथा छूट जाता है। क्या समझ में आया? आप तो लिखते रहते हो, चलो ! कोई बात नहीं। आप बताओ –

साधक ३– सांसारिक स्थितियों से ऊपर उठकर, ईश्वर से सम्बद्ध होकर पुनः ईश्वर का जप करना।

स्वामी जी – नहीं सुना हो तो पुनः सुनो। जैसे अब मैं **ओम् सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म**। इन शब्दों का प्रयोग करना चाहता हूँ। अब कैसा ईश्वर-समर्पण रहता है, वहाँ क्या स्थिति दिखाई देती है, वह बात मैंने आपको बताई है। वह समझ में आई या नहीं, आपका ध्यान कहाँ था, क्या रहा; आप जानो। जिस समय मैं यह स्थिति बनाऊँगा उसमें यह अवस्था आएगी, दिखाई देगी जैसे कि हम किसी भवन के निचले भाग को छोड़ते हुए पुनः दूसरी, तीसरी, चौथी व पांचवी और आगे दस, बारह, अठारह मंजिल के ऊपर पहुँच जाते हैं अर्थात् संसार को छोड़ा, मनुष्य मात्र को छोड़ा, सब कुछ को छोड़ दिया। पुनः ये सूर्य, चन्द्रमा आदि सबको छोड़ दिया, हटा दिया और केवल आकाश जैसी स्थिति रह गई जिसमें ईश्वर भरा दिखाई देता है। क्या समझ में आया?

साधक २– ईश्वर भरा दिखाई देता है।

स्वामी जी – और संसार दिखना बन्द हो जाता है, ओझल हो जाता है उस स्थिति में **ओम्** हे ईश्वर ! आप सर्वरक्षक हैं। **सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म** यह स्थिति बनी। अब यह स्थिति बनाकर ईश्वर से जब सम्बद्ध होंगे तब पुनः वह सुख मिलेगा, जिसको हम ईश्वर का सुख कहते हैं। यदि यह स्थिति भंग होती है तो वह जो आकाशवत् अवस्था बनी थी, उसमें धीरे-धीरे पुनः न्यूनता आ जाती है तब जैसे कि भवन से नीचे उतरकर आ गया, जहाँ ये संसार के लोग यहाँ घूम रहे हैं। क्या समझ में आया?

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– नीचे आ गया हूँ जहाँ संसार के लोग घूम रहे हैं।

स्वामी जी – अर्थात् मुझे जो उस स्थिति में सुख था वह कम पड़ जाएगा। उस ज्ञान-विज्ञान में कमी हो जाएगी। लोकैषणा, पुत्रैषणा, वित्तैषणा और काम-क्रोध, लोभ-मोह आदि जो वहाँ नहीं थे, सूक्ष्म रूप में उभरने लगेंगे। सूक्ष्म रूप में क्लेश छूने लगेंगे। पुनः जब यह स्थिति आ गई तब मान लो मैं देखूँगा कि यह स्थिति तो अच्छी नहीं है, खराब है, पुनः वैसे ही संसार को तोड़-फोड़कर प्रलय जैसी स्थिति बनाकर, सब कुछ ईश्वर का मानकर और उसी आकाश जैसी स्थिति में चला जाऊँगा, जहाँ ईश्वर ही ईश्वर भरा दिखाई देगा। पुनः संसार ओझल हो जाएगा। यदि वहाँ कोई वृत्ति मैंने असावधानी से उठा ली तब पुनः झट पकड़ ली जाएगी। तो आपको भी प्रयोग करते-करते आगे ये अनुभूतियाँ दिखाई देंगी। एक बात आपने सुनी होगी। उसका प्रयोग आता होगा। उस विषय में भाष्यकार ने क्या लिखा?

साधक ३– प्रज्ञाप्रसादम्।

स्वामी जी – नहीं। एक दूसरा वाक्य है। उसका भाव है **योग एव योगस्योपाध्यायः** इसको देखो। कौन से सूत्र में यह है?

साधक ३– तस्य भूमिषु विनियोगः।

सम्पादक –भूमेरस्या इयमनन्तरा भूमिरित्यत्र योग एवोपाध्यायः। यो.द.व्या.भा.३/६।

स्वामी जी – तो वहाँ भाष्यकार कहना चाहता है कि जो एक स्थिति हमको उपलब्ध हुई, उसने दूसरी स्थिति को दिखा दिया। एक प्राप्त योग्यता के आधार पर जब हमने और प्रयास किया तो उससे अगली स्थिति दिखाई देने लगी। अभिप्राय है – जहाँ का गुरु जी सीधा ज्ञान नहीं दे पा रहे, इस स्थिति में जाने पर वहाँ की अगली स्थिति भी दिखाई देने लगती है। मान लो, एक व्यक्ति सम्प्रज्ञात समाधि की ऊँची स्थिति सत्त्वगुणप्रधान धर्ममेघ समाधि में चला गया। यहाँ पर आकर उसको लगा कि यह भी अन्तिम स्थिति नहीं है। इसमें भी दोष है। इसको रजोगुण और तमोगुण उखाड़ फेकेंगे। पुनः आलस्य आदि सताएँगे। इसलिए यह भी अच्छी स्थिति नहीं है। तब पुनः क्या हुआ? दोष देखकर इससे भी वैराग्य हो गया। इस स्थिति ने अगली स्थिति को बता दिया। समझ में आया?

साधक ५– इस स्थिति ने अगली स्थिति को बता दिया।

स्वामी जी – कुछ समझ में आया? जैसे कि आपने सब कुछ ईश्वर का मान लिया। अपना स्व-स्वामी-सम्बन्ध उखाड़कर फेंक दिया। तीन एषणाओं की आपके पास कोई बात नहीं रही। अब आपको ईश्वर चाहिए और कुछ नहीं चाहिए; यह स्थिति है। जब आप ऐसी स्थिति में पहुँचेंगे तब ईश्वर आपको ज्ञान देगा और समाधि सिद्ध करवाएगा और ईश्वर का प्रत्यक्ष हो जाएगा। परन्तु आप चाहें कि हम लौकिक जीवन को पकड़े रहें और पुनः हम ऐसी स्थिति में चले जाएँ। ऐसा नहीं हो पाएगा। दोहराओ। क्या समझ में आया?

साधक २– लौकिक जीवन को भी पकड़े रहें और...।

स्वामी जी – ईश्वर का साक्षात्कार भी करना चाहें तो यह नहीं हो पाएगा। लौकिक जीवन समाप्त होगा। समस्त जीवन समाप्त हो जाता है, पूरी सृष्टि समाप्त हो जाती है। जीवात्मा और ईश्वर, उस स्थिति में ये दोनों रह जाते हैं। एक बात ध्यान देने की है जब आप ऐसी स्थिति की गवेषणा करेंगे जिसमें सब कुछ का विनाश देखने की बात आएगी तब हो सकता है आप घबरा जाएँ। क्यों जी! ऐसा हो सकता है?

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक २– अब नहीं लगता।

स्वामी जी – आप यह सोचने लगें कि यहाँ आकर तो कुछ भी नहीं रहता। न खाना-पीना, न देखना-सुनना, न हँसना-हँसाना और बाहर का सब कुछ समाप्त ! इतनी भयंकर अवस्था !! जहाँ कोई सुख-साधन नहीं, कुछ भी नहीं। क्या करेंगे इस शून्य अवस्था में जाकर? मुझे अच्छी नहीं लगती या नहीं होगा ऐसा, क्यों?

साधक ८– अब नहीं लगता, स्वामी जी !

स्वामी जी – अब एक बात और देखेंगे कि सर्वस्व का स्वामी ईश्वर को मानने में आपको क्या बाधा दिखाई देती है; यह बताएँगे। हाँ जी ! बोलो –

साधक ७– कोई बाधा दिखाई नहीं देती। यदि हम ऐसा नहीं मानेंगे तब भी परमात्मा का ही रहेगा।

स्वामी जी – क्या कहा, पुनः दोहराएँ।

साधक ७– सब वस्तुओं को, सारे संसार को परमात्मा का ही मानते हैं, सब पर उन्हीं का अधिकार है। हमारे मानने या न मानने से इसमें कोई अन्तर नहीं पड़ता। क्योंकि सब कुछ ईश्वर-प्रदत्त है। हमें यही मानना चाहिए कि प्रभु का ही सब कुछ है।

सम्पादक – वस्तुतः बाधा इस रूप में रहती है कि यदि ईश्वर को सर्वस्व का स्वामी मान लिया तो अभी जो कुछ लौकिक प्रयोजनों को पूर्ण करना चाहते हैं, वह नहीं कर पाएँगे क्योंकि सब कुछ ईश्वर के अनुसार करना पड़ेगा और वह हमें स्वीकार नहीं है। दूसरी बात है कि यदि बाधा नहीं होती तो मुमुक्षुत्व की स्थिति सदैव बनी रहती और वस्तुओं का प्रयोग ईश्वर की आज्ञा के अनुकूल ही करते, उसके विरुद्ध नहीं।

स्वामी जी – हाँ ! तो आपको यह देखना है कि उसको ऐसा बना पाते हैं या नहीं? हमने क्रिया रूप को बल देना है। सिद्धान्त के रूप में तो हजारों लोग कहते रहते हैं। हम यह देखते हैं हमारे जीवन में ये बातें उतरीं या नहीं? अन्तः स्थिति में यह बात आ गई या नहीं? हम मानने लगे या नहीं? यह जो लौकिक परम्परा है हम उतने मात्र से सन्तुष्ट नहीं होते हैं क्योंकि उस स्थिति में हमारा कोई लक्ष्य पूरा नहीं होता। ठीक है ऐसे जानने वाले तो बहुत हैं। पढ़ने-पढ़ाने वाले मिलते हैं परन्तु देखना यह है कि मैं संसार की सारी वस्तुओं को मन-वाणी-शरीर से ईश्वर का मानकर चलता हूँ या अपना? दिनभर मानता हूँ या थोड़ी देर तक मानता हूँ, पुनः छोड़ देता हूँ अथवा उपासना काल में आती है ऐसी स्थिति, पर दिन में नहीं रहती। आपको यह अनुभव करना है। एक अंश यह है।

अब आप दूसरा अंश देखेंगे कि क्या ईश्वर के प्रति मेरा प्रेम, प्यार, प्रीति ऐसी बनी कि ईश्वर के तुल्य या अधिक कोई भी पदार्थ न लगे और पुनः ईश्वर में ही तल्लीन हो जाएँ। इसके साथ इस स्थिति के अनुभव करने में जो-जो बाधाएँ हैं उनको समझें और हटाते जाएँ। शनैः शनैः बाधाएँ कम होती जाएँगी, निर्बल होती जाएँगी और अन्ततः समाप्त हो जाएँगी किन्तु इसके लिए अत्यन्त परिश्रम करना होगा। इसलिए यह बात कही **तीव्र संवेगानामासन्नः**। तीव्र विवेक – वैराग्य वाले को शीघ्र समाधि और समाधि का फल प्राप्त होता है।

अब हम प्रयोग करेंगे – **ओम् सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म**।

अब आप शरीर को ईश्वर का मानकर चलिए तथा इसको अनित्य समझकर छोड़ दीजिए जैसे कि यह विनाश की स्थिति में जा चुका हो। पूरा संसार विनाश की स्थिति में जा चुका हो। यह तो निश्चित बात है कि उसमें कुछ भी निर्मित वस्तुतत्त्व नहीं बचेगा। ऐसे मानते-मानते व्यक्ति एक आकाश जैसी स्थिति में पहुँचता है। पुनः सब कुछ का बनाने वाला ईश्वर व सब कुछ का स्वामी

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ईश्वर है और सब गुण, ज्ञान आदि ईश्वर में है। मेरे तो नाम मात्र के हैं, प्रकृति में भी नाम मात्र के हैं। इस प्रकार ईश्वर से प्रेम करने का प्रयत्न करते हुए जप करेंगे-

ओम् सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म। ओम् सत्यम् ज्ञानम् अनन्तम् ब्रह्म।

अब हम रुकेंगे। जब आप बोल रहे थे तब कुछ मन पर अधिकार था? उसमें कुछ भाग-दौड़ चल रही थी या कैसा था?

साधक २- कोई भाग-दौड़ नहीं थी।

स्वामी जी - और आप भाग-दौड़ से स्वयं को कैसे हटाकर रखते थे? जैसे कि उसको हटा देना, रोक देना?

साधक २- ऐसा कुछ नहीं था। केवल यह कर्म मैं कर रहा हूँ, यही एक वृत्ति थी।

स्वामी जी - जो प्रयोग करते हैं, उनमें यह अनुभूति बनती है कि हम बिना किसी कठिनाई के, लोगों के जीवन में जैसे कि विद्युत् तरंगों की भाँति वृत्तियाँ चलती हैं, अपनी वैसे वृत्तियों को रोक देते हैं। सभी प्रबल धाराओं को रोक देते हैं तब जो अति सूक्ष्म वृत्तियाँ थोड़ी-बहुत रह जाती हैं, क्रियात्मक प्रयोग करते रहने से और व्यवहार में सावधान रहने से उनको भी रोक सकते हैं; ऐसा प्रतीत होता है। अब विराम॥

८५ आत्मनिरीक्षण

स्थिति-प्रेक्षण : श्रावण शु. २/२०६०-३१/७/०३

आपको दैनिक जीवन में अपर-वैराग्य की अनुभूतियाँ, जैसे कि पढ़ी हैं, कभी दिखाई देती हैं या कभी दिखाई नहीं देतीं?

साधक ३- उपासना काल में तो कभी दिखाई पड़ती हैं, व्यवहार काल में नहीं।

स्वामी जी - हूँ।

साधक १- अनित्यता का सम्पादन करने पर दिखाई पड़ती हैं।

स्वामी जी - विवेक-वैराग्य का स्तर सदा बनाए रखना होता है। विवेक-वैराग्य व अभ्यास, तीनों चलते रहते हैं।

साधक १- सब बनाए रखना बहुत कठिन पड़ता है।

स्वामी जी - कठिन का कारण है बाल्यावस्था से ही इसको न जानना, न करना, न सुनना और न ही सुनाना। सुनकर या पढ़कर भी उसका प्रयोग बार-बार न करना। आपकी भी यही स्थिति है इसलिए कठिन प्रतीत होता है।

साधक १- छः-सात घण्टे से अधिक करने पर पुनः इच्छा नहीं होती है।

स्वामी जी - एक लौकिक जीवन होता है दूसरा आध्यात्मिक। लौकिक व्यक्ति जिन सुख और सुख-साधनों से सम्बद्ध रहता है उनके सम्बन्ध में ही दिनभर सोचता-विचारता रहता है। दूसरा आध्यात्मिक व्यक्ति विवेक-वैराग्य को प्राप्त कर इनको जैसा का तैसा बनाए रखता है। वह दिनभर सुख और सुख-साधनों को सुखप्रद मानकर ग्रहण नहीं करता, अपितु वह ईश्वर की उपासना में लगा

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रहता है। वह समझ गया कि जीवन तो यह है। लौकिक व्यक्ति ने समझा कि सुख और सुख-साधनों से युक्त होना ही जीवन है। तो यह लौकिक जीवन आपका बना हुआ है और आपको प्रभावित कर रहा है। सांसारिक जीवन-संस्कार-व्यवहार आपको लगातार प्रभावित कर रहे हैं। अब उनको हटाना, उनको रोकना और योगाभ्यास की स्थिति का सम्पादन करना, उनको हटाने के उपायों का अनुष्ठान करना आपको कठिन प्रतीत हो रहा है।

जब व्यक्ति वर्षों तक इसका अभ्यास करता रहेगा तो यही उसके लिए सरल बन जाएगा। यद्यपि लौकिक व्यक्ति का मन घूमता रहता है, चाहे जहाँ आता-जाता रहता है। उसके लिए मन को एकाग्र करना या सभी विषयों से रोककर रखना बहुत कठिन है किन्तु आध्यात्मिक व्यक्ति के लिए सरल है। पुनरपि अभ्यास करने पर लौकिक के लिए भी सरल हो जाता है। यद्यपि दोनों के पुरुषार्थ में बहुत अन्तर होता है।

व्यक्ति को जिस अवस्था या साधनों से सुख की अनुभूति होने लग जाती है, उनके अभाव में उसे दुःख की अनुभूति होने लगती है। अतः वह स्वभावतः उन साधनों को नहीं छोड़ना चाहता। अर्थात् जिससे सुख मिलता है और दुःख हटता है उसका ग्रहण कठिन नहीं दिखता है। जैसे किसी व्यक्ति के पास रजाई, कम्बल व कुरता है और भयंकर बर्फ पड़ रही हो तब वह क्या करेगा? तब सारे को पहन लेगा। तब ठण्ड से बच जाएगा और सुख को प्राप्त करेगा। किन्तु जब रजाई, कुरते को हटाएगा तब ठिठुर जाएगा और तब वह कहेगा कि भाई! मैं तो इनके बिना रह ही नहीं सकता। इस प्रकार ठण्ड में उसको रजाई ओढ़ना, अंगीठी रखना कठिन नहीं दिखेगा परन्तु गर्मियों में इनको दूर से ही फेंक देगा। ऐसे ही जब व्यक्ति को योगाभ्यास में सुख नहीं दिखता तब वह उसके लिए परिश्रम नहीं करता।

साधक १– एक ऐसी स्थिति भी होती है जिसमें मन राग-द्वेष से रहित होकर बड़ा शान्त हो जाता है। इस स्थिति की प्राप्ति होने पर भी ईश्वर के प्रति उतनी रुचि नहीं रह पाती। इसी में बड़ी सन्तुष्टि मिलती है और उधर आगे बढ़ना रुक जाता है।

स्वामी जी – हाँ! तो यह इसलिए होता है कि आप अब तक लौकिक स्तर पर रहे। अब थोड़ा आध्यात्मिक स्तर हाथ लगा। इसमें शान्ति की अनुभूति हुई जो आपके लिए बहुत कुछ है। यह बड़ी अच्छी लगती है तो आपकी बुद्धि में यह बात बैठ गई कि यह तो बहुत ऊँची स्थिति है, अब आगे पता नहीं मिले, न मिले। यदि इसको भी छोड़ दिया जाए तो जाने क्या होगा? अतः इसी में सन्तुष्ट हो गए। जब आप उसमें भी दोष देखेंगे तब उसको भी छोड़ देंगे।

साधक १– उसमें किस प्रकार से दोष दिखेगा।

स्वामी जी – वह एक सत्त्वगुण-प्रधान अवस्था मात्र है। जब आप इससे आगे अपर-वैराग्य को प्राप्त कर समाधि में प्रवेश करेंगे उस समय जो सुख होगा, जो क्लेशों से रहित अवस्था होगी; वह इसमें नहीं है। और आगे बढ़ने पर जब ऊँचे स्तर पर सम्प्रज्ञात समाधि आएगी तब उसमें इससे अधिक सुखप्रद, बाधारहित अवस्था दिखाई देगी। आगे चलकर पुनः उसमें भी दोष दिखाई देगा क्योंकि वह भी सत्त्वगुण-प्रधान है। इसके पश्चात् पर-वैराग्य की स्थिति प्राप्त होती है और पर-वैराग्य से असम्प्रज्ञात समाधि प्राप्त होती है। असम्प्रज्ञात समाधि में ईश्वर के आनन्द की प्राप्ति होती है। जो सुख व्यक्ति को उस मात्र रागरहित या सत्त्वप्रधान अवस्था में होता है वह सुख, इस ईश्वर के सुख के सामने कुछ भी नहीं है।

साधक ७– यहाँ समाधि में दोष की अपेक्षा कहा जाए कि इससे भी आगे कोई वस्तु है। इससे भी अधिक लाभ वहाँ है। तो उसे प्राप्त करें।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – क्या पूछा इन्होंने ?

साधक ७– सम्प्रज्ञात समाधि में हम कहें कि भाई ! इसमें भी दोष है या अपर-वैराग्य अथवा सम्प्रज्ञात समाधि में ...।

स्वामी जी – हाँ ! इसमें भी दोष है। ठीक आगे ?

साधक ७– दोष कथन की अपेक्षा हम यह कहें कि इससे भी कुछ अधिक उपलब्धि, ईश्वर आनन्द का लाभ है। उसको हम प्राप्त करें !

स्वामी जी – हाँ ! उसमें तो केवल शब्दों का अन्तर पड़ा। आपने इस रूप में कह दिया कि इससे भी अधिक कोई उपलब्धि है तब बात तो वही हुई है, एक की अपेक्षा दूसरा कम हो गया, यह दोष सिद्ध हो गया। वैसे वास्तविक दोष यह है कि सत्त्व-रज-तम, इन तीन गुणों का जो प्रयोग है सम्प्रज्ञात समाधि में, वहाँ जब सत्त्वगुण प्रधान होगा तब उसके पास ही रजोगुण उपस्थित रहता है। थोड़ी-सी असावधानी होते ही वह आक्रमण कर देगा। ऐसे ही तमोगुण रहता है उसका आक्रमण हो जाएगा। इसलिए कहा कि जो सत्त्वगुण प्रधान स्थिति है उसमें भी दोष है। किन्तु यह दोष, ईश्वर से जो आनन्द मिलता है, उसमें नहीं है। दूसरी स्थिति है कि सत्त्वगुण के द्वारा रज-तम को दबाकर नहीं रखा जा सकता, जबकि ईश्वर के सान्निध्य में गुणों को हम लम्बे काल तक दबाकर रख सकते हैं। उसमें विशेष आनन्द मिलता है। सत्त्वगुण में सुख सामान्य है, ईश्वर जैसा नहीं है।

अच्छा ! सत्त्वगुण से जो सुख होगा, वह भी क्षणिक होगा।

साधक १– क्षणिक से अभिप्राय ?

स्वामी जी – परिवर्तनशीलता। जो सुख होगा उसमें क्षण-क्षण में परिवर्तन होता रहेगा।

साधक १– स्वामी जी ! सात्त्विक अवस्था में भी व्यक्ति की आधा-एक घण्टा तक स्थिति बनी रहती है।

स्वामी जी – बनी तो रहती है पर गुणों का स्वभाव परिवर्तनशील होने के कारण सुख भी परिवर्तनशील रहेगा।

साधक १– छूट जाएगा।

स्वामी जी – सुख भी तो क्षणिकता में परिवर्तित होता रहता है। जैसे हलुवे का जो सुख है वह क्षणिक है। पहले ग्रास में जितना सुख होता है, दूसरे-तीसरे में क्रमशः कम होता जाता है। क्षणिक होता हुआ जैसे हलुवे का सुख कुछ काल तक रहता है वैसे ही समाधि में सत्त्व का सुख लम्बे काल तक क्षणिक होता हुआ भी बना रहेगा।

साधक १– ईश्वर का आनन्द भी तो सदा पकड़ में नहीं रहता। वह भी क्षणिक हुआ ?

स्वामी जी – ईश्वर का जो आनन्द है, उसकी उत्पत्ति नहीं होती, उसकी अभिव्यक्ति होती है। वह अनादि काल से ज्यों का त्यों है और सत्त्व का सुख रज-तम के साथ मिश्रित होकर उत्पन्न होता है और नष्ट होता रहता है। इसके लिए कहा –

षड् भावविकारा भवन्तीति वार्ष्यायणिः। निरुक्त १/१/३।

साधक १– स्वामी जी ! सत्त्व में भी तो लगातार सुख है। उसकी भी उत्पत्ति नहीं, अभिव्यक्ति मात्र है।

स्वामी जी – कैसे, जैसे ?

साधक १– सत्त्वगुण का धर्म हम सुख को मानते हैं।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी जी – हूँ।

साधक १– तब वह स्वाभाविक हुआ ?

स्वामी जी – बात दूसरी है। सत्त्वगुण जहाँ होता है, वहाँ रजोगुण होता है।

साधक १– हाँ जी !

स्वामी जी – उसमें मिश्रित रहेगा।

साधक २– मिश्रित (विच्छिन्न) होता है, एक ग्रास में भी यह पता लगता है।

स्वामी जी – मिश्रित रहता है। क्योंकि तीनों गुण मिलकर एक स्थिति को पैदा करते हैं। सुख होगा तब भी दोनों दुःख और मोह रहेंगे। दुःख होगा तब भी दोनों सुख और मोह रहेंगे। मोह होगा तब भी दोनों दुःख और सुख रहेंगे। किसी एक की मात्रा घट-बढ़ जाएगी। इसलिए कि गुणों का झुण्ड ही किसी सुख-दुःख आदि को उत्पन्न करता है, अकेला नहीं करता है।

आप कभी मानसिक स्तर पर वितर्क उठा लेते हैं तब आप उससे संघर्ष कैसे करते हैं या आपको वितर्कों का अनुभव ही नहीं होता ?

साधक ३– होता है। पर उसको बाधक मानकर आगे नहीं चलाते हैं।

स्वामी जी – जैसे कि किसी व्यक्ति ने जान-बूझकर द्वेष के कारण आपके ऊपर हजारों रुपयों की चोरी का आरोप लगा दिया, जबकि आपने चोरी नहीं की। अब आपको पता चला तब मन में क्या आएगा - इस व्यक्ति को दण्ड देना चाहिए, पीटना चाहिए आदि-आदि या और कुछ ?

साधक ३– उसको समझाना चाहिए कि ऐसा नहीं है। नहीं मानता तो कोई बात नहीं।

स्वामी जी – हाँ जी ! आप बोलो। आप क्या करोगे ?

साधक ५– स्वामी जी ! उसका स्पष्टीकरण कराएँगे कि ऐसी बात नहीं है।

स्वामी जी – वह तो स्पष्टीकरण को मानता ही नहीं। वह सुनता ही नहीं। सब के सामने आपको कहेगा - यह तो पक्का चोर है। आपके स्पष्टीकरण को सुनता ही नहीं और लोगों में खूब प्रचार करता है। तब क्या करोगे ?

साधक ५– सबके सामने करेंगे।

स्वामी जी – लोग तो उसकी मानेंगे, आपकी थोड़ी मानेंगे। वह लोगों से कहेगा कि यह अपनी चोरी को छिपाने के लिए बातें बना रहा है। लोग भी यही समझेंगे कि हमको उलटा समझाने का प्रयास कर रहा है। उसने खूब प्रचार कर दिया, सबको बता दिया कि इसने इतने-इतने रुपए की चोरी की है। तब आप क्या करेंगे। उसके लिए क्या सोचेंगे ?

साधक ५– स्वामी जी ! पुनः ईश्वर के ऊपर छोड़ देंगे।

स्वामी जी – कैसे ?

साधक ५– वह जो पाप कर रहा है उसको ईश्वर तो जान ही रहा है, वही इसका दण्ड भी देगा।

स्वामी जी – आप क्या सोचेंगे ? यह नहीं सोचेंगे कि इसको दण्ड मिलना चाहिए, अच्छी पिटाई होनी चाहिए। ऐसा नहीं सोचेगे क्या ?

साधक ५– ऐसे भाव भी आ जाएँगे।

स्वामी जी – आप बताएँ -

साधक ८– ईश्वर स्वयं उसका उचित दण्ड देगा। हमें कुछ नहीं करना पड़ेगा।

स्वामी जी – हूँ।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

साधक ८– ईश्वर की व्यवस्था में वह तो दण्डित हो ही रहा है।

स्वामी जी – आप उसका हित चाहेंगे या नहीं? इसका भला हो, कल्याण हो। यह सुधरे, कोई बात नहीं है; ऐसा सोचेंगे या इसकी पिटाई होनी ही चाहिए, नहीं तो औरों को दुःख देता रहेगा। आप कैसा सोचेंगे?

साधक ८– ईश्वर न्यायकारी है उसकी व्यवस्था में कर्मों के अनुसार फल का विधान है। इसलिए ईश्वर की ओर से इसका दण्ड मिलेगा ही।

स्वामी जी – अब आप बताइए। आप क्या सोचेंगे?

साधक ६– दण्ड की भी सोच सकते हैं। वैसे तो यही है कि ईश्वर की ओर से दण्ड मिलेगा। इसका विश्वास रहता है इसलिए ईश्वर पर छोड़ देंगे। परन्तु स्थिति आने पर सम्भवतः मन में स्वयं दण्ड देने की इच्छा होगी।

स्वामी जी – आप बताएँगे।

साधक ३– ईश्वर के न्याय पर छोड़ देना, अभी तो यही उचित लग रहा है।

स्वामी जी – कभी-कभी ऐसी स्थिति में जो व्यक्ति थोड़ा-सा अधिक ध्यान दे तो इसकी मनः स्थिति बिगड़ती है या नहीं? आप बताओ।

साधक ८– बिगड़ती है।

स्वामी जी – उसकी ओर अधिक ध्यान दें तब थोड़ी-सी मनः स्थिति बिगड़ जाती है या नहीं बिगड़ती?

साधक ३– बिगड़ती है। यह तो होता है जिनके कारण स्थिति परिवर्तित होती है, उनसे दूर रहने की इच्छा होती है। ऐसा लगता है उनके पास मत जाओ।

स्वामी जी – अच्छा! आप लोगों में कोई दयालु भी है? अच्छी दया रखने वाला या सारे के सारे तीव्र उत्तेजना वाले ही हैं? आप में से कोई ऐसा दिखाई तो नहीं दे रहा है जिसको हम कहें कि यह बड़े दयालु स्वभाव का है।

साधक ७– सत्यकाम जी हैं।

स्वामी जी – मुझे तो सत्यकाम जी भी नहीं दिखते।

साधक ७– कमरे में रहते हैं। अतः मैं अनुभव करता हूँ।

स्वामी जी – हाँ! तो हो सकता है आपको दिखते हों। यह पृथक् बात है कि किसी में कभी दया आ जाती है। यह नहीं कि दया का सर्वदा अभाव रहता है। व्यक्ति कई बार दयालु बन जाता है और कई बार उग्र हो जाता है, ऐसा आपने देखा होगा। एक व्यक्ति जब सहन करते-करते इन विरुद्ध क्षेत्रों को पर्याप्त पार कर जाता है तब उसका स्वभाव दयालु बन जाता है।

साधक २– ऐसी स्थितियाँ समझ में नहीं आतीं।

स्वामी जी – हाँ!

साधक २– प्रायः व्यक्ति की स्वाभाविक स्थिति समझ में नहीं आती है। दोनों (उग्रता व दयालुता) स्थितियाँ दिखती हैं। किसी का स्वभाव स्पष्ट नहीं होता है।

स्वामी जी – अच्छा! दयालु बनने से सबके प्रति वैरभाव छोड़कर वह व्यक्ति चलता है और ऐसा करने से उसको बड़ा सुख मिलता है, बड़ी शान्ति रहती है। किसी के प्रति थोड़ी- सी भी उत्तेजना की झलक आ जाए तो उसका सारा सुख समाप्त हो जाता है। इसलिए वह बड़ा सावधान रहता है। मान लो, आपको अपर-वैराग्य हो गया। इसके पश्चात् जो समाधि लगेगी उसमें आपके

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अन्दर बहुत दयालुता आ जाएगी। उस समय यदि वह दयालुता, कोमलता थोड़ी-सी हट जाए तो सम्प्रज्ञात समाधि समाप्त हो जाएगी।

साधक १ – उस समय किस हेतु से दयालुता आती है।

स्वामी जी – एक तो कारण यह है कि जब व्यक्ति सांसारिक था, जब सुख और सुख-साधनों के लिए वह प्रयासशील रहा और दुःख और दुःख साधनों से अत्यन्त द्वेष करता रहा। वैर-विरोध-कलह आदि-आदि में रुचि रखता रहा। स्वार्थ प्रधान अपने जीवन को रखा। अपने समान किसी का हित कभी चाहा, कभी नहीं। अब जब उसने सब में अनित्यता देखी। सुख और सुख साधनों का सार निकाला और उनका परित्याग कर दिया तब जो उसको शान्ति मिली। वह शान्ति, उस राग-द्वेष वाले लोक में, कहीं नहीं दिखाई देती है। अब इसको दिखाई देने लगा कि सारे प्राणी अपने जैसे हैं। यह सारा संसार ईश्वर का परिवार है। सब कुछ ईश्वर का है। ऐसी स्थिति बनाए रखने पर उसको राग-द्वेष ने सताना छोड़ दिया। सुख और सुख साधनों का राग, दुःख और दुःख साधनों का द्वेष अब उसे नहीं सताता। वैसी स्थिति में यह जो 'मैं और मेरे' का एक दुःख रहता है, यह भी हट जाता है। इस प्रकार 'मैं और मेरे' का जो दुःख व्यक्ति को सतत संतप्त रखता है, वह समाप्त हो जाता है। दयालुता में यह कारण रहता है।

दूसरा कारण – यदि वह अपने मन में थोड़ा भी राग-द्वेष उत्पन्न करता है, औरों के प्रति कुछ और ढंग से सोचने लगे या मन में लौकिक सुख की इच्छा कर लेवे तो वह स्थिति हाथ से चली जाती है। नहीं रहती। जब नहीं रहती तब उसको, बड़ी भारी हानि हो गई, ऐसा लगता है। अतः वह अपनी इस स्थिति को बनाए रखता है।

इसी स्थिति में वह भावना आती है जिसके लिए कहा गया – **सम्मानाद् ब्राह्मणो नित्यमुद्विजेत विषादिव**। कि मान-सम्मान विद्वान् के लिए विष के तुल्य है और अपमान की इच्छा अमृत के तुल्य है। यह स्थिति यहीं पर हाथ लगती है। सम्मान उसको इतने भयंकर लगते हैं कि यदि सम्मान की बात थोड़ी भी अन्दर चली जाए तो तेरा वह स्तर ही नहीं रहना और अपमान तो कितना ही हो जाए, कोई बात नहीं। वह मरा देख रहा है, सब नष्ट हो रहा है तो अपमान किसका? न वह जीवित है, न मैं, दोनों ही जाने की स्थिति में हैं। राग के विषय में देखता है कि अपमान पाकर वह स्वतः दूर गया। समझ में आया या मोटा दृष्टान्त दूँ?

साधक १ – आ गया।

स्वामी जी – जिनमें उसका राग था मित्र आदि में, उन्होंने अपमान कर दिया। पुनः कहता है- बहुत अच्छा हुआ। उनमें जो राग था वह एकदैव समाप्त हो गया। अब समझ में आया?

साधक ६ – हाँ जी!

स्वामी जी – ये जो वृद्ध माताएँ बैठी हैं, दो-चार ऐसे गृहस्थ लोग होते हैं। जब उनके बड़े बेटे-बेटियाँ उनका अपमान कर देते हैं तब एक तो वे होते हैं जो रोने-धोने लगते हैं, हाहाकार करते हैं। यह हो गया, वह हो गया। पढ़ाया-लिखाया, सब कुछ किया परन्तु देखो! आज हमको रोटी के लिए भी नहीं पूछते। ऐसे दुःखी होते हैं। अच्छा! इन्हीं में जो दूसरा बुद्धिमान् होता है, उसका सोचने का ढंग क्या होता है? वह कहता है – अच्छा रहा! बड़े होकर तूने मेरा अपमान कर दिया। पाल-पोसकर तुमको मैंने तैयार किया। तेरे लिए दिन-रात भाग-दौड़करता रहा, सारा जीवन तेरे पीछे खपा दिया। इतना पढ़ाया-लिखाया और अपमान के लिए उतरे हुए हो? ठीक है! आज मुझे पता चल गया तुम कितने स्वार्थी हो।

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वह भगवान् को धन्यवाद करता है कि हे भगवान् ! इनमें मेरा राग बना था, उससे आज छुटकारा हो गया, अन्यथा अब भी इन्हीं के पीछे घुलता रहता। यदि ये मुझे न धमकाते, न मेरा अपमान करते तो इनमें मेरा राग बना ही रह जाता। यह बहुत अच्छा हुआ और बेटे से जाकर कह दिया - भाई ! जो तुमने किया, सो किया। ठीक है ! अब अपना काम करो। मैं तो वानप्रस्थ आश्रम में जा रहा हूँ। इस प्रकार से उसने उस परिस्थिति का लाभ उठा लिया। नहीं समझे मेरी बात ? कोई अन्य दृष्टान्त सुनाऊँ ?

साधक २ – ऐसे में आश्रम में आकर क्या लाभ होगा ?

स्वामी जी – यह लाभ होगा कि वहाँ दिन-रात उनके साथ व्यापार में लगा रहता था, उसका समय बच गया। दूसरा, इतना वैराग्य तो अवश्य हो गया कि मोह समझ में आ गया। उसने सारा व्यापार छोड़ दिया और यहाँ अब एक कुटिया में बैठकर भोजन-विश्राम करके, शेष समय साधना में लगा देगा। परिवार के साथ जितना लेन-देन और गुथ-मुथ था वह सारा छोड़ दिया। वहाँ से यह अच्छी स्थिति है।

अच्छा ! यह बतलाओ, आपके खाने-पीने आदि में कोई कमी तो नहीं की जा रही है ? जैसे कि दूध कम है, घी कम है, फल कम है आदि ऐसी कुछ बात हो तो बताओ ! ऊपर-ऊपर से नहीं कहना। प्रायः आजकल के लोग ऊपर-ऊपर से तो यही कहते हैं जैसा कि आप जानते है, मैं भी जानता हूँ कि कमी मानते हुए भी बोलेंगे - नहीं जी ! सब ठीक है। बहुत अच्छा प्रबन्ध है। आप ऐसा मत करना। ऐसा भी मत समझना कि दो-चार त्रुटियाँ तो हैं परन्तु बताऊँगा तो दुःखी हो जाएँगे। ऐसा होता है या नहीं ? इसलिए आप बताओ। बाहर-भीतर से आपको एक होना भी होगा या नहीं ?

साधक ३ – आप का तो ठीक है पर सभी के साथ ऐसा नहीं चल पाता है।

स्वामी जी – क्या ?

साधक ३ – आपके साथ ऐसा व्यवहार चलता है, सब जगह ऐसा व्यवहार नहीं होता।

स्वामी जी – हाँ !

साधक ३ – यह व्यवहार सबके साथ नहीं करते हैं।

स्वामी जी – क्यों जी, बताओ ! अपने मन की बताओ, आपको घी की, दूध की, वस्त्रों की, साबुन-तेल की या फलों की कोई कमी दिखती है ? जैसे कई बार बताता नहीं व्यक्ति, पर सोचता है कि यह कमी है। ऐसा तो नहीं है ?

साधक १ – ऐसा नहीं है।

स्वामी जी – हो सकता है जब आप यहाँ से चले जाएँ, वहाँ बताएँ कि भाई ! यह भी कमी थी। वह भी कमी थी। वहाँ आप दस-पाँच गिना देंगे। मधुर हँसी !! क्यों जी ! ऐसा तो नहीं करेंगे ?

साधक ७ – सामने बताना सिखा दिया आपने, अब अपेक्षा होने पर मन की बात बता सकेंगे।

स्वामी जी – ठीक है। अब विराम ॥

इति पूज्यपादश्रीमत्स्वामिसत्यपतिपरिव्राजकेनोपदिष्टस्तदन्तेवासिना सुमेरुप्रसादेन दर्शनयोगमहाविद्यालयाचार्येण सम्पादितस्य बृहतीब्रह्ममेधानामग्रन्थस्य प्रथमो भागः ॥

CC-BY. Public Domain. Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन योग महाविद्यालय

स्थापना

दर्शन योग महाविद्यालय की स्थापना चैत्र शुक्ला प्रतिपदा विक्रम संवत् २०४३ (१० अप्रैल १९८६) को श्री स्वामी सत्यपति जी परिव्राजक द्वारा हुई ।

उद्देश्य

१) महर्षि पतञ्जलि प्रणीत अष्टाङ्गयोग की पद्धति से उच्च स्तर के योग-प्रशिक्षकों तैयार करना, जो देश-विदेश में प्रचलित मिथ्यायोग के स्थान पर सत्य योग का प्रशिक्षण दे सकें ।

२) विशिष्ट योग्यता वाले वैदिक-दार्शनिक विद्वानों का निर्माण करना, जो सार्वभौमिक युक्तियुक्त, अकाट्य, वैज्ञानिक, शाश्वत वैदिक सिद्धान्तों का बुद्धिजीवी वर्ग के समक्ष प्रभावपूर्ण शैली से प्रतिपादन करके उनकी नास्तिकता मिटाकर उन्हें वैदिक-धर्मानुयायी बना सकें ।

३) निष्काम भावना से युक्त, मनसा, वाचा, कर्मणा एक होकर तन, मन, और धन से सम्पूर्ण जीवन की आहुति देनेवाले व्यक्तियों का निर्माण करना, जो अपनी और संसार की अविद्या, अधर्म तथा दुःखों का विनाश करके उसके स्थान पर विद्या, धर्म तथा आनन्द की स्थापना कर सकें ।

प्रवेश के लिए योग्यता

- प्रवेश केवल ब्रह्मचारियों के लिए । (आजीवन ब्रह्मचारियों को प्राथमिकता)
- वैदिक सिद्धान्तों में निष्ठा होना ।
- योगाभ्यास तथा दर्शनों के अध्ययन में रुचि होना ।
- संस्कृत भाषा पढ़ने, लिखने, बोलने में समर्थ होना । (व्याकरणाचार्य, शास्त्री या समकक्ष योग्यता वालों को प्राथमिकता) ।
- यम-नियमों का श्रद्धापूर्वक पालन करना ।
- निष्काम भाव से समाज-राष्ट्र की सेवा का संकल्प होना । त्यागी, तपस्वी,सदाचारी होना ।
- अध्ययन काल में घर से या स्वजनों से सांसारिक सम्बन्ध न होना ।
- अवस्था १८ वर्ष से अधिक होना ।

संस्थान की विशेषताएँ

१ प्रत्येक ब्रह्मचारी को पक्षपात रहित (समान रूप से) भोजन, वस्त्र, दूध-घी, फल, पुस्तक, आसन इत्यादि सभी वस्तुएँ निःशुल्क प्राप्त हैं ।

२ प्रतिदिन कम से कम दो घण्टे व्यक्तिगत योगाभ्यास (ध्यान) करना अनिवार्य है ।

३ प्रतिदिन क्रियात्मक योग प्रशिक्षण में विवेक, वैराग्य, अभ्यास, ईश्वर-प्रणिधान, मनोनियन्त्रण, ध्यान, समाधि तथा स्वस्वामि-सम्बन्ध (ममत्व) को हटाना इत्यादि आध्यात्मिक सूक्ष्म विषयों पर विस्तार से विवेचन किया जाता है ।

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

४ यम-नियमों का मनसा, वाचा, कर्मणा सूक्ष्मता से पालन कराया जाता है ।

५ दिन में ५.३० घण्टे का मौन रहता है, (जिसमें ध्यान, स्वाध्याय आदि सम्मिलित हैं) ।

६ रात्रि में आत्म-निरीक्षण होता है, (जिसमें दिन भर के दोषों का सब के समक्ष ज्ञापन तथा भविष्य में सुधार हेतु प्रयत्न किया जाता है) ।

७ वार्तालाप का माध्यम संस्कृत भाषा है ।

८ प्रतिदिन यज्ञ, वेदपाठ तथा वेदमन्त्र का स्वाध्याय होता है ।

९ सप्ताह में एक बार आसन-प्रशिक्षण तथा समय समय पर व्याख्यान-प्रशिक्षण का भी अभ्यास कराया जाता है ।

१० दर्शनों की लिखित एवं मौखिक परीक्षाएँ ली जाती हैं ।

११ प्रातःकाल ४ बजे से रात्रि ९-३० बजे तक आदर्श एवं व्यस्त गुरुकुलीय दिनचर्या है ।

विशेष- प्रवेश लेने वाले ब्रह्मचारियों का तीन मास तक बौद्धिक, आध्यात्मिक तथा व्यावहारिक परीक्षण किया जाता है । ब्रह्मचारी के योग्य सिद्ध होने पर ही स्थायी प्रवेश दिया जाता है ।

महाविद्यालय के माध्यम से कार्य एवं उपलब्धियाँ

सन् १९८६ से लेकर २०१२ तक महाविद्यालय के २६ वर्षों में लगभग १५ प्रान्तों के स्नातक, स्नातकोत्तर **(Graduate, Post Graduate)** व्याकरणाचार्य, शास्त्री स्तर के लगभग ५५ ब्रह्मचारियोंको प्रशिक्षण दिया गया । योग, सांख्य, वैशेषिक, न्याय, वेदान्त इन दर्शनों का संस्कृत भाष्यों सहित अध्यापन हुआ । इन दर्शनों की लिखित एवं मौखिक परीक्षाएँ ली गई । दर्शनों के अतिरिक्त ईश आदि १० उपनिषदों तथा वेद के चुने हुए अध्यायों का भी अध्यापन किया गया एवं आंशिक रूप से व्याकरण तथा संस्कृत भाषा का भी अध्यापन किया गया ।

उपर्युक्त दर्शनों को पढ़ाने की योग्यता प्राप्त करने वालों को दर्शनाचार्य, दर्शन-विशारद तथा दर्शन-प्राज्ञ उपाधियाँ प्रदान की गई तथा क्रियात्मक योग प्रशिक्षण देने में समर्थों को योग-विशारद तथा योग-प्राज्ञ उपाधियाँ प्रदान की गई । ब्रह्मचारियों को वैदिक, दार्शनिक-गम्भीर सिद्धान्तों का ज्ञान कराया गया, जिसके फलस्वरूप अनेक ब्रह्मचारी सूक्ष्म विषयों से सम्बन्धित शंकाओं का समाधान करने, गम्भीर विषयों पर निबन्ध लिखने तथा दार्शनिक व्याख्यान देने में निपुण हुए हैं । यम-नियमों का सदा व्यवहार में प्रयोग कैसे किया जाये तथा निष्काम कर्म कैसे किये जाये इस विषय में भी ब्रह्मचारियों को विशेष प्रशिक्षण दिया गया । ब्रह्मचारियों ने पर्याप्त मात्रा में इन विषयों को समझा और यथाशक्ति जीवन में उतारा ।

वर्तमान में महाविद्यालय के स्नातक विभिन्न प्रान्तों में संस्कृत-भाषा, व्याकरण,और दर्शन अध्यापन, योग-प्रशिक्षण तथा वैदिकधर्म के प्रचार कार्यों में संलग्न हैं । प्रवेश के इच्छुक पत्र-व्यवहार करें ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सत्यपति जी परिव्राजक

दर्शन योग महाविद्यालय
आर्य वन, रोजड़, पत्रा. सागपुर, ता. तलोद,
जि. साबरकांठा, (गुजरात) ३८३३०७
Tel: +91(02770)287418, 287518,
Mob. : +91-94094 15011, 94094 15017
E mail : darshanyog@gmail.com
website : www.darshanyog.org

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषियों ने ईश्वर से सम्बद्ध रहने के अपने ग्रन्थों में बहुत बल दिया। समझाने का प्रयास किया। जैसे कि ईश्वर-प्रणिधान करो। ईश्वर की ही सब वस्तुएँ हैं, ऐसा मानो। ईश्वर से ही अतिप्रेम करो। ईश्वर के ही समर्पित हो जाओ। ईश्वर को ही प्राप्त करना चाहो, लौकिक फलों को नहीं आदि बातों पर बहुत बल दिया। इसलिए ये हमारे सम्बन्ध, मान्यताएँ और क्रियाएँ सुधरनी चाहिएँ।

-इसी पुस्तक से उद्धृत ॥

CC-0.In Public Domain. Panini Kanya Maha Vidyalaya Collection.

Dz : vinayak_dh@yahoo.com